श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं

श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः

प्रदीपः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं

विवरणम्

प्रथमो अध्यायः

जय श्रीकृष्ण

श्रीवल्लभाधीशो जयति

प्रकाशक : श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, मांडवी–कच्छ

प्रकाशक : श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, मांडवी–कच्छ
कंसारा बजार, मांडवी–कच्छ,
गुजरात–३७०४६५
Tel. 02834-231463
Email:gosharad@rediffmail.com
www.vallabhacharyavidyapeeth.org
www.pushtimarg.net

सम्पादक :
गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी (किशनगढ–पार्ला)
गोस्वामी श्रीशरद्‌कुमार (मांडवी–कच्छ)

प्रकाशन वर्ष :
वल्लभाब्द ५३८,
वि.सं.२०७२, सन.२०१५

प्रति : ५००

मुद्रक :
पूर्वी प्रेस्, राजकोट

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, मांडवी-कच्छ

ग्रन्थप्रकाशन :

साम्प्रदायिक परीक्षाकी पाठ्यपुस्तकें:

प्रवेशिका, ले. : गो.शरद् (गुजराती)	१०	प्रवेशिका, ले. : गो.शरद् (हिन्दी)	निःशुल्क
प्रवेशिका, ले. : गो.शरद् (अंग्रेजी)	निःशुल्क	पुष्टिप्रवेश-१, ले. : गो.शरद् (गुज)	१०
पुष्टिप्रवेश-२, ले. : गो.शरद् (गुज)	१०	पुष्टिप्रवेश-१-२, ले. : गो.शरद् (हिन्दी)	१०
पुष्टिपथ, ले. : गो.शरद् (गुजराती)	२०	पुष्टिपथ, ले. : गो.शरद् (हिन्दी)	२०
प्रमेयरत्नसंग्रह, ले. : गो.शरद् (गुजराती)	२०		
Manual of the Devotional Path of Pushti, गो.शरद्			६५

साम्प्रदायिक विचारगोष्ठी

वार्तापरिचर्चा	१५	साधनाप्रणाली संगोष्ठी	५०
अधिकारपरिचर्चा	१००	पुष्टिभक्तिमें कथासाधना संगोष्ठी	५०
शरणागति विचारगोष्ठी	५०	सेवा-समर्पण विचारगोष्ठी	५०
पुष्टिभक्तितथा-प्रपत्तिमें प्रतिबन्ध	१००	जघन्याधिकार	८०
पुष्टिफलमीमांसा	१००	पुष्टिसिद्धान्तचर्चासभा (विस्तृत-संक्षिप्तविवरण)	*

तत्त्वदर्शन विषयक राष्ट्रीय सेमिनार

शब्दखण्डीया विद्वत्परिचर्चा	२००	अन्यख्यातिवादीया विद्वत्सङ्गोष्ठी	१५०
कार्यकारणभावविद्वत्सङ्गोष्ठी	२००	प्रत्यक्षप्रमाण विद्वत्सङ्गोष्ठी	१५०
अन्धकारवादीया विद्वत्सङ्गोष्ठी	२००		
वाल्लभवेदान्त निबन्धसंग्रह, लेखक : गो. श्रीश्याम मनोहरजी			निःशुल्क

नित्यस्तोत्रपाठ:

पुष्टिपाठावली (हिन्दी)	१०	पुष्टिपाठावली (गुजराती)	१०
पुरुषोत्तमसहस्रनाम-त्रिविधलीलानामावली(गुर्जरभाषानुवाद)			२०

सन्दर्भग्रन्थ:

पुष्टिविधानम् पादानुक्रमणिका			१०
पुष्टिअस्मिता संवर्धन शिविर, राष्ट्रीय संमेलन, भरूच			२५
Summary of Shuddhadvaita Vangmaya, लेखक: गो.शरद			१५
अमृत वचनावली (गुजराती)	निःशुल्क	अमृत वचनावली (हिन्दी)	निःशुल्क

अध्ययनोपयोगी ग्रन्थ:

पुष्टिविधानम्-२(व्याकरणम्)श्रीवल्लभाचार्य-श्रीगोपीनाथजी-श्रीगुसांईजी विरचित २६ ग्रन्थोंका पदच्छेद-अन्वय- शब्दपरिचय-वृत्तिपरिचय	१००
पुष्टिविधानम्-३ (व्रजभाषा)श्रीवल्लभाचार्य-श्रीगोपीनाथजी-श्रीगुसांईजी विरचित २६ ग्रन्थोंका शब्दार्थ-श्लोकार्थ-विवेचन-पादानुक्रमणिका	१५०
तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत शास्त्रार्थप्रकरणम्, (व्रजभाषाटीका) साधारण/राजसंस्करण	५०/७०
तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत सर्वनिर्णयप्रकरणम् (व्रजभाषाटीका) साधारण/राजसंस्करण	८०/१००
श्रीभागवतमहापुराण, चार खण्डमें (गुर्जरभाषानुवाद)	४००
विवेकत्रयम्, प्रपञ्च-जीव-मूलरूप (संस्कृत)	१०
गृहसेवा और व्रजलीला(व्रजभाषा)व्याख्यात: गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क
गृहसेवा अने व्रजलीला(गुजराती)व्याख्यात: गो.श्रीश्याम मनोहरजी	अप्राप्य
पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद, व्याख्यात: गो.श्रीश्याम मनोहरजी(गुजराती)	अप्राप्य
श्रीगोपीनाथप्रभुचरण, जीवनचरित्र-ग्रन्थ-हस्ताक्षर (गुज.-हिन्दी)	२५

श्रीकृष्णचरित्र(दशमस्कन्ध गुर्जरभाषा-भावानुवाद)अनुवादक: गो.वा.श्रीनानुलाल गांधी	८०
श्रीमद्भगवद्गीता, गुर्जरभाषानुवाद, अनुवादक : पूर्ववत्. श्लोकार्थ-विवेचन-पादानुक्रमणिका. गीतातात्पर्य-न्यासादेशविवरण गुजराती अनुवाद सहित	५०
रसदृष्टिनी तरफेणमां(गुजराती), लेखक : गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क
सिद्धान्तनुं आचमन, प्रश्नोत्तर (गुज.) उत्तरदाता: गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क
जिन श्रीवल्लभरूप न जान्यो (गुजराती) गो.श्रीश्याम मनोहरजी लिखित श्रीवल्लभ महाप्रभुस्तोत्राणि ग्रन्थकी विस्तृत हिन्दी भूमिकाका गुर्जरभाषानुवाद तथा सौंदर्यपद्य, सर्वोत्तमस्तोत्र, वल्लभाष्टक, स्फुरत्कृष्णप्रेमामृत, श्रीहरिरायचरण रचित श्रीवल्लभस्तोत्र, पंचश्लोकी, शिक्षाश्लोकी आदि ग्रन्थोंकी टीकाओंका गुजराती अनुवाद.	७०
सेवाकौमुदी$^{\text{(हिन्दी)}}$, विषय : नवधाभक्ति, लेखक : श्रीलालूभट्टजी, व्याख्याता : गो.श्रीश्याम मनोहरजी	अप्राप्य
ब्रह्मवाद (हिन्दी) लेखक : गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क
भक्तिवर्धिनी(गुज.), व्याख्याता : गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क
सेवा$^{\text{हिन्दी}}$ (ऋतु-उत्सव-मनोरथ) व्याख्याता : गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क
सेवा$^{\text{गुज.}}$ (ऋतु-उत्सव-मनोरथ) व्याख्याता : गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क
षोडशग्रन्थगत उपदेशो अने तेमनी २८ वार्ताओ, लेखक : श्रीभूपेन्द्र भाटीया	४०
षोडशग्रन्थगत उपदेशो अने तेमनी ६४ वार्ताओ, लेखक : श्रीभूपेन्द्र भाटीया	४०
कृष्णाश्रय, श्रीकल्याणरायजी विरचित संस्कृत टीकानो गुजराती अनुवाद	०७
पुरुषोत्तमग्रन्थावली-५(संस्कृत-गुज.-हिन्दी, द्रव्यशुद्धि-व्रतोत्सवनिर्णय-अपराधनिरूपण)	१००
पुरुषोत्तमग्रन्थावली ६(संस्कृत, उपनिषद्-गीताविवृति)	२००

इतिहास

आधुनिक न्यायप्रणाली अने पुष्टिमार्गीय साधनाप्रणालीनो आपसी टकराव$^{\text{गुज.}}$, लेखक : गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क
आधुनिक न्यायप्रणाली और पुष्टिमार्गीय साधनाप्रणालीका आपसी टकराव$^{\text{हिन्दी.}}$, लेखक : गो.श्रीश्याम मनोहरजी	निःशुल्क

श्रीभागवतसुबोधिनीका गो.वा.श्रीनानुलाल गांधी कृत गुर्जरभाषानुवाद

प्रथमस्कन्ध* द्वितीयस्कन्ध*

चित्र

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य	निःशुल्क	श्रीगोपीनाथप्रभुचरण	निःशुल्क
महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य-श्रीगोपीनाथप्रभुचरण-श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरण			निःशुल्क

गोशाला

जीर्णोद्धार : तृतीय लालजी श्रीबालकृष्णजीके बैठकजी, गाम : विंजाण-कच्छ

श्रीवल्लभाचार्य विद्यापीठ: अध्ययनोपयोगी ग्रन्थालय, अध्ययनकक्ष, निवास, भोजन,अध्यापक आदि अत्यावश्यक सुविधाओंसे सुसज्ज. २६, श्रीवल्लभाचार्य नगर, रेफरल् होस्पिटल्के पीछे, हालोल, जि.पंचमहाल, गुजरात-३८९३५० http://www.vallabhacharyavidyapeeth.org/

पुष्टिस्वाध्याय : सप्ताहके प्रायः सभी दिन आबाल-वृद्ध सभी पुष्टिमार्गीओंकेलिये सम्प्रदायके मूल ग्रन्थोंका अध्यापन विद्वान् आचार्यवंशजों द्वारा टेलिफोनिक कोन्फरन्स् से : विशेष जानकारीकेलिये फोनसम्पर्क योगेन्द्रभाई: (+91) 9323733796 नीरजभाई(यु.एस्.ए.): +7325424165 ईमेलसम्पर्क: gosharad@rediffmail.com

गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजीद्वारा सम्पादित-पुनर्मुद्रित

शुद्धाद्वैत पुष्टिभक्ति सम्प्रदायके मूल संस्कृत ग्रन्थ

१. सव्याख्यषोडशग्रन्थ संयुक्तप्रकाशन, दुर्लभ
  खंड १. श्रीयमुनाष्टकम् से सिद्धान्तरहस्यम्
  खंड २. नवरत्नम् से भक्तिवर्धिनी
  खंड ३. जलभेदः से सेवाफलम्
२. प्रकाश-रश्मि सहित ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम्
  खंड १. प्रथमाध्याय नाथद्वारा टेम्पलबोर्ड, अतिदुर्लभ
  खंड २. प्रथमाध्याय नाथद्वारा टेम्पलबोर्ड, अतिदुर्लभ
  खंड ३. द्वितीयाध्याय
  खंड ४. तृतीयाध्याय
  खंड ५. चतुर्थाध्याय
३. श्रीमद्भागवतसुबोधिनी
  खंड १. प्रथम-द्वितीयस्कन्ध
  खंड ४. जन्मप्रकरण
  खंड ५. तामसप्रमाणप्रकरण
  खंड ६. तामसप्रमेय-साधनप्रकरण
  खंड ७. तामसफलप्रकरण
  खंड ८. राजसप्रमाण-प्रमेयप्रकरण
  खंड ९. राजससाधन-फलप्रकरण
  खंड १०. सात्त्विकप्रमेयसाधनफलप्रकरण
४. तत्त्वार्थदीपनिबन्ध
  खंड १. शास्त्रार्थ-सर्वनिर्णयप्रकरण
  खंड २. भागवतार्थप्रकरण स्कन्ध १-५
  खंड ३. भागवतार्थप्रकरण स्कन्ध ६-१२
५. सव्याख्यषड्ग्रन्थाः संयुक्तप्रकाशन, दुलर्भ
६. वेदान्ताधिकरणमाला-भावप्रकाशिका
७. विविधविवरणोपेत पत्रावलम्बनम्
८. प्रस्थानरत्नाकर
९. विद्वन्मण्डनम्
१०. श्रीबालकृष्णग्रन्थावली
११. श्रीवल्लभमहाप्रभुस्तोत्राणि
१२. श्रीपुरुषोत्तमप्रतिष्ठाप्रकारः
१३. वल्लभाख्यान (सप्तटीकोपेत)

१४. पुष्टिविधानम् गुजराती, व्रज तथा संस्कृत संस्करण

१५. वादावली : ब्रह्मवाद, वादकथा, विग्रहवाद, प्रपंचवाद, प्रपंचसंसारभेदवाद, ब्रह्मजीवतदैक्य-स्वरूपनिरूपणम्, विरुद्धधर्माश्रयत्वविवेचनम्, आत्मवादः, प्रश्नोत्तरसाहस्री-पर्यालोचनम्, प्रश्नोत्तरसाहस्रीचर्चितप्रकृत्यधिकरणसमालोचनम्, केवलाद्वैत-वादाभिमताविद्यास्वरूपविमर्शः, अक्षरपुरुषोत्तम-द्वैतनिरासवादः

१६. अवतारवादावली

खंड २. भेदाभेदवाद, सृष्टिभेदवाद, आविर्भावतिरोभाववाद, ख्यातिवाद, प्रतिबिम्बवाद, अन्धकारवाद.

खंड ३. ब्राह्मणत्वादिदेवतावादः, जीवव्यापकत्वखण्डनवाद, जीवप्रतिबिम्बत्वखण्डनवादः, भागवतस्वरूपविषयकशंकानिरासवादः, उपदेशादिविषयकशंकानिरासवादः, भगवत्प्रतिकृतिपूजनवादः, ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणवादः, तुलसीमालाधारणवादः, शंखचक्र-धारणवादः, भक्तिरसत्ववादः, भक्त्युत्कर्षवादः, नामफलादिप्रकारवादः, जयश्रीकृष्णो-च्चारणवादः, स्ववृत्तिवाद :, वस्त्रादिसेवावादः, मूर्तिपूजनवादः, भागवतपाठादेः शंकानिरासवादः.

४ क्र.१, २ तथा ४/१, ४/२ को छोड कर सभी ग्रन्थ श्रीवल्लविद्यापीठ-श्रीविट्ठलेश्वर-प्रभुचरण आ.हो.ट्रस्ट (कोल्हापुर) द्वारा प्रकाशित.

गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजीकी हिन्दी-गुजराती पुस्तकें

- वाल्लभवेदान्त निबन्धसंग्रह (हिन्दी)
- विवेक (हिन्दी)
- पुरुषोत्तमयोग (गुजराती-हिन्दी)
- श्रीयमुनाष्टकम् (हिन्दी)
- सिद्धान्तसूक्ति (गुजराती)
- वार्तान्‌की सैद्धान्तिक संगति
- चतुःश्लोकी(हिन्दी)
- गृहसेवा और व्रजलीला (गुजराती-हिन्दी)
- सेवाकौमुदी/नवधाभक्ति (हिन्दी)
- पुष्टिमार्गीय पीठाधीश स्वरूप और कर्तव्य
- नवरत्नोपदेशका मानसविश्लेषण(गुज-हिंदी)
- पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद (गुजराती)
- विशोधनिका (४खंड) (गुजराती-हिन्दी)
- नवरत्नम् (गुजराती-हिन्दी)
- सिद्धान्तनुं आचमन (गुजराती)
- भगवद्गीतासु भक्तियोग
- पुरुषार्थव्यवस्था (हिन्दी-गुजराती)
- रसदृष्टिनी तरफेणमां (हिन्दी-गुजराती)
- ब्रह्मवाद (वादावली सम्पादकीय)
- चिरकुट चर्चा समीक्षा (हिन्दी-गुजराती)
- अणुभाष्य(साधनफलाध्याय)भूमिका
- श्रीवल्लभाचार्यके दर्शनका यथार्थ स्वरूप
- शरणागतिविचारगोष्ठी एक पूरक प्रश्नोत्तरी (गुजराती)
- धर्म-अर्थ-काम-मोक्षकी पुष्टिमार्गीय विवेचना(हिन्दी-गुजराती)
- भगवत्सेवानो सिद्धान्तशुद्ध प्रकार: एक प्रश्नोत्तरी (गुजराती)
- साकारब्रह्मवाद (तत्त्वचिन्तन भक्ति और संस्कृति विमर्श) (हिन्दी)
- तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत शास्त्रार्थप्रकरणोपक्रम(गुज.)
- तत्त्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत संक्षिप्त शास्त्रार्थ-सर्वनिर्णयप्रकरण तथा विवेकधैर्याश्रय, नवरत्न, सिद्धान्तमुक्तावली एवं भक्तिवर्धिनी का गुजराती अनुवाद-विवेचन(गुज.)

-श्रीवल्लभाख्यान : श्रीमद्‌भागवतको प्रारूप और श्रीवल्लभाख्यान

म्पर्क : गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी, व्रजकमल, ६३ स्वस्तिक सोसायटी, ४था रास्ता, जुहु स्कीम,
विलेपार्ले(पश्चिम) मुम्बई

।। प्रकाशकीय ।।

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य विरचित ब्रह्मसूत्रके भाष्य पर शुद्धाद्वैत वेदान्तानुसारी अधोलिखित साहित्य उपलब्ध होता है:

ब्रह्मसूत्राणुभाष्यपर प्रकाशित ग्रन्थ साहित्य:

टीकाका नाम	**लेखकका नाम**
प्रकाश	गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण
रश्मि	गोस्वामी श्रीगोपेश्वरचरण
प्रदीप	भगवदीय श्रीइच्छाराम भट्ट
मरीचिका	श्रीव्रजनाथ भट्ट
प्रभा	गोस्वामी श्रीमुरलीधरजी (अपूर्णप्रकाशित)
विवरण	गोस्वामी श्रीगिरिधरजी
भावप्रकाशिका	गोस्वामी श्रीकृष्णचन्द्रजी
अणुभाष्यबालबोधिनी	श्रीत्र्यम्बकेश्वर पाठक
वैयासदर्शनन्यायमाला	गोस्वामी श्रीव्रजनाथजी
वेदान्ताधिकरणमालाल	गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण
अधिकरणमाला	गोस्वामी श्रीगोपेश्वरचरण
अधिकरणसङ्ग्रह	भगवदीय श्रीनिर्भयराम भट्ट

ब्रह्मसूत्राणुभाष्यपर अप्रकाशित ग्रन्थ साहित्य:

टीकाका नाम	**लेखकका नाम**
गूढार्थदीपिका/योजना	श्रीबालकृष्ण भट्ट(विद्यार्थीकालीन नोट्स्)
वेदान्तचन्द्रिका	----------
ब्रह्मसूत्रवृत्ति	गोस्वामी श्रीजीवनाचार्य श्रीगोकुलोत्सवजी
गुणोपसंहारपादभाष्यविवरण	गोस्वामी श्रीकृष्णचन्द्र श्रीब्रजनाथजी
आनन्दनिधिमीमांसा	श्रीगोकुलकृष्ण श्रीरणछोड भट्ट
अणुभाष्यविवृति	गोस्वामी श्रीवल्लभजी श्रीविट्ठलेशजी
प्रसादवागीश्वर	गोस्वामी श्रीबालकृष्णजी श्रीवल्लभजी
तत्त्वार्णवभाष्य(आनन्दमयाधिकरणमात्र)	गोस्वामी श्रीबालकृष्णजी श्रीवल्लभजी
अणुभाष्यटीका	गोस्वामी श्रीगिरिधिरजी
अणुभाष्यटीका	श्रीरामनारायण
वेदान्तकौमुदी	श्रीबालकृष्ण भट्ट
अणुभाष्यप्रकाश	गोस्वामी श्रीमथुरानाथजी
अणुभाष्यसिद्धान्तटीका	-------
अणुभाष्यटीका	भट्ट श्रीगङ्गाधर शास्त्री

वेदान्तचन्द्रिका	गोस्वामी श्रीब्रजनाथजी श्रीरघुनाथजी
अणुभाष्यटिप्पणी	श्रीगोवर्धन भट्ट
ब्रह्मसूत्रकारिका	गोस्वामी श्रीदेवकीनन्दनजी
ब्रह्मसूत्रार्थवर्णनकारिका	-------
अणुवृत्ति	-------
अणुभाष्यसार	-------
ब्रह्मसूत्रप्रकीर्णविचार	-------
ब्रह्मसूत्रीयपारिभाषिकशब्दार्थ	-------
अधिकरणसंख्याविचार	-------

ब्रह्मसूत्राणुभाष्यके अनुवाद

गुजराती अनुवाद

श्रीजेठालाल गोवर्धनदास शाह
श्रीगोविन्दलाल हरगोविन्द भट्ट तथा(भाष्य ३।४।२२ से समाप्ति पर्यन्त)
श्रीनागरदास काशीराम बांभणीया, वडोदरा
श्रीअ. दे. शास्त्री, सूरत
श्रीमनुसाखलाल जोषी, राजकोट (त्रिसूत्र परिमित)

अनुवादेतर साहित्य

गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी, किशनगढ-पार्ला (मुंबई युनिवर्सिटि द्वारा संचालित वल्लभवेदान्त अभ्यासक्रमकी पाठ्यपुस्तक)

हिन्दी अनुवाद :

त्रिपाठी श्रीनारायण शास्त्री, श्रीनाथद्वार
श्रीललितकृष्ण गोस्वामी
श्रीजगन्नाथ शास्त्री (अपूर्ण तथा अप्रकाशित)

अनुवादेतर साहित्य

अणुभाष्यस्वार्थदर्शन; अपूर्ण तथा अप्रकाशित. श्रीकण्ठमणि शास्त्री
अणुभाष्यसमीक्षा; श्रीकेदारनाथ मिश्र, वाराणसी
चारों अध्यायों पर भूमिका; गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी, किशनगढ-पार्ला मुंबई युनिवर्सिटि द्वारा संचालित वल्लभवेदान्तके अभ्यासक्रमकी पाठ्यपुस्तक; गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी, किशनगढ-पार्ला

अंग्रजी अनुवाद :

प्रा. पी. एम्. मोदी (अंशतः प्रकाशित)
श्रीनागरदास बांभणीया (अपूर्ण)

अनुवादेतर साहित्य

एन् इन्ट्रोडक्शन् टु अणुभाष्य; श्रीजेठालाल शाह
इन्ट्रोडक्शन्; श्रीमूलचन्द्र तेलीवाला

ब्रह्मसूत्र पर साम्प्रदायिक साहित्यका इस तरह पीढी दर पीढी बढते हुवे, वह भी विविध भाषाओंमें, इतनी विपुल मात्रा तक पहूंच जाना सम्प्रदायमें ब्रह्मसूत्रके असाधारण महत्वको सिद्ध करता है. साथ ही साथ ब्रह्मसूत्र पर लिखे गये परन्तु अद्यावधि अप्रकाशित/अनुपलब्ध रह गये साहित्यकी सूचि पर दृष्टिपात करने यह भी प्रतीत होता है कि सम्प्रदायके प्रति जितनी जागरूकता एवं कृतज्ञता का परिचय सम्प्रदायके प्राचीन विद्वानोंने दिया था उतनी ही कृतघ्नता और उपेक्षापूर्ण मनोवृत्तिका परिचय सम्प्रदायके वर्तमान अनुयायी दे रहे हैं.

ब्रह्मसूत्राणुभाष्यकी अध्ययन प्रणाली :

ब्रह्मसूत्रका प्रणयन महर्षि वेदव्यासने वेदार्थका निर्णय देनेकेलिये किया है. अतः ब्रह्मसूत्रका विधिवद् अध्ययन आरम्भ करनेसे पूर्व उसके उपजीव्य वेदोपनिषदोंका साङ्ग अध्ययन यदि कर लिया हो तो विषयमें सुगमतासे प्रवेश हो सकता है.

इसके पश्चत्, ब्रह्मसूत्रोंका प्रतिपादन क्योंकि अधिकरणशैलिमें हुवा है अतः, सूत्रवृत्ति एवं स्वसम्प्रदायानुसारी अधिकरणार्थका निरूपण करनेवाले ग्रन्थोंका अध्ययन किया जाना चाहिये. यथा, गोस्वामी श्रीकृष्णचन्द्रजी विरचित सूत्रवृत्ति **'भावप्रकाशिका'** और/अथवा श्रीव्रजनाथ भट्ट विरचित सूत्रवृत्ति **'मरीचिका'**. तथा अधिकरणार्थके ज्ञानार्थ गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरण विरचित **'वेदान्ताधिकरण-माला'**, गोस्वामी श्रीगोपेश्वरचरण विरचित **'अधिकरणमाला'** और/अथवा भगवदीय श्रीनिर्भयराम भट्ट विरचित **'अधिकरणसङ्ग्रह'**.

तत्पश्चात् ब्रह्मसूत्राणुभाष्यकी **प्रकाश** और **रश्मि** टीकाओंमें सुगम प्रवेशार्थ इस ग्रन्थमें प्रकाशित की गयी **प्रदीप** और **विवरण** टीकाओंका अध्ययन किया जाना चाहिये.

'प्रदीप'कार भगवदीय श्रीइच्छाराम भट्ट :

भगवदीय श्रीइच्छाराम भट्ट का प्रादुर्भाव गुजरातके पेटलाद गांवमें सदाचारी श्रीमाली ब्राह्मण परिवारमें हुवा था. बाल्यकालमें ही इनके माता-पिताका देहान्त हो जाने पर गांवके सहृदय नागर ब्राह्मण परिवारने इनका पालन-पोषण किया. बाल्यवस्थामें ही इनके भीतर संसारके प्रति विरक्तिका भाव प्रबल था. एकान्तमें तत्त्वचिन्तन करना इनको अच्छा लगता था. किशोरावस्थामें ये श्रीनृसिंहकी नित्य पूजा करते थे. विवाहयोग्य होने पर इनका गृहस्थाश्रमप्रवेश कराया गया. कुछ वर्षों पश्चात् पुत्रजन्म हुवा परन्तु किशोरावस्थामें ही उसकी मृत्यु हो गई. पुत्रशोकमें माताका भी कुछ ही समयमें देहान्त हो गया.

इस तरह संसारबंधनसे मुक्त हो जाने पर श्रीइच्छारामजीने अपने गांवको छोड कर सन्निकट स्थित ‘श्रीरणछोडरायजी’ नाम्ना प्रसिद्ध श्रीद्वारकाधीशजीकी नगरी ‘डाकोर’में तीर्थवास किया. श्रीरणछोडरायजीके प्रति इनके अनन्य भक्तिभावके कारण स्थानिक भाविक समाज इनको सुदामाजीका दूसरा अवतार मानते हैं. गोमती कुंडके तटस्थित श्रीइच्छारामजीका स्थान डाकोरमें ‘भट्टजीकी बैठक’ नामसे प्रसिद्ध है.

श्रीइच्छारामजी डाकोरमें नित्य श्रीभागवतादि शास्त्रोंका एकान्तमें पारायण किया करते थे. सायंकालमें श्रद्धालुओंके सन्मुख उपदेश-प्रवचन करनेका भी उनका नियम था. दूर-सुदूर प्रदेशमें आयोजित होती शास्त्रार्थसभामें भी वे भाग लिया करते थे. एकान्तप्रिय होनेसे तत्त्वबुभुत्सु श्रीइच्छारामजीने नाशिक, काशी तथा नर्मादाजीके तट पर चाणौद में भी दीर्घकाल भगवच्चिन्तनमें बिताया था. कहते हैं कि भगवत्कृपाबलसे उनको अनेक चमत्कारिक सिद्धियां भी प्राप्त थीं.

कृष्णभक्त श्रीनरसिंह मेहता(जुनागढ)के अपरावतार माने जानेवाले सुप्रसिद्ध पुष्टिभक्त कवी श्रीदयारामभाई (जन्म भाद्रपद शुक्ल १२, वि.सं.१८३३. गोलोकवास माघ कृष्ण ५, १९०९) स्वरचित ‘गुरु-शिष्यसंवाद’ नामक पद्यमें श्रीइच्छारामजीको अपने प्रेरक गुरुके रूपमें आदर देते हैं. युवावस्थामें श्रीदयारामभाईकी भेंट जब श्रीइच्छाराम भट्टसे हुई तब श्रीइच्छारामजीने अनेक शंकाओंसें घिरे श्रीदयारामभाईके मनका समाधान किया और सन्मार्गका परिचय कराया. श्रीदयारामभाई लिखते हैं :

‘‘**सहु शंकानो निर्धार कीधो मळ्या भक्तिनिष्ठ,**
भटजी महाराज कहावे डाकोराधीश जेना इष्ट’’.

त्रिकालदर्शी महात्मा श्रीइच्छाराम भट्टने श्रीदयारामभाईके पूर्वजन्मका वृत्तान्त उनको सुनाया और व्रजयात्रा करनेको कहा. यात्रामें श्रीदयारामभाईको पुष्टिमार्गीय दीक्षा, आत्मनिवेदन-ब्रह्मसम्बन्ध, भी प्राप्त होगी ऐसा कहा. श्रीदयारामभाई लिखते हैं :

‘‘**त्रिकाळदर्शी महात्माए दीधो आशीर्वाद,**
पूर्वजन्म कृति म्हारी कही सुणी धर्म आह्लाद,
व्रजयात्रा करी आव तूं ब्रह्मसम्बन्ध तुजने थशे’’

श्रीइच्छारामजीकी दिव्य सिद्धिका वर्णन करते हुवे श्रीदयारामभाई लिखते हैं कि यात्रार्थ आवश्यक धन उनके पास न होनेकी बात कहने पर श्रीइच्छारामजीने करुणावश हो कर अपेक्षित धन उपलब्ध करानेवाली एक चमत्कारी डिबिया उनको दी थी जिसके सहारे श्रीदयारामभाईने लम्बी तीर्थयात्रा सम्पन्न की और वापस आने पर उसे श्रीइच्छारामजीको लौटा दी.

‘‘म्हें कह्युं नथी द्रव्य तेटलुं शी पेरे म्हारी (यात्रा)थशे ?
कृपाकटाक्षे अवलोकी दीधी प्रसादी वस्तु
त्हे करी म्हें करी यात्रा खर्चे न थाय ते अस्त!’’

इस ग्रन्थमें प्रकाशित की गई श्रीवल्लभाचार्य विरचित ब्रह्मसूत्राणुभाष्यकी **‘ब्रह्मसूत्राणुभाष्यपदप्रदीप’** किंवा **‘प्रदीप’** टीका के लेखक यही श्रीइच्छाराम भट्ट हैं. इनका पुष्टिमार्गमें प्रवेश महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके वंशज गोस्वामी श्रीगोपालजीके द्वारा हुवा. भाष्यप्रदीपके मङ्गलाचरणमें इन्होंने अपने गुरुका स्मरण इस प्रकार किया है: **‘‘श्रीगोपालगुरो युष्मत् कृपालेशोऽस्तु मे सदा’’**. ग्रन्थकी इतिश्रीसे ज्ञात होता है कि इस टीकाग्रन्थको इन्होंने अपने गुरु श्रीगोपालजीको समर्पित किया है.

‘कांकरोलीका इतिहास’के लेखक श्रीकंठमणी शास्त्रीने ‘श्रीव्रजभूषणजी (द्वितीय, प्राकट्य सं. १७६५, तिलकायत्त सं.१८०३-४)के परिचित एवं आश्रित कवि तथा विद्वान्’ की सूचिमें साम्प्रदायिक विद्वानतया श्रीइच्छाराभ भट्टका उल्लेख (पृष्ठ २०५) किया है.

‘विवरण’कार गोस्वामी श्रीगिरिधरजी :

इस ग्रन्थमें प्रकाशित की गई श्रीवल्लभाचार्य विरचित ब्रह्मसूत्राणुभाष्यकी ‘विवरण’ नामकी दूसरी टीका के लेखक महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके वंशज काशी निवासी गोस्वामी श्रीगिरिधरजी हैं. इनका प्राकट्य, महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यकी दसवीं पीढी पर, पौष कृष्ण ३ वि.सं.१८४७ में हुआ. इनके पिताका नाम श्रीगोपललालजी था.

श्रीगिरिधरजी भगवत्सेवा-परायण होनेके साथ-साथ विद्याव्यासङ्गी भी थे. आपको ब्रह्मसूत्राणुभाष्यकी टीका ‘रश्मि’के लेखक सम्प्रदायके सुप्रसिद्ध विद्वान् गोस्वामी श्रीगोपेश्वरजी तथा पंडित श्रीरामकृष्ण भट्ट जैसे विद्वानोंका सान्निध्य प्राप्त हुवा. इससे आपकी प्रतिभा ओर खिल उठी. आपकी रचनाएं इस प्रकार उपलब्ध होती हैं:

विवरण : ब्रह्मसूत्राणुभाष्यकी टीका, प्रस्तुत ग्रन्थमें मुद्रित है.

हरितोषिणी : गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरण रचित ‘विद्वन्मण्डन’की विवृति.

बालप्रबोधिनी : श्रीभागवत पुराणकी सरल विवृति.

शुद्धाद्वैतमार्तण्ड : शुद्धाद्वैत वेदान्तका निरूपण करनेवाला प्रकरण ग्रन्थ. परम्परागत शास्त्रीय प्रणालीसे शुद्धाद्वैत पुष्टिभक्तिमार्गीय ग्रन्थोंका अध्ययन आरम्भ करना हो तो श्रीबालकृष्ण भट्ट विरचित ग्रन्थ ‘प्रमेयरत्नार्णव’ तथा श्रीगोवर्धन शर्मा विरचित ग्रन्थ ‘वेदान्त-चिन्तामणि’ की ही पङ्क्तिमें ‘शुद्धाद्वैतमार्तण्ड’ भी आता है.

श्रुतिरहस्य : महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यकी प्रशस्तिका निरूपण.

ऊर्ध्वपुण्ड्रमार्तण्ड : ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलकके माहात्म्यका निरूपक ग्रन्थ.

प्रदीप-विवरणके पूर्वप्रकाशनोंका विवरण :

प्रदीप:

सम्पादक : गोलोकवासी श्रीमग्नलाल गणपतिराम शास्त्री, तत्कालीन संस्कृत प्रवक्ता, डेक्कन कॉलेज्, पूणे-महाराष्ट्र.

हस्तलिखितप्रति : जामनगरसे नि.ली. गोस्वामी श्रीअनिरुद्धलालजी महाराज द्वारा और पुणे स्थित श्रीबालकृष्णमन्दिरसे प्राप्त हुई ग्रन्थ प्रतियोंके आधारपर सम्पादन.

प्रकाशक : गोलोकवासी श्रीकेशवराम काशीराम शास्त्री, शुद्धाद्वैत संसद, अहमदाबाद

प्रकाशन वर्ष : वि.सं.२०३६, श्रीवल्लभाब्द ५०८, ई.स.१९८०

विवरण :

प्रथमाध्याय : सम्पादक-गो.वा.श्रीहरिशङ्कर ओङ्कारजी शास्त्री
प्रकाशक : नारायणदास आसनमल ट्रस्ट, मुम्बई.
प्रकाशन वर्ष : सन.१९४२, श्रीवल्लभाब्द ४६४.

द्वितीयाध्याय : सम्पादक-गो.वा.श्रीगोविन्दलाल हरिगोविन्द भट्ट, वडोदरा-गुजरात.
प्रकाशक : नारायणदास आसनमल ट्रस्ट, मुम्बई.
प्रकाशन वर्ष : सन.१९५०, श्रीवल्लभाब्द ४७२.

तृतीय-चतुर्थाध्याय : सम्पादक-गो.वा.श्रीगोविन्दलाल हरिगोविन्द भट्ट, वडोदरा.
प्रकाशक : विद्याविभाग, श्रीनाथद्वार, राजस्थान.
प्रकाशन वर्ष : वि.सं.२०१८, श्रीवल्लभाब्द ४७२.

प्रदीप-विवरण (त्रिसूत्रमात्र): सम्पादक-देवर्षि भट्ट श्रीरमानाथ शास्त्री,
प्रकाशक : पुष्टिमार्गसिद्धान्तकार्यालय, मुंबई.
प्रकाशन वर्ष : सं.१९७८, सन् १९२१

प्रदीप-विवरण टीकाओंके संकलित पुनः प्रकाशन पर श्रीवल्लभाचार्य न्यासकी ओरसे इन सभी पूर्व प्रकाशक-सम्पादकोंका हम सादर स्मरण करते हैं. ट्रस्टके अन्य प्रकाशनोंकी ही तरह इस ग्रन्थके भी प्रकाशनका कार्य राजकोटके श्रीप्रवीणभाई तथा श्रीपीयूषभाई ने सम्पन्न किया है. इस ग्रन्थके प्रकाशनके प्रेरणास्रोत परमादरणीय गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी रहे हैं. आपने ही अत्यन्त परिश्रमसे सम्पूर्ण ग्रन्थका अवलोकन करके इसका संशोधन भी किया है.

अन्तमें, प्रदीप-विवरण टीकाओंके शेष तीन अध्यायोंका प्रकाशन भी शीघ्रातिशीघ्र हो ऐसी अभिलाषा सह...

विजया दशमी. वि.सं.२०७२ **श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट द्वारा :** गोस्वामी शरद्

।। अनुक्रमणिका ।।

प्रथमो अध्यायः

प्रथमः चरणः (१-२५७)

जिज्ञासाधिकरणम् १
जन्माद्यधिकरणम् ४७
समन्वयाधिकरणम् ७५
ईक्षत्यधिकरणम् १०२
आनन्दमयाधिकरणम् १२२
अन्तस्तद्धर्माधिकरणम् २००
तल्लिङ्गाधिकरणम् २१२
अतिदेशाधिकरणम् २१६
ज्योतिश्चरणाधिकरणम् २२०
अनुगमाधिकरणम् २३६

द्वितीयः चरणः (२५८-३६३)

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशाधिकरणम् २५८
शब्दविशेषाधिकरणम् २७५
अत्ताचराचरेत्यधिकरणम् २८५
गुहाम्प्रविष्टौ इत्यधिकरणम् २९०
अन्तर उपपत्तेः इत्यधिकरणम् ३०२
अन्तर्याम्यधिकरणम् ३१३
अदृश्यत्वाधिकरणम् ३२४
वैश्वानराधिकरणम् ३३७

तृतीयः चरणः (३६४-४६३)

द्युभ्वाद्यधिकरणम् ३६४
भूमाधिकरणम् ३७३
अक्षराधिकरणम् ३८३
ईक्षतिकर्माधिकरणम् ३८८
दहराधिकरणम् ३९०

अनुकृत्यधिकरणम् ४०७
शब्दादेव प्रमित इत्यधिकरणम् ४०९
तदुपर्यत्यधिकरणम् ४११
शुगस्य इत्यधिकरणम् ४२८
कम्पनाधिकरणम् ४३६
ज्योतिर्दर्शनाधिकरणम् ४३८
अर्थान्तरव्यपदेशाधिकरणम् ४४०
सुषुप्त्युत्क्रान्त्योः इत्यधिकरणम् ४४१

चतुर्थः चरणः (४६४-५२६)
आनुमानिकाधिकरणम् ४६४
चमसवदित्यधिकरणम् ४७७
न सङ्ख्योपसङ्ग्रहाधिकरणम् ४८३
यथाव्यपदिष्टाधिकरणम् ४९१
समाकर्षाधिकरणम् ४९२
जगद्वाचित्वाधिकरणम् ४९६
वाक्यान्वयाधिकरणम् ५०३
प्रकृतिश्च इत्यधिकरणम् ५१५

मतान्तरपाठसमेतो ब्रह्मसूत्रपाठः ५२७
ग्रन्थोद्धृतवचनानाम् आकरस्थलनिर्देशः पृष्ठाङ्कसूची च ५६४

श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचितं

श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम्

प्रथमो अध्यायः

प्रथमः पादः

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।।१।। (१।१।१)

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

श्रीवल्लभ कृपासिन्धो श्रीविट्ठल दयानिधे।
श्रीगोपालगुरो युष्मत्कृपालेशोस्तु मे सदा।।१।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

श्रीश्रीनाथमुकुन्दरायरसिकस्वानन्दशेषोज्जल–
श्रीमद्वल्लभविट्ठलेशसुभगश्रीशैलराजाः सदा।
अत्रागत्य मदीयमूर्धनि कृपावश्या मुदा स्वासते
लीलारासपरास्तदीयचरणाम्भोजे नमाम्यर्थदे।।१।।
श्रीश्रीनाथं नमामि श्रीनवनीतप्रियं तथा।
नौमि श्रीमथुरेशं श्रीविट्ठलेशं दयार्णवम्।।२।।
नौमि श्रीद्वारिकाधीशं सर्वकामार्थदायकम्।
श्रीमद्गोकुलनाथं च नौमि कारुण्यविग्रहम्।।३।।
तथा नमामि तं शश्वद् यः श्रीगोकुलचन्द्रमाः।
श्रीमन्मुकुन्दरायाख्यं नौमि भक्तार्थपूरकम्।।४।।
नमामि लीलाललितं श्रीमन्मदनमोहनम्।
नमामि श्रीबालकृष्णं श्रीमन्नटवरं तथा।।५।।
यः स्वीयान् गतसाधनानगणयन् नानापराधान् परा–
नेकेनैव कृपासुधाजलधरासारेण संसिञ्चति।।
श्यामत्वं निजशोभयापरवपुर्ध्यानेन यद् गौरता
तं रायोत्तरशब्दमुद्धृतनिजं श्रीमन्मुकुन्दं भजे।।६।।
श्रीमन्मुकुन्दराय त्वच्चरणसरोजे मन्मनोभृङ्गः।
वासं करोतु सततम् अतस्त्वां पतिं प्रभुं नौमि।।७।।
श्रीमद्गोपाललालं मृगमदविलसद्भालमालं कृतं स्व

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

**ध्यात्वा चैषां पदाम्भोजे नत्वा श्रीछत्रिकं मुदा।
प्रदीपम् अणुभाष्यीय–पदानां विवृणोम्यहम्।।२।।**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

**स्वामिन्या सुस्मितास्यं ललितगतिलसन्मालगोपालबालम्।।
वेणौ विन्यस्तहस्तं रतिपतिमदहृत्स्वर्णगात्रं सुनेत्रं
रासक्रीडादिलोलं सुललितवसनं राधिकेशं नमामि।।८।।
आनन्दरूपिणं देवं विश्वाविर्भावकारणम्।
श्रीगोपालम् अहं वन्दे श्रीगोपीजनवल्लभम्।।९।।
नानामतेषु प्रविवेककारि श्रीपुष्टिमार्गप्रवहप्रदर्शि।
श्रीवल्लभाचार्यपदारविन्दं सुषट्पदीभूतमना नतोऽस्मि।।१०।।
सुखेनैव परावाप्तिसाधिकायाश्च पद्धतेः।
बोधकौ श्रीमदाचार्यचरणौ प्रणतोऽस्म्यहम्।।११।।
रासादिलीलारसपूरिताङ्गं निजान्तरङ्गाम्बुजराजहंसम्।
मायीन्द्रकुम्भीन्द्रहरीन्द्रमीशं श्रीविट्ठलेशं प्रणमामि नित्यम्।।१२।।
श्रीहरेः प्रीतिनिष्ठायाः सतां स्वान्ते नियोजकौ।
श्रीविट्ठलेशचरणौ प्रणमामि पुनः पुनः।।१३।।
वन्दे श्रीयदुनाथांश्च भाष्यार्थस्यावबोधकान्।
सर्वेषाम् अनुकम्पार्थं निजमार्गप्रदर्शकान्।।१४।।
गुरोर्गोस्वामिनः श्रीमद्द्वारिकानाथशर्मणः।
पादारविन्दयुगलं प्रणमामि स्मरामि च।।१५।।
श्रीमत्प्रभुचरणात्मजगोस्वामीन्द्रो महाराजः।
यत्कृपया मयि राजति पुष्टिफला राज्यवरलक्ष्मीः।।१६।।
तत्सूनोः मधुसूदनस्य चरणौ प्रद्युम्ननामा विभुः
योऽभूत् तत्तनयस्तदीयचरणौ नौम्यर्थदौ सन्ततम्।
श्रीमद्विट्ठलनाथनामतनयो योऽभूत् तु सर्वार्थदः
तत्पादौ प्रणमामि तस्य तनयः प्रद्युम्ननामा विभुः।।१७।।
तत्पादाब्जयुगं नमामि तनयो यस्तस्य सेवार्थभूः
श्रीमद्विट्ठलनाथनामपुरुषः तत्पादयुग्मे नतिः।।
तस्यासीत् तनयो मदीयजनको गोपालनामा विभुः**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सौभाग्यं हरिदासानाम् इच्छारामे भवेद् यदि।
तदियं विवृतिः पूर्णा भवत्विति निदर्शनम्।।३।।
चक्षुष्मतां प्रकाशाय भाष्यार्थस्य विना श्रमम्।
इच्छारामः करोतीमं दीपं दिव्यं सुखावहम्।।४।।

'अथ'शब्देन मङ्गलम् आचरन्तो ग्रन्थारम्भम् आहुः अथ...इत्यादि. 'अथ'शब्दो अर्थचतुष्टये वर्तते मङ्गले, अधिकारे, आनन्तर्ये, अर्थान्तरोपक्रमे च. **''ओङ्कारश्चाथ-शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा, मुखं भित्वा विनिर्यातौ तेन माङ्गलिकौ स्मृतौ''** इति वाक्याद् श्रवणमात्रेणैव 'अथ'शब्दस्य माङ्गल्यसम्पादकत्वाद्, व्यासचरणैः मङ्गलार्थं तस्यैव आदौ प्रयोगाद्, **''अथ शब्दानुशासनम्''** (पाणि.महाभा.१।१।१) इत्यत्र महाभाष्यकारैरपि मङ्गलार्थम् 'अथ'शब्दस्य आदौ निबन्धात् स्वयमपि भाष्यकाराः शिष्यशिक्षार्थं मङ्गलम् आचरन्तो मङ्गलार्थम् 'अथ'शब्दम् उपनिबध्नन्तो 'अथ'शब्दघटितसूत्रमेव आदौ निबध्नन्ति **''अथातो ब्रह्मजिज्ञासा''** इति. सूत्रलक्षणन्तु **''लघूनि सूचितार्थानि स्वल्पाक्षरपदानि च, सर्वतःसारभूतानि सूत्राण्याहुर्मनीषिणः''** इति. **''स्वल्पाक्षरम् असन्दिग्धं सारवद् विश्वतोमुखम्, अस्तोभम् अनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः''** इति च. भाष्यलक्षणं च **''सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः, स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः''** इति. एतल्लक्षणस्य वाक्ये अतिव्याप्तिवारणाय 'सूत्रानुसारित्वम्' उक्तम्. वृत्तौ अतिव्याप्तिवारणाय 'स्वपदानि च वर्ण्यन्ते' इति उक्तम्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

गोस्वामिकुलवारिधौ हिमकरस्तत्पादपद्मे नतिः।।१८।।
कृष्णपादाम्बुजद्वन्द्वप्रेममूर्त्याः शिवोदयम्।
श्रीमन्मातुः पादयुगं कृष्णावत्या नतोऽस्म्यहम्।।१९।।
श्रीकृष्णस्य कृपाप्राप्तसुखो गिरिधरः सुधीः।
कुर्वे विवरणं श्रीमदणुभाष्ये यथामति।।२०।।
क्वाहं मन्दमतिः क्वेदम् अणुभाष्यार्थचिन्तनम्।
अत्रार्थे श्रीमदाचार्यचरणौ शरणं मम।।२१।।
भाष्यस्याक्षरगुम्फौऽयं न बुद्ध्या कलितुं क्षमः।
तथापि श्रीमदाचार्यकृपयात्र कृतिर्मम।।

अथ खलु परमकारुणिकाः भगवन्तो बादरायणाः अनेकपरिवत्सरसमयाद्

इदम् अत्र विचार्यते.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अधिकरणम् अवतारयन्ति **इदम् अत्र** इत्यादिना. ननु अधिकरणस्य पञ्चाङ्गत्वाद्, पञ्चाङ्गानि च ‘‘**विषयो विशयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तरं, सङ्गतिश्चेति पञ्चाङ्गं शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्**’’ इति. अत्र विचाररूपविषयस्य अनिर्णीतस्य सूत्राद् उपस्थितावपि इतराङ्गानां सूत्राद् अनुपस्थितत्वाद् कथम् इदम् अधिकरणात्मकं सूत्रम्? इति आकांक्षति. सौत्राण्येव सर्वाणि अङ्गानि इति बोधयितुं बुद्धिस्थ-सकलपदार्थबोधकम् ‘इदं’पदघटितं वाक्यम् आहुः **इदम् अत्र विचार्यते** इति.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आरभ्य भगवद्वियोगजनितानन्द-तिरोभावानधिगत-साङ्गस्वाध्यायान् प्रेक्षायुतान् त्रैवर्णिकान् प्रवाहमार्गपतितान् समीक्ष्य केवलं विचारमात्रेणैव तेषां मननादिद्वारा नित्यलीलास्थपरात्परपुरुषोत्तमप्राप्तिं विधातुं विचारशास्त्रं प्रारिप्सितवन्तः प्रथमं जिज्ञासाधिकरणं रचयाञ्चक्रुः. **अथातो ब्रह्मजिज्ञासा.** ‘**अथ**’शब्दस्तु श्रीमदाचार्य-चरणैः भाष्ये ‘‘अथ वा’’ इत्यादिना अधिकारएव सिद्धान्तितः. व्याकरणभाष्येतु ‘‘**अथ इति अयं शब्दो अधिकारार्थः प्रयुज्यते**’’(व्याक.महाभा.ग्रन्थारम्भप्रयोजनप्रतिज्ञा-भाष्यम्) इति उक्तम्. तत्र अधिकारः प्रस्तावो द्योत्यत्वेन अस्य प्रयोजनम् इति कैय्यटः. तत्र प्रस्तावः प्रारम्भः इति विवरणम्. एवञ्च ‘अथ’ इति अयं शब्दः प्रारम्भार्थे प्रयुज्यमानः स्वरूपतो मङ्गलार्थमपि भवति मृदङ्गध्वनिवद्; यथा अन्यार्थं नीयमानस्य दध्यादेः मङ्गलार्थत्वमपि. यद्यपि अधिकारो नाम त्रिप्रकारकः इति ‘‘**षष्ठीस्थाने योगा**’’ (पाणि.सू.१।१।४९) इति सूत्रे व्याकरणभाष्ये उक्तम्, तथापि प्रकृते ‘अथ’पद-समभिव्याहारे प्रारम्भापरपर्यायएव अधिकारो हि अत्र गृह्यते इति. एवञ्च आरभ्यते इति अर्थः. अत्र आङ्पूर्वक‘रभ’धातोः आद्यकृतिः अर्थः. तस्य च विषयतासम्बन्धेन विचारार्थैकदेशे व्यापारे अन्वयः. आद्यकृतित्वं च स्वविषयकृति-ध्वंसासमानकालीन-स्वविषयककृतित्वम्. स्वं विचारः, तद्विषयिणी या कृतिः, तादृशकृतेः ध्वंसः तृतीयादिक्षणे वर्तते, तदसमानकालिका या विचारविषयिणी कृतिः सा प्रथमद्वितीयक्षणे वर्तते इति कृत्वा तत्र आरभ्यते इति व्यवहारः. **अत**ः इति चतुर्थ्यन्तम्. ‘‘**आद्यादिभ्यः उपसङ्ख्यानम्**’’(पाणि.सू.वार्ति.५।४।४४) इत्यनेन एतच्छब्दात् सार्वविभक्तिकः तसिः. एतदर्थम् इति अर्थः. अस्य च ज्ञानार्थं विचारः इति अस्मिन् अर्थे तात्पर्य-ग्राहकत्वम्. इदञ्च अनुपदमेव भाष्ये स्फुटीभविष्यति. **जिज्ञासा**पदस्य विचारार्थकत्वं श्रीमदाचार्यचरणैः भाष्यएव, श्रीपुरुषोत्तमैः प्रकाशे प्रतिपादितम्. (अत्र यद्

'इदं'पदप्रयोगेणापि कथं तावद् अधिकरणाङ्गानां लाभः? इति चेद्, इत्थम्. तथाहि, निर्गुणं ब्रह्म सधर्मकं निर्धर्मकं वा? इति संशये निर्गुणं ब्रह्म निर्धर्मकमेव इति पूर्वपक्षे प्राप्ते, तादृशं ब्रह्म सधर्मकमेव इति निर्णयो यतो व्यासमीमांसातिरिक्तशास्त्रैः न भवति अतो ब्रह्मविचारो 'ब्रह्मजिज्ञासा'पदबोध्यो 'अथ'शब्देन अधिकारार्थेन अधिक्रियते आरभ्यते इति सूत्रार्थे क्रियमाणे, विचारकर्तव्यताप्रतिज्ञानाद् ''सन्दिग्धे न्यायः प्रवर्तते'' इति न्यायाद्, विचाररूपविषये विचारः कर्तव्यो न वा? इति संशये प्राप्ते, विरुद्धयुक्तिभिः न कर्तव्यः, इति पूर्वपक्षे प्राप्ते, तन्निरासेन वेदानुकूलयुक्तिभिः विचारकर्तव्यतानिद्धारणमेव सौत्रविचारकर्तव्यताप्रतिज्ञायाः लभ्यतइति सूत्रविचारकर्तव्यताप्रतिज्ञाबलादेव पञ्चाङ्गानां लाभः इति बोध्यमिति न कापि पूर्वोक्तानुपपत्तिः इति, अग्रिमसूत्रेषु वेदान्तविचारस्य कर्तव्यत्वाद् विचारे उपोद्घातसङ्गतिरपि लभ्यते.

तथाहि ''**चिन्तां प्रकृतसिद्ध्यर्थाम् उपोद्घातं विदुर्बुधा**'' इति अभियुक्तानां

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

''**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**'' (तैत्ति.उप.२। १।१) इति परप्राप्तिसाधनीभूतविचारो न सम्भवति इत्यतो विचारघटकीभूतं ब्रह्मधर्मिक-तात्पर्यज्ञानजन्यं उपनिषद्वाक्यजन्यं ब्रह्मविषयकं शाब्दबोधात्मकं ज्ञानं तत् परोक्षम् इति उच्यते इति विवेकः. एवम् अग्रेऽपि सूत्रेषु वाक्यार्थो बोध्यः इति दिक्.)* अथ श्रीमदाचार्यचरणैः विचारितं, मन्दबुद्धीनान्तु सूत्राणां स्वल्पाक्षरपदवत्त्वेन दुरूहत्वाद् अर्थज्ञानाभावाद् उद्धारो न भविष्यति इति अधिकरणानां पञ्चावयव-वर्णनद्वारा यावत्सूत्रार्थो भाष्यरीत्या(ल्पो) वर्णितः.

तत्र प्रथमसूत्रे अधिकरणाङ्गपञ्चकविचारं कर्तुं प्रतिज्ञाम् आहुः **इदम् अत्र** इति. **इदं** बुद्धिस्थम्. अधिकरणाङ्गपञ्चकम् इति शेषः. ''**विषयो विशयश्चैव पूर्वपक्षः तथोत्तरम्, सङ्गतिश्चेति पञ्चाङ्गं शास्त्रे अधिकरणं स्मृतम्**'' इति लक्षणात्. विशयः संशयो अत्र पञ्चाङ्गतात्पर्यके अस्मिन् सूत्रे. (अथ सूत्रस्य स्वल्पाक्षरपदवत्त्वात् कथं तेन पञ्चाङ्गावयवरूपम् अधिकरणं बोद्धव्यम्? इति चेद्, मैवम्.) विचारे प्रसक्ते कर्तव्याकर्तव्य-संशयस्यापि प्रसक्तिः. एवंरीत्या पूर्वपक्षादीनां प्रसक्तौ पञ्चकतात्पर्येण बोधकत्वं सूत्रस्य बोध्यम्. **विचार्यते**. उपोद्घातसङ्गत्या इति शेषः. एतेन पञ्चावयवमध्ये चरमा सङ्गतिः दर्शिता. अथ साधारणधर्मवद् धर्मिज्ञानस्य संशय-जनकत्वाद्, विचाररूपधर्मिज्ञानं विना संशयो न भविष्यतीति विचाररूपं विषयं यत्

---

*()एतच्चिह्नान्तर्गतं शोधपत्रस्थम् इति ज्ञेयम्.

वेदान्तानां विचारः आरम्भणीयो न वा इति. किं तावत् प्राप्तम्? न आरम्भणीयः इति. कुतः?

साङ्गोऽध्येयस्तथा ज्ञेयो वेदः शब्दाश्च बोधकाः।।
निःसन्दिग्धं तदर्थाश्च लोकवत् व्याकृतेः स्फुटाः।।१।।

अर्थज्ञानार्थं विचारः आरम्भणीयः. तस्य च ब्रह्मरूपत्वात् तज्ज्ञाने पुरुषार्थो भवति इति न मन्तव्यम्, विचारं विनापि वेदादेव साङ्गाद् अर्थप्रतीतेः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

वाक्याद्, वेदान्तार्थः कथं सिध्येद्? इति प्रकृतवेदान्तार्थसिद्धेः अनुकूलत्वं विचारे अस्ति इति उपोद्घातसङ्गतिलाभाद् 'इदं'शब्देन एतावान् अर्थो बुद्धिस्थः प्रतिपाद्यतइति तमेव सर्वम् अर्थं प्रकटीकुर्वन्ति **वेदान्तानां विचारः आरम्भणीयो न वा** इत्यादिना. **किं तावत् प्राप्तम्?** कोटिद्वयमध्ये किं सिद्धम्? वाद्यभिप्रेतां पूर्वपक्षकोटिम् आहुः **न आरम्भणीयः** इत्यादिना. तत्र अनारम्भणे हेतुप्रश्नः **कुतः** इति. तत्र विनैव विचारं वेदार्थनिर्णयसम्भवरूपं हेतुम् आहुः **साङ्गो ध्येयः** इत्यादिना. **शब्दाश्च बोधकाः**. वैदिकशब्दाः स्वार्थबोधकसामग्रीसहिताः विचाररूपव्यासमीमांसां विनैव स्वार्थबोधकाः इति अर्थः. वैदिकशब्दानां शक्तिग्राहकं प्रमाणम् उपन्यस्यन्ति **निःसन्दिग्धम्** इत्यादिना. **लोकवद्** धातुप्रकृतिप्रत्ययादिशब्दानामिव इति अर्थः. **व्याकृतेः** व्याकरणात्. **स्फुटाः** तत्तद्धर्मावच्छिन्नशक्तिग्रहविषयाः. एवं निघण्टुनिरुक्तादितोऽपि बोध्याः.

उक्तकारिकार्थं स्फुटीकुर्वन्ति **अर्थज्ञानार्थम्** इत्यादिना. **तस्य च** वेदार्थस्य च इति अर्थः. **तज्ज्ञाने** ब्रह्मज्ञाने. **वेदादेव साङ्गाद्** अधीताद् इति शेषः. **अविहितं** केन

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

प्रथमम् अङ्गं तम् आहुः **वेदान्तानाम्** इति. संशयम् आहुः **न वा** इति. पूर्वपक्षम् आहुः **न आरम्भणीयः** इति. वेदान्तविचारस्य श्रुत्यर्थबोधे कारणत्वं **''वेदान्तविज्ञान–सुनिश्चितार्था''** (मुण्डकोप.३।२।६) इति श्रुत्या प्रतिपाद्यते इति आशयेन पृच्छति **कुतः?** इति.

कारिकया पूर्वपक्षं समर्थयति **साङ्गः** इति. **वेदः** इति पूर्वान्वयी. **व्याकृतेः** व्याकरणात्. कारिकार्थम् आहुः **अर्थ** इति. **तस्य च** वेदार्थस्य च. **तज्ज्ञाने** ब्रह्मज्ञाने सति इति अर्थः. **पुरुषार्थः** इति. **''ब्रह्मविदाप्नोति परम्''** (तैत्ति.उप.२।१) इति श्रुतिप्रतिपाद्यो मोक्षो भवति इति हेतोः ब्रह्म **न मन्तव्यं** न विचार्यम् इति अर्थः. ब्रह्मज्ञानं मोक्षसाधनं नतु ब्रह्मविचारः. तत्तु साङ्गवेदाध्ययने सति व्याकरणादेव भविष्यति इति

नच अर्थज्ञानम् अविहितम्, अविचारिताः च शब्दाः न अर्थं प्रत्याययन्ति इति वाच्यं, ज्ञेयश्च इति विधानात्.

‘‘गीती शीघ्री शीरःकम्पी तथा लिखितपाठकः।।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः’’(पाणि.शि.३२)

इति बाधोपलब्धिश्च. शब्दः चक्षुरादिवद् न सन्दिग्धार्थप्रतिपादकः. तदर्थश्च व्याकरणादिना निश्चीयते. यथा लौकिकवाक्ये तथा वेदेऽपि. नच तद्विरुद्धं निर्णेतव्यम्, अप्रामाणिकत्वप्रसङ्गात्. तस्माद् वेदार्थज्ञानार्थं विचारो न आरम्भणीयः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सम्पादनीयम्? कथं सम्पादनीयम्? किमर्थं सम्पादनीयम्? इति अंशत्रयविशिष्टभावनाविषयीभूतं न भवति इति अर्थः. **अविचारिताः** मीमांसा तर्कैः न निर्णीताः. ‘‘**अक्ताः शर्करा उपदधाति**’’ (तैत्ति.ब्राह्म.३।१२।५) ‘‘**सक्तूञ् जुहोति**’’ (तैत्ति.संहि.३।३।८) इतिवद् इति अर्थः. तत्र अर्थज्ञानविधिम् आहुः **ज्ञेयश्च** इत्यनेन. तथाच पदार्थज्ञानकरणिका गुरूपसत्यादिः इतिकर्तव्यताका इष्टफलिका भावना तया अर्थज्ञानस्य लब्धेः विज्ञानविधिसिद्धिः अन्यथानुपपत्तिप्रसूतार्थापत्या ससामग्रीकम् अर्थज्ञानसम्पादनम् आहुः **गीती** इत्यादिना. **बाधोपलब्धिः** अर्थज्ञानं विना वेदाध्ययने अधमत्वापत्तेः अर्थज्ञानं विना अध्ययनस्यैव असम्भवाद् अध्ययनविधेः बाधापत्तिः अतो अर्थज्ञानम् अर्थाक्षिप्तम् इति बोध्यम्. नच ज्ञानस्य संशयात्मकस्यापि सम्भवाद् विरुद्धकोट्यपसारणाय विचारः आवश्यकः इति वाच्यम् इति वदन्ति **शब्दे**त्यादिना. **न सन्दिग्धार्थप्रतिपादकः** ‘‘परोक्षं ज्ञानं निश्चयात्मकमेव’’ इति सिद्धान्ताद् न सन्दिग्धार्थप्रतिपादकः इति अर्थः. **तदर्थश्च** वैदिकशब्दार्थश्च. **आदि**शब्देन निघण्टुनिरुक्तादि ग्राह्यम्. **तद्विरुद्धं** व्याकरणादिविरुद्धम्. **निर्णेतव्यं** विचारेण निर्णेतव्यम्. **अप्रामाणिकत्वप्रसङ्गाद्** तादृशनिर्णयस्य अप्रामाणिकत्वप्रसङ्गाद् इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

भावः. ‘‘**स्वाध्यायो अध्येतव्यः**’’ (तैत्ति.आर.२।१५) इति विधिना अध्ययनमेव विहितं, न अर्थज्ञानम्. केवलं व्याकरणेन विना शब्दापि न अर्थबोधकाः भविष्यन्ति इति आशयेन आहुः **नच** इति. **बाधोपलब्धिः** इति. ‘‘**अधमे विधिः न प्रवर्तते**’’(   ) इति अध्ययनविधिबाधोपलब्धिः इति अर्थः. **न सन्दिग्धार्थप्रतिपादकः** इति. दूराद् दृष्टे उच्चैस्त्वविशिष्टे ‘‘अयं स्थाणुः वा पुरुषो वा’’ इति सन्देहे केनचिद् आप्तेन ‘‘अयं पुरुषः’’ इति शब्दप्रयोगे क्रियमाणे अयं पुरुषः इति निश्चयएव जायते इति भावः. **तद्विरुद्धम्.** व्याकरणविरुद्धम्.

स्याद् एतत्. न वेदार्थज्ञानमात्राय विचारः किन्तु ब्रह्मज्ञानाय, तस्य च आत्मरूपत्वात्, तस्य च अविद्यावच्छिन्नत्वात्, देहात्मभावदृढप्रतीतेः तदतिरिक्तस्य ब्रह्मणो अभावाद् न वेदमात्राद् असम्भावना-विपिरीतभावना-निवर्तकं ज्ञानम् उत्पद्यते. प्रत्युत देहात्मभावदृढप्रतीतेः श्रुतेः उपचरितार्थत्वं

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

एकदेशी स्वमतेन व्याससूत्रात्मकविचारस्य कर्तव्यताम् उपपादयति **स्याद् एतद्** इति. **एतद्** वक्ष्यमाणं **स्याद्** विचारप्रयोजकं स्याद्. **वेदार्थज्ञानमात्राय** वेदघटकपदानाम् अर्थज्ञानमात्राय इति अर्थः. **तस्य** ब्रह्मणः, **आत्मरूपत्वाद्** जीवात्मस्वरूपत्वाद्, **तस्य** जीवात्मनः, **देहात्मभावदृढप्रतीतेः** देहएव आत्मा इति दृढप्रतीतेः इति अर्थः. **तदतिरिक्तस्य** देहातिरिक्तस्य, **अभावाद्** विचारशून्यानां ज्ञानाभावाद्, **वेदमात्राद्** वेदघटकप्रत्येकपदार्थज्ञानमात्राद्, **असम्भावना ‘‘न तस्य कार्यं करणं च विद्यते’’** (श्वेता.उप.६।८), **‘‘एतस्माद् जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च, खं ज्योतिः वायुरापश्च पृथ्वी विश्वस्य धारिणी’’**(मुण्ड.उप.२।१।३), **‘‘अणोरणीयान् महतो महीयान्’’**(कठोप.१।२।२०) **‘‘समो नागेन समो मशकेन’’**(बृह.उप.१।३।२२) इत्यादिविरुद्धधर्माणां ब्रह्मणि असम्भावितत्वज्ञानरूपा **असम्भवाना, विपरीतभावना** सर्ववेदान्तानाम् एकवाक्यतया प्रामाण्यसिद्ध्यर्थम् **‘‘अथात आदेशो नेति नेति’’**(बृह. उप.२।३।६) इत्यनेन अपवादार्थम् अध्यारोपः. **‘‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलान्’’**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अत्र एकदेशी स्वमतेन सिद्धान्तं वक्ति **स्याद् एतद्** इति. **एतद्** अग्रिमरीत्या विचारकर्तव्यत्वं **स्यात्** तर्हि उपपद्यताम्. तस्य ब्रह्मणः विशेषणस्यैव ‘तच्’छब्देन परामर्शः. ‘‘पटोलपत्रं पित्तघ्नं नाडी तस्य कफापहा’’ इत्यत्र दर्शनात्. **तस्य** आत्मनः. अयं भावः एकदेशिना उच्यते यदि विचारो न क्रियते चेद्, वेदात् जीवात्मस्वरूपत्वं ब्रह्मणः इति ज्ञानं भविष्यति, जीवात्मनस्तु अविद्यावच्छिन्नत्वेन ‘‘मनुष्यो अहम्’’ इति ‘अहं’प्रत्ययेन देहएव आत्मप्रतीतिः दृढा भविष्यति, ततश्च अहं सप्तवितस्तिकायः, अल्पः, परममहत्परिमाणवद् अचिन्त्यगुणगणवद् ‘‘एतादृशं ब्रह्म न भवामि’’ इति **असम्भावना**, देहएव आत्मा इति **विपरीतभावना**याश्च निवृत्तिः न भविष्यति. देहाद् विलक्षणो नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभावः आत्मा इत्याद्यर्थप्रतिपादिकानां श्रुतीनां आरोपितार्थकत्वरूपौपचारिकत्वं स्तुत्यर्थत्वं वा कल्पयिष्यति इति विचारे क्रियमाणे निश्चयात्मकं ज्ञानं भविष्यति इति विचारः आवश्यकः.

स्तुतित्वं वा कल्पयिष्यति इति. मा एवम्.

अलौकिको हि वेदार्थो न युक्त्या प्रतिपद्यते ।।
तपसा वेदयुक्त्या तु प्रसादात् परमात्मनः ।।२।।

नहि स्वबुद्ध्या वेदार्थं परिकल्प्य तदर्थं विचारः कर्तुं शक्यः. ब्रह्म पुनः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

(छान्दो.उप.३।१४।१) इत्यादि अध्यारोपः ‘विपरीतभावना’शब्देन उच्यते. तस्याः विपरीतभावनायाः तत्वज्ञानदशायाम् अग्रे बाधनाद्, **देहात्मभावदृढप्रतीतेः** ‘‘अहं ब्राह्मणः काणः, सुखी, क्षुधितः’’ इत्यादिरूपायाः देहादीनाम् आत्मत्वेन दृढप्रतीतेः, **श्रुतेः** **‘‘नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावम्’’** (मैत्रा.उप.१।६) एवंविधादिश्रुतेः **उपचरितार्थत्वं** मिथ्यार्थप्रतिपादकत्वं, **स्तुतित्वं** सकलपदार्थानां ब्रह्मत्वेन प्रतीकोपासनायाः वेदोक्तत्वेन तस्याः तत्त्वज्ञानफलकत्वेन च उपासनार्थं **‘‘वाचं धेनुम् उपासीत’’** (बृहदा. उप.५।८।१) **‘‘धन्वन्निव प्रपासि’’**(ऋग्वेद १०।४।१) इत्यादिश्रुतीनामिव ‘‘तत्त्वमस्या’’दिवाक्यानामपि स्तुतित्वं वा मुक्त्यधिकारी कल्पयिष्यति इति अर्थः. **इति** हेतोः. प्रमाणमूर्धन्यवेदार्थस्य व्याससूत्रानुसारेण विचारे कृते अध्यारोपापवादाभ्यां सर्वस्य मिथ्यात्वे अवगते ‘‘तत्त्वमस्या’’दिवाक्यैः तत्वज्ञानं भविष्यति इति विचारः आवश्यकः इति भावः.

एकदेशिमतं दूषयन्ति **मा एवम्** इत्यादिना. **अलौकिकः** अलौकिकसाधनगम्यः. **युक्त्या** लौकिकयुक्त्या. **प्रतिपद्यते** ज्ञातुं शक्यते. वेदार्थज्ञानालौकिकसाधनानि आहुः **तपसा** इत्यादिना. **तपसा** **‘‘तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व’’** (तैत्ति.उप. ३।२) इत्युक्त-‘तपसा’ इति अर्थः. **युक्त्या** **‘‘न्यग्रोधफलमाहर’’**(छान्दो.उप.६।२।१) इत्याद्युक्तवैदिकयुक्त्या इति अर्थः. **प्रसादाद्** **‘‘भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपायः’’**(भाग.पुरा.७।९।९) इत्याद्युक्तप्रसादाद् इति अर्थः. स्वोक्तकारिकार्थं स्फुटीकुर्वन्ति **नहि** इत्यादिना. **स्वबुद्ध्या** वेदाप्रतिपाद्यया, **वेदार्थं परिकल्प्य** सर्ववेदानाम् एकवाक्यतासिद्ध्यर्थं वेदतात्पर्यविषयीभूतौ अध्यारोपापवादौ वेदार्थः इति परिकल्प्य इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

दूषयति **मा एवम्** इति. पूर्वपक्षी विचारकर्तव्यतां कारिकया साधयति **अलौकिको** इति. लौकिके अर्थे युक्त्यादिप्रसरः, अलौकिके अर्थे तपआदीनाम्.

कारिकार्थम् आहुः **न हि स्वबुद्ध्या वेदार्थं परिकल्प्य** इति. **‘‘अपाणिपादो जवनो गृहीता’’**(श्वेता.उप.३।१९) इति, **‘‘अस्थूलमनणुः’’**(बृह.उप.३।८।८) इति च उपनिषद्वाक्यं निर्विशेषब्रह्मप्रतिपादकम्. **‘‘यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते’’** (तैत्ति.उप.

यादृशं वेदान्तेषु अवगतं तादृशमेव मन्तव्यम्. अणुमात्रान्यथाकल्पनेऽपि दोषः स्यात्. **‘‘यो अन्यथा सन्तम् आत्मानम् अन्यथा प्रतिपद्यते, किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा’’**(महाभा.२५५।४), **‘‘नैषा तर्केण मतिरापनेया’’** (कठोप. १।२।९) इति श्रुतेश्च. नच विरुद्धवाक्यानां श्रवणात् तन्निर्धारार्थं विचारः, उभयोरपि प्रामाणिकत्वेन एकतरनिर्धारस्य अशक्यत्वात्, अचिन्त्यानन्त-

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अर्थः. **तदर्थम्** तयोः अध्यारोपापवादयोः निर्वाहार्थं, **विचारः** स्वकल्पितनिर्वाहार्थं सूत्रात्मको विचारः इति अर्थः. ननु ब्रह्मणि पूर्वोक्तरीत्या असम्भावनाविपरीतभावनानां सम्भवाद् ब्रह्मस्वरूपनिर्णयार्थमेव अध्यारोपापवादपूर्वको विचारः कर्तव्यः इत्यतः आहुः **ब्रह्म पुनः** इत्यादि. **यादृशम्** **‘‘अणोरणीयान्’’**(कठोप.१।२।२०) इत्याद्युक्तनानाप्रकारकैकधर्मिविशेष्यकज्ञानविषयीभूतं, **तादृशमेव** इति ‘एव’कारेण अन्यादृशाङ्गीकारव्यवच्छेदः. **अन्यथाकल्पने** वेदोक्ताद् अन्यथाकल्पने. दोषबोधिकां श्रुतिम् आहुः **‘‘यो अन्यथा’’**(महाभा.२५५।४) इत्यादिना, **एषा** श्रुतिवाक्येभ्यः सम्पन्ना. **तन्निर्धारार्थम्** विरुद्धवाक्यानाम् अर्थनिर्वाहार्थम्. **उभयोरपि** **‘‘आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वशः’’** (कठोप.१।२।२१) इत्यादिश्रुतिप्रतिपादितयोः विरुद्धत्वेन प्रतीतिगोचरयोः द्वयोरर्थयोः इति अर्थः. **एकतरः** उभयोः मध्ये एकमात्ररूपः इति अर्थः. ननु विरुद्धयोः एकधर्मिवृत्तित्वाङ्गीकारे गोत्वाश्वत्वयोरपि तथात्वापातः इत्यतः आहुः **अचिन्त्ये**त्यादि. तथाच, यतो अचिन्त्यानन्तशक्तिमान् अतः सर्वभवनसमर्थः, यतः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

३।१) इति उपनिषद्वाक्यं सविशेषब्रह्मप्रतिपादकम्. एवञ्च उभयोः एकवाक्यतासिद्ध्यर्थं किञ्चित् कल्पनीयम् इति स्वबुद्धिः. तया परिकल्प्यो यो वेदार्थः अध्यारोपापवादौ स्वीकृत्य विरोधपरिहाररूपो अर्थः तं परिकल्प्य तदर्थं विचारो न कर्तव्यः. अध्यारोपापवादयोः खण्डितत्वात्. इदञ्च श्रीमत्प्रभुचरणैः विद्वन्मण्डने विस्तरेण उक्तमिति अत्र उपरम्यते. विरुद्धयोः वाक्ययोः एकएव अर्थो मन्तव्यः इति आहुः **ब्रह्म** इति. **अणुमात्रे**ति स्वल्पमात्रेति अर्थः. **दोषः स्यात्**. श्रोतुः वक्तुरपि इति शेषः. श्रोतुः दोषम् आहुः **यो अन्यथा** इति. वक्तुः दोषम् आहुः **नैषा** इति. ‘मतिरपनेया’ इति अपपाठः. ‘मतिरापनेया’इत्येव पाठः. अर्थस्तु एकएव. वेदत्वात् पाठएव मुख्यः. विचारेण निर्धारो न भविष्यति इति आहुः **उभयोरपि** इति. ननु विरोधपरिहारस्य अशक्यत्वेऽपि ‘‘यावद् आशङ्कं तर्कानुसरणाद्’’ इति न्यायाद् विरोधपरिहारार्थं विचारः कर्तव्यः इत्यतः आहुः **अचिन्त्ये**ति. ननु मास्तु परब्रह्मणि विरोधः, परन्तु मन्दबुद्धीनाम्

शक्तिमतिः सर्वभवनसमर्थे ब्रह्मणि विरोधाभावात् च. अतएव उपनिषत्सु तत्तदुपाख्याने बोधाभावे औपाधिकबोधे च तपसएव उपदेशः. नच ‘तपः’शब्देन विचारः, तस्य पूर्वानाधिक्यात् तपएव.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सर्वभवनसमर्थो अतो विरोधाभाव इति अर्थः. गवाश्वादिस्तु न एवंविध इति तत्र विरोधएव इति भावः. **अतएव** वेदार्थब्रह्मणो लौकिकयुक्त्या निर्णयासम्भवादेव, **तत्तद् उपाख्याने** इत्यादि भृगु–वरुणसंवादे भृगोः बोधाभावे वरुणेन ‘‘**तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व**’’ (तैत्ति. उप.३।२) इति उक्तम्. एवं छान्दोग्ये इन्द्रप्रजापतिसंवादे इन्द्रस्य औपाधिकबोधे प्रजापतिना ‘‘**वस द्वात्रिंशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यम्**’’ (छान्दो.उप.८।७।३) इति **तपसएव उपदेशः** कृतो नतु लौकिकयुक्तेः इति अर्थः.

ननु ‘‘**तप आलोचने**’’ इति धर्माभिनिष्पन्नः ‘तपः’ पदोऽपि विचारार्थकएव इत्यतः आहुः **नच तपः** इत्यादि. **तस्य** यौगिक‘तपः’शब्दार्थविचारस्य, **पूर्वानाधिक्याद्** लौकिकयुक्तिरूपः पूर्वोक्तापेक्षया अतिरिक्तस्य असम्भवाद् इति अर्थः. **तपएव** रूढ्या वृत्या ‘तपः’शब्देन बोधितो अर्थो विचारातिरिक्ततया उक्तरूपएव ग्राह्यः इति अर्थः. **तपएव** इति ‘एव’कारेण निर्धारणार्थकत्वं ‘तपः’शब्दे बोधितम्. तेन छान्दोग्ये ‘‘**वस द्वात्रिंशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यम्**’’ (छान्दो.उप.८।७।३) इत्यस्य विचारार्थकता न सम्भवति इत्यपि बोध्यम्. एवञ्च एकत्र ब्रह्मबोधे तपोहेतुत्वसिद्धौ ‘तपः’शब्दप्रयोगस्थलेऽपि तदेव

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

एकधर्मिविशेष्यकं विरुद्धोभयप्रकारकं ब्रह्मज्ञानं निश्चयात्मकं विचारं विना कथं भविष्यति? इति चेद्, न, तपसैव सर्वकार्यसिद्धेः. ननु सर्वान्तर्गतं ब्रह्मज्ञानम् इत्यत्र किं प्रमाणम्? इत्यतः आह **अतएव** इति. **उपनिषत्सु** तैत्तिरीये छान्दोग्यादिषु. तैत्तिरीये भृगोः बोधाभावे ‘‘**तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व**’’(तैत्ति.उप.३।२) इति वरुणेन कृतः, छान्दोग्ये इन्द्रप्रजापतिसंवादे इन्द्रस्य औपाधिके देहएव आत्मा इति विपरीतबोधे जाते तपसएव उपदेशः कृतः. अत्र पूर्वपक्षी ‘‘तप आलोचने’’ इत्यनेन ‘तपः’पदस्य विचारार्थकत्वं स्वीकृत्य आग्रहणे शङ्कते **नच** इति. ‘‘तप आलोचने’’ इत्यत्र ‘‘**सर्वधातुभ्यो असुन्**’’ (उणादिसू.६२८) इत्यनेन तपः इत्यस्माद् असुन्, उकार–नकारयोः लोपः, रुत्व–विसर्गौ ‘तपः’ इति सिद्धम्. **पूर्वानाधिक्याद्** इति. अयं भावः, ब्रह्मणि परस्परविरुद्धानाम् अर्थानाम् उपनिषद्वाक्याद् प्रतिभानं भवति इति कृत्वा विचारेण अध्यारोपापवादिनः परमते, स्वमतेतु ब्रह्मणः सामर्थ्यप्रदर्शनेन वा विरोधपरिहारं कृत्वा वाक्यार्थः सम्पादनीयः. सच पूर्वमेव साङ्गवेदाध्ययनानन्तरं भविष्यति. गुरुसमीपगमनानन्तरं गुरुणा

नच उपाख्यानानां मिथ्यात्वम्. तथा सति सर्वत्रैव मिथ्यात्वं भवेत्, विशेषाभावात्. न हि अप्रामाणिकोक्ते विधौ वा उपाख्याने वा ब्रह्मस्वरूपे वा कस्यचिदपि विश्वासो यथा लोके. तस्माद् वेदे अक्षरमात्रस्यापि असत्यार्थ(ज्ञान)स्य अभावाद् वैदिकानां न सन्देहोऽपि, किं पुनः विरुद्धार्थकल्पना.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ग्राह्यं नतु विचारः इति अर्थः. ननु तपसो ब्रह्मज्ञानसाधनत्वम् उच्यते परम् उपाख्यानेषु उच्यते नतु तपसो ब्रह्मज्ञानसाधनताबोधकः कश्चिद् विधिः अस्ति. उपाख्यानानान्तु विद्यास्तावकत्वेन अर्थवादतया स्वार्थे प्रामाण्याभावाद् मिथ्यार्थप्रतिपादकत्वमेवेति तपसो ब्रह्मज्ञानासम्भवाद् वेदार्थब्रह्मज्ञानाय व्यासविचारः आवश्यकः इत्यतः आहुः **नच उपाख्यानानाम्** इत्यादि. **तथा सति** उपाख्यानानाम् अवास्तवार्थप्रतिपादकत्वरूपमिथ्यात्वाङ्गीकारे सति, **सर्वत्रैव** वेदवाक्यमात्रे इति अर्थः. **विशेषाभावाद्** ब्रह्ममूलकत्वातिरिक्तस्य वेदे प्रामाण्यप्रयोजकस्य अभावाद् तस्य च उपाख्यानेष्वपि अविशिष्टत्वाद् इति भावः. **विधौ “श्रोतव्यो मन्तव्यः”**(बृह.उप.२।४।५) इत्यादिरूपे. **उपाख्याने** श्वेतकेतूपाख्यानस्थत्रिवृत्करणनिरूपणादौ. **ब्रह्मस्वरूपे “सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म”** (तैत्ति.उप.२।१) “**निष्कलं शान्तम् अनवद्यम्**”(श्वेता.उप.६।१९) इत्यादिवाक्यप्रतिपादितब्रह्मस्वरूपे, **लोके** एकदा अप्रामाणिकशब्दप्रयोक्तृत्वेन निर्णीतपुरुषप्रयुक्तशब्दे, **वैदिकानां** वैदिकशब्दमात्रे प्रामाण्यवादिनां, **सन्देहोऽपि** वेदे अप्रामाण्यसन्देहोऽपि इति अर्थः. **विरुद्धार्थकल्पना** उपाख्यानानां मिथ्यार्थत्वकल्पना.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

विचारार्थकतपसः उपदेशे कृते पूर्वोक्तमेव उक्तं गुरुणा न अधिकं किञ्चिद् उक्तम् इति उपेक्षणीयत्वं स्याद् इति अयम् अर्थः पूर्वानाधिक्याद् इत्यनेन ध्वन्यते. **तपएव** इति. छान्दोग्ये इन्द्रस्य द्वादशशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यम् इत्यर्थक‘तपः’शब्दस्य उपदेशात्. ‘एव’कारेण विचारव्यवच्छेदः. ननु उपाख्यानानाम् अर्थवादरूपत्वेन स्तावकत्वाद् क्वचिद् अविद्यमानार्थ–बोधकत्वेन अप्रामाण्यमिति. कुतः? विद्यमानगुणानुवादः अविद्यमानगुणानुरूपो वा इति उभयोरपि स्तुतित्वाद् इत्यतः आहुः **नच** इति. न हि इति अर्थः. कुतः इत्यतः आहुः **तथा सति** इति. वेदैकदेशस्य अप्रामाणिकत्वे सर्वत्र विश्वासो गच्छति इति आहुः **न हि** इति. विश्वासः इत्यनेन अन्वितम्. **अप्रमाणिकोक्तेः** इति. उपाख्यानरूपे किञ्चिदंशे अप्रमाणिको यो वेदः तदुक्तः इति अर्थः. इदञ्च विशेषणं विध्यादित्रये अन्वितम्. **यथा लोके** इति. प्रामाणिकपुरुषस्य किञ्चिदंशे प्रामाण्यापगमे

विद्यासु च तदश्रुतेः. यदि वेदार्थज्ञाने विचारस्य उपयोगः स्यात्, अङ्गत्वेन व्याकरणस्येव विद्यासु श्रवणं स्यात्. स्वातन्त्र्ये च पुराणादेरिव मीमांसायापि प्रकारभेदेन प्रतिपादकत्वं स्यात्. ‘‘**तन्तु औपनिषदं पुरुषं पृच्छामि**’’ (बृहदा.उप. ३।९।२६) इति तु तेषां निषेधः. अन्यथाज्ञानं न उपनिषदुक्तं फलं समर्पयति, तस्माद् न आरम्भणीयएव ब्रह्मविचारः. अनेन धर्मविचारोऽपि आक्षिप्तएव. नहि एतद् निराकर्तुः सो अयम् अतिभारः इति पूर्वः पक्षः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

विचारस्य अकर्तव्यतायां हेत्वन्तरम् आहुः **विद्यासु** इत्यादि. **विद्यासु** चतुर्दशविद्यान्तःपातिमुख्यवेदाङ्गेषु षट्सु इति अर्थः. **श्रवणं स्याद्** ‘‘**शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम्**’’ इति षडङ्गानि उक्त्वा ‘‘**तस्मात् साङ्गम् अधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते**’’ (पाणि.शि.४२) इतिवद् व्याससूत्ररूपविचारस्यापि ब्रह्मज्ञान-साधकत्वेन अङ्गरूपविद्यासु श्रवणं स्याद् इति अर्थः. **स्वातन्त्र्ये च** उपनिषदतिरिक्त-पुराणादिप्रकारेण व्यासविचारस्य ब्रह्मज्ञानोपयोगित्वे च इति अर्थः. **प्रकारभेदेन** अनौपनिषज्-ज्ञानसाधनत्वेन. **प्रतिपादकत्वं** व्याससूत्राणां ब्रह्मप्रतिपादकत्वम्. **‘तु’शब्देन ‘‘तन्तु’’** इति ‘तु’शब्देन तेषाम् उपनिषद्भ्यः सोपस्कराभ्यो अतिरिक्त-साधनानां **निषेधः** ब्रह्मप्राप्तिसाधनत्वनिषेधः. **अन्यथाज्ञानम्** उपनिषदतिरिक्तयोग-साङ्ख्यपुराणादिसाधनजन्यं ज्ञानम्. **फलं** परमानन्दावाप्तिरूपं फलम्. **तस्माद्** साङ्गवेदाध्ययनेन वेदार्थब्रह्मज्ञानस्य सम्भवाद् **ब्रह्मविचारः** व्याससूत्ररूपो ब्रह्मविचारः. **अनेन** साङ्गवेदाध्ययनादेव कर्मानुष्ठानस्यापि सम्भवेन **एतद्** उत्तरमीमांसाशास्त्रं, **सः** पूर्वमीमांसानिराकरणरूपः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सर्वत्रैव गच्छति इति अर्थः. **विद्यासु** वेदाङ्गविद्यासु. अन्यथा मीमांसायाः चतुर्दशसु विद्यासु पाठाद् तदश्रुतेः इति असङ्गतम्. **तदश्रुतेः** विचाराश्रुतेः. तदेव आह **यदि** इति. ननु मास्तु अङ्गत्वेन उपयोगः पार्थक्येनतु चतुर्दशविद्यासु श्रवणाद् उपयोगो अस्तु इत्यतः आह **स्वातन्त्र्ये** इति. **प्रकारभेदेन** इति. उपनिषत्प्रतिपाद्यपुरुषबोधकप्रकारभिन्नप्रकारेण इति अर्थः. ननु प्रकारभेदे को दोषः ? इत्यतः आहुः **तन्तु** इति. **ब्रह्मविचारः**. उत्तरमीमांसा इति अर्थः. अनेन ‘‘**स तृतीयम् अतप्यत, स एतं दीक्षितवादम् अपश्यद्**’’ (   ) इत्यादौ तपसएव उपदेशेन इति अर्थः. गुरोः मतनिराकर्तुः शिष्यमतनिराकरणे सङ्कोचो नास्ति इति **अतिभारः** इत्यनेन सूचितम्. व्याससूत्रात् पूर्वम् अङ्गैरेव सन्देहनिवृत्तिः यथा

सिद्धान्तस्तु : **सन्देहवारकं शास्त्रं बुद्धिदोषात् तदुद्भवः।।**
विरुद्धशास्त्रसम्भेदाद् अङ्गैश्चाशक्यनिश्चयः।।।३।।
तस्मात् सूत्रानुसारेण कर्तव्यः सर्वनिर्णयः।।
अन्यथा भ्रश्यते स्वार्थाद् मध्यमश्च तथादिमः।।४।।

परम्परया पाठवद् अर्थस्यापि गुरुमुखादेव श्रवणेऽपि मन्द-मध्यमयोः सन्देहो भवेत् समानधर्मदर्शनात् पदादिपाठवत्. तत्र यथा लक्षणानाम् उपयोगः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

शास्त्रं मीमांसारूपं शास्त्रम्. **बुद्धिदोषाद्** अवैदिकशास्त्रसिद्धान्तावगाहित्वरूपबुद्धिदोषात्. **तदुद्भवः** सन्देहोद्भवः. **सम्भेदाद्** पदार्थनिर्णये साङ्कर्यात्. **सर्वनिर्णयः** साधनफलाधिकारिसम्बन्धेत्यनुबन्धचतुष्टयादिनिर्णयः. **अन्यथा** सूत्रानुसारिविचाराकरणेन. **मध्यमः** मध्यमाधिकारी. **आदिमः** हीनाधिकारी. **सन्देहो भवेद्** वेदार्थे च सन्देहो भवेद्. **समानधर्मदर्शनाद्** पाठे परम्परारूपः समानधर्मदर्शनात्. अर्थेतु ‘‘**अक्ता शर्करा उपदधाति**’’(तैत्ति.ब्राह्म.३।१२।५) इत्यत्र घृततैलवसास्वञ्जन–साधनत्वरूपसमानधर्मदर्शनाद् इति बोध्यम्. **पदादिपाठवद्** इति. तथाहि ‘‘**देवाय ते यजमानाय**’’(तैत्ति.संहि.३।५।५।३) ‘‘**शीकाय ते स्वाहा**’’(तैत्ति.संहि.७।५।११)इति संहितापरम्परापाठः. ‘‘**देवय ते शीकय ते**’’ इति पदपरम्परापाठः. एवम् अत्र ह्रस्वत्व–दीर्घत्वयोः यथा सन्देहः तथा उपनिषत्स्वपि ‘‘**अपाणिपादोऽजवनो ग्रहीता**’’ (श्वेता.उप. ३।१९) इत्यादिविरुद्धधर्मदर्शनस्थले ब्रह्मसम्बन्धित्वरूपसमानधर्मदर्शनाद् एवंविधम् एवंविधं वा ब्रह्म इति सन्देहो भवेद्. **तत्र** संहितापदपाठनिश्चयस्थले ‘‘**केनाक्ता शर्करा**’’

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तथा इदानीमपि भविष्यति इति पूर्वपक्षिरहस्यम्. सिद्धान्तम् आहुः **सिद्धान्तः** इत्यादि. ननु ‘‘घटम् आनय’’ इत्युक्ते लोके सर्वोऽपि घटानयनं करोति नतु पटानयनम्, एवं वेदेऽपि सन्देहो न भविष्यति इत्यतः आहुः **बुद्धिः** इति. बुद्धिदोषाद् अनेकशास्त्रेषु बुद्धिप्रसरात्. ननु अङ्गैः निर्णयो भविष्यति इत्यतः आहुः **विरुद्ध** इति न्यायमीमांसादि–मेलनात्. **निर्णयः** इति पूर्वोत्तरकाण्डाद् निर्णयः इति अर्थः. **मध्यमः** किञ्चिद् बुद्धिमान्. **तदादिमः** मन्दः इति अर्थः. कारिकार्थम् आहुः **परम्परया** इति. **समाने**ति. साधारणधर्मदर्शनाद् इति अर्थः. **यथा लक्षणानाम्** इति. प्रातिशाख्यादीनाम् इति अर्थः. तत्र हि वेदे तैत्तिरीयशाखायां तृतीयाष्टके पठ्यते ‘‘**देवायते यजमानाय शर्म**’’ (तैत्ति. संहि.३।५।५।३) इति. संहितायां ‘व’कारे दीर्घः पठ्यते. पदपाठकाले ‘देवयते’ इत्यत्र ‘व’कारे ह्रस्वः पठ्यते. अत्र सन्देहे प्रातिशाख्यसूत्रम् ‘‘**अथादावुत्तरे विभागे ह्रस्वं**

एवमेव मीमांसायापि. तदुक्तं

असन्दिग्धेऽपि वेदार्थे स्थूणाखननवन् मतः।।
मीमांसानिर्णयः प्राज्ञे दुर्बुद्धेस्तु ततो द्वयम्।।५।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्यत्र च, **लक्षणानां** शाखाव्याकरणादीनां जैमिनिसूत्राणां च इति अर्थः. **एवमेव** व्याकरणादिप्रकारेण जैमिनीमीमांसाप्रकारेण च इति अर्थः. **मीमांसायाः** व्यासमीमांसायाः सूत्रात्मकविचाररूपायाः. **तदुक्तं** वेदान्तार्थसन्देहनिराकरणहेतुत्वम् उक्तम्. **मतः** इति **प्राज्ञे** अन्वेति. **मीमांसानिर्णयः** व्याससूत्रात्मकः निर्णयसम्पादकः शब्दसमुदायः. **दुर्बुद्धेः** हीनाधिकारीणो मध्यमाधिकारिणश्च. **ततः** व्यासमीमांसातः. **द्वयं** वेदान्तार्थे सन्देहनिवृत्तिः वेदान्तार्थनिश्चयश्च इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

व्यञ्जनपरः'' (तैत्ति.प्राति.३।१) इति अधिकारसूत्रम्. अत्र भाष्यम्. आदौ पदादौ उत्तरे पदान्ते च वर्तमानः संहितायां यो दीर्धः असौ पदविभागे पदसमये व्यञ्जनपरः सन् ह्रस्वत्वम् आपद्यते. व्यञ्जनपरत्वं यथा संहितास्थं ज्ञेयं, व्यञ्जनम् अस्मात् परम् इति व्यञ्जनपरः इति. अपरम् उदाहरणसूत्रं ''**देवाशीकासुम्नाश्वर्त्तावयुना हृदयाकाशाद् वा**''(तैत्ति.प्राति.३।२). अत्र भाष्यम्. ''देवाशीका इत्यादिषु ग्रहणे अवग्रहेषु अन्त्यस्वरो विभागे ह्रस्वत्वं आपद्यते, यथा देवायते इत्यादि. यथा वा ''शीकायते स्वाहा'', शीकायते इति शीकऽयते स्वाहा. इदं सप्तमाष्टके. एवं सुम्नायन्तो हवामहे इत्यादिषु लक्षणानां यथा उपयोगः तथा मीमांसायापि. यथा 'आकाश'पदस्य भूताकाशपरत्वं वा चिदाकाशपरत्वं वा इति सन्देहे ''**आकाशः तल्लिङ्गाद्**'' (ब्रह्म.सू. १।१।२१) इति सूत्रात् चिदाकाशपरत्वं निर्णीयते; यथा वा विरुद्धवाक्यैः कर्तृत्व-कर्तृत्वाभावसमानाधिकरणं ब्रह्मत्वम् इति शाब्दबोधानन्तरं कर्तृत्वाकर्तृत्वविषयकसन्देहे सर्वभवनसमर्थे ब्रह्मणि विरोधाभावप्रतिपादनेन निर्णयः इति अर्थः.

अस्मिन् अर्थे सम्मतिं दर्शयन्ति **तदुक्तम्** इति. **असन्दिग्धेऽपि** इति. इदं वाक्यं श्रीमदाचार्यचरणैः निबन्धे सर्वनिर्णये उक्तम्, टीकायां च व्याख्यातं तैरेव. पाठदशायां सत्यपि न सन्देहे, कालान्तरे सन्देहो भविष्यति इति लक्षणवद् मीमांसाकरणम्. तत्र लौकिको दृष्टान्तः **स्थूणाखननवद्** इति. स्थूणा निखातापि पुनः उद्धृत्य निखात्यते, तथा निःसन्दिग्धोऽपि सन्देहम् आपाद्य दाढ्र्याय निरूप्यते मीमांसानिर्णयकारैः. इदम् उत्तमान् प्रति तेषां प्रयोजनं सफलं भवति. मन्द-मध्यमान् प्रतितु द्वयम् इति. सन्देहाभावो दाढ्र्यं च.

तथाच निर्णये येन-केनचिद् वक्तव्ये हरिः स्वयं व्यासो विचारं चिकीर्षुः तत्कर्तव्यतां बोधयति ‘‘ब्रह्मजिज्ञासा कर्तव्या’’ इति व्यासोक्तत्वादपि कर्तव्यता. ‘कर्तव्य’पदाध्याहारे स्वातन्त्र्यं न भवति. अन्यथा **‘‘अथ योगानुशासनम्’’** (योगसू.१।१) इतिवत् स्वतन्त्रता स्यात्. तथाच ज्ञानानुपयोगः. तथाहि **‘‘तन्तु औपनिषदं पुरुषं पृच्छामि’’** (बृहदा.उप.३।९।२६) इति केवलोपनिषद्वेद्यं ब्रह्म, न शास्त्रान्तरवेद्यम्. तद् यदि मीमांसा स्वतन्त्रा स्यात् तज्जनितं ज्ञानं न ब्रह्मज्ञानं भवेत्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

निर्णये वेदान्तार्थनिर्णये. **तत्कर्तव्यतां** विचारकर्तव्यताम्. **कर्तव्यता** निर्णीतवेदान्तार्थस्यापि सन्ध्यावन्दनवद् विचारकर्तव्यता आवश्यकी इति अर्थः. एतेन अग्रे कर्तव्यवेदान्तविचारे प्रथमाधिकरणस्य उपोद्घातसङ्गतिः प्रदर्शिता. **‘हरि’**पदोपादानेन च तपःप्रभृतिसाधनानां कालाभावाद् एतद्विचारादेव उद्धारोऽपि सूचितः. यथाश्रुतसूत्राद् विचारकर्तव्यता न प्रतीयते इति केषाञ्चिद् अभिप्रेतम्.

सूत्रे ‘कर्तव्य’पदाध्याहारम् उपपादयन्ति **कर्तव्यपद...**इत्यादिना. **स्वातन्त्र्यं न भवति** इति. तथाच अध्याहारदोषसत्त्वेऽपि विध्यर्थकर्तव्यप्रत्ययघटित‘कर्तव्य’-पदाध्याहारे कृते विचारस्य वैधत्वं स्याद्. वैधश्च विचारो वैदिकः इति विचारस्य उपनिषदुक्तफलसमर्पकता भविष्यति नतु योगपुराणादीनामिव अनौपनिषत्फलसमर्पकता इति अर्थः. **अन्यथा** ‘कर्तव्य’पदाध्याहाराभावे. **तथाच** स्वतन्त्रतासत्त्वे च, **ज्ञानानुपयोगः** औपनिषज्ज्ञानानुपयोगः. एतदेव उपपादयन्ति **तथाहि** इत्यादिना.

अथ अध्याहारपक्षे दोषाद् विचारस्य सौत्राक्षरैरेव कर्तव्यताम् उपपादयितुम् आहुः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सूत्रार्थम् आहुः **तथाच** इति. विचारस्य आवश्यकत्वे च इति अर्थः. इदं महत्कार्यं केन कर्तव्यम्? इति आकाङ्क्षायाम् आहुः **हरिः** इति. **व्यासोक्तत्वाद्** इति. जैमिन्युक्त-धर्मविचारइव इति ‘अपि’कारार्थः. ननु सूत्रे ‘कर्तव्य’पदं नास्ति, दोषाद् अध्याहारः कर्तुं न शक्यते, इति आकाङ्क्षायाम् आहुः **‘कर्तव्य’पदे**त्यादि **भवेद्** इत्यन्तम्. अयं भावः ‘कर्तव्य’पदाध्याहारे तव्यप्रत्ययस्य विधित्वाद् इष्टसाधनता-बोधकत्वम्. इष्टं च **‘‘औपनिषदं पुरुषं पृच्छामि’’**(बृहदा.उप.३।९।२६) इति उपनिषत्प्रतिपाद्यं ब्रह्मज्ञानम्. तत्तु मीमांसाप्रतिपाद्यं न भवति इति परम्परया साधनत्वं मीमांसायाः. अस्वातन्त्र्यं गुणः. स्वातन्त्र्ये च चित्तवृत्तिनिरोधबोधकयोगवद् ब्रह्मणि अबोधकत्वाद् दोषः. एतत्परिहारार्थमेव ‘कर्तव्य’पदाध्याहारः.

अथवा अध्याहारकरणापेक्षया ‘अथ’शब्दएव अधिकारे व्याख्येयः. वेदाध्ययनानन्तर्यन्तु सिद्धमेव. नहि अनधीतएव विचारम् अर्हति. तत्र एतत् स्यात्. स्वतन्त्रता इति, तत्र प्रतिविधास्यामः. वेदार्थब्रह्मणो वेदानुकूलविचारः इति. किम् अत्र युक्तम्? व्याख्यानम् इति, व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तेः. यथा

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अथवा इत्यादि. **अधिकारे** अधिकर्तव्यः इत्यस्मिन् अर्थे. ननु ‘अथ’शब्दस्य अधिकारार्थत्वे वेदाध्ययनानन्तर्यार्थरूपाथशब्दार्थस्य अलाभाद् अनधीतवेदैः शूद्रादिभिरपि वेदान्तविचारः कर्तव्यो भवेद् इत्यतः आहुः **वेदाध्ययन**...इत्यादि. अत्र ‘अथ’शब्दस्य अधिकारार्थत्वपक्षेऽपि कर्तव्यतारूपविध्यर्थस्य लाभेऽपि स्वतन्त्रतादोषः परिहृतएव. अतएव “**अथ शब्दानुशासनम्**”(पाणि.महाभा.१।१।१) इत्यत्र ‘अथ’शब्दस्य प्रस्तावरूपो ‘अधिकार’पदवाच्यकर्तव्यतारूप अर्थकरणेऽपि व्याकरणस्य न अवैदिकार्थोपयोगित्व–लक्षणं स्वातन्त्र्यं तथा “**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**” (ब्रह्मसू.१।१।१) इत्यत्रापि न स्वातन्त्र्यसम्भावना. तथापि “तुष्यतु दुर्जन” इति न्यायेन अभ्युपगमवादेन आशङ्काम् आहुः **तत्र** इत्यादि. **तत्र** कर्तव्यपदाध्याहाराभावपक्षे. **एतद्** वक्ष्यमाणं स्वतन्त्रतारूपं दूषणम्. **तत्र** दूषणनिमित्तं, **प्रतिविधास्यामः** समाधानं करिष्यामः. समाधानमेव आहुः **वेदार्थ**... इत्यादिना. **वेदार्थब्रह्मणः** सम्बन्धी ज्ञापकः वेदानुकूल–विचारः वेदार्थज्ञानोपयोगि यावत्कारणोपजीव्यः वास्तववेदार्थब्रह्मनिर्णायको विचारः इति समुदितार्थः. इत्थञ्च वेदतदङ्गानाम् अध्येतुरेव विचाराधिकारः इति अर्थस्य ‘विचार’पदव्याख्यानादेव लाभाद् न स्वतन्त्रतादोषगन्धोऽपिइतिफलितम्. **अत्र**विचारस्यवैदिकत्वस्थापननिमित्तम्. **किंयुक्तम्?** ‘कर्तव्य’पदाध्याहारो ‘अथ’शब्दस्य अधिकारार्थत्वरूपव्याख्यानं वा इति विप्रतिपत्तिः. तत्र सिद्धान्तम् आहुः **व्याख्यानम्** इति. व्याख्यानपक्षे सम्मतिम् आहुः **व्याख्यानतः**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अस्मिन् पक्षे वक्ष्यमाणदोषात् पक्षान्तरम् आहुः **अथवा** इति. **अधिकारे** प्रारम्भे. इदं पूर्वमेव व्याख्यातम्. आनन्तर्यार्थकत्वं खण्डयन्ति **वेद** इति. अधिकारपक्षे स्वातन्त्र्यदोषम् अनूद्य परिहरन्ति **तत्र** इति. **तत्र** अधिकारपक्षे, एतद् दूषणम्. किं दूषणम्? इत्यतः आहुः **स्वतन्त्रता** इति. दूषणविधानस्य प्रतिविधानप्रतिज्ञाम् आहुः **प्रतिविधास्यामः** इति. इदानीमेव दूषणपरिहारं कुर्मः. परिहारप्रकारम् आहुः **वेद** इति. वेदानुकूलः इत्यनेन स्वतन्त्रतापरिहारः. ननु पक्षद्वये दूषणाभावाद् किं युक्तम्? इत्यतः आहुः **व्याख्यानम्** इति. ‘अथ’शब्दार्थपक्षएव युक्तः इति अर्थः. कुतः? इत्यतः आहुः

कर्मणि दर्शपूर्णमासौतु पूर्वं व्याख्यास्यामः **‘‘अथातो दर्शपूर्णमासौ व्याख्यास्यामः’’**(आप.श्रौ.सू.१।१) इति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इति. ‘‘**व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तेः** न हि सन्देहाद् अलक्षणम्’’(परिभाषेन्दुशे.) इति. तत्र दृष्टान्तम् आहुः **यथा** इत्यादि. तथाच, **‘‘दर्शपूर्णमासौतु पूर्वं व्याख्यास्यामः’’** (आप.श्रौ.सू.१।१) इति व्याख्येयं निरूपितम्. तत्र ‘तु’शब्देन पशुसोमादीनां पूर्वनिरूपणस्य व्यवच्छेदः क्रियते. तत्र किं गमकम्? इति आकांक्षायां ‘अथातः’शब्दयोः व्याख्यानम् इत्यतो अग्रे **अथातः** इति उक्तम्. व्याख्यानन्तु यतो **दर्शपूर्णमासौ, अथ** पूर्वम्, अधिक्रियते अनुष्ठीयते, **अतो** हेतोः, पूर्वं **व्याख्यास्यामः** इति ‘अथ’शब्दस्य अधिकारार्थः व्याख्यानरूपमेव समाधानं कृतम्. नतु किञ्चित तत्र अध्याहृतम् इति अर्थः. एवम् अत्रापि ‘अथ’शब्दव्याख्यानादेव उपपत्तौ अध्याहारो निरर्थकः इति अर्थः. ‘‘**दर्शपूर्णमासौ व्याख्यास्यामः**’’ इति व्याख्याप्रतिज्ञा.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

व्याख्यानतः इति. ‘‘**व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिः न हि सन्देहाद् अलक्षणम्**’’ (परिभाषेन्दुशे.) इयं प्राचीनवैयाकरणतन्त्रे वाचनिका, पाणिनितन्त्रे ज्ञापकसिद्धा परिभाषा. अस्य अर्थः, **विशेषस्य** अन्यतराद्यर्थरूपस्य. व्याख्यानाद् शिष्टकृतात्. **प्रतिपत्तिः** निश्चयः. **हि** यतः **सन्देहाद्** शास्त्रम् **अलक्षणम्** अननुष्ठापकम्, तथा न, नो चेद् सूत्रं व्यर्थं स्यात्. शास्त्रस्य निर्णयजनकत्वौचित्याद् इति. अत्र उदाहरणम् ‘‘**अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः**’’ (पाणि.सू.१।१६९) इदं सूत्रम्. अत्र ‘‘**अण् परेण णकारेण पूर्वेण वा**’’ इति सन्देहे सूत्रं व्यर्थं स्यात्. अतः शिष्टैः व्याख्यातं ‘‘परेण णकारेण’’ इति. एवम् अत्रापि ‘अथ’शब्दः पाणिनिभाष्यकारैः अधिकारे व्याख्यातइति प्रारम्भार्थकत्वमेव ‘अथ’शब्दस्य इति दिक्. ऋग्वेदे यजुर्वेदे च कर्मप्रतिपादके कल्पसूत्रे उदाहरणार्थं व्याख्यानं दर्शयन्ति **यथा** इति. प्रथमतः ऋग्वेदसूत्रे उदाहरणं दर्शयन्ति **कर्मणि दर्शे**ति. यथा अत्र ‘तु’शब्देन पशु-सोमादीनां पूर्वं निरूपणस्य व्यवच्छेदः. ‘अथ’शब्दस्य अधिकारार्थत्वात्. व्याख्यानरूपमेव समाधानं कृतं, नतु किञ्चित् तत्र अध्याहृतं तद्वद् इति अर्थः. दर्शपूर्णमासयोः सर्वयागानां प्रकृतित्वाद् प्रथमतः तस्यैव विधानं वक्तुं ‘‘**पूर्वं व्याख्यास्यामः**’’ इति उक्तम्. व्याख्यानदृष्टान्तार्थं यजुर्वेदान्तर्गता-पस्तम्बसूत्रम् आह **अथात** इति.

ननु अध्याहारस्य सर्वसम्मतत्त्वाद् सएव कुतो न आद्रियते इत्यतः तत्र स्वमते

अथवा एतर्हि इमानि सिध्यन्ति प्रयोजनानि. अधिकाकांक्षा न भवेत्. अध्याहारश्च पुरुषार्थश्च सिध्येद्, उच्छेदश्च न भवेद् इति. कथम्? **‘अथ’**शब्दो अर्थचतुष्टये वर्तते : [१]मङ्गले [२]अधिकारे [३]आनन्तर्ये [४]अर्थान्तरोपक्रमे च. तत्र

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इतः परं व्याख्यानपक्षे गुणसमूहम् अध्याहारपक्षे दोषसमूहं च वक्तुम् आहुः **अथवा** इत्यादि. **एतर्हि** अस्मिन् व्याख्यानपक्षे. **इमानि** वक्ष्यमाणानि. **अधिकाकांक्षा** ‘अथ’शब्दस्य आनन्तर्यरूपे अर्थे वाच्ये सति वेदार्थविचारे वेदाध्ययनानन्तर्यस्य अन्यथानुपपत्तिप्रमाणेनैव लाभे अनन्यलभ्यस्यैव शब्दार्थत्वाद् ‘अथ’शब्देन कस्य आनन्तर्यं बोधनीयम्? इति अधिकाकांक्षा इति अर्थः. **न भवेद्** सा अधिकाकांक्षापि ‘अथ’शब्दस्य अधिकारार्थत्वपक्षे न भवेद् इति अर्थः. **अध्याहारश्च** ‘कर्तव्य’-पदाध्याहाररूपदोषश्च न भवेद् इति अर्थः. **पुरुषार्थः** मोक्षरूपः पुरुषार्थः. **उच्छेदः** ‘अथ’शब्दस्य आनन्तर्यरूपे अर्थे वाच्ये यस्य आनन्तर्यं व्यासविचारे वक्तव्यं तस्य अलाभे विचारोच्छेदः इति अर्थः. **न भवेद्** ‘अथ’शब्दस्य अधिकारार्थत्वपक्षे न भवेद् इति अर्थः. ‘अथ’शब्दस्य अधिकारार्थत्वपक्षे उक्तानि दूषणानि केन प्रकारेण न भवन्ति? इत्यत्र प्रकारं पृच्छति **कथम्** इति. **मङ्गले “ॐकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा, कण्ठं भित्वा विनिष्क्रान्तौ तेन माङ्गलिकावुभौ”** (   ) इति वाक्याद् मङ्गले. अथ **अधिकारे “अथ शब्दानुशासनम्”** इत्यादौ. **आनन्तर्ये** “भुक्त्वा अथ गमिष्यामि” इत्यादौ. **अर्थान्तरोपक्रमे** यथा आदौ किञ्चिद् उक्त्वा “अथ इदम् उच्यते” इत्यादौ. **श्रुतिमात्रेण** ‘अथ’शब्दश्रुतिमात्रेण. **पूर्वोक्तस्य अभावाद् “अथातो ब्रह्मजिज्ञासा”** इत्यत्र पूर्वोक्तार्थान्तरस्य अभावाद् इति अर्थः. **तत्कल्पनम्** ‘अथ’-शब्दस्य अत्रत्यस्य

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

भूषणानि परमते दूषणानि आहुः **अथवा** इति. **अर्थचतुष्टये वर्तते** इति. अत्र सूत्रे सम्भावितो वर्तते इति अर्थः. एतेन **“मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येषु अथो अथ”** (अम.को.३।३।२४७) इति. **“अथाथो संशये स्याताम् अधिकारे च मङ्गले, विकल्पानन्तरप्रश्न-कार्त्स्न्यारम्भसमुच्चयः”** (   ) इति कोशोक्त्या न विरोधः. अध्याहारश्च इति न भवेद् इति पूर्वेण अन्वयः. अर्थान्तरस्य इति पूर्वं किञ्चिद् उक्त्वा “अथ इदम् उच्यते” इति **अर्थान्तरस्य** इति अर्थः. **अधिकाकाङ्क्षा न भवेद्** इत्यस्य प्रयोजनम् आहुः **आनन्तर्ये तु** इति **सन्न्यासानुपपत्तिश्च** इति अन्तम्. मीमांसकमते आक्षिप्तस्यापि शाब्दबोधे मानं स्वीक्रियते. एवञ्च वेदाध्ययनं विना विचारो न भवति इति अनुपपत्त्या अध्ययनानन्तर्यम् आक्षिप्यते इति आक्षेपादेव तस्य लाभे ‘अथ’शब्देन

श्रुतिमात्रेणैव मङ्गलसिद्धेः अर्थान्तरस्य च पूर्वोक्तस्य अभावाद् न अत्र तत्कल्पनम्. अथ अवशिष्यते आनन्तर्ये वा अधिकारे वा इति. आनन्तर्येतु अध्ययनस्य स्वतःसिद्धत्वाद् अधिकाकांक्षा भवति. तथा सति तदभावाद् न विचारः सिध्येत्.

तथाहि, न तावद् धर्मविचारानन्तर्यम्, विपर्ययसम्भवात्. नच पाठतो नियमः. तत्रापि तथा. नच आचाराद् व्यवस्था, तत्रापि अनियमसम्भवात्,

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अर्थान्तरोपक्रमार्थत्वकल्पनम्. **स्वतःसिद्‌धत्वाद्** अन्यथानुपपत्तिसिद्‌धत्वाद्. **अधिकाकांक्षा** ‘अथ’शब्दस्य अधिकाकांक्षा. **तथा सति** इत्यादि. तथाच इतरेषाम् अर्थानाम् असम्भवस्य पूर्वम् उक्तत्वाद् आकांक्षितस्य अधिकाररूपार्थस्यापि अनङ्गीकारे ‘अथ’शब्दो अनर्थकएव स्यात्. तथा सति वाक्यस्य विचारकर्तव्यताबोधकत्वमपि न स्याद् इति अर्थः. अधिकारमात्रार्थत्वस्थापनार्थम् अन्यार्थतां दूरीकुर्वन्ति **तथाहि** इत्यादिना. **धर्मविचारानन्तर्यं** कर्मविचारानन्तर्यम् ‘अथ’शब्दार्थः इति अर्थः. **विपर्ययसम्भवाद्** ब्रह्मविचारानन्तरं कर्मविचारः इत्यपि सम्भवात्. ‘‘**अथ हृदयस्य अग्रे अवद्यति अथ वक्षस**’’(तैत्ति.संहि.६।३।१०।१०) इतिवद् क्रमनियामकवाक्यस्य अभावाद् इति अर्थः. **पाठतः** पूर्वं वेदे धर्मः पठ्यते अनन्तरं ब्रह्म इति. तदेव ‘अथ’शब्दस्य धर्मानन्तर्यार्थत्वे नियामकम् इति अर्थः. **तत्रापि** पाठेऽपि तथा, विपर्यये बाधकाभावाद् इति अर्थः. ननु पाठक्रमे नियामकाभावाद् अस्तु तथा तथापि विचारस्तु शिष्टाचाराद् ब्रह्मणो धर्मविचारानन्तरमेव भविष्यति इति आहुः **नच** इत्यादि. **तत्रापि** विचारेऽपि. **प्रत्यवायाश्रवणाद्** विपरीतविचारे प्रत्यवायबोधकवाक्याभावाद् इति अर्थः. ननु धर्मविचारे श्रुति-लिङ्ग-

गोस्वामिश्रीमद्‌गिरधरविरचितं विवरणम्

अधिकं किं बोद्धव्यम् इति अधिकाकाङ्क्षा भवेद् इति अर्थः. ननु भवतु अधिकाकाङ्क्षा, अधिकं किञ्चित् कल्प्यते इत्यतः आह **तथा सति** इति. **तदभावाद्** कस्यापि अधिकस्य अभावात्. तदेव उपपादयति **विपर्ययसम्भवाद्** इति. ‘‘**अथातो धर्मजिज्ञासा**’’ (जैमि. सू.१।१।१) इति पूर्वतन्त्रसूत्रे ‘अथ’शब्दस्यापि आनन्तर्यत्वेन ब्रह्मविचारानन्तरं धर्मविचारः इति अस्यापि सम्भवाद् इति अर्थः. **पाठतः** इति. पूर्वं वेदे धर्मः पठ्यते अनन्तरं ब्रह्मेति तदेव ‘अथ’शब्दस्य धर्मानन्तर्यार्थत्वे नियामकम् इति अर्थः. **तत्रापि** पाठेऽपि. **तथा** अनियमः. **तत्रापि** आचारेऽपि. **प्रत्यवाये**ति. विध्युक्तक्रमभङ्गे प्रत्यवायः. यथा षष्ठाष्टके तृतीये प्रपाठके पशुप्रकरणे अवदानक्रमो विहितः. तथाहि ‘‘**हृदयस्य अग्रे अवद्यति अथ जिह्वाया अथ वक्षसो यद्वै हृदयेन अभि गच्छति तद्**

प्रत्यवायाश्रवणात्. सम्भवेऽपि न वक्तव्यत्वम् अध्ययनवत्. तथाच ततोऽपि आकाङ्क्षा भवेत्. नच वैराग्य-शम-दमादिः पूर्वसिद्धः. तेषामेव अभावात्. नच

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

वाक्य-प्रकरण-स्थान-समाख्यानां श्रुतिस्मृतिप्रामाण्यप्रबलदुर्बलभावानां विधिमन्त्रार्थवादानां निरूपणाद्, निरूप्यमाणानां तेषां च उत्तरमीमांसायाम् उपयोगाद्, धर्मविचारानन्तर्यम् ‘अथ’शब्दार्थः कुतो न स्याद्? अतः आहुः **सम्भवेऽपि** इत्यादि. **अध्ययनवद्** अन्यथानुपपत्त्यैव पूर्वं धर्मनिरूपणम् अनन्तरं ब्रह्मनिरूपणम् इति लाभात्. अनन्यलभ्यस्यैव शब्दार्थत्वाद् ‘अथ’शब्दवाच्यत्वं तादृशानन्तर्येन वक्तव्यम् इति अर्थः. **ततोऽपि** धर्मविचारानन्तर्यस्य ब्रह्मविचारे सत्त्वेऽपि. **अधिकाकांक्षा** कस्य आनन्तर्यम् ‘अथ’शब्दार्थे इति अधिकाकांक्षा. ननु वैराग्यशमदममुमुक्षादिमतएव वेदान्तविचाराधिकाराद् वैराग्याद्यानन्तर्यमेव ‘अथ’शब्दार्थो अस्तु इत्यतः आहुः **नच वैराग्य** इत्यादि. **तेषां** वैराग्यादीनाम्. **अभावाद्** असिद्धत्वात्. **सम्भवः** वैराग्यादीनां सम्भवः. **कर्तव्यं**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

जिह्वया वदति. यद् जिह्वया वदति, तद् उरसोधिनिर्वदति एतद्वै पशोः यथापूर्वम्’’ (तैत्ति.संहि.६।३।१०।१०) इति. अत्र भाष्यं, लोके प्रथमं हृदयेन यद् निश्चिनोति तत् पश्चाद् जिह्वया वदति. पुनरपि तदेव निःशेषेन उच्चध्वनिना यदा वदति तदानीम् उरसः ऊर्ध्वदेशगतबलेन वदति. तस्माद् हृदयादीनां त्रयाणाम् अंशक्रमेण अवद्येत. एतदेव क्रमाद् अवदानं पशोः अङ्गेषु यथापूर्वं भवति. यथा लोके अभिवदनव्यवहारः पूर्वं प्रवृत्तस्यैव भवति इति. अत्रतु तदभावाद् विहितक्रमाकरणनिमित्तप्रत्यवायाभावाद् इति भावः. ननु आचारस्य श्रुतिस्मृतिमूलकत्वेन प्रामाण्याद्, क्वचित् श्रुतौ कर्मब्रह्मविचारयोः क्रमो विहितः स्याद् इति विहिताकरणरूपप्रत्यवायः सम्भवेद् इत्यतः आह **सम्भवेऽपि** इति. **न वक्तव्यम्** इति. ‘अथ’शब्देन न बोद्धव्यम् इति अर्थः. **अध्ययनवद्** इति. अन्यथानुपपत्या कर्मविचारस्यापि पूर्वत्वबोधाद् इति अर्थः. पूर्वोक्तदूषणम् आह **तथाच** इति. **आकाङ्क्षा भवेद्** इति. अधिकाकाङ्क्षा भवेद् इति अर्थः. ननु मास्तु कर्मविचारानन्तर्यं वैराग्यादिसम्पन्नानामेव वेदान्तविचारे अधिकाराद् तदानन्तर्यम् ‘अथ’शब्देन बोद्धव्यम् इति आशङ्कते **नच** इति. न हि इति अर्थः. **तेषाम्** इति. ‘‘**पराञ्चि खानि**’’ (कठोप.२।१।१) इति उपनिषदा इन्द्रियाणां बहिर्मुखता प्रतिपादिता. तेन च इहामुत्रभोगार्थं सामान्यतः पुरुषः प्रवर्तते. अतो नित्यानित्यवस्तुविषयकविचारानन्तरं वेदान्तविचारं विना वैराग्यादीनाम् असम्भवाद् इति अर्थः. वेदान्तविचारं विनैव यस्यकस्यचिद् पुरुषस्य यागादिना चित्तशुद्धौ, यदैव वैराग्यादीनां सम्भवः तदैव कर्तव्यम्

यदैव सम्भवः तदैव तत् कर्तव्यम् इति वाच्यं तदसम्भवापत्तेः. तथाहि. ब्रह्मणः परमपुरुषार्थत्वे ज्ञाते तज्ज्ञानस्यैव साधनत्वे अवगते, तच्छेषत्वे च यागादीनाम् अवगते, तदर्थकर्मकरणे चित्तशुद्धौ सत्यां वैराग्यादि. इदञ्च वेदान्तविचारव्यतिरेकेण न भवति इति अन्योन्याश्रयः. निर्धारितेतु वेदान्ते विचारो व्यर्थएव. नच साक्षात्कारः तत्फलम्, तस्य शब्दशेषत्वेन तत्कल्पनायां प्रमाणाभावात्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सम्भवोत्तरमेव वेदान्तनिरूपणं कर्तव्यम् इति अर्थः. **तदसम्भवापत्तेः** वेदान्तार्थनिर्णयाद् पूर्वं वैराग्याद्यसम्भवापत्तेः इति अर्थः. **परमपुरुषार्थत्वे** परमफलरूपत्वे. **तज्ज्ञानस्य** ब्रह्मज्ञानस्य. **साधनत्वे** परमपुरुषार्थप्राप्तिसाधनत्वे. **तच्छेषत्वे** चित्तशुद्धिद्वारा ब्रह्मज्ञानसाधनत्वाङ्गीकारे. **तदर्थकर्मकरणे** निष्कामतया ब्रह्मज्ञानार्थं कर्मकरणे. **वैराग्यादि** भवति इति पूरणीयम्. **इदञ्च** पूर्वोक्तक्रमेण वैराग्यादिनिष्पादनं च. **अन्योन्याश्रयः** आदौ वेदान्तविचारो वैराग्यादि इति स्थितौ अन्योन्याश्रयः इति अर्थः. ननु गुरुमुखाद् अध्ययनकाले वेदान्तार्थनिर्धारे कृते पश्चाद् वैराग्यादिसम्पत्त्युत्तरकालं वेदान्तविचारः कर्तव्यः. एवं सति अन्योन्याश्रयगन्धोऽपि न इत्यतः आहुः **निर्धारिते** इत्यादि. ननु गुरुसन्निधाने वेदान्तार्थनिर्णयस्य जातस्य वैराग्यादौ उपयोगः वैराग्याद्युत्तरवेदान्तार्थविचारस्यतु ब्रह्मसाक्षात्कारः फलमिति न विचारवैयर्थ्यम् अतः आहुः **नच** इत्यादि. **तत्फलं** विचारफलं. तच्च न इति अर्थः. निषेधे हेतुम् आहुः **तस्य**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति आह **नच** इति. **तद्** निरूपणम्. **तदसम्भवापत्तेः** इति. अन्योन्याश्रयदोषेण इत्यादि. तयोः विचार–वैराग्ययोः असम्भवापत्तेः इति अर्थः. अन्योन्याश्रयमेव आहुः **तथाहि** इत्यादिना. **ज्ञाते** इति. वेदान्तवाक्याद् इति शेषः. **तच्छेषत्वे** ब्रह्मज्ञानाङ्गत्वे. **अन्योन्याश्रयः** इति. अयं चक्रकस्यापि उपलक्षकः. स्वापेक्षापेक्षितत्वं आत्माश्रयः. स्वापेक्षापेक्षापेक्षितत्वं अन्योन्याश्रयः. एकाम् अधिकाम् अपेक्षां निवेश्य चक्रकम्. इदं जागदीश्यां तर्कग्रन्थे स्पष्टम्. ननु गुरुमुखात् पठनसमयएव वेदान्तार्थनिर्द्धारे जाते वैराग्यादिः, तदा न अन्योन्याश्रयः इत्यतः आहुः **निर्धारिते** इति. निर्धारितेतु निश्चितेतु. वेदान्तार्थे इति शेषः. निश्चयस्य संशयोच्छेदकत्वाद् निश्चये संशयएव न उदेतीति विचारो व्यर्थः इति भावः. ननु विचारस्य आत्मसाक्षात्कारार्थत्वमेव अस्तु इत्यतः आहुः **नच** इति. तस्य विचारस्य. **शब्दशेषत्वेन** शब्दाङ्गत्वेन शब्दजन्यशाब्दबोधोपयोगित्वेन इति यावत्. तथाच शाब्दबोधएव भविष्यति न साक्षात्कारः इति अर्थः. ननु ‘‘दशमः

‘‘दशमः त्वम् असि’’ इत्यादौ प्रत्यक्षसामग्र्या बलवत्त्वाद् देहादेः प्रत्यक्षत्वात् स्वदेहमपि पश्यन् ‘‘दशमो अहम्’’ इति मन्यते. न तथा प्रकृते. मनन-निदिध्यासनविधीनाम् आनर्थक्यप्रसङ्गात्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पूर्वमीमांसोक्तषट्प्रमाणानां आकांक्षा-योग्यता-सन्निधीनां वा उचितानुचितत्वविचारेण वेदान्तवाक्यार्थशाब्दबोधे निर्णीतव्ये विचारस्य शाब्दबोधसामग्रीमध्यनिवेशेन शाब्दबोध-एव उपक्षीणत्वं नतु शाब्दसामग्र्या ब्रह्मसाक्षात्कारकारणत्वमपि, साक्षात्कारकारणत्व-कल्पनायां प्रमाणाभावाद् इति अर्थः. ननु शब्दाद् अपरोक्षमपि ‘‘दशमस्त्वमसि’’ इत्यादौ सर्वजनानुभवसिद्धम् इति ‘‘**तत्त्वमस्या**’’दि वेदान्तवाक्येभ्यो विचाराद् जायमानं साक्षात्काररूपमपि कुतो न स्याद्? इति अतो दृष्टान्तवैषम्यं शब्दाद् अपरोक्षं च द्वयं निषेद्धुम् आहुः **दशमस्त्वम्** इत्यादि. **बलवत्त्वाद्** शाब्दप्रत्यक्षोभयसामग्रीसंवलने प्रत्यक्षसामग्र्या कार्यस्य दृष्टत्वाद् इति अर्थः. प्रत्यक्षसामग्रीम् उपपादयन्ति **देहादेः** इत्यादिना **मन्यते** इति. तथाच पूर्वं देहचक्षुःसन्निकर्षदशायां दशमत्वविशेषणबाध-निश्चयाभावविशिष्टा प्रत्यक्षसामग्र्येव न स्थिता. वाक्यश्रवणानन्तरन्तु अबाधित-दशमत्व-विशेषण-विशिष्ट-सम्बोध्यज्ञाने जाते पश्चाद् प्रत्यक्षसामग्र्या देहांशे लौकिकं दशमत्वांशे, अलौकिकं ‘सुरभिचन्दनम्’इतिवद् ‘‘दशमो अहम्’’ इति प्रत्यक्षमेव जायते, नतु शाब्दाभिन्नं प्रत्यक्षमपि. ‘‘**त्वम् असि**’’ (तत्रैव) इति उक्तवाक्याद् ‘‘अहम् अस्मि’’ इति शाब्दन्तु न, ब्रह्मणापि दुरुपपादत्वात्. **न तथा प्रकृते** प्रकृते ‘‘**तत्त्वमस्या**’’दि-वाक्यविचारेण ब्रह्मबोधस्थले. **न तथा** वाक्यजन्यशाब्दबोधकाले न प्रत्यक्षजनक-सामग्रीसत्ता. ननु ‘‘**आत्मा वारे दृष्टव्यः श्रोतव्यः**’’ (बृह.उप.२।४।५) इत्यादौ प्रत्यक्षार्थं श्रवणविधानादेव शाब्दापरोक्षसिद्धिः अतः आहुः **मनन...**इत्यादि. **आनर्थक्यप्रसङ्गाद्**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

त्वम् असि’’ इत्यादौ ‘‘दशमो अहम्’’ इत्याकारकं प्रत्यक्षं दृश्यते इत्यतः आह **दशमः** इति. **बलवत्वाद्** इति. समाने विषये प्रत्यक्षसामग्र्या बलवत्वाद् इति अर्थः. **पश्यन्** इति. चक्षुःसन्निकर्षरूपसामग्र्या इत्यादि. **मन्यते** इति. ‘‘दशमः क्व गतः?’’ इति व्यामोहाक्रान्ते पुरुषे ‘‘दशमः त्वम् असि’’ इति परेण बोधिते सङ्ख्यारूपे दशमत्वे चक्षुःसंयुक्तदेहसमवायरूपसन्निकर्षाद् ‘‘कृशो अहम्’’ इतिवद् ‘‘दशमत्वविशिष्टो अहम्’’ इति देहविषयकं प्रत्यक्षं जायते इति भावः. **न तथा प्रकृते** इति. विचारे न तथा. वाक्याद् देहवद् ब्रह्मत्वेन आत्मसाक्षात्कारो न भवति इति दृष्टान्तवैषम्यं, ब्रह्मत्वात्मनोः उभयोरपि आन्तरत्वाद्, बहिरिन्द्रियजन्यशब्दप्रमाणाग्राह्यत्वाद् इति भावः.

नच अधिकारिभेदः कल्पनीयः, शब्दज्ञाने तत्कल्पनायां प्रमाणाभावात्. अत्यन्तासत्येऽपि अर्थे शब्दस्य ज्ञानजननात् प्रमाणसङ्करापत्तिश्च.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

श्रवणमात्रेणैव ब्रह्मप्रत्यक्षसम्भवे मनन-निदिध्यासनयोः अकारणत्वेन तयोः कारणता-बोधकवेदस्य अप्रामाण्यप्रसङ्गाद् इति अर्थः. ननु हीनाधिकारिणः श्रवणादित्रिकेण ब्रह्मसाक्षात्कारः, उत्तमाधिकारिणस्तु श्रवणमात्रादेव इत्यतः आहुः **नच अधिकारी**त्यादि. तत्र हेतुम् आहुः **शब्दज्ञाने** इत्यादि. **शब्दज्ञाने** शब्देन जन्यज्ञाने. **तत्कल्पनायाम्** अधिकारविशेषस्य शाब्दबोधे कारणताकल्पने. **प्रमाणाभावाद्** आकांक्षा-योग्यता-सन्निधि-शक्तिज्ञानादि-क्लृप्तकारणैरेव कार्यसम्भवे अधिकारविशेषस्य अन्यथा-सिद्धत्वाद् इति अर्थः. अधिकारस्य शाब्दहेतुतायां नियमाभावम् आहुः **अत्यन्ते**त्यादिना. तथाच बाधाभावादिघटितशाब्दसामग्रीसत्वे खपुष्पमरुमरीचिकादिशब्देभ्यः सर्वेषां शाब्दबोधो जायते तादृशार्थबोधे अधिकारविशेषस्य कारणतायाः वक्तुम् अशक्यत्वेन व्यभिचाराद् अधिकारस्य न क्वापि कारणता इति अर्थः. किञ्च उत्तमाधिकारिणः शब्दाद् अपरोक्षाङ्गीकारे खपुष्पादिशब्देभ्योऽपि अपरोक्षापत्तिः, अधिकारस्य अविशिष्टत्वात्. अधिकारताखण्डनेन शाब्दापरोक्षं खण्डयित्वा प्रकारान्तरेण शब्दापरोक्षं खण्डयितुम् आहुः **प्रमाणसङ्करः** इत्यादि. तथाच अत्र 'प्रमाण'शब्देन व्युत्पत्तिभेदाद् प्रमाणप्रमेये बोध्ये. इत्थञ्च यत्र शाब्दाद् अपरोक्षात्मकं शाब्दं जायेत तादृशप्रमायां शाब्दत्वसाक्षात्कारत्वयोः केवलशाब्दबोधप्रत्यक्षयोः परस्परात्यन्ताभावसमानाधिकरणयोः एकस्यां समावेशेन शाब्दत्वसाक्षात्कारत्वयोः जातित्वं न स्याद् इति अर्थः. एवमेव प्रमाणगतयोः शब्दत्व-प्रत्यक्षत्वयोरपि साङ्कर्यसम्भवाद् जातित्वबाधः इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ननु ''**आत्मा वारे दृष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः**'' (बृहदा.उप. २।४।५) इति वाक्येन दर्शनोत्तरं श्रवणविधानेन ग्राह्यत्वं स्वीक्रियते इत्यतः आहुः **मनने**ति. ननु उत्तमस्य साक्षात्कारः, मन्दस्य मननम् इति अधिकारिभेदेन व्यवस्था स्वीक्रियते इत्यतः आहः **शब्दज्ञाने** इति. शाब्दबोधरूपे. **प्रमाणाभावाद्** इति. अधिकारिभेदकल्पनायां प्रमाणाभावाद् इति अर्थः. कुतः? इत्यतः आह **अत्यन्ते**ति. ''खपुष्पं सुरभी'' इत्यादौ अत्यन्तासतोऽपि ज्ञानं जायते. अपरोक्षन्तु न जायते इति प्रमाणाभावाद् इति अर्थः. शाब्दापरोक्षवादमेव दूषयन्ति **प्रमाणसङ्करे**ति. एकत्र शाब्दत्व-साक्षात्कारत्वयोः सत्त्वाद् इत्यादि. सङ्करस्य प्रमाणत्वबाधकत्वात्.

ननु 'तत्त्वमस्या'दिवाक्याद् ''**मनसानुद्रष्टव्यः**''(बृहदा.उप.४।४।१९) इति

मनसा तज्जननेऽपि तथा. तस्मात् प्रथमं शाब्दमेव ज्ञानम् इति मन्तव्यम्, अनुभवसिद्धत्वात्, इदानीन्तनानामपि शमादिरहितानां निर्विचिकित्सित-वेदार्थज्ञानोपलब्धेः, संन्यासानुपपतिश्च.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ननु ‘‘**तत्त्वमस्या**’’दिवाक्यसहकृतेन मनसैव शाब्दापरोक्षम् अङ्गीकार्यं ‘‘**मनसैव अनुद्रष्टव्यम्**’’ (बृह.उप.४।४।१९) इति श्रुतिसाहाय्याद्. इत्थञ्च शब्दप्रमाणम् आदाय न जातिसङ्करापत्तिः अतः आहुः **मनसा** इत्यादि. **तज्जनने** शाब्दपरोक्षजनने. **तथा** पूर्ववदेव मनःप्रमे(प्रमा/प्रत्यक्षम्?) आदाय सङ्करापत्तिः इति अर्थः. सङ्करापत्तिस्तु मनसि शाब्दप्रत्यक्षयोः करणत्वाद् प्रमाणसङ्करापत्तिः प्रमितौ च शाब्दत्वप्रत्यक्षत्वयोः सत्त्वाद् प्रमितिम् अदाय सङ्करापत्तिः इतिरीत्या बोध्या. एवम् उत्तमाधिकारिणः शब्दसहकृतमनःसकाशाद् खपुष्पादिशब्देभ्योऽपि शाब्दापरोक्षं स्याद् इत्यपि दूषणम् अवसेयम्. पूर्वोक्तम् उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति. **प्रथमं** वैराग्यशमादिभ्यः पूर्वम्. **शब्दमेव** वेदान्तविचारेण वेदान्तवाक्येभ्यः शाब्दमेव परोक्षरूपम् इति अर्थः. **अनुभवसिद्धत्वाद्** उपनिषत्सु तत्तदृषीणां तच्छिष्याणां च संवादेन परोक्षरूपशाब्दस्यैव सर्वप्रतीतिगोचरत्वाद् इति अर्थः. **इदानीम्** इत्यादि. तथाच शमादिशून्यानां विचारसमर्थानां यदि वेदान्तार्थ–निर्णयो न स्याद् तदा **इदानीन्तनानां** तादृशविचारकाणां निर्विकल्पवेदार्थनिर्णयो न स्यात्. जायते इति सर्वानुभवसिद्धमिति न पूर्वोक्तं साधुः इति अर्थः. ‘तत्त्वमस्या’दिवाक्येभ्यो ब्रह्मापरोक्षबोधाङ्गीकारे दूषणान्तरम् आहुः **सन्न्यास** इति. यदि उपदेशवाक्यादेव ब्रह्मापरोक्षबोधः स्याद् तदा ‘‘**वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः सन्न्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्वाः, ते ब्रह्मलोके तु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे**’’ (मुण्ड.उप.३।२।६) इति श्रुतौ वेदान्तार्थनिर्णयोत्तरं सन्न्यासोक्तिः विरुद्धा स्याद् इति अर्थः.

‘अथ’शब्दस्य आनन्तर्यार्थत्वपक्षे दूषणचतुष्टयम् उक्तम् : अधिकाकांक्षा,

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

श्रुतिसहकृताद् केवलात् साक्षात्कारो भविष्यतीति अधिकारभेदो युक्तः इति चेत् तत्र आहुः **मनसा** इत्यादि. **तज्जनने** साक्षात्कारजनने. **तथा** मननादिविधिवैय्यर्थ्यम्. सिद्धम् आहुः **तस्माद्** इति. **मन्तव्यम्** इति. सर्वेषां भवति इति स्वीकर्तव्यम् इति अर्थः.

अनुभवमेव आहुः **इदानीम्** इति. अस्मिन् युगे उत्पन्नानां त्रैवर्णिकानामपि इति अर्थः. **उपलब्धेः** इति. विचारेण इति शेषः. दूषणान्तरम् आहुः **सन्न्यासे**ति. उपनिषदि ‘‘**वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः**’’ (मुण्ड.उप.३।२।६) इत्यादिना वेदान्तार्थनिश्चयोत्तरं सन्न्यासस्य प्रतिपादितत्वाद्, वेदान्तार्थविचाराभावे

किञ्च, अध्याहारश्च कर्तव्यः. सच ‘कर्तव्या’दिपदानाम्. यदि तत् स्वार्थं, व्यर्थमेव वाक्यं स्यात्. परार्थत्वेतु अशक्यम्. नहि तैः विचारः कर्तुं शक्यते. स्वकृतिवैयर्थ्यं च. असङ्गतिश्च अस्य सूत्रस्य भवेत्. किञ्च, अधिकारपक्षे

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अध्याहारापत्तिः, पुरुषार्थासिद्धिः, विचारोच्छेदः इति. तेषां मध्ये प्रथमं निरूप्य द्वितीयम् उपपादयितुम् आहुः **किञ्च अध्याहारः** इति. **कर्तव्यः** इति. ‘अथ’शब्दस्य आनन्तर्यार्थत्वे ‘‘अनन्तरं विचारः’’ एतावन्मात्रम् उक्त्वा तूष्णीं स्थितौ वाक्यं निराकांक्षं न स्यादिति कर्तव्यादिपदानाम् अध्याहारः आवश्यकः. विचारकर्तृणाम् इष्टसाधनत्वाग्रहसम्पादनेन विचारप्रवृत्त्यर्थम् अवश्यं कर्तव्यम् इति अर्थः. **तद्** अध्याहृतं पदम् **स्वार्थं** स्वस्य विचारे प्रवृत्तौ इष्टसाधनत्वाग्रहसम्पादनार्थं, व्यासाभिप्रेतं **व्यर्थमेव** इत्यादि. वाक्यप्रयोगात् पूर्वमेव विचारकस्य इष्टसाधनताधीसत्त्वात्. अन्यथा प्रतिज्ञावाक्यमेव न वदेत्. इत्थञ्च सम्पूर्णं प्रतिज्ञावाक्यमेव व्यर्थं स्याद् इति अर्थः. **परार्थत्वे** परेषाम् इष्टसाधनताधीसम्पादनेन विचारे प्रवृत्त्यर्थत्वे. अशक्यत्वमेव उपपादयन्ति **न हि** इत्यादि. **तैः** परैः **कर्तुं शक्यते**. अन्येन केनचिद् उक्तम् ‘‘इदं कर्तव्यम्’’ इति श्रवणमात्रेण सर्वेषां करणार्थं प्रवृत्तौ प्रमाणाभावाद् इति अर्थः. ननु तादृशाज्ञाकारिणां परेषां प्रवृत्तिरपि स्यादेवेति न वैयर्थ्यम् अतः आहुः **स्वकृती**ति. तथाच परस्य विचारकरणार्थं वाक्यप्रयोगः परेणतु न क्रियते स्वयं च क्रियते इति स्वकृतेः प्रतिज्ञाकृतेश्च वैयर्थ्यम् इति अर्थः. फलितं दूषणम् आहुः **असङ्गतिः** इति. तथाच स्व-परयोः मध्ये कस्यापि प्रवृत्तौ अनुपयोगाद् असङ्गतिरेव सूत्रस्य फलिता इति अर्थः. आनन्तर्यार्थपक्षे पुरुषार्थासिद्धिरूपं तृतीयं दूषणम्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सन्न्यासानुपपत्तिः इति अर्थः. **कर्तव्यादी**ति. ‘आदि’ पदेन विधिबोधकपदानां सङ्ग्रहः. द्वितीयं दूषणम् आहुः **तद्** इति. विचारकरणम्. **वाक्यम्** इति. मीमांसावाक्यम् इति अर्थः. वाक्यप्रयोगाभावे स्वयमेव मनसि विचारं कर्त्तुं शक्यत्वाद् इति भावः. **अशक्यम्** इति. अशक्यत्वमेव आहुः **न हि** इति. **तैः** अन्यैः. **शक्यते** इति. मीमांसाविचारस्य अतिदुरूहत्वाद् इति शेषः. **स्वकृती**ति अशक्यत्वाद् परैः विचारो न क्रियते चेद् मीमांसाविषयिणी या स्वकृतिः तस्याः वैय्यर्थ्यम् इति भावः. कैश्चिद् उत्तमैः विचारः कर्तुं शक्यते चेत्, तत्र आहुः **असङ्गतिश्च** इति. तथाच ब्रह्मजिज्ञासा परैः कर्तव्या इति प्रतिज्ञा कृता. अग्रिमसूत्राणितु स्वेन प्रकृतानीति प्रतिज्ञाहानिरूपा असङ्गतिः भवेद् इति अर्थः. पुरुषार्थासिद्धिरूपं तृतीयं दूषणम् आहुः **किञ्च** इति. **पुरुषार्थः** इति. विचारे क्रियमाणे

पुरुषार्थः सिद्ध्यति, न आनन्तर्यपक्षे उक्तन्यायात्. किञ्च, तादृशस्य अधिकारिणः श्रवणमात्रेण कृतार्थस्य समाधिनिरतस्य प्रवचनासम्भवात् शास्त्रोच्छेदः शास्त्रविरोधश्च. साधनानाम् अग्रे स्वयमेव वक्तव्यत्वात्. अतो अनेकदोषदुष्टत्वाद् अधिकारार्थएव श्रेयान्. नच ज्ञातुम् इच्छा जिज्ञासा न

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उपपादयन्ति **किञ्च** इत्यादिना. **अधिकारपक्षे** 'अथ'शब्दस्य अधिकारार्थत्वपक्षे. **पुरुषार्थः** मोक्षः. **उक्तन्यायात्** कस्य आनन्तर्यं वाच्यम् इत्यत्र आनन्तर्यनिरूपकस्य अलाभेन तदाकांक्षायाः अशान्तेः मोक्षाकांक्षानुदयप्रसङ्गाद् इति अर्थः. उच्छेदश्च भवेद् इति चतुर्थं दूषणम् उपपादयन्ति **किञ्च तादृशस्य** इत्यादिना. **तादृशस्य** उत्तमस्य. **प्रवचनासम्भवात्** समाधिव्यापृतत्वेन वेदान्तविचारस्य शिष्याणां पाठनस्य वा असम्भवाद् इति अर्थः. **शास्त्रविरोधः** आदौ वेदान्तविचारमात्रेण ''**तत्त्वमस्या**''दिवाक्येभ्यो ब्रह्मसाक्षात्काराङ्गीकारे व्यासशास्त्रवैफल्यम् इति अर्थः. वैफल्यमेव उपपादयति **साधनानाम्** इत्यादिना. तथाच पूर्वोक्तरीत्या यदि कृतार्थताम् अभिप्रेयात् तदा अग्रे तृतीयाध्याये व्यासः स्वयं साधनानि न वदेत्. न हि कारणं विना कार्योत्पत्तिः कस्यापि अस्ति सम्मता. सम्मता चेद् स्यात् तदा अग्रे साधनानि व्यासो न वदेद् इति अन्यथानुपपत्या साधनाभावे कार्याभावः इति सिद्धम् इति अर्थः. आनन्तर्यपक्षे दूषणसमूहम् उद्भाव्य 'अथ'शब्दस्य अधिकारार्थत्वपक्षः सर्वैः उरीकर्तुं योग्यः इति उपपादयन्ति **अत** इत्यादिना. **अतः** यतो अधिकारार्थत्वपक्षो निर्दुष्टो अतः इति अर्थः. **अनेकदोषदुष्टत्वाद्** 'अथ'शब्दस्य आनन्तर्यार्थत्वपक्षे दूषणचतुष्टयोद्भावनानन्तरमपि बहूनां दूषणानाम् उद्भावनाद् अनेकदोषदुष्टत्वाद् इति उक्तम्. **अधिकारार्थएव** 'अथ'शब्दस्य अधिकाररूपार्थएव, **श्रेयान्** निर्दुष्टत्वात् सर्वेषामेव श्रेयान् इति अर्थः.

ननु 'अथ'शब्दस्य अधिकारार्थत्वपक्षे कर्तव्यत्वमेव अर्थः पर्यवस्यति, 'जिज्ञासा'शब्दस्य च ज्ञानगोचरेच्छार्थः. साच कृत्यसाध्येति कथंकृत्य साधनीयः? इति आशङ्कते **नच** इत्यादिना. **ज्ञातुं** ज्ञानगोचरा. **न अधिकर्तुं** न कृत्या साधयितुम्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

मननद्वारा मोक्षः सिद्ध्यति इति अर्थः. **उक्तन्यायाद्** इति. अन्योन्याश्रयदोषाद् विचाराभावाद् इति अर्थः. चतुर्थं दूषणम् आहुः **किञ्च** इति. साधनचतुष्टयसम्पन्नेन श्रवणं कृतं चेत्, तेनैव कृतार्थत्वात् समाधिनिरतत्वेन अध्यापनाभावात् **शास्त्रोच्छेदः** इति भावः. **अग्रे** तृतीयाध्याये. यौगिके 'जिज्ञासा'पदे दूषणम् उद्भाव्य परिहरन्ति **नच** इति. **शक्ये**ति इच्छायाः प्रारम्भस्य कर्तुम् अशक्यत्वाद् इति अर्थः. 'जिज्ञासा'पदस्य रूढ्या

अधिकर्तुं शक्या इति वाच्यं, ‘जिज्ञासा’पदस्य विचारार्थत्वात्. अतएव ‘‘जिज्ञासितुम् इच्छेद्’’ इति पुराविदां वचनानि. ‘जिज्ञासा’पदेन च एतज् ज्ञापयति. ब्रह्मज्ञानं पुरुषार्थसाधनत्वाद् इष्टम्. तदिच्छापूरणाय विचारो आरभ्यते इति. यस्मात् कर्मादिभ्यो ज्ञानमेव पुरुषार्थसाधनम् इत्यतः तज्ज्ञानाय विचारो अधिक्रियते इति ‘अतः’शब्दार्थः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

विचारार्थत्वाद् ‘जिज्ञासा’पदस्य यौगिकरूढत्वेन स्वातन्त्र्येण रूढ्या वृत्त्या विचारार्थत्व-सम्भवाद्. यथा ‘उद्भित्’पदं योगेन खनित्रं बोधयति केवलरूढ्या च यागविशेषम् इति तद्वद् इति अर्थः. ‘जिज्ञासा’पदस्य विचारार्थत्वे उपष्टम्भकम् आहुः **अतएव** इति. यतः इच्छाविषयकेच्छायाः असम्भवेन एतद्वाक्यस्य अप्रामाण्यं स्याद् अतएव इति अर्थः. **जिज्ञासितुं** विचारयितुम् इति अर्थः. ननु ‘जिज्ञासा’पदस्य विचारार्थत्वे ‘विचार’पदं त्यक्त्वा किमिति क्लिष्ट‘जिज्ञासा’पदप्रयोगः कृतः? इत्यतः आहुः **जिज्ञासापदेन** इत्यादि. **जिज्ञासापदेन** ज्ञानविषयकेच्छार्थक‘जिज्ञासा’पदेन इति अर्थः. **एतद्** वक्ष्यमाणम्. इष्टत्वम् **इष्टम्** इति. तथाच सुखस्येव सुखसाधनेष्वपि इष्टत्वं शास्त्रकारिणां सम्मतं यथा यागादौ, अन्यथा तत्साधने प्रवृत्तिः न स्याद् इति भावः. **तदिच्छापूरणाय** ब्रह्मज्ञानेच्छाविषयलाभार्थम् इति अर्थः. ‘अथ’शब्दार्थम् आहुः **आरभ्यते इति** इति. सूत्रार्थम् आहुः **यस्माद्** इत्यादि, **ज्ञानमेव** ब्रह्मज्ञानमेव. **तज्ज्ञानाय** ब्रह्मज्ञानाय. **‘अतः’शब्दार्थः** ‘अतः’पदघटितसूत्रार्थः. अथ **अधिक्रियते** अधिकारिणम् उद्दिश्य ब्रह्मजिज्ञासा आरभ्यते.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

विचारार्थकत्वे पूर्वमीमांसाभाष्यकारसम्मतिम् आहुः **अतएव** इति. **पुराविदाम्** शाबरभाष्यकृताम्. ननु ‘विचार’पदमेव कुतो न उक्तम्? इत्यतः आह **‘जिज्ञासा’पदेन** इति. **इष्टम्** इच्छाविषयीभूतम्. **तदिच्छा** ब्रह्मज्ञानविषयिणि इच्छा.

अधिकारपक्षे वाक्यार्थं वक्तुम् ‘अतः’शब्दार्थम् आहुः **यस्माद्** इत्यादि. ननु सामान्यतो ‘अतः’शब्दस्य पूर्वावधौ प्रयोगदर्शनात्. ‘‘**अथातो गाभिलोक्तानाम् अन्येषां चैव कर्मणाम्, अस्पष्टानां विधिं सम्यक् दर्शयिष्ये प्रदीपवद्**’’ (कात्या.स्मृ.१।१) इति कात्ययायनस्मृतौ. किं पूर्वम्? इति आकाङ्क्षायां कर्मविचारस्य पूर्वत्वं वक्तव्यम्. तच्च न सम्भवति, तस्य पूर्वत्वं पूर्वमेव खण्डितम् अतः आहुः **अतः** इति. यथा ‘‘धर्मो यशःप्रदः सुखदश्च अतः करोमि’’ इत्यादौ इष्टेऽपि ‘अतः’पदप्रयोगो दृश्यते. तथा अत्रापि ब्रह्मज्ञानं

अधिकारीतु त्रैवर्णिकएव. नहि वेदविचारस्य वेदाधिकार्यतिरिक्तः शक्यते कल्पयितुम्. नहि मन्दमतेः वेदो न आयाति इति त्रैवर्णिके मतिमत्त्वम्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अस्य अधिकार्याकांक्षायाम् अधिकारिणम् आहुः **अधिकारी तु** इति. तथाच वैदिकवाक्ये अङ्गीभूतो यो विचारः सः प्रधानाधिकार्यधिकारिकएव दर्शपूर्णमासाधिकार्यधिकारिकप्रयाजादिवद् इति अर्थः. ननु कर्मादिसर्वफलसाधनापेक्षया ब्रह्मज्ञानमेव परमपुरुषार्थसाधनम् इति मतिमानेव विचाराधिकारी कल्पनीयो अन्यथा स्मार्तकर्ममात्रपरस्यापि विचारेण ब्रह्मसाक्षात्कारः पुरुषार्थसाधको भवेद्. अतः आहुः **नहि** इत्यादि **मन्दमतेः**, त्रैवर्णिकस्य **मतिमत्त्वं** ग्रहणधारणसमर्थबुद्धिमत्त्वम्. **कल्प्यते** इति तथा कल्पने तादृशमतिमत्त्वाभावं निश्चित्यापि जडभरते पितृकारितवेदाध्ययनस्य अवैधत्वेन प्रत्यवायजनकत्वं स्याद् इति अर्थः. ननु ‘‘**शान्तो दान्त उपरतः तितिक्षुः**’’ (सुबालोप.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

पुरुषार्थसाधनम्, अतः ब्रह्मज्ञानार्थं विचारः आरभ्यतइति ‘अतः’शब्दः इति अर्थः. एवञ्च ‘‘**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**’’ इत्यत्र ‘ब्रह्म’पदस्य ब्रह्मवाचकत्वम्, ‘अतः’पदस्य ज्ञानार्थे तात्पर्यग्राहकत्वम्. तथाच ब्रह्मविषयकज्ञानानुकूलो विचारः आरभ्यते इति वाक्यार्थः. अत्र यथा एकं पदम् एकस्मिन् अर्थे यौगिकम् अन्यस्मिन् अर्थे रूढं, तद् यौगिकरूढम् इति उच्यते. यथा उद्भिदादिपदं यागविशेषे रूढं, वृक्षे यौगिकम्. तथा अत्रापि ‘जिज्ञासा’पदस्य यौगिकरूढत्वम्. ज्ञानेच्छायां यौगिकम्, प्रकृते विचारे रूढत्वं स्वीक्रियते. ननु ब्रह्मनिरूपणे प्रतिज्ञाते प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यर्थम् अधिकारि–विषय–सम्बन्ध–प्रयोजनानि वक्तव्यानि. तत्र विषयादीनाम् अग्रे वक्तव्यत्वाद् अधिकारिनिर्णयम् आहुः **अधिकारी** इति. ननु वेदार्थविचारे च त्रैवर्णिकएव अधिकारी इति सत्यम्, परन्तु, वेदान्तार्थविचारे गृहानुरक्तस्य फलाभावाद् विरक्तत्वम् अधिकारिविशेषणं देयम्. तथाच साधनचतुष्टय–सम्पन्नस्यैव विरक्तत्वाद् मन्मतप्रवेशः इत्यतः आहुः **न हि** इति. **कल्प्यते** इति अत्र अन्वयः. मन्मते त्रैवर्णिकएव अधिकारी. अनुरक्तस्यतु फलाभावेन अर्थादेव अनधिकारित्वाद् व्यर्थं विरक्तत्वं विशेषणम्. यथा वेदाधिकारिणि मतिमत्त्वम्, कर्माधि–कारिणि अन्धपङ्ग्वादिभिन्नत्वं विशेषणं न कल्प्यते तथा अत्रापि इति समुदितार्थः. यथा अन्धपङ्ग्वादीनां फलाभावः तथा प्रतिपादितं कल्पसूत्रे. तथाहि दर्शपूर्णमासप्रकरणे यजमानस्य ‘‘**आज्यमसि सत्यमसि सत्यसाध्यक्ष्यमसि**’’(तैत्ति.संहि. १।६।१।१) इत्यादिमन्त्रेण आज्यावेक्षणं विहितम्, तत्र अवेक्षणस्य लोपाद् अङ्गवैकल्येन फलाभावः. एवं दर्शपूर्णमासेष्टौ अन्ते यजमानस्य ‘‘**विष्णोः क्रमोस्यभिमानिहा**

अधिकारिविशेषणं कल्प्यते. अन्धपङ्ग्वादीनामिव कर्मणि गृहाद्यासक्तस्य मननाद्यसम्भवात् साक्षात्कारो न भविष्यति. *नच धर्मन्यायेन गतार्थत्वम् अस्य, अप्रतिज्ञानाद् अनुपलब्धेश्च.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

९।१४) इत्यादिरूपो अधिकारो विचारे अवश्यम् अधिकारिविशेषणं वाच्यो अन्यथा गृहाद्यासक्तवेदान्तविचारकस्यापि ब्रह्मसाक्षात्कारः पुरुषार्थश्च सिध्येद्. अतः आहुः **अन्धे**त्यादि. तथाच यथा आज्यावेक्षणविष्णुक्रमणादिरूपसहकारिकारणाङ्गाभावाद् यथा कर्मकर्तॄणां फलाभावः तथा विचारकाणामपि शान्त्यादिसहकारिकारणानाम् अभावाद् गृहाद्यासक्तानां ब्रह्मसाक्षात्कारपुरुषार्थाभावः इति भावः.

ननु **''अथातो धर्मजिज्ञासा''** (जैमि.सू.१।१।१) इत्यत्र 'धर्म'शब्दस्य लक्षणया वेदार्थमात्रपरतया व्याख्यानाद् धर्मनिरूपणप्रतिज्ञयैव ब्रह्मनिरूपणप्रतिज्ञायाः कृतत्वेन गतार्थत्वाद् **''अथातो ब्रह्मजिज्ञासा''** इति पृथक्प्रतिज्ञायाः वैयर्थ्यम् अतः आहुः **ननु*** इति. **अस्य** वेदान्तविचारस्य **अप्रतिज्ञानात्** शक्त्यार्थप्रतिपादक'धर्म'पदघटित-जैमिनिप्रतिज्ञामध्ये ब्रह्मविचारप्रतिज्ञायाः अलाभाद् इति अर्थः. ननु लक्षणया अर्थप्रतिपादक'धर्म'पदघटितप्रतिज्ञया ब्रह्मविचारस्यापि प्रतिज्ञातत्वाद् अपार्थैव पृथग्ब्रह्मविचारप्रतिज्ञा इत्यतः आहुः **अनुपलब्धेः** इति. तथाच जैमिनिना स्वसूत्रे यदि ब्रह्मजिज्ञासा प्रतिज्ञाता स्यात् तदा **''चोदनालक्षणो अर्थो धर्मः''** (जैमि.सू.२।१।१) इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

गायत्रेण छन्दसा दिवमनुविक्रमे निर्भक्तः स यन् द्विष्मः''(तैत्ति.संहि.१।६।५) इत्यादिमन्त्रेण गमनरूपं विष्णुक्रमणं विहितम्. तच्च पङ्गोः न सम्भवति इति फलाभावः इति. एवं रीत्या वेदान्तविचाररूपमीमांसायाः आवश्यकत्वम् उक्तम्. विचारे च त्रैवर्णिकानाम् अधिकारः इत्यपि स्वीकृतं, परन्तु, तत्र कर्मण्यपि त्रैवर्णिकानाम् अधिकारो अस्ति इति कर्ममीमांसया चरितार्थत्वम् अस्याः मन्यमानं मीमांसकं कटाक्षयन्त आहुः **नच** इति. न हि इति अर्थः. **''अथातो धर्मजिज्ञासा''** (जैमि.सूत्र.१।१।१) इत्यत्र 'धर्म'शब्दस्य वेदार्थमात्रार्थत्वेन धर्मविचारप्रतिज्ञयैव ब्रह्मविचारस्य जायमानत्वेन भिन्नतया न वक्तव्या इति अर्थः. **अस्याः** वेदान्तमीमांसायाः. यद्यपि क्वचित् पुस्तकेषु 'अस्य' इति पाठः, तथापि अत्रैव भाष्ये न अर्थो अनया मीमांसया इति उक्तत्वाद् क्वचित् पुस्तके 'अस्याः' इति पाठस्य दृष्टत्वाच्च सएव पाठः इति प्रतिभाति. **अप्रतिज्ञानाद्.** जैमिनिना 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इति प्रतिज्ञायाः अकृतत्वात्. **अनुपलब्धेः** इति ब्रह्मप्रतिपादकाधिकरणानुपलब्धेः इति अर्थः.

नच जगत्कारणं परमात्मा वा प्रकृतिः वा परमाणवो वा इति सन्देहे किञ्चिद् अधिकरणम् अस्ति. स्याद् एतत्. **''अथातो धर्मजिज्ञासा''** (जैमि.सू.१। १।१) इति धर्मविचारं प्रतिज्ञाय नोदकवाक्यार्थस्य धर्मत्वम् उक्त्वा प्रामाण्यपुरःसरं सर्वे सन्देहाः निवारिताः. तत्र ब्रह्मज्ञानस्यापि धर्मत्वम्.

''आत्मा इत्येव उपासीत'' (बृहदा.उप.१।४।७) **''आत्मानं श्लोकम्**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

धर्मजिज्ञासावद् ब्रह्मजिज्ञासापि उपलभ्येत, नतु एवम् इति अर्थः. अनुपलब्धिप्रकारमेव उपपादयन्ति **नच जगद्**...इत्यादिना. **अधिकरणम् अस्ति** जैमिनिमीमांसायाम् अधिकरणम् अस्ति इति अर्थः. पूर्वपक्षी शङ्कते **स्याद् एतद्** इति. **एतत् स्याद्** ब्रह्मज्ञानस्यापि विध्यर्थत्वेन धर्मत्वाद् धर्मविचारप्रतिज्ञया प्रतिज्ञातत्वं स्यात्. **प्रामाण्यपुरःसरम्** अर्थवादानां विध्यर्थस्तावकत्वेन विध्येकवाक्यतया प्रामाण्यव्यवस्थापनपुरःसरम्. **सर्वेसन्देहाः** मन्त्रार्थवादानाम् अप्रामाण्यसन्देहाः, **तत्र** धर्मपदार्थमध्ये. **धर्मत्वं** विध्यर्थत्वाद् धर्मत्वम्.

ज्ञानस्य धर्मत्वप्रतिपादकविधिम् आह **आत्मा** इत्यादि. **श्लोकं** स्तुत्यम्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तदेव आहुः **नच** इति. अत्र मीमांसकमते जगतः प्रवाहरूपेण नित्यत्वम् अतः कारणताविचारएव नास्ति. ब्रह्ममीमांसकः शङ्कते **स्याद् एतद्** इति. नोदकवाक्यार्थस्य '' 'नुद'प्रेरणे'' इति धातुनिष्पन्नं नोदकं प्रेरकं यत् **''सोमेन यजेत''**(तैत्ति.संहि.३।२।२।३) इत्याकारकं वेदवाक्यं तदर्थस्य यागानुकूलभावनारूपार्थस्य धर्मत्वम् उक्त्वा **''चोदना–लक्षणो अर्थो धर्मः''** (जैमि.सू.१।१।२) इति सूत्रेण धर्मे प्रामाण्यं प्रतिपाद्य इति अर्थः. ननु वेदस्य विध्यर्थवाद–मन्त्र–नामधेयरूपेण चतुर्विधत्वं, तन्मध्ये विधेस्तु प्रामाण्यं प्रतिपादितम्. अर्थवादानां निरर्थकत्वेन अप्रामाण्यम् अतः आहुः **प्रामाण्यपुरस्सरम्** इति. **''विधिनातु एकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः''** (जैमि.सू.१।२।७) इति सूत्रेण **''स्वाध्यायविधिना वेदः पुरुषार्थाय नीयते, सर्वः तेन अर्थवादानां प्रायस्तेन प्रमाणता''** (   ) इति कारिकया च अर्थवादानां प्राशस्त्यबोधकत्वेन अर्थांशे प्रामाण्यं, मन्त्रादीनां देवताप्रकाशनद्वारा शब्दांशे प्रामाण्यं च प्रतिपाद्य, नामधेयानां नामावच्छिन्नधात्वर्थनिष्ठभावनाख्यधर्मप्रमितौ च प्रामाण्यं च प्रतिपाद्य, सकलवेदे अर्थवादानां प्ररोचकतयेव मन्त्राणामपि स्मारकतया प्रामाण्यव्यवस्थापनपुरःसरं शब्दार्थोभयविषयकाः **सन्देहा निवारिता** इति अर्थः.

ब्रह्मज्ञानस्य धर्मत्वप्रतिपादकविधीन् आह **आत्मा** इति.

उपासीत''(बृहदा.उप.१।४।१५) ''**तद् ब्रह्म इति उपासीत**''(तैत्ति.उप. ३।१०।४) ''**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः**''(बृहदा.उप.२।४।५) इत्यादिनोदनावाक्यार्थत्वात्. ''**अयं हि परमो धर्मो यद् योगेन आत्मदर्शनम्**''(याज्ञ.स्मृ.१।८) इति स्मृतेश्च. सृष्ट्यादिवाक्यानान्तु अर्थवादत्वं, आरोपापवादविषयधर्मप्रतिपादकत्वेन विधेयोपासनाविषयस्तावकत्वात्. नच ज्ञानादीनाम् अविधेयत्वं, प्रमाणवस्तुपरतन्त्रत्वेन

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ज्ञानस्य स्फुटतया धर्मत्वबोधिकां स्मृतिम् आह **अयं हि** इत्यादि. ननु उत्तरकाण्डे सृष्ट्यादिप्रतिपादकविधिभिन्नवाक्यानां का गतिः? अतः आह **सृष्ट्यादि** इत्यादि. **अर्थवादत्वम्** उपासनाविध्यर्थस्तावकतया विध्येकवाक्यतया प्रामाण्यम् इति अर्थः. तदेव च उपपादयति **आरोपेत्यादिना. आरोपः** ''**ऐतदात्म्यम् इदं सर्वं**''(छान्दो.उप. ६।८।७) ''**यतो वा इमानि**''(तैत्ति.उप.३।१) इत्यादिवाक्यार्थः. **अपवादः** ''**अथात आदेशो नेति नेति**''(बृह.उप.२।३।६) इतिरूपः. तद्**विषयाः** मिथ्याभूताः सर्वएव धर्माः, **तत्प्रतिपादकत्वेन** सृष्टिब्रह्माभेदप्रतिपादकवाक्यानां तत्प्रतिपादकत्वेन. **विधेयोपासना** प्रपञ्चकर्तृत्वसर्वाभिन्नत्वादिना विहिता या प्रतीकोपासना, तद्**विषयः** इत्यादिना तादृशोपासनाविषयजगत्कर्तृत्वसर्वाभेदादि**स्तावकत्वात्** तादृशधर्मसम्बन्धबोधनेन उपास्यस्तुतिपरत्वाद् इति अर्थः. ननु उपासनायाः ज्ञानरूपत्वात्, तस्याः ज्ञानगोचरेच्छायाश्च कृत्यसाध्यत्वात्, कृतिसाध्यस्यैव च विधिविषयत्वाद्, ज्ञानविध्येकवाक्यतया सृष्टिप्रतिपादकार्थवादानां प्रामाण्यम् उक्तम् असम्भवि ज्ञानविधेरेव असम्भवाद् इति दूषणं परिहर्तुं वादी शङ्कते **नच** इत्यादि. **ज्ञानादि** इति 'आदि'पदेन इच्छा ग्राह्या, **अविधेयत्वं** यागादीनामिव कृतिसाध्यत्वाभावेन अविधेयत्वम्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ननु जगत्कारणप्रतिपादकवाक्यविचारो न कृतः इत्यतः आहुः **सृष्ट्यादि** इति. अस्माकं मते जगतो नित्यत्वात् कर्तुरभावेन तत्प्रतिपादकानां ''**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते**''(तैत्ति.उप.३।१) इत्यादिवाक्यानाम् अर्थवादत्वम् इति अर्थः. ननु कथम् अस्य अर्थवादत्वम्? इत्यतः आहुः **आरोपे**ति. **धर्मे**ति. कर्तृत्वाकर्तृत्वरूपधर्मप्रतिपादकत्वेन विधेयस्तावकत्वात् प्रामाण्यम् इति अर्थः. ननु कृतिसाध्यत्वस्यैव विध्यर्थत्वात् सामान्यतो ज्ञाने यत्नापेक्षाया अभावाद् ब्रह्मज्ञाने विध्यर्थत्वरूपधर्मत्वाभावः इति आशयेन आशङ्कते **नच** इति. **प्रमाणे**ति. प्रमाणं चक्षुरादि, वस्तु घटादि. **परतन्त्रत्वेन** उभयाधीनत्वेन. न हि केवलं ज्ञाने प्रमाणवस्त्वपेक्षा किन्तु प्रत्यक्षादिज्ञाने चक्षुःसन्निकर्षापेक्षापि अस्ति इति यत्नं विना चक्षुःसन्निकर्षो न जायते इति कृत्वा

आकृतिसाध्यत्वाद् इति वाच्यम्. नहि सर्वात्मना असाध्यम्. प्रकारभेदस्तु अप्रयोजकः. सर्वस्यापि कारणेषु पुरुषव्यापृतिः. तद् अत्र वृत्तिसम्पादने प्रमाणासम्पादने वा

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

प्रमाण...इत्यादि श्रवण–मनन–निदिध्यासनादि–स्वकारण–सामग्र्यधीनत्वेन इति अर्थः. वादी समाधत्ते **नहि** इत्यादि. **सर्वात्मना** इत्यादि. तथाच ज्ञानोत्पादकसन्निकर्षादि–सामग्रीसम्पादनार्थं कृतेः अपेक्षणाद् न सर्वात्मना कृत्यसाध्यं ज्ञानं परम्परया ज्ञाने कृतिप्रयोज्यतायाः सत्वाद् इति अर्थः. ननु तथापि यागादेरिव साक्षात्कृति–साध्यत्वाभावाद् न कृतिसाध्यं ज्ञानम् इत्यतः आह **प्रकारभेदः** इत्यादि. **प्रकारभेदः** साक्षात्कृतिसाध्यत्वरूपप्रकारभेदः. **अप्रयोजकः** इति ‘‘न मम’’इत्याकारकः इच्छाविशेषस्यैव यागत्वेन यागेऽपि क्रियाकलापजनककृतेः साध्यत्वं परम्परयैव वाच्यम्. तादृशं च सन्निकर्षादिजनककृतिसापेक्षत्वं ज्ञानेऽपीति साक्षात्कृतिजन्यत्वरूपः प्रकारभेदो अप्रयोजकः इति अर्थः. तदेव उपपादयन्ति **सर्वस्य** इत्यादि. **सर्वस्य** ज्ञानयागादेः. **करणे**[1] सन्निकर्षादिक्रियाकलापादौ, **पुरुषप्रवृत्तिः**[2] पुरुषकृतिसाध्यत्वम्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

परम्परया कृतिसाध्यत्वं ज्ञानेऽपि अस्ति इति आशयेन आहुः **सर्वात्मना.** सर्वप्रकारेण. **असाध्यम्** इति. ज्ञानम् इति शेषः. ननु यागस्य साक्षात्कृतिसाध्यत्वम् अस्ति इति तस्यैव धर्मत्वम् इत्यतः आहुः **प्रकारे**ति. प्रकारो विशेषणं तस्य भेदः. यागे साक्षाद् यत् कृतिसाध्यत्वं विशेषणं तदेव धर्मत्वे प्रयोजकम्. परम्परया यत् कृतिसाध्यत्वं विशेषणं तद् धर्मत्वे प्रयोजकं न भवति इत्येवं रूपो भेदः इति अर्थः. **अप्रयोजकः** इति. धर्मत्वे प्रयोजको न भवति इति अर्थः. साक्षाद् वा परम्परया वा केवलं कृतिसाध्यत्वमेव धर्मत्वे प्रयोजकम् इति स्वीकर्तव्यम् इति भावः. ननु इदं किमर्थं स्वीकर्तव्यम्? इत्यतः आहुः **सर्वस्यापि** इति. यागरूपधर्मस्य यागजन्यापूर्वरूपधर्मस्यापि इति अर्थः. **कारणेषु** यागे करणीभूताः क्रियाकलापाः अपूर्वे कारणीभूताः प्रधानप्रयाजादयः तेषु सर्वेषु पुरुषस्य व्यापृतिः यत्नरूपो व्यापारो अस्ति इति अर्थः. **प्रकृते** ज्ञाने. उपसंहरति **तद्** इति. तत् तस्मात् कारणात्. **अत्र** ब्रह्मज्ञाने. **वृत्तिसम्पादने** वृत्तेः सम्पादनं वृत्तिसम्पादनं, वृत्तेः ब्रह्माकारवृत्तेः, बुद्ध्यवस्थाविशेषरूपायाः इति यावत्. **सम्पादने** उत्पादने. **प्रमाण–सम्पादने** प्रमाणस्य चक्षुरादेः मनसश्च ‘‘**आवृत्तचक्षुः अमृतत्वम् इच्छन्**’’(कठ.उप. २।१।१) इति श्रुत्या चक्षुषि आवृतत्वसम्पादने. ‘‘**अतो निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं**

---

[1] ‘कारणेषु’ इति मूले. [2] ‘पुरुषव्यापृतिः’ इति मूले.

पुरुषकृतिसाध्यत्वम्. अन्यथा सिद्धान्तेऽपि मननादिशास्त्रवैफल्यापत्तेः. साधनप्रतिपादकश्रुतिविरोधश्च. येनापि सर्वक्रियाफलत्वं निराकार्यं तेनापि गुरूपसत्त्यादिना यतितव्यमेव ज्ञानार्थे. तस्माद् यत्रापि विध्यश्रवणं तत्रापि विधिं परिकल्प्य तत्रत्यानां

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अन्यथा ज्ञानस्य परम्परया कृत्यधीनत्वानङ्गीकारे. **सिद्धान्ते** ज्ञानस्य अविधेयत्वाङ्गीकारिमते. **वैफल्यापत्तेः** तेन शास्त्रेण परम्परया कृत्यधीनत्वं बोध्यते ज्ञानस्य तस्य च भवन्मते अनङ्गीकाराद् वैफल्यम् इति अर्थः. **साधन**...इत्यादि. तथाच सर्वथा ज्ञानस्य कृत्यसाध्यत्वे ‘‘**तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व**’’ (तैत्ति.उप.३।१) इत्यादिसाधनबोधकश्रुतिविरोधः इतिभावः. **सर्वक्रिया** इत्यादि. साक्षात्परम्पराकृतिसामान्यफलत्वं **निराकार्यम्** इति अर्थः. **यत्रापि** उत्तरकाण्डे ‘‘**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**’’ (तैत्ति.उप.२।१) इत्यादिवाक्येषु. **विध्यश्रवणं** ‘‘ब्रह्मविदाप्नुयाद्’’ इत्याकारकविध्यश्रवणम्. **विधिं परिकल्प्य** ‘आप्नोति’ इति अस्य पञ्चमलकारत्वं परिकल्प्य इति अर्थः. **तत्रत्यानां** ‘‘**सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म**’’(तैत्ति.उप.२।१) इत्यादिवाक्यानां.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

मुमुक्षुणा’’(त्रिपु.ता.उप.५।१) इति श्रुत्या मनसो निर्विषयत्वसम्पादने पुरुषप्रयत्नसाध्यत्वम् इति अर्थः. ननु वृत्तिसम्पादनादिषु किमर्थं यत्नापेक्षा? इत्यतः आह **अन्यथा** इति. अन्यथा वृत्तिसम्पादने सर्वथा वृत्तिसाध्यत्वास्वीकारे. **सिद्धान्तेऽपि** वेदान्तिमतेऽपि. **मननादि** इति. ‘मन्तव्यः’ इति विधिवैफल्यापत्तेः इति अर्थः. वृत्त्यादिसम्पादनस्य मननोपकारकत्वात्, तत्र कृतिजन्यत्वास्वीकारे तव्यप्रत्ययार्थस्य कृतिसाध्यत्वस्य तत्र अभावाद् वैय्यर्थ्यम् इति भावः. सर्वथा ज्ञाने यत्नानादरे दूषणान्तरम् आह **साधने**ति. **श्रुतिविरोधः**. ‘‘**तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व**’’ (तैत्ति.उप.३।२) इति श्रुतिविरोधः. ‘तपः’पदस्य यत्ने पर्यवसानमेव. ‘‘ ‘**तपः**’ **इन्द्रियनिग्रहः**’’ इति वाक्याद् अन्ततो निग्रहे यत्नापेक्षायाः सत्त्वाद् इति भावः. कर्मवादी साधारणरीतिम् आश्रित्य वदति **येनापि** इति. **तेनापि** इति. येन पुरुषेण साक्षात्परम्परया वा सर्वकृतिफलत्वं लोके पाकादौ, वेदे च यागादौ स्वीक्रियते, ज्ञानेतु निराक्रियते तेन पुरुषेणापि इति अर्थः. **गुरूपसत्यादिना** ‘‘**समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्**’’ (मुण्डकोप.१।२।१२) इति श्रुत्या कृतिजन्य-गुरुसमीपगमनरूप-क्रियाजन्यत्वं ज्ञाने अवश्यं स्वीकर्तव्यम् इति अर्थः. स्वमतम् उपसंहरति **तस्माद्** इति. **यत्र** वेदान्तवाक्ये, तत्रत्यानां वाक्यानां पदानाम् इत्यादि. **तच्छेषत्वम्** तादृशविध्यङ्गत्वम्. **अन्यथा** इति विध्यकल्पने **विरोधोऽपि** इति. वाक्यभेदेन पूर्वकाण्डे अन्यप्रतिपादनम् उत्तरकाण्डे च अन्यप्रतिपादनम् इत्येवं रूपो

तच्छेषत्वं कल्प्यमिति न अर्थो अनया मीमांसया. अन्यथा विरोधोऽपि.

स्याद् एतत्. ब्रह्मविचारएव आरम्भणीयो, न धर्मविचारः. सर्ववेदव्यासकर्त्रा वेदव्यासेन अकृतत्वात् तुच्छफलत्वाच्च. कल्पोक्तप्रकारेण निःसन्दिग्धं करणसम्भवाच्च, आचारपरम्परयापि करणसम्भवाच्च. एतर्ह्यपि सन्देहे सूत्रभाष्य-

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तच्छेषत्वं तद्विध्येक-वाक्यतया प्रामाण्यम् उरीकार्यम् इति अर्थः. **इति** इति हेतौ. पूर्वोत्तरकाण्डद्वयार्थस्यापि पूर्वमीमांसयैव गतार्थत्वाद् हेतोः. **न अर्थो अनया** इत्यादि. **अनया** उत्तरमीमांसया. **न अर्थः** न प्रयोजनम्. इत्थं तथाच ''प्रयोजनम् अनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते'' इति न्यायाद् उत्तरमीमांसायां प्रवृत्तिरेव न सम्भवति इति अर्थः. **अन्यथा ''ब्रह्मविदाप्नोपि परम्''** इत्यत्र विधिं परिकल्प्य तत्रत्यवाक्यानां तदेकवाक्यतया प्रामाण्यम् इति अस्य पक्षस्य अनङ्गीकारे. **विरोधोऽपि** उत्तरकाण्डस्य सर्वस्य सिद्धार्थमात्रबोधकतया गतार्थत्वाङ्गीकारे. **विरोधः ''आम्नायस्य क्रियार्थत्वाद् आनर्थक्यम् अतदर्थानाम्''** (जैमि.सू.१।२।१) इति स्मृतिबलाद् उत्तरकाण्डस्य आनर्थक्यापत्तिरूपो विरोधः इति भावः.

सिद्धान्तैकदेशी पूर्ववादिसिद्धान्तं दूषयितुं प्रत्यवतिष्ठते **स्याद् एतद्** इति. **एतद्** वक्ष्यमाणं पूर्वमीमांसायापि निःप्रयोजनत्वम्. तदेव उपपादयति **ब्रह्म** इत्यादिना. **सर्ववेदव्यासकर्त्रा** सर्ववेदार्थतत्त्ववेत्रा इति अर्थः. **तुच्छफलत्वात् ''तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते''**(छान्दो.उप.८।१।६) इति श्रुत्युक्तसान्तफलप्रतिपादकत्वेन तुच्छफलत्वाद् इति अर्थः. ननु निष्कामकृतकर्मणामपि पुरुषार्थपर्यवसायित्वात् तादृशधर्मानुष्ठानार्थं पूर्वमीमांसा सप्रयोजना भविष्यति इत्यतः आह **कल्पोक्तः** इत्यादि. कल्पसूत्रोक्तः इतिकर्तव्यताम् आदाय निःसन्दिग्धं करणसम्भवाद् इति अर्थः. ननु यस्य सूत्रार्थनिर्णयो न जातः तस्य धर्मानुष्ठानार्थं धर्ममीमांसा आवश्यकतैव इत्यतः आहुः **आचारे**त्यादि. तथा **''श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः''** (मनुस्मृ.२।१२) इत्यत्र सदाचारस्यापि

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

विरोधः इति अर्थः. 'अपि'पदेन सर्वस्य वेदस्य धर्मप्रतिपादकाभावे **''वेदो अखिलो धर्ममूलम्''** ( ) इति स्मृति**विरोधोऽपि** सङ्गृह्यते.

वितण्डावादी प्रत्यवतिष्ठते **स्याद् एतद्** इति. **वेदव्यासकर्ता** वेदविभागकर्त्रा सर्वज्ञेन इति यावत्. **तुच्छफलत्वात्** पुनरावृत्या स्वर्गस्य तुच्छफलत्वात्. ननु पूर्वमीमांसाभावे केवलं स्वर्गकामनावता पुरुषेण कथं यागः कर्तव्यः? इत्यतः आह **कल्पोक्ते**ति. तत्रापि संशये सति आह **आचारे**ति.

याज्ञिकानामेव अनुवृतिः क्रियते, न मीमांसकस्य. तस्मात् साङ्गवेदाध्येतुः निःसन्देहकरणसम्भवाद् न पूर्वयापि कृत्यम्.

किञ्च, परमकृपालुः वेदः संसारिणः संसाराद् मोचयितुं कर्माणि चित्तशुद्ध्यर्थं बोधितवान् इति कूपे अन्धपातनवद् अप्रामाणिकत्वभिया अवसीयते. विपरीतबोधिकातु पूर्वमीमांसा तस्मादपि न कर्तव्या इति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

धर्महेतुत्वेन निरूपणात्, परम्पराचारदर्शनादेव धर्मानुष्ठानसम्भवाद् अप्रयोजिकैव धर्ममीमांसा इति अर्थः. ननु आचारेऽपि मूलान्वेषणेच्छायाम् आचारस्य अनुष्ठापकत्वासम्भवाद् मीमांसावश्यकता इत्यतः आहुः **एतर्ह्यपि** इत्यादि आचारस्य समूलकतासन्देहेऽपि. **सन्देहे** अनुष्ठानप्रकारे सन्देहे. **सूत्रभाष्यं** कल्पसूत्रभाष्यम्. **याज्ञिकानां** निरन्तरयज्ञानुष्ठानशीलानाम्. **करणसम्भवात्** यज्ञादिकरणसम्भवाद् इति अर्थः. धर्ममीमांसायाः प्रकारान्तरेण अप्रयोजकत्वं सिद्धान्तैकदेशी साधयति **किञ्च** इति. **संसारिणः** सांसारिकभोगात् परमपुरुषार्थत्वेन मन्यमानात्. **संसारात्** सांसारिकभोगेभ्यः. **चित्तशुद्ध्यर्थं** चित्तशुद्धिद्वारा मोक्षप्राप्त्यर्थम्. **इति** इति अवसीयते इत्यत्र अन्वेति. **कूपे** इत्यादि. इत्थञ्च चित्तशुद्धिद्वारा मोक्षार्थं कर्मकृतिबोधकः परमकृपालुः वेदात्मको भगवान् संसारमध्यपातिक्षयिष्णुस्वर्गादिफलार्थं जीवान् कूपतुल्यकर्मगहने अन्धतुल्यान् प्रक्षिपन् प्रतारको अप्रामाणिकश्च भवेत् तत्त्वभिया मोक्षार्थं कर्माणि बोधितवान् इति. **अवसीयते** फलितो अर्थः. ननु तथापि क्षयिष्णुफलार्थं कर्मगहने पातयतः प्रतारकत्वं कथं वारितम् इति चेद्, इत्थम्. नरकहेतुसांसारिककर्मभ्यः तेषां जीवानां निवृत्त्यर्थं प्ररोचनार्थं वैदिके कर्मणि तादृशी फलश्रुतिः कृता. तथा सति पापाभावेन सत्सङ्गेनेव कदाचिद् चित्तशुद्ध्या कामाभावे सति मोक्षोऽपि भवेद् इत्यत्र वेदतात्पर्यादिति न प्रतारकत्वगन्धोऽपि इति अवसेयम्. **विपरीतबोधिका** वेदातात्पर्यविषयक्षयिष्णुसांसारिकफले वेदतात्पर्यनिर्धारिका.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इदानीं स्वर्गकामार्थं यागः कर्तव्यः इति श्रुत्यभिप्रायो नास्ति इति वदति **किञ्च** इति. वेदः स्वस्मिन् अप्रामाणिकत्वभिया संसाराख्यान्धकूपपतितान् चित्तशुद्धिद्वारा उद्धर्तुं कर्माणि बोधितवान् इति अवसीयते इति अर्थः. कामनातु प्रवृत्त्यर्थं बोधितवान् इति भावः. अप्रामाणिकांशे दृष्टान्तम् आह **कूपे**ति. अयमेव मार्गः इति केनचिद् प्रतारकेण कूपे अन्धस्य पातनं यथा क्रियते तद्वद् इति अर्थः. **अपि** इति. परा न कर्तव्या चेद्, अस्तु नाम परन्तु पूर्वा त्वयापि न कर्तव्येति अयम् अर्थो 'अपि'शब्देन ध्वन्यते. एतेन

मा एवम्. किं विचारमात्रं न कर्तव्यं, पूर्वकाण्डविचारो वा.

न आद्यः, तुल्यत्वात् समर्थितत्वाच्च.

द्वितीये सामान्यन्यायेन सन्देहे निवार्येलक्षणवत् तदुपयोगः. अनिष्टतया

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इतः परं सिद्धान्तैकदेशिदूषणं समाधातुं पूर्वपक्षी प्रतिवदति **मैवम्** इति. पूर्वपक्षी पृच्छति **किम्** इत्यादिना. **विचारमात्रं** मया **न कर्तव्यं पूर्वकाण्डविचारो वा ?** इति. **न आद्यः** विचारमात्रं त्वया न कर्तव्यम् इति न इति अर्थः. **तुल्यत्वात्** उत्तरमीमांसा–विचारकर्त्रा त्वया ममापि तुल्यत्वात्. यथा उत्तरमीमांसाविचारः तव इष्टः तथा पूर्वमीमांसाविचारो ममापि इति तुल्यता. दूषणान्तरम् आह **समर्थितत्वात् च** इति. त्वया उत्तरमीमांसाविचारो विधेयो मया च पूर्वमीमांसाविचारो न विधेयः इत्यत्र विनिगमकाभावेन समर्थितत्वाद् इति अर्थः. **द्वितीये** पूर्वकाण्डविचारो न कर्तव्यः इति पक्षे. तथाच उत्तरमीमांसाविचारएव कर्तव्यो महाफलत्वाद्. नतु पूर्वमीमांसाविचारोऽपि, कल्पसूत्र–सदाचारादिना अन्यथासिद्धत्वाद् इति सिद्धान्तैकदेश्यभिप्रायः. पूर्वपक्षी समाधत्ते **सामान्य**इत्यादिना. **सामान्यन्यायेन** कर्मानुष्ठाने येनकेनचित् **सन्देहे निवार्ये** इति अर्थः. **लक्षणवत्** कल्पसूत्राणां सन्देहवारकाणां सत्त्वेऽपि असाधारण–सन्देहवारणार्थं यथा प्रातिशाख्यलक्षणानां करणं तथा तद्विलक्षणसन्देहवारणार्थं धर्मविचारस्यापि उपयोगः इति भावार्थः. ननु चित्तशुद्धिद्वारा कर्मणां मोक्षे उपयोगो वेदतात्पर्यविषयः तद्विपरीतं सकामाधिकारकं विनाशिफलं वेदतात्पर्यविषयः इति निरूपणं पूर्वमीमांसायाः दोषः इत्यतः आह **अनिष्टतया** इत्यादि. तथाच सूत्रेषु न क्वापि विनाशिफलसाधकत्वं कर्मणां

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अस्य वैतण्डिकत्वं बोध्यम्.

इदञ्च वैतण्डिकत्वं तवैव शोभते न मम इति अभिमानेन स्वमतस्थापनं कर्तुं मीमांसकः समाधत्ते **मैवम्** इति. **तुल्यत्वाद्** इति. परमते यद् दूषणं तदेव स्वमते चेद्, न उद्भाव्यम् इति भावः. ननु मयापि स्वीक्रियते अयं दोषः इत्यतः आह **समर्थितत्वाद्** इति. त्वयातु अप्रतिज्ञानाद् इत्यादिना विचारः प्रतिपादितएव इति अर्थः. **सन्देहे**ति. ‘‘**तं हैतमेके पशुबन्धएव उत्तरवेद्यां चिन्वते**’’(आप.श्रौ.सू.१९।१४।४) इति श्रुत्या पशुबन्धे नाचिकेताङ्गत्वेन ‘‘**अक्ताः शर्करा उपदधाति**’’(तैत्ति.ब्राह्म.३।१२।५) इति विधिना शर्करोपधानं विहितम्. तत्र घृताक्ता वा तैलाक्ता वा इति सन्देहे ‘‘**तेजो वै घृतम्**’’ (तैत्ति.ब्राह्म.३।१२।५।१२) इति वाक्यशेषाद् घृताक्ताएव शर्करा ग्राह्या इति पूर्वमीमांसायाः उपयोगः इति अर्थः. **लक्षणवद्** इति. प्रातिशाख्यादिवद् इति अर्थः. इदञ्च उक्तं प्राक्.

निरूपणं न मीमांसादोषः किन्तु विचारकाणां स्वभावभेदात्.

किञ्च. आवश्यकत्वादपि निवृत्तानामपि यागादिज्ञानस्य आवश्यकत्वं चित्तशुद्ध्यर्थत्वात्. परमाश्रमभेदेन प्रकारभेदः कायिकादिभेदात्. तत्र आद्यस्य वाचिको द्वितीय-तृतीययोः कायिकः चतुर्थस्य मानसिकः इति आश्रमिणाम्. तस्माद् एकेनैव चरितार्थत्वात् किं द्वितीयेन? इति प्राप्ते.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

वेदतात्पर्यविषयः इति उक्तमिति **न मीमांसादोषः** इति अर्थः. **विचारकाणां** सूत्रभाष्यकाराणाम्. **स्वभावभेदात्** कर्मैव ब्रह्म इति ज्ञानप्रयोजकस्वभाववत्त्वाद् इति अर्थः. **आवश्यकत्वात्** कर्मविचारस्य आवश्यकत्वादपि कर्तव्यता इति अर्थः. आवश्यकतामेव उपपादयति **निवृत्तानाम्** इत्यादिना. **निवृत्तानां** निष्कामानां मुमुक्षूणाम् इति अर्थः. **यागादी**त्यादि. तथाच यागादिज्ञानार्थं पूर्वमीमांसायाः **आवश्यकत्वम्** इति अर्थः. ननु निवृत्तानां ब्रह्मचारिपरमहंसादीनां यज्ञसामग्र्याः असम्भवेन करणासम्भवाद् न पूर्वमीमांसावश्यकता इत्यतः आह **परम्** इत्यादि. **आद्यस्य** ब्रह्मचारिणः. **वाचिकः** ब्रह्मयज्ञः. **द्वितीय-तृतीययोः** गृहि-वानप्रस्थयोः, **कायिकः** अग्निहोत्रादिरूपः. **चतुर्थस्य** प्रव्रजिनः, **मानसिकः** मानसिकमूर्तिपूजनादिरूपः. तस्मात् **स्याद् एतद्** ''**अथातः...**'' इत्यारभ्य एतावत्पर्यन्तनिरूपणाद् **एकेनैव** धर्मविचारेणैव **चरितार्थत्वाद्** मोक्षाप्तिपर्यन्तफलस्य सम्भवाद्. **द्विवतीयेन** ब्रह्मविचारेण, इति प्राप्ते

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ननु पुनरावृत्तिः अनिष्टा, स्वर्गे च पुनरावृत्तिश्रवणाद् अनिष्टजनकयागादिप्रतिपादकत्वात् पूर्वमीमांसायां दोषः इत्यतः आह **अनिष्टतया** इति. वेदेतु कामनाश्रवणं प्रवृत्त्यर्थम्. सूत्रस्य वेदतात्पर्यावगाहित्वाद् न अयं मीमांसादोषः इति अर्थः.

ननु केषाञ्चिद् मीमांसाविचारकाणां ग्रन्थे ''**स्वर्गार्थं सोमेन यक्ष्ये**'' इत्यादिसङ्कल्पो दृश्यते इति चेत्, तेषामेव दोषः इति आह **विचारकाणाम्** इति. ननु ये सदा मीमांसया विचारं कुर्वन्ति तेषाम् अयं दोषः कथम्? इत्यतः आह **स्वभावभेदाद्** इति. ''**तेषां प्रकृतिवैचित्र्याद्**'' (भाग.पुरा.११।१४।८) इति एकादश-स्कन्धोक्तत्वाद् इति अर्थः. ननु स्वर्गादिकामनातु प्रवृत्त्यर्था, अन्यत् किञ्चित् फलन्तु न दृश्यते इति तवैव अस्याः आवश्यकत्वं अस्तु इत्यतः आह **किञ्च** इति. **अपि** इति. त्वयापि पूर्वमीमांसाकर्त्रा इति शेषः. आवश्यकत्वमेव आह **निवृत्तानामपि** इति. **प्रकारभेदः** इति. कायिक-वाचिक-मानसिकभेदात् प्रकारभेदः इति अर्थः. **आद्यस्य** ब्रह्मचारिणः, तस्य वेदपाठएव अधिकारात्वात्. एवं अग्रेऽपि बोध्यम्. उपसंहरति **तस्माद्** इति.

उच्यते. उपासनायाः धर्मत्वेऽपि न ब्रह्मणो धर्मत्वम्, ज्ञानरूपत्वात्, धर्मस्य च क्रियारूपत्वात्. नच अर्थवादानां धर्मइव ब्रह्मणि उपयोगः कर्तुं शक्यः, उत्पत्तिप्रकारफलभेदानाम् अभावात्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पूर्वमीमांसया उत्तरमीमांसायाः गतार्थत्वरूपे पूर्वपक्षे प्राप्ते. **उच्यते** सिद्धान्तिभिः समाधानम् उच्यते इति अर्थः. **धर्मत्वेऽपि** मानसक्रियारूपतया धर्मत्वेऽपि इति अर्थः. **न धर्मत्वं** ज्योतिष्टोमादेरिव क्रियारूपत्वाभावेन न धर्मत्वम् इति अर्थः. **ज्ञानरूपत्वात्** ‘‘**सत्यं ज्ञानम्**’’(तैत्ति.उप.२।१) इत्यादिना ज्ञानरूपत्वोक्त्या कृत्यसाध्यत्वाद् इति अर्थः. सृष्टिवाक्यानां उपासनाविधिशेषतया प्रामाणयम् इति वाद्युक्तं तद्दूषयितुम् आहुः **नच** इत्यादि. ब्रह्मणि अर्थवादानां उपयोगाभावम् उपपादयन्ति **उत्पत्तिः** इत्यादि. तथाच उत्पत्तिविधौ, प्रकारबोधकविधौ, फलबोधकविधौ वा अर्थवादानाम् उपयोगः ब्रह्मोपासनाविधिस्तु न एतेषां एकतरइति न तत्र अर्थवादानाम् उपयोगः इति भावः. तत्र उत्पत्तिविधिः ‘‘**सोमेन यजेत**’’(तैत्ति.सं.३।२।२) इत्यादिरूपः. प्रकारभेदः ‘‘**समिधो यजति**’’(तैत्ति.सं.२।६१) इत्यादिरूपः. फलभेदः ‘‘**खादिरो यूपो भवति खादिरं वीर्यकामस्य**’’(शत.ब्राह्म.३।६।२।१२) इत्यादिरूपः. तत्र ‘‘**एषएव वा प्रथमो यज्ञो यज्ञानां यज्ज्योतिष्टोमः**’’(ताण्ड्यब्राह्म.१६। १।२) इति उत्पत्तौ अर्थवादः. ‘‘**वर्म वा एतद् यज्ञस्य क्रियते यत् प्रयाजानुयाजा इज्यन्ते**’’(   ) इति प्रकारभेदे

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

त्रैवर्णिकाधिकारपक्षस्वीकारात्. समाधानम् आहुः **उच्यते** इति. ‘‘**आत्मा इत्येव उपासीत**’’(बृह.उप.१।४।७) इति विधिवाक्यम् उपासनाविधायकम्. तस्यास्तु ब्रह्मज्ञानसाधनत्वाद् न मुख्यत्वम् इति आशयेन आह **उपासना** इति. तथाच सर्वोपनिषद्वाक्यानां ब्रह्मणि तात्पर्याद् मुख्यत्वेन ब्रह्मप्रतिपादकमेव नतु धर्मप्रतिपादकत्वम् इति भावः. **ज्ञानरूपत्वाद्** इति. ब्रह्मणः इति अनुषज्यते. अर्थवादवाक्यानां ब्रह्मणि उपयोगं खण्डयन्ति **नच** इति. नहि इति अर्थः. **उत्पत्ती**ति. कर्मणि विद्यमानानाम् उत्पत्त्यादि-त्रयाणां ब्रह्मणि अभावाद् अर्थवादवाक्यं तत्र न प्रवर्तते इति अर्थः. ननु कथम् उत्पत्यादित्रये अर्थवादानां प्रवृत्तिः? इति चेद्, इत्थम्. तथाहि उत्पत्तौ अर्थवादवाक्यं यथा ‘‘**असौ आदित्यो न व्यरोचत तं देवाः प्रायश्चितम् ऐच्छन्**’’ (   ) इत्यादि. प्रकारे यथा, ‘‘**अयं वै सोमेनेजानाद्**’’ (   ) इत्यादिः. फले यथा ‘‘**वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता**’’(तैति.संहि.२।१।१।१) इत्यादि. ननु ब्रह्मणि उत्पत्त्यादि-त्रयाणाम् अभावः किमर्थं स्वीकर्तव्यः इति चेद्, न, नित्यत्वात् सर्वदैकरसत्त्वात्

प्रकृतेतु माहात्म्यज्ञानार्थं तदुपयोगः. तस्य च ज्ञानोपयोगो यथा तथा वक्ष्यते चतुर्थे. ‘उपासना’-‘दर्शना’दिपदानां मनोव्यापारत्वमेव. विचारस्यापि यथा

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अर्थवादः. ‘‘**यदाङ्क्ते चक्षुरेव भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते**’’(तैत्ति.सं.६।१।१) इति प्रकारभेदे अर्थवादः. इत्थञ्च ‘‘**आत्मा इत्येव उपासीत**’’(बृह.उप.१।४।७) इत्यादिविधौ न उक्तार्थवादोपयोगः इति फलितम्. ननु तर्हि सृष्ट्यादिप्रतिपादकानाम् उपयोगाभावाद् वैयर्थ्यम् इत्यतः आहुः **प्रकृते** इत्यादि. **प्रकृते** उत्तरकाण्डे. **तदुपयोगः** सृष्ट्यादिवाक्यानाम् उपयोगः. **तस्य** माहात्म्यज्ञानस्य. **ज्ञानोपयोगः** तरतमतया भजनीयता ज्ञाने **वक्ष्यते** अग्रे वक्ष्यते इति अर्थः. **चतुर्थे** इत्यादि. तथाच पूर्वोक्तः उत्पत्त्यधिकारप्रयोगे विधित्रयस्य असम्भवेऽपि विनियोगविधि-बोधितधर्मस्य उत्तरकाण्डेऽपि सम्भवाद्, धर्मविचारेणैव गतार्थत्वाद् न उपयोगः उत्तरमीमांसायाः इति आशङ्क्य समादधुः **चतुर्थे** इत्यादिना. चतुर्थे सम्भवत्यपि चतुर्थे विनियोगविधौ इति अर्थः. **उपासना** इत्यादि ‘‘**आत्मेत्येव उपासीत**’’ (बृह.उप.१।४।७) ‘‘**आत्मा वा द्रष्टव्यः**’’ (बृह.उप.४।५।६) इत्यादि ‘उपासना’-‘दर्शना’दिपदानाम् इति अर्थः. **मनोव्यापारत्वमेव** मनोव्यापारबोधकत्वमेव. ‘एव’कारेण करणीभूतक्रियारूपधर्मबोधकत्वव्यवच्छेदः. इत्थञ्च न पूर्वयोत्तरगतार्थत्वशङ्कापि इति भावः. ननु सृष्ट्यादिवाक्यानां सार्थक्यस्य उपपादनेऽपि व्यासविचारस्य कथं ज्ञानोपयोगः? इत्यतः आहुः **विचारस्य** इत्यादि. **यथा** मोहकशास्त्रसम्पादितविरुद्धबुद्धिनिराकरणप्रकारेण **वक्ष्यते**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

फलरूपत्वात् च इति भावः. ननु ‘‘**यतो वा इमानि भूतानि**’’(तैत्ति.उप.३।१) इत्यादिवाक्यानां कुत्र उपयोग? इत्यतः आह **प्रकृते** इति. **तस्य** माहात्म्यज्ञानस्य. **चतुर्थे** चतुर्थाध्याये. ‘‘**आदित्यादिमतयः**’’(ब्रह्म.सू.४।१।६) इत्यस्मिन् सूत्रे तस्य भक्तिद्वारा भगवत्प्राप्तिरूपसाक्षात्कारे उपयोगः इति वक्ष्यते.

ननु उपासनारूपधर्मस्य कथं क्रियारूपत्वम्? अतः आह **उपासना** इति. ‘‘**आत्मा इत्येव उपासीत**’’(बृह.उप.१।४।७) ‘‘**आत्मा वारे द्रष्टव्यः**’’(बृह.उप.४।५।६) इत्यादिविधीनाम् इति अर्थः. **मनोव्यापारत्वमेव** मानसिकक्रियाबोधकत्वमेव. तथाच एतादृशव्यापारविषयत्वाद् ब्रह्मणो मुख्यत्वेन प्रतिपादनं क्वचिद् माहात्म्यप्रतिपादकानाञ्च सर्वेषां वाक्यानां ब्रह्मण्येव तात्पर्यमिति मुख्यतया ब्रह्मप्रतिपादकत्वमेव मानसक्रियोपासनाधर्मप्रतिपादकत्वम्. एवञ्च एतादृशवाक्यविचारेण कृत्वा मननादिमनोव्यापारः तेन च ब्रह्मसाक्षात्कारो अग्रे च भगवत्प्राप्तिः इत्येवंरीत्या उत्तरमीमांसायाः

ज्ञानोपयोगित्वं तथा अग्रे वक्ष्यते.

किञ्च, औपनिषदज्ञानस्यापि कर्मोपयोगित्वम्. **“यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा वा तदेव वीर्यवत्तरं भवति”** (छान्दो.उप.१।१।१०) इति. अतएव ब्रह्मविदामेव जनकादीनां कर्मणि सर्वदेवसान्निध्यम्. अन्यथा आभासत्वमेव.

*नच ब्रह्मरूपात्मविज्ञाने देहाद्यध्यासाभावेन कर्तृत्वाभावात् कर्मानधिकारः इति वाच्यम्. निरध्यस्तैरेव देहादिभिः कर्मकरणसम्भवात्. अतएव जीवन्मुक्तानां सर्वे व्यापाराः. तथाच स्मृतिः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

जन्माद्यधिकरणम् आरभ्य सर्वत्र **वक्ष्यते** इति अर्थः.

अत्र ब्रह्मसाक्षात्कारोपयोग्युपासनाद्यर्थमेव ब्रह्मविचारकरणम् इति न किन्तु ब्रह्मसाक्षात्कारोपयोगिकर्मसाकल्यायापि ब्रह्मविचारकरणम् आवश्यकमिति न पूर्वोत्तरस्याः गतार्थत्वानुपयोगौ इति आहुः **किञ्च औपनिषद्** इत्यादि. **औपनिषदज्ञानस्य** व्यासविचारनिष्पन्नस्य इति अर्थः. **कर्मोपयोगित्वं** कर्मणा फलसम्पादने असाधारणसहकारिकारणत्वम्. **विद्यया** करणीभूतब्रह्मज्ञानेन. **श्रद्धया** फलावश्यम्भावनिश्चयेन. **उपनिषदा** प्रत्येकोपनिषदर्थज्ञानेन. **वीर्यवत्तरं** फलायोगरहितम्. **अतएव** पूर्वोक्तकारणकलापवता कृतकर्मणां वीर्यवत्तरत्वनियमादेव. **सर्वदेव** इति वक्ष्यमाणद्रव्यभागिदेवसान्निध्यम् इति अर्थः. **अन्यथा** कर्मणि उक्तदेवसान्निध्याभावे. **आभासत्वं** प्रतिष्ठादिलौकिकफलसमर्पकत्वम्. ‘**एव**’कारेण मुख्यफलव्यवच्छेदः. **कर्मानधिकारः** ब्रह्मविद्यावतः कर्मणि अनधिकारः. **निरध्यस्तैः** अविद्यापर्वाविषयीभूतैः. तादृशानां कर्मकरणसम्भवे सम्मतिम् आहुः **अतएव** इत्यादि. **व्यापाराः** श्रूयन्ते इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अत्यावश्यकत्वमिति न पूर्वया गतार्थत्वम् इति आखण्डलार्थः. इदञ्च सर्वं साधनप्रकरणे तृतीयाध्याये द्वितीये पादे उभयव्यपदेशाधिकरणे विस्तरेण वक्ष्यन्ति श्रीमदाचार्यचरणाः. इदानीम् उत्तरमीमांसयैव पूर्वमीमांसायाः चरितार्थ्यम् **अन्यथा** न इति विपरीतदूषणम् उद्भावयन्ति **किञ्च** इति. **अन्यथा** औपनिषदज्ञानाभावे. **आभासत्त्वमेव** कर्माभासत्त्वमेव. कर्माभासत्त्वं फलाजनकत्वम्, कर्मेव आभासते सः कर्माभासः तस्य भावः तत्त्वम्, अनुमित्यजनकहेत्वाभासवद् इति अर्थः. अन्यत् सुगमम्.

वैराग्यानन्तर्यवादी सिंहावलोकनन्यायेन पुनः आशङ्कते ***ननु** इति. ‘**फलञ्च**’ इत्यस्य च ‘**आनन्दावाप्तिः**’ इत्यनेन अन्वयः. **तथाच** फलप्रेप्सोः

नैव किञ्चित् करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अश्नन् गच्छन् स्वपन् श्वसन्।।
प्रलपन् विसृजन् गृह्णन् उन्मिषन् निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्।।
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा।।(भग.गीता १०।८-१०)

इति. अतो ब्रह्मविदामेव कृतं कर्म शुभफलं भवति. अतो धर्मविचारकाणामपि ब्रह्म जिज्ञास्यमेव. तस्माद् न गतार्थत्वानुपयोगौ.

ननु फलप्रेप्सुः अधिकारी. फलञ्च विचारस्य शाब्दं ज्ञानं, तस्य मननादिद्वारा अनुभवः, तस्य च अनर्थनिवृत्तिपूर्वकपरमानन्दावाप्तिः. तथाच विरक्तो अनर्थजिहासुः परप्रेप्सुश्च अधिकारी कस्माद् न भवति "**शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात् परे यदि, श्रमस्तस्य फलं मन्ये ह्यधेनुमिव रक्षतः**" (भाग.पुरा.११।११।१८) इति भगवद्वचनात् केवलस्य निन्दाश्रवणात् इति चेत्,

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

युक्तः पूर्वोक्तज्ञानशाली नतु युक्तस्य सर्वदा ज्ञानम् इत्येवंरूपः. तादृशयुक्तस्य शुकवामदेवादेः तादृशकर्मकरणासम्भवाद् इति भावः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि. **गतार्थत्वे**त्यादि पूर्वमीमांसायाः गतार्थत्वानुपयोगौ इति अर्थः. वेदान्तविचारे त्रैवर्णिको अधिकारीति पूर्वं निर्णीते आनन्तर्यार्थकः 'अथ'शब्दवादी शङ्कते **ननु फल**...इत्यादि. **फलप्रेप्सुः** फलकामनावान्. **तस्य** शाब्दज्ञानस्य. **अनुभवः** निदिध्यासनरूपः. **तस्य** निदिध्यासनस्य. **अनर्थः** संसाररूपः. **अवाप्तिः** साक्षात्कारः. **निष्णातः** औपनिषदज्ञानवान्. **न निष्णायाद्** इत्यादि परब्रह्मविषयकसाक्षात्कारवान् न भवेद् यदि इति अर्थः. **केवलस्य** फलशून्यार्थज्ञानरूपसाधनवतः.

इत्थञ्च अधिकारिविशेषणीभूतवैराग्यादीनां विचारात् पूर्वम् आवश्यकत्वात्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अधिकारित्वे च. एवञ्च "**साङ्गो वेदो अध्येयो ज्ञेयश्च**"(द्र.पात.भा.१।१।१) इति विधिना सार्थवेदाध्ययनं विहितम्. तथाच वेदार्थज्ञानवान् त्रैवर्णिकः विरक्तः सन्नेव फलप्रेप्सुः भविष्यतीति वैराग्यानन्तर्यम् आवश्यकम् इति भावः. ननु वेदार्थज्ञानस्य साक्षाद् विचारएव फलं नतु परप्राप्तिः. एवञ्च न तत्र वैराग्यापेक्षा इत्यतः आह **शब्दे**ति. **भगवद्वचनाद्** भागवते एकादशस्कन्धे निन्दार्थवादरूपभगवद्वचनाद् इति अर्थः.

न, फलकामनायाः अनुपयोगात्, अन्येनैव तत्समर्पणात्. नित्यत्वादपि अर्थज्ञानस्य न फलप्रेप्सुः अधिकारी. निन्दार्थवादस्तु *मननादिविधिशेषः इति मन्तव्यम्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तेषाम् आनन्तर्यमेव 'अथ'शब्दशक्यार्थो भवेद् नतु आनन्तर्यनिरूपकस्य अलाभेन अधिकाररूपोऽपि 'अथ'शब्दस्य अर्थः स्याद् इति वाद्यभिप्रायः सिद्धः. तद् दूषयन्ति **न** इत्यादि. **अनुपयोगाद्** अधिकारिविशेषणार्थम् अनुपयोगाद्. **अन्येनैव ''ब्रह्मविदाप्नोति परम''**(तैत्ति.उप.२।१) इति वेदेनैव. **तत्समर्पणात्** परप्राप्तिकामनावतो ब्रह्मविदो अधिकारिणो बोधनाद्. **नित्यत्वाद्** इति तथाच सन्ध्यावन्दनवद् वेदान्तविचारसम्पाद्यब्रह्मज्ञानस्य नित्यत्वेन फलत्वेन फलकामनावतो अधिकारकल्पने कामनाशून्येन तादृशज्ञानासम्पादने प्रत्यवायो न भवेद् इति भावः. **निन्दार्थवादः** ''अधेनुमिव'' इत्यादिनिन्दार्थवादः. **मनसा*** इत्यादि. तथाच मननिदिध्यासनाकरणे श्रमफलबोधकः इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अत्र समाधानम् आहुः **न** इति. **अनुपयोगाद्** इति. फलकामनावान् अधिकारी तदा वक्तव्यः यदा ''**स्वर्गकामो यजेत**''(आप.श्रौ.सू.१०।२।१) इति वाक्यवत् फलकामनावता पुरुषेण विचारः कर्तव्यः इत्याकारकबोधजनकं प्रतिज्ञावाक्यं चेत्, तदेव नास्ति. कुतः? ''**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**'' इत्यस्माद् वाक्यात् कामनायाः अप्रतीतेः अतः त्रैवर्णिकएव अधिकारी इति भावः. ननु तर्हि परप्राप्तिरूपं फलं मुख्यं, तदेव केनचिद् वाक्येन न बोधितं चेत्, कस्यापि शास्त्रे प्रवृत्तिरेव न स्याद् इत्यतः आहुः **अन्येनैव** इति. ''**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**'' इत्यनेन वाक्येनैव तत्समर्पणाद् परप्राप्तिरूपफलबोधनात्. तथाच वेदाध्ययनानन्तरं ब्रह्ममीमांसापूर्वकवेदार्थज्ञाने जाते ''**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**'' इत्यस्य वाक्यार्थज्ञानानन्तरं फलकामना उत्पद्यते. ततः पूर्वं कामनायाः अभावाद् अर्थजिज्ञासुः त्रैवर्णिकएव अधिकारी, नतु फलप्रेप्सुः इति भावः. ननु तर्हि अर्थज्ञानमेव फलम् अस्तु. तावतैव फलप्रेप्सुः अधिकारी भवति इत्यतः आह **नित्यत्वाद्** इति. सन्ध्यावन्दनादिवद् 'ज्ञेयश्च'इति विधिबोधितत्वेन नित्यत्वाद्, नित्ये कामनायाः अभावाद् इति अर्थः.

ननु यदि अर्थजिज्ञासुरेव अधिकारी तर्हि तस्य परनिष्णातत्वाभावात् '**शब्दब्रह्मणी**'त्यादि निन्दार्थवादस्य का गतिः? इत्यतः आह **निन्दार्थवादे**ति. ''**आत्मा वारे दृष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः**'' (बृह.उप.२।४।५) इत्यत्र श्रवणोत्तरं मननं विहितं, निन्दार्थवादवाक्येऽपि शब्दे निष्णातः परे यदि अनिष्णातः तस्य निन्दा श्रूयते. तेन च कृत्वा मननविधेः अर्थवादो अयम् इति ज्ञायते. एवञ्च मननवि-

ननु ब्रह्मणो विचारे प्रतिज्ञाते विरोधनिराकरणादीनाम् अप्रतिज्ञातार्थत्वम्. नच अवक्तव्यत्वम्. निर्विचिकित्सज्ञानानुदयप्रसङ्गाद् इति चेद्, न, 'ब्रह्मणः' इति न कर्मणि षष्ठी, किन्तु शेषषष्ठी.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अर्थः. **ब्रह्मणो विचारे** सर्ववेदान्तवाक्यानां ब्रह्मणि समन्वयरूपे विचारे. **विरोध...** इत्यादि. तथाच अविरोधसाधनफलानाम् अध्यायत्रितयनिरूप्याणाम् अप्रतिज्ञातनिरूपणम् अधिकं निग्रहस्थानम् इति अर्थः. **नच अवक्तव्यत्वं** समन्वयभिन्नस्य अविरोधादित्रयस्य अनिरूपणीयत्वं मीमांसायाम् इति अर्थः. **निर्विचिकित्से**त्यादि सिद्धान्तविरोधिप्रकार-निरसनपूर्वकब्रह्मज्ञानानुदयप्रसङ्गाद् इति अर्थः. **इति चेद्** ब्रह्ममात्रनिरूपणे निर्विचिकित्स-ब्रह्मज्ञानानुदयः निर्विचिकित्सब्रह्मज्ञानसम्पादकाविरोधादित्रयनिरूपणे च अप्रतिज्ञातनिरूपणदोषः इति उभयतः पाशा रज्जुः इति चेद्, **न** इति अर्थः. तत्र हेतुरूपं समाधानम् उपवर्णयन्ति **ब्रह्मणः** इत्यादिना. **न कर्मणि** न "**कर्तृकर्मणोः कृति षष्ठी**" (पाणि.सू. २।३।६५) इति सूत्रविहिता षष्ठी इति अर्थः. तथाच तादृशषष्ठ्यङ्गीकारे "हरिं भजते" इत्यत्र हरिभिन्नभजनाबोधवद् ब्रह्मभिन्नविचारालाभोऽपि भवेद् इति भावः. **शेषषष्ठी**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ध्यैकवाक्यतया प्रामाण्यं मन्तव्यम् इति भावः. एतावता प्रबन्धेन अधिकारी, परप्राप्तिरूपं प्रयोजनं च उक्तम्. शङ्कामुखेन विषयं निर्वक्तुम् आहुः **ननु** इति. **विरोधे**ति. द्वितीयाध्यायोक्तानाम् इति शेषः. विरोधनिराकरणादीनाम् अनावश्यकत्वाद् अस्तु अप्रतिज्ञातार्थत्वम् इति आशयेन शङ्कते **नच** इति. नहि इति अर्थः. **अवक्तव्यत्वम्.** द्वितीयाध्यायार्थस्य अनिरूपणीयत्वं स्वीक्रियते इति नहि इति अर्थः. तथा सति दूषणम् आहुः **निर्विचिकित्से**ति. परमतनिराकरणपूर्वकस्वमतव्यवस्थापनं हि निरूपणम्. एवञ्च एतादृशनिरूपणाभावात्, साङ्ख्यादीनां निराकरणाभावे जगत्कर्तृ ब्रह्म वा प्रधानं वा इति सन्देहे निःसन्दिग्धं ब्रह्मविषयकं शाब्दबोधात्मकं ज्ञानं न स्याद् इति भावः. समाधानम् आहुः **न** इत्यादि. **न कर्मणि षष्ठी** इति. कर्मषष्ठ्यां स्वीकृतायां केवलं ब्रह्मकर्मक-ज्ञानोपयोगिविचारएव प्रतिज्ञातः स्यात्. तथाच, द्वितीयाध्यायार्थस्य अप्रतिज्ञातत्वेन आकस्मिकत्वापत्तिरूपदोषः स्यात्. शेषषष्ठ्यां स्वीकृतायान्तु तस्याश्च सम्बन्धवाचकत्वात् सम्बन्धस्य च द्विनिष्ठत्वेन ब्रह्मसम्बन्धि यद् विरोधनिराकरणादि, माहात्म्यविशिष्टं ब्रह्म च, एतदुभयज्ञानोपयोगि सर्वमेव प्रतिज्ञातं वेदितव्यम् इति भावः. ननु विवक्षाधीनशेषषष्ठ्यां स्वीकृतायान्तु दोषएव नास्ति, परन्तु "**न कर्मणि षष्ठी**" इति भाष्यं न सङ्गच्छते, कुतः? "**प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यते**"(पाणि.सू.वा.२।

तथाच ब्रह्मसम्बन्धि तज्ज्ञानोपयोगि सर्वमेव प्रतिज्ञातं वेदितव्यम्. नच गौणतापत्तिः अजिज्ञास्यत्वञ्च स्याद् इति वाच्यम्, ब्रह्ममात्रे सन्देहाभावात्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

विशेषरहितं सामान्यं शेषः इति सम्बन्धसामान्ये षष्ठी इति फलितम् इति अर्थः. **तज्ज्ञानोपयोगि** ब्रह्मज्ञानोपयोगि. **सर्वमेव** वेदान्ते निरूप्यं सर्वमेव इति अर्थः. **नच गौणता** इत्यादि. तथाच जिज्ञास्यकोटिप्रविष्टाविरोधादितुल्यतया ब्रह्मणो गौणतापत्तिः इति अर्थः. अतएव अविरोधादितुल्यतया अजिज्ञास्यत्वमपि स्याद् इति अर्थः. **ब्रह्ममात्रे** ब्रह्मस्वरूपसत्तायाम्. **जिज्ञास्यता**निश्चयार्थं विचार्यता.

ननु एवं ब्रह्मणो अजिज्ञास्यत्वे प्रतिज्ञासूत्रविरोधः इति चेद्, न. परे ब्रह्मणि ज्ञानक्रियाशक्तयोः सन्दिग्धत्वेन तन्निर्णयार्थमेव व्यासशास्त्रप्रवृत्तेः धर्मिनिर्णयं विना च

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

२।१०) इति वार्तिकात् समासनिषेधेन कर्मषष्ठ्यां समासप्राप्त्यभावाद् इति चेद्, न, ‘‘**कृद्योगाच्च षष्ठी समस्यते**’’(तत्रैव २।२।३) इति प्रतिप्रसवात् समासो भविष्यति इति कर्मषष्ठ्येव स्वीकार्या इति प्राप्ते ‘‘**न कर्मणि षष्ठी**’’ इति भाष्यं सङ्गतम् इति भावः. अत्र शेषषष्ठ्याः ‘‘**ज्ञोविदर्थस्य करणे**’’(पाणि.सू.२।३।५१) इत्यादि जगत्कर्तृत्वादीनां विधानाभावाद् ‘प्रतिपदे’ति वार्तिकस्य अप्रवृत्त्या समासो भविष्यति इति अलम् अप्रकृतविचारेण.

ननु तर्हि प्रथमाध्यायोक्तानां भगवद्गुणानां द्वितीयाध्योक्तानाम् अविरोधादीनां ब्रह्मसम्बन्धिनां जिज्ञास्यत्वेन प्रतिज्ञातार्थत्वे धर्मांशे ब्रह्मणो गुणभूतत्वाद् गौणत्वापत्तिः. एवं यदंशे प्रतिज्ञा तदंशएव जिज्ञासा प्रवर्ततइति ब्रह्मणो अजिज्ञास्यत्वं च स्याद् इति आशयेन शङ्कते **नच** इति. सर्वज्ञानं धर्मिण्यंशे अभ्रान्तं प्रकारेषु विपर्ययः इत्यनेन धर्म्यंशे भ्रान्तिरेव नास्ति. यथा दूराद् दृष्टे पुरुषे उच्चैस्त्वविशिष्टे पुरोवर्तिनि सन्देहएव नास्ति; स्थाणुत्व–पुरुषत्वांशएव सन्देहः इति तत्रैव जिज्ञासा. तथा पठनकालएव ‘‘**सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म**’’ (तैत्ति.उप.२।१) इत्यस्य वाक्यार्थे ज्ञाते केवलं ब्रह्मांशेतु सन्देहएव नास्ति. परन्तु, एतादृशं ब्रह्म जगत्कारणं वा न वा द्युभ्वादीनां विधारकं न वा? इति सन्देहो जायते. कुत? साङ्ख्यैः साङ्ख्यादिस्मृत्युक्तप्रधानएव एतादृशगुणवत्त्व–स्वीकारात्. एवञ्च यदंशे संशयः तदंशएव जिज्ञासा इति भगवद्गुणानां जिज्ञास्यत्वे सिद्धे, एतादृशगुणवत्त्वेन ब्रह्मणएव जिज्ञासासिद्धेः न अजिज्ञास्यत्वम्. न वा गौणत्वम् इति आशयेन समाधानम् आहुः **ब्रह्ममात्र** इति. ब्रह्मांशे निश्चये सति ब्रह्म एतादृशं वा न वा? ब्रह्म एतादृशमेव कुतो न? इत्याकारकः संशयो वा विचारो वा प्रवर्ततइत्येतदर्थं

सन्दिग्धस्यैव जिज्ञास्यता. गौणत्वन्तु शब्दतएव, नतु अर्थतः.

वेदप्रामाण्यन्तु प्रतितन्त्रसिद्धत्वाद् न विचार्यते. तस्माद् ब्रह्म जिज्ञासितव्यम् इति सिद्धम्.

इति प्रथमाध्याये प्रथमपादे प्रथमं जिज्ञासाधिकरणम्।।१।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तन्निर्णयासम्भवाद् ब्रह्मणोऽपि जिज्ञास्यतोपपत्तेः इति. **गौणत्वम्** इत्यादि तथाच ‘‘**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**’’ इत्यत्र ब्रह्मणो ज्ञानविशेषणतया शब्दमर्यादया गौणत्वेऽपि अर्थतो यथा प्राधान्यं तथा ‘‘ब्रह्मणो जिज्ञासा’’ इत्यत्र षष्ठ्यर्थसम्बन्धविशेषणतया शब्दतो ब्रह्मणो गौणत्वेऽपि अर्थतः प्राधान्यम् अस्त्येव इति अर्थः.

ननु वेदान्तवाक्यविचारेणैव सर्वनिर्णयः कार्यः. सच वेदप्रामाण्यनिर्णयाधीन-इति सः आदौ कुतो न कृतः? इति अतः आहुः **वेद...**इत्यादि. **प्रतितन्त्र...**इत्यादि गौतमकणादादिसकलशास्त्रसिद्धत्वेन अप्रामाण्यकोट्यनुपस्थितेः इति भावः।।१।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

‘मात्र’पदम्. **सन्दिग्धस्यैव** इति. सन्देहविषयीभूतस्य जगत्कर्तृत्वादिधर्मस्य इति अर्थः. **जिज्ञास्यता** विचार्यता. ‘‘राज्ञा सह आगतो अमात्य’’ इत्यत्र शब्दतो राज्ञो गौणत्वेऽपि तद्गौणत्वं मुख्यत्व-विघातकं न भवति इति आशयेन आहुः **गौणत्वन्तु** इति. इष्टापत्त्यर्थे ‘तु’शब्दः. निराधारगुणवर्णनासम्भवाद्, भगवत्सम्बन्धिगुणवर्णने भगवद्वर्णनमेव इति आशयेन आहुः **नतु अर्थतः** इति.

ननु वेदप्रामाण्यांशे संशये सति वेदार्थविचारस्य अजागलस्तनायमानत्वाद् नैव कर्तव्यः इत्यतः आहुः **वेदप्रामाण्यम्** इति. न्यायादितन्त्रसिद्धत्वाद् न विचार्यते इति अर्थः. आस्तिकानां वेदप्रामाण्यांशे सन्देहएव नास्ति इति तदर्थमेव विचारः इति भावः. **तस्माद्** इति. गुणविचारे ब्रह्मणो अर्थतो मुख्यत्वाद् इति अर्थः. विद्यमानगुणवत्तयैव ब्रह्म जिज्ञास्यम् इति शेषषष्ठ्येव युक्ता इत्यत्र गमकम् आहुः **किञ्च** इत्यादि, **इति** इत्यन्तम्. ब्रह्मविचारविषयिणीं प्रतिज्ञां कृत्वा अग्रे कार्यलक्षणे वदति तेन कृत्वा किं ज्ञायते ब्रह्मसम्बन्धिगुणवत्त्वेन ब्रह्मणएव वेदार्थत्वम् इति सम्बन्धषष्ठ्या बोध्यते इति भावः. एवञ्च एतादृशगुणविशिष्टब्रह्मप्रतिपादनं विषयः, सम्बन्धश्च प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभावः, अधिकारी प्रयोजनं च द्वयं पूर्वम् उक्तम्. एतावता प्रबन्धेन अधिकारि-विषय-सम्बन्ध-प्रयोजनरूपम् अनुबन्धचतुष्टयं प्रेक्षावतां प्रवृत्त्यर्थं निरूपितम् ।।१।।

पूर्वसूत्रेण ब्रह्मविचारे प्रतिज्ञाते कथं कर्तव्यः? इति कथम्भावाकाङ्क्षा जायते.

किञ्च, तत्र किं लक्षणं, किं प्रमाणकम् इति जिज्ञासायाम् आह सूत्रकारः

जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वात्।।२।। (१।१।२)

ननु कथम् अत्र सन्देहो यावता ‘‘**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**’’(तैत्ति.उप.२।१) इति आह श्रुतिरेव. विरुद्धं च एतत्. स्वरूपलक्षणाकथने कार्यलक्षणस्य वक्तुम्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उक्तरीत्या वेदान्तार्थब्रह्मणो जिज्ञास्यत्वे प्रतिज्ञाते, केन प्रकारेण जिज्ञास्यता? इति आकांक्षायां समन्वयाविरोधाभ्यां जिज्ञासा कर्तव्या इति तत्र आदौ समन्वयनिरूपणं सूत्रकाराभिप्रेतम् इति सूत्रम् अवतारयन्ति **किञ्च तत्र** इत्यादिना. **तत्र** जिज्ञासाविषयीभूते ब्रह्मणि. **आह** सूत्रेण लक्षण–प्रमाणे आह इति अर्थः. योगविभागेन **शास्त्रयोनित्वाद्** इति सूत्रं पृथग् इति केचिद् वदन्ति. तद् न सम्यग्, अग्रिमसूत्रेषु सर्वत्र हेतुसाध्यनिर्देशपूर्वकम् अधिकरणरचनादर्शनाद्, अत्रापि तथैव उचितत्वाद् इति.

लक्षणार्थं वादी शङ्कते **ननु** इत्यादि. **कथम् अत्र** इत्यादि. निर्धर्मके ब्रह्मणि साधारणधर्मवद्धर्मिज्ञानरूपसंशयसामग्र्यसत्वात् **कथं सन्देहः?** इति अर्थः. **यावता** निश्चयेन **विरुद्धम्** इत्यादि. श्रुतौ ‘‘**सत्यं ज्ञानम्**’’(तैत्ति.उप.२।१) इत्यादिना स्वरूपलक्षणम् उक्त्वा पश्चात् कारणलक्षणम् उक्तं ‘‘**तस्माद् वा एतस्माद् आत्मन आकाशः सम्भूतः**’’(तैत्ति.उप.२।२) इत्यादि. अत्रतु स्वरूपलक्षणम् अनुक्त्वा आदौ कारणलक्षणम् उक्तमिति श्रुतिविरोधः इति अर्थः. **अशक्यत्वाद्** लक्ष्यज्ञानं विना

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तदर्थं समन्वयाविरोधाभ्यां कर्तव्यः इति बोधयितुं सर्वेषां वाक्यानां ब्रह्मणि समन्वयः प्रथमाध्याये प्रतिपाद्यते. अविरोधश्च द्वितीयाध्याये. तत्र आदौ ‘‘**यतो वा इमानि भूतानि**’’(तैत्ति.उप.३।१) इत्यादिवाक्यानां ब्रह्मणि समन्वयं वक्तुं लक्षणप्रमाणबोधकं जन्माद्यधिकरणम् अवतारयन्ति **तत्र** इति.

लक्षणज्ञाने सति संशयो न जायते इति कृत्वा ‘‘जगज्जन्मादिकर्तृत्वं ब्रह्मत्वम्’’ इति ब्रह्मलक्षणं वक्तव्यम्. तच्च न सम्भवति, स्वरूपलक्षणेनैव संशयानु–दयाद् इति आशयेन शङ्कते **ननु** इति. **यावद्** इति अवधारणे. तथाच अध्ययनानन्तरं विचारात् पूर्वमेव लक्षणज्ञाने जाते संशयो न उदेति इति भावः. **विरुद्धम्** इति. वेदे यस्मिन् प्रपाठके स्वरूपलक्षणं तद् अग्रिमप्रपाठके कार्यलक्षणम् उक्तम्. अत्रतु विपरीतमिति श्रुतिविरुद्धम् इति अर्थः. **चोप्यर्थे. एतत्** कार्यलक्षणप्रतिपादनमपि इति अर्थः. **वक्तुम् अशक्यत्वाद्** इति. लक्ष्याज्ञानाद्, लक्ष्ये लक्षणसमन्वयं कर्तुम् अशक्यत्वाद् इति अर्थः.

अशक्यत्वात् विवादाध्यासितत्वाच्च. न हि ब्रह्मणो जगत्कर्तृत्वं सर्वसम्मतम्. नच आगमोदितम् इति वेदमात्रस्य ब्रह्मप्रमाणकत्वं वक्तुं शक्यते. किञ्च, व्यर्थश्च एवं विचारः. लक्षणप्रमाणाभ्यां हि वस्तुज्ञानं भवति. तच्च स्वरूपलक्षणेनैव भवति इति किम् अनेन. तस्माद् अयुक्तम् उत्पश्यामः इति. उच्यते.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

लक्षणस्य कर्तुम् अशक्यत्वाद् इति अर्थः. **विवाद...** इत्यादि. मायाशबलितेश्वररूप-कार्यब्रह्मणएव कारणत्वं निर्गुणस्य वा परब्रह्मणः इति जगज्जन्मादिकारणत्वस्य जिज्ञास्ये ब्रह्मणि विवादाध्यासितत्वाद् इति अर्थः. **नहि** इत्यादि. मायावादिभिः कार्यब्रह्मणः कर्तृत्वाङ्गीकारात् सांख्यैश्च प्रकृतेरेव कारणत्वाङ्गीकाराद् इति अर्थः. **नच आगम...** इत्यादि. ब्रह्मणि जगत्कारणत्वस्य सकलप्रमाणमूर्द्धन्यो यो वेदः **''यतो वा इमानि भूतानि''**(तैत्ति.उप.३।१), **''तस्माद् वा एतस्माद् आत्मन आकाशः सम्भूतः''**(तैत्ति. उप.२।२), **''आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते''**(तैत्ति.उप.३।६) इत्यादिरूपः तेनैव सिद्धत्वाद् न विवादाध्यासितत्वमिति न वक्तुं शक्यते इति अर्थः. आरोपेणापि कारणत्वस्य श्रुतेः गतार्थतासम्भवात्, अनुमानेनापि कारणसिद्धेः न वेदमात्रप्रमाणकत्वं वक्तुं शक्यम् इति अर्थः. **एवं विचारः** पूर्वोक्तरीत्या कारणलक्षणप्रयासः. वैयर्थ्यमेव उपपादयन्ति **लक्षण...**इत्यादिना. **तच्च** ब्रह्मात्मकवस्तुज्ञानं च इति अर्थः. **स्वरूपलक्षणेन** **''शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभावम्''** (नृसिं.ता.उप.९) इत्यादि-स्वरूपलक्षणेन इति अर्थः. **किम् अनेन** कारणलक्षणेन किञ्चित्प्रयोजनम् इति अर्थः. पूर्वपक्षम् उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि. **अयुक्तं** जगज्जन्मादिलक्षणकरणम् अयुक्तम् इति अर्थः. ननु निरूप्ये ब्रह्मणि सन्देहाभावात् कथं व्यासशास्त्रप्रवृत्तिः? इति शास्त्रप्रवृत्तिम् उपपादयितुम् आहुः **उच्यते** इत्यादि. नहि ब्रह्मस्वरूपनिर्णयार्थं शास्त्रं प्रवृत्तं स्वरूपस्य सर्वशास्त्रनिर्णीतत्वात्, किन्तु ब्रह्मणि वेदविरुद्धवाद्यभ्युपगत-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

विवादेति. कार्यलक्षणस्य विवादग्रस्तत्वेन संशयनिराकरणं न भविष्यति इति भावः.

ननु तस्य आगमोक्तत्वाद् निराकरणं भविष्यति इत्यतः आह **नच** इति. **आगमोदितम्** इति कर्तृत्वम् इति शेषः. **मात्रस्य** इति. वेदस्यैव इति अर्थः. अनुमानस्यापि ब्रह्मणि प्रमाणत्वाद् इति भावः. ननु वेदनिरूपितं प्रामाण्यमेव गृह्यते इत्यतः आह **किञ्च** इति. **अयुक्तम्** इति. सूत्रोक्तं कार्यलक्षणम् इति शेषः. कार्यलक्षणेन यः संशयो निवर्तते तं संशयं वक्तुं समाधानम् आहुः **उच्यते** इति.

सन्देहवारकं शास्त्रं वेदप्रामाण्यवादिनाम्।
क्रियाशक्तिज्ञानशक्ति सन्दिह्येते परस्थिते।।६।।

न हि श्रुतिं व्याख्यातुं प्रवृत्तः सूत्रकारः किन्तु सन्देहं वारयितुम्. तत्र "**सत्यं ज्ञानम् अनन्तम्**"(तैत्ति.उप.२।१), "**नित्य-शुद्ध-मुक्त-स्वभावम्**" (नृसिं.ताप.उप.९) इति श्रुत्या कर्तृत्वादिप्रापञ्चिकधर्मराहित्यं प्रतीयते. "**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति**" (तैत्ति.उप.३।१) इति कर्तृत्वञ्च.

तत्र सन्देहः. किं ब्रह्म कर्तृ, आहोस्वित् अकर्तृ. किं तावत् प्राप्तम्? अकर्तृ. कथम्? "**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**"(तैत्ति.उप.२।१) इति प्रधानवाक्यम्, फलसम्बन्धात्. ऋचापि विवृतम् "**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

प्रकारनिराकरणेन वेदसिद्धप्रकारस्थापनार्थम् इति आहुः **सन्देह**...इत्यादि. ननु कथं ब्रह्मणि सन्देहो येन शास्त्रप्रवृत्तिः स्याद्? इति आकांक्षायां सन्देहप्रकारम् आहुः **क्रियाशक्ती**त्यादि. सन्देहबीजम् आहुः **तत्रे**त्यादि. **फलसम्बन्धात्** फलसम्बन्ध-बोधकवाक्यस्य पूर्वतन्त्रे प्राधान्याङ्गीकाराद् इति अर्थः. **ऋचा** वक्ष्यमाणविवरणर्चा.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सन्देहवारकम् इति. नतु वेदव्याख्यानकारकम् इति अर्थः. **शास्त्रं** मीमांसारूपम्. **परस्थिते** परे ब्रह्मणि स्थितिः ययोः ते परस्थिते. एतादृशे ये क्रियाशक्ति-ज्ञानशक्ती, उपनिषत्प्रतिपाद्ये सर्वज्ञत्वजगत्कर्तृत्वे, ते उभेऽपि. **सन्दिह्येते** स्वरूपलक्षणे सन्देहविषयीभवतः. स्वरूपलक्षणस्य निर्विशेषब्रह्मप्रतिपादकत्वाद् इति भावः इति कारिकार्थः. **सूत्रकारः** इति. सूत्रकारो व्याख्याने प्रवृत्तः चेत्, क्रमेण व्याख्यानं कर्तव्यम् इति पूर्वोक्तं श्रुतिविरुद्धत्वं लक्षणयोः पूर्वापरकथनरूपं दूषणं च स्यात्, तदेव नास्ति इति भावः. स्वरूपलक्षणप्रतिपाद्यम् आहुः **तत्र** इति. कार्यलक्षणप्रतिपाद्यम् आहुः **यतो वा** इति. एतदधिकरणाङ्गभूतसंशयाकारम् आहुः **तत्र** इति. पूर्वपक्षम् आहुः **किं तावद्** इति. कार्यलक्षणं न सम्भवति इति पूर्वपक्ष्याशयं वक्तुं पूर्वपक्षं विवृणवन्ति **ब्रह्मविद्** इति. यथा "**स्वर्गकामो यजेत**" (तैत्ति.सं.२।२।५) इति वाक्यस्य स्वर्गरूपफलसम्बन्धात् प्रधानत्वं तथा परप्राप्तिरूपफलसम्बन्धात् प्रधानवाक्यत्वम् इति अर्थः. ननु पूर्वकाण्डे अयं नियमो अस्तु नतु उत्तरकाण्डेति न अस्य प्रधानत्वम् इत्यतः आह **ऋचापि** इति. यदि अस्य प्रधानवाक्यत्वं न स्यात् तर्हि ऋचा विवरणं न स्यादिति 'अपि'ना अयम् अर्थो

परमे व्योमन्, सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता'' (तैत्ति.उप.२। १) इति. फलार्थं च ब्रह्मज्ञानम्. फलञ्च फलवाक्योक्तधर्मज्ञानादेव, न अन्यथा. कर्तृत्वञ्च परविवरणतया उक्तम्.

परं किम्? इति उक्ते ''यः सर्वान्तरः आनन्दः'' इति. कथं सर्वान्तरम्? इति आकांक्षायां परिचयार्थं भूतभौतिकसृष्टिम् उक्त्वा गौणानन्तर्यं परिहृतम्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

फलं साक्षात्कृतब्रह्मात्मकं फलम्. **वाक्योक्त**... इत्यादि सत्यत्व-ज्ञानत्वानन्तत्व-नित्यत्व-शुद्धत्वादिवाक्योक्तधर्मज्ञानात्. न अन्यथा न कार्यब्रह्मगतकर्तृत्वादिधर्मज्ञानाद् इति अर्थः. **परविवरणतया** उपलक्षणतया परब्रह्मपरिचायनार्थम् इति अर्थः. परविवरणमेव उपपादयन्ति **परं किम्** इत्यादिना. तथाच ''**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**' इत्यत्र ज्ञेयं परं च परिचायकधर्मविशिष्टं सोपाधिकं निरूपितं शुद्धबुद्धत्वादिधर्मशून्यं तत्र किम् अपेक्षया परत्वम् इति उक्ते इति अर्थः. तत्र परत्वम् उपपादयति ''**यः सर्वान्तरः**'' इति. तथाच अन्नमयादिचतुष्टयापेक्षया अन्तरत्वात् तेभ्यएव परः इति ज्ञेयापेक्षया अपरः इति च सिद्धम् इति. ननु ज्ञेयब्रह्मापेक्षया कर्तृब्रह्मणि अवरत्वसाधकं सर्वान्तरत्वं गौणेतरापेक्षया अवरत्वसाधकं कुतो न? इति अपेक्षायाम् आह **कथं सर्व**...इत्यादि. **परिचयार्थं** परब्रह्मापेक्षया तस्य अवरत्वपरिचयार्थं विशेष्यम् आदाय शुद्धज्ञेयब्रह्मज्ञापनार्थं च इति अर्थः. **गौणानन्तर्यं** गौणाकाशाद्यपेक्षया न्यूनत्वम्. **परिहृतं** गौणाकाशादिसर्वकर्तृत्वोक्त्या तत्सर्वादित्वस्य सिद्ध्या ''**स्वतन्त्रः कर्ता**'' (पाणि.सू.१।४।५४) इत्यनेन स्वातन्त्र्यस्य च

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ध्वन्यते. विवरणम् आहुः **सत्यम्** इति **विपश्चिता** इत्यन्तम्. **धर्मज्ञानाद्** इति. परत्वज्ञानाद् इति अर्थः. परत्वज्ञानं च जगज्जन्मादिकर्तृत्वेन इति बोधयितुम् आह **कर्तृत्वम्** इति. ''**तस्माद्वा एतस्माद्**''(तैत्ति.उप.२।१५) इत्यादिवाक्येन उक्तम् इति अर्थः. **आनन्द इति** इति. ''**अन्योन्तर आत्मा आनन्दमयः, तेनैष पूर्णः**''(तत्रैव२।५) इत्यादिवाक्येन बोधितः इति अर्थः. अनेन परस्वरूपम् उक्तम् इति भावः. ननु ''**ब्रह्मविद् आप्नोति**''(तत्रैव२।१) इत्यस्मिन् प्रपाठके, अयं क्रमः उक्तः परन्तु ''**अन्योन्तरः आत्मा**''(तत्रैव२।३) इति वाक्यं पश्चाद् उक्तम् इति परस्य गौणत्वं स्याद् इत्यतः आह **कथम्** इत्यादिना. **परिचयार्थम्** इति. उपलक्षणविधया ज्ञानार्थम् इति अर्थः. **भूतभौतिके**ति. आकाशाद्यन्नादिसृष्टिम्. **परिहृतम्** इति. यथा अन्नानन्तरं प्राणस्य गौणत्वं पर्यवसानाभावात्, तथा आनन्दस्यतु वक्तुं न शक्यते, अन्ते पर्यवसानात्,

गौणोपासनाफलञ्च प्रधानशेषतया उक्तम्. तत्र अन्यगतकर्तृत्वारोपानुवादोऽपि सम्भवति. ततश्च ‘‘**भृगुर्वै वारुणिः**’’(तैत्ति.उप.३।१) इति उपाख्यानेऽपि परिचायकत्वाद् गौणकर्तृत्वमेव अनूद्यते, फलाश्रवणाद् इति पूर्वः पक्षः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सिद्ध्या परिहृतम् इति अर्थः. ननु आनन्दमयस्य अवरब्रह्मत्वे तस्य उपासनं फलञ्च वेदो न ब्रूयाद् इत्यतः आह **गौणे**त्यादि. **गौणोपासनाफलं** गौणस्य आनन्दमयस्य उपासना, सर्वकर्तृत्वादिना उपासना तस्याः फलं ‘‘**सो अश्नुते**’’ इत्यादिना कामभोगादिरूपं क्षयिष्णुः फलम्. **प्रधानशेषतया** नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावब्रह्मणः उपासनायाः यद् मोक्षरूपं फलं तच्छेषतया तस्य–तस्य क्षयिष्णुत्वदर्शनेन वैराग्योत्पादनद्वारा मोक्षाङ्गतया उक्तम् इति अर्थः. ननु अवरब्रह्मत्वेन उपहितचैतन्यस्यापि उपाधिनिरासेन विशेष्यमात्रविचारे ज्ञेयब्रह्मत्वात् ‘‘**तस्माद् वा**’’(तैत्ति.उप.२।२) इत्यादिवाक्ये उक्तं कर्तृत्वम् असम्भाव्येव इत्यतः आह **तत्र** इत्यादि. **तत्र** ‘‘**तस्माद् वा**’’(तत्रैव) इत्यादिवाक्ये अन्यासंश्लिष्टा प्रकृतिः तद्गतं यत् कर्तृत्वं, तस्य यो विशेष्ये आरोपः, तेन यः श्रुतिरूपो अनुवादः इति अर्थः. पूर्वानुवाकोक्तप्रकारम् अनुवाकान्तरोक्तोपासनास्थलेऽपि अतिदिशति **ततश्च** इत्यादिना. **ततः** एकत्र शास्त्रार्थस्य सिद्धत्वतः. **परिचायकत्वात्** ‘‘काकवन्तो देवदत्तगृहा’’ इत्यत्रेव अविद्यमानमेव कर्तृत्वं, देवदत्तगृहाणां काकाइव, शुद्धज्ञेयब्रह्मस्वरूपबोधकं भवति. **अनूद्यते** ब्रह्मपरिचायनार्थं प्रकृत्यादिगतं कर्तृत्वं श्रुत्या

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सृष्ट्यादिकर्तृत्वात् च इति भावः. **गौणोपासना** इति ‘‘**ये अन्नं ब्रह्मोपासते**’’ (तत्रैव २।२) इत्यादिवाक्येन उक्ता गौणी या अन्नब्रह्मोपासना तस्याः यत् फलम् इति अर्थः. **प्रधानशेषतया** इति. प्रधानस्य यत् फलं ब्रह्मानन्दावाप्तिरूपं तच्छेषतया तदङ्गत्वेन इति अर्थः. एतेन परस्य सर्वोत्कृष्टत्वं ध्वनितम्. एतावता प्रबन्धेन परे ब्रह्मणि कर्तृत्वं प्रतीयते. स्वरूपलक्षणेतु प्रापञ्चिकधर्मराहित्यं ब्रह्मणि प्रतिपाद्यते इति कृत्वा ‘‘ब्रह्मविदाप्नोति परम्’’ इति वाक्यप्रतिपाद्यं परप्राप्तिसाधनीभूतं यद् ब्रह्मज्ञानं तद्विषयिभूते ब्रह्मणि कर्तृत्वं न प्रतीयते इति विरोधः. एतादृशविरोधपरिहारार्थं ‘‘**प्रजापतिः अकामयत प्रजाः सृजेय**’’ (तैत्ति.संहि.३।१।१।१) इति पूर्वकाण्डोक्तप्रजापतिगतस्य साङ्ख्योक्तप्रकृतिगतस्य वा कर्तृत्वस्य परे ब्रह्मणि आरोपं कृत्वा अनुवादस्यापि सम्भवः इति आशयेन आह **तत्र अन्यगते**ति. ननु भृगुप्रपाठके ‘‘**यतो वा इमानि**’’(तैत्ति.उप.३।१) इत्यादिना यत् कर्तृत्वम् उक्तं तस्य का वा गतिः? इत्यतः आह **ततश्च** इति. **गौणकर्तृत्वमेव** आरोपितकर्तृत्वमेव. ननु तत्र कथम् एवं ज्ञायते? इत्यतः आह **फले**ति. तथाच

सिद्धान्तस्तु

उत्पत्ति-स्थिति-नाशानां जगतः कर्तृ वै बृहत्।।
वेदेन बोधितं तद्धि नान्यथा भवितुं क्षमम्।।७।।
नहि श्रुतिविरोधोऽस्ति कल्पोऽपि न विरुध्यते।।
सर्वभावसमर्थत्वाद् अचिन्त्यैश्वर्यवद् बृहत्।।८।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अनुवादरूपेण उच्यते. **फलाश्रवणात्** कार्यब्रह्मोपासनायाः यत् फलं सर्वकामफलभोगाशनरूपं तस्य एतत् प्रपाठके अश्रवणाद् इति अर्थः. **इति पूर्वपक्षः** जगज्जन्मादिकर्तृत्वलक्षणस्य शुद्धे ब्रह्मणि असम्भवरूपः पूर्वः पक्षः इति अर्थः.

सिद्धान्तम् आहुः **उत्पत्ति**... इत्यादि. **बृहद्** वेदान्तवेद्यं ब्रह्म. **तद्** ब्रह्मणो जन्मादिकर्तृत्वम्. **अन्यथा** श्रुत्यारोप्य अनूद्यते इत्येवं रूपम्. **श्रुतिविरोधः** सत्यज्ञानानन्तत्वकर्तृत्वादीनां गोत्वाश्वत्वादीनामिव सहानवस्थानरूपो विरोधः न क्वापि सिद्धो अस्ति इति भावः. **कल्पोऽपि** ‘‘**सर्वभावः सर्वभवनम्**’’(   ) इत्येवंरूपकल्पसूत्रमपि*, **न विरुद्ध्यते** सर्वभवनसमर्थत्वाद् अकर्त्रपि कर्त्रित्यर्थसम्भवाद् न विरुद्ध्यते इति अर्थः. विरोधाभावे युक्तिम् आहुः **सर्वभावे**त्यादि. सर्वरूपैः भवनं सर्वभावः तत्र समर्थत्वाद् इति अर्थः. सर्वभवनसामर्थ्यम् उपपादयन्ति **अचिन्त्ये**त्यादि. तत् च ‘‘**सत्यं च अनृतं च सत्यम् अभवद्, यदिदं किञ्च, तत् सत्यमित्याचक्षते**’’ (तैत्ति.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

कार्यलक्षणं न सम्भवति इति पूर्वपक्ष्याशयः.

सिद्धान्तं विवृण्वन्ति **सिद्धान्तस्तु** इति. **बृहद्** ब्रह्म इति अर्थः. **तद्धि** इति. कर्तृत्वं हि इति अर्थः. **अन्यथा** आरोपितं गौणम् इति यावत्. **कल्पोऽपि** इति. कल्पसूत्रमपि इति अर्थः. तच्च सर्वभावः सर्वभवनम् इत्याकारकम्. क्वचित् ‘कल्प्य’ इति अपपाठः. **सर्वभावे**ति. सर्वभवने समर्थत्वाद् बृहदकर्तृ कर्तृ भवति इति अर्थः. ननु कथं श्रुतिविरोधो नास्ति? इत्यतः आह **वेदेन** इति. ‘‘**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**’’(तैत्ति. उप.२।१) इत्यनेन साधनं फलञ्च उक्तम्. तत्र साधनविषयीभूते ब्रह्मणि ‘‘सत्यं ज्ञानम्’’ इत्यादिना स्वरूपलक्षणम् उक्त्वा अकर्तृत्वं प्रतिपादितम्. फलकर्मीभूते परे ब्रह्मणि ‘‘**तस्माद्वा एतस्माद्**’’(तत्रैव२।२) इत्यादिवाक्येन कार्यलक्षणम् उक्त्वा कर्तृत्वं प्रतिपादितम्. अथच ‘‘ब्रह्मणा विपश्चिता’’ इत्येतद्वाक्यगततृतीयान्तेन ‘ब्रह्म’-पदेन परस्यैव विवरणं क्रियते. तेनच कृत्वा किं ज्ञायते, लक्षणद्वयस्य एकं ब्रह्मैव लक्ष्यम् इति लक्षणयोः विरोधाभावः. तथाच अचिन्त्यैश्वर्यवत्त्वाद् वेदेनैव कर्तृत्वम् अकर्तृत्वं च

वेदेनैव तावद् जगत्कर्तृत्वं बोध्यते. वेदश्च परमाप्तो अक्षरमात्रमपि अन्यथा न वदति. अन्यथा सर्वत्रैव अविश्वास-प्रसङ्गात्. नच कर्तृत्वे विरोधो अस्ति सत्यत्वादिधर्मवत् कर्तृत्वस्यापि उपपतेः. सर्वथा निर्धर्मकत्वे सामानाधिकरण्यविरोधः. ‘सत्य’-‘ज्ञाना’दिपदानां धर्मभेदेनैव तदुपपतेः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उप.२।६) इति श्रुत्युक्तरूपम्. **वेदेनैव ‘‘यतो वा इमानि भूतानि’’**(तैत्ति.उप.३।१) **‘‘आनन्दाद्ध्येव’’**(तत्रैव३।६) इत्यादिवेदेनैव इति अर्थः. **परमाप्तः** परमसत्यवक्ता. **अन्यथा** वेदस्य मिथ्यावक्तृत्वे. **सर्वत्रैव** अग्निहोत्र–दर्शपूर्णमास–ज्योतिष्टोमादि–विधिषु **‘‘निष्कलं ... शान्तम् अनवद्यम्’’** (श्वेता.उप.६।१९) इत्यादिसर्वस्मिन् वेदे. **तद् अविश्वासे**त्यादि. वेदप्रामाण्ये अविश्वासः इति अर्थः. **विरोधो अस्ति** सर्वभवन–समर्थत्वादेव विरोधो नास्ति इति अर्थः.

ननु निर्धर्मके कर्तृत्वधर्मो असम्भवी इत्यतः आहुः **सत्यत्वादि** इति अर्थः. ननु सत्य–ज्ञानानन्तादिपदानि शुद्धधर्मिमात्रस्य सत्यज्ञानानन्तस्वरूपस्यैव बोधकानि नतु धर्मैः विशिष्टस्यापि इत्यतः आहुः **सर्वथा** इत्यादि. **सामानाधिकरण्यविरोधः** नानापदार्थता–वच्छेदकविशिष्टानाम् अभेदेन बोधस्यैव सामानाधिकरण्यपदार्थत्वात् पदार्थतावच्छेदक–धर्माणां धर्मिणि अनङ्गीकारे च तादृशबोधस्य अनुत्पत्तिरूपो विरोधः इति भावः. **तदुपपत्तेः** सामानाधिकरण्येन बोधोपपत्तेः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

बोध्यते इति भावः. ननु क्वचिद् वेदस्यापि आरोपितार्थबोधकत्वं स्याद् इत्यतः आह **वेदश्च** इति. **अन्यथा** आरोपितम् अर्थम्. **अन्यथा** क्वचित् स्थले तथा स्वीकारे. **अस्ति** इति आरोपितार्थस्य **‘‘स्वर्गकामो यजेत’’** (आप.श्रौ.सू.१०।२।१) इत्यत्रापि सत्त्वेन सन्मार्गोच्छेदापत्तिः. **नच** इति. अस्ति इत्यनेन अन्वितम्. **विरोधः** इति. शुद्धब्रह्मणो निर्धर्मकत्वेन तत्र कर्तृत्वस्वीकारे स्वरूपलक्षणविरोधः इति अर्थः. शुद्धस्य निर्धर्मकत्वमेव नास्ति इति आहुः **सत्यत्वादी**ति. **आदि**ना ज्ञानत्वानन्तत्वपरिग्रहः. **सामानाधिकरण्ये**ति. एकार्थप्रतिपादकत्वरूपसामानाधिकरण्यविरोधः इति अर्थः. तदेव उपपादयति **सत्ये**ति. **धर्मभेदेनैव** इति. यथा ‘‘नीलोत्पलम्’’ इत्यादौ नीलत्वम् उत्पलत्वं च एकस्मिन् उत्पले वर्तते इति कृत्वा ‘‘नीलाभिन्नम् उत्पलम्’’ इति अभेदप्रकारकः अभेदसंसर्गको वा शाब्दबोधो जायते तथा ‘‘सत्यं ज्ञानम्’’ इत्यादावपि धर्मभेदेनैव उपपत्तिः भविष्यति इति भावः.

---

* ‘कल्पो’ न कल्पसूत्रं किन्तु ब्रह्मणि कर्तृत्वाकर्तृत्वविकल्पे कर्तृत्वरूपः कल्पः इत्येव आचार्याशयो भाति–

नच कर्तृत्वं संसारिधर्मो, देहाद्यध्यासकृतत्वाद् इति वाच्यम्. प्रापञ्चिके कर्तृत्वे तथैव, नतु अलौकिककर्तृत्वे. अतएव **‘अस्य’** इति आह. ‘अस्य’ इति पुरोवर्ति प्रपञ्चः इदमा निर्दिश्यते. अनेकभूतभौतिक-देवतिर्यङ्-मनुष्यानेकलोकाद्भुत-रचनायुक्त-ब्रह्माण्डकोटिरूपस्य मनसापि आकलयितुम् अशक्यरचनस्य अनायासेन उत्पत्ति-स्थिति-भङ्ग-करणं न लौकिकम्. प्रतीतञ्च निषेध्यम्, न अप्रतीतं, न श्रुतिप्रतीतम्. सत्यत्वादयश्च लौकिकाः ततः सर्वनिषेधे तदज्ञानमेव

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

नच इत्यादि. **संसारिधर्मः** ‘‘**अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहम् इति मन्यते**’’(भग.गीता.३।२७) इति भगवद्वाक्यात् संसारिधर्मः इति अर्थः. **देहे**त्यादि आत्मत्वेन देहे ज्ञाते तत्र कर्तृत्वस्य आरोपाद् इति अर्थः. **प्रापञ्चिके** अविद्याकृतदेहाद्यध्यासवन्निष्ठे. **तथैव** संसारिधर्मत्वमेव. **अलौकिककर्तृत्वे** वेदबोधितब्रह्मनिष्ठकर्तृत्वे. **अतएव** उक्तलक्षणरूपकर्तृत्वस्य अलौकिकत्वादेव. **अस्य** इति आह ‘‘**जन्माद्यस्य यतः**’’ इत्यनेन सूत्रकारः आह इति अर्थः. अलौकिककर्तृत्वमेव उपपादयन्ति **अस्य** इत्यादिना न अविद्याकृताध्यासवन्निष्ठम्. फलितम् आहुः **प्रतीतम्** इत्यादि. तथाच निषेधस्य प्रतियोगिग्रहसापेक्षत्वाद् अप्रतीतनिषेधो न भवति इति अर्थः. **न श्रुतिप्रतीतं** श्रुत्या प्रतीतस्य श्रुत्या निषेधे विकल्पएव भवेद् नतु निषेधः इति अर्थः. ननु ‘‘**असदेव इदम् अग्र आसीद्**’’(छान्दो.उप.६।२।१), ‘‘**नासदासीद् नोसदासीद्**’’(ऋग्वेद१०।११।१२९।१)

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

संसारीति जीवधर्मः इति अर्थः. **तथैव** इति. देहाध्यासकृतत्वमेव. अस्मिन् अर्थे सूत्रकारसम्मतिम् आहुः **अतएव** इति. **अस्य** इति. अलौकिककर्तृत्वं भगवन्निष्ठमेव इति अभिप्रायेणैव ‘जन्माद्यस्य’ इत्यस्मिन् सूत्रे ‘अस्य’ इति उक्तम् इति अर्थः. **इदमे**ति. ‘इदं’शब्देन इति अर्थः. अलौकिककर्तृत्वमेव आहुः **अनेके**ति. ननु ‘‘**अस्थूलम् अनणुः**’’(बृह.उप.३।८।८) इत्यादिवाक्यानां निर्धर्मकब्रह्मप्रतिपादकत्वात् स्थूलत्वादीनां निषेधइव कर्तृत्वनिषेधोऽपि सम्भवति इत्यतः आहुः **प्रतीतम्** इति. अभावज्ञाने प्रतियोगिज्ञानस्य कारणत्वाद् अनेकब्रह्माण्डकर्तृत्वस्य लोके प्रतीत्यभावाद् अप्रतीतकर्तृत्वस्य निषेधो न सम्भवति इति आशयेन आहुः **न अप्रतीतम्** इति. ननु ‘‘**तस्माद्वा एतस्माद्**’’(तैत्ति.उप.२।१५) इत्यादिश्रुतिप्रतीतकर्तृत्वस्य निषेधः स्याद् इत्यतः आहुः **न श्रुतिप्रतीतम्** इति. ‘‘**अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति**’’ (ताण्ड्यब्राह्म. १०।८।९) इत्यनेन षोडशिग्रहस्य ग्रहणं विहितम्. तदङ्गत्वेन ‘‘**समयाध्युषिते सूर्ये**

भवेत्. नच सत्यत्वादिकं लोके नास्त्येव व्यवहारमात्रत्वात्, कारणगतमेव सत्यत्वं प्रपञ्चे भासते इति वाच्यम्. तर्हि कर्तृत्वं तथा कुतो न अङ्गीक्रियते? स्मृतिश्च स्वीकृता भवति ''कर्ता कारयिता हरिः'' इति. नच आरोपन्यायेन वक्तुं शक्यम्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्यादिश्रुतिभिः **''सत्यं ज्ञानम्''** इत्यादिश्रुतिप्रतीतस्य सत्यत्वादेरपि निषेधात् कथं श्रुतिप्रतीतं निषेद्धुम् अशक्यम् इत्यतः आहुः **सत्यत्वादयः** इति. तथाच लौकिकसत्त्वादेरेव उक्तश्रुत्या निषेधः कृतो नतु श्रुतिप्रतीतसत्त्वादेः इति अर्थः. ननु अस्तिभातिप्रियम् इति ब्रह्मस्वरूपान्तःपाति अस्तित्वमेव सत्यत्वं लोके प्रतीयते, तच्च सर्वत्र व्यापकब्रह्मस्वरूपान्वयेनैव प्रतीयते, तच्च न लौकिकम् इति आहुः **नच सत्यत्वे**त्यादिना. **व्यवहारे**त्यादि. प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वेन सत्यत्वव्यवहारनिर्वाहार्थम्. **कारणगतमेव** विवर्तोपादानगतमेव. **तथा** ब्रह्मगतं लोके, ब्रह्मगतकर्तृत्वसत्तासाधिकां स्मृतिम् आहुः **कर्ता** इत्यादि. ननु **''नित्यशुद्ध''** (नृसिं.ता.उप.७) इत्याद्युक्तब्रह्मणि अन्यगतकर्तृत्वारोपेण श्रुत्यानुवादेऽपि कर्तृत्वव्यवहारोपपत्तेः वास्तवकर्तृत्वस्वीकारे प्रयोजनाभावः इत्यतः आहुः **नच आरोपे**त्यादि. **वक्तुं शक्यं** ब्रह्मणि कर्तृत्वम् इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

षोडशिनः स्तोत्रम् उपाकुर्याद्'' (तैत्ति.संहि.६।६।११।१५) इत्यनेन स्तोत्रोपाकरणमपि विहितम्. कुत्रचिद्, **''नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति''**(ताण्ड्यब्राह्म.१६।१।८) इत्यनेन वाक्येन अतिरात्रे षोडशिग्रहस्य निषेधोऽपि बोध्यते. तेन च कृत्वा विकल्पः प्रतीयते यथा, तथा अत्रापि श्रुतिप्रतीतकर्तृत्वस्य निषेधे तुल्यबलत्वाद् विकल्पः स्याद् नतु निषेधः स्याद् इत्यतो न श्रुतिप्रतीतं निषेध्यम् इति भावः. ननु मास्तु कर्तृत्वनिषेधः श्रुत्युक्तं सत्यत्वादिकन्तु लोकप्रसिद्धमपि तस्यैव निषेधो अस्तु इत्यतः आह **सत्यत्वे**ति. **लौकिकाः** लौकिकत्वेन आदृताः. **ततः** इति तदनन्तरम् इति अर्थः. **सर्वनिषेधे** लोकश्रुतिप्रतीतसाधारण्येन सर्वनिषेधे. **तदज्ञानमेव** ब्रह्माज्ञानमेव. केनचिद्रूपेण निरूपणं कर्तव्यं, सर्वनिषेधे निरूपणं कर्तुम् अशक्यत्वाद् शास्त्रवैय्यर्थ्यं स्वरूपलक्षणवैय्यर्थ्यं च स्याद् इति भावः. **नच** इति. ब्रह्माज्ञानाभावाय श्रुतिप्रतीतमेव सत्यत्वं न लोकप्रतीतमिति न तस्य निषेधः इति भावः. समाधानम् आहुः **तर्हि** इति. तर्हि श्रुतिप्रतीतनिषेधास्वीकारे. **तथा** श्रुतिप्रतीतत्वाद् अनिषेध्यम्. कर्तृत्वस्य स्मृतिप्रतीतत्वमपि आहुः **कर्ता** इति. ननु स्वरूपलक्षणभङ्गान्यथानुपपत्या सत्यत्वं ब्रह्मणि वक्तव्यं, कर्तृत्वन्तु न वक्तव्यं, 'तस्माद्'इत्यादिश्रुत्युक्तकर्तृत्वोपपत्तिस्तु आरोपादेव इति आशङ्कते **नच** इति. **शक्यम्**

तथा सति अन्यस्य स्यात्. तत्र न प्रकृतेः, अग्रे स्वयमेव निषिध्यमानत्वात्. न जीवानाम्, अस्वातन्त्र्यात्. नच अन्येषाम्, उभयनिषेधादेव. तस्माद् ब्रह्मगतमेव कर्तृत्वम्. एवं भोक्तृत्वमपि.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तथा सति अन्यगतजगत्कर्तृत्वस्य ब्रह्मणि आरोपे वक्तव्ये सति. तत्र ब्रह्मान्यपदार्थे जगत्कर्तृत्वं न सम्भवति इति उपपादयन्ति **तत्र** इत्यादिना. **अग्रे** आनन्दमयाधिकरणे, द्वितीयाध्याये च इति अर्थः. **स्वयमेव** व्यासचरणैरेव. ननु इन्द्रादिजीवगतमेव कर्तृत्वं ब्रह्मणि आरोप्यते इत्यतः आहुः **न जीवानाम्** इति. **अस्वातन्त्र्यात्** **''स्वतन्त्रः कर्ता''**(पाणि.सू.१।४।५४) इति स्मृतेः प्रपञ्चोत्पत्तिस्थितिभङ्गकरणे जीवानां प्रपञ्चमध्यपातित्वेन स्वातन्त्र्याभावाद् इति अर्थः. ननु जडचेतनभिन्नानाम् अन्येषामेव प्रपञ्चकर्तृत्वं ब्रह्मणि आरोप्यते इत्यतः आहुः **नच अन्येषाम्** इति. **उभयनिषेधाद्** उभयेनैव अन्येषां निषेधाद् इति अर्थः. ननु उभयातिरिक्तस्य अप्रसिद्धत्वात् कथम् उभयेन अन्येषां निषेधः? इति चेद्, इत्थम्. तथाहि, जडजीवोभयं वस्तु, वेदेन वस्तुत्वेन प्रमीयमाणत्वाद्, आत्मवद्, इति केवलान्वय्यनुमानेन उभयत्वावच्छेदेन वस्तुत्वे निर्धारिते अर्थाद् उभयातिरिक्तवस्तुनो निषेधाद् इति बोध्यम्. ननु उभयोः वस्तुत्वप्रमापको वेदः कः? इति चेद्, अयम्. **''ऐतदात्म्यम् इदं सर्वं तत् सत्यं स आत्मा''**(छान्दो. उप. ६।८।७) इत्यादिरूपो अवसेयः. ब्रह्मणि कर्तृत्वम् उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादिना. कर्तृत्वतुल्यतया भोक्तृत्वम् उपपादयन्ति **एवम्** इति. तथाच यथा कर्तृत्वम् अलौकिकम् तथा ब्रह्मणि **भोक्तृत्वमपि** अलौकिकम् अवसेयम् इति अर्थः. ननु ब्रह्मणि कर्तृत्वं

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इत्यनेन अन्वितम्. **तथा सति** अन्यगतकर्तृत्वस्य ब्रह्मणि आरोपे क्रियमाणे सति. कर्तृत्वस्य अन्यगतत्वमेव नास्ति इति आहुः **न प्रकृतेः** इति. **अग्रे** ईक्षत्यधिकरणे. **अस्वातन्त्र्याद्** इति प्रपञ्चमध्यपातित्वेन उत्पत्तिस्थितिभङ्गकरणे सामर्थ्याभावाद् इति भावः. **नच अन्येषाम्** इति. इदानीन्तनानाम् इति अर्थः. **उभयनिषेधाद्** इति. इन्द्रादीनां जीवान्तःपातित्वाद् जड-जीवयोः उभयोः निषेधादेव अन्येषां निषेधः इति अर्थः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति. **कर्तृत्वम्** इति. श्रुतिप्रतिपाद्यम् अलौकिकम् इति शेषः. एतावता प्रबन्धेन परब्रह्मणि फलवाक्योक्तकर्तृत्वं प्रतिपाद्य कार्यलक्षण-स्वरूपलक्षणयोः विरोधः परिहृतः. इदानीं फलवाक्यानुक्तानां सर्वज्ञत्वादिधर्माणां सकलानां तत्तच्छ्रुतिप्रतिपाद्यानां ब्रह्मणि निरूपयितुं भूमिकां रचयन्ति **एवम्** इति. **भोक्तृत्वम्** इति.

नवा काचित् श्रुतिः कर्तृत्वं निषेधति. विरोधभानात् कल्प्यातु लौकिकपरा. फलवाक्येऽपि अश्रुतानां गुणोपसंहारः कर्तव्यः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

नास्त्येव **''निष्क्रियम्''**(श्वेता.उप.६।१९), **''असङ्गो हि अयं पुरुषः''**(बृह.उप. ४।३।१५) इत्यादिश्रुतिभिः निषेधाद्. अतः आहुः **न वा** इत्यादि. **कर्तृत्वं** भ्रमासमानाधिकरणम् अलौकिकं कर्तृत्वम् इति अर्थः. इत्थञ्च लौकिककर्तृत्वभोक्तृत्वयोः निषेधेऽपि अलौकिके ब्रह्मणि अव्याहतएव इति अर्थः. ननु निष्क्रियत्वासङ्गत्वादीनां ब्रह्मणि श्रुत्या प्रतिपादनाद् अलौकिककर्तृत्वनिषेधिका श्रुतिः कल्प्या, अलौकिककर्तृत्वस्यापि असङ्गादिश्रुतिविरुद्धत्वाद् इत्यतः आहुः **विरोधे**त्यादि. तथाच विरुद्धधर्माश्रयत्वस्य ब्रह्मणि सर्वोपनिषत्समन्वयानुरोधेन अङ्गीकाराद् विरोधाभावात् **कल्प्या** श्रुतिः **लौकिकपरा** लौकिकप्रमाणान्तःपातिन्येव भविष्यतीति न अलौकिककर्तृत्वनिषेधनसमर्थाः भविष्यति इति भावः. ननु अलौकिककर्तृत्वस्य साधितत्वेऽपि **एवं भोक्तृत्वमपि** इत्यनेन प्रतिज्ञातम् अलौकिकभोक्तृत्वं कथं सिध्येद्? इति आकांक्षायां कैमुतिकन्यायेन तत्सिद्धिम् आहुः **फलवाक्ये**त्यादिना. **फलवाक्येऽपि ''ब्रह्मविद् आप्नोति परम्''**(तैत्ति.उप.२।१) इति फलवाक्येऽपि. **अश्रुतानाम्** इत्यादि. तथाच, उपसंहारपादे तत्तदुपासनानुगुणश्रुतिप्रतिपाद्यम् अलौकिकं भोक्तृत्वम् इति अर्थः. **''भुङ्क्ते भोजयते हरिः''** (   ) इति. 'अपि'ना सर्वज्ञत्वादीनां परिग्रहः. ननु यदि अलौकिककर्तृत्वं ब्रह्मणि स्वीक्रियते चेद्, अकर्तृत्वप्रतिपादिकानां श्रुतीनां कर्तृत्वनिषेधकत्वं स्याद् इत्यतः आह **न वा** इति. **श्रुतिः** इति. **''असङ्गो हि अयं पुरुषः''**(बृह.उप.४।३।१५) इत्याद्यकर्तृत्वप्रतिपादिका श्रुतिः इति अर्थः. **विरोधे**ति. श्रुतिप्रतिपाद्ययोः कर्तृत्वाकर्तृत्वयोः अचिन्त्यैश्वर्यवति भगवति विरोधाभावाद् इति अर्थः. ननु ब्रह्मणि अकर्तृत्वप्रतिपादकश्रुत्यन्वयानुपपत्त्या साक्षात्कर्तृत्वनिषेधिका श्रुतिः कल्प्यते इत्यतः आह **कल्प्या** इति. **लौकिके**ति जीवनिष्ठं यद् लौकिककर्तृत्वं तन्निषेधपरत्वेन व्याख्येयम् इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ननु फलवाक्यविवरणरूपाद् **''तस्माद्वा एतस्माद्''**(तैत्ति.उप.२।१) इत्यादिवाक्याद् भोक्तृत्वसर्वज्ञत्वादीनाम् अप्रतीतेः कया रीत्या ब्रह्मणि तेषां धर्माणां विद्यमानत्वबोधो भवति इत्यतः आह **फलवाक्ये**ति. **गुणोपसंहारे**ति. अग्रे उक्तानां गुणानाम् उपास्ये यथा उपसंहारः तथा अग्रे चराचराधिकरणीय-विषयवाक्योक्तभोक्तृत्वस्य भूमाद्यधिकरणोक्तभूमत्वस्य अत्र उपसंहारं कृत्वा तत्तद्धर्माणां ब्रह्मणि विद्यमानत्वम् अनया रीत्या बोध्यम् इति दिक्.

तथाच अयं सूत्रार्थः. **जन्मः आदिः** येषाम् इति अवयवसमासाद् अतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

योग्यगुणानां धर्माणाम् उपास्ये यथा उपसंहारः क्रियते तथा फलवाक्योक्तफले परस्मिन्नपि माहात्म्यज्ञानोपयोगितया भोक्तृत्वसर्वगतत्वसर्वाधिपतित्वादि-श्रुतिबोधितसर्वधर्माणामेव उपसंहारः कर्तव्यः. का कथा भोक्तृत्वस्य इति अर्थः.

एवं सिद्धान्तं निरूप्य सिद्धान्तस्य सूत्रतात्पर्यस्य विषयत्वं ज्ञापयितुं सूत्रार्थम् आहुः **तथाच** इत्यादिना. **जन्म आदि** प्रथमावयवरूपं **येषां** ते जन्मादि. ‘‘**सुपां सुलुग्**’’ (पाणि.सू.७।१।३९) इति जसो लुक्. तथाच ‘आदि’पदस्य यत्पदार्थे उत्पत्तिस्थितिभङ्ग-त्रित्वावच्छिन्ने लक्षणा ‘जन्म’पदतात्पर्यग्राहकं एतत्त्रित्वावच्छिन्नं यतः इति बोधः. **अतद्गुणे**त्यादि. तथाच यत्र समासघटकपदार्थतावच्छेदकधर्मप्रकारेण समासघटक पदार्थानां बोधः तत्र अजहल्लक्षणा, यथा ‘लम्बकर्णः’ इत्यत्र लम्बकर्णत्वधर्माभ्यां लम्बकर्णयोः बोधाद् अजहल्लक्षणा. अत्रतु उत्पत्तित्वस्थितित्वभङ्गत्व-समानाधिकरण-त्रित्वेनरूपेण त्रयाणां बोधाद् उत्पत्तित्वादिधर्मत्रयस्य च सामानाधिकरण्यविशेषणतया बोधात् तैः रूपैः उत्पत्त्यादीनाम् अबोधाद् **अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिः** इति परिष्कृतो अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

एतावता कार्यलक्षणस्य ब्रह्मणि समन्वयं कृत्वा अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिं स्वीकृत्य पुष्टिसृष्टिप्रकारेण सूत्रार्थम् आहुः **तथाच** इति. ‘जन्म’ आविर्भावो येषां प्रकाराणाम् इति अर्थः. **अवयवसमासाद्** इति. भावप्रधानो निर्देशः अवयवसमासत्त्वाद् इति अर्थः. तथाच जन्म आविर्भावः तद्रूपं यद् अवयवं तद् आदिः प्रथमं येषां स्थिति-प्रलयाभिसंवेशानां प्रकाराणां ते जन्मादि. ननु ‘जन्मादयः’ इति वक्तव्ये कथं ‘जन्मादी’ति चेद्, न, अस्य सूत्रस्य वेदरूपत्वं बोधयितुं छान्दसः ‘‘**सुपां सुलुग्**’’ (पाणि.सू. ७।१।३९) इति सूत्रेण ‘‘**जसो लुक्**’’. ब्रह्मणः इति अधिकारलभ्यम्. **यतः** ब्रह्मणः सकाशाद् **अस्य** जगतः **जन्मादि** आविर्भाव-तिरोभावादिप्रकाराः भवन्ति इति सूत्रार्थः. तथाच श्रुतिः ‘‘**सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद. किं स्विद् वनं क उ स वृक्ष आसीत्, यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः. मनीषिणो मनसा पृच्छते दु तद् यद् अध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्. ब्रह्म वनं ब्रह्म स वृक्ष आसीद्, यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः. मनीषिणो मनसा विब्रवीमि वः. ब्रह्माध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्**’’(ऋक्.संहि. १०।१२९।७-८) इत्यादि श्रुत्या जगतो जन्मादिप्रकाराणाम् आविर्भावादिः बोध्यते. तथाच तत्तद्रूपेण जगद्रूपेण च भगवानेव क्रीडति इति पुष्टिसृष्टिप्रकारः सूत्रेण बोधितः इति सर्वम् अनवद्यम्. ननु सर्वे

अथवा जन्मप्रभृति सर्वे भावविकाराः ‘आदि’शब्देन गृह्यन्ते. तथाच जन्मश्च आदिश्च इति एकवद्भावः. ‘आदि’शब्दश्च धर्मवाची. स च स्वसम्बन्धिनं लक्षयति. तस्य उभयसापेक्षत्वाद् उत्पत्तेः विद्यमानत्वाद् अन्यानेव

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

बहुव्रीह्यपेक्षया द्वन्द्वस्य लघुत्वाद् आहुः **अथवा** इत्यादि. **सर्वे भावविकाराः जन्मप्रभृतिः** जन्मावधीकृत्य ‘‘**जायते अस्ति विपरिणमते वर्धते अपक्षीयते नश्यति**’’ (निरुक्त१।२)इति सिद्धाः षड्भावविकाराः जगज्जन्मोत्तरकालीनाः. **एकवद्भावः** समाहारद्वन्द्वः इति अर्थः. **धर्मवाची** पूर्वमीमांसायां ‘गवा’दिपदानां गोत्वादिधर्मशक्तिन्यायेन ‘आदि’पदस्यापि प्राथम्यरूपधर्मे शक्तिः इति अर्थः. विग्रह–वाक्यम् आहुः **तथाच** इत्यादि. **धर्मवाची** प्राथम्यरूपधर्मवाची. **सच** प्राथम्यरूपधर्मश्च **स्वसम्बन्धिनम्** स्वाश्रयनिरूपकात्मकौ सम्बन्धिनौ बोधयति इति अर्थः. **बोधयति** इति अनुमानविधया बोधयति. तथाहि, प्राथम्यम् आश्रयनिरूपकोभयसापेक्षं सम्बन्धि–पदार्थत्वात् प्रतियोगितावद् इतिरीत्या बोधयति इति अर्थः. **तस्य** प्राथम्यस्य. **उभयसापेक्षत्वात्** स्वाश्रयतया जन्मनो निरूपकतया इतरेषां स्थित्यादिपदार्थानाम् इत्येवम्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तद्गुणसंविज्ञानत्वम् अत्र स्वीकुर्वन्ति इति चेद्, न, अत्र अतद्गुणसंविज्ञानत्वस्यैव स्वीकारात्. तथाहि तद्गुणसंविज्ञानत्वं नाम तस्य गुणस्य अवयवपदार्थस्य संविज्ञानं विशेष्यान्वयिना अन्वयित्वम्. अन्वयित्वं च संयोग–समवायान्यतर–सम्बन्धेन. यथा ‘‘शुक्लवासम् आनय’’ ‘‘लम्बकर्णम् आनय’’ इत्यादौ. यत्र विशेषणस्य कार्ये सम्बन्धाभावः तत्र अतद्गुणसंविज्ञानत्वं, यथा ‘‘चित्रगुम् आनय’’. तथाच प्रकृते ‘‘जन्म आदिः येषाम्’’ इत्यत्र ‘आदि’पदार्थः प्राथम्यं, तच्च अपेक्षाबुद्धिजन्यम् इति तस्य बुद्धिकर्तृकत्वं न ब्रह्मकर्तृकत्वम् इति ब्रह्मकर्तृकभवनक्रियायां तस्य सम्बन्धाभावाद् तद्द्वारा जन्मनोऽपि सम्बन्धाभावाद् अतद्गुणसंविज्ञानत्वम् इति मन्तव्यम्. अधिकं प्रकाशे द्रष्टव्यम् इति दिक्.

प्रवाहसृष्टिप्रकारेण सूत्रार्थम् आहुः **अथवा** इति. **भावविकाराः** इति. ‘‘**जायते अस्ति विपरिणमते वर्धते अपक्षीयते नश्यति**’’(निरुक्त.१।२) इति वेदाङ्ग–निरुक्तोक्ताः षड्भावविकाराः इति अर्थः. **गृह्यन्ते** इति. पञ्च इति शेषः. ‘जन्मपदादि’–पदयोः द्वन्द्वेन ‘जन्मादि’पदस्य षड्वाचकत्वम् आहुः **तथाच** इति. **एकवद्भावः** इति. ‘‘**सर्वोऽपि द्वन्द्वो विभाषैकवद् भवति**’’(परिभाषापाठः ३४) इति अर्थः. **धर्मवाची** इति. पूर्वोत्तरमीमांसकयोः वृत्तिविषये सिद्धान्तस्य ऐक्याद् जातिशक्तिवादिनां मीमांसकानां मते

भावविकारान् उपलक्षयति इति ‘आदि’शब्देन अन्ये भावविकाराः. अथवा जन्मनो न आदित्वं, तदाधारस्य पूर्वम् अविद्यमानत्वात्. अन्येतु आदिमन्तः, तदाधारस्य पूर्वं विद्यमानत्वात्. अतः ‘आदि’शब्दः स्वाधारसद्धर्मवाची तद्धर्माणाम् उपलक्षकः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उभयसापेक्षत्वाद् इति अर्थः. **विद्यमानत्वाद्** ‘जन्म’पदेन शक्त्यैव बोधनाद्. **अन्यानेव** प्रपञ्चोत्पत्तिभिन्नानेव. **भावविकारान्** षड्भावविकारान्. **लक्षयति** लक्षणया प्राथम्यनिरूपकान् बोधयति इति अर्थः. तथाच जन्म जन्मनिष्ठ-प्राथम्यनिरूपकाः षड्भावविकाराश्च यतो भवन्ति इति अर्थः.

समाहारद्वन्द्वपक्षमेव प्रकारान्तरेण प्रदर्शयन्ति **अथवा जन्मनः** इत्यादिना. **अनादित्वं** स्वाधिकरणक्षणपूर्वक्षणावृत्तिस्वाधारकत्वमेव अनादित्वं पारिभाषिकं तज्जन्मनो अस्ति इति भावः. **तदाधारस्य** उत्पत्तेः आधारस्य प्रपञ्चस्य. **पूर्वम्** उत्पत्तेः पूर्वः. **अविद्यमानत्वाद्** बहिः प्रकटस्य अविद्यमानत्वाद् इति अर्थः. **तदाधारस्य** स्थित्यादेः आधारस्य. **पूर्वं** स्वाधिकरणक्षणपूर्वक्षणे. **अतः** यतो विद्यमानत्वम् अतः इति अर्थः. **स्वाधारसद्धर्मवाची** तथाच अत्र कल्पे ‘आदि’शब्दः स्थित्यादिभाव-विकाराश्रयस्य सतः प्रपञ्चस्य बोधकः. तत्र **‘स्व’**शब्देन स्थित्यादयो भावविकाराः. **तदाधारः** सन् प्रपञ्चः तस्य **धर्मः** सत्त्वरूपः, तस्य **वाची** शक्त्या तस्य बोधकः. **तद्धर्माणाम्** इत्यादि. सतः प्रपञ्चस्य धर्माणां स्थित्यादिभावविकाराणां **लक्षकः**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

प्राथम्यरूपधर्मवाची इति अर्थः. **स्वसम्बन्धिनं** प्राथम्यरूपधर्मसम्बन्धिनम्. ननु कथं लक्षयति इत्यतः आह **तस्य** इति. **उभयसापेक्षत्वाद्** इति. जन्मनि यत् प्राथम्यं तद् अस्त्यादिपञ्चनिरूपितं जन्मनश्च आश्रयत्वम् एवं रीत्या प्राथम्यस्य उभयसापेक्षत्वाद् इति अर्थः. **‘आदि’शब्देन** इति. यद्यपि ‘आदि’शब्दार्थस्य उभयत्र सम्बन्धाद् षड्भावविकारे लक्षणां वक्तुं शक्यते तथापि ‘जन्म’पदस्य विद्यमानत्वात् पञ्चैव लक्षयति इति अर्थः.

ननु एवं चेद् उभयत्र सम्बन्धेन षट्स्वेव लक्षणा अस्तु जन्मपदं व्यर्थम् इति अस्वरसाद् आह **अथवा** इति. **अनादित्वम्** इति. जन्मनः पूर्वं प्रपञ्चाभावाद् आश्रयं विना तस्य स्थितिः नास्तीति जन्मनो अनादित्वम् इति अर्थः. इदञ्च असत्कार्य-वादिमतेन. **अन्येतु** इति. अस्त्यादीति अर्थः. **तदाधारस्य** प्रपञ्चस्य इति शेषः. **स्वाधारसद्धर्मवाची** इति. स्वम् आदित्वं तदाधारभूतः सद्धर्मः ‘अस्ति’पदवाच्यो धर्मः अस्तित्वं, तस्य वाची तद्बोधकः. अन्यापेक्षया प्राथम्यात् तद्वाचकः सन् विपरि-

अथवा गमन-प्रवेशयोः भेदाद् जन्म आदिः येषाम् इति जात्यपेक्षया एकवचनम्. जन्मतु श्रुतत्वात् सिद्धम्. अथवा किम् अनया कुसृष्ट्या. **जन्म आद्यस्य**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

लक्षणया बोधकः इति अर्थः. एतादृशजन्मादिः यतः इति बोधः, बहुसम्मतत्वेन तद्गुण-बहुव्रीहिपक्षम् आश्रित्य आहुः **अथवा** इत्यादि. **गमने**त्यादि. **गमनम्** आविर्भाव-रूपोत्पत्तिः **प्रवेशो** भङ्गः तयोः **भेदात्** भिन्नार्थबोधकं 'जन्म'-'आदि' इति पदद्वयम् उपात्तम् इति अर्थः. **जन्म** जन्मपदार्थः **आदि** अनादित्वाश्रयः येषाम् इति बहुवचनं तद्गुणसंविज्ञानेन बहूनां सङ्ग्रहार्थम् उक्तं, नतु विग्रहघटकमपि सूत्रे एकवचनस्यैव सत्त्वाद् विग्रहवाक्यन्तु ''जन्म आदिः यस्य तद्'' इत्येवंरूपम्. ननु एकवचनेन सौत्रेण जन्मादिषण्णां बोधः कथम्? इत्यतः आहुः **जात्ये**त्यादि. तथाच विकारत्वधर्मस्य ऐक्याद् एकवचनम् इति भावः. ननु अत्रापि 'आदि'पदस्य षट्समुदायत्वावच्छिन्ने लक्षणया सर्वेषां बोधेऽपि जन्मनो जन्मत्वेन रूपेण अबोधाद् अतद्गुणसंविज्ञानएव भवेद् अतः आहुः **जन्म** इत्यादि. **श्रुतत्वाद्** जन्म तु ''**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते**'' (तैत्ति.उप.३।१) इत्यादिश्रुत्युपस्थापितत्वाद् जन्मविशिष्ट-जन्मनिष्ठादिता-निरूपक-समुदायत्वावच्छिन्ने 'आदि'पदलक्षणातात्पर्यात् तद्गुणसंविज्ञान एवम् इहापि इति अर्थः. ऋजुपक्षान्तरेण सूत्रार्थम् आहुः **किम् अनया** इत्यादिना.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

णामादीनां लक्षकः इति अर्थः. एतेन अजहत्स्वार्थालक्षणा सूचिता. तथाच 'जन्म'पदेन प्रथमो विकारः. 'आदि'पदेन पञ्च विकारा बोध्येति न जन्मपदवैयर्थ्यम् इति भावः.

इदानीं मर्यादासृष्टिप्रकारेण तद्गुणसंविज्ञानपक्षम् आश्रित्य सूत्रार्थम् आहुः **अथवा** इति. **गमन-प्रवेशयोः** इति. जन्म-प्रलययोः मध्ये यत् कार्यस्वरूपं तस्य इति अर्थः. **भेदात्** कारणतो भेदात्. **जन्म** इति. जन्म आदिः येषां तत्, तज्जातीयं जन्मादिः. जातिस्तु अत्र विकारत्वम्. एवञ्च यतो ब्रह्मणः सकाशाद् अस्य जगतः जन्मादिषड्-भावविकाराः भवन्ति इति अर्थः. तथाच ब्रह्मकर्तृकभवनक्रियायां विकाराणाम् अन्वयात् तद्गुणसम्विज्ञानबहुव्रीहिः इति भावः. अस्मिन् अर्थे कारणम् आहुः **श्रुतत्वाद्** इति. ''**यस्मिन् इदं सञ्च विचैति सर्वं यस्मिन् देवा अधि सर्वे निषेदुः**''(महाना.उप.१।२) इति उपनिषदि श्रुतत्वाद् इति अर्थः. **सिद्धम्** इति. ''यत् सिद्धं तद् अन्यं सजातीयं स्मारयति'' इति न्यायात् सञ्चरस्य प्रतिसञ्चरस्मारकत्वं युक्तमेव इति भावः. अस्य सूत्रस्य ''**तस्माद् वा एतस्माद्**'' (तैत्ति.उप.२।१) इत्येव विषयवाक्यम्. ननु ''यतो वा'' इति वाक्यम् इति बोधयितुं प्रकारान्तरेण सूत्रार्थम् आहुः **अथवा** इति. ननु सूत्रात् केवलाकाशस्यैव उत्पत्तिः

आकाशस्य **यतः** इति. ‘‘**तस्माद्वा एतस्माद् आत्मनः आकाशः सम्भूतः**’’ (तैत्ति.उप.२।१) इत्येव विचार्यते फलसम्बन्धित्वात्. तेन एकत्र सिद्धः शास्त्रार्थः प्रकारान्तरेऽपि ‘‘**यतो वा इमानि भूतानि**’’ (तैत्ति.उप.३।१) इत्यत्र विस्फुलिङ्गवत् सर्वोत्पत्तिः, अत्रतु क्रमेण इति विशेषः. एतेन सर्वएव प्रकाराः सूचिताः वेदितव्याः. ब्रह्मविचारे ब्रह्मणोऽपि अधिकृतत्वाद् ब्रह्म इति आयाति

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्येव ब्रह्मणःसकाशात् सर्वस्य उत्पत्तिबोधकम् इदमेव वाक्यं **विचार्यते** विषयत्वेन ‘‘**जन्माद्यस्य यतः**’’(ब्रह्मसू.१।१।२) इति सूत्रेण इति अर्थः. ननु बहूनां तादृशवाक्यानां मध्ये इदमेव विषयत्वेन विचार्यते अत्र किं गमकम्? इत्यतः आहुः **फले**त्यादि. ‘‘**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**’’(तैत्ति.उप.२।१) इति फलबोधकवाक्यघटित–प्रपाठकान्तर्गतत्वेन तस्य प्राधान्याद् इति भावः. ननु अत्र एवमेव अस्तु, अन्यत्रतु ‘‘**यतो वा इमानि**’’ इत्यादिस्थलेषु सर्वत्र तपआदिनिष्पन्नस्य विभूतिरूपस्य वा जीवस्यैव कर्तृत्वम् अस्तु इत्यतः आहुः **तेन** इत्यादि. **तेन** ब्रह्मणः कारणतायाः सिद्‌धत्वेन. **एकत्र सिद्‌धः** इत्यादि. ‘‘**तस्माद् वा एतस्माद् आत्मनः**’’ इत्यत्र ब्रह्मणः प्रपञ्चकारणत्वम् इति शास्त्रार्थः सिद्‌धः. सएव ‘‘**यतो वा इमानि**’’, ‘‘**आनन्दाद्ध्येव खलु इमानि**’’(तत्रैव) इत्यादिस्थले सर्वत्र बोध्यः इति अर्थः. अत्रतु ‘‘**तस्माद् वा एतस्माद्**’’ (तत्रैव) इत्यत्र इति अर्थः. ननु **जन्माद्यस्य यतः** इति सूत्रभागेन ब्रह्मणः कारणत्वं व्यवस्थापितम्. तच्च

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

प्रतीयते, नतु जगदुत्पत्तिः. एवञ्च कार्यलक्षणबोधकत्वं सूत्रस्य न स्याद् इत्यतः आह **तेन** इति. **सिद्धे**ति. दिक्प्रदर्शनरीत्या अन्यान्यपि वाक्यानि अत्र बोद्धव्यानीति ब्रह्मणो जगज्जन्मादिकर्तृत्वं सिद्धम् इति शास्त्रार्थः सिद्धः इति अर्थः. **प्रकारान्तरेऽपि** इति. बोध्यः इति शेषः. ननु कुत्र प्रकारान्तरः? इत्यतः आह **यतो वा** इति. भृगुप्रपाठके इति शेषः. **विशेषः** इति. उभयत्रापि शास्त्रार्थस्य ऐक्यात् कर्त्रैक्यं भगवदिच्छया उत्पत्तिप्रकारभेदः इति विशेषः इति अर्थः. ननु सूत्रे किमर्थम् अयं श्लिष्टप्रयोगः कृतः येन अनेकव्याख्यानं संवृत्तम्? अतः आहुः **एतेन** इति. ‘‘जन्माद्यस्य’’ इति श्लिष्टप्रयोगेण इति अर्थः. **प्रकाराः** इति. स्वमते साक्षात् कर्तृत्वं, परमते तटस्थत्वं, कुत्रचित् क्रमेण इति प्रकाराः इति अर्थः. **सूचिता** इति. व्यासचरणैः इत्यादि. अतएव मयापि व्याख्याता इति अर्थः. ननु लक्ष्ये लक्षणसमन्वयार्थं लक्ष्यबोधकं पदम् अवश्यं वक्तव्यम् अतः आहुः **ब्रह्म** इति. **आयाति** इति. अर्थाद् इत्यादि. एतावता लक्षणांशो व्याख्यातः. प्रमाणांशं

नतु अध्याहारः. शास्त्रे योनिः **शास्त्रयोनिः**. शास्त्रोक्त-कारणत्वाद् इति अर्थः. शास्ति इति शास्त्रं वेदः. सामान्यग्रहणं पूर्वकाण्डे पूर्वसृष्टिवाक्यानां सङ्ग्रहार्थं. यथा अस्यैव कारणत्वं, न अन्यस्य तथा उपरिष्टाद् वक्ष्यामः. मतान्तरवद्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

नित्य–शुद्ध–बुद्ध–मुक्त–स्वभावत्वाद् ब्रह्मणो न सम्भवति इति पूर्वपक्षे प्राप्ते सूत्रशेषेण समाधानम् आहुः **शास्त्रे**त्यादिना. **शास्त्रोक्ते**त्यादि. तथाच ब्रह्मणो यथा लौकिकयुक्त्यगम्यत्वं वेदैकसमधिगम्यत्वं तथा ब्रह्मनिष्ठकारणत्वमपीति वेदोक्तकारणतायां विप्रतिपत्तौ ब्रह्मापि विप्रतिपन्नं स्यात् तस्माद् वेदोक्तमेव अङ्गीकार्यम् इति भावः. **सामान्यग्रहणम्** ‘उपनिषत्’पदम् अनुक्त्वा **‘शास्त्रे’**ति पदप्रयोगरूपम्. **पूर्वसृष्टिवाक्यानां “प्रजापतिः अकामयत”**(तैत्ति.सं.७।१।१) इत्यादिपूर्वकाण्डीयसृष्टिवाक्यानां **सङ्ग्रहार्थं** ब्रह्मणि कारणताप्रतिपादकत्वेन सङ्ग्रहार्थम् इति अर्थः.

ननु प्रजापतिप्रभृतीनां कारणताप्रतिपादकवाक्यैः तेषामेव कारणत्वं प्रतिपाद्यते नतु ब्रह्मणः इत्यतः आहुः **यथा** इत्यादि. **अस्यैव** ब्रह्मणएव. **एव**कारेण ब्रह्मभिन्नानां कारणत्वव्यवच्छेदः. **उपरिष्टाद्** अग्रिमसूत्रेषु. ननु प्रपञ्चस्य उत्पत्तिमत्त्वे प्रपञ्चस्य अब्रह्मत्वापत्तिः इत्यतः आहुः **मतान्तरे**त्यादि. **जन्मादी**ति ‘आदि’पदेन स्थितिभङ्गादीनां

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

व्याख्यातुम् आहुः **शास्त्रे** इत्यादिना. ‘शास्त्रे’ इति विषयसप्तमी. विषयत्वञ्च प्रतिपाद्यत्वम् इति अभिप्रायेण आहुः **शास्त्रोक्ते**ति. वेदप्रतिपाद्येति अर्थः. **वेदः** इति. प्रभुसम्मितः, सुहृत्सम्मितः, कान्तासम्मितश्च इति शब्दस्य त्रिविधत्वाद्. अयं प्रभुसम्मितः शब्दः इति अर्थः. एवञ्च तदाज्ञाभङ्गो न कर्तव्यः इति भावः. ननु उपनिषद्वाक्यमेव अत्र प्रमाणम् इति वक्तव्ये वेदसामान्यग्रहणं किमर्थम्? इत्यतः आहुः **सामान्ये**ति. **पूर्वसृष्टिवाक्यानाम्** इति. भाववृत्तसूक्ते पूर्वकाण्डे द्वितीयाष्टके ब्राह्मणे अष्टमप्रपाठके अन्तिमे अनुवाके ब्रह्मप्रतिपादकसूक्ते, **“सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद”** (तैत्ति.ब्राह्म.२।८।९।६) इत्यादिवाक्यानाम् इति अर्थः. एतेन सकलवेदार्थरूपो भगवान् इति सूचितम्. ननु केषाञ्चिद् मते ब्रह्मणो निमित्तकारणत्वं, ‘योनि’पदमपि निमित्तकारणवाचीति किमर्थं कारणत्वं ब्रह्मणः स्वीक्रियते? इत्यतः आहुः **यथा** इति. **उपरिष्ठाद्** अग्रिमसूत्रे. ननु साङ्ख्यैः यावन्नामरूपात्मकप्रपञ्चजन्मादीनां प्रकृतिविकारत्वं स्वीक्रियते, कुतः **“मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त”** (सांख्यका.३) इति स्मरणात्. तथाच तत्कारणत्वं कथं ब्रह्मणः इत्यतः आहुः **मतान्तरवद्** इति.

जन्मादीनां न विकारित्वं किन्तु आविर्भावतिरोभावावेव, **‘‘तथोत्तरत्र वक्ष्यते तदनन्यत्वाधिकरणे’’**(ब्रह्मसू.२।१।१५) नामलीलायापि न पृथग् निरूपणं प्रपञ्चमध्यपातात्. केचित् पृथग्रूपनामप्रपञ्चकर्तृत्वं योगविभागेन प्रतिज्ञाय समन्वयादिसूत्रेष्वेव हेतून् वर्णयन्ति. अन्वयसिद्ध्यर्थं च अतति व्याप्नोति इति

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ग्रहणम्. **न विकारित्वं** न विकाररूपत्वम्. ननु अर्थरूपप्रपञ्चकर्तृत्वस्य ब्रह्मणि लाभेऽपि नामात्मके अलाभात् तत्र कश्चन अन्यः कर्ता भविष्यति इत्यतः आहुः **नाम...**इत्यादि. तथाच ‘जन्माद्यस्य’ इत्यत्र ‘इदं’शब्देन सन्निकृष्टमात्रपरामर्षाद् नामप्रपञ्चस्यापि श्रोत्रसन्निकर्षात् सोऽपि ‘इदं’शब्देन सङ्गृहीतः इति बोध्यम्.

केचित् शङ्कराचार्याः. तेषां मते दशसूत्रं जन्माद्यधिकरणम्(!?). तत्र प्रथमसूत्रेण अर्थसृष्टिप्रतिज्ञा **‘‘शास्त्रयोनित्वाद्’’** इति सूत्रं पूर्वसूत्राद् विभज्य, तन्मते पञ्चम्यर्थानन्वयात् प्रथमान्तं सूत्रम् इति उक्त्वा, द्वितीयसूत्रेण शब्दसृष्टिप्रतिज्ञा इत्येवंरूपं तन्मतम् उपन्यस्यन्ति **पृथग्** इत्यादिना. **हेतून् वर्णयन्ति** समन्वयार्थहेतून् वर्णयन्ति इति अर्थः. सूत्रस्य प्रथमान्तताम् उपवर्णयन्ति **अन्वय...** इत्यादिना. तद्दूषयन्ति **न एतद्**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अस्मिन् अर्थे सूत्रकारसम्मतिम् आहुः **वक्ष्यते** इति. द्वितीयाध्याये इति शेषः. ननु **‘‘तस्माद् वा एतस्माद्’’**(तैत्ति.उप.२।१।१) इत्यादिवाक्येन आकाशवाय्वादिरूपार्थजनकत्वं प्रतिपादितं नतु आकाशवाय्वादिशब्दजनकत्वम् इति न्यूनता स्याद् इत्यतः आहुः **नाम** इति. **प्रपञ्चे**ति. नामरूपात्मकप्रपञ्चस्य शब्दार्थोभयरूपत्वात्, प्रपञ्चवाचकस्य पदस्य सूत्रे विद्यमानत्वाद् न न्यूनता इति भावः.

मतान्तरम् आह **केचिद्** इति. **योगविभागेन** इति. युज्यते लक्ष्येण सह इति योगः, सूत्रं तस्य विभागेन इति अर्थः. एवञ्च रूपप्रपञ्चकर्तृत्वबोधकं **‘‘जन्माद्यस्य’’** इति एकं सूत्रम्. नामप्रपञ्चकर्तृत्वबोधकं **‘‘शास्त्रयोनित्वाद्’’** इति अपरं सूत्रम् इति विभागेन प्रतिज्ञां कृत्वा इति अर्थः. ननु सूत्रन्तु पञ्चम्यन्तम् अर्थाद् आयातं यद् ‘ब्रह्म’पदं तत् प्रथमान्तम् इति समानविभक्तिकत्वाभावेन अन्वयाभावाद् कथं तद्बोधकत्वं तस्य? इत्यतः आहुः **समन्वयादि** इति. तथाच ‘समन्वयादि’सूत्राद् आरभ्य सूत्रेषु हेतुपञ्चम्यन्तत्वं स्वीकुर्वन्ति. अत्रतु ‘‘शास्त्रयोनित्वाद्’’ इति प्रथमान्तमेव वर्णयन्ति इति भावः. ननु अस्य प्रथमान्तत्वे को अर्थः? इत्यतः आहुः **अन्वये**इति. शास्त्रयोनित्वं अतति-व्याप्नोति ‘अत्’ तस्य भावः तत्त्वम्. ‘‘शास्त्रयोनित्वात्’’. **शास्त्रे**ति. सप्तम्या निरूपितत्वम् अर्थः. एवञ्च शास्त्रस्य

अत्. शास्त्रे योनित्वं प्राप्तं तद् इति, न एतत् सूत्रकारसम्मतम् इति प्रतिभाति. तस्मात् सर्वज्ञत्वं सर्वशक्तिमत्वञ्च सिद्धं निरङ्कुशजगत्कर्तृत्वेन. ननु न सर्वो वेदो ब्रह्मणो जगत्कर्तृत्वे मानं, तपोयज्ञादियुक्तप्रजापतिप्रभृतीनामेव जगत्कारणत्वस्य पूर्वकाण्डे तत्तदुपाख्यानेषु अवगम्यमानत्वात्. नच अवान्तरकारणत्वं, परस्य अश्रवणात्. उत्तरकाण्डेतु द्वयप्रतिपादनाद् विरोधः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्यादिना. दूषणन्तु **शास्त्रयोनिः** एतावतैव प्रतिज्ञासिद्धेः **'त्वाद्'** इतिभागस्य वैय्यर्थ्यम्. नहि सर्वज्ञः सूत्रकारो व्यर्थं प्रयुङ्क्ते इति. स्वोक्तसूत्रार्थं निगमयन्ति **तस्माद्** इत्यादिना. जगत्कर्तृत्वेन ब्रह्मणि सर्वज्ञत्वसर्वशक्तिमत्त्वे असहमानाः प्रत्यवतिष्ठन्ते **ननु** इत्यादिना. **प्रभृति**पदेन क्षेत्रज्ञप्रकृत्यादीनां ग्रहणम्. **तत्तदुपाख्यानेषु** प्रजापतिक्षेत्रज्ञाद्युपाख्यानेषु **अवान्तरकारणत्वं** मुख्यं कारणत्वं परब्रह्मणः, अवान्तरकारणत्वं प्रजापत्यादीनाम्. **परस्य** इत्यादि. तथाच इन्द्रियाणां सन्निकर्षइव यस्य अवान्तरकारणं प्रजापतिः स्यात् तादृशपरस्य प्रपाठके अश्रवणाद् इति अर्थः. ननु उत्तरकाण्डेन ब्रह्मणि कर्तृत्वं व्यवस्थापनीयम् अतः आहुः **उत्तरे**त्यादि. **द्वयप्रतिपादनात्** **''तस्माद् वा''** शब्दस्वरूपत्वाद् नामप्रपञ्चकर्तृत्वं भगवतः सूत्रेण बोधितम् इति भावः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

एतन्मतं खण्डयन्ति **न एतद्** इति. **प्रतिभाति** इति. 'शास्त्रयोनिः' इति एतावतैव त्वदीयार्थसिद्धौ शेषवैय्यर्थ्यम्. मात्रालाघवस्य सूत्रकाराणां हर्षजनकत्वाद् अक्षरद्वयगौरवस्य दुःसहत्वाद् इति भावः. **जगत्कर्तृत्वेन** इति शास्त्रप्रतिपाद्यस्वतन्त्रजगत्कर्तृत्वलक्षणेन इति अर्थः. प्रकृत्यादिवारणाय **'शास्त्रे'**ति. केवलशास्त्रप्रतिपाद्यस्यैव लक्षणत्वे धर्मे व्यभिचारः इत्यतो 'जगद्' इति. शास्त्रप्रतिपाद्यजगत्कर्तृत्वं प्रजापतेरपि अस्ति इत्यतः स्वतन्त्रेति. अत्र पूर्वकाण्डे निर्भरं मन्यमानाः ब्रह्मणि स्वातन्त्र्येण जगत्कर्तृत्वम् असहमानाः मीमांसकाः प्रत्यवतिष्ठन्ते **ननु** इति. **तपोयज्ञादियुक्ते**ति. क्वचित् पुस्तके 'तपोयज्ञादिप्रयुक्ते'ति अपपाठः. **अवगम्यमानत्वाद्** इति. **''प्रजापतिरकामयत प्रजाः सृजेय''** (तैत्ति.संहि.३।१।१।१) इत्यादिना तपःसाहचर्येण प्रजापतेः यज्ञसाहचर्येण अन्यस्य जगत्कारणत्वप्रतिपादनाद् इति अर्थः. **नच** इति. नहि इति अर्थः. **अवान्तरे**ति. भृत्यादीनां यथा यत्किञ्चित् कारणत्वं तथा प्रजापतेः इति नहि इति अर्थः. **अश्रवणाद्** इति. प्रजापत्यादिव्यतिरिक्तस्य अश्रवणाद् इति अर्थः. ननु उत्तरकाण्डे श्रवणं वर्तते इत्यतः आह **उत्तरे**ति. **द्वयप्रतिपादनाद्** इति. कर्तृत्वाकर्तृत्वयोः द्वयोः प्रतिपादनाद्

सन्देहश्च. मीमांसायाः सन्देहनिवारकत्वेऽपि एकांशस्य अप्रामाण्यं स्यात्. उभयसमर्थने शास्त्रवैफल्यं वा. वेदप्रामाण्यादेव तत्सिद्धेः. बाधितार्थवचनं वेदे नास्ति इति अवोचाम. किञ्च. वेदान्ताः किं वेदशेषा, वेदा वा? न आद्यः, अनुपयोगात्. *अनारभ्याधीतत्वेन तदुपयोगित्वे पूर्वकाण्डविचारेणैव गतार्थत्वम्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

‘‘**यतो वा**’’ इत्यादिश्रुतिभिः कर्तृत्वस्य, ‘‘**नित्यशुद्धबुद्धः**’’ इत्यादिभिः कर्तृत्वाभावस्य इति विरोधः इति अर्थः. **सन्देहश्च** कर्तृत्वतदभावोभयसाधारणचैतन्यधर्मदर्शनात् सन्देहोऽपि इति अर्थः. **मीमांसायाः** उत्तरमीमांसायाः. **एकांशस्य** इत्यादि. तथाच कोटिद्वयमध्ये यत्कोटिनिर्णयः क्रियते तदितरकोटिप्रतिपादकवेदान्तस्य अप्रामाण्यं स्याद् इति अर्थः. **उभये**त्यादि. कोटिद्वयस्यापि ब्रह्मणि अङ्गीकारे इति अर्थः. **शास्त्र-वैफल्यं** विरोधस्यैव अभावेन तन्निर्धारार्थं व्याससूत्ररूपशास्त्रस्य वैफल्यम् इति अर्थः. **तत्सिद्धेः** विरुद्धकोटिद्वयस्य ब्रह्मणि सिद्धेः इति अर्थः. वादी वेदप्रामाण्यमेव दृढं प्रदर्शयति **बाधितार्थः** इत्यादि. वेदान्तप्रामाण्ये तदुक्तो अर्थः सिध्येद् इति. तत्प्रामाण्यमेव आक्षिपति **किञ्च** इत्यादिना **न आद्यः** इति. तत्र हेतुः **अनुपयोगाद्** इति. वेदशेषत्वं हि द्वेधा वेदबोधितकर्मोपकारित्वेन कर्मफलोपकारित्वेन वा. न हि वेदान्तानां कर्मस्वरूपोपकारित्वघटकद्रव्यदेवताप्रतिपादकत्वरूपं सम्भवति. तत्र द्रव्यदेवते हि कर्मस्वरूपम्. तत्र नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावोदासीनस्य कर्मस्वरूपाघटकत्वेन स्वरूपोपकारित्वासम्भवाद्, नापि फलोपकार्यङ्गत्वम् तादृशब्रह्मणो अकारणत्वेन तत्प्रतिपादनस्य

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति अर्थः. **सन्देहः** इति. उभयप्रतिपादकवाक्ययोः प्रामाण्याद् एकतरपक्षपातस्य अशक्यत्वात् सन्देहः इति अर्थः. ननु अतएव मीमांसायाः उपयोगः इत्यतः आह **मीमांसा** इति. **उभयसमर्थने**ति कर्तृत्वाकर्तृत्वोभयसमर्थने. **अवोचाम** इति बाधितार्थप्रतिपादकत्वरूपाप्रामाण्यं वेदे नास्ति इति उक्तं प्राग् इति अर्थः. एवञ्च स्वतन्त्रजगत्कारणत्वं कुत्रापि नास्ति इति बीजाङ्कुरन्यायेन अनादिसृष्टिवादएव स्वीकार्यः इति ‘‘**यतो वा**’’(तैत्ति.उप.३।१) इत्यादिना कार्यलक्षणं न सम्भवति इति भावः.

इदानीं वेदान्तविचारस्य निष्फलत्वात् सः न कर्तव्यः इति आक्षिपति **किञ्च** इति. **वेदशेषा** इति. वेदस्य वेदोक्तकर्मणः शेषाः अङ्गभूताः इति अर्थः. **वेदाः** इति प्रयोगानुष्ठापकवाक्यरूपाः इति अर्थः. **अनुपयोगाद्** इति वेदान्तानां ज्ञानाङ्गब्रह्मप्रतिपादकत्वेन द्रव्यदेवतादिप्रकाशकत्वाभावाद् अनुपयोगाद् इति अर्थः. **अनारभ्य** प्रकरणम् अप्राप्य. **अधीतत्वेन** पठितत्वेन. **तदुपयोगित्वे** वेदोक्तकर्मोपयोगित्वे. यथा अनारभ्य

विद्याप्रवेशश्च. न द्वितीयः, यज्ञाप्रतिपादनाद् मन्त्रब्राह्मणत्वाभावाच्च. तस्माद्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

फलोपकारिप्रतिपादनत्वासम्भवाद्, ***अनारम्भे**त्यादि. ‘‘**यस्य पर्णमयी जुहूः भवति न स पापं श्लोकं समश्नुते**’’(तैत्ति.सं.३।५।७।२) इति अव्यभिचरितक्रतुसम्बद्धजुहूद्वारेण क्रतुं स्मारयद् वाक्यं यथा पर्णतायाः क्रतुशेषतां बोधयति तथा अव्यभिचरितक्रतुसम्बद्धात्मोपस्थितिद्वारेण अनारभ्याधीतवेदान्तवाक्यानामपि कर्मोपयोगित्वे पूर्वमीमांसयैव गतार्थता उत्तरस्याः अनुपयोगएव. **विद्याप्रवेशः** पूर्वोक्तरीत्या कर्माङ्गत्वोरीकारे श्रवणादिसम्पाद्यब्रह्मविद्यानुपयोगेन उपनिषदां ब्रह्मविद्यानुपयोगित्वम् इति अर्थः. **न द्वितीयः** वेदाः इति द्विवतीयः. **मन्त्रे**त्यादि. वेदान्तानां मन्त्रब्राह्मणत्वाभावाद् इति अर्थः. तत्र हेतुम् आहुः **यज्ञे**त्यादि. वेदान्तानाम् इष्टसाधनीभूतकर्माप्रतिपादकत्वाद् ब्राह्मणत्वाभावाद् इति अर्थः. मन्त्रस्तु कर्मप्रवृत्तपुरुषस्य व्यापारनिचयसम्पादकः. ‘‘**द्वादशशतं ददाति अनुबन्ध्याम् आलभेत**’’( ) इति विधिरूपमन्त्राणामपि तादृशनिचयसम्पादकत्वम् अव्याहतमेव. तस्माद् एतद् अन्यतररूपत्वाभावाद् न वेदत्वं वेदान्तानाम् इति अर्थः.

पूर्वपक्षं निगमयन्ति **तस्माद्** इति. **तस्मात्** पूर्वोक्तरीत्या पुरुषार्थसाधनोपयोगित्वाभावेऽपि ‘वेद’पदप्रवृत्तिनिमित्तवेदत्वस्य सत्वाद् **वेदोषराः** वेदत्वे सति उषराः फलानुपयोगिनः. यथा उषरभूमिः भूमित्वे सति फलासम्पादनी तथा इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अधीतत्वेन सूत्राणि ‘‘**अष्टवर्षं ब्राह्मणम् उपनीयत**’’(याज्ञ.स्मृ.१।२।२४) इत्यादिवाक्येन उपनयनादौ उपयुक्तानि भवन्ति, तथा प्रकरणम् अप्राप्य विहिता वेदान्तापि ‘‘**यदेव विद्यया करोति**’’(छान्दो.उप.१।१।१०) इति वाक्येन वेदोक्तकर्मसु उपयोगित्वे स्वीक्रियमाणे सति इति अर्थः. **पूर्वकाण्डविचारेणैव** इति. पूर्वमीमांसायां तृतीयाध्याये ‘‘**अथातः शेषलक्षणम्**’’(जैमि.सू.३।१।१) इत्यनेन. प्रथमाध्याये स्मृतिपादे च सूत्रादीनां प्रामाण्यविचारः कृतइति तेनैव गतार्थत्वम् अस्याः इति भावः. **विद्याप्रवेशश्च** इति. वेदशेषत्वेन स्मृतीनां चतुर्दशविद्यासु यथा प्रवेशः तथा अस्यापि इति अर्थः. ‘**च**’कारात् पुराणेपि. **यज्ञे**ति. यागतदङ्गप्रधानप्रयाजादीनाम् अप्रतिपादनाद् इति अर्थः. ननु यज्ञाप्रतिपादनेऽपि ‘‘**यदेव विद्यया करोति**’’(छान्दो.उप.१।१।१०) इत्यनेन यागोपयोगिविद्याप्रतिपादनम् अस्ति इत्यतः आहुः **मन्त्रे**ति.

उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति. **वेदोषरा** इति. वेदान्तानाम् आर्यप्रसिद्धिमात्रेण वेदत्वे उषरभूमितुल्या इति अर्थः. **तेषाम्** इति. विचारेति शेषः.

वेदोषरा वेदान्ताः इति तेषां किं स्यात्? इति चेत्, मा एवम्. अस्ति तावद् वेदत्वम्. अध्ययनादिभ्यः स्मरणाच्च. प्रमाणं च सर्वोऽपि वेदः स्वार्थे. सच न यज्ञश्चेद् ब्रह्म भवतु. नच एतावता अवेदत्वम्, अतिप्रसङ्गात्. शक्यते हि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

किं स्यात्? तेषां विचारेण किं फलं स्यात्? तथाच तेषाम् अतिदुर्बलत्वेन, ततो ब्रह्मणः कर्तृत्वप्रतिपत्तिः सुदूरपराहतैव इति फलितम्. उक्ते पूर्वपक्षे समाधानम् आहुः **मैवम्** इति. **अस्ति** इत्यादि. वेदान्तेषु न वेदोषरत्वम् किन्तु परमपुरुषार्थसाधनोपयोगि वेदत्वमेव. तत्र हेतुम् आहुः **अध्ययनादिभ्यः** इति. अध्ययनाध्यापनविधिना वेदत्वेन अनध्यायवर्जं शूद्रादिश्रवणवर्जं वेदाध्ययनार्थम् उक्तनियमपुरःसरं वेदान्तानाम् अध्ययनाद् इति अर्थः. वेदान्तानां वेदत्वे हेत्वन्तरम् आहुः **स्मरणात् च** इति. ''**साङ्गोपनिषदो वेदान् अधीत्याध्याप्य विस्तराद्, ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी लभते ब्रह्मणः पदम्**'' (   ) इति स्मरणाद् इति अर्थः. **प्रमाणं** मुख्यया वृत्त्या स्वार्थप्रमाजनकः. **स्वार्थे** शक्यार्थे, **सच** स्वार्थश्च. **एतावता** यज्ञाप्रतिपादकतया अवेदत्वाङ्गीकारे **अतिप्रसङ्गाद्** अवेदत्वस्य अर्थवादादौ आपत्तिप्रसङ्गाद् इति अर्थः. **शक्यते हि** इत्यादि. तथाच यावद् यज्ञाप्रतिपादकत्वम् अवेदत्वसाधकम् उत यत्किञ्चिद्यज्ञाप्रतिपादकत्वं? तत्र न आद्यः, ज्योतिष्टोमादियज्ञप्रतिपादकेऽपि यावद् यज्ञप्रतिपादकत्वाभावेन अवेदत्वापाताद्. न

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

किं स्याद् इति. फलम् इति शेषः. तस्माद् वेदान्तविचारस्य निष्फलत्वात् सः न कर्तव्यः इति भावः. समाधानम् आहुः **मैवम्** इति. **वेदत्वम्** इति. वेदान्तेषु वेदत्वमेव, न वेदोषरत्वम् इति अर्थः. **अध्ययनादिभ्यः** इति वेदान्तेषु आचारपरम्परया शूद्राश्रवणादि-नियमेन आर्यकर्तृकस्वरपूर्वक अध्यापनादिसत्त्वाद् इति अर्थः. ननु आचारपरम्परायाः अन्धपरम्परातुल्यत्वं स्वीक्रियते इत्यतः आह **स्मरणाद्** इति. ''**स्वयम्भूरेष भगवान् वेदो गीतस्त्वया पुरा, शिवाद्या ऋषिपर्यन्ताः स्मर्तारो अस्य न कारकाः**'' (   ) इति पुराणवाक्यात्. वेदान्तानामपि स्मरणं प्रतीयते नतु कर्तृजन्यत्वम् इति अर्थः. **सर्वोऽपि** पूर्वोत्तरकाण्डद्वयात्मकोऽपि. **स्वार्थे** अलौकिके अर्थे. **सच** अलौकिकार्थश्च. **न यज्ञश्चेद्** इति. उत्तरकाण्डः इति शेषः. **नच एतावता** इति. यज्ञातिरिक्तब्रह्म-प्रतिपादकत्वेन अवेदत्वं नहि इति अर्थः. **अतिप्रसङ्गाद्** इति. अग्निहोत्रादिप्रतिपादक-वाक्यानां यज्ञाप्रतिपादकत्वाद् अवेदत्वप्रसङ्गाद् इति अर्थः. ननु एवं चेत् तर्हि अग्निहोत्र-प्रतिपादकवाक्येषु वेदत्वमेव न वक्तव्यम् इत्यतः आहुः **शक्यते हि** इति. वक्तुम् इत्यनेन

अग्निहोत्रादीनाम् अन्यतरदनन्तर्भाव्यः तथा वक्तुम्. तस्माद् ब्रह्मापि प्रतिपादयन्तो वेदान्ता वेदत्वं न व्यभिचरन्ति इति. मन्त्रब्राह्मणरूपत्वञ्च उत्पश्यामः. ऋगेव मन्त्रः ब्रह्मप्रतिपादकं ब्राह्मणं, तच्छेषाः सृष्ट्यादि-

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अन्त्यः, तस्मिन्नेव वाक्ये ज्योतिष्टोमेतरयत्किञ्चिद् यज्ञाप्रतिपादकत्वेन अवेदत्वापत्तेः. अथवा **शक्यते हि** इत्यादि. तथाच होमयज्ञाद्य**न्यतरदनन्तर्भाव्य** अप्रतिपाद्यापि. **तथा** वेदान्ता वेदाः इति वक्तुं शक्यतएव इति अर्थः. सिद्धान्तम् उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि. **न व्यभिचरन्ति** न वेदत्वशून्या भवन्ति. ननु मन्त्रब्राह्मणत्वाभावे कथं वेदान्तानां वेदत्वम्? इत्यतः आहुः **मन्त्रे**त्यादि. तथाच यत्र ‘‘**अर्थवाचकपदानुरोधेन पादव्यवस्था न छन्दोनुरोधेनसाऋग्**’’ (   ) इति पूर्वमीमांसायां लक्षणकरणाद्, एतल्लक्षणस्य च वेदान्तेष्वपि सत्त्वाद्, ऋग्रूपमन्त्रम् अव्याहतमेव इति भावः. ब्राह्मणरूपत्वं व्यवस्थापयन्ति **ब्रह्म**...इत्यादिना. एतदपि पूर्वतन्त्रएव उक्तं ‘‘**शेषे ‘ब्राह्मण’शब्दः**’’ (जैमि.सूत्र२।१।३३) इत्यत्र शेषे मन्त्रातिरिक्तसर्ववेदभागे ‘ब्राह्मण’शब्दः ‘ब्राह्मण’-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अन्वयः. अग्निहोत्रादिप्रतिपादकवाक्यानाम् इति अर्थः. **अन्यतरद्** इति. यावद्यज्ञप्रतिपादकत्वं यत्किञ्चिद्यज्ञप्रतिपादकत्वं च इति उभयोः मध्ये एकम् इति अर्थः. **अनन्तर्भाव्ये**ति. यावत्त्वं यत्किञ्चित्त्वम् अनिवेश्य इति अर्थः. **तथा वक्तुम्** यथाकथञ्चिद्यज्ञप्रतिपादकत्वं वेदत्वम् इति वक्तुं शक्यते इति अर्थः. केवलहोमप्रतिपादकानां वाक्यानां साक्षाद् यज्ञाप्रतिपादकत्वाद् यत्किञ्चिद्, यज्ञप्रतिपादकत्वं, यावद्यज्ञप्रतिपादकत्वं वा नास्ति इति अन्यतः तदन्तर्भाव्य, यथाकथञ्चिद्यज्ञप्रतिपादकत्वं वेदत्वम् इति वक्तव्यम्. च्च अग्निहोत्रादिप्रतिपादकवाक्येषु होमं विना यज्ञादिसिद्धिः न भवतीति होमद्वारा यथाकथञ्चिद्यज्ञप्रतिपादकत्वं वक्तुं शक्यते इति भावः. **तस्माद्** इति. एतादृशवेदलक्षणाद् इति अर्थः. **ब्रह्मापि** इति. ‘‘**यदेव विद्यया करोति**’’(छान्दो.उप.१।१।१०) इति वाक्येन ब्रह्मज्ञानस्यापि यज्ञोपकारकत्वाद् अग्निहोत्रवाक्यानामिव ब्रह्मप्रतिपादकवेदान्तवाक्यानामपि यथाकथञ्चिद् यज्ञप्रतिपादकत्वं वेदत्वम् अस्ति इति भावः. ननु कथं वेदत्वं वक्तव्यम्? अत्र ब्राह्मणरूपत्वन्तु नास्ति इति उक्तमेव इत्यतः आह **मन्त्रे**ति. यद्यपि पूर्वकाण्डे मन्त्रलक्षणं बहुधा कथितं तथापि ब्रह्मवादिभिः यत्र ‘मन्त्रः’ इति समाख्या क्रियते स मन्त्रः, यत्र ‘ब्राह्मणम्’ इति समाख्या तद् ब्राह्मणम्. तदुभयं वेदत्रये प्रसिद्धम्. अत्रापि उत्पश्यामः इति अर्थः. ननु अत्र कथं प्रतीयते? इत्यतः आहुः **ऋगेव** इति. ‘‘**सत्यं ज्ञानम्**’’(तैत्ति.उप.२।१)इति ऋगेव इति

प्रतिपादकाः. यद्यपि न विधीयते, तथापि तादृशमेव ज्ञानं फलाय इति युक्तम् उत्पश्यामः. पूर्ववैलक्षण्यन्तु भूषणाय.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पदवाच्यत्वम् इति अर्थः. एवं ब्रह्मप्रतिपादकवेदत्वेनापि ब्राह्मणत्वम् उक्तं बोध्यम्. ननु सृष्ट्युपासनाप्रकार-फलप्रशंसनादि-वेदभागानां ब्रह्मप्रतिपादकत्वाभावाद् ब्राह्मणत्वं न स्याद् इत्यतः आहुः **तच्छेषाः** इत्यादि. तथाच महात्म्यज्ञानद्वारा तेषामपि ब्रह्मप्रतिपादकत्वाद्, ब्रह्मप्रतिपादकवाक्यशेषतया तेषामपि ब्राह्मणत्वम् अव्याहतम् इति अर्थः. **यद्यपि** इत्यादि. **न विधीयते** सृष्ट्यादिवाक्यैः माहात्म्यज्ञानं ब्रह्मणि न विधीयते. **तथापि** विधानाभावेऽपि. **तादृशमेव** ब्रह्मबोधकवाक्यार्थज्ञानविषय-ब्रह्ममाहात्म्य-विषयकमेव. **फलाय** भक्तिरूपफलसम्पादनाय इति अर्थः. ननु एवं ब्रह्मज्ञानस्य धर्मवैलक्षण्यं स्याद् अतः आहुः **पूर्वे**त्यादि. **भूषणाय** धर्मस्य त्रिवर्गसाधकत्वाद् ब्रह्मज्ञानस्य च तद्विरोधिमोक्षरूपपरमफलसाधकत्वाद् धर्मवैलक्षण्यं इष्टमेव इति अर्थः. ‘‘**आत्मानं चेद् विजानीयाद् अहमस्मीति पूरुषः, किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरम् अनुसञ्ज्वरेद्**’’ (बृह.उप. ४।४।१२) इति श्रुतेः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अर्थः. **ब्रह्म** इति. ब्रह्मप्रतिपादकं यद्यद् वाक्यं तत् सर्वं ब्राह्मणम् इति अर्थः. **तच्छेषा** इति. ब्रह्मप्रतिपादकवाक्यशेषा इति अर्थः. **सृष्ट्यादि** इति. आदिना उपासना-प्रतिपादकवाक्यपरिग्रहः. ‘‘**तस्माद् वा एतस्माद्**’’ इत्यादिभागाः इति अर्थः. ‘प्रतिपादकाः’ इत्येव पाठः. नतु ‘प्रतिपादिकः’ इति पाठः. ननु तथापि अस्तु नाम वेदत्वं निष्फलत्वरूपवेदोषरत्वनिवारणन्तु न जातम् इत्यतः आहुः **यद्यपि** इति. **न विधीयते** इति ब्रह्मज्ञानम् इति शेषः. यथा ‘‘**स्वर्गकामो यजेत**’’(आप.श्रौ.सू.१०।२।१) इति वाक्यस्य विधित्वात् स्वर्गरूपफलजनकयागप्रतिपादकत्वं, तथा अत्र मोक्षरूपफल-जनकब्रह्मज्ञानविधायकविध्यभावाद् वेदोषरत्वम् इति भावः. वेदोषरत्वं खण्डयन्ति **तथापि** इति. तादृशविध्यभावेऽपि इति अर्थः. **ज्ञानम्** इति ‘‘**तस्माद् वा**’’ इत्यादि-वाक्यादेव ब्रह्मणि जगत्कर्तृत्वज्ञानम् इति अर्थः. **फलाय** इति. परप्राप्तिरूप-फलाय इति अर्थः. **युक्तम्** इति. फलयुक्तम् इति अर्थः. तथाच कुत्रापि वेदोषरत्वं नास्ति इति भावः. ननु पूर्वकाण्डे विधिवाक्यादेव फलं प्रतीयते, अत्रतु तथा नास्ति इति वैलक्षण्यम् इत्यतः आहुः **पूर्वे**ति. **भूषणाय** इति. विधिवाक्याभावेऽपि केवलवाक्यार्थज्ञानादेव फलं जायते, इति आधिक्यमेव भूषणार्थं भवति इति अर्थः.

काण्डद्वयस्य अन्योन्योपकारित्वाय साधारणग्रहणम्. ‘‘**यदेव विद्यया करोति**’’(छान्द.उप.१।१।१०) इत्यादिना पूर्वशेषत्वं सर्वस्य. ‘‘**तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति**’’(बृहद्.उप.४।४।२२) इत्यादिना सर्वस्य उत्तरशेषत्वम्. कर्मब्रह्मणोः क्रियाज्ञानयोः धर्मिपरत्वेन ऐक्यात् कर्तृवाक्येषु सर्वत्र

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ननु उत्तरकाण्डस्य पुरुषार्थपर्यवसाने पूर्वस्य च त्रिवर्गोपक्षीणत्वे काण्डद्वयोपसंहारकं ‘‘**शास्त्रयोनित्वाद्**’’ इति सामान्योपादानम् अनुचितम् ‘उपनिषद्योनित्वाद्’ इत्येव च उचितम् इत्यतः आहुः **काण्डद्वयस्य** इत्यादि. तथाच अध्ययनाध्यापनविधिविषयत्वेन सर्वोऽपि वेदराशिः पुरुषार्थपर्यवसायी पुरुषार्थश्च परब्रह्मप्राप्तिरेव, न अन्यो भवितुम् अर्हति. इत्थञ्च पूर्वकाण्डे स्वर्गकामस्वाराज्यादिकामनाश्रवणात् परमपुरुषार्थपर्यवसाने च सन्देहः प्राप्तः. तन्निरासाय उक्तपुरुषार्थपर्यवसानाय च ‘‘**यदेव विद्यया**’’(छान्दो.उप.१।१।१०) इत्यादिना वीर्यवत्तरत्वनिरूपणेन कर्मणां पुरुषार्थपर्यवसानम् उक्तम्. इत्थञ्च सर्वस्यापि वेदराशेः पूर्वकाण्डोक्तकर्मशेषत्वम् आगतम्, एवम् उत्तरस्य पूर्वशेषत्वे गौणत्वं स्याद् अतः आहुः **तमेतम्** इत्यादि. तथाच वेदानुवचनयज्ञदानतपःप्रभृतिभिः ब्रह्मज्ञानेच्छापूर्तेः श्रवणात् सर्वस्य वेदराशेः उत्तरशेषत्वमिति न गौणता. सर्वस्य वेदस्य ब्रह्मत्वेन साम्येतु इष्टापत्तिः. ननु सर्वस्य वेदस्य समप्रामाण्ये प्रजापत्यग्निहोत्रादीनामपि कर्तृत्वप्रतिपादनाद् ब्रह्ममात्रपर्यवसितं कर्तृत्वं कथं सिध्येद्? इत्यतः आहुः **कर्म-ब्रह्मणोः** इति. **क्रिया-ज्ञानयोः** क्रियाज्ञानस्वरूपयोः. **धर्मिपरत्वेन** इत्यादि. क्रियायाः धर्मिरूपत्वम् ‘‘**यज्ञो वै विष्णुः**’’ (तैत्ति.ब्राह्म.१।२।५।१) इति श्रुत्या.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

एवं रीत्या मीमांसकमतं निराकृत्य शास्त्रयोनित्वाद् इत्यत्र ‘शास्त्र’पदस्वारस्यम् आहुः **काण्डे**ति. **अन्योन्ये**ति. उभयोः एकवाक्यत्वबोधनाय इति अर्थः. **साधारणे**ति. सूत्रे उभयसाधारण‘शास्त्र’पदग्रहणम् इति अर्थः. एकवाक्यत्वमेव आहुः **यदेव** इति. चतुर्थाध्याये ‘‘**यदेव विद्ययेति हि**’’ (ब्रह्म.सूत्र.४।१।१८) इतिसूत्रे वक्ष्यते. **पूर्वशेषत्वं** प्रथमतः ब्रह्मज्ञानं सम्पाद्यानन्तरं कर्मकरणे कर्मणः पौष्कल्यं जायते इति वेदान्तस्य पूर्वकाण्डाङ्गत्वम् इति अर्थः. एवं पूर्वस्य उत्तराङ्गत्वम् आहुः **तमेतं** इति. कर्मणा च भगवत्प्रसादेन चित्तशुद्धौ ज्ञानम् उत्पद्यते इति परस्परापेक्षितत्वेन साकाङ्क्षत्वाद् एकार्थप्रतिपादकत्वाद् च एकवाक्यत्वम् इति भावः. ननु कथम् उभयोः एकार्थत्वम्? अतः आहुः **कर्मब्रह्मणोः** इति. कर्मणः क्रियारूपत्वेन ब्रह्मणो ज्ञानरूपत्वेन ‘‘**धर्मो यस्यां मदात्मकः**’’ (भाग.पुरा.११।१४।३) इति एकादशस्कन्धोक्तेः, ब्रह्मणोऽपि

न विरोधः. तस्मात् शास्त्रयोनित्वं सिद्धम्. केचिद् अत्र 'जन्मा'दिसूत्रं लक्षणत्वाद् अनुमानम् इति वर्णयन्ति. अन्ये पुनः श्रुत्यनुवादकम् आहुः. सर्वज्ञत्वाय

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ज्ञानस्य धर्मिरूपत्वं "**विज्ञानम् आनन्दं ब्रह्म**"(बृहदा.उप.३।९।२८) इति श्रुत्या अवसेयम्. **न विरोधः** वेदे यत्रक्वापि प्रतिपादितं कर्तृत्वं ब्रह्मण्येव पर्यवस्यतीति न विरोधः इति अर्थः. **तस्मात्** पूर्वोक्तरीत्या अविरोधप्रतिपादनात् **शास्त्रयोनित्वं** शास्त्रोक्त-कर्तृत्ववत्त्वं ब्रह्मणि सिद्धम् इति अर्थः.

अनुमानं केवलव्यतिरेक्यनुमानम्. तथाहि "**जन्माद्यस्य यतः**" इत्यनेन

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

धर्मरूपत्वेन धर्मिणोः क्रियाज्ञानयोः ऐक्याद् पूर्वोत्तरमीमांसयोरपि क्रियाज्ञानरूपधर्मिविचारात्मकत्वेन ऐक्यादेव पूर्वोत्तरकाण्डगतं कर्तृत्वं ब्रह्मण्येव पर्यवस्यतीति न विरोधः इति भावः. **सिद्धम्** इति. ब्रह्मणि वेदप्रतिपाद्यं जगत्कर्तृत्वं सिद्धम् इति अर्थः.

नैय्यायिकमतम् अनूद्य दूषयन्ति **केचिद् अत्र** इति. अत्र ईश्वरस्य जगत्कर्तृत्वविषये. **लक्षणत्वाद्** इति लक्षणबोधकत्वाद् इति अर्थः. **अनुमानम्** इति. तेषां मते लक्षणस्य इतरभेदसाधकत्वाद् गन्धवत्त्वस्य पृथिव्या लक्षणकरणेन पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वाद्, यन्नैवं यथा जलम्, इति व्यतिरेक्यनुमानेन यथा पृथिव्यां जलादिभेदः सिद्ध्यति तथा अनुमानद्वयेन जगत्कर्तृत्वस्य ईश्वरस्य च सिद्धौ सूत्रे जगज्जन्मादिकर्तृत्वरूपलक्षणकरणेन ब्रह्मस्वरूपं जीवजडव्यतिरिक्तं भवितुम् अर्हति, जगज्जन्मादिकर्तृत्वाद्, यन्नैवं तन्नैवं, यथा जीवः इति जीवभिन्नत्वसाधकं व्यतिरेक्यनुमानम् इति अर्थः. ननु कीदृशानुमानद्वयम्? इति चेद्, उच्यते. प्रथमं जगति कार्यत्वसाधकम् एकम् अनुमानम्. तथाहि जगत् कार्यं, सावयवत्वाद्, महत्त्वे सति क्रियावत्वाद्, महत्त्वे सति मूर्तत्वाद् च घटादिवद् इति अनुमानेन जगतः कार्यत्वसिद्धौ सत्याम् अनन्तरं कार्यहेतुकम् अपरम् अनुमानम्. तद् इत्थं, जगतः बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वं, कार्यत्वाद्, घटादिवद् इति अनुमानेन जगति बुद्धिमत्कारणपूर्वकत्वसिद्धिः. अथच जगत्कारणीभूतः चतुर्दशभुवनात्मकविचित्रप्रपञ्चरचनासमर्थः बुद्धिमान् को वा? इति आकाङ्क्षायां ईदृशजगदुपादानोपकरणसम्प्रदानप्रयोजनाभिज्ञः कश्चिद् मन्तव्यः इति जीवस्य तादृशाभिज्ञत्वाभावात् प्रकृतेश्च जडत्वाद् उभयभिन्नो भगवानेव एतादृशः इति अनुमानमेव ब्रह्मणि जगत्कर्तृत्वे प्रमाणं, नतु श्रुतिः इति सूत्रकाराशयो लक्षणकरणेन ज्ञायते इति नैय्यायिकाः वर्णयन्ति. अधिकं प्रकाशे अनुसन्धेयम् इति दिक्.

ज्ञानेन्द्रभिक्षुमतम् आहुः **अन्ये पुनः** इति. **श्रुत्यनुवादकम्** इति. सूत्रम् इति

श्रुत्यनुसार्यनुमानं च ब्रह्मणि प्रमाणम् इति. तत्तु, **“तन्त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि”** (बृहद्.उप.३।९।२६) इति केवलोपनिषद्वेद्यत्वाद् उपेक्ष्यम्,

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

हेतुसाध्यप्रदर्शनाद् “ब्रह्म इतरभिन्नास्तित्ववद्, जगज्जन्मादिकर्तृत्वाद्, यन्नैवं तन्नैवम्” इति बोध्यम्. **श्रुत्यनुवादकं** “यतो वा” इति श्रुत्यनुवादकम्. **सर्वज्ञत्वाय** सर्वकर्तृत्वस्य सर्वज्ञतां विना असम्भवेन सर्वज्ञत्वसिद्धये इति अर्थः. तन्मतद्वयं दूषयन्ति **तत्तु** इत्यादिना. **केवले**ति **तु**शब्देन उपनिषदतिरिक्तवेद्यत्वनिरासात् केवलोपनिषद्वेद्यत्वम्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

शेषः. सूत्रम् अनुमानोपष्टम्भकश्रुत्यनुवादकम् इति अर्थः. तथाच अस्मिन् सूत्रे **“यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते”**(तैत्ति.उप.३।१) इति विषयवाक्यम्. तेन च केवलं कर्तृत्वमेव बोध्यते, नतु जगदुपादानादिकारणज्ञानत्वम्. तदभावे ईश्वरस्य सर्वज्ञता न स्याद् इत्येतदर्थं श्रुतिबोधितकर्तृत्वहेतुना जगदुपादानाभिज्ञत्वं साधनीयम्. तच्च इत्थं, ब्रह्म पक्षीकृत्य जगदुपादानादिगोचरापरोक्षज्ञानेच्छाकृतिमत्त्वं साध्यते, जगत्कर्तृत्वाद् हेतुः, कुलालवद्. कुलालस्य घटकर्तृत्वम् अस्ति, घटाद्युपादानमृत्तिकाचक्रचीवरादि-ज्ञानमपि अस्ति इति. तस्य यथा तद्विषयकज्ञानत्वं (ज्ञानमत्त्वम्?) तथा ईश्वरस्यापि जगदुपादानविषयक-ज्ञानेच्छाकृतिमत्त्वस्य सत्त्वात्, सर्वज्ञत्वं सर्वशक्तिमत्त्वं च सिद्ध्यति इति भावः. **सर्वज्ञत्वाय** इति. ईश्वरस्य सर्वज्ञत्वसिद्ध्यर्थम् इति अर्थः. **श्रुत्यनुसार्यनुमानम्** इति. यथा आदौ धूमप्रत्यक्षे जाते अनन्तरं वह्न्यनुमितिं कर्त्तुं शक्यते इति श्रुत्यनुसारित्वम् अनुमानस्य इति अर्थः. **अनुमानञ्च** इति. सर्वज्ञत्वे सर्वशक्तिमत्त्वे च अनुमानं प्रमाणम्, कर्तृत्वे च श्रुतिः प्रमाणम् इति ‘च’कारार्थः. एवञ्च नैय्यायिकमते सूत्रे विषयवाक्यमेव नास्ति केवलं लक्षणम् उक्तं, तेन च ब्रह्मणि अनुमानमेव प्रमाणं श्रुतिस्पर्शोऽपि नास्ति. भिक्षुमतेतु **“यतो वा”** इति विषयवाक्यं वर्तते परन्तु तेन विना कर्तृत्वरूपहेतुज्ञानाभावे अनुमितिः न भविष्यति इति अनुमानोपष्टम्भकमेव सूत्रम् इति रहस्यम्. तन्मतद्वयम् एकोक्त्यैव दूषयन्ति **तत्तु** इति. **औपनिषदम्** इति. बृहदारण्यके शाकल्यब्राह्मणे इदं वाक्यम्. **पुरुषम्** इति. उपनिषन्मूलप्रमाणकं पुरुषार्थः. **केवले**ति. ब्रह्मणः यावत्-प्रमाणागोचरत्वेऽपि प्रतिप्रसवेन उपनिषद्वेद्यत्वार्थं ‘केवल’पदम्. तेनच विश्वरूपदर्शनं **“धातुः प्रसादाद्”** (महाना.उप.१०।१) इतिश्रुत्या. मननादिद्वारा दर्शनमपि **“आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः”** (बृह.उप.४।५।६) इतिश्रुत्या प्रतिपाद्यतइति न अनुमानवेद्यत्वम् इति भावः. **उपेक्ष्यम्** इति. एकेन श्रुतिं विहाय अनुमानवेद्यत्वम् अपरेण च श्रुतिसहकारेण अनुमानवेद्यत्वम् उक्तम् इति मतद्वयमपि दूरतः त्याज्यम् इति अर्थः.

अनधिगतार्थगन्तृत्वात् प्रमाणस्य. मनननिदि-ध्यासनयोः श्रवणाङ्गत्वम्. सन्देहवारकत्वात् शास्त्रस्यापि तदङ्गत्वम् इति।।२।।

इति प्रथमाध्याये प्रथमपादे द्वितीयं जन्माद्यधिकरणम्।।२।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उक्तम् इति अर्थः. **अनधिगते**त्यादि. तथाच अनधिगतार्थगन्तृत्वरूपं प्रामाण्यं वेदएव अस्ति नतु अनुमाने इति अर्थः. ननु ब्रह्मणः उपनिषदतिरिक्तावेद्यत्वे मनननिदिध्यासनयोः ब्रह्मावगतिसाधनत्वोक्तिः व्यर्था स्याद् अतः आहुः **मनने**त्यादि. **श्रवणाङ्गत्वं** श्रवणेन ब्रह्मप्रमितौ जननीयायां सहकारिकारणत्वम् इति अर्थः. **शास्त्रस्य** व्याससूत्ररूप-शास्त्रस्य **तदङ्गत्वं** श्रवणाङ्गत्वम्।।२।।

पूर्वोक्तरीत्या जन्माद्यधिकरणं निर्णीय सूत्रान्तरम् अवतारयन्ति **तत्र**...इत्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अथ एवं येन श्रुतिप्रामाण्यमेव न स्वीक्रियते तादृशबाह्यं प्रति किं वक्तव्यम् इति चेद्, मैवम्. नानायुक्तिप्रसारणशीलानां बाह्यानां निराकरणार्थमेव त्वदीयं मतं नतु ब्रह्मणि प्रामाण्यसिद्ध्यर्थम्. एवञ्च वेदप्रामाण्यम् अभ्युपगच्छता त्वयापि उपनिषद्वेद्यत्वं स्वीकर्तव्यम्. तथाच ब्रह्मणः प्रमाणान्तरवेद्यत्वाद् अनुमानप्रसरएव नास्ति इति अलम् अधिकेन. **अनधिगतार्थे**ति. न अधिगतः अनधिगतः. अनधिगतः अज्ञातः, एतादृशो यो अर्थः तत्र गन्तृत्वात् तद्विषयकबोधजनकत्वाद् इति अर्थः. **प्रमाणस्य** अनुमानादि-प्रमाणस्य इति अर्थः. तथाच श्रुतिसिद्धे अर्थे न अनुमानं प्रमाणम् इति भावः. नच एवं सर्वज्ञत्वसिद्धिः न स्यात्, श्रुत्या कर्तृत्वस्यैव बोधितत्वाद् इति वाच्यम्. **''ब्रह्मणा विपश्चिता:''** **''यः सर्वज्ञः सर्वविद्''** (मुण्डकोप.२।२।७) इत्यादिना सर्वज्ञताबोधनात्. ननु युक्तिभिः अनुचिन्तनं मननम्. युक्तयः च अनुमानरूपा इति मननोपयोगित्वात् कथम् अनुमानस्य निरासः? इत्यतः आह **मनने**ति. **श्रवणाङ्गत्वम्** इति. श्रवणेन कृत्वा आत्मदर्शने जननीये मननादीनां सहकारित्वम् इति अर्थः. एवञ्च मननोपयोगित्वेन अनुमानस्य आवश्यकत्वम् इति भावः. ननु एवं चेद् अनुमानेनैव मननसिद्धौ वेदान्तमीमांसाशास्त्रं व्यर्थम् इत्यतः आह **सन्देहे**ति. श्रवणानन्तरं सन्देहे सति मननं न सम्भवति इति शास्त्रस्य सन्देहवारकत्वाद् इति अर्थः. **तदङ्गत्वम्** इति. मननाङ्गत्वम् इति अर्थः. शास्त्रस्यापि इति 'अपि'कारेण अनुमानस्य संग्रहः. एवञ्च मनने सहकारिकारणत्वमेव अनुमानस्य बोध्यम् इति सर्वम् अनवद्यम् ।।२।।

पूर्वाधिकरणे कार्यलक्षणेन ब्रह्मणि सामान्यतो जगत्कारणत्वं प्रतिपादितम्.

तत्र एतत् स्यात्. तत्र किं समवायि निमित्तं कर्तृ वा किम् अतो यदि एवम्? एवम् एतत् स्यात्. यदि एकमेव स्यात् तदा क्रियाज्ञानशक्त्योः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तत्र जगत्प्रति ब्रह्मणः कारणत्वे. **एतत् स्याद्** वक्ष्यमाणसंशयविषयत्वं स्याद् इति अर्थः. **तत्र** संशय-विषयकोटीनां मध्ये संशयकोटिगणनाम् आहुः **समवायि** इत्यादि. उक्तसंशये किं दूषणम्? इति आहुः **किम् अतः** इति. यदि एवं संशयो अतः को दोषः इति अर्थः. **एवम्** इत्यादि. वक्ष्यमाणप्रकारो दोषः स्याद् इति अर्थः. दूषणमेव आहुः **यदि एकम्** इत्यादिना. **एकं** कुलालवत् कर्तृ, दण्डवद् निमित्तं, मृत्पिण्डवत् समवायि एतेषां अन्यतरदेव स्याद् इति अर्थः. तथा सति दूषणम् आहुः **क्रियाज्ञाने**त्यादि. तथाच उक्तत्रिविधकारणानां मध्ये यदि एकं कारणं ब्रह्म भवेत् तदा तेषामिव इतरकारणसमवधानं विना कार्यजनकत्वं न स्याद्. ब्रह्मणोऽपि इत्थञ्च क्रियाज्ञानशक्तिमत्त्वेन यद्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इदानीं विशेषरूपेण समवायिकारणत्वप्रतिपादकं समन्वयाधिकरणम् अवतारयन्ति **तत्र एतत् स्याद्** इत्यादिना. **तत्र** शास्त्रे. **एतद्** वक्ष्यमाणम्. **स्याद्** विचार्यं स्यात्. वक्ष्यमाणमेव आहुः **तत्र किम्** इति. **तत्र** ‘‘यतो वा’’ इति श्रुतौ. **कर्तृ वा** इति. कुलालवत् कर्तृकारणं वा इति अर्थः. तथाच श्रुतौ ब्रह्म जगतः समवायिकारणं निमित्तकारणं कर्तृकारणं वा प्रतिपादितम् इति विचार्यं स्याद् इति पूर्वेण अन्वयः. **तद्** इति प्रथमान्तपाठे तद्ब्रह्म समवायिकारणं वा निमित्तकारणं वा इति विचार्यं स्याद् इति अर्थः. अस्मिन् पाठे, ब्रह्म इति, प्रतिपादितम् इति, पदद्वयस्य अध्याहारो नास्ति इति लाघवम्. अतएव प्रकाशे श्रीपुरुषोत्तमैः प्रथमान्तपाठएव आदृतः.

शङ्कते **किमतो यदि एवम्** इति. यदि एवं संशयः स्यात् तर्हि, अतः अस्मात् संशयात् किं भविष्यति? न किमपि इति अर्थः. तथाच श्रुत्या ब्रह्मणि सामान्यतः जगत्कारणताज्ञाने जाते लक्षणं प्रमाणं च ज्ञातमेव. अतःपरं संशयेन किं कर्तव्यम्? विचारेण तन्निरासे च किं फलं भविष्यति? न किमपि इति भावः. उत्तरयन्ति **एवम् एतत् स्याद्** इति. **एवम्** अनेन प्रकारेण वक्ष्यमाणविचारेण इति अर्थः. **एतद्** दोषनिवृत्तिरूपं फलं **स्याद्** इति अर्थः.

विचारमेव उपपादयन्ति **यदि एकम्** इति. सर्वेषु समवायिनिमित्तादिषु कारणेषु मध्ये एकं वक्तव्यं तत्र दण्डादिवद् निमित्तं वा, प्रयोज्यवत्कर्तृ वा, समवायि वा इति त्रयाणां मध्ये एकं स्याद् इति अर्थः. तदा निमित्तत्वकर्तृत्वयोः स्वीक्रियमाणे. **क्रियाज्ञान-शक्त्योः** इति. ब्रह्मणि निमित्तत्वे स्वीक्रियमाणे क्रियाशक्तेः, प्रयोज्यकर्तृत्व-

निरतिशयत्वं भज्येत, मृदादिसाधारण्यं च स्यात् मतान्तरवत्. कथम् एवं सन्देहो यावता ‘‘**यतो वा इमानि**’’ (तैत्ति.उप.३।१) इत्यादिभ्यो निःसन्देहश्रवणात्. एवं हि सः. पञ्चमी श्रूयते यतः इति. पञ्चम्याः तसिल् इति. ‘आत्मनः’ इत्यपि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

निरतिशयत्वं इतरनैरपेक्ष्येण कार्यजननसामर्थ्यं तद् **भज्येत** इति अर्थः.

ब्रह्मणः समवायिकारणत्वे दूषणान्तरम् आहुः **मृदादी**त्यादि. **साधारण्यं** ब्रह्मणो मृत्तुल्यतया अनित्यत्वं सावयवत्वं च स्याद् इति अर्थः. तत्र उपष्टम्भकम् आहुः **मतान्तरवद्** इति. यथा च सांख्यैः पुरुषस्य परिणामित्वम् एतद्दोषादेव न स्वीक्रियते प्रकृतेश्च सावयवत्वात् स्वीक्रियते. नैयायिकमतम् आदायतु कपालतुल्यतया द्रव्यसमवायिकारणतायां ब्रह्मणो अनित्यत्वमपि स्याद् इति अर्थः. अग्रिमाधिकरणघटकं संशयं दृढीकुर्वन्ति **कथम्** इत्यादिना. **एवं** ब्रह्म कारणं न वा इत्याकारकः. **यावता** निश्चयेन. **निःसन्देहे**त्यादि. कारणतासन्देहनिर्गमनं येन स्यात् तादृशकारणतायाः श्रुतिवाक्येभ्यो निश्चयाद् इति अर्थः. **एवं** वक्ष्यमाणप्रकारेण. **सः** सन्देहः, **तसिल् इति** इति. तथाच ‘अश्वतः पतितः’, ‘स्वर्गतः पतितः’, ‘दण्डाद् हतः’ इत्यादौ पञ्चम्या अपादानत्वशुद्धनिमित्तकारणत्वयोरेव बोधनाद् इति भावः. ननु ‘‘**यतो वा**’’ इति श्रुतौ तसेः सत्त्वेऽपि ‘‘**तस्माद् वा एतस्माद्**’’ इत्यत्र तस्य अश्रवणात् कारणत्वान्तरमेव पञ्चम्या बोध्यताम् इति आक्षेपे एकवाक्यतया तत्रापि निमित्तकारणताबोधकतां व्यवस्थापयन्ति **आत्मनः**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

स्वीकारे ज्ञानशक्तेश्च इतरनैरपेक्ष्यरूपं **निरतिशयत्वं भज्येत** इति अर्थः. तथाच यथा निमित्तकारणीभूतदण्डे स्वतन्त्रा क्रिया नास्ति. यथा वा प्रयोज्यकर्तरि कुलाले प्रयोजककुलालपितृनिष्ठं कर्तृत्वज्ञानम् आदायैव कर्तृत्वज्ञानं तथा इतरसापेक्षज्ञानं ब्रह्मण्यपि स्याद् इति भावः. ननु समवायिकारणत्वमेव अस्तु इत्यतः आहुः **मृदादिवद्** इति. **मतान्तरवद्** इति. यथा साङ्ख्यमते मृद्विकारत्वं घटे, मृत्तिकायां विकारित्वं, तथा ब्रह्मण्यपि विकारित्वं स्याद् इति अर्थः. एवञ्च एतद्दोषनिवारणार्थं विचारः कर्तव्यः इति भावः. एवं रीत्या विचारे प्रसक्ते अधिकरणाङ्गसंशयम् आहुः **कथम्** इत्यादिना. **एवम्** इति. समवायि निमित्तकारणं कर्तृ वा? इत्येवंरूपः सन्देहः कथम् इति अर्थः. ननु कुतो न भवति? इत्यतः आह **यावता** इति. यावत्पर्यन्तम् इति अर्थः. वाक्यश्रवणानन्तरमपि सन्देहतादवस्थ्यं प्रतिपादयन्ति **एवं हि** इति. सः सन्देहः भवति इति अध्याहारः. कथं भवति? इत्यतः आह **पञ्चमी** इति. ‘‘**यतो वा**’’ इति वाक्ये पञ्चम्युक्ता. ‘‘**तस्माद् वा एतस्माद्**’’ इतिवाक्ये साक्षाद् ब्रह्मवाचकाद् ‘आत्म’पदादपि पञ्चमी इति आहुः

पञ्चमी, *निमित्तत्वे न सन्देहः, पञ्चम्याः निमित्तत्वकथनात्. उपादानत्वे कर्तृत्वे च सन्देहः, तद्वाचकाश्रवणात्, कल्पनायां प्रमाणाभावात्. समवायित्वे पुनः सुतरां सन्देहः. एवं प्राप्ते आह

तत्तु समन्वयात् ।।३।। (१।१।३)

‘तु’शब्दः पूर्वपक्षव्यावृत्त्यर्थः. निमित्तत्वस्य श्रुतिसिद्धत्वाद् मतान्तर-

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्यादिना. **निमित्तत्वेन*** इति निमित्तत्वेन रूपेण निमित्तकारणं बोधयति इति अर्थः. **निमित्तत्वकथनाद्** ब्रह्मणो निमित्तकारणत्वबोधनाद् इति अर्थः. **तद्वाचके**त्यादि. कर्तृत्वसमवायिकारणत्वयोः वाचकपदाश्रवणाद् इति अर्थः. ननु ‘‘तन्तुभ्यः पटः’’ इति प्रयोगस्यापि बाधकाभावेन सम्भवाद् ब्रह्मणः ‘‘तस्माद् वा’’ इति पञ्चमीतः समवायिकारणत्वमपि कल्प्यम् इत्यतः आहुः **कल्पनायाम्** इत्यादि. **सुतरां सन्देहः** सावयवत्वानित्यत्वयोः आपत्त्या सुतरां सन्देहः इति अर्थः. **एवं प्राप्ते** ब्रह्मणि कर्तृत्वसमवायिकारणत्वयोः अभावः इति पूर्वपक्षे प्राप्ते इति अर्थः. **आह** समाधानरूपं सूत्रम् आह इति अर्थः. ‘‘**त्तु समन्वयात्**’’.

पूर्वपक्षव्यावृत्यर्थः अकर्तृत्वासमवायिकारणत्वरूपपक्षव्यावृत्यर्थः. ननु **‘तु’** शब्दो विशेषावधारणपूजाव्यावृत्तिपादपूरणाप्यर्थहेतुषु दृष्टइति कथं व्यावृत्त्यर्थएव अत्र

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आत्मनः इति. निमित्तत्वे पञ्चम्या निमित्तत्वरूपार्थवाचकत्वेन. **सन्देहे** इति. सन्देहएव नास्ति इति अर्थः. **कथनाद्** इति. घण्टाघोषाद् इति अर्थः. एवञ्च पञ्चम्या निमित्तत्वे सन्देहो नास्ति परन्तु ब्रह्मणि निमित्तकारणत्वस्वीकारे क्रियाशक्तिनिरतिशयित्वभङ्गरूपदूषणस्य प्राग् उक्तत्वाद् कारणतासन्देहतादवस्थ्याद् इति भावः. ननु मास्तु निमित्तत्वम् अन्यत्कारणत्वम् अस्तु इत्यतः आहुः **उपादानत्वे** इति. **अश्रवणाद्** इति. विभक्तिपदयोः मध्ये एकस्यापि अश्रवणाद् इति अर्थः. ननु कल्प्यते इत्यतः आहुः **प्रमाणे**ति. **सुतराम्** इति. साङ्ख्यमतरीत्या विकारित्वदूषणग्रस्तत्वात् कारणतासन्देहएव पर्यवसानम् इति अर्थः. **एवं प्राप्ते** इति. श्रुतौतु कारणता उक्ता परन्तु एतासां कारणतानां मध्ये एकापि कारणता वक्तुं न शक्यतइति ब्रह्म कारणं भवति न वा? इत्येवं संशये प्राप्ते इति अर्थः. **आह** इति. सिद्धान्तम् आह इति अर्थः.

सूत्रम् आहुः ‘‘**तत्तु समन्वयाद्**’’ इति. ननु अस्मिन् अधिकरणे पूर्वपक्षो न दृश्यते इत्यतः आहुः **‘तु’**शब्दः इति. **पूर्वपक्षव्यावृत्त्यर्थः** इति. पूर्वपक्षस्य अवसरएव

निराकरणत्वेन अग्रे वक्ष्यते. **तद्** ब्रह्मैव समवायिकारणम्. कुतः ? **समन्वयात्,** सम्यग् अनुवृत्तत्वात्. अस्ति-भाति-प्रियत्वेन सच्चिदानन्दरूपेण अन्वयात्, नामरूपयोः कार्यरूपत्वात्. प्रकृतेरपि स्वमते तदंशत्वात्. अज्ञानात्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

गृह्यते ? इत्यतः आहुः **मतान्तरे**त्यादि. मतान्तरं व्यावृत्त्यतिरिक्तार्थोपादानरूपं मतान्तरम्. **निराकरणत्वेन** निराकरणं यथा स्यात् तेन प्रकारेण. **अग्रे** **‘‘शास्त्रदृष्ट्यातूपदेशो वामदेववद्’’**(ब्रह्म.सू.१।१।२९) इत्यत्र ‘तु’शब्दस्य इतरार्थत्वनिरासो वक्ष्यते इति अर्थः. **ब्रह्मैव** **‘‘सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म’’**(तैत्ति.उप.२।१) इति श्रुतिप्रतिपादितं ब्रह्मैव. **समवायिकारणं** नामरूपात्मकप्रपञ्चस्य समवायिकारणम्. **सम्यग्** इत्यादि. कार्यमात्रे सम्यक्सम्बद्धत्वाद् इति अर्थः. एतदेव उपपादयन्ति **अस्ति** इत्यादिना. ननु ब्रह्मधर्मास्तित्वादीनां कार्ये अन्वयवत् प्रकृतिगुणसत्त्वादीनामपि कार्ये अन्वयात् तस्याएव प्रपञ्चोपादानत्वम् अस्तु अतः आहुः **प्रकृतेः** इति. तथाच चैत्रादिकर्तृके कार्ये ब्रह्मणः कर्तृत्वमिव उपादानत्वेऽपि बाधकाभावः इत्थञ्च इतरोपादानकेऽपि ब्रह्मोपादानकत्वम् अव्याहतमेव इति भावः. **तदंशत्वाद्** ब्रह्मांशत्वात् **‘‘सदंशेन जडा अपि’’** (तत्त्वदी.नि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

नास्ति इति तन्निवृत्त्यर्थं ‘तु’शब्दः इति अर्थः. तेन कारणताविचारो विषयः, तत्संशयः, पूर्वपक्षस्तु न, अस्त्येव इति सिद्धान्तः. उपोद्घातः सङ्गतिः इति चतुरङ्गम् इदम् अधिकरणं सूचितम्. ननु ब्रह्मैव निमित्तकारणम् इति पूर्वपक्षः कुतो न स्वीक्रियते ? इत्यतः आहुः **निमित्तत्वस्य** इति. **श्रुतिसिद्धत्वाद्** इति. तथाच तन्निराकर्त्तुं शक्यते इति भावः. ननु एवं चेत् तर्हि तस्य स्वीकारः किमर्थम् ? इत्यतः आह **मतान्तरे**ति. तटस्थं निमित्तकारणता (वा) यैः स्वीक्रियते तन्मतनिराकरणत्वेन इति अर्थः. **वक्ष्यते**. द्वितीयाध्याये इति शेषः. सूत्रार्थम् आहुः **तद्** इति. ब्रह्मणः अधिकारलभ्यत्वात् सूत्रस्थ‘तत्’पदस्य कारणपरत्वम् आहुः **ब्रह्मैव समवायिकारणम्** इति. ‘एव’कारेण प्रकृतेः व्यवच्छेदः. **सम्यग् अनुवृत्तत्वाद्** इति. जगति ब्रह्मणः सम्यक् अनारोपितानागन्तुकरूपेण पटे तन्तुवद् अनुस्यूतत्वाद् इति अर्थः. ननु पटेतु तन्तोः अभिव्याप्तिः दृश्यते, ब्रह्मणस्तु प्रपञ्चे केन रूपेण अभिव्याप्तिः इत्यतः आहुः **अस्ति** इति. प्रपञ्चे यद् अस्तित्वादित्रयं भासते तत् सच्चिदानन्दरूपब्रह्मान्वयादेव इति अर्थः. ननु नामरूपयोरपि अन्वयो दृश्यते इति मायाया अपि अन्वयो अस्ति इत्यतः आहुः **नामरूपयोः** इति. एतयोः कर्मणोऽपि उपलक्षकत्वं बोध्यम्. **‘‘त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म च’’**(बृह.उप.१।६।१) इति श्रुतेः. **कार्यरूपत्वाद्**

परिच्छेदाप्रियत्वे. ज्ञानेन बाधदर्शनात्. नानात्वन्तु ऐच्छिकमेव जडजीवा-

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

१।२८) इत्यनेन सदंशात् प्रकृतेरपि उत्पत्तेः इति अर्थः. ननु प्रपञ्चे **परिच्छेदाप्रियत्व**योरपि भानात् तयोरपि उपादानब्रह्मधर्मता स्याद् अतः आहुः **अज्ञानाद्** इत्यादि. अन्यथा गर्भस्थो वामदेवो ‘‘**मनुरहं सूर्यश्च**’’(बृह.उप.१।४।१०) इति न वदेत्, ‘‘**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**’’(छान्दो.उप.३।१४।१), ‘‘**ऐतदात्म्यम् इदं सर्वम्**’’ (छान्दो.उप.६।८।७) इति श्रुतिश्च न वदेद्. **ज्ञानेन** ब्रह्मत्वेन सकलपदार्थानां ज्ञानेन. **बाधदर्शनात्** परिच्छेदाप्रियत्वयोः बाधदर्शनाद् इति अर्थः. ननु ‘‘**तस्माद् एकाकी न रमते द्वितीयम ऐच्छद्**’’(बृह.उप.१।४।३) इत्यादिश्रुतिभिः रमणार्थम् ‘‘**एकोहं बहुस्याम्**’’ (छान्दो. उप.६।२।३) इत्यादिश्रुत्युक्तं नानात्वं भगवता स्वीकृतम्. तच्च परिच्छिन्नत्वं विना सकलपदार्थानां प्रत्येकं व्यापकत्वे न सम्भवति अतः आहुः **नानात्वम्** इति. परिच्छिन्नतया नानातत्तद्व्यक्तित्वैः एकस्मिन् ब्रह्मणि अनुभूयमानं नानात्वम्. **ऐच्छिकं** स्वस्य रमणार्थम् अभेदांशे व्यापकत्वांशे च जीवानां दृष्ट्यावरणसम्पादनं स्वेच्छया तत् कृतम् इति अर्थः. ऐच्छिकत्वमेव उपपादयन्ति **जडे**त्यादिना. तथाच **जडजीवान्तर्यामिषु** प्रत्येकं सच्चिदानन्देति त्रिरूपत्वसत्त्वेऽपि जडे सदंशस्य प्राकट्यं चिदानन्दांशे इच्छया

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

जगदुत्पत्त्यनन्तरं प्रतीयमानत्वेन जन्यत्वात्. तथाच ‘‘**अनेन जीवेन आत्मना अनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि**’’ (छान्दो.उप.१।२।९) इति श्रुत्या लोके च घटे सति अनन्तरमेव रूपं नाम कर्म च दृश्यते इति भावः. नन सत्त्वरजस्तमसाम् अनुवृत्तिदर्शनेन प्रकृतेरेव समन्वयः कुतो न स्वीक्रियते? इत्यतः आहुः **प्रकृतेरपि** इति. **तदंशत्वाद्** इति. ‘‘**वाङ्मनोगोचरातीतं द्विधा समभवद् बृहत्, तयोः एकतरो ह्यर्थः प्रकृतिः सोभयात्मिका, ज्ञानन्तु अन्यतमो भावः पुरुषः सो अभिधीयते**’’ (भाग.पुरा.११।४।३–४) इति एकादशस्कन्धीय–भगवद्वचनैः अंशत्वे सिद्धे कार्यत्वेन आगन्तुकत्वाद् अनुवृत्तत्वं नास्ति इति भावः. ननु प्रपञ्चे कस्यचिद् दुःखं कस्यचित् सुखम् इति देशतः, एकस्यैव कदाचिद् दुःखं कदाचित् सुखम् इति कालतः परिच्छेदो दुःखं च दृश्यते. परिपूर्णस्य ब्रह्मणः समन्वये सति तदुभयं न स्याद् इत्यतः आहुः **अज्ञानाद्** इति. परिच्छेदो अप्रियत्वं च अज्ञानेन अनुभूयते इति अर्थः. ननु कथम् इदं ज्ञायते? इत्यतः आह **ज्ञानेन** इति. आत्मानन्दज्ञानेन इति अर्थः. ननु प्राकृतिकं नानात्वमपि न आदरणीयम् इत्यतः आहुः **नानात्वम्** इति. ‘‘**बहुस्याम**’’ (छान्दो. उप.६।२।३) इतिश्रुतेः इति शेषः.

ननु प्रपञ्चे कया रीत्या अन्वयः? इत्यतः आहुः **जडे**ति. जडे सदंशः, जीवे

न्तर्यामिष्वेव एकैकांशप्राकट्यात्. कथम् एवम्? इति चेद्, न, सद्रूपे घटरूपक्रियासु इव तारतम्येन आविर्भाववद् जडेऽपि भानत्वादिप्रतितेः तारतम्येन आविर्भावो अङ्गीकर्तव्यः. भगवदिच्छायाः नियामकत्वात्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आवरणम्, एवं जीवे चैतन्यांशस्य आधिक्यात् सदानन्दांशे ऐच्छिकावरणम्. एवम् अन्तर्यामिणि आनन्दांशस्य उद्भूतत्वेन आनन्दतुल्यत्वाभावात् सच्चिदंशे ऐच्छिकावरणम् इत्येवं बोध्यम् इति अर्थः. ननु सदैकरसस्य ब्रह्मणः कथं पूर्वोक्तरीत्या वैचित्र्येण अनुभवः? इति आशङ्क्य कैमुतिकन्यायेन समाधानम् आहुः **कथम्** इत्यादि. **एवम्** उक्तरीत्या वैलक्षण्येन. **सद्रूपे** इत्यादि. तथाच एकएव सदंशः घटरूपक्रियेति त्रिभिः प्रकारैः प्रकटो जातः. तत्र एकस्यैव सदंशस्य घटत्व-रूपत्व-क्रियात्वधर्माणां परस्परं विरुद्धत्वेनैव भानं नतु सामानाधिकरण्येन. तथा सति सच्चिदानन्दः इति त्रयाणां परस्य वैलक्षण्ये भाने किं चित्रम् इति कैमुतिको बोध्यः. **भानत्वादी**ति ‘‘**ता आप ऐक्षन्त**’’ (छान्दो.उप.६।२।४), ‘‘**चक्षुरब्रवीद्**’’( ), ‘‘**अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणाम्**’’ (भाग.पुरा. १०।१८।१९) इत्यादाविव इति अर्थः. **तारतम्येन** इत्यादि सदादित्रिषु एकैकांश-प्राकट्यरूपतारतम्येन. **आविर्भावः** प्रत्यक्षयोग्यता. **नियामकत्वात्** तरतमभावे नियामकत्वाद्, ब्रह्मणः सर्वजगत्प्रति समवायिकारणत्वं अस्ति-भाति-प्रियत्वादिरूपैः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

चिदंशः, अन्तर्यामिणि आनन्दांशो अनुभूयते इति अर्थः. शङ्कते **कथम्** इति. जडजीवान्तर्यामिरूपप्रपञ्चे सच्चिदानन्दरूपब्रह्मणः अन्वयसत्त्वे एकांशस्य प्राकट्यं अन्यांशस्य तिरोहितत्वं कया रीत्या एवम् अङ्गीक्रियते इति अर्थः. अत्र समाधानम् आहुः **न** इति. **सद्रूपे** अस्तीतिप्रत्ययविषये एकस्मिन् अर्थे. **घट-रूप-क्रियासु** द्रव्य-गुण-कर्मसु. **तारतम्येन** इति. त्रिषु एकैकांशप्राकट्यरूप-तारतम्येन सदंशस्य इति शेषः. **जडेऽपि** इति. भानत्वादीत्यादिपदेन प्रियत्वपरिग्रहः. यथा घटः सन् रूपं सद् इत्यादि प्रतीत्या अस्ति इति विषयीभूते अर्थे विद्यमानस्य सदंशस्य द्रव्यगुणकर्मसु आविर्भावः स्वीक्रियते. तथा जडेऽपि ब्रह्मांशयोः सच्चिदानन्दयोरपि आविर्भावो अङ्गीकार्यः इति भावः. ननु एवं चेत् तर्हि ‘‘घटः सन्’’ इति सामानाधिकरण्यप्रतीतिवद् ‘‘ज्ञानं घटः’’ इति प्रतीतिः कुतो न जायते? इत्यतः आह **भगवद्** इति. जडे ज्ञानांशस्य क्रीडार्थम् इच्छया तिरोहितत्वाद् न तादृशप्रतीतिः इति भावः. उच्चनीचभावादीनाम् आविर्भावोऽपि क्रीडार्थम् इच्छया इति एकादशस्कन्धे स्पष्टम् इति सर्वम् अनवद्यम्.

नच साधारण्येन सर्वजगत्प्रति परमाण्वादीनाम् अन्वयः सम्भवति. एकस्मिन् अनुस्यूते सम्भवति इति अनेककल्पनायाः अन्याय्यत्वात्. लोके कर्तृविशेषवद् उपादानविशेषग्रहणेऽपि न ब्रह्मणि व्यभिचारः. अलीकप्रतीतेः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

जगति ब्रह्मणः समन्वयं च उपपाद्य, इतरस्य जगत्प्रति उपादानत्वं न सम्भवति इति आहुः **नच** इत्यादिना. **साधारण्येन** सकलकार्यान्वयिकारणधर्मेण. **सर्वजगत्प्रति** कार्यद्रव्य–गुणक्रियासमुदायरूपजगत्प्रति इति अर्थः. **अन्वयः** मृत्सुवर्णकार्येषु मृत्सुवर्णानामिव भानम् इति अर्थः. **परमाण्वादी**ति ‘आदि’पदेन दिक्–कालयोः ग्रहणम्. ननु पार्थिवादि–परमाणुचतुष्टयस्य प्रत्येकं पृथिवीजलादौ समन्वयो अस्त्येव इत्यतः आहुः **एकस्मिन्** इत्यादि. **एकस्मिन्** ब्रह्मणि अनुगते उपादाने **सम्भवति** सति अनेकोपादानकल्पनायाः गौरवेण **अन्याय्यत्वाद्** इति अर्थः. ननु यत्र–यत्र कार्यत्वं तत्र–तत्र ब्रह्मोपादानकत्वम् इति विनियतान्वयो न सम्भवति, घटपटादौ कार्यत्वे मृदाद्युपादानकत्वस्य च सत्त्वेन ब्रह्मोपादानकत्वस्य च अभावेन व्यभिचाराद् इत्यतः आहुः **लोके** इत्यादि. तथाच लोके तत्–तत्कार्यं प्रति तत्–तत्कुलालादिविशेष–कर्तृसत्त्वेऽपि यथा ब्रह्मणः कर्तृत्वम् उरीक्रियते तथा तत्तद्घटादिकार्येषु कपालादिविशेषोपादनसत्त्वेऽपि ब्रह्मोपादानकत्वस्य सत्त्वाद् न व्यभिचारः इति अर्थः. **ब्रह्मणि** ब्रह्मोपादानकत्वस्य. ननु यत्र–यत्र अस्तित्व–प्रियत्वाद्यन्वयः तत्र–तत्र ब्रह्मोपादानकत्वरूपं ब्रह्मकार्यत्वम् इति नियमाङ्गीकारे अलीकप्रतीत–स्वाप्निकरथरथयोगपथादौ मायाकार्ये अस्तित्वप्रियत्वयोः सत्त्वात् तत्र ब्रह्मोपादानकत्व–रूपब्रह्मकार्यत्वस्य असत्वाद् व्यभिचारः इत्यतः आहुः **अलीके**त्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अत्र समवायिकारण–परमाणुसमन्वयवादी नैय्यायिकः शङ्कते **नच** इति. समाधानम् आहुः **एकस्मिन्** इति. ब्रह्मणि इति शेषः. ननु अनेकेषु समवायित्वं न स्वीक्रियते चेत्, तन्त्वादीनां पटसमवायित्वं न स्याद् इत्यतः आहुः **लोके**ति. **कर्तृविशेषवद्** इति. कुलालादिः लोके शान्तकर्तृविशेषवद् इति अर्थः. **उपादाने**ति. तन्तुपरमाण्वादीनां प्रकृत्यन्तानां ग्रहणेऽपि इति अर्थः. **न ब्रह्मणि व्यभिचारः** इति. ब्रह्मणः सर्वनियन्तृत्वेन समवायित्वेन च कारणत्वव्यभिचारो नास्ति इति अर्थः. ननु भ्रमे स्वाप्निकप्रतीतौ च अस्तित्वप्रतीतिः जायतइति ब्रह्मणो अन्वयः तत्रापि स्याद् इत्यतः आहुः **अलीके**ति. **प्रतीत**इति. रजतादौ इति शेषः. **सम्यग्** इति. अन्वये सम्यक्त्वं नाम अनारोपितानागन्तुकरूपेण अन्वयत्वं जागरणोत्तरं विशेषदर्शनोत्तरस्वाप्निकराज्यस्य भ्रमीयरजतस्य च बाधदर्शनात्, स्वाप्निके भ्रमीयरजतादौ च सत्ता आरोपितेति तत्र न

अस्तित्वादिप्रतीतावपि सम्यग् अन्वयाभावाद् न कार्यत्व-व्यभिचारौ. तस्माद् ब्रह्मणएव समवायित्वम्. एतत् सर्वं श्रुतिरेव आह ‘‘**स आत्मानं स्वयमकुरुत**’’ (तैत्ति.उप.२।७) इति. निमित्तत्वन्तु स्पष्टमेव सर्ववादिसम्मत्. केचिद् अत्र

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सम्यग् इत्यादि.जागरणोत्तरं तत्र अस्तित्वादिप्रतीतेः बाधाद् अबाधितान्वयाभावाद् इति अर्थः. **न कार्यत्वे**त्यादि. तथाच तत्र अस्तित्वरूपहेतोरेव अभावाद् ब्रह्मकार्यत्वमपि न, ब्रह्मकार्यत्वस्य अस्तित्वे व्यभिचारोऽपि न इति अर्थः. ब्रह्मणः समवायिकारणत्वं निगमयन्ति **तस्माद्** इत्यादि. **निमित्तत्वं** ब्रह्मणः कार्यमात्रं प्रति निमित्तकारणत्वम् इति अर्थः.

स्वोक्तसिद्धान्तं दृढीकर्तुं मतान्तरव्याख्यानानि अनूद्य दूषयितुम् आहुः **केचिद्** इत्यादि **समन्वयसूत्रं वक्तव्यम्** इत्यन्तेन ग्रन्थेन. प्रथमसूत्रे ब्रह्मजिज्ञासाप्रतिज्ञाकरणे किं

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ब्रह्मकार्यत्वम् अथ च तादृशकार्यतानिरूपिता कारणता ब्रह्मणि नास्ति इति कार्यलक्षणस्य व्यभिचारोऽपि नास्ति इति अर्थः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति. प्रपञ्चे प्रकटानां सच्चिदानन्दानामेव आविर्भावाद् इति अर्थः. अत्र प्रमाणम् आहुः **एतद्** इति. **आह** इति एकस्यैव कर्तृत्वं कर्मत्वम् आह इति अर्थः. **स आत्मानम्** इति. अत्र श्रुतौ ‘आत्म’पदस्वारस्याद् अविकृतपरिणामवादएव सम्मतः, आत्मनो विकाराभावाद् इति भावः. ननु समवायिकारणत्वं ब्रह्मणः प्रतिपादितं परन्तु निमित्तकारणत्वं श्रुतिः वदति इति अत्र किं कर्तव्यम्? अतः आहुः **निमित्तम्** इति. **सम्मतम्** इति केषाञ्चिद् मते केवलं निमित्तकारणं ब्रह्म, अस्माभिस्तु श्रुतिः वदति इति एतदर्थं निमित्तवद् उपादानकारणत्वं ब्रह्मणः स्वीक्रियतइति सर्वसम्मतम् इति भावः. एतेन सर्वविधा कारणता ब्रह्मणि अस्ति इति क्रियाज्ञानशक्त्योः निरतिशयित्वभङ्गो नास्ति इति सूचितम्. ननु समवायिकारणत्वं नाम समवायसम्बन्धावच्छिन्नकारणत्वम्. एवञ्च समवायस्य अभेदसम्बन्धातिरिक्तत्वात्, सम्बन्धस्य च द्विनिष्ठत्वात्, प्रपञ्चब्रह्मणोः अभेदे इदं न सङ्गच्छते इति चेद्, न, अस्मन्मते समवायस्य समन्वयरूपत्वेन अभेदस्वरूपत्वमेव वक्तव्यम्. तस्य ‘‘**बहुस्याम्**’’(छान्दो.उप.६।२।३) इति इच्छोत्तरं द्विनिष्ठत्वं सङ्गच्छते. यथा ‘हिरण्यकुण्डलम्’ इत्यत्र ‘‘हिरण्याभिन्नं कुण्डलम्’’ इति अर्थे अभेदस्य द्विनिष्ठत्वं तद्वद् अत्रापि मन्तव्यम्. अतएव उक्तम् अभियुक्तैः ‘‘**कार्यरूपेण नानात्वम् अभेदः कारणात्मना, हेमात्मना यथाभेदः कुण्डलाद्यात्मना भिदा**’’ (ब्रह्मसू.भास्क.भा.१।१।४) इति सर्वम् अनवद्यम्. सर्वेषां मतानाम् अनुवादनं खण्डनं च प्रकाशे अनुसन्धेयम्.

अत्र सूत्रे रामानुजाचार्यादीनां मतम् अनूद्य खण्डयन्ति **केचिद्** इत्यादिना

शास्त्रयोनित्वपूर्वपक्षनिराकरणाय **“तत्तु समन्वयात्”**(ब्रह्मसू.१।३) इति

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

‘ब्रह्म’पदवाच्यम् इति जिज्ञासोत्पत्तौ जातायां जन्मादिसूत्रेण ब्रह्मलक्षणम् उक्त्वा ब्रह्मणि सर्वज्ञत्वसर्वशक्तिमत्वयोः समर्थनं कृतम्. एतद्द्वयदृढीकरणार्थमेव पुनः **“शास्त्रयोनित्वाद्”** इति उक्तवान् सूत्रकारः. शास्त्रस्य वेदरूपस्य योनित्वात् कारणत्वाद् इति अर्थः. शास्त्रे वेदे प्रतिपादकतासम्बन्धेन योनित्वं कारणत्वं वा यस्य इति अर्थः. शास्त्रोक्तसर्वकारणतावद् इति सिद्धम्, एतच्च उक्तं सर्वं तदा सिद्ध्येद् यदि क्रियाप्रतिपादकभिन्नानां सिद्धार्थानां वेदान्तवाक्यानां स्वार्थे प्रामाण्यं स्यात्. तदेवतु न, तेषां क्रियाप्रतिपादकत्वाभावात्. तस्मात् पूर्वकाण्डे क्रियार्थानां कर्मसम्बन्धप्राशस्त्यकर्तृदेवतादिप्रकाशनद्वारा विधिना एकवाक्यतया प्रामाण्यं यथा उरीकृतं तथा सिद्धार्थानां वेदान्तवाक्यानामपि कर्मसम्बद्धकर्तृदेवतादिप्रकाशनद्वारा क्रियावाक्यैकवाक्यतयैव प्रामाण्यम् उपासनाविध्येकवाक्यतया प्रामाण्यं नतु स्वातन्त्र्येण स्वार्थेऽपि प्रामाण्यम्. इत्थञ्च **“यतो वा इमानि”**(तैत्ति.उप.३।१) इत्यादिशास्त्रोक्तकारणत्वेन सर्वज्ञत्वसर्वशक्तिमत्वयोः असिद्ध्या **“शास्त्रयोनित्वाद्”** (ब्र.सू.१।१।३) इत्यत्र उपष्टम्भको हेतुः असिद्धः इति पूर्वपक्षे प्राप्ते, मतान्तरीयाणां समाधानसूत्रं **“तत्तु समन्वयाद्”** (ब्र.सू.१।१।४) इति. तेषां मते सूत्रार्थस्तु **तत्तु** ब्रह्मणो वेदान्तोक्तकारणत्वन्तु **समन्वयात्** सिद्धार्थे योग्यत्वेन सम्यग् अन्वयात्. **“तरति शोकम् आत्मवित्”**(छान्दो.उप.७।१।३) **“ज्ञानादेव हि कैवल्यं”** ( ) **“ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति”**(बृह.उप. ४।४।६) इत्यादौ ब्रह्मणो वेदान्तैकसमधिगम्यत्वेन तत्प्रापकसाधनफलादिप्रतिपादकतया पुरुषार्थपर्यवसानेन वेदान्तानां स्वार्थे प्रामाण्याभ्युपगमाद् न क्रियावाक्याकांक्षा तेषां प्रामाण्यार्थम् इति समाधानम् आहुः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ब्रह्मणः समवायित्वाय समन्वयसूत्रं वक्तव्यम् इत्यन्तेन. **पूर्वपक्षनिराकरणाय** इति. शास्त्रयोनित्वसूत्रे यः पूर्वः पक्षः तन्निराकरणाय इति अर्थः. पूर्वपक्षस्तु, पूर्वोत्तरकाण्डरूपो वेदः सर्वोऽपि क्रियापरएव, तत्र विधिघटितं वाक्यं मुख्यं क्रियापरम्, अन्यानि वाक्यानि कानिचित् तदङ्गबोधकानि, कानिचिद् अर्थवादवाक्यानि क्रियाप्राशस्त्यबोधकानि, एवञ्च सर्वोऽपि वेदः क्रियाप्रतिपादकएव न ब्रह्मप्रतिपादकः इति कथं सूत्रे ब्रह्मणि जगत्कर्तृत्वं शास्त्रप्रमाणत्वं प्रतिपादितम्? इति. ननु **“आत्मा वारे दृष्टव्यः”** (बृह.उप.२।४।५) **“आत्मा इत्येव उपासीत”**(बृह.उप.१।४।७) इत्यादिविधिवाक्यानां ब्रह्मोपासनाङ्गब्रह्मज्ञानप्रतिपादकानां अन्येषामपि वाक्यानां उत्तरकाण्डेऽपि सत्त्वात्

योजयन्ति. तत् पूर्वपक्षसिद्धान्तयोः द्वयोरपि असङ्गतत्वाद् उपेक्ष्यम्. तथाहि. जैमिनिः धर्मजिज्ञासामेव प्रतिज्ञाय तत्प्रतिपादकस्य पूर्वकाण्डस्य समन्वयम् आह. अवान्तरवाक्यानां प्रकारशेषत्वात्. नच सर्वस्मिन् वेदे धर्मएव जिज्ञास्यः,

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तद् दूषयन्ति **तत् पूर्वपक्ष**...इत्यादिना वाद्युक्तं पूर्वपक्षसिद्धान्तनिर्वचनम्. उपेक्षाबीजम् आहुः **तथाहि** इत्यादि. **धर्मजिज्ञासामेव** इति 'एव'कारेण ब्रह्मजिज्ञासानिराकरणम् उक्तम्. **तद्** यज्ञादिरूपं कर्म. तथाच "**आम्नायस्य क्रियार्थत्वाद् आनर्थक्यम् अतदर्थानाम्**" (जैमि.सू.१।२।१) इतिसूत्रात् कर्मप्रतिपादकस्य पूर्वकाण्डस्य प्रयोगविधिशेषतया सर्वेषां पूर्वकाण्डीयवाक्यानां कर्मणि समन्वयम् आह इति अर्थः. कथं प्रयोगविधिशेषतया सर्वेषां कर्मणि समन्वयः? इत्यतः आहुः **अवान्तरे**त्यादि. **अवान्तरवाक्यानां** मन्त्रार्थवादरूप-वाक्यानाम् इति अर्थः. **प्रकारशेषत्वात्** यज्ञसाधकसाधनसमुदायमध्यपाताद् इति अर्थः. तथाच पूर्वकाण्डीयवाक्यानां धर्मे समन्वयप्रतिपादनेनैव धर्मजिज्ञासायाः विषयसिद्धेः दर्शनाद् न अप्राकरणिकवेदान्तवाक्यानां सिद्धार्थप्रतिपादनोपक्षीणानां धर्मे समन्वयाकांक्षागन्धोऽपि इति भावः. ननु आम्नायस्य क्रियार्थत्वात् सर्वस्मिन्नेव वेदे धर्मः आचारणीयः इत्यतः आहुः **नच** इत्यादि. **सर्वस्मिन्** उत्तरकाण्डेपि **धर्मएव** इति 'एव'कारेण ब्रह्मविचारनिरासः. **नच** इत्यत्र हेतुः **तद्गुरुणा** इत्यादि. तथाच शिष्यस्य

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ब्रह्मप्रतिपादकत्वमपि वेदस्य सम्भवति इति चेद्, न, तथापि विधिना उपासनानुकूलक्रिया विधीयते. अन्येषां च वाक्यानां तदङ्गध्यानार्थं ब्रह्मज्ञानप्रतिपादनपरत्वेनैव निर्वाहे कारणतायां न प्रमाणत्वं, "यतो वा" इति वाक्यं ध्यानविधौ प्राशस्त्यबोधकम् इति. अत्र समाधानं समन्वयसूत्रम्. तत्र समन्वयः इति अस्य सम्यक् प्रतिपाद्यतया अन्वयः समन्वयः. तथाच "**सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म**"(तैत्ति.उप.२।१) इत्यादिवाक्येषु निरति-शयानन्दरूपं ब्रह्मैव प्रतिपाद्यते इति शास्त्रप्रमाणकत्वं ब्रह्मणः सिद्धम्. एवञ्च एतादृशं निरतिशयानन्दरूपब्रह्मप्राप्त्युपायभूतब्रह्मज्ञानप्रतिपादनपरं "**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**" (तैत्ति.उप.२।१) इति वाक्यं ब्रह्मज्ञानार्थम् "**आत्मानमेव लोकम् उपासीत**" (बृह.उप. १।४।१५) इत्यादिना उपासनाविधीयते इति सर्ववेदान्तवाक्यानां मोक्षोपायप्रतिपादकत्वं निरवद्यम् इति. ननु कथं पूर्वपक्षसिद्धान्तयोः असङ्गतत्वम्? इत्यतः प्रथमं पूर्वपक्षासङ्गतिम् आहुः **तथाहि** इत्यादिना. **तत्प्रतिपादकस्य.** धर्मप्रतिपादकस्य. **समन्वयं,** धर्मे प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसम्बन्धम्. **अवान्तरवाक्यानाम्** अर्थवादमन्त्रादिरूपाणाम्. **प्रकारशेषत्वाद्** इति धर्मप्रकाराङ्गत्वाद् इति अर्थः. तथाच धर्मे प्रकारीभूतं यत् कर्मस्तवनं

तद्गुरुणैव व्यासेन ब्रह्मजिज्ञासायाः प्रतिज्ञातत्वात्. सन्देहमात्रवारकत्वाद् जिज्ञासयोः. नतु अलौकिकार्थसाधकत्वम्. तथा सति वेदानाम् अन्याधीनत्वेन अप्रामाण्यं स्यात्. 'वेदजिज्ञासा' इत्येव उक्तं स्यात्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

कदाचिद् भ्रमोऽपि सम्भाव्येत नतु तादृशसर्वज्ञगुरोरिति तादृशेन व्यासेन ब्रह्मविचारप्रतिज्ञायाः पृथक्कृतत्वाद् उत्तरकाण्डस्य ब्रह्मण्येव समन्वयो नतु कर्मणि, उत्तरकाण्डस्यापि कर्मणि समन्वयाङ्गीकारेतु व्यासीय-पृथग्जिज्ञासाप्रतिज्ञायाः वैयर्थ्यमेव भवेद् इति भावः. ननु प्रोक्षणादिसंस्कारसंस्कृतव्रीहीणामिव 'जिज्ञासा'पदवाच्यविचार-संस्कृतानां वेदानाम् अलौकिकार्थसाधकत्वमिति संस्कारार्थमेव वेदान्तानां व्यासजिज्ञासा, जैमिनिजिज्ञासायाः पूर्वकाण्डसंस्कारार्थत्वाद् इत्यतः आहुः **सन्देहमात्रे**ति. तथाच पूर्वोत्तरजिज्ञासाद्वयस्यापि वेदार्थसन्देहनिरसनमेव प्रयोजनं नतु वेदसंस्कारसम्पादनमपि. इदमेव आहुः **नतु** इत्यादिना. **अलौकिकार्थसाधकत्वं** वेदस्य अलौकिकार्थसाधकत्वोपयोगिसंस्कारसम्पादकत्वम् इति अर्थः. **तथा सति** वेदानां संस्काराधीनतया लौकिकार्थबोधकत्वाङ्गीकारे सति. **अन्याधीनत्वेन** संस्काराधीन-प्रमाजनकत्वेन. **अप्रमाण्यम्** इतरानधीनप्रमापकत्वरूपानधिगतार्थगन्तृत्वरूपं प्रामाण्यं वेदानां न स्याद् इति भावः. जिज्ञासाद्वयस्यापि संस्कारार्थत्वे दूषणम् आहुः **वेदे**त्यादिना. तथाच व्रीह्यादिषु सकृत्संस्कारस्य यथा लौकिकार्थसिद्ध्युपयोगित्वं तथा "अथातो वेदजिज्ञासा" इति एकजिज्ञासयैव पूर्वोत्तरकाण्डयोः अलौकिकार्थ-साधनोपयोगि-संस्कारसम्भवेन जिज्ञासा-द्वयकृतेः वैयर्थ्याद् इति भावः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तत्प्रकाशकानाम् अर्थवादवाक्यानाम् अथच धर्मे प्रकारीभूतं यद् द्रव्यं देवतादि तत्प्रकाशकानां मन्त्रादीनां च धर्माङ्गत्वमेव इति सर्वस्य पूर्वकाण्डस्य धर्मएव समन्वयः इति भावः. शङ्कते **नच** इति. नहि इति अर्थः. उत्तरयन्ति **तद्गुरुणा** इति. यदि उत्तरकाण्डं धर्मप्रतिपादकं स्यात् तदा व्यासः ब्रह्मविचारप्रतिज्ञां न कुर्याद् इति अर्थः. **सन्देहे**ति. मन्दमध्यमयोः इत्यादिः. **जिज्ञासयोः** इति. धर्मब्रह्मजिज्ञासयोः इति अर्थः. **अलौकिकार्थे**ति. धर्मब्रह्मप्रमितिसाधकत्वम् इति अर्थः. **तथा सति** इति. धर्मे ब्रह्मणि च वेदस्य प्रामाण्ये मीमांसाधीने सति इति अर्थः. ननु कर्मणाम् अग्निहोत्रादिरूपाणां भिन्नत्वात् तद्रूपक्रियापरत्वं वेदस्य कुतो न उच्यते? इत्यतः आहुः **वेदे**ति. जैमिनेः इदं यदि अभिप्रेतं स्यात् तदा ईदृशं प्रतिज्ञावाक्यं ब्रूयाद् इति अर्थः. तथाच पूर्वकाण्डं धर्मपरम् इति भावः.

किञ्च.

साधनं च फलञ्चैव सर्वस्याह श्रुतिः स्फुटम्।
न प्रवर्तयितुं शक्ता तथा चेन्नरको नहि।।९।।
प्रवर्तकस्तु सर्वत्र सर्वात्मा हरिरेव हि।
यज्ञएव हि पूर्वत्र बोध्यते स्वर्गसिद्धये।।१०।।
सिद्धएव हि सर्वत्र वेदार्थो वेदवादिनाम्।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अथ प्रवर्तकविधिवाक्यानामेव प्रवर्तकत्वं पुरुषार्थोपयोगित्वं प्रमापकत्वं च तदितरवाक्यानां च तदेकवाक्यतया उक्तार्थेषु उपयोगित्वम् इति सिद्धान्तात् कथं सिद्धार्थप्रतिपादकवेदान्तवाक्यानां स्वातन्त्र्येण प्रामाण्यम्? इत्येतद् दूषयन्ति **किञ्च** इत्यादिना. **साधनञ्च** इत्यादि. **सर्वस्य** पूर्वकाण्डे कर्मणः, उत्तरकाण्डे ज्ञानस्य इति अर्थः. तथाच इष्टसाधनताधीसाध्या प्रवृत्तिः फलञ्च सर्वत्रैव उपपन्नं न कोपि विधेः विशेषः इति अर्थः. ननु विधेः प्रवर्तकत्वमेव विशेषः इत्यतः आहुः **न प्रवर्तयितुम्** इति. **तथा चेद् ''न निषिद्धम् आचरेद्''** (   ) इत्यादिविधीनां प्रवर्तकत्वे. ननु विधेः अप्रवर्तकत्वे कः प्रवर्तकः? इत्यतः आहुः **प्रवर्तकस्तु** इत्यादि. ननु हरेः प्रवर्तकत्वे वैषम्य-नैर्घृण्ये स्याताम्, अतः आहुः **सर्वात्मा** इति. **पूर्वत्र** पूर्वकाण्डे **सिद्धएव** इति. तथाच **''यज्ञो वै विष्णुः''** (तैत्ति.ब्राह्म.१।२।५।१) इति श्रुतेः यज्ञस्यैव सिद्धत्वं, का कथा इतरेषाम्? ननु एवं चेद् अर्थवादानां प्राशस्त्यज्ञानसम्पादनद्वारा प्रवर्तकत्वव्याघातः इति चेद्, न, अर्थवादैः सिद्धार्थैः यादृशं यस्य स्वरूपम् उक्तं तादृक् तत्स्वरूपज्ञानपूर्वककर्मकरणएव फलं न अन्यथेति स्वरूपबोधनएव अर्थवादानाम् उपयोगाद् यथा **''वषट्कारौ वै गायत्र्यै**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ननु **''आम्नायस्य क्रियार्थत्वाद्''** (जै.सू.१।२।१) इति जैमिनिसूत्रे प्रवृत्ति-रूपक्रियापरविधिवाक्यस्य वेदत्वम् उक्तम्. मन्त्रार्थवादानामपि विधिशेषत्वम्. उत्तरकाण्डेऽपि धर्मरूपोपासनाविधिः अस्ति तच्छेषत्वं ब्रह्मप्रतिपादकानां वाक्यानाम्, एवञ्च सर्वोऽपि वेदः प्रवर्तनारूपक्रियापरः इत्यतः आहुः **किञ्च** इति. **सर्वस्य** अग्निहोत्रादि-कर्मणएव. **नरके**ति. वेदे प्रवर्तकनिवर्तकवाक्यश्रवणानन्तरं शुभकर्मण्येव प्रवृत्या नरको न स्याद् इति अर्थः. **सर्वत्र** काण्डद्वये. **सर्वात्मा** इति. **''एष त अन्तर्यामी''**(बृह.उप. ३।७।३) इति श्रुत्या सर्वान्तर्यामी. **''एषएव साधु कर्म कारयति''** (कौषी.उप.३।९) इति श्रुत्या प्रवर्तकः हरिः इति अर्थः. **यज्ञएव** इति. सिद्धावस्थापन्नानाम् अर्थो यज्ञरूपो विष्णुरेव पूर्वकाण्डे बोध्यते इति अर्थः. **सिद्धएव**

मन्त्राणां कर्मणाञ्चैव दर्शनश्रवणाच् छ्रुतौ ।।
कृतिश्च सिद्धतुल्यत्वं वेदः स्वार्थेच *सन्मतः ।।११।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

शिरोच्छिनत्तस्यै रसः परा पतत् स पृथिवीं प्राविशत् स खदिरोऽभवद्'' (   ) इत्याद्युक्तः खदिरस्वरूपज्ञानपूर्वकं यूपनिर्माणेन पशुनियोजनादि अनुष्ठानएव यज्ञात् फलम् इत्येवं नियमात्. सिद्धत्वमेव उपपादयन्ति **मन्त्राणाम्** इत्यादिना. मन्त्राणां दर्शनं ''**स एतं कसर्णीरः काद्र्वेयो मन्त्रम् अपश्यद् एतं दीक्षितवादम् अपश्यत्**''(   ) इत्यादौ बोध्यम्. तथाच प्रजापतेः अग्निहोत्रादिकर्मणां मन्त्राणां च श्रुतौ दर्शनं श्रूयते निरूप्यं च अग्रेतः(?) सिद्धत्वम् उक्तम् अन्यथा प्रजापतेः दर्शनोक्तिः अनुपपन्नैव स्याद् इति भावः. ननु यज्ञादिकर्मणां सिद्धत्वे विधिवाक्यैः यज्ञादौ प्रवृत्तिः अनुपपन्ना स्याद् अतः आहुः **कृतिश्च** इति. तथाच यथा ध्यानादिक्रियया भगवत्प्राकट्यं तथा आधाना-दिक्रियया यज्ञात्मनो भगवतः प्राकट्यमिति न क्रियागोचरकृतिवैयर्थ्यम् इति भावः. **सिद्धतुल्यत्वं** सिद्धघटादितुल्यत्वं यज्ञस्य कृतिः सम्पादयति इति अर्थः. निर्गलित-सिद्धान्तम् आहुः **वेद** इति. **स्वार्थे** वेदघटकतत्तत्पदवाच्ये अर्थे **सन्मतः** सतां दैत्यावेशरहितानां मतः प्रमाणत्वेन सम्मतः इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति. 'एव'कारेण ''यजेत'' इति, वितण्डार्थभावनारूपक्रियाव्यवच्छेदः. **मन्त्राणाम्** इति. ''**स एतं कसर्णीरः काद्रवेयो मन्त्रम् अपश्यद्**'' (तैत्ति.संहि.२।६।८।१२) ''स एतं मन्त्रम् अपश्यत्'' इति श्रुतौ मन्त्राणाम्, ''**अपश्यं पुरोडाशं कर्मभूतँ सर्पन्तम्**'' (   ) इति श्रुतौ द्रव्याणां दर्शनश्रवणाद् इति अर्थः. **कृतिश्च** इति. भावनापरपर्याया विधिबोध्या कृतिः इति अर्थः. ननु सर्वस्य सिद्धार्थत्वे यज्ञे प्रवृत्तिरूपयत्नबोधकवाक्यानां लिङ्गादिघटितानां निरर्थकत्वम् अतः आहुः **सिद्धतुल्यत्वम्** इति. 'सिद्धितुल्यत्वम्' इति अपपाठः. ''**यजेत स्वर्गकामः**'' (आप. श्रौ.सू.१०।२।१) इत्यादिवाक्यानां लिङ्बोध्यकृतेरपि यज्ञरूपसिद्धवद् अर्थसम्पादकत्वेन क्रीडेच्छाव्यापारत्वेन च सार्थकत्वम् इति भावः. इदञ्च सर्वं ''**कृतप्रयत्नापेक्षे**''ति (ब्रह्मसू.२।३।४२) सूत्रे वक्ष्यते. **वेदः स्वार्थे**. वाक्यरूपो वेदः शक्त्या लक्षणया वा तद्रूपार्थे ***सम्मतः** प्रमाणीभूतः. 'सन्मतः' इति अपपाठः. 'च'कारेण अर्थवादवाक्यानां लक्षणया प्राशस्त्यार्थे प्रमाणीभूतत्वं वेदस्य बोध्यम्. तेनच पूर्वकाण्डे यज्ञे, उत्तरकाण्डे ब्रह्मणि तात्पर्यात्, सिद्धएव हि सर्वत्र वेदार्थः इति सिद्धम्.

‘‘**प्रजापतिः अकामयत प्रजायेय**’’ (तैत्ति.संहि.७।१।१) इति. ‘‘**स एतद् अग्निहोत्रं मिथुनम् अपश्यत्**’’ (तैत्ति.संहि.२।१।२) ‘‘**प्रजापतिः यज्ञान् असृजत अग्निहोत्रं च अग्निष्टोमं च पौर्णमासीं च उक्थ्यं च अमावास्यां च अतिरात्रं च तानुदमिमीत यावद् अग्निहोत्रम् आसीत् तावान् अग्निष्टोमः**’’ (तैत्ति. संहि.) इत्यादि. नहि उपाख्यानानां मिथ्यार्थत्वं बुद्धजन्मनः पुरोक्तं युक्तं वा. तथा सति वेदानाम् अप्राण्यमेव स्यात्, मिथ्योपाख्यानप्रतिपादकलोकवत्. तस्मात् पूर्वमीमांसानभिज्ञाः क्रियापरत्वं सर्वस्यापि वेदस्य वदन्तो मूर्खाएव.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

कर्मणां दर्शनप्रतिपादकानि आख्यानानि प्रदर्शयन्ति **प्रजापतिः** इत्यादिना. ननु सिद्धार्थप्रतिपादकतया पूर्वकाण्डार्थविरुद्धतया उपाख्यानानां मिथ्यार्थप्रतिपादकत्वेन मिथ्यार्थत्वमेव आस्ताम्, अतो न वेदस्य सिद्धार्थत्वसिद्धिः अतः आहुः **नहि** इत्यादि.

ननु बुद्धावतारेण भगवतैव वेदार्थस्य मिथ्यात्वम् उक्तम् अतः आहुः **बुद्धः** इत्यादि. **पुरोक्तं** भगवदतिरिक्तेन केनापि पूर्वं वेदार्थमिथ्यात्वं न उक्तम् इति भावः. ननु ‘‘**यद्यद् आचरति श्रेष्ठः**’’(भग.गीता३।२१) इतिवाक्याद् अस्माभिरपि तथा उच्यते इत्यतः आहुः **युक्तं वा** इति. तथाच शिवे गरलस्य ग्रीवाभूषणत्ववद् आसुरव्यामोहाय भगवतः तथावचनमपि भूषणमेव पुण्यपापफलभोक्तृत्वाभावाद्, जीवानान्तु तथाचरणे उभयलोकनाशएव स्याद् इति भावः. **तथा सति** एकांशेऽपि वेदानां मिथ्यार्थत्वे वक्तव्ये सति **वेदानां** वेदत्वावच्छेदेन वेदानाम्. **लोकवत्** कदाचित् मिथ्यावक्तृत्वेन लोकैः प्रतीतः ‘‘कश्चित् सर्वदा मिथ्यावाद्येव अयम्’’ इति तदुक्तौ न कोऽपि प्रामाण्यम् उरीकरोति तथा भगवदुक्तवेदेपि एकत्र अप्रमाण्यनिश्चये सर्वत्रैव तथा स्याद् इति अर्थः. सिद्धान्तम् उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादिना. **पूर्वमीमांसानभिज्ञाः** व्यासशिष्यतत्त्वविज्-जैमिनितात्पर्यानभिज्ञाः, **क्रियापरत्वं** कर्मविधायकवाक्यैः यथाकथञ्चिद् एकवाक्यतया

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

यस्यां श्रुतौ दर्शनश्रवणं तादृशश्रुतिम् आहुः **प्रजापतिः** इति. **अपश्यद्** इति. सिद्धस्यैव दर्शनम्. द्वितीयश्रुतौ **उदमिमीत** इति. कर्मणः सिद्धत्वएव उन्मानसम्भवः इति बोध्यम्. पूर्ववद् उपाख्यानस्य मिथ्यात्वं खण्डयन्ति **नहि** इति. **बुद्धजन्मनः** बौद्धावतारस्य. सम्मतम् इति शेषः. **पुरोक्तम्**. पुराणेषु आसुरव्यामोहार्थं कृतम् इति उक्तम्. **वा** इति. **नहि** इति पूर्वेण अन्वयः. सिद्धार्थे उपसंहारम् आहुः **तस्माद्** इति. अयं भावः. क्रिया द्विविधा, सिद्धा साद्ध्या च. तत्र नामवाच्या पुरुषानपेक्षा सिद्धावस्थापन्ना क्रिया यथा ‘पाक’पदवाच्या. तिङन्तवाच्या, पुरुषापेक्षक्रिया साध्यावस्थापन्ना, यथा

उत्तरवादिनोऽपि पूर्वज्ञानम् अङ्गीकृत्य पूर्वानुपयोगित्वं ब्रह्मज्ञानस्य वदन्तो वेदानभिज्ञाएव. **‘‘यदेव विद्यया करोति श्रद्धया उपनिषदा वा तदेव वीर्यवत्तरं भवति’’** (छान्दो.उप.१।१।१०) इति उपनिषज्ज्ञानस्य श्रुतिसिद्धैव कारणता. नच बाधितत्वात् त्यज्यते इति वाच्यं, ब्रह्मात्मज्ञानवतएव वसिष्ठादेः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सर्वस्य वेदस्य प्रामाण्यम्. **उत्तरवादिनः** इति ब्रह्मकाण्डे वादिनएव नतु तत्त्वविदः इति अर्थः. **पूर्वाज्ञानम्** इति कर्मस्वरूपाज्ञानम् अङ्गीकृत्य इति अर्थः. **पूर्वानुपे**त्यादि कर्मानुपयोगित्वम् इति अर्थः. **वेदानभिज्ञाः** इति. ते हि न केवलम् उत्तरकाण्डार्थानभिज्ञाः किन्तु सर्वस्यैव वेदस्य अनभिज्ञाः इति अर्थः. वेदार्थाज्ञाने हेतुम् आहुः **यदेव** इत्यादिना. **कारणता** कर्मानुष्ठाने कारणता. **बाधितत्वाद्** ब्रह्मज्ञानवतां देहाद्यध्यासाभावेन कर्मानुष्ठानस्य बाधितत्वात्. **त्यज्यते** कर्माधिकारित्वं ब्रह्मज्ञेषु न उरीक्रियते इति अर्थः. **नच वाच्यम्** इति उक्तं तत्र हेतुम् आहुः **ब्रह्मात्मे**त्यादि. **ब्रह्मात्मज्ञानवतः** स्वात्मनि

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

‘पचति’इतिपदवाच्या. उक्तञ्च वैय्याकरणभूषणे **‘‘साध्यत्वेन क्रिया यत्र धातुरूपनिबन्धना, सिद्धभावस्तु यस्तस्याः स घञादिनिबन्धनः’’**(वैय्याक.भू.सा.का.१५). लक्षणमपि तत्रैव उक्तं **‘‘क्रियान्तराकाङ्क्षोत्थापकतावच्छेदकत्वं सिद्धत्वम्, क्रियान्तराकाङ्क्षोत्थापकतानवच्छेदकत्वं साध्यत्वम्’’** ( ). एवञ्च प्रकृते सर्वस्य पूर्वकाण्डस्य सिद्धएव यज्ञरूपो अर्थः. सिद्धस्यैव दर्शनं श्रुतौ प्रतिपादित्वाद् मन्त्राणां कर्मणां च तदङ्गत्वम्. अर्थवादवाक्यानामपि स्तावकत्वेन तदङ्गत्वम्. तथाच पूर्वकाण्डं यज्ञपरम्, उत्तरकाण्डं च ब्रह्मपरम् इति रीत्या पूर्वपक्षासङ्गतिः बोध्या. पूर्वपक्ष्याशयस्तु सर्वस्य वेदस्य लिङ्गर्थप्रेरणापरत्वं प्रेरकत्वञ्च, उभयत्रापि ‘यजेत’, **‘‘आत्मा इत्येव उपासीत’’**(बृह.उप.१।४।७) इति लिङ्घटितवाक्यश्रवणात्. अर्थवादमन्त्रादिवाक्यानां विध्यैकवाक्यतया प्रामाण्यम्. एवञ्च यज्ञे उपासनायाञ्च प्रवृत्तिरूपक्रियायाएव मुख्यतया प्रतिपादकत्वं सर्वस्य वेदस्य नतु ब्रह्मप्रतिपादकत्वम् इति. प्रकृतम् अनुसरामः. एतादृशपूर्वपक्ष्याश्रयं स्वीकृत्यैव यैः सिद्धान्तितं तदसङ्गतिम् आहुः **उत्तरे**ति. **पूर्वानुपयोगित्वम्** इति. यज्ञानुपयोगित्वम् इति अर्थः. **ब्रह्मज्ञानस्य वदन्तः** इति. वेदान्तभागस्य धर्मप्रतिपादकम् अस्तु वा मा वा परन्तु ततः शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव-ब्रह्मात्मावगतौ सत्याम् अविद्याजनित-क्लेशनिवृत्तौ तस्य सार्थक्यम् इति वदन्तः इति अर्थः. छान्दोग्यश्रुत्युपपादनेन वेदानभिज्ञत्वं साधयन्ति **यदेव** इत्यादि **प्रवृत्तिः** इति अन्तम्. **कारणता** सहकारिकारणता. उपनिषदर्थज्ञानेन अविद्यानिवृत्तौ यज्ञे प्रवृत्त्यभावात्

यज्ञाधिकारात्. नच एवं किम् अनेन इति वाच्यम्, इत्थम्भूतत्वाद् यज्ञस्य.

किञ्च, कर्मफलवद् ब्रह्मफलस्यापि लौकिकत्वात्. **''य एवं वेद प्रतितिष्ठति, अन्नवानन्नादो भवति महान् भवति प्रजया पशुभिर् ब्रह्मवर्चसेन महान् कीर्त्या''**(तैत्ति.उप.३।६) इति अत्यन्ताविद्यावतो यज्ञानधिकारात् तन्निषेधार्थं ज्ञानम् उपयुज्यते. नच देहाध्यासस्य कारणत्वम्, **''ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः''**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ब्रह्माभेदज्ञानवतः. **नच** इत्यादि **किम् अनेन** मोक्षफलकसिद्धब्रह्मात्मज्ञानवतो यज्ञादिकरणेन किं फले आधिक्यम्? इति अर्थः. तत्र हेतुम् आहुः **इत्थम्** इत्यादि. यज्ञस्य **इत्थंभूतत्वात् ''सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेः''**(ब्रह्म.सू.३।४।२५) इति सूत्रात् फलप्रतिबन्धकयज्ञादिकरणप्रारब्धसमापनद्वारा यज्ञादेरपि मोक्षाधिकारसम्पादकत्वेन व्यासाभिप्रेतत्वाद् इति अर्थः.

ननु मुमुक्षूणां यज्ञाः न आवश्यकाः कर्मफलस्य मनुष्यादिब्रह्मान्तेषु लौकिकस्यैव परमानन्दात्मकस्य श्रवणाद् इत्यतः आहुः **किञ्च कर्मे**त्यादि. **ब्रह्मफलस्य** ब्रह्मज्ञानफलस्य. **अत्यन्ते**त्यादि. अत्यन्ताविद्यावतो देहस्यैव आत्मत्वेन निर्यणाद् यज्ञादिफलस्य च देहोत्तरकालीनत्वेन श्रवणात् कस्य फलं भविष्यति इति बुद्ध्या तादृशस्य यज्ञादौ उपेक्षा सम्भवेन अनधिकाराद् इति अर्थः. **तन्निषेधार्थम्** अत्यन्ताविद्यावतो यज्ञाद्यधिकारनिषेधार्थं **कारणत्वं** यज्ञादौ कारणत्वम्. **ब्रह्मार्पणम्** इत्यादि. तथाच कर्तृकर्मादि-सर्वस्मिन् उपस्करे ब्रह्मत्वेन ज्ञानादेव ब्रह्मात्मफलस्य उक्तत्वाद् न अध्यासस्य

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सहकारिकारणतायाः बाधः इति आशयेन आशङ्कते **नच** इति. उत्तरयन्ति **ब्रह्म** इति. शङ्कते **नच** इति. **किम् अनेन** इति. ब्रह्मज्ञानेनैव सर्वसिद्धौ यज्ञकरणरूपाग्रहेण किम् इति अर्थः. उत्तरयन्ति **इत्थम्भूतत्वाद्** इति. **''यज्ञो वै विष्णुः''** (तैत्ति.ब्राह्म.१।२।५।१) इति श्रुत्या विष्णुरूपयज्ञस्य इत्थम्भूतत्वं नाम एतादृशब्रह्मज्ञानवता क्रियमाणे यज्ञे आविर्भावित्वम्. तथैव पुराणेषु श्रूयते इति भावः. ननु श्रुतौ कर्मफलश्रवणाद् लौकिकफलम् उद्दिश्य कर्मणि प्रवृत्तिः ब्रह्मज्ञस्य अनुचिता इत्यतः आह **किञ्च** इति. **ब्रह्मफलस्यापि** ब्रह्मज्ञानफलस्यापि इति अर्थः. अत्र श्रुतिसम्मतम् आहुः **''य एवं वेद''** (तैत्ति.उप.३।६) इति. भृगुप्रपाठकस्था इयं श्रुतिः. इदानीं देहाध्यासवतः पुरुषस्य यज्ञाधिकारत्वं खण्डयन्ति **अत्यन्ते**ति. **नच** इति. नहि इति अर्थः. **ब्रह्मार्पणम्** इति. तथाच **''य एवास्मि स सन् यजे''**( )ति श्रुतिप्रामाण्यादपि अध्यासस्य

(भग.गीता ४।२४) इत्यादिस्मृतेः. तस्माद् अन्योन्योपयोगित्वे न कोपि दोषः. क्रिया-ज्ञानयोः स्वातन्त्र्येण पुरुषार्थसिद्ध्यर्थं भिन्नतया शास्त्रप्रवृत्तिः. किञ्च. वेदान्तवाक्यानाम् अस्मिन् शास्त्रे समन्वयएव प्रतिपाद्यते सन्देहनिराकरणद्वारा.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

कर्मणि तत्फले वा कारणता इति भावः.

सिद्धान्तम् उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति. तथाच ब्रह्मज्ञानस्य देहात्ममति-निरासकतया यज्ञादौ यज्ञानाञ्च अन्तःकरणशुद्धिद्वारा प्रारब्धसमापनद्वारा वा ब्रह्मविद्यायाम् उपयोगे न कोऽपि दोषः इति फलितम्. ननु एवं पूर्वोत्तरकाण्डयोः एकैकेन फले सम्पादनीये तदन्यस्य सहकारिकारणताकल्पने एकशास्त्रत्वमेव स्याद् नतु पूर्वोत्तरमीमांसेति शास्त्रद्वयम् इत्यतः आहुः **क्रिया** इत्यादि. **स्वातन्त्र्येण** इति. निष्काम-कर्मानुष्ठानेन मोक्षः, सकामस्य च त्रिवर्गएव फलं, निष्कामज्ञानिनो मोक्षः, सकामस्यतु प्रजापश्वादिरूपमेव फलम् इति तत्र काम्यफले परस्परस्य उपयोगाभवो यतो अतः **स्वातन्त्र्येण** इति अर्थः. **पुरुषार्थसिद्ध्यर्थं** त्रैवर्गिकपुरुषार्थसिद्ध्यर्थम्. इत्थञ्च तादृशफले उभयोः स्वातन्त्र्याद् न एकशास्त्रतागन्धोऽपि इति भावः.

एवं पूर्वोक्तग्रन्थेन इतरेषां वेदानभिज्ञत्वं प्रतिपाद्य सूत्रार्थानभिज्ञत्वं प्रदर्शयितुम् आहुः **किञ्च वेदान्ते**त्यादि. अत्र शङ्कराचार्यैः सर्वज्ञसर्वशक्तिमद् उत्पत्त्यादित्रितयकर्तृ ब्रह्म इति वेदान्तैः अवगम्यते इति प्रतिज्ञाय **''समन्वयाद्''** इति हेतुः तत्र उक्तः. समन्वयश्च सर्ववेदान्तवाक्यानां तात्पर्यकल्पनया सृष्ट्यादिकर्तृत्वलाभेन तत्र ब्रह्मपक्षकं सृष्ट्यादित्रितयकर्तृत्वसाध्यकं नानावेदान्तवाक्यसमन्वयहेतुकम् अनुमानं केवलव्यतिरेकि तेषाम् अभिमतम्. एवं मतान्तरेऽपि रामानुजादीनां बोध्यम्. इदञ्च तेषां निरूपणम्. पूर्वमीमांसकैः सर्ववेदान्तवाक्यानां कर्मविध्यपेक्षितब्रह्मस्वरूपदेवतासमर्पकत्वेन कर्मविध्येकवाक्यतया प्रामाण्यम् उपासनादिविधिशेषतया वा प्रामाण्यम् इति पूर्वपक्षितं तत्समाधानाय **समन्वयाद्** इति हेतुः उपन्यस्तः सो अनुचिततरः इति सूत्राज्ञानं बोद्धव्यम्. अनौचित्यमेव उपपादयन्ति **अस्मिन्** इत्यादिना. व्याससूत्ररूपे शास्त्रे **समन्वयएव** कर्तृत्व-भोक्तृत्वप्रतिपादकवेदान्तानां ब्रह्मणि समन्वयएव. **सन्देहः** इति उक्तार्थानां

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

कारणता नास्ति इत्यपि मन्तव्यम्. शाङ्करमतेऽपि अन्योन्योपयोगित्वं स्वीकर्तव्यम् इति उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति. ननु परस्पराकाङ्क्षत्वेन एकवाक्यत्वाद् एकशास्त्रत्वमेव स्याद् इत्यतः आह **क्रिया** इति. **स्वातन्त्र्येण** इति. धर्मार्थकामरूपे त्रिवर्गे साधनीये उभयोः **स्वातन्त्र्येण** इति अर्थः. इतः परं सर्वेषां मते सूत्रानभिज्ञत्वम् आहुः **किञ्च** इति.

तत् कथं सिद्धवद्धेतुत्वेन निर्देशः. अग्रिमवैयर्थ्यं च स्यात्.

नच प्रतिज्ञागर्भितहेतुत्वम्, अनुपयोगात्. गौणमुख्यभावे परं विवादः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ब्रह्मणि सन्देहनिरासाय इति अर्थः.

तत् कथम् इत्यादि. तथाच ब्रह्मणि विरुद्धार्थप्रतिपादकत्वेन प्रतीयमानसकलवेदान्तानां समन्वयनिश्चयार्थमेव व्यासशास्त्रस्य प्रवृत्तिः इति सन्दिग्धः समन्वयः कथं **सिद्धत्वेन** निश्चयविषयत्वेन **निर्दिष्टः** वादिनं प्रति पूर्वपक्षनिरासकत्वेन प्रयुक्तः इति अर्थः. दूषणान्तरम् आहुः **अग्रिम** इत्यादि. आदावेव समन्वयनिर्णये समन्वयनिर्णयार्थं वक्ष्यमाणः अग्रिमशास्त्रस्य वैफल्यं स्याद् इति अर्थः. ननु अग्रे करिष्यमाणग्रन्थं बुद्धिस्थीकृत्य ''अयं ग्रन्थो मया क्रियते'' इतिवद् ''अग्रे समन्वयं साधयिष्ये'' इति मनसा प्रतिज्ञाय 'समन्वयाद्' इति हेतुः उपन्यस्तः इत्यतः आहुः **नच प्रती**त्यादि. **प्रतिज्ञागर्भितः** ''अग्रे समन्वयं साधयिष्ये'' इति प्रतिज्ञाकर्मीभूतः. **अनुपयोगाद्** इति. तथाच मीमांसकैः कर्मविध्यपेक्षितकर्मसम्बन्धिब्रह्मरूपदेवताप्रकाशकत्वेन वेदान्तानां कर्मविध्येकवाक्यतया प्रामाण्यं स्वीक्रियते तत्र तन्मतं दूषयित्वा स्वातन्त्र्येण ब्रह्मणि वेदान्तानां प्रामाण्यं व्यवस्थापयितुम् एषः हेतुः भवद्भिः उद्भावनीयः, सच असिद्धो वादिविजयाहेतुरिति अनुपयोगाद् इति अर्थः. तन्मतदूषणार्थं व्यासानां समन्वयरूपहेतुसाधनम् इत्यपि अप्रयोजकम् इति आहुः **गौणे**त्यादि. तथाच वेदान्तानां ब्रह्मणि समन्वयः तैरपि

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सिद्धवद् हेतुत्वेन इति. शङ्कराचार्यैः उत्पत्त्यादित्रयकारणीभूतं ब्रह्मपक्षीकृत्य वेदान्तशास्त्रगम्यत्वं साध्यते, समन्वयाद् इति हेतुः. तत्र सर्वेषां वेदान्तवाक्यानां ब्रह्मणि तात्पर्यात्, समनुगत्वाद् इति हेतुवाक्यार्थः. तत्र एवं विचार्यते, सकलशास्त्रसमाप्त्यनन्तरं सन्देहनिराकरणद्वारा सर्वेषां वेदान्तवाक्यानां ब्रह्मणि समन्वयः सिद्धो भविष्यति. आदौतु तस्य असिद्धत्वात् सिद्धवत्त्वेन हेतुनिर्देशः **कथम्** इति. इदञ्च सर्वेषां मते एतादृशहेतुनिर्देशस्य सत्त्वाद् दूषणं बोध्यम्. **वैय्यर्थ्यम्** इति. अग्रिमग्रन्थे वाक्यानां समन्वयएव साध्यते, सिद्धे सति वैय्यर्थ्यम् इति भावः.

ननु यथा प्रतिज्ञा बुद्धिस्थसाध्यग्रन्थविषयिणी, एवं हेतुरपि बुद्धिस्थः प्रतिज्ञागर्भितएव इति सिद्धो हेतुः न दुष्टः इति आशयेन शङ्कते **नच** इति. **प्रतिज्ञागर्भितहेतुत्वं** समन्वयं साधयिष्ये इति प्रतिज्ञाविषयीभूतहेतुत्वम्. उत्तरयन्ति **अनुपयोगाद्** इति. भाट्टादिमतनिराकरणन्तु हेतुप्रयोगं विना न भविष्यति इति तस्य बुद्धिस्थत्वे उपयोगाभावाद् इति अर्थः. **गौणमुख्यभावे** इति. अस्माभिरिव मीमांसकैः

नच येन रूपेण समन्वयो मतान्तरस्थैः विचारितः तथा अग्रे सूत्रेषु निर्णयो अस्ति.

शास्त्रारम्भस्तु प्रथमसूत्रएव समर्थितः. तस्मात् समवायिकारणत्वमेव

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

स्वीक्रियतएव परं कर्मविधिशेषतया नतु स्वातन्त्र्येणेति तादृशसमन्वयसाधनमपि न व्यासाभिप्रेतम् इत्यपि दूषणं बोध्यम् इति अर्थः. मायावाद्यभिमत-समन्वयस्वरूपं दूषयितुम् आहुः **नच येन** इत्यादि तथाच सर्वविशेषशून्ये निर्धर्मके ब्रह्मणि अध्यारोपापवादाभ्यां सर्ववेदान्तानां समन्वयो भवदभिमतः. सच न व्यासविचारगोचरो अग्रे **''ईक्षतेर्नाशब्दम्''** (ब्रह्मसू.१।१।४) इत्यारभ्य आसमाप्तिसधर्मके ब्रह्मण्येव वेदान्तानां समन्वयस्य व्यासविचारगोचरत्वाद् इति अर्थः.

ननु उपादानाभिन्ननिमित्तकारणं ब्रह्म इति वादिनां सर्वेषामेव मते **''जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वात्'' ''तत्तु समन्वयाद्''** (ब्रह्मसू.) इति सूत्रद्वयेनैव सर्वज्ञत्व-सर्वशक्तिमत्व-जगदुपादानत्व-निमित्तकारणत्वानां ब्रह्मणि सिद्धेः अग्रेतनवेदान्तारम्भवैयर्थ्यं सूत्रद्वयेनैव सर्ववेदान्तसिद्धान्तस्य निश्चयाद् इत्यतः आहुः **शास्त्रारम्भे**त्यादि. तथाच यत्र-यत्र विरुद्धवादिसम्पादितो वेदान्तानां ब्रह्मणि समन्वये सन्देहः तत्र सर्वत्र सन्देहनिरासार्थं सकलव्यासशास्त्रस्य उपयोगः इति प्रथमसूत्रविचारएव अस्माभिः समर्थितमिति न वैयर्थ्यशङ्कालेशोऽपि इति भावः. सिद्धान्तम् उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादिना. **तस्मात्** सर्वज्ञत्व-सर्वशक्तिमत्त्वयोः ब्रह्मणि जगत्कारणत्वस्य च

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

वेदान्तानां ब्रह्मप्रतिपादकत्वं स्वीक्रियतएव, परन्तु पूर्वकाण्डे शेषत्वरूपगौणत्वेन, अस्माभिस्तु मुख्यत्वेन इति एवंरूपस्य गौणमुख्यभावे विवादस्य सत्त्वात् तत्र हेतुप्रयोगस्य उपयुक्तत्वम्. ब्रह्मप्रतिपादकत्वेतु विवादाभावात् समन्वयरूपहेतुप्रयोगो अनुचितः इति भावः. **विवादः** इति. नतु ब्रह्मप्रतिपादकत्वे इति शेषः.

ननु सम्यक् मुख्यत्वेन ब्रह्मप्रतिपादनं 'समन्वय'शब्दार्थः. एवञ्च हेतुप्रयोगस्य औचित्यम् इत्यतो दूषणान्तरम् आहुः **नच** इति. अस्ति इत्यनेन अन्वितम्. **येन रूपेण** यावद्धर्मशून्यत्वेन रूपेण समन्वयः. सर्वेषां वेदान्तवाक्यानाम् इति शेषः. मतान्तरस्थैः मायावादिभिः तथा तेन रूपेण निर्णयो नास्ति इति पूर्वेण अन्वयः. तथाच अग्रिमसूत्रेषु सर्वत्र कर्त्रादिरूपेणैव तत्तद्वाक्यानां ब्रह्मप्रतिपादकत्वं निःसन्दिग्धमिति न अयं हेतुप्रयोगः उचितः इति भावः. ननु सर्वत्र श्रुत्या सिद्धार्थएव प्रतिपाद्यते चेत् तत्र सन्देहएव न उदेतीति शास्त्रारम्भो व्यर्थः इत्यतः आहुः **शास्त्रे**ति. गौणतापत्तिः अजिज्ञास्यत्वं च इत्यादिस्थले, उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति.

अनेन सूत्रेण सिद्धम्. ननु कारणत्वमेव अस्तु ब्रह्मणः. किं समवायिकारणत्वेन? विकृतत्वं च स्यात्. अनर्थरूपत्वेन कार्यस्य अयुक्तता च. तस्माद् अनारम्भणीयमेव एतत् सूत्रम् इति चेद्, मा एवम्. सर्वोपनिषत्समाधानार्थं प्रवृत्तः सूत्रकारः. तद् यदि ब्रह्मणः समवायित्वं न ब्रूयाद् भूयान् उपनिषद्भागो व्यर्थः स्यात्.

''**इदं सर्वं यदयमात्मा**'' (बृहदा.उप.२।४।५/४।५।७)

''**आत्मैवेदं सर्वम्**'' (छान्दो.उप.७।२५।२)

''**स सर्वं भवति, ब्रह्म तं परादात्**'' (बृहदा.उप.२।४।६) इत्यादिः,

''**स आत्मानं स्वयमकुरुत**'' (तैत्ति.उप.२।७)

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

वेदसिद्धत्वं तत्र हेतुत्वेन **समन्वयाद्** इत्यस्य उपन्यासः कृतः तस्य पूर्वोक्तरीत्या दूषितत्वाद् इति अर्थः. **अनेन सूत्रेण** ''तत्तु समन्वयाद्'' इति सूत्रेण इति अर्थः.

वादी शङ्कते **ननु** इत्यादि. **किम्** इत्यादि. समवायिकारणत्वे ब्रह्मणो न कोऽपि उत्कर्षः सिद्ध्यति इति अर्थः. **विकृतत्वम्** इति. ''यत् परिणामि तद् विकृतम्'' इति व्याप्तेः इति अर्थः. कपालं दृष्टान्तः. दूषणान्तरम् आह **अनर्थे**त्यादि. ब्रह्मणः समवायिकारणत्वे समवायिकारणस्य च कार्यरूपतेति सिद्धान्ताद् ब्रह्मणः कार्यतापत्ति-रूपानर्थत्वापत्तेः इति अर्थः. पूर्वपक्षम् उपसंहरति **तस्माद्** इति. **अनारम्भणीयं** समवायिकारणताप्रतिपादनाय न आरम्भणीयम् इति अर्थः.

सिद्धान्तम् आहुः **मैवम्** इति. **समवायित्वम्** उपनिषत्सिद्धं समवायित्वम्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ननु विकाराभावार्थं केवलकारणतास्वीकारएव अस्तु इति आशयेन आशङ्कते **ननु** इति. ननु 'आत्म'पदस्वारस्यादेव अविकृतत्वम् इति पूर्वमेव उक्तम् इत्यतो दूषणान्तरम् आहुः **अनर्थे**ति. **कार्यस्य** अनर्थरूपत्वेन विनाशित्वेन **अयुक्तता** इति. ब्रह्मणः कार्ये समन्वये अयुक्तताविनाशित्वं स्याद् इति अर्थः.

समाधानम् आहुः **मैवम्** इति. समाधानार्थं विरुद्धवाक्यानाम् एकवाक्यता-सम्पादनार्थम्. **व्यर्थः स्याद्** इति. स्वार्थे अप्रामाण्याद् व्यर्थः स्याद् इति अर्थः. ब्रह्मणः समवायित्वाभावे बहूनां वाक्यानाम् असङ्गतत्वम् उक्तं, तन्मध्ये कानिचिद् दर्शयन्ति **इदम्** इति. वाक्यसप्तकम्. प्रथमं मैत्रेयी ब्राह्मणे, तत्र सर्वस्मिन् आत्माभेदः प्रतिपादितः. सच समवायित्वम् अन्तरेण न घटते. द्वितीयं छान्दोग्ये, सनत्कुमार-नारदसंवादे. तृतीयं पुरुषविधब्राह्मणे. चतुर्थं मैत्रेयीब्राह्मणे. तत्र सर्वम् इदम् आत्मभिन्नम् इति यः वेद तं प्रति

‘‘एकमेवाद्वितीयं’’ (छान्दो.उप.६।२।१)

‘‘वाचारम्भणं विकारः’’(छान्दो.उप.६।१।४) इत्याद्येवमादीनि वाक्यानि स्वार्थे बाधितानि भवेयुः. ननु एवं निःसन्दिग्धत्वात् कथं सूत्रप्रवृत्तिः? उच्यते. अस्थूलादिवाक्यान्यपि सन्ति सर्वत्र प्रपञ्चतद्धर्मवैलक्षण्यप्रतिपादकानि. ततो अन्योन्यविरोधेन एकस्य मुख्यार्थबाधो वक्तव्यः. तत्र स्वरूपापेक्षया कार्यस्य गौणत्वात् प्रपञ्चरूपप्रतिपादकानामेव कश्चित् कल्पयेत्. तन् मा भूद् इति

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ननु ब्रह्मणः समवायिकारणतायाः श्रुतिसिद्धत्वे सन्देहाभावाद् व्याससूत्रप्रवृत्तिः तत्र अपार्था इत्यतः आहुः **ननु एवम्** इत्यादि. **उच्यते** समवायिकारणतानिश्चयार्थं सूत्रप्रवृत्तेः आवश्यकत्वम् उच्यते इति अर्थः. **अन्योन्य** इत्यादि. सधर्मकनिर्धर्मकप्रतिपादकवाक्यानां परस्परविरोधेन इति अर्थः. **मुख्यार्थः** शक्यार्थः. **तत्र** सधर्मकनिर्धर्मकब्रह्मप्रतिपादकवाक्यानाम् अन्यतरस्य मुख्यार्थबाधकल्पनायां **स्वरूपापेक्षया ‘‘निष्कलं ...शान्तम्’’**(श्वेता.उप.६।१९) इत्यादिवाक्यप्रतिपाद्यापेक्षया **कार्यस्य ‘‘स एतावान् आस’’**(बृह.उप.१।४।३), **‘‘ऐतदात्म्यम् इदं सर्वं’’**(छान्दो.उप.६।८ ७) **‘‘स आत्मानं स्वयम् अकुरुत’’**(तैत्ति.उप.२।७) इत्यादिवाक्यप्रतिपाद्यस्य लोकानां कार्यत्वेन अभिमतस्य **गौणत्वाद्** वादिनो गौणत्वाभिमानात्, **प्रपञ्चरूपे**ति प्रपञ्चात्मकब्रह्मरूपेत्यादि. **कल्पयेद्** मुख्यार्थबाधं कल्पयेत्. **तत्** कार्यब्रह्मप्रतिपादकानां मुख्यार्थबाधनं

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

‘ब्रह्म’ परादात् सः अमृतत्वाभावरूपं पराभवं प्राप्नुयाद् इति अर्थः. पञ्चमं तैत्तिरीये ब्रह्मवित्प्रपाठके. तत्र एकस्यैव कर्तृकर्मभावः समवायित्वम् अन्तरेण न सम्भवति. षष्ठं छान्दोग्ये. सप्तमन्तु स्पष्टमेव समवायित्वं वदति. तस्मात् सामान्यकारणताज्ञाने जाते सामान्यधर्मप्रकारकं ज्ञानं विशेषधर्मप्रकारक-जिज्ञासाजनकम् इति न्यायाद् विशेषधर्मजिज्ञासानिवर्तकत्वेन इदं सूत्रम् आवश्यकम् इति भावः.

पुनः शङ्कते **ननु** इति. **प्रवृत्तिः** इति. तथाच सूत्रप्रवृत्त्यन्यथानुपपत्त्या उक्तश्रुत्या निःसन्दिग्धं समवायित्वं न प्रतीयते इति शङ्काकर्तुः आशयः. समाधानम् आहुः **उच्यते** इति. **अस्थूले**ति. **‘‘अस्थूलम् अनणुः’’** (बृह.उप.३।८।८) इत्यादीनि इति अर्थः. **अपिना** सविशेषप्रतिपादकवाक्यसङ्ग्रहः. ननु ततः किम्? इत्यतः आहुः **ततः** इति. **मुख्यार्थः** इति. शक्त्या प्रतिपाद्यते इति अर्थः. **गौणत्वाद्** इति. इच्छोत्तरं जायमानत्वेन गौणत्वाद् इति अर्थः. **कल्पयेद्** इति. मुख्यार्थबाधकत्वम् इत्यादि.

जन्मादिसूत्रवत् समन्वयसूत्रमपि सूत्रितवान्. तथाच अस्थूलादिगुणयुक्तएव अविक्रियमाणएव आत्मानं करोति इति वेदान्तार्थः सङ्गतो भवति. विरुद्धसर्व-धर्माश्रयत्वन्तु ब्रह्मणो भूषणाय.

किञ्च. अन्यपदार्थसृष्टौ वैषम्य-नैर्घृण्ये स्याताम्. कर्माधीनत्वेतु

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

जन्मादि इत्यादि. तथाच प्रकृत्यादीनां कारणतानिरासार्थं ब्रह्मणः कारणताव्यवस्थापनाय यथा 'जन्मादि'सूत्रं तथा ब्रह्मणः समवायिकारणताव्यवस्थापनाय 'समन्वय'सूत्रम् इति अर्थः. फलितार्थम् आहुः **तथाच** इत्यादि. **वेदान्तार्थः** "**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**" (छान्दो. उप.३।१४।१) इत्यादिश्रुत्यर्थः. ननु प्रपञ्च-तद्धर्मवैलक्षण्यं प्रपञ्च-तद्धर्मरूपत्वं च ब्रह्मणो विरुद्धम् अतः आहुः **विरुद्धे**त्यादि. **भूषणाय** नहि एतादृशो अन्यः कश्चित् सम्भवतीति ब्रह्मणएव असाधारणधर्मत्वाद् भूषणाय इति अर्थः.

अविकृतस्यैव समवायिकारणे उपष्टकम्भकम् आहुः **किञ्च** इत्यादि. **अन्ये**त्यादि. ब्रह्मातिरिक्तपदार्थस्य ब्रह्मणः सृष्टिकरणे. **वैषम्ये**त्यादि सृष्टानां जीवानां दुःखादिकारणेन वैषम्य-नैर्घृण्ये स्याताम् इति अर्थः. ननु शुभाशुभकर्माधीनएव परमात्मा जीवानां सुखदुःखे प्रयच्छति नतु अनधीनइति न उक्तदोषः इत्यतः आहुः **कर्मे**त्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

जन्मादिसूत्रवद् इति. कर्तृत्वं यथा प्रतिपादितं तथा समवायित्वमपि ब्रह्मणि प्रतिपादितं स्वमते इति. सिद्धान्तम् आहुः **तथाच** इति. **सङ्गतः** इति. निःसन्दिग्धः इति अर्थः. तथाच विरुद्धवाक्यैः सन्देहे जाते सूत्रप्रवृत्तिः इति भावः. ननु विरुद्धधर्माश्रयत्वे कल्पना स्याद् इत्यतः आहुः **भूषणाय** इति. "**अपाणिपादो जवनो गृहीता**" (श्वेता. उप.३।१९) इत्यादिश्रुतिप्रतिपाद्यत्वरूपभूषणसत्त्वे काल्पनिकत्वं नास्ति इति भावः.

ननु पूर्वसूत्रेण कर्तृत्वसिद्धौ ब्रह्मणि विरुद्धधर्माश्रयत्वं सिध्यत्येव, तावतैव स्वाभिमतसिद्धौ सत्यां पुनः ब्रह्मणि समवायित्वस्वीकारो व्यर्थएव, तदङ्गीकारे च विकृतत्त्वं गले पतति. लोके घटादिविकारित्वस्य मृत्तिकादौ सत्त्वाद् इति समन्वयसूत्रं न कर्तव्यम् इत्यतः आहुः **किञ्च** इति. **अन्ये**ति. ब्रह्मणो अन्यो यः पदार्थः तदुपादानिका या सृष्टिः यथा कुलाले मृदुपादानिकां घटादिसृष्टिं करोति तथा स्वीकृतायां सृष्टौ इति अर्थः. वैषम्यं च नैर्घृण्यं च **वैषम्यनैर्घृण्ये**. एकस्य सुखवत्त्वकरणम् एकस्य दुःखवत्त्वकरणं वैषम्यं; दुःखादिसम्पादनं निर्दयत्वं च ब्रह्मणि स्याताम् इति अर्थः. अस्मन्मतेतु "**स आत्मानं स्वयम् अकुरुत**"(तैत्ति.उप.२।७) "**एकाकी न रमते**" (बृह.उप.१।४।३)

*अनीशता. ततः कर्तृत्वमपि भज्येत. ततः सर्वमाहात्म्यनाशएव स्यात्.

ननु एवमेव अस्तु, अपवादार्थत्वात्, रज्जुसर्पवद् अयुक्तार्थकथनेऽपि न दोषः. "**सर्वं समाप्नोषि ततोसि सर्वः**" (भग.गीता ११।४०) इति स्मृतेश्च इति

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अनीशिता स्वतःसामर्थ्याभावः. **ततः** अस्वातन्त्र्याद्, **भज्येत** "**स्वतन्त्रः कर्ता**" (पाणि.सू.१।४।५४) इति तल्लक्षणाद् अस्वातन्त्र्ये भज्येत इति अर्थः. **ततः** कर्तृत्वभङ्गतः. **सर्वमाहात्म्ये**त्यादि. कर्तृत्वान्यथानुपपत्या कल्प्यमानं सर्वज्ञत्वसर्वशक्तिमत्वमपि भज्येत इति अर्थः.

ननु "**निष्कलं...शान्तम्**" (श्वेता.उप.६।१९) इत्यादिवाक्यप्रतिपाद्ये ब्रह्मणि कर्तृत्वादिधर्मशून्यत्वमेव माहात्म्यम्. इत्थञ्च उक्तधर्मरूपमाहात्म्यनाशे इष्टापत्तिः इति आहुः **ननु एवम्** इत्यादि. **एवमेव** शुद्धस्य परब्रह्मणः कर्तृत्वादिधर्मशून्यत्वमेव अस्तु इति अर्थः. ननु ब्रह्मणो अकर्तृत्वे अतिरिक्तस्य कर्तुः अभावे प्रपञ्चो न भवेद् अतः आहुः **अपदार्थे**त्यादि. तथाच न अवस्तुनः खपुष्पादेः कर्त्राकांक्षा अस्ति इति भावः. ननु अवस्तुत्वे प्रपञ्चस्य वस्तुत्वेन प्रतीतिः न स्याद् अतः आहुः **रज्जुसर्पे**त्यादीति. तथाच अवस्तुत्वेऽपि विशेषादर्शनदशायां दोषबलाद् यथा रज्जुसर्पज्ञानं तथा अविद्यादोषबलात् सर्वस्य मिथ्यात्वज्ञानरूपविशेषदर्शनाभावकाले प्रपञ्चस्यापि वस्तुत्वेन भानं न अनुपपन्नम् इति अर्थः. मिथ्यावादी समाधानान्तरम् आह **सर्वम्** इत्यादि. तथाच "**सर्वं समाप्नोषि**"

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

"**बहुस्याम**"(छान्दो.उप.६।२।३) इत्यादि "**निर्विकारी निरञ्जनः**"(   ) इति श्रुत्या निर्विकारित्वमपि स्वीकर्तव्यम्. श्रुतिप्रामाण्यात् स्वसृष्टौ स्वयमेव जगद्रूपेण क्रीडतीति वैषम्यनैर्घृण्यसम्भावनापि नास्ति. समवायित्वं विना जगद्रूपत्वं च न सम्भवति इत्यतो समन्वयसूत्रं कर्तव्यम् इति भावः. एतच्च द्वितीयाध्याये प्रथमे पादे "**वैषम्यनैर्घृण्ये**"(ब्रह्मसू.२।१।३४) इति सूत्रे व्युत्पादयिष्यते. ननु कर्माधीनत्वे वैषम्यादिदोषो नास्ति इत्यतः आहुः ***अनीशिता** इति.

पुनः शङ्कते **ननु** इति. **अपवादार्थत्वाद्** इति. 'अपदार्थत्वाद्' इति अपपाठः. कर्तृत्वं श्रुत्या यत् प्रतिपाद्यते तद् अपवादार्थमेव, वस्तुतः कर्तृत्वं ब्रह्मणि नास्तीति न विरुद्धधर्माश्रयत्वम् इति भावः. ननु अविद्यमानार्थकथनरूपाप्रामाण्यापत्तिः अतः आह **रज्जुसर्पवद्** इति. अपथगामिनि वा बालके भयप्रदर्शनार्थं रज्जुं प्रदर्श्य "सर्पो अयम्" इति उच्यते. तदनन्तरं विनीते तस्मिन् "रज्जुरेव अयम्" इति उच्यते. तद्वद् वेदेऽपि माहात्म्यज्ञापनेन वैराग्याद्युत्पत्त्या तात्त्विकार्थकथनं नतु कर्तृत्वादौ तात्पर्यमिति न

चेत्, मा एवम्. तथा सति पाषण्डित्वं स्यात्. एतादृशशास्त्रार्थाङ्गीकर्तुः आसुरेषु भगवता गणितत्वात्. ‘‘**असत्यम् अप्रतिष्ठन्ते जगदाहुरनीश्वरम् अपरस्परसम्भूतं किमन्यत् कामहैतुकम्**’’(भग.गीता १६।८) इति शास्त्रानर्थक्यञ्च. ‘‘सर्वं

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

(भग.गीता ११।४०) इति सर्वं जगद् व्याप्नोषि. **ततः** हेतोः **सर्वम् असि** ‘सर्व’पदवाच्यो असि इति अर्थः. इत्थञ्च ‘‘**अथ इदं सर्वं यदयमात्मा**’’ (बृह.उप. ४।५।७) इत्यादिश्रुतिः ‘‘**ऐतदात्म्यम् इदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा**’’ (छान्दो.उप.६।८।७) इत्यादिरूपा च या श्रुतिः सा ब्रह्मणो व्यापकत्वेन सर्वस्मिन् मिथ्याभूते जगति ब्रह्मगतस्य सत्यत्वाद्यारोपेण ब्रह्मत्वं वदति नतु जगत्समवायिकारणत्वेन इति स्मृतितात्पर्यं वाद्यभिमतम्. तद्दूषयन्ति **मैवम्** इत्यादिना. **पाषण्डित्वम्** इति पापलिङ्गित्वं स्याद् इति अर्थः. एतदेव उपपादयन्ति **एतादृशः** इत्यादि. असति बाधे वेदस्य मुख्यार्थबाधकर्तुः आसुरत्वरूपफलेन तेषां पाषण्डित्वं दृढयन्ति **आसुरेषु** इत्यादिना. तदेव उपपादयन्ति **असत्यम्** इत्यादिना. **असत्यं** मिथ्याभूतम्. **अप्रतिष्ठम्** अकाल्पनिकधर्माधर्मतद्व्यवस्थापकप्रमाणशून्यम्. **अनीश्वरम्** अकाल्पनीकेश्वरशून्यम्. **अपरस्परसम्भूतं** सर्वस्य कारणकार्यत्वाभिमतस्य मिथ्यात्वात् स्त्रीपुरुषादिरूपकारणजन्यम् इति अर्थः. तथा सति सर्वं कथं दृश्यते? इत्यतः आह **कामे**त्यादि. तथाच अविद्यमानापि कामिनी यथा कामिना दृश्यते, एवं द्वेषाद् अनिष्टमपि दृश्यते, तथा मिथ्याभूतमपि दोषात् दृश्यते इति ते आहुः इति अर्थः. **शास्त्रानर्थक्यं**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

दोषः इति भावः. ननु ‘‘**आत्मैव इदं सर्वम्**’’ (छान्दो.उप.७।२५।२) इत्यादिश्रुतिस्तु समवायित्वं वदति इत्यतः आह **सर्वम्** इति. व्यापकत्वं वदति नतु समवायित्वम्. अतएव गीतायां विश्वरूपज्ञानानन्तरमेव अर्जुनेन उक्तं ‘‘**ततोऽसि सर्वम्**’’ (भग.गीता ११।४०) इति. समाधानम् आहुः **मैवम्** इति. **पाषण्डित्वम्**. आसुरत्वेतु गीतावाक्यं प्रमाणम् आहुः **असत्यम्** इति. **ते** आसुराः. **अप्रतिष्ठं** न विद्यते ब्रह्मणि प्रतिष्ठा यस्य इति अप्रतिष्ठम्. न विद्यते ईश्वरः नियन्ता यस्य इति **अनीश्वरम्**. **अपरस्परं** योषित्पुरुषसम्बन्धं विना **सम्भूतम्**. एतादृशमेव जगद्, कामएव प्राणिनां कारणम्, अन्यत् किम्? न किमपि इति अर्थः. इति **आहुः** इति गीतावाक्यार्थः. अत्र इदम् आकूतम्, अध्यारोपवादिमते शास्त्रप्रवृत्तिः हि द्विविधा वक्तव्या, संसारभ्रमनिवारणार्थम्, ईश्वरसत्तासाधनार्थं च. तत्र केवलब्रह्मस्वरूपप्रतिपादकवाक्यैरेव भ्रमनिवृत्तौ. अन्येषां वाक्यानां वैय्यर्थ्यं स्यात्. अथच सर्वैरेव स्वमतरीत्या चेतनस्वरूपं ब्रह्म इति अङ्गीक्रियतएव पुनः तत्साधनार्थं प्रवृत्तिः व्यर्थैव. किञ्च, ‘‘**सर्वं समाप्नोषि**’’ (भग.गीता ११।४०) इति

समाप्नोषि'' इत्यपि असङ्गतं स्यात्. वस्तुपरिच्छेदात्. नहि वेदो निष्प्रपञ्चरूपकथनम् उक्त्वा स्वोक्तं जगत्कर्तृत्वं निषेधति. तस्माद् अध्यारोपापवादपरत्वेन व्याख्यातृभिः वेदान्ताः तिलापः कृता इति मन्यामहे, सर्ववाक्यार्थबाधात्. यथा निर्दोषपूर्णगुणविग्रहता भवति तथा उपरिष्टाद् वक्ष्यामः.

नन्‌ु पुरुषार्थार्थानि शास्त्राणि. इदञ्च शास्त्रं मोक्षरूपपुरुषार्थसाधकम्. मोक्षश्च अविद्यानिवृत्तिरूपः इति युक्तम्. अविद्या च अज्ञानं ज्ञानेनैव नश्यति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ब्रह्मणो जगत्कारणताप्रतिपादकश्रुतिसूत्रवैयर्थ्यम्. **असङ्गतं स्याद्** इति उपपादयन्ति **वस्तु** इत्यादिना. तथाच ब्रह्मणो व्यापकत्वं सर्वात्मकव्याप्यवस्तुपरतन्त्रं, तत्र सर्वस्य मिथ्यात्वे व्याप्यवस्तुनो अभावे व्यापकत्वमपि मिथ्यैव भवेद् इति फलितम्. समाधानान्तरम् आहुः **नहि** इत्यादिना. तथाच ''**अपहतपाप्मा**''(छान्दो.उप.१।२।९) इत्यादि, ''**पूर्णकाम**'' (श्वेता.उप.६।१९) ''**निष्कलम्**''(श्वेता.उप.६।१९) इत्यादि प्रपञ्चविलक्षणं ब्रह्म प्रतिपाद्य यदि स्वोक्तकर्तृत्वं निषेधेत तदा मृषावादित्वेन अप्रामाण्यं स्यात् सर्वस्यापि वेदस्य इति अर्थः. **तिलापः कृताः** अप्रमाणिकृता इति अर्थः. तदेव उपपादयन्ति **सर्ववाक्यार्थे**त्यादिना. ''**सर्वं खलु**''(छान्दो.उप.३।१४।१) इति, ''**ऐतदात्म्यम्**'' (तत्रैव ६।८।७) इति, ''**स आत्मानं स्वयम् अकुरुत**'' (तैत्ति.उप.२।७) इति वाक्यानां प्रामाण्यबाधाद् इति अर्थः. सर्ववेदान्तानां मुख्यार्थे प्रामाण्यार्थम् आहुः **यथा** इत्यादि. **उपरिष्टाद्** अन्तस्ततद्धर्माधिकरणे. अध्यारोपापवादखण्डनम् असहमानः तद्वादी पुनः प्रत्यवतिष्ठते **ननु** इत्यादिना. **पुरुषार्थार्थानि** पुरुषार्थचतुष्टयसम्पत्तिबोधकानि. **इदञ्च** वेदान्तरूपञ्च. **अज्ञानं** पञ्चपर्वात्मकं, नतु ज्ञानाभावरूपम्. तथा सति ''अहम् अज्ञः''

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अस्यापि असङ्गतिः. सर्वस्य अपवादार्थत्वेन आरोपितत्वाद् अवस्तुत्वेन अव्याप्यत्वाद् अपरिच्छेदकबोधकत्वाभावाद् इति मन्तव्यम्.

ननु वेदएव तथा वदति इत्यतः आहुः **नहि** इति. निषेधति इत्यनेन अन्वितम्. अध्यारोपापवादवादिनम् उपहसन्ति **कृता** इति. अस्पृश्याः **कृताः** इति अर्थः. वेदान्तार्थस्पर्शोऽपि तेषां नास्ति इति भावः. ननु प्रपञ्चसमवायित्वे कार्यदोषः ब्रह्मणि स्याद् अतः आहुः **यथा** इति. **वक्ष्यामः** अन्तस्तद्धर्माधिकरणे (ब्रह्मसू.१।१।१९) इति शेषः.

सएव पुनः प्रत्यवतिष्ठते **ननु** इति. **पुरुषार्थानि** पुरुषार्थचातुर्विध्यमेव अर्थः प्रयोजनम् इदं तानि. **इदञ्च** वेदान्तञ्च. **अज्ञानम्** इति, भावरूपं नतु ज्ञानाभावः. इदञ्च

ततो ज्ञानोपयोगित्वेन व्याख्यातव्ये वेदान्ते अध्यारोपापवादव्यतिरेकेण व्याख्यानम् अयुक्तम्. अतो यथाकथञ्चिद् व्याख्यानेऽपि पुरुषार्थसिद्धेः न कोऽपि दोषः इति चेद्, न. पुरुषार्थस्य शास्त्रार्थस्य वा स्वरूपं शास्त्रैकसमधिगम्यं, न स्वबुद्धिपरिकल्पितम्. अतः स्वबुद्ध्या शास्त्रार्थं परिकल्प्य तत्र वेदं योजयन्तो महासाहसिकाः सद्भिः उपेक्ष्याः. पुरुषार्थः पुनः यथा वेदान्तेषु अवगतः

‘‘ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति’’ (मुण्ड.उप.३।२।९)

‘‘ब्रह्मविदाप्नोति परम्’’ (तैत्ति.उप.२।१)

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इति प्रत्यक्षानुपपत्तेः. तथाहि ‘‘अहम् अज्ञः’’ इतिच धीः ज्ञानसामान्याभावविषयिणी वाच्या अभावप्रत्यक्षस्य प्रतियोगिज्ञानजन्यत्वनियमात् प्रतियोगिज्ञानसत्वे च ज्ञानसामान्याभावस्य वक्तुम् अशक्यत्वात्. तथाच ‘‘अहम् अज्ञः’’ इति प्रत्ययप्रकारता पञ्चसु सर्वेष्वेव वाच्या नतु अभावे इति फलितं बोध्यम्. **ज्ञानेनैव** मिथ्यापदार्थव्यावृत्तब्रह्मज्ञानेनैव. **व्याख्यानं** वेदान्तानां व्याख्यानम्. **यथाकथञ्चिद्** अध्यारोपापवादप्रकारेणापि.

स्वबुद्धिपरिकल्पितम् अवैदिकौ अध्यारोपापवादौ कल्पयित्वा सर्वेषां वेदान्तानां निर्धर्मके ब्रह्मणि तात्पर्यकल्पनं शास्त्रार्थः इति स्वबुद्धिपरिकल्पितम्. **तत्र** स्वबुद्धिकल्पिततात्पर्याविषये. **महासाहसिकाः** लोके अविचारितकर्तारः साहसिकाः, वेदार्थातिक्रमेण अविचारितवक्तारो महासाहसिकाः इति अर्थः. वादिमतसिद्धं पुरुषार्थं खण्डयित्वा सिद्धान्ते पुरुषार्थस्वरूपम् आहुः **पुरुषार्थः** इत्यादिना. ननु जीव-ब्रह्मणोः चैतन्यव्यक्तिभेदाभावात् प्राप्तेश्च भेदपूर्वकत्वनियमाद् ब्रह्मप्राप्तेः कथं पुरुषार्थता?

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

योगशास्त्रे प्रसिद्धम्. **यथाकथञ्चिद्** इति. तथाच यथा वेदान्तव्याख्यानेन ज्ञानं भविष्यति तथा व्याख्येयम्. ततो ज्ञाने जाते **‘‘ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति’’** (मुण्ड.उप. ३।२।९) इति ब्रह्मरूपस्वरूपावस्थात्मक-पुरुषार्थसिद्धौ सत्याम् अध्यारोपापवादेन व्याख्यानं युक्तमेव इति भावः. समाधानम् आहु **न** इति. **पुरुषार्थस्य** मोक्षस्य. **महासाहसिका** इति. तथाच भवद्रीत्या अविद्यानिवृत्तिरूपो मोक्षः अध्यारोपापवादेन व्याख्यानरूपः शास्त्रार्थोऽपि नास्ति इति भावः. ननु भवन्मते कीदृशो मोक्षः? इत्यतः आहुः **पुरुषार्थः** इति. **अवगतः** इति. तथा मन्तव्यः इति शेषः. येषु वाक्येषु अवगतः तानि वाक्यानि आहुः **ब्रह्मवेदे**ति. इदं वाक्यपञ्चकम्. ब्रह्मभावः परप्राप्तिः संसारे

“न स पुनरावर्त्तते” (निराल.उप.३३)

“ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्” (भग.गीता १८|५५)

“अनावृत्तिः शब्दाद् अनावृत्तिः शब्दात्” (ब्रह्मसू.४|४|२२) इत्यवमादिभिः श्रुतिस्मृतिन्यायैः ब्रह्मप्राप्तेरेव पुरुषार्थत्वम्. ब्रह्म च पुनः न जीवस्य आत्ममात्रम्. अज्ञानवद् वा. **“एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते, बन्धोस्याविद्ययानादिर् विद्यया च तथेतरः”**(भाग.पुरा.११|११|४) इति भगवता जीवस्यैव अविद्यावत्त्वप्रतिपादनात्. तस्माद् न्यायोपबृंहितसर्ववेदान्तप्रतिपादितसर्वधर्मवद् ब्रह्म. तस्य श्रवण-मनन-निदिध्यासनैः अन्तरङ्गैः शमदमादिभिश्च बहिरङ्गैः अतिशुद्धे चित्ते स्वयमेव आविर्भूतस्य स्वप्रकाशस्य सायुज्यं परमपुरुषार्थः. तस्मात् सर्वे वेदान्ताः स्वार्थएव युक्तार्थाः इति न्यायैः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्यतः आहुः **ब्रह्म च** इत्यादि.

सिद्धान्तम् उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति. **न्यायोपबृंहितं** सर्वव्याससूत्रप्रतिपादितम्. **तस्य** सधर्मकब्रह्मणः. **स्वार्थएव** वाच्यार्थएव. **समवायित्वाय “सत्यं**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अनावृत्तिः परप्राप्तिस्वरूपम्. जन्यभाव-नश्वरत्वयोः व्याप्तिस्वरूपम्. एतत्पञ्चकं बोधयति **पुरुषार्थत्वम्** इति. भवति इति शेषः. तथाच श्वेताश्वतरोपनिषदि मायानिवृत्तिरेव मोक्षः. तैत्तिरीये ब्रह्मज्ञानेन मायानिवृत्तौ परप्राप्तिरेव मोक्षः, नतु अविद्यानिवृत्तौ. एकादशस्कन्धे, विद्याविद्ययोः मायाजन्यत्वस्य उक्तत्वेन मायाविद्ययोः भेदाद् इति भावः. ननु अविद्यावतो जीवस्य ब्रह्मस्वरूपस्य परमव्योमात्मकत्वसम्पादनरूपत्वेन ब्रह्मणोऽपि अविद्यावत्त्वं तस्य पुनः सर्वत्र सत्त्वात् कथं परप्राप्तिः उच्यते? इत्यतः आहुः **ब्रह्म** इति. **प्रतिपादनाद्** इति. जीवस्य अविद्यावत्त्वांशत्वप्रतिपादनेन अंशिब्रह्मप्राप्तिः उचितैव इति भावः. ब्रह्मणः सर्वधर्माश्रयत्वम् उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति. **न्यायोपबृंहिते**ति. न्यायेन उत्तरमीमांसया उपबृंहितः वर्द्धितः यः वेदान्तः उपनिषद्भागः तेन प्रतिपादितम् इति अर्थः. तस्य सर्वधर्मविशिष्टस्य ब्रह्मणः. **अतिशुद्धे**ति. तथाच सर्वेषां साधनानां चित्तशुद्ध्यर्थत्वमेव इति भावः. **स्वयम् आविर्भूतस्य** इति. **“नायमात्मा प्रवचनेन”** (मुण्ड.उप.३|२|३) इति श्रुत्या प्रसादएव आविर्भावे हेतुः इति ‘स्वयं’पदेन द्योत्यते. तथाच **“सो अश्नुते”** इति श्रुत्युक्तं सायुज्यमेव मोक्षः इति भावः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति. **स्वार्थेएव** शक्यार्थेएव. **न्यायैः**

वक्तव्यत्वाद् ब्रह्मणः समवायित्वाय समन्वयसूत्रं वक्तव्यम्.

इति प्रथमाध्याये प्रथमपादे तृतीयं समन्वयाधिकरणम्।।३।।

एवं ब्रह्मजिज्ञासां प्रतिज्ञाय किंलक्षणकं ब्रह्म? इति आकांक्षायां ‘जन्मादि’सूत्रद्वयेन वेदप्रमाणकं जगत्कर्तृ समवायि च इति उक्तम्. एवं त्रिसूत्र्या जिज्ञासालक्षणविचारकर्तव्यता सिद्धा.

तत्र ब्रह्मणि चतुर्धा विचारः. स्वरूपसाधनफलप्रतिपादकानि वेदान्तवाक्यानि त्रिविधानि, मतान्तरनिराकरणञ्च. तत्र स्वरूपे विचारिते मतान्तरनिरासव्यतिरेकेण साधनफलयोः अनुपयोगात्. अतः प्रथमं स्वरूपनिर्णयः. तदनु मतान्तरनिरासः. तदनु साधनानि फलं च इति. तत्र प्रथमे अध्याये स्वरूपवाक्यानि विचार्यन्ते. तानि द्विविधानि सन्दिग्धानि, निःसन्दिग्धानि च. तत्र निःसन्दिग्धानां

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आत्मानं स्वयम् अकुरुत’’(तैत्ति.उप.२।७) इति श्रुतिप्रतिपादितसमवायिकारणताव्यवस्थापनाय इति अर्थः.

प्रतिज्ञाय प्रथमसूत्रेण ब्रह्मविचारप्रतिज्ञां कृत्वा. **इति उक्तं** निमित्तकारणत्वसमवायिकारणत्वरूपलक्षणद्वयवद् ब्रह्म इति उक्तम्. एवं त्रिसूत्रोक्तार्थम् उपसंहृत्य सिद्धम् आहुः **त्रिसूत्र्या** इत्यादि।।३।।

प्रथमम् अध्यायविभागार्थम् आहुः **तत्र ब्रह्मणि** इत्यादि. **तत्र** पूर्वोक्तविचारविषये. **तत्र** अर्थचतुष्टयमध्ये. **विचारिते** प्रथमाध्यायेन विचारिते. **मतान्तरे**त्यादि द्वितीयाध्यायविचारम् अन्तरेण इति अर्थः. **फलञ्च** इति. साधनम् अनु फलञ्च इति अर्थः. **स्वरूपवाक्यानि** लक्ष्यलक्षणभेदेन स्वरूपप्रतिपादकवाक्यानि. **निःसन्दिग्धानि**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उत्तरमीमांसासूत्रैः. सर्वत्र शक्त्यैव उपनिषद्वाक्यप्रतिपादनं व्यासाभिप्रेतम् इति भावः. **समवायित्वाय** समवायिकारणत्वबोधनायैव।।३।।

एवं रीत्या लक्षणं प्रतिपाद्य ब्रह्मणः वागाद्यविषयत्वेऽपि विचारकर्तव्यतां प्रतिपादयितुं सप्तभिः सूत्रैः ईक्षत्यधिकरणम् आरचयन्ति **एवम्** इत्यादिना. पूर्वोक्तम् अनुवदन्ति **ब्रह्मजिज्ञासा** इत्यादिना. **सिद्धा** इति. त्रयाणां कारणावश्यकता सूचिता इति अर्थः. सूत्रत्रयोक्तएव अर्थो अध्यायचतुष्टयेन प्रतिपाद्यते इति बोधयितुम् आहुः **तत्र ब्रह्मणि** इति. ननु मतान्तरनिराकरणप्रतिपादकवेदान्तवाक्याभावात् किमर्थं तद्विचारः? इत्यत आहुः **व्यतिरेकेण** इति. **फलञ्च** इति. क्रमेण अध्यायचतुर्णां निर्णयः इति अर्थः.

निर्णयो न वक्तव्यः. सन्दिग्धानि पुनः चतुर्विधानि : कार्यप्रतिपादकानि, अन्तर्यामिप्रतिपादकानि, उपास्यरूपप्रतिपादकानि, प्रकीर्णकानि च इति.

तत्र प्रथमपादे कार्यवाक्यानां निर्णयः उच्यते. सच्चिदानन्दरूपेण आकाश-वायु-तेजोवाचकवाक्यानि षड्विधान्यपि निर्णीयन्ते. अन्यत्र अन्यवाचकान्यपि वेदान्तेषु भगवद्वाचकानि इति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म''(तैत्ति.उप.२।१), ''**विज्ञानम् आनन्दं ब्रह्म**'' (बृह.उप. ३।९।२८) इत्यादीनि. **न वक्तव्यः** सन्देहनिरसनरूप-प्रयोजनाभावाद् व्यासैः न वक्तव्यः. अध्याये पादविभागप्रयोजकं निरूप्य विभागम् आहुः **सन्दिग्धानि** इत्यादिना. **कार्यवाक्यानां** कार्यवाचकत्वेन लोके प्रसिद्धानाम्. वाक्यानां विषयम् आहुः **सच्चिद्** इत्यादि. **षड्विधानि** प्रत्येकं कार्यवाचकत्वेन प्रसिद्धानि त्रिविधान्यपि समुदित-सच्चिदानन्दत्वरूपेण एकैकस्य वाक्यस्य कारणस्वरूपप्रतिपादकत्वात् षड्विधानि इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

प्रथमाध्यायस्य पादचतुष्टये क्रमेण विचार्याणि वाक्यानि आहुः **कार्ये**ति. निःसन्दिग्धानाम् इति. ''**सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म**''(तैत्ति.उप.२।१) इत्यादिवाक्यानाम् इति अर्थः. अतएव विचारांशे कार्यलक्षणस्यैव मुख्यत्वम् इति भावः.

प्रथमपादे शब्दसन्देहनिवारके पादे. कार्यवाक्यानां भेदान् आहुः **सच्चिदानन्दे**ति. सद्रूपेण सत्प्रतिपादकानि, चिद्रूपेण चित्प्रतिपादकानि, आनन्दरूपेण आनन्दप्रतिपादकानि त्रीणि, आकाश-वायु-प्राणवाचकानि त्रीणि, एवं रीत्या षड्विधानि वाक्यानि इति अर्थः. ननु 'आकाश'ादिपदानां भूताकाशवाचकत्वं प्रसिद्धम् अतः आहुः **अन्यत्र** इति. **अन्यत्र** लोके. **वेदान्तेषु** छान्दोग्यादिषु. ''**अस्य लोकस्य का गतिरिति आकाश इति होवाच**''(छान्दो.उप.१।९।१) इत्यादिवाक्येषु. **तत्र** उक्तविधेषु षट्सु मध्ये. लक्षणविचारे पूर्वसूत्राभ्यां कृत्वा इत्यादि. **सद्रूपाणाम्**. ''**सदेव सौम्येदम् अग्र आसीद्**''(छान्दो.उप.६।२।१) इत्यादिकार्यवाचकानां वाक्यानां मध्ये 'सद्'इतिपदानाम् इति अर्थः. **वाचकता** ब्रह्मवाचकता. **निर्णीता**. एवं 'चित्'पदानाम् ईक्षत्यधिकरणे. 'आनन्द'पदानाम् आनन्दमयाधिकरणे. आकाशवाचकपदानाम् आकाशस्तलिङ्गाधिकरणे. वायुवाचकप्राणादिपदानाम् ''**अतएवप्राणः**'' इति प्राणाधिकरणे. तेजोवाचकानां ज्योतिःशब्दानां ज्योतिश्चरणाभिधानाद् इति अधिकरणे. एवं रीत्या षड्विधानां वाक्यानां प्रथमे पादे निर्णयं कृत्वा शब्दसन्देहो निवार्यते इति भावः. ईक्षत्यधिकरणस्य प्रयोजनम्

तत्र लक्षणविचारएव सद्रूपाणां वाचकता निर्णीता. चिद्रूपस्य ज्ञानप्रधानस्य निर्णयार्थम् ईक्षत्यधिकरणम् आरभ्यते सप्तभिः सूत्रैः, सप्तद्वारत्वाद् ज्ञानस्य. तत्र एवं सन्देहः. ब्रह्मणः स्वप्रकाशत्वेन सर्वप्रमाणाविषयत्वात् ‘‘**यतो वाचो निवर्तन्ते**’’(तैत्ति.उप.२।४) इति श्रुतेश्च विचारः कर्तुं न शक्यते, स्वप्रकाशत्वविरोधात् श्रुतिविरोधाच्च आहोस्वित् विरोधपरिहारेण शक्यते इति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उक्तम् इति बोध्यम्. **तत्र** सच्चिदानन्दप्रतिपादकवाक्यानां मध्ये. **लक्षणे**त्यादि. जन्मादिसूत्रविचारे समन्वयसूत्रविचारे च इति अर्थः. सद्रूपाणां ‘‘**यतो वा इमानि भूतानि**’’ (तैत्ति.उप.२।४), ‘‘**तस्माद् वा एतस्माद् आत्मनः आकाशः**’’ (तैत्ति.उप. २।१) इत्यादिसद्रूपप्रतिपादकवाक्यानाम्. **सप्तद्वारत्वात्** षडिन्द्रियात्महेतुकप्राकट्यस्य ज्ञाने सत्त्वाद् इति अर्थः.

अधिकरणविरचनार्थम् आहुः **तत्र एवम्** इत्यादि. **स्वप्रकाशत्वेन** ‘‘**न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोयम् अग्निः, तमेव भान्तम् अनुभाति सर्वं तस्या भासा सर्वम् इदं विभाति**’’(कठोप.२।२।१५), ‘‘**न तद् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः**’’(भग.गीता१५।६) इत्याद्युक्तप्रकारेण तस्यैव सर्वावभासकत्वात् स्वस्य ज्ञापकान्तरानपेक्षणेन इति अर्थः. ननु स्वप्रकाशस्यापि सूर्यादेः प्रमाणगोचरत्वाद् ब्रह्मण्यपि तथा आस्ताम् इत्यतः आहुः ‘‘**यतो वाचो**’’(तैत्ति.उप.२।४) इत्यादि. तथाच प्रकाशकान्तरस्य उक्तश्रुत्यविषयत्वाद् अस्तु प्रमाणगोचरता, ब्रह्मतु प्रमाणाविषयइति व्यर्था विचारप्रतिज्ञा इति अर्थः. ब्रह्मणो ज्ञापकान्तरापेक्षायां दूषणम् आहुः **स्वप्रकाशविरोधाद्** इति. **श्रुतिविरोधाद्** ‘‘**यतो वाचो**’’ इति श्रुतिविरोधाद् इति अर्थः. व्यासविचारप्रतिज्ञानुरोधम् आलम्ब्य आहुः **आहोस्विद्** इति. **विरोधपरिहारेण** स्वप्रकाशत्वश्रुत्योः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आहुः **चिद्रूपस्य** इति. **सप्ते**ति. पञ्च चक्षुरादीनि मनो जीवश्च इति सप्त इति अर्थः. नैय्यायिकमते ज्ञानशब्दस्य गुणवाचकत्वेऽपि अत्र ब्रह्मवाचकत्वं बोध्यम्.

संशयम् आहुः **तत्र एवम्** इति. **स्वप्रकाशत्वविरोधाद्** इति. ‘‘**तमेव भान्तम् अनुभाति सर्वम्**’’(मुण्डकोप.२।२।१०) इत्यादिश्रुतिप्रतिपाद्यः स्वप्रकाशत्वविरोधेन ब्रह्मणः प्रमाणगम्यत्वं न वक्तव्यम् इति अर्थः. **श्रुतिविरोधाद्** इति. मनोवाग्विषये पदार्थे विचारः प्रवर्तते. ब्रह्मणो विचारे क्रियमाणे ‘‘**यतो वाचो निर्वतन्ते**’’(तैत्ति.उप.२।४) इति श्रुतिविरोधः स्याद् इति अर्थः. **शक्यते** इति. विरोधपरिहारं कृत्वा विचारः कर्तुं

किं तावत् प्राप्तम् ? न शक्यते इति. कुतः ?

ज्ञापनार्थं प्रमाणानि सन्निकर्षादिमार्गतः।
सर्वथाऽविषयेऽवाच्येऽव्यवहार्येकुतः प्रमा।।१३।।

ऐहिकामुष्मिक-व्यवहारयोग्ये पुरुषप्रवृत्तिः. प्रवृत्त्यर्थं हि प्रमाणानि. ब्रह्म पुनः सर्वव्यवहारातीतम् इति. ननु एतदपि वेदादेव अवगम्यते इति चेत्, तर्हि बाधितार्थप्रतिपादकत्वाद् न वेदान्ताः विचारयितव्याः इति प्राप्ते उच्यते.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

विरोधपरिहारेण इति अर्थः. **शक्यते** वेदान्तविचारः कर्तुं शक्यते इति विधिकोटिः.

पूर्वपक्षम् आहुः **न शक्यते** इति. **सन्निकर्षादि** इत्यादिपदेन परामर्षपदजन्य-पदार्थोपस्थित्यतिदेशवाक्यार्थस्मृतीनां ग्रहणम्. **कुतः प्रमा?** अविषये अवाच्ये अव्यवहार्ये प्रमाणानाम् अप्रचारात् प्रमा कुतो भवेद्? इति अर्थः. **व्यवहारयोग्ये** बलवदनिष्टाननुबन्धीष्टसाधनकृतिसाध्ये. **पुरुषप्रवृत्तिः** फलार्थं पुरुषप्रवृत्तिः. **प्रवृत्त्यर्थं** प्रवृत्त्युद्देश्यनिश्चयार्थम्. **सर्वेत्यादि,** व्यवहारपदवाच्यज्ञानकृतिशब्दागोचरम् इति अर्थः. ननु ब्रह्मणि प्रमाणागोचरत्वप्रतिपादकवेदेनैव ब्रह्मविशेष्यकप्रमाणागोचरत्व-प्रकारकप्रमाजननात् कथं ब्रह्मणः प्रमाणागोचरत्वम्? इति आशङ्कन्ते **ननु** इत्यादि. **एतदपि** ब्रह्मणि प्रमाणागोचरत्वमपि **वेदादेव** “**यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह**” (तैत्ति.उप.२।४) इत्यादिवेदादेव. **इति चेत्, तर्हि** वेदानाम् एवम्प्रकारसत्वकाले इति अर्थः **बाधिते**त्यादि. “मम माता जननी वन्ध्या” इत्यादिवाक्यसमतया बाधितार्थ-प्रतिपादकत्वाद्. **न** इत्यादि. प्रमाणं हि विचार्यं वेदान्तानान्तु उक्तरीत्या अप्रामाण्याद् न विचार्यते इति अर्थः. **उच्यते** सूत्रकारेण समाधानम् उच्यते. “**ईक्षतेर्नाशब्दम्**”. सूत्रार्थम्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

शक्यते इति विधिकोटिः इति अर्थः. पूर्वपक्षम् आहुः न **शक्यते** इति.

अत्र युक्तिम् आहुः **ज्ञापनार्थम्** इति. अज्ञातस्य विषयस्य चक्षुःसन्निकर्षादि-द्वारा ज्ञानविषयीकरणार्थम् इति अर्थः. **अविषयः** सर्वप्रमाणाविषयः. **अव्यवहार्यः** इति. मनःसहकारेण प्रवृत्यभाववति. शङ्कते **ननु** इति. **एतद्** इति. अविषयत्वम् इति अर्थः. समाधानम् आहुः **तर्हि** इति. ननु ब्रह्मणः असङ्गत्वादेव सर्वप्रमाणावेद्यत्वम्, अवाच्यत्वादेव वैदिकव्यवहारातीतत्वम् अस्तु नाम, परन्तु इदं सर्वं वेदवाक्यादेव अगम्यतइति तस्य एतादृशत्वज्ञानार्थं वेदान्तविचारः कर्तव्यः इत्यतः आहुः **बाधितार्थे**ति. यः प्रमाणाविषयः सः वेदान्तविषयो न भवति इति बाधितार्थः इति अर्थः.

ईक्षतेर्नाशब्दम्।।४।। (१।१।४)

न विद्यते शब्दो यत्र इति **अशब्दं** सर्ववेदान्ताद्यप्रतिपाद्यं ब्रह्म न भवति. कुतः? **ईक्षतेः. ''सदेव सौम्येदमग्र आसीद् एकमेवाद्वितीयम्''** (छान्दो.उप. ६।२।१) इति उपक्रम्य **''तदैक्षत बहुस्याम् प्रजायेय''** (तत्रैव ६।२।१) इति.

''तत्तेजोऽसृजत''(तत्रैव ६।२।३) तथा अन्यत्र **''आत्मा वेदमेक एवाग्र आसीद् नान्यत्किञ्चन मिषत्''**(ऐत.उप.१।१।१), **''स ऐक्षत लोकानुसृजा''** (तत्रैव१।१।१), **''स इमान् लोकानसृजत''**(तत्रैव१।१।२) इति. **''स ईक्षाञ्चक्रे''** (प्रश्नोप.६।३), **''स प्राणम् असृजत''** (तत्रैव ६।३) इत्येवमादिषु सृष्टिवाक्येषु ब्रह्मणः ईक्षा प्रतीयते.

किम् अतो यदि एवम्-एवम् एतत् स्यात्. सर्वव्यवहारप्रमाणातीतोऽपि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आहुः **न विद्यते** इत्यादिना. **न विद्यते** वाच्यतासम्बन्धेन न विद्यते इति अर्थः. **अशब्दं** वादिमते प्रसिद्धमिति न अप्रसिद्धिदोषः. प्रसिद्धिमेव उपपादयन्ति **सदेव** इत्यादिना. **मिषद्** व्यापारं कुर्वत्. **किमतः** इत्यादि, एवम् उपपादने किं सिद्धम्? इति अर्थः. सिद्धम् आहुः **एवम्** इत्यादिना. **एवं** वक्ष्यमाणप्रकारेण. **एतद्** वक्ष्यमाणम्. वक्ष्यमाणम्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सिद्धान्तम् आहुः **ईक्षतेर्नाशब्दम्.** व्याख्यानम् आहुः **न** इति. शब्द–प्रतिपाद्यत्वे 'ईक्षति'धातोः हेतुत्वार्थं विषयवाक्यानि आहुः **सदेव** इति. छान्दोग्ये, ऐतरेये, प्रश्नोपनिषदि च क्रमेण वाक्यत्रयम्. **मिषद्** व्यापारं कुर्वत्. तथाच एतादृशवेदान्तवाक्याद् ब्रह्मकर्तृकेक्षाविषयक–शाब्दबोधो जायते. ईक्षा च ''एवं जगत् करिष्यामि'' इति निश्चयः.

साच जगद्रूपसत्कार्येण अनुमीयते इति न असद्विषयकत्वं शाब्दबोधस्य इति अर्थः. एतावता विरोधपरिहारो न जातः इति आशङ्कते **किम्** इति. यदि एवं ईक्षाप्रतीतिः अस्ति अतः किम्? न किमपि इति अर्थः. तथाच विरोधस्य तादवस्थ्यम् इति भावः. समाधानम् आहुः **एवम्** इति. **सर्वः** इति. भगवान् इत्यादिः. भविष्यामि इति पूर्वम् अव्यवहार्यः सृष्ट्यनन्तरम् इच्छायाः व्यवहार्यः एतद् उभयमपि वेदेनैव प्रतिपाद्यते इति विरुद्धधर्माश्रयत्वे दोषाभावाद् वेदान्तवाक्यानाम् अबाधितार्थप्रतिपादकत्वेन विचार्यत्वम् इति भावः. **उक्तवान्** इति. **तथा तथा ''तत्तेजो असृजत''** (छान्दो.उप. ६।२।३) **''स प्राणम् असृजत''**(प्रश्नोप.६।४) इत्यादिवाक्येषु उक्तवान् इति अर्थः.

ईक्षाञ्चक्रे ''लोकसृष्टिद्वारा व्यवहार्यो भविष्यामि'' इति. अतो यथा-यथा कृतवान् तथा-तथा स्वयमेव उक्तवान्. पूर्वरूपं फलरूपञ्च

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आहुः **सर्वव्यवहारे**त्यादिना. किम् उक्तवान्? तद् आहुः **पूर्वरूपम्** इत्यादिना.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

वीप्सायां सर्वेषां वेदोक्तसृष्टिवाक्यानां सङ्ग्रहः. वेदवाक्येन कर्तृत्वादिसर्वमाहात्म्यविशिष्टब्रह्मविषयकशाब्दबोधात्मकं परोक्षं ज्ञानं जायते. तदनन्तरं मननादिद्वारा अपरोक्षं ब्रह्मज्ञानं जायते इति हृदयम्. **पूर्वे**ति.

अत्र पाठद्वयम्. एकस्तु ''**पूर्वरूपं फलरूपं च सृष्टं, स्वांशपुरुषार्थत्वाय**'' इममेव पाठं धृत्वा प्रकाशे श्रीगोस्वामिपुरुषोत्तमैः व्याख्यातम्. तथाहि एवं करणकथनयोः प्रयोजनम् आहुः **पूर्वम्** इत्यादि. स्वांशाः जीवाः तदुपयोगिपुरुषार्थत्वं तेजःप्रभृतीनां भवतु इति इच्छायाः पूर्वं प्रथमतः 'प्रजा'दिशब्दवाच्यं शरीरं फलरूपम् लोकादिकञ्च सृष्टम्. तथाच एतेषां पुरुषार्थत्वेन जीवाशास्यत्वाय एवं कृत्वा तत्कर्तृतया फलदातृतया च स्वस्य व्यवहार्यत्वं कृतवान् इति तत्सम्पादनं प्रयोजनम् इति अर्थः. तेन सिद्धम् आहुः **ततः** इत्यादि इति व्याख्यातम्. वस्तुतस्तु क्वचित् पुस्तके अपरोऽपि पाठः प्रतिभाति. तथाहि ''**पूर्वरूपं फलरूपञ्च सृष्टस्वांशपुरुषार्थत्वाय**'' इति एकमेव वाक्यम्. अस्य अर्थस्तु, वेदोक्तकर्मादीनां प्रयोजनम् आहुः **पूर्वरूपे**ति. पूर्वरूपं साधनम्, अपरं फलरूपम्. एवञ्च साधनरूपं यज्ञयागादिश्रवणमननादीनि, फलञ्च स्वर्गादिपुरुषार्थो मोक्षश्च उक्तवान् इति पूर्वेण अन्वयः. तथाच भगवान् प्रमाणातीतोऽपि इच्छया व्यवहारसिद्ध्यर्थं यथा-यथा कृतवान् तथा उक्तवान्, ''**स ऐक्षत लोकान् उत्सृजै**'' (ऐत. उप.१।१।१) इति, ''**स प्राणम् असृजत**''(प्रश्नोप.६।३) इत्यादिवाक्येषु. ननु सर्वव्यवहारः सिद्धएव, परन्तु यज्ञयागादिकं पूर्वरूपं फलरूपञ्च स्वर्गो मोक्षश्च उक्तः तस्य किं प्रयोजनम् इति आशङ्कायाम् आहुः **सृष्टस्वांशः** इति. सृष्टाः ये स्वांशाः जीवाः तेषां पुरुषार्थत्वाय वेदे उक्तवान् इति समुदितार्थः इति भावः. ममतु अयमेव पाठः समीचीनः इति प्रतिभाति. कुतः? यद्यत्कृतं तत् सर्वं वेदे ''**दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः**''(महाना.उप.५।७) ''**द्यावाभूमी जनयन् देव एकः**''(श्वेता.उप.३।३) इत्यादिषु वाक्येषु चतुर्दशभुवनात्मकं प्रपञ्चजातं स्वस्य व्यवहारसिद्ध्यर्थम् उक्तम्. परन्तु, पूर्वकाण्डे यज्ञादिकम् उक्तम् उत्तरकाण्डे श्रवणादिकं ब्रह्मध्यानोपासनादिकम् ''**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**'' (छान्दो.उप.३।१४।१) इत्यादिवाक्येषु उक्तं तस्य किं प्रयोजनम्? इति आकाङ्क्षा तदवस्थैव स्यात् यदि पूर्वरूपं साधनं फलरूपं स्वर्गमोक्षादिसृष्टस्वांश-

सृष्टस्वांशपुरुषार्थत्वाय. ततश्च प्रमाणबलेन अविषयः स्वेच्छया विषयश्च इति उक्तम्. ननु सर्वप्रमाणविषयत्वे दूषिते केवलवेदविषयत्वं कथं सिद्धान्ती क्रियते? उच्यते. चक्षुरादीनां प्रामाण्यम् अन्यमुखनिरीक्षकत्वेन, न स्वतः, भ्रमानुत्पत्तिप्रसङ्गात्. सत्त्वसहितानामेव चक्षुरादीनां प्रामाण्यात्. अतो निरपेक्षाएव भगवन्-निःश्वासरूपवेदाएव प्रमाणम्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

स्वांशेत्यादि. स्वांशो जीवः, तस्य पुरुषार्थप्रदस्वरूपज्ञापनाय इति अर्थः.

वादी शङ्कते **ननु** इति. **सर्वप्रमाणे**त्यादि. जन्यज्ञानमात्रस्य मनोजन्यत्वनियमे ब्रह्मणश्च मनोगोचरत्वाभावे प्रतिपादिते सर्वप्रमाणगोचरत्वमपि दूषितम् इति बोध्यम्. **उच्यते** वास्तवप्रमाणगोचरत्वेन समाधानम् उच्यते इति अर्थः.

अन्यमुखेत्यादि. सत्त्वमात्रप्राधान्याधीनम् इति अर्थः. **न स्वतः** न सत्वासहकारेण इति अर्थः. **प्रमाणं** अलौकिके ब्रह्मणि वेदात्मकम् अलौकिकमेव प्रमाणम् इति अर्थः. ननु वेदेन प्रमाजनने शक्तिग्रहस्य सहकारित्वात् तस्य च उत्तमवृद्धमध्यम-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

पुरुषार्थत्वाय वेदे उक्तवान् इति अर्थबोधकः पाठो न स्यात्. तस्माद् अयमेव श्रीमदाचार्यप्रभुचरणानाम् आशयः इति मन्तव्यम्. अतएव पूर्वम् उक्तम् **''साधनं च फलं चैव सर्वस्याह श्रुतिः स्फुटम्''** इति. सर्वस्य जीवस्य इति अर्थः. अतएव अग्रे आनन्दमयाधिकरणे जीवस्य साधनफले निरूपयन्त्याः श्रुतेः इति उक्तं पूर्वरूपम् इत्यस्य फलस्य पूर्वरूपं साधनम् इत्येव अर्थः इति दिक्. 'च'कारेण यद्यत्कृतं तदुक्तम् इति अस्यापि समुच्चयः. एवञ्च सिद्धम् आहुः **ततः** इति. शङ्कते **ननु** इति. समाधानम् आहुः **उच्यते** इति. **अन्यमुखनिरीक्षकत्वेन** इति. शुद्धतत्त्वगुणविशिष्टत्वेन, चक्षुषि दोषसत्त्वे असद् इति, दोषाभावे सद् इति च व्यवहारः. परस्य यादृशं मुखं तादृशमेव येन चक्षुषा गृह्यते तच्चक्षुरेव अन्यमुखनिरीक्षकं सद् इति उच्यते. अथवा कार्यसमये सहायमुखनिरीक्षणं येन क्रियते सएव अन्यमुखनिरीक्षकः सहायापेक्षीति अर्थः. तथाच सत्त्वाधीनमेव प्रामाण्यम् इति भावः. ननु केवलं चक्षुरेव प्रमाणं नतु सत्त्वविशिष्टम् इति उच्यते इत्यतः आहुः **भ्रमे**ति. **सत्त्वसहितानाम्** इति. सत्त्वविशिष्टानाम् इति अर्थः. सतो भावः सत्त्वं समीचीनत्वविशिष्टानाम् इति यावत्. **प्रमाणम्** इति. भागवतः शाब्दबोध-विषयत्वे प्रमाणम् इति अर्थः.

ननु वेदस्य शब्दरूपत्वाद् शब्दस्य च बोधकतायाः सङ्केतग्रहाधीनत्वाद् तस्य

सङ्केतग्रहस्तु वैदिकएव वेदविद्भिः कृतः. आकृतिमात्रार्थं लोकापेक्षा. अनधिगतार्थगन्तृ च प्रमाणं, लोकानधिगतः इति अर्थः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

वृद्धबालादिव्यवहाराधीननिर्णयविषयत्वात् कथं सर्वांशे वेदानाम् अलौकिकप्रमाणत्वम् ? अतः आहुः **सङ्केते**त्यादि. निघण्टु–निरुक्तादिभिः कृतः इति अर्थः. **आकृती**त्यादि. तथाच जात्याकृतिविशिष्टव्यक्तौ शक्तिस्वीकारे गौरवाद् व्यक्त्याकृत्योः प्रकारान्तरेणापि बोधसम्भवाद् अनन्यलभ्यस्यैव शब्दार्थत्वाद् जातावेव वैदिकः शक्तिग्रहः व्यक्त्याकृतीनान्तु लोकतोऽपि ग्रहसम्भवः इति अर्थः. जात्यंशे शब्दानां प्रामाण्यं व्यवस्थापयन्ति **अनधिगते**त्यादिना. **लोके**त्यादि. तथाच व्यक्त्याकृत्यंशे

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

बालवृद्धव्यवहाराधीनत्वाद् स्वातन्त्र्यं ब्रह्मणो अव्यवहार्यत्वेन वेदबोध्यत्वं च न घटते इत्यतः आह **सङ्केते**ति. **वैदिकएव** इति. ‘‘**अनेन जीवेन आत्मना अनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि**’’ (छान्दो.उप.६।३।२) इतिश्रुत्या प्रथमतः वेदप्रतिपाद्यएव सङ्केतग्रहो वेदविद्भिः ब्रह्मादिभिः भगवत्प्रेरणया कृतः इति अर्थः. अतएव एकादशस्कन्धे ‘‘**कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसञ्ज्ञिता, मया आदौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः**’’ (भाग.पुरा.११।१४।३) इति.

ननु तथापि इदानीम् अस्मदादीनां तादृशसङ्केतग्रहाभावाद् अबोध्यत्वदोषः इत्यतः आहुः **आकृती**ति. जातिशक्तिवादिनां पूर्वोत्तरमीमांसकानां मते ‘घट’पदस्य घटत्वे शक्तिं स्वीकृत्य अन्यथानुपपत्तिरूप–प्रमाणान्तरेण व्यक्तिज्ञानं ज्ञायते, नतु व्यक्तौ शक्तिः. एवं रीत्या व्यक्तिज्ञाने जाते अनन्तरं कीदृशी व्यक्तिः इति आशङ्क्य लोके परिदृश्यमाना या पृथुबुध्नादिरूपा आकृतिः सा ज्ञेया इति लोकापेक्षा इति अर्थः. तथाच आत्मवादिनां ‘घट’पदाद् लोके मृण्मयघटज्ञाने जाते वेदे ‘हेमघट’पदाद् तादृशाकृत्या सुवर्णघटज्ञानं भविष्यति इति एवं रीत्या वैदिकव्यवहार्यत्वं यज्ञवद् ब्रह्मणोऽपि सम्भवति इति भावः. किञ्चिदपि लोकापेक्षा न स्वीक्रियते, तर्हि यज्ञसिद्धिः न स्यात्. ‘‘हंसमुखी स्रुचि कर्तव्या’’ इति हंसमुखाद्याकृत्यपेक्षत्वाद् पात्राणाम् इति हृदयम्. ननु ‘‘**जात्याकृतिव्यक्तयः पदार्थः**’’ इति सूत्रे पदार्थः इत्यस्य पदजन्यप्रतीतिविषयः इति अर्थकरणेन आकृतेरपि वैदिकपदार्थत्वसम्भवः इत्यतः आह **अनधिगते**ति. प्रमाणान्तरेण न अधिगतः न ज्ञातः एतादृशो यो अर्थः, तत्र गन्तृप्रसरणलक्षणं प्रमाणम् इति अर्थः. तथाच प्रमाणस्य अयं स्वभावः, अनधिगतार्थगन्तृत्वम्. एवञ्च जातौ शक्तिः. जातिस्तु व्यक्तिं विना न तिष्ठति इति व्यक्तेः आक्षेपलभ्यत्वम् इति आकृतिसहितायाएव व्यक्तेः

यज्ञ-ब्रह्मणोः अलौकिकत्वं सिद्धमेव. लौकिको व्यवहारः सन्निपात-रूपत्वात् पुरुषार्थासाधकएव.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

लोकाधिगमस्यापि सम्भवाद् न तदंशे अनधिगतार्थगन्तृत्वं शब्दानाम् इति भावः. यदंशे शब्दप्रामाण्यं तम् अलौकिकं विषयम् आहुः **यज्ञे**त्यादि. तथाच लोके जातिवाचकत्वम् इतरांशस्य प्रमाणान्तरगम्यत्वाद् अलौकिकेतु सर्वस्यापि अनधिगतस्य गम्यत्वात् सर्वांशे प्रामाण्यम् इति अर्थः. तथाच "**यज्ञो वै विष्णुः**" (तैत्ति.ब्राह्म.१।२।५।१) "**अग्निष्टोमेन वै प्रजापतिः प्रजा असृजत**" (आप.श्रौ.सू.१०।२।१) इत्यादौ सर्वत्र लोकानधिगतार्थ–गन्तृत्वात् शब्दानां प्रामाण्यम् अवसेयम्. ननु लौकिकशब्देभ्योऽपि यथार्थज्ञान–संवादिप्रवृत्त्यादेः दर्शनाद् वेदतुल्यप्रामाण्यं कुतो न अङ्गीक्रियते? इत्यतः आहुः **लौकिकः** इति. **व्यवहारः** प्रयुज्यमानः शब्दः ज्ञानं प्रवृत्तिश्च. **सन्निपाते**त्यादि. सत्त्वादिमिश्रित–गुणत्रयजन्यत्वेन त्रिदोषरूपत्वाद् इति अर्थः. तथाच घुणाक्षरन्यायेन कदाचित् संवादसम्भवेऽपि प्रामाण्यस्य प्रवृत्तिप्रामाण्यनिर्णयात् पूर्वं ज्ञाने सन्दिग्धत्वेन निष्कम्पप्रवृत्तेः असम्भवात् **पुरुषार्थासाधकएव** निष्कम्पसकलप्रवृत्तेः असाधकएव इति अर्थः. अतएव "**यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति**" (तैत्ति.उप.२।७) इति. लौकिकव्यवहारस्य भयजनकत्वमपि श्रूयते.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ज्ञाने जाते अर्थापत्तेरपि लोके प्रमाणत्वाद् तत्सिद्धाकृतौ शब्दप्रमाणप्रसरो न भविष्यति इति भावः. ननु तथापि वेदे अनधिगतत्वं स्वीक्रियते चेद् **यज्ञ–ब्रह्मणोः** वेदरूपशब्दप्रमाणगन्तृत्वे अनधिगतत्वं नास्ति, अगन्तृत्वे वेदप्रतिपाद्यत्वं न स्याद् इति उभयतः पाशारज्जुः इत्यतः तदर्थम् आहुः **लोके**ति. लोके अनधिगतो यो अर्थः. तथाच एतादृशार्थकरणाभावे वेदप्रतिपाद्यत्वम् उभयोः न स्याद् इति भावः. ननु कथञ्चिद् किञ्चिद् अंशे लोकापेक्षा अस्ति इति लौकिकत्वम् उभयोः स्वीकर्तव्यम् इत्यतः आहुः **यज्ञे**ति. **सिद्धम्** इति. उभयमतसिद्धम् इति अर्थः. ननु सूत्रकृता **नाशब्दम्** इति उक्तं 'नावेदम्' इति न उक्तम्. तेन कृत्वा किं ज्ञायते लौकिकवैदिकसाधारणशब्द–व्यवहार्यत्वं ब्रह्मणः इत्यतः आहुः **लौकिकः** इति. **सन्निपातरूपत्वाद्** इति. अहन्features ममतायुक्ता बुद्धिः सन्निपातः, तदीयव्यवहारस्यापि सन्निपातत्वम्; एवञ्च लौकिकव्यवहारस्य सन्निपातकार्यत्वेन मिथ्यात्वाद् इति अर्थः. अतएव एकादशस्कन्धे भगवतैव उक्तं "**सन्निपातस्तु अहम् इति मम इति उद्धव! या मतिः, व्यवहारः सन्निपातो मनो–मात्रेन्द्रियासुभिः**" (भाग.पुरा.११।२५।६) इति.

तर्हि शब्दमात्रस्य कथं ग्रहणम् ? वेदव्याख्यातृवाग्विषयत्वाद् इति ब्रूमः. एतेन **‘‘मनसैवानुद्रष्टव्यम्’’** (बृहदा. उप.४।४।१९) इत्यपि समर्थितम्. तस्मात् सृष्ट्यादिप्रतिपादकापि वेदान्ताः साक्षात् ब्रह्मप्रतिपादकाः इति सिद्धम्।।४।।

स्याद् एतत्. कर्तृत्वम् अकर्तृत्वं च वेदे प्रतीयते ब्रह्मणः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ननु लौकिकशब्दस्य सर्वथा प्रामाण्यानङ्गीकारे ‘‘ईक्षतेर्नावेदम्’’ इत्येव सूत्रकारो वदेद् नतु ‘‘नाशब्दम्’’ इति चेत् तत्र आहुः **तर्हि** इत्यादि. **शब्दमात्रस्य** शब्दत्वा-वच्छिन्न‘सर्व’शब्दस्य इति अर्थः. समाधानम् आहुः **वेदे**त्यादि. तथाच वेदव्याख्यातॄणां वाग्व्याख्यातारो ये तदीयशब्दानामपि तद्विवरणरूपत्वात् प्रामाण्यम् इति सूत्राशयात् सामान्यग्रहणम् इति भावः. ननु ब्रह्मणो वैदिकशब्दगोचरत्वप्रतिपादनेन श्रोतव्यत्व-सिद्धावपि **‘‘मनसैवानुद्रष्टव्यम्’’**(बृहदा.उप.४।४।१९) इति श्रुत्यर्थो अनुपपन्नएव इत्यतः आहुः **एतेन** इत्यादि. **एतेन** श्रवणजनितसंस्कारसहभावेन. तथाच श्रवणजनित-संस्कारसहकृतनिष्काममनसापि ब्रह्म द्रष्टुं शक्यमिति न श्रुत्यर्थानुपपत्तिः इति अर्थः. **एव**कारो अप्यर्थः अन्यथा **‘‘कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानम् ऐक्षद् आवृत्तचक्षुः’’** (कठोप.२।१।१) इति श्रुत्यर्थबाधापत्तेः. सिद्धान्तम् उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति. **तस्मात्** सृष्टिद्वाराप्रमाणव्यवहार्यो भविष्यामि इति सृष्ट्यादौ ईक्षतेः श्रवणात्. **साक्षाद्** इत्यादि. तथाच शक्त्यैव प्रतिपादकाः नतु परिचायकधर्मप्रदर्शनद्वारा इति अर्थः।।४।।

सूत्रान्तरम् अवतारयितुम् आहुः **स्याद् एतद्** इति. **एतत्**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ननु तथापि शब्दग्रहणस्य किं प्रयोजनम् इति शङ्कते **तर्हि** इति. समाधानम् आहुः **वेदे**ति. वेदव्याख्यानस्य वेदत्वाभावेऽपि भगवन्निःश्वासरूपत्वेन ब्रह्मप्रतिपादकत्वाद् शब्दग्रहणम् इति अर्थः. अतएव मैत्रेयीब्राह्मणे **‘‘सूत्राणि अनुव्याख्यानानि... अस्यैव एतानि सर्वाणि निःश्वसितानि’’**(बृहदा.उप.४।५।११) इति उक्तम्. अतएव उक्तं गीतायां **‘‘वेदान्तकृद् वेदविदेव च अहम्’’**(भग.गीता.१५।१५) इति. एवं रीत्या वैदिकशब्दजन्य-शाब्दबोधविषयत्वे सिद्धे, ब्रह्मणः परोक्षज्ञाने जाते, तदनन्तरं मननेन मानसिकं ज्ञानं कस्यचिद् साक्षात्कारोऽपि जायते, इतिश्रुत्या समर्थयन्ति **एतेन** इत्यादिना. **मनसैव** इति. कामनारहितेन इति शेषः. अपिना **‘‘कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानम् ऐक्षद्’’** (कठोप.२।१।१) इति श्रुतिरपि सङ्गृहीता. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति. **सिद्धम्** इति. वेदान्तवाक्यैः ब्रह्मविचारः कर्त्तव्यः इति सिद्धम् इति अर्थः ।।४।।

‘गौणश्चेन्नात्मशब्दाद्’ इति अग्रिमं सूत्रम् अवतारयन्ति **स्याद् एतद्** इति.

‘‘यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते’’ (तैत्ति.उप.३।१),
‘‘स आत्मानं स्वयमकुरुत’’ (तैत्ति.उप.२।७)
‘‘निष्कलंनिष्क्रियंशान्तंनिरवद्यंनिरञ्जनम्’’(श्वेता.उप.६।१९)
‘‘असङ्गो ह्ययं पुरुषः’’ (बृहदा.उप.४।३।१५)

इत्येवमादिवाक्येषु. तत्र द्वेधा निर्णयः सम्भवति. सर्वभवनसमर्थत्वाद् विरुद्धसर्वधर्माश्रयत्वेन अन्यतरबाधाद् वा. अलौकिकापेक्षया लौकिकस्य जघन्यत्वात् कर्तृत्वादेः लोकसिद्धत्वात् कर्तृत्वबाधएव युक्तः. ईक्षत्यादिकन्तु प्रकृतिगुणसम्बन्धादपि ब्रह्मणो युज्यते. तस्माद् अलौकिकसर्वभवनसमर्थत्वादिकल्पनापेक्षया लौकिकएव अन्यतरबाधो युक्तः. ततश्च सत्यस्वरूपाद् अन्यदेव एतद् इति स्वयमेव आशङ्क्य परिहरति सूत्रकारः.

गौणश्चेन्नात्मशब्दात्।।५।।

ईक्षत्यादियुक्तः परमात्मा **गौणः** प्रकृतिगुणसत्त्वसम्बन्धवान् इति **चेद्,**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ब्रह्मप्रतिपादकत्वम्. **स्यात्** स्यादेव परं न साक्षात् किन्तु परिचायकप्रदर्शनद्वारा इति अर्थः. तदेव उपपादयन्ति **कर्तृत्वम्** इत्यादिना. **तत्र** द्विविधवाक्यप्रतिपादिते ब्रह्मणि. **विरुद्धसर्वे**त्यादि. कर्तृत्वभोक्तृत्वसर्वकामत्वतदभावाः सर्वे विरुद्धधर्माः तदाश्रयत्वा-ङ्गीकारेण इति अर्थः. **अन्यतरबाधाद्** ‘‘निष्कलम्’’ इति श्रुत्यनुरोधात् कर्तृत्वादिधर्माणां बाधात्. **‘‘यतो वा’’** इति श्रुत्यनुरोधाद् अकर्तृत्वादीनां वा बाधाद् इति. ननु तर्हि अकर्तृत्वाद्येव बाध्यताम् अतः आह **लौकिके**त्यादि इति. तथाच **निष्कलम्** इत्यादिश्रुत्यभिप्रेतम् अकर्तृत्वाद्यलौकिकं, लोके सर्वत्र चेतनमात्रस्य कर्तृत्वादिदर्शनात् कर्तृत्वादि लौकिकम् इति तद्बाधएव युक्तः इति समुदितार्थः. **एतद्** मायाशबलितं कर्तृ ब्रह्म इति अर्थः.

सूत्रार्धेन पूर्वपक्षं निरस्यन्त आहुः **ईक्षत्यादि** इत्यादि. **तथा** प्रकृतिगुण-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

‘च’कारेण उपादानत्वम् अनुपादानत्वं बोध्यम्. कर्तृत्वबोधकं वाक्यम् आहुः **यतो वा** इति. उपादानत्वबोधकं वाक्यम् आहुः **सः आत्मा** इति. अकर्तृत्वबोधकं वाक्यम् आहुः **निष्कलम्** इति. अनुपादानत्वबोधकं वाक्यम् आहुः **असङ्गे**ति. **ईक्षत्यादिकन्तु** इति. **‘‘स ऐक्षत’’** (बृहदा.उप.१।२।५) इत्यादिश्रुतिप्रतिपाद्यम् ईक्षणकर्तृत्वन्तु प्रकृतिगुण-सम्बन्धविशिष्टं यच्छबलं ब्रह्म तन्निष्ठम् इति भावः. **एतद्** इति. शबलं ब्रह्म इति अर्थः.

न, तथा वक्तुं न शक्यते. कुतः? **आत्मशब्दात्. "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीद्"** (ऐत.उप.१।१) इति उपक्रम्य **"स ऐक्षत"** (ऐत.उप.१।१) इति उक्तम्. 'आत्म'शब्दः पुनः सर्वेषु वेदान्तेषु निर्गुणपरब्रह्मवाचकत्वेनैव सिद्धः. तस्यैव जगत्कर्तृत्वं श्रुतिः आह.

ननु च उक्तम् अन्यतरबाधो युक्तः इति. न युक्तः, स्वातन्त्र्याभावेन सगुणस्य कर्तृत्वायोगात्. वेदाश्च प्रमाणभूताः. ततः सर्वभवनसामर्थ्यमेव श्रुतिबललभ्यम् अङ्गीकर्तव्यम्.

किञ्च. अस्ति-भाति-प्रियत्वादिधर्मवद् ब्रह्मगतकर्तृत्वं लोके प्रतीयते,

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सम्बन्धेन ईक्षणकर्तृत्वम्. **इदं** सर्वं प्रपञ्चस्वरूपम्. **स** आत्मा.

पूर्वपक्षी शङ्कते **ननु** इति. **स्वातन्त्र्याभावेन** मायाशबलितस्य मायाधीनत्वेन स्वातन्त्र्याभावेन इति अर्थः. **कर्तृत्वायोगात् "स्वतन्त्रः कर्ता"** (पाणि.सू.१।४।५४) इति स्मृतेः स्वातन्त्र्याभावे कर्तृत्वासम्भवाद् इति अर्थः. ननु सगुणनिर्गुणप्रतिपादकश्रुत्योः एकतरबाधेनैव सर्वोपपत्तौ किमिति विरुद्धधर्माश्रयत्वम् अङ्गीकृत्य निर्गुणस्य कर्तृत्वम् उच्यते? इत्यतः आहुः **वेदाश्च** इति. तथाच सगुणनिर्गुणप्रतिपादकश्रुत्योः मध्ये एकस्याः अप्रामाण्योक्तौ सर्वस्यापि वेदस्य तुल्यतया सर्वत्र अनाश्वासेन महान् अनयः स्याद् इति भावः. फलितम् आहुः **ततः** इत्यादिना. **ततः** वेदे अक्षरमात्रस्यापि बाधितत्वाभावतः. **सर्वभवने**त्यादि. श्रुतिप्रतिपादितं यद्यद् रूपं तत्तद्रूपात्मभवनम् इति अर्थः.

साक्षात्कर्तृत्वे उपादानत्वे च उपपत्त्यन्तरम् आहुः **किञ्च** इत्यादि. **कर्तृत्वम्**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सः **ऐक्षत** इति. तच्छब्दस्य पूर्वपरामर्शकत्वाद् शुद्धात्मनएव परामर्शो भविष्यति इति भावः. शङ्कते **ननु** इति. उत्तरयन्ति **न युक्तः** इति. ननु कुतः? इत्यतः आहुः **स्वातन्त्रये**ति. "सविशेषणे हि विधिनिषेधौ विशेषणम् उपसङ्क्रामतः सति विशेष्ये बाधे" इति न्यायेन "शबलं ब्रह्म जगत्कर्तृ" इत्यनेन वाक्येन तद्गुणसमूहरूप-प्रकृतिविशिष्टे ब्रह्मणि कर्तृत्वं विधीयते तस्य च विशेष्ये शुद्धब्रह्मणि बाधाद् प्रकृतौ उपसङ्क्रमणं भविष्यति. ततश्च स्वातन्त्र्यहानिः इति भावः. ननु प्रकृतेः जडत्वाद् चैतन्याधीनत्वम् अतो दूषणान्तरम् आहुः **वेदाश्च** इति. **"सदेव सौम्य इदमग्र आसीद्"** (छान्दो.उप.६।२।१) इति श्रुत्या 'एव'कारेण इतरयोगं व्यवच्छिद्यते, तेनच शुद्धस्यैव कर्तृत्वम् इति अर्थे लोकप्रतीतिरपि. साधकान्तरम् आहुः **किञ्च** इति.

कार्यत्वात्. तस्माद् 'आत्म'शब्दप्रयोगाद् गुणातीतमेव कर्तृ।।५।।

ननु 'आत्म'शब्दोऽपि लोकवद् गौणो अस्तु. लोके हि केनचित् पृष्टो विष्णुमित्र आह ''यज्ञदत्तो मम आत्मा'' इति. अत्र गौणत्वम् उपचारः इत्येवं प्राप्ते, अभिधियते.

तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्।।६।।

एवं हि श्रूयते : **''असद्वा इदमग्र आसीत्. ततो वै सदजायत. तदात्मानं**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इति उपादानत्वोपलक्षणम् अन्यथा कर्तृगतधर्माणां कार्यगतधर्मनियामकत्वाभावेन अस्तिभातिप्रियत्वादिधर्माणां कार्ये भानं न स्यात्. **कार्यत्वाद्** इति. लोके अस्तित्वादिधर्मप्रतीतौ हेतुः. **तस्मात्** कार्ये तदीयधर्माणां प्रतीतेः. **आत्मशब्दाद्** **''आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीद्''** (ऐत.उप.१।१) इत्यत्र श्रुतौ ईक्षणकर्तरि 'आत्म'शब्दप्रयोगात्।।५।।

आत्मशब्दोपि ईक्षणकर्तरि 'आत्म'शब्दोऽपि. **गौणो अस्तु** चैतन्यधर्मसाम्याद् गौण्या वृत्त्या मायाशबलितेश्वरबोधको अस्तु. गौणीमेव उपपादयन्ति **लोके हि** इत्यादिना. **मम आत्मा** आत्मतुल्यः स्वहितकारित्वात्, साम्येन 'आत्मा' इति उक्तम्. **अत्र** 'आत्म'शब्दः इतिवाक्ये. **गौणत्वम् उपचारः** गौणीलक्षणया इति अर्थः.

ईक्षणकर्ता आत्मा मायाशबलितो न वक्तुं शक्यः. तत्र उपपत्तिम् आहुः **एवम्** इत्यादिना. **श्रूयते** तैत्तिरीयके श्रूयते. **''असद्वा इदमग्र आसीद्''** (तैत्ति.उप.२।७) **इदं** प्रपञ्चरूपं वस्तु. **अग्रे** सृष्टिपूर्वकाले. **असद्** अव्याकृतनामरूपम्. **आसीद्** वर्तमान–

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

कार्यत्वाद् इति. ''कारणगुणाः कार्यगुणान् आरम्भन्ते'' इति न्यायाद् प्रपञ्चस्य कार्यरूपत्वाद् लोके कुलालादौ कर्तृत्वं ब्रह्मगतमेव प्रतीयते इति भावः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति. **आत्मशब्दः** इति. **''आत्मा वा''** (बृह.उप.२।४।५) इत्यादिश्रुतौ इति शेषः ।।५।।

'तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशाद्' इति तृतीयं सूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **केनचित् पृष्टः** इति. ''यज्ञदत्तः तव कः?'' इति पृष्टः इति अर्थः. तथाच 'आत्म'पदस्य उपचाररूपगौणवाचकत्वमपि स्वीक्रियते इति न शुद्धात्मनो ग्रहणम् इति भावः. अत्र समाधानसूत्रम् आहुः **तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशाद्** इति. उपदेशप्रतिपादिकां श्रुतिं पठन्ति **असद्** इत्यादि.

स्वयमकुरुत'' (तैत्ति.उप.२।७) इति उपक्रम्य ''**यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्ये-अनात्म्ये अनिरुक्ते अनिलयने अभयं प्रतिष्ठां विन्दते, अथ सो अभयं गतो भवति**'' (तत्रैव २।७) इति.

प्रापञ्चिकधर्मरहिते ब्रह्मणि एतस्मिन् पूर्वोक्तजगत्कर्तरि परिनिष्ठितो मुक्तो भवति इति अर्थः. तत्र यदि जगत्कर्ता गौणः स्यात् **तन्निष्ठस्य** संसारएव स्याद्, न मोक्षः।।६।।

किञ्च.

हेयत्वावचनाच्च।।७।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

कालपूर्वकालसत्त्वाश्रयः. **ततः** नामरूपव्याकरणोत्तरम्, **सदजायत** 'सत्'पदवाच्यम् अभूत्. तस्यैव समवायिकारणता इति प्रतिपादनाय आहुः **तदात्मानम्** इत्यादि. ''**यदा ह्येवैषः**'' इति. श्रुत्यर्थस्तु **यदा** यस्मिन् काले. **ह्येव** निश्चयेनैव. **एषः** साधकः. **एतस्मिन्** ईक्षणकर्तरि ब्रह्मणि. **अदृश्ये** नामरूपशून्ये. **अनात्म्ये** आत्मसम्बन्धिशरीररहिते. **अनिरुक्ते** निरुक्तियोग्यो हि विकारः तच्छून्ये निर्वचनानर्हे इति अर्थः. **निलयने** अधिकारिस्थानभूते. **अभयं** यथा स्यात् तथा. **प्रतिष्ठां** स्थितिम्. **अथ** तदनन्तरमेव. **सः** साधकः. **अभयं** मोक्षरूपम्. **गतः** प्राप्तः इति बोध्यः. श्रुतिसिद्धार्थम् आहुः **प्रापञ्चिके**त्यादि प्राकृतधर्मशून्ये. उक्तवैपरीत्ये बाधकम् आहुः **तत्र** इत्यादिना. **संसारएव** सगुणत्वे तस्य सगुणोपासनायाः फलम् ''**आब्रह्मभुवनाल्लोका**'' (भग.गीता ८।१६) इत्याद्युक्तं संसारपातरूपमेव भवेद्, नतु मोक्षः इति भावः।।६।।

ईक्षणकर्तुः निर्गुणपरब्रह्मत्वे हेत्वन्तरम् आह **हेयत्वावचनाच्च.**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

यदा ह्येव एषः इति यदा यस्मिन् काले. **ह्येव** निश्चयेनैव. **एषः** मुमुक्षुः. **एतस्मिन्** ब्रह्मणि. अदृश्यानामरूपविवर्जिते(अदृश्ये अनामरूपविवर्जिते?) **अनात्म्ये** शरीररहिते. **अनिरुक्ते** निर्वक्तुम् अशक्ये. **निलयने** आधारभूते. **अभयं** यथा भवति तथा, **प्रतिष्ठां** स्थितिम् **विन्दते** प्राप्नोति. **अभयं** मुक्तिम्. सङ्क्षेपेण श्रुत्यर्थम् आहुः **प्रापञ्चिकः** इति ।।६।।

'आत्म'पदस्य निर्गुणे ब्रह्मणि तात्पर्यम् इति बोधयन्तः चतुर्थं सूत्रम् आहुः '**हेयत्वावचनाद् च**' इति. बृहदारण्ये ब्रह्मज्ञानसाधनोपदेशावसरे पुत्रेषणादीनां हेयत्वम् उक्तं जगत्कर्तुस्तु उपास्यत्वेन ग्रहणं, तेन कृत्वा किं ज्ञायते निर्गुणएव ईक्षणकर्ता इति

इतोऽपि निर्गुणएव जगत्कर्ता. वेदान्तेषु सर्वत्र साधनोपदेशे पुत्रादिवद् जगत्कर्ता हेयत्वेन न उपदिश्यते. यदि सगुणः स्यात् प्राकृतगुणपरिहारार्थं मुमुक्षभिः जगत्कर्ता न उपास्यः स्यात्, पुत्रादिवत्. अतः ईक्षत्यादयो न सगुणधर्माः. सूत्रत्रयस्य 'ईक्षति'हेतुसाधकत्वात् 'च'कारः. एवं सूत्रचतुष्टयेन ईक्षति-हेतुना जगत्कर्तृत्वोपपत्त्या सृष्टिवाक्यानां ब्रह्मपरत्वम् उपपादितम्।।७।।

अतःपरं स्वतन्त्रहेतून् आह :**''स्वाप्ययात्''**(ब्रह्मसू.१।१।८) **''गतिसामान्यात्''**(ब्रह्मसू.१।१।९)**''श्रुतत्वाच्च''**(ब्रह्मसू.१।१।१०) इति सूत्रत्रयेण. ननु किमर्थं हेत्वन्तराणि? साधकत्वे एकेनापि तत्सिद्धेः. असाधकत्वे शतेनापि असिद्धेः इति चेत्, मा एवम्. रूपभेदार्थं हेत्वन्तराणि नानाविधान्नभोजनतृप्ति-

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इतोऽपि उपनिषत्सु. क्वापि जगत्कर्तुः हेयत्वानिरूपणादपि इति अर्थः. **सूत्रत्रयस्य ''गौणश्चेद् न आत्मशब्दात्'', ''तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्'' ''हेयत्वावचनात् च''** इति सूत्रत्रयस्य. **ईक्षतिहेतुसाधकत्वाद्** निर्गुणपरब्रह्मणो बहुभवनेक्षणकर्तृतासाधकत्वाद् इति अर्थः. **चकारः ''हेयत्वावचनात् च''** इति **च**कारः. **चतुष्टयेन** ईक्षतिसूत्रम् आदाय चतुष्टयेन इति अर्थः. **जगत्कर्तृत्वोपपत्या** परब्रह्मणो जगत्कर्तृत्वसिद्ध्या. **सृष्टि-वाक्यानां** ''यतो वा'', ''तस्माद् वा'' इत्यादिसृष्टिवाक्यानाम्।।७।।

स्वतन्त्रेत्यादि. सर्वव्यवहारागोचरस्य परब्रह्मणः ईक्षतिद्वारा सर्वप्रमाणव्यवहारगोचरताम् उपपाद्य साक्षाद् ब्रह्मणः प्रमाणव्यवहारगोचरताबोधकहेतून् आह इति अर्थः. ''स्वाप्ययाद्'', ''गतिसामान्यात्'', ''श्रुतत्वाच्च''. एकेनापि हेतुना, **तत्सिद्धेः** ब्रह्मणि सर्वप्रमाणव्यवहारगोचरतासिद्धेः. **एकेनापि** पूर्वत्रिषु एकेनापि इति अर्थः. **रूपभेदार्थं** ब्रह्मणः सम्यग्व्यवहार्यतासिद्ध्यर्थं नानाव्यवहार्यतावच्छेदकरूपप्रदर्शनार्थम् इति अर्थः. **तृप्तिवद्** इति. तथाच नानाविधान्नभोजनेन निःसन्दिग्धतृप्तिवद् नानाव्यव-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

भावः. **पुत्रादिवद्** इति. 'आदि'शब्देन दारादीनां ग्रहणम् ।।७।।

सूत्रत्रयाणाम् अवतरणम् आहुः **अतः परम्** इति. **स्वतन्त्रे**ति. ब्रह्मणः व्यवहार्यत्वप्रतिपादकत्वम् उपनिषद्वाक्यानाम् इति अस्मिन् अर्थे स्वतन्त्रान् हेतून् इति अर्थः. सूत्रत्रयस्य वैयर्थ्यम् आशङ्कते **ननु** इति. समाधानम् आहुः **मैवम्** इति. **रूपभेदार्थम्** इति. तथा अतिशयतृप्त्यर्थं नानाविधान्नभोजनम्, एवं ब्रह्मणः व्यवहार्यत्वे सृष्ट्यादीनां द्वारत्वम् उक्तम्, एवं लयादीनां द्वारत्वम् उक्तम्. एवं लयादीनां

वत्. तद्यथा **‘‘...आत्मशब्दात्’’**(ब्रह्मसू.१।१।५), **‘‘तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात्’’** (ब्रह्मसू.१।१।६) **‘‘हेयत्वावचनाच्च’’**(ब्रह्मसू.१।१।७) इति निर्गुणस्य स्वरूपपरतया कार्यपरतया च. कार्यस्य पुनः विधिनिषेधभेदाद् द्विरूपता इति. एवम् उत्तरत्रापि प्रपञ्चयिष्यते. तत्र सृष्टिवाक्यानाम् ईक्षतिहेतुना भगवत्परत्वम् उक्तम्. इदानीं प्रलयवाक्यानाम् आह.

स्वाप्ययात्।।८।।

ब्रह्मणो न सर्वव्यवहारातीतत्वम्. कुतः? स्वाप्ययात् स्वस्मिन्नपि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

हार्यतावच्छेदकरूपप्रदर्शनेनापि निःसन्दिग्धव्यवहारतासिद्धिः इति भावः. तदेव उपपादयन्ति **तद्यथा** इत्यादिना. सूत्रत्रयेण ब्रह्मणो द्विधाव्यवहारविषयत्वम् उपपादयितुम् आहुः **आत्मे**त्यादि. तथाच ‘आत्म’शब्दाद् ईक्षणकर्तरि निर्गुणत्वेन व्यवहारविषयत्वम् उक्तम्. **मोक्षे**त्यनेन विधिमुखतया मोक्षरूपकार्यजनकतया व्यवहारविषयत्वम् उपपादितम्. एवं हेयत्वेत्यनेन मोक्षोपयोगिहेयत्वाभावविशिष्टत्वेन व्यवहारविषयत्वम् उपपादितम्. निषेधे कार्यरूपतोपवर्णनं ‘‘स्वर्गी ध्वस्तः’’ इतिवद् हेयत्ववचनरूप-प्रतियोग्यभिप्रायं निषेधभेदेन इतिवाच्याख्येयम्(?). एवञ्च ईक्षणकर्तरि त्रेधा व्यवहार-विषयत्वम् उक्तं निगुर्णत्वेन, मोक्षजनकत्वेन, हेयत्ववचनाभावविशिष्टत्वेन इति फलितम्. कार्यदृष्ट्यातु द्वेधा. वक्ष्यमाणसूत्रत्रयस्य पूर्वसूत्रैः एकवाक्यतार्थम् आहुः **एवम्** इत्यादि. **एवं** धर्मिरूपपरब्रह्मणि व्यवहार्यतोपपादकतया. **अत्रापि** वक्ष्यमाणसूत्रत्रयेऽपि. **तत्र** उपनिषद्वाक्यैः ब्रह्मणो व्यवहार्यतायाम् **आह** ब्रह्मपरत्वम् आह इति अर्थः.

पूर्वोक्तं स्वतन्त्रहेतुत्वम् उपपादयन्ति **ब्रह्मणः** इत्यादिना. **तत्र चित्प्रकरणत्वाद्**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

स्वाप्ययादीनां द्वारत्वम् इत्यादिरूपभेदेन ब्रह्म व्यवहारातिशयम् इति भावः. तदेव उपपादयन्ति **तद्यथा** इति. **कार्यपरतया** इति. हेतुत्रयम् उक्तम् इति शेषः. **द्विरूपता** इति. तथाच त्रिषु हेतुषु मध्ये प्रथमो हेतुः निर्गुणस्य ईक्षणकर्तृत्वस्वरूपपरत्वेन उक्तः. द्वितीय-तृतीयौ निर्गुणस्य यत्कार्यं जीवः तत्पदत्वेन उक्तौ, तयोः मध्ये द्वितीयं सूत्रं मोक्षोपदेशविधिरूपं, तृतीयं वचनाभावप्रतिपादकनिषेधरूपम् इति एवं द्विरूपता इति अर्थः. **उत्तरत्रापि** अग्रिमसूत्रत्रयेऽपि.

स्वाप्ययाद् इति हेतुम् अवतारयन्ति **तत्र** इति. सूत्रार्थम् आहुः **स्वस्मिन् अप्ययाद्** इति. स्वस्मिन् निर्गुणे. अप्ययाद् लयाद् इति अर्थः. ननु कस्य लयः? इत्यतः

अयात्. तत्र चित्प्रकरणत्वाद् जीवस्य उच्यते. एवं हि श्रूयते. **''यत्रैतत् पुरुषः 'स्वपिति' नाम सता सौम्य तदा सम्पन्नो भवति तस्माद् एनं स्वपिति इति आचक्षते स्वं ह्यपीतो भवति''** (छान्दो.उप.६।८।१) इति.

'स्वपिति' इति न क्रियापदं किन्तु जीवस्य नाम. *तदैव स्वपितिनामत्वं यदा सता सम्पद्यते. सति 'स्व'शब्दवाच्ये अपीतिं लयं प्राप्नोति इति अर्थः. अहरहर् जीवो ब्रह्म सम्पद्य ततो बलाद्यधिष्ठानं प्राप्य पुनर्नवइव समायाति,

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इति. तथाच 'जन्मादि'सूत्रम् आरभ्य 'समन्वय'सूत्रान्तेन सद्रूपब्रह्मणः सत्ता प्रतिपादिता. अग्रे च आनन्दरूपब्रह्मणः आनन्दमयः इत्यादिना निरूपणीयत्वेन मध्ये चिद्रूपब्रह्मप्रकरणस्य अर्थप्राप्तत्वाद् इति भावः. **उच्यते** इति. तत्र ब्रह्मणि जीवानां लयः उच्यते इति अर्थः. **श्रूयते** छान्दोग्ये श्रूयते. **एतत्पुरुषः** जीवात्मकः पुरुषः. **सता** ब्रह्मणा. **एनं** जीवम्. **स्वपितिनामत्वं** जीवस्य स्वपितिनामत्वम्. **लयं प्राप्नोति** जाग्रत्स्वप्नावस्थग्रहजनितवासनाकूटाक्रान्तोऽपि जीवः द्विविधा या सुषुप्तिः सुषुम्णादिनाड्यधिकरणिका अन्तर्याम्यधिकरणिका च तयोः द्वयोः मध्ये द्वितीयायां सति लयं प्राप्नोति इति अर्थः. तत्र उपष्टम्भकम् आहुः **अहरहः** इति. **बलाद्यधिष्ठानं** बलाद्युत्कृष्टधर्माणाम् अधिकरणं ब्रह्म

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आहुः **जीवस्य** इति. **उच्यते** इति. उपनिषदि इत्यादि. **श्रूयते** इति छान्दोग्ये श्वेतकेतूपाख्याने **श्रूयते** इति अर्थः. श्रुत्यर्थम् आहुः **स्वपिति** इति. **न** इति. 'स्वपिति'शब्दस्य क्रियापदत्वं निराकुर्वन्ति **क्रियापदम्** इति. जीवपरत्वं 'स्वपिति'शब्दस्य आहुः ***तदैवम्** इति. 'स्वपिति'शब्दस्य अर्थम् आहुः **सति** इति. 'सच्'छब्दवाच्ये निर्गुणे 'स्व'शब्दवाच्ये जीवाभेदं सूचयितुम् आहुः **'स्व'शब्दवाच्ये** इति. **इति अर्थः** इति. 'स्वपिति'शब्दस्य सति अपीति लयं प्राप्नोति इति अर्थस्तु पृषोदरादिगणे पाठं स्वीकृत्य अकारनाशं दीर्घेकारस्य अनुत्पत्तिं च स्वीकृत्य सिध्यति. अथवा, जीवे 'स्वपिति'शब्दः पङ्कजादिपदवद् योगरूपः. ननु एवं प्रकारेण हेतुकथने प्रकृते किं प्रयोजनम् आयातम्? इत्यतः आहुः **अहरहः** इति. प्रत्यहम् इति अर्थः. ततः तस्माद् ब्रह्मणः सकाशाद्, बलाद्यधिष्ठानम्. बलरूपं यद् अधिष्ठानं सर्वेषां व्यवहाराणाम् आश्रयम्. बलं विना किमपि साधनं न जायते इति भावः. **समायाति** जाग्रदवस्थायाम् इति शेषः. अयं भावः. यद्वा मनःसंयोगो निद्रा तस्यां सत्यां पुरीततिनाड्यां मनसः प्रवेशे सुषुप्तिः. एतस्यां दुःखाभावमात्रम्. तदानीमेव 'स्वपिति'शब्दस्य क्रियापदत्वं तदनन्तरम्

वासनाशेषात्. 'स्व'शब्देन च अभेदः. अर्थतः 'सच्'छब्दसामानाधिकरण्याद्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तत्प्राप्य इति अर्थः. **स्वशब्देन** 'स्वपिती'तिश्रुतिस्थ'स्व'शब्देन. तथाच उपनिषत्सु 'आत्म'शब्दो ब्रह्मवाचकः, तादृशएव च एतत्प्रकरणीयः 'स्व'शब्दः तेन जीवस्यापि ब्रह्मत्वं लब्धमिति अभेदः उक्तः. **अर्थतः** इत्यादि. समानविभक्तिक-पदद्वय-समभिव्याहार-लभ्याभेदस्य अत्र असम्भवेऽपि 'स्व'शब्दप्रयोगसामर्थ्येन जीवस्य ब्रह्माभेदलाभाद् अर्थतः इति उक्तम्. **सच्छब्दे**त्यादि. ब्रह्मवाचक'सच्'छब्दार्थेन आत्मवाचक'स्व'शब्दार्थेन च सामानाधिकरण्याद् आत्मत्वेन जीवस्य अभेदात्. **निर्गुणत्वं** निर्गुणब्रह्मरूपत्वम्. इत्थञ्च ब्रह्मणः प्रलयवाक्यगोचरत्वेन न सर्वव्यवहारातीतत्वम्. ईक्षत्यादौ प्रतिज्ञातं तद् न सम्भवति, प्रलयवाक्यानां जीवगोचरत्वात्. तथाच ब्रह्म सर्वव्यवहारातीतमेव इति शङ्का अनेन निरस्ता. जीवस्य ब्रह्मात्मकतानिरूपणेन वाक्यानां ब्रह्मगामित्वाद् इति भावः.

ननु आदौ प्रलयवाक्यानां ब्रह्मणि समन्वयं प्रतिज्ञाय अन्ते सुषुप्तिवाक्यानां समन्वयनिरूपणे प्रतिज्ञाहानिः उपक्रमोपसंहारविरोधश्च इत्यतः आहुः **ननु** इत्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अन्तर्यामिनि जीवस्य लये गाढसुषुप्तिः. एतस्यां सुखम्. अतएव व्युत्थानानन्तरं ''सुखम् अहम् अस्वाप्सं न किञ्चिद् अवेदिषम्'' इति अनुभवोऽपि. अतएव ग्रन्थान्तरे द्वैविध्यं सुषुप्तेः प्रतिपादितम्. तदानीमेव 'स्वपिति' इति जीवनाम. अतएव लौकिकव्यवहारेण इन्द्रियाणां शरीरस्य च शैथिल्ये सति गाढसुषुप्तौ सत्यां पुनः बलादिकं समायाति इति अनुभवोऽपि. एवञ्च निर्गुणे ब्रह्मणि प्रत्यहं लयो जीवस्य इति कथनेन उपनिषद्वाक्यानां ब्रह्मव्यवहारप्रयोजकत्वं प्रकृते प्रयोजनं समायातम् इति. अतएव छान्दोग्ये, **''इमाः सर्वाः प्रजाः अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विदन्त्यनृतेन प्रत्यूढा''** (छान्दो.उप.८।३।२) इति. **'स्व'शब्देन** इति. सूत्रस्थ'स्व'-शब्देन श्रुतिस्थ-'सच्'छब्दस्य च अभेदः इति अर्थः. ननु ''स्वं हि अपीतो भवति'' इति श्रुतिस्थ'स्व'शब्दस्य द्वितीयान्तत्वं श्रुतिस्थ-'सच्'छब्दस्य सता इति तृतीयान्तत्वम् इति समानविभक्तिकत्वरूपसामानाधिकरण्या-भावाद् कथम् अभेदः? इत्यतः आह **अर्थतः** इति. शब्दतः सामानाधिकरण्याभावेऽपि इति शेषः. **निर्गुणत्वम्** इति सच्चिदानन्दरूपस्य निर्गुणस्य श्रुतिस्थ'सच्'छब्दवाच्य-त्वेन निर्गुणस्यैव व्यवहार्यत्वं श्रुत्या अभिप्रेतम् इत्यपि प्रकृते प्रयोजनं समायातम् इति भावः. ननु सूत्रेतु प्रलयोक्तिः विषयवाक्येतु सुषुप्तिकथनम् इति वैषम्यम् इति शङ्कते **ननु** इति. समाधानम् आहुः **मोक्षे**ति. मोक्षेतु कर्मसम्बन्धएव नास्ति जाग्रत्स्वप्नदशयोः

निर्गुणत्वम्. ननु प्रलये वक्तव्ये कथं सुषुप्तिः? मोक्षातिरिक्तदशायां तथाकर्मसम्बन्धाभावाद् इति ब्रूमः।।८।।

मुक्तिवाक्यानाम् आह.

गतिसामान्यात्।।९।।

गतौ **सामान्यात्. गतिः** मोक्षः. समानस्य भावः सामान्यम्. मोक्षे सर्वस्यापि भगवतापि तुल्यत्वात्. एवं हि श्रूयते ‘‘**स यथा सर्वासामपां समुद्र एकायनम्**’’(बृहदा.उप.२।४।११) इति उपक्रम्य ‘‘**वागेकायनम्**’’(तत्रैव) इति दृष्टान्तार्थं निरूप्य ‘‘**स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्तः**’’(तत्रैव २।४।१२) इत्यादिना लयदृष्टान्तं निरूप्य ‘‘**न प्रेत्य सञ्ज्ञास्ति**’’(तत्रैव २।४।१२) इति प्रतिपाद्य तन्निरूपणार्थं ‘‘**यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरम्**’’(तत्रैव

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

समादधुः मोक्षेत्यादिना. तथाच मोक्षरूपप्रलयातिरिक्तजाग्रत्स्वप्नदशायां यथा कर्मरूपव्यापारसम्बन्धो जीवे तथा कर्मसम्बन्धस्य सुषुप्तौ अभावात् श्रुतौ सुषुप्तेः प्रलयोदाहरण–त्वेन निर्द्देशइति न शङ्कालेशः इति भावः।।८।।

मुक्तीत्यादि. **आह** मुक्तिवाक्यरूपव्यवहारविषयत्वं ब्रह्मणि सूत्रकारः आह इति अर्थः. सूत्रार्थम् आहुः **गतौ** इत्यादिना. **श्रूयते** बृहदारण्यके मैत्रेयीब्राह्मणे श्रूयते. **दृष्टान्तार्थं** जीवस्य ब्रह्मणि लयदृष्टान्तार्थम्. मुक्तौ जीवस्य अभेदप्रत्ययएव नतु सर्वथा स्वरूपनाशः इति प्रदर्शयितुं दृष्टान्तान्तरम् आहुः **स यथा सैन्धवे**त्यादिना. **सञ्ज्ञा** ‘जीव’सञ्ज्ञा. **तन्निरूपणार्थं** सञ्ज्ञाभावनिरूपणार्थम्. **इतरं पश्यति** इत्यादौ काकूक्तिः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

यथा कर्मसम्बन्धः प्रलये सुषुप्तौ च तथा नास्ति, किन्तु, वासनामात्रम् इति उभयोः साम्याद् सुषुप्तिकथनम् इति भावः ।।८।।

षष्ठं सूत्रम् अवतारयन्ति **मुक्ती**त्यादि. **गतिसामान्याद्** इति गतित्वाद् इति अर्थः. गतिः फलं भगवत्प्राप्तिः तत्त्वात्. भगवद्रूपत्वाद् इति यावत्. भगवतापि तुल्यत्वाद् इति ‘अपि’पदघटितः पाठो न सम्यक् इति प्रतिभाति. **श्रूयते** इति मैत्रेयीब्राह्मणे बृहदारण्यके श्रूयते इति अर्थः. **सैन्धवखिल्य** इति सैन्धवखण्डः इति अर्थः. **प्रास्तः** प्रक्षिप्तः. **प्रेत्य** लयानन्तरम् **सञ्ज्ञा** जीवसञ्ज्ञा. न इति पूर्वेण अन्वयः. **प्रतिपाद्य** जीवसञ्ज्ञाभावं प्रतिपाद्य. **तन्निरूपणार्थं** जीवसञ्ज्ञाभावः कथं ज्ञातव्यः इति निरूपणार्थम्. तदेव आहुः **यत्र हि** इति. सर्वस्य जडजीवरूपस्य सर्वस्य. प्रदर्शितम् इति

२।४।१४) इत्यादिना सर्वस्य शुद्धब्रह्मत्वं प्रदर्शितम्. आदिमध्यावसानेषु शुद्धब्रह्मणएव उपपादनात् सर्वेषां वेदान्तानां ब्रह्मसमन्वयः उचितः इति।।९।।

किञ्च.

श्रुतत्वाच्च।।१०।।

''पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते, पूर्णस्य पूर्णमादाय

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

बोध्या. **ब्रह्मणएव उपपादनाद्** एतत्प्रकरणे सर्वत्र ब्रह्मणएव उपपादनाद् इति अर्थः।।९।।

प्रलयवाक्यानां साक्षाद्ब्रह्मप्रतिपादनाय सूत्रान्तरम् आहुः **श्रुतत्वाच्च.** अस्मिन् सूत्रे सर्वस्य ब्रह्मात्मैकत्वनिर्णयार्थम् **''आत्मैव इदमग्र आसीत् पुरुषविधः सोऽनुवीक्ष्य नान्यद् आत्मनो अपश्यत्''** (बृह.उप.१।४।१) इति श्रुत्यर्थम् उपसंहर्तुं विषयवाक्यम् आहुः **'पूर्णमदः'** इत्यादि. इदं श्रुतिवाक्यं बृहदारण्ये द्वितीयवंशब्राह्मणे. **पूर्णम् इदम्** इन्द्रियगोचरं पूर्णम्. ननु परिदृश्यमानस्य कथं पूर्णता? इत्यत्र स्वयमेव समाधानम् आह **पूर्णात् पूर्णम् उदच्यते** इति. **पूर्णात्** पूर्णात्महेतुकं यत् पूर्णत्वं तच्छाली इति अर्थः. व्युच्चरणात् पूर्वदशायाम् इदं सर्वं पूर्णम् इति अर्थः. ननु तर्हि अपूर्णत्वेन कथं जगतो दर्शनं जायते? अतः आह **पूर्णस्य** इत्यादि. तथाच अविद्यावन्तं प्रति सर्वतो ब्रह्मणः तिरोभावेऽपि विद्यावन्तं प्रति विद्यया सर्वत्र ब्रह्मणः आविर्भावात् सर्वं पूर्णं ब्रह्मैव तस्य अवशिष्यते, ब्रह्मणः पूर्णताम् आदाय अवयवेष्वपि पूर्णतैव प्रतीयते इति फलितो अर्थः. **सर्वकार्यत्वं**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सद्रूपकार्यस्य सद्रूपे ब्रह्मणि लयः चिदंशस्य जीवस्य चिद्रूपे ब्रह्मणि लयः इति शुद्धब्रह्मत्वं सर्वस्य श्रुतौ प्रदर्शितम् इति अर्थः. ननु प्रकृते किम् आयातम्? इत्यतः आहुः **आदी**ति. श्रुतौ इति शेषः. मैत्रेयीब्राह्मणे **आदौ** अमृतत्वलिङ्गेन **मध्ये** आत्मदर्शनादिना, **अवसाने** सर्वस्य आत्मभावकथनेन शुद्धब्रह्मणएव उपादानं वर्तते इति कृत्वा तस्यैव वेदान्तवाक्य-जनकशाब्दबोधविषयत्वरूपव्यवहार्यत्वं समायातम् इति भावः. अतएव आहुः **ब्रह्मसमन्वयः** इति. सर्वेषाम् उपनिषदां ब्रह्मणि तात्पर्याद्, तत्रैव समन्वयः इति अर्थः. 'समन्वयो' नाम तद्वाक्यजन्यशाब्दबोधः विषयत्वम् ।।९।।

सप्तमं सूत्रम् आहुः **श्रुतत्वाच्च** इति. विषयवाक्यम् आहुः **पूर्णमदः** इति. बृहदारण्यके खिलकाण्डारम्भे वर्तते. **अदः** परोक्षं ब्रह्म पूर्णं व्यापकं निरुपाधिकम्. **इदं** परिदृश्यमानं नामरूपात्मकं व्यवहारविषयं पूर्वोक्तं ब्रह्मैव. अव्यवहार्यं पूर्णं व्यवहार्यमपि पूर्णम् इति भावः. कार्ये पूर्णत्वम् आह **पूर्णाद्** इति. **उदच्यते** इत्यत्र 'अञ्चु'गति-

पूर्णमेवावशिष्यते’’ (बृहदा.उप.५।१।१) इति श्रुत्येव असन्दिग्धं सर्वकार्यत्वं प्रतिपादितम्. ‘‘**सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति**’’(कठोप.१।२।१५) इतिच. ‘**च**’कारो अधिकरणसम्पूर्णत्वद्योतनाय. एवं चिद्रूपस्य कारणतानिरूपणेन वेदान्तानां ब्रह्मपरत्वं निरूपितम्।।१०।।

इति प्रथमाध्याये प्रथमपादे चतुर्थम् ईक्षत्यधिकरणम्।।४।।

अतः परम् आनन्दरूपस्य कारणत्वोपपादनेन तद्वाक्यानां ब्रह्मपरत्वम्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सर्वकार्यस्य ब्रह्मरूपत्वम् उपादेयत्वेन इति अर्थः. वेदप्रतिपाद्यनिखिलवस्तुनो ब्रह्मरूपतायां श्रुत्यन्तरम् आहुः **सर्वे वेदाः** इति. **चकारः** सौत्रः **च**कारः।।१०।।

ननु ईक्षत्यधिकरणे सर्ववेदान्तानां ब्रह्मपरत्वं प्रतिपादितमेवेति अग्रिमाधिकरणे प्रयोजनाभावः इति आशङ्कानिरासाय आहुः **अतः परम्** इत्यादिना. **आनन्दरूपस्य** परब्रह्मणः. **कारणत्वे**त्यादि. जगत्प्रति कारणत्वोपपादनेन इति अर्थः. **तद्वाक्यानाम्**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

पूजनयोः. तथाच पूर्णाद् कार्यरूपं पूर्णम् उद्गच्छति. इदानीं प्रलयदशायाम् आह **पूर्णस्य पूर्णम्,** एकरसत्त्वम् आदाय **पूर्णं** निरुपाधिकम् अव्यवहार्यम्. **अवशिष्यते** तिष्ठति. **सर्वकार्यत्वम्** इति. निर्गुणस्य पूर्णस्यैव ब्रह्मणः पूर्णम् अव्यवहार्यत्वम् इच्छया सृष्ट्यनन्तरं व्यवहार्यत्वं च साक्षात्प्रतिपादितम् इति अर्थः. **सर्वे**ति. व्यवहार्यत्वं नाम उपनिषत्प्रतिपाद्यत्वम्. प्रतिपाद्यत्वं च शाब्दबोधविषयत्वम्. ‘ॐ’कारस्य तन्निरूपितप्रतिपादकत्वं काठके द्वितीयवल्याम् उक्तम्. ‘‘**सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति, यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये**’’ (कठोप.१।२।१५) इति उक्त्वा पश्चाद् प्रणवोक्तिः. पदं प्राप्तव्यस्थानम्. बीजरूपेण प्रणवेन सङ्क्षेपेण यदुक्तं तदेव वृक्षरूपेण वेदेन प्रतिपाद्यते इति भावः. एवञ्च सर्वस्य वेदस्य भगवद्वाचकत्वाद् अवाच्यत्वसंशयो न कर्तव्यः. वेदार्थविचारश्च कर्तव्यः. मननादिद्वारा साक्षात्कारश्च कर्तव्यः इति सूचितम्. अवाच्यस्यापि इच्छया वाच्यत्वं न अनुपपन्नम् इति दिक् ।।१०।।

ननु ईक्षत्यधिकरणे ब्रह्मणः शब्दप्रतिपाद्यत्वेन सर्वेषां वेदान्तवाक्यानां ब्रह्मपरत्वं सिद्धमेवेति व्यर्थम् अग्रिमाणाम् अधिकरणानाम् आरम्भः इति चेद्, न, सर्वासु उपनिषत्सु ब्रह्मप्रतिपादकत्वांशे सन्दिग्धानि बहूनि वाक्यानि सन्ति. तत्रत्यसंशयनिवारणार्थम् अधिकरणानाम् आवश्यकत्वम्. तत्र आदौ ‘आनन्दमयः’ इत्यत्र ‘मयट्’प्रत्यये शङ्कां निवारयितुम् आनन्दमयाधिकरणम् अवतारयन्ति **अतः परम्** इति. **तद्वाक्यानाम्**

उपपाद्यते 'आनन्दमया'द्यष्टभिः सूत्रैः. तत्र तैत्तिरीयशाखायां ब्रह्मभृगुप्रपाठक-

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आनन्दप्रतिपादक-वाक्यानाम्. **उपपाद्यते** इति. तथाच सच्चितोः ब्रह्मस्वरूपाघटकयोः कारणत्वे उपपादिते आनन्दे कारणत्वानुपपादने आनन्दांशे जन्मादिसूत्रोक्तकारणलक्षणस्य अव्याप्तिः स्याद् अतः उपपाद्यते इति अर्थः. विषयवाक्यसमूहस्थानं प्रदर्शयन्ति **ब्रह्मभृगु**इत्यादिना. **द्वयेन** इत्यस्य आनन्दकार्यं

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आनन्दप्रतिपादकवाक्यानाम्. एवञ्च चिदंशकारणत्वं प्रतिपादितम्. अवसरप्राप्तानन्दस्य कारणत्वे प्रतिपादने अवसरसङ्गतिः बोध्या. **उपपाद्यते** इति. अष्टभिः सूत्रैः प्रपाठकद्वयेन च उपपाद्यते इति अर्थः. ननु सूत्राणितु प्रसिद्धानि प्रपाठकद्वयं तत्रत्यम् इति आकाङ्क्षायाम् आहुः **तत्र** इति. **तत्र** यजुर्वेदे. घटकत्वं सप्तम्यर्थः. तथाच यजुर्वेद-घटकीभूततैत्तिरीय-शाखास्थब्रह्मभृगुप्रपाठकद्वयेन आनन्दस्य जगत्कारणत्वं 'आनन्द-मया'दिवाक्यानां ब्रह्म-प्रतिपादकत्वं च उपपद्यते इति भावः. तेन च ''**ब्रह्मविद् आप्नोति परम्**''(तैत्ति.उप.२।१) ''**भृगुर्वै वारुणिः**''(तैत्ति.उप.३।१) इति अध्यायद्वयम् अष्ट-सूत्रविषयम् इति सूचितम्.

इतः परम् अस्मिन् समन्वयाध्याये सम्पूर्णं विषयवाक्यम् उच्यते. यद्यपि सर्वेषु भाष्येषु विषयवाक्यस्य प्रतीकधारणमात्रमेव अस्ति. तथापि सम्पूर्णविषयवाक्ये विचारस्य क्रियमाणत्वात्, तदेव वक्तुम् उचितम् इति. ननु एवं सति पूर्वपूर्वाचार्यैः प्रतीकधारणमात्रं किमर्थं कृतम्? इति चेद्, तस्मिन् समये सर्वेषामेव उपनिषत्पाठसामर्थ्यं स्थितम्. इदानीन्तु आलस्योपहतत्वात् कदाचित् केषाञ्चिद् व्युत्पन्नता, तादृशसामर्थ्याभावेन उपनिषत्-पुस्तकगवेषणया तत्सहायेन वाक्यविचारे क्रियमाणे क्लेशः समपद्येतेति तन्निवृत्त्यर्थम् अयम् आरम्भः इति. यद्यपि भाष्ये प्रपाठकद्वयं विषयवाक्यत्वेन उक्तं तथापि एकेनैव चारितार्थ्याद् ब्रह्मप्रपाठकएव अत्र विषयवाक्यत्वेन उच्यते. अथ विषयवाक्यम्

> **ॐ ब्रह्मविद् आप्नोति परम्. तदेषा अभ्युक्ता. सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म. यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्. सो अश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति. तस्माद् वा एतस्माद् आत्मन आकाशः सम्भूतः. आकाशाद् वायुः. वायोरग्निः. अग्नेरापः. अद्भ्यः पृथिवी. पृथिव्या ओषधयः. ओषधीभ्यो अन्नम्. अन्नात् पुरुषः. स वा एष पुरुषा अऽन्नरसमयः. तस्य इदमेव शिरः. अयं दक्षिणः पक्षः. अयम् उत्तरः पक्षः. अयम् आत्मा. इदं पुच्छं प्रतिष्ठा. तदपि एष श्लोको भवति ।।१।।**

अन्नाद् वै प्रजाः प्रजायन्ते. याः काश्च पृथिवीं श्रिताः. अथो अन्नेनैव जीवन्ति. अथ एनदपि यन्ति अन्ततः. अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्. तस्मात् सर्वौषधम् उच्यते. सर्वं वै ते अन्नम् आप्नुवन्ति. ये अन्नं ब्रह्मोपासते. अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्. तस्मात् सर्वौषधम् उच्यते. अन्नाद् भूतानि जायन्ते. जातानि अन्नेन वर्धन्ते. अद्यते अत्ति च भूतानि तस्माद् अन्नं तद् उच्यत इति. तस्माद् वा एतस्माद् अन्नरसमयाद्. अन्यो अन्तरआत्मा प्राणमयः. तेन एष पूर्णः. स वा एष पुरुषविधएव. तस्य पुरुषविधताम्. अन्वयं पुरुषविधः. तस्य प्राण एव शिरः. व्यानो दक्षिणः पक्षः. अपानः उत्तरः पक्षः. आकाश आत्मा. पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा. तदप्येष श्लोको भवतिः।।२।।

प्राणं देवा अनु प्राणन्ति. मनुष्याः पशवश्च ये. प्राणो हि भूतानाम् आयुः. तस्मात् सर्वायुषम् उच्यते. सर्वमेव त आयुर्यन्ति. प्राणं ब्रह्मोपासते. प्राणो हि भूतानाम् आयुः. तस्मात् सर्वायुषम् उच्यत इति. तस्य एषएव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य. तस्माद् वा एतस्मात् प्राणमयाद्. अन्यो अन्तर आत्मा मनोमयः. तेन एष पूर्णः. स वा एष पुरुषविध एव. तस्य पुरुषविधताम्. अन्वयं पुरुषविधः. तस्य यजुरेव शिरः. ऋग् दक्षिणः पक्षः. सामोत्तरः पक्षः. आदेश आत्मा. अथर्वाङ्गिरसः पृच्छं प्रतिष्ठा. तदपि एष श्लोको भवति।।३।।

यतो वाचो निवर्तन्ते. अप्राप्य मनसा सह. आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्. न बिभेति कदाचनेति. तस्य एषएव शारीर आत्मा. यः पूर्वस्य. तस्माद् वा एतस्माद् मनोमयाद्. अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः. तेन एष पूर्णः. स वा एष पुरुषविध एव. तस्य पुरुषविधताम्. अन्वयं पुरुषविधः. तस्य श्रद्धैव शिरः. ऋतं दक्षिणः पक्षः. सत्यम् उत्तरः पक्षः. योग आत्मा. महः पुच्छं प्रतिष्ठा. तदपि एष श्लोको भवति।।४।।

विज्ञानं यज्ञं तनुते. कर्माणि तनुतेऽपि च. विज्ञानं देवाः सर्वे. ब्रह्म ज्येष्ठम् उपासते. विज्ञानं ब्रह्म चेद् वेद. तस्मात् चेद् न प्रमाद्यति. शरीरे पाप्मनो हित्वा. सर्वान् कामान् समश्नुते इति. तस्य एषएव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य. तस्माद् वा एतस्माद् विज्ञानमयाद्. अन्यो अन्तर

आत्मा आनन्दमयः. तेनैष पूर्णः. स वा एष पुरुषविधएव. तस्य पुरुषविधताम्. अन्वयं पुरुषविधः. तस्य प्रियमेव शिरः. मोदो दक्षिणः पक्षः. प्रमोद उत्तरः पक्षः. आनन्द आत्मा. ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा. तदपि एष श्लोको भवति।।५।।

असन्नेव स भवति. असद् ब्रह्मेति वेद चेद्. अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद सन्तमेनं ततो विदुरिति. तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य. अथातो अनुप्रश्नाः. उत अविद्वान् अमुं लोकं प्रेत्य. कश्चन गच्छति ३. आहो विद्वानमुं लोकं प्रेत्य कश्चित् समश्नुता ३ उ. सो अकामयत. बहुस्यां प्रजायेय इति. स तपो अतप्यत. स तपस्तप्त्वा. इदं सर्वम् असृजत. यदिदं किञ्च तत् सृष्ट्वा. तदेव अनुप्राविशद्. तद् अनुप्रविश्य. सच्च त्यच्च अभवद्. निरुक्तं च अनिरुक्तं च निलयनं च अनिलयनं च विज्ञानं च अविज्ञानं च सत्यं च अनृतं च सत्यम् अभवद्. यदिदं किञ्च तत्सत्यम् इति आचक्षते. तदपि एषः श्लोको भवति।।६।।

असद् वा इदम् अग्र आसीद्. ततो वै सद् अजायत. तद् आत्मानं स्वयम् अकुरुत. तस्मात् सुकृतम् उच्यत इति. यद्वै तत् सुकृतम्. रसो वै सः. रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति. को ह्येव अन्यात् कः प्राण्याद् यद् एष आकाश आनन्दो न स्याद्. एष हि एव आनन्दयाति. यदा हि एव एष एतस्मिन् अदृश्ये अनात्म्ये अनिरुक्ते अनिलयने अभयं प्रतिष्ठां विन्दते. अथ सो अभयं गतो भवति. यदा हि एव एष एतस्मिन् उदरम् अन्तरं कुरुते. अथ तस्य भयं भवति. तत्त्वेव भयं विदुषो अमन्वानस्य. तदपि एष श्लोको भवति।।७।।

भीषा अस्माद् वातः पवते. भीषा उदेति सूर्यः. भीषा अस्माद् अग्निश्च इन्द्रश्च. मृत्युर्धावति पञ्चम इति. स एषा आनन्दस्य मीमांसा भवति. युवा स्यात् साधु युवाध्यापकः आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः. तस्य इयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्याद्. स एको मानुष आनन्दः. ते ये शतं मानुषा आनन्दाः. स एको मनुष्यगन्धर्वाणाम् आनन्दः. श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य. ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणाम् आनन्दाः स एको देवगन्धर्वाणाम् आनन्दः. श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य. ते ये शतं देवगन्धर्वाणाम् आनन्दाः स एकः पितृणां

ननु आनन्दमयस्य कारणतासन्देहे तन्निरासाय अधिकरणम् आरब्धव्यं स्यात्. प्रकृतेतु **''सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म''**(तैत्ति.उप.२।१) इति लक्षणलक्षितं ब्रह्म प्रकृत्य **''तस्माद् वा एतस्माद् आत्मनः''**(तैत्ति.उप.२।५) इत्यादिना प्रथमप्रपाठके कारणत्वं निर्णीतम्. द्वितीये च **''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते''**(तैत्ति.उप.३।१), **''आनन्दाद् हि एव खल्विमानि भूतानि जायन्ते''** (तैत्ति.उप.३।५) इत्यत्रतु आनन्दत्वेनापि कारणता निर्णीतेति सन्देहाभावाद् व्यर्थो अयम् अधिकरणारम्भः इत्यतः आहुः

<ins>गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्</ins>

चिरलोकलोकानाम् आनन्दः. श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य. ते ये शतं पितृणां चिरलोकलोकानाम् आनन्दाः स एक आजानजानां देवानाम् आनन्दः. श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य. ते ये शतम् आजानजानां देवानाम् आनन्दाः स एकः कर्मदेवानां देवानाम् आनन्दः. ये कर्मणा देवानपियन्ति. श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य. ते ये शतं कर्मदेवानां देवानाम् आनन्दाः स एको देवानाम् आनन्दः. श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य. ते ये शतं देवानाम् आन्दाः. स एक इन्द्रस्य आनन्दः. श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य. ते ये शतम् इन्द्रस्य आनन्दाः स एको बृहस्पतेः आनन्दः. श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य. ते ये शतं बृहस्पतेः आनन्दाः स एकः प्रजापतेः आनन्दः. श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य. ते ये शतं प्रजापतेः आनन्दाः सः एको ब्रह्मणः आनन्दः. श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य. स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये सः एकः. स य एवंविद्. अस्माद् लोकात् प्रेत्य. एतम् अन्नमयम् आत्मानम् उपसङ्क्रामति. एतं प्राणमयम् आत्मानम् उपसङ्क्रामति. एतं मनोमयम् आत्मानम् उपसङ्क्रामति. एतं विज्ञानमयम् आत्मानम् उपसङ्क्रामति. एतम् आनन्दमयम् आत्मानम् उपसङ्क्रामति. तदपि एषः श्लोको भवति।।८।।

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह. आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चनेति. एतं ह वाव न तपति किमहं साधु नाकरवं किमहं पापमकरवम् इति. स य एवं विद्वान एते आत्मानं स्पृणुते. उभे ह्येवैष एते आत्मानं स्पृणुते य एवं वेद. इति उपनिषत्।।९।। (तैत्ति.उप.२।१-९)

द्वयेन तत्र ‘आनन्दमयः’ इति ‘मयट्’प्रत्ययान्तस्य अब्रह्मत्वेन अजगत्कतृत्वे ब्रह्मप्रपाठकस्य अब्रह्मपरत्वं स्याद् इति तन्निराकरणार्थम् आनन्दमयाधिकरणम्. षडिन्द्रियस्वरूपद्वयानन्दभेदेन आनन्दस्य अष्टविधत्वाद् अष्टसूत्राणि.

ननु कथं सन्देहः? कथं वा अस्य अब्रह्मत्वे प्रपाठकासङ्गतिः? इति. उच्यते. ब्रह्मविदः परप्राप्तिं प्रतिज्ञाय ज्ञेयांशे कारणत्वाय आनन्दांशम्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

“आनन्दमयः...” इत्यादि. **तत्र** ब्रह्मप्रपाठके. **मयट्प्रत्ययान्तस्य** मयट्प्रत्ययान्तार्थस्य. **अब्रह्मत्वेन** वादिमते मयट्प्रत्ययस्य विकारार्थत्वेन, विकारविशिष्टस्य च अब्रह्मत्वेन इति अर्थः. **अजगत्कारणत्वे** ब्रह्मणएव कारणत्वेन विकारिणो अब्रह्मत्वेन अजगत्कारणत्वेन इति अर्थः. **तन्निराकरणार्थम्** इति. आनन्दमयस्यैव ब्रह्मत्वव्यवस्थापनेन अब्रह्मत्वप्रयुक्ताकारणत्वशङ्कानिरासार्थम् इति अर्थः. सूत्रसंख्याप्रयोजनम् आहुः **षड्** इत्यादि. **षट्** ज्ञानेन्द्रियाणि. **स्वरूपद्वयं** जीवपरमात्मस्वरूपम्. एतैः आनन्दानुभवसम्भवाद् अष्टौ सूत्राणि उक्तानि इति अर्थः.

तटस्थः शङ्कते **ननु** इति. **कथम्** इति द्वाभ्यां प्रश्नद्वयम्. **सन्देहः** आनन्दमयस्य ब्रह्मत्वसन्देहः. **अस्य** आनन्दमयस्य. **प्रपाठके**त्यादि. **“ब्रह्मविदाप्नोति परम्”**(तैत्ति.उप.२।१) इत्यारभ्य ब्रह्मप्रपाठकस्य ब्रह्मणः परस्य प्रतिपादकत्वासङ्गतिः इति अर्थः. **उच्यते** संशयादिकम् उच्यते. **प्रतिज्ञाय “ब्रह्मविदाप्नोति परम्”** इत्यनेन

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अथ भाष्यम् अधिकरणारम्भप्रयोजनम् आहुः **तत्र** इति. **अब्रह्मत्वेन** इति. ‘मयट्’प्रत्ययस्य विकारार्थकत्वेन तदन्तस्य ब्रह्मप्रतिपादकत्वाभावत्वेन इति अर्थः. ननु आनन्दमयस्य ब्रह्मप्रतिपादकत्वाभावे का क्षतिः? इत्यतः आहुः **अजगत्कर्तृत्वे** इति. आनन्दमयप्रतिपाद्यस्य जगत्कर्तृत्वाभावत्वं स्याद् इति अर्थः. ननु अस्तु इदं तथापि का क्षतिः? इत्यतः आहुः **ब्रह्मप्रपाठकस्य** इति. ब्रह्मप्रपाठके ‘आनन्दमय’पदवाच्यस्यैव जगत्कर्तृत्वप्रतिपादनात् तस्य ब्रह्मप्रतिपादकत्वाभावे प्रपाठकस्य ब्रह्मपरत्वं न स्याद् इति महती क्षतिः इत्यतो अधिकरणारम्भः इति अर्थः. सूत्रसङ्ख्यास्वारस्यम् आहुः **षड्** इति. **स्वरूपद्वये**ति जीव-ब्रह्मभेदेन इति अर्थः.

अत्र आनन्दमयस्य ब्रह्मत्वाभावेऽपि प्रपाठकस्य ब्रह्मपरत्वम् अस्ति इति मतानुयायी शङ्कते **ननु** इति. समाधानम् आहुः **उच्यते** इति. सन्देहं प्रपाठकासङ्गतिं च उपपादयितुं प्रथमं ब्रह्मप्रपाठकस्य सङ्क्षेपेण भावार्थम् आहुः **ब्रह्मविदः** इत्यारभ्य **आरब्धः**

अप्रवेश्य* जडत्वपरिहाराय सर्वज्ञानन्दरूपं फलम् उपपाद्य तन्निरूपणार्थं सर्वोऽपि प्रपाठकः आरब्धः. तत्र साधनशेषब्रह्मणो वाक्यादेव निःसन्दिग्धप्रतीतेः फलस्य

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अक्षरब्रह्मविदः परब्रह्मप्राप्तिं प्रतिज्ञाय. **ज्ञेयांशे** परप्राप्तिसाधनीभूतज्ञानविषयाक्षरे ब्रह्मणि. **कारणत्वाय** परप्राप्तिकारणकोटिनिवेशाय. **आनन्दांशम् अनिवेश्य*** विवरणर्चि अक्षरविवरणांशे ‘‘**सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म**’’ इति भागे आनन्दांशम् अनिवेश्य इति अर्थः. कारणकोटौ आनन्दप्रवेशेतु प्राप्तेरपि ज्ञानरूपत्वाद् आनन्दज्ञानस्य आनन्दज्ञानकारणतायाम् आत्माश्रयापत्तिः इति अर्थः. परपदार्थनिरूपणम् आहुः **जडत्वे**त्यादि. **जडत्वपरिहाराय** आनन्दमयपदार्थस्य प्रकृतिरूपतापरिहाराय. फलम् उपपाद्य ‘‘**सोऽश्नुते सर्वान् कामान्**’’(तैत्ति.उप.२।१) इत्यनेन सर्वकामफलभोगप्रदत्वेन आनन्दरूपत्वं, ‘‘**ब्रह्मणा विपश्चिता**’’(तैत्ति.उप.२।१) इत्यादिना च सर्वज्ञत्वं फलस्य उपपाद्य इति अर्थः. **तन्निरूपणार्थं** परपदार्थरूपफलनिरूपणार्थम् इति अर्थः. **आरब्धः** फलरूपब्रह्मणो ज्ञानार्थम् आरब्धः इति अर्थः. **तत्र** प्रपाठके. **साधनशेषे**त्यादि. अक्षरब्रह्मणः. **वाक्यादेव** ‘‘**सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म**’’ इति वाक्यादेव. **निःसन्दिग्धे**त्यादि. निर्णयात्मकप्रतीतेः इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इत्यन्तेन. ‘‘**ब्रह्मविद आप्नोति परम्**’’ इत्यस्य, **ब्रह्मविद्** ब्रह्मज्ञानवान्. **परं** पूर्णपुरुषोत्तमम्. **आप्नोति** प्राप्नोति इति अर्थः. अत्र ब्रह्मविदः परप्राप्तिं **प्रतिज्ञाय,** प्रतिज्ञां कृत्वा; अनन्तरं ब्रह्म तत् कीदृशम्? इति आकाङ्क्षायां स्वरूपलक्षणप्रतिपादकं वाक्यं पठितम् ‘‘**सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म**’’(तैत्ति.उप.२।१) इति. तत्र विचारम् आहुः **ज्ञेयांशे**ति. **कारणत्वाय आनन्दांशस्य** इत्यादि. तथाच आनन्दांशस्य कारणत्वाय आनन्दांशं ज्ञेयांशे अप्रवेश्येति अन्वयः. परप्राप्तिसाधनीभूतज्ञानम् अक्षरब्रह्मज्ञानं तद्विषयीभूतं यद् ब्रह्म तज् ज्ञेयम् इति उच्यते. तादृशज्ञेयस्य अंशे ‘सत्यं ज्ञानम्’ इति स्वरूपलक्षणः आनन्दांशस्य जगत्कारणत्वबोधनार्थम् आनन्दांशप्रवेशम् अकृत्वा इति अर्थः. फलस्वरूपस्य आनन्दस्यैव जगत्कारणत्वं ‘‘**तस्माद्वा**’’ इत्यादिवाक्येन प्रतिपाद्यते, नतु ज्ञेयब्रह्मणः इति बोधयितुं स्वरूपलक्षणः आनन्दांशस्य प्रवेशो न कृतः इति भावः. ननु प्रकृत्यादीनां जगत्कारणत्वेन साङ्ख्यादौ प्रसिद्धिदर्शनात् तस्यैव आनन्दरूपत्वं स्याद् इत्यतः आहुः **जडत्वे**ति. प्रकृतिपरिहारार्थम् इति अर्थः. **सर्वज्ञानन्दे**ति. ‘‘**सो अश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता**’’ (तैत्ति.उप.२।१) इति. अत्र फलवाक्ये ‘विपश्चिद्’-‘ब्रह्म’-शब्दाभ्यां सर्वज्ञानन्दरसं फलम् उपपाद्यते इति अर्थः. **तन्निरूपणार्थं** तादृशफलनिरूपणार्थम्. **तत्र** ‘सोऽश्नुते’ इत्यस्याम् ऋचि. **साधनशेषः**

ब्रह्मत्वं प्रतिपादनीयम्. तत्र अब्रह्मान्नमयादितुल्यवचनात् सुखवाचकशब्दानामेव वचनाच्च सन्देहः. आनन्दांशस्यैव कारणत्वेन ब्रह्मत्वप्रतिपादनार्थत्वात् तदभावे

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अर्थः **फलस्य** परस्य आनन्दमयस्य इति अर्थः. **प्रतिपादनीयं** निर्णेतव्यम्.

प्रपाठकार्थम् उक्त्वा सन्देहबीजम् आहुः **तत्र अब्रह्मे**त्यादि. **तत्र** प्रपाठकमध्ये अब्रह्मरूपा ये अन्नमयादयः तत्तुल्यतया आनन्दमयस्यापि निरूपणात्. **सुखवाचके**त्यादि. आनन्दमये "**तस्य प्रियमेव शिरः**"(तैत्ति.उप.२।५) इत्यत्र न्यूनाधिकसुखवाचकमोदप्रमोदादिशब्दानां प्रयोगाद् ब्रह्मणश्च एकरसत्वात् तादृशशब्दप्रतिपाद्ये ब्रह्मत्वस्य सन्देहः इति अर्थः. सन्देहम् उपपाद्य आनन्दमयस्य अब्रह्मत्वे प्रपाठकोक्तकारणत्वम् आनन्दमये अनुपपन्नं स्याद् इति अन्यथानुपपत्तिरूपां प्रपाठकासङ्गतिम् उपपादयन्ति **आनन्दांशस्य** इत्यादिना. तथाच पूर्वं जगज्जन्मादिहेतुत्वेन सच्चिदंशयोः ब्रह्मत्वं निर्णीतम् एतत्प्रपाठके च आनन्दमयस्य "**आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि**" (तैत्ति. उप.३।६) इत्यादिना जगत्कारणताप्रतिपादनेन आनन्दमयस्य ब्रह्मत्वं निर्णीयते प्रपाठकस्य एवंविधार्थकत्वानङ्गीकारे प्रपाठकस्यैव वैयर्थ्यम् इति अर्थः.

ननु "**आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीद्**" (ऐत.उप.१।१) इत्यत्र चिद्रूपस्यैव कारणत्वप्रतिपादनाद् अत्रापि "**तस्माद् वा एतस्माद् आत्मनः आकाशः**"(तैत्ति.उप. २।१) इत्यत्रापि 'आत्म'पदप्रयोगात् चिद्रूपस्यैव कारणत्वं प्रतिपाद्यते इत्येव अस्त्विति न

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति. परप्राप्तिसाधनं ज्ञानम् इति वाक्यस्य स्वरूपघटितलक्षणत्वाद् इति भावः. **प्रतिपादनीयम्** इति, फलवाक्ये 'ब्रह्मणा' इति तृतीयान्तम्, प्रतिज्ञावाक्ये 'परम्' इति द्वितीयान्तम् इति विवरणासम्भवात् परपदार्थनिश्चयो न जायते इति तद्व्याख्यानरूपेण प्रपाठकेन जगत्कारणत्वेन परपदार्थे ब्रह्मत्वम् उपपादनीयम् इति अर्थः. एतावता प्रबन्धेन प्रपाठकार्थः कथितः. इतः परं संशयम् आहुः **तत्र अब्रह्म** इति. तत्र प्रपाठके. **अब्रह्म** इति. ब्रह्मभिन्नयदन्नमयादिः इति अर्थः. **शब्दानाम्** इति 'आनन्दमय'शब्दानाम् इति अर्थः. संशयदृढीकरणार्थम् अब्रह्मपरत्वे प्रपाठकासङ्गतिम् उपपादयन्ति **आनन्दांशस्य** इत्यादि. **प्रतिपादनार्थत्वाद्** इति. "तस्माद् वा एतस्माद्" इत्यादिवाक्यैः प्रपाठकेन आनन्दांशे ब्रह्मत्वस्य प्रतिपादितत्वाद् इति अर्थः. **तदभावे** आनन्दांशस्य ब्रह्मत्वाभावे. ननु यथा "**आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीद्**" (ऐत.उप.१।१) इत्यादिवाक्ये चिदंशस्य कारणता प्रतिपादिता, तथा "**तस्माद् वा एतस्माद् आत्मनः**" इत्यादिवाक्यैः 'आत्म'पदस्वारस्याद् चिदंशस्यैव कारणताप्रतिपादनं क्रियते नतु आनन्दांशस्य इत्यपि

प्रपाठकवैयर्थ्यञ्च. फलस्य नैकट्यप्रतिपादनाय ‘आत्म’पदप्रयोगेण फलरूपेण जगत्कारणताम् उक्त्वा तस्यैव मध्ये सर्वान्तरत्वं प्रतिपादितं “**तस्माद् वा एतस्माद् विज्ञानमयाद् अन्योऽन्तरआत्मा आनन्दमयः**” (तैत्ति.उप.२।५) इति. अन्ते च “**एतम् आनन्दमयमात्मानम् उपसङ्क्रामति**” (तैत्ति.उप.२।५) इति. आदिमध्यरूपे अनूद्य फलत्वेन उपपादितम्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

प्रपाठकः आनन्दमयकारणतायां विनिगमकः इत्यतः आहुः **फलस्य** इत्यादि. तथाच लोकानां लङ्कास्थसुवर्णे अतिदूरत्वेन दुष्प्रापत्वाद् यथा न सर्वेषां तत्कामानां प्रवृत्तिः तथा अतिदूरत्वे आनन्दमयकामानाम् आनन्दमयेऽपि साधकानां प्रवृत्तिः न स्याद् अतः ‘आत्म’पदं प्रयुक्तम् इति अर्थः. **फलरूपेण** “आनन्दाद्ध्येव” इत्यनेन आनन्दत्वेन रूपेण. **तस्यैव** आनन्दमयस्यैव. **मध्ये** अन्नमयादीनां मध्ये. **सर्वान्तरत्वम्** अन्नमयादि-चतुष्टयापेक्षया आन्तरत्वम्. **प्रतिपादितम्** आदौ प्रतिपादितम्. आदिमध्यरूपे “**तस्माद् वा एतस्माद् विज्ञानमयाद् अन्योन्तर आत्मा**”(तैत्ति.उप.२।५) इत्यनेन आदिरूपम्. “**एतम् आनन्दमयम् आत्मानम्**”(तैत्ति.उप.२।८) इत्यनेन च अन्ते, मध्यं सर्वेषां कोशानां रूपम् एते द्वे रूपे **अनूद्य** तदेतच्छब्दाभ्यां अनूद्य. **फलत्वेन** इत्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

वक्तुं शक्यते इत्यतः आहुः **फलस्य** इति. पूर्ववाक्ये यत् फलं प्रतिपादितं तदेव “**तस्माद्वा**” इत्यस्मिन् वाक्ये ‘आत्म’पदेन प्रतिपाद्यते. नच कथम् इदम् अवगम्यते ? इति वाच्यम्, ‘आत्म’पदस्य तदेतत्पदसमभिव्याहृतत्वात्. ननु तथापि, ‘आनन्द’पदप्रयोगं परित्यज्य ‘आत्म’पदप्रयोगः किमर्थं कृतः ? इत्यतः आहुः **नैकट्ये**ति. लोके कृतिसाध्य-ताज्ञानस्य प्रवर्तकत्वाद् दूरस्थले कस्यापि प्रवृत्तिः न स्याद् इत्येतदर्थं स्वस्वरूपबोधकम् ‘आत्म’पदप्रयोगः इति भावः. **फलरूपेण** इति आनन्दरूपेण इति अर्थः. **तस्यैव** कारणीभूतानन्दस्यैव. **मध्ये सर्वान्तरत्वम्** इति अन्नमयान्तरत्वं प्राणमयस्य यथा उपपादितम् एवं रीत्या ‘आत्म’पदवाच्यः आनन्दस्य सर्वपञ्चकोशान्तरत्वम् उपपादितम् इति अर्थः. ननु केन वाक्येन सर्वान्तरत्वम् उपपादितम् इत्यतः आहुः **तस्माद्वा** इति. न हि केवलं मध्ये किन्तु अन्तेऽपि इति आहुः **अन्ते च** इति. प्रपाठकान्ते च इति अर्थः. **आदिमध्यरूपे** इति कारणत्वसर्वोत्तररूपः इति अर्थः. **अनूद्य** इति प्रपाठकादौ “**तस्माद्वा एतस्माद् आत्मनः आकाशः सम्भूतः**” इति वाक्यं तत्रत्य ‘आत्म’पदवाच्यः आनन्दस्य कारणत्वम् आदिरूपम्. अथच प्रपाठकमध्ये “**तस्माद्वा एतस्माद् विज्ञानमयाद्**

तन्निरूपकस्यापि तत्तुल्यफलत्वं वक्तुम् अन्नमयादीनामपि ब्रह्मत्वेन उपासनम् उक्तम्. तत्र पूर्वपक्षे अन्नमयादिरिव आनन्दमयस्यापि न ब्रह्मत्वम्, अन्नमयादि-तुल्यवचनात् तथैव फलसिद्धेः इति. एवं प्राप्ते अभिधीयते.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आनन्दमयरूपं फलत्वेन उपपादितम् इति अर्थः. आनन्दमयस्य फलत्वे अन्यद् विनिगमकम् आहुः **तन्निरूपकस्य** इत्यादि. **तद्** आनन्दमयं, तस्य निरूपकं, स्वोपासनाद्वारा आनन्दमयोपासनायां योग्यतासम्पादकम् अन्नमयादिकोशचतुष्टयम्. **तत् तुल्यफलत्वम्** आनन्दमयोपासनाजन्यफलसमानफलप्रदत्वम्. **ब्रह्मत्वेन उपासनम्** इति **''ये अन्नं ब्रह्मोपासते''**(तैत्ति.उप.२।२) इति आनन्दमयाधिष्ठानत्वेन परम्परया आनन्दमयोपासनोपयोग्युपासनाविषयान्नमयादेरपि ब्रह्मत्वोक्तौ आनन्दमयस्य ब्रह्मत्वे किं वाच्यम् इति काकूक्तिः अत्र अवसेया.

ननु एवम् आनन्दमयस्य ब्रह्मत्वे निर्णीते तन्निर्णयार्थम् अग्रे ब्रह्मविचारवैयर्थ्यम् इत्यतः आहुः **तत्र पूर्वपक्षे** इत्यादि. **तत्र** प्रपाठके. **अन्नमयादेरिव** इत्यादि. तथाच परब्रह्मोपासनोपयोग्युपासनाविषयत्वं यथा अन्नमयादेः तथा आनन्दमयस्यापीति न परब्रह्मत्वपर्यवसानम् आनन्दमय इति फलितम्. **तथैव** आनन्दमयोपासनायामपि अन्नमयाद्युपासनाफलतुल्यफलसिद्धेः इति अर्थः. फलञ्च अन्ते **''एतम् आनन्दमयम् आत्मानम् उपसङ्क्रामति''** (तैत्ति.उप.२।८) इतिरूपं सर्वासाम् उपासनानां बोध्यम्. **इति प्राप्ते** उक्तरीत्या पूर्वपक्षे आनन्दमयस्य अब्रह्मत्वे प्राप्ते. **अभिधीयते** आनन्दमयस्य ब्रह्मत्वसाधको हेतुः उच्यते इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अन्योन्तरः आत्मानन्दमयः'' (तैत्ति.उप.२।५) इति पठितम्. तत्रत्य 'आत्म'पदवाच्य आनन्दस्य सर्वान्तरत्वम् उपपादितं तन्मध्यरूपम्, एतद् उभयम् **''एतम् आनन्दमयम् आत्मानम् उपसङ्क्रामति''** (तैत्ति.उप.२।८) इति. प्रपाठकान्तस्थं वाक्यं तत्रत्य 'एतम्'इति पदेन अनूद्य तस्यैव 'आत्म'पदवाच्यानन्दस्यैव उपसङ्क्रामति इत्यनेन फलत्वम् उपपादितम् इति अर्थः. तथाच यः कारणीभूतः अन्नमयादिसर्वान्तरे भगवान् सएव आनन्दमयः फलात्मा इति भावः. ननु आनन्दमयादितुल्यत्वेन वचनं किमर्थम् इत्यतः आहुः **तन्निरूपकस्यापि** इति. आनन्दमयोपासनाप्रयोजकस्यापि इति अर्थः. **तत्तुल्यफलत्वम्** आनन्दमयोपासनाजन्यफलतुल्यफलत्वम्.

अथ अन्नमयादेः ब्रह्मत्वेन उपासनया फलप्राप्तिरेव केवलं भवति, नतु अन्नमयादेः ब्रह्मत्वं यथा, तथा आनन्दमयस्यापि इति आशयेन पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र** इति.

आनन्दमयो अभ्यासात्।।११।। (१।१।५)

आनन्दमयः परमात्मा, न अन्नमयादिवत् पदार्थान्तरम्. कुतः? **अभ्यासात्.** अभ्यस्यते पुनः-पुनः कीर्त्यते इति अभ्यासः, तस्मात्. *अभ्यासस्य भेदकत्वं पूर्वतन्त्रसिद्धम्. यथा पूर्वतन्त्रे शब्दान्तराभ्यास-सङ्ख्या-गुण-प्रक्रिया-

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आनन्दमयोऽभ्यासात्. परमात्मा परब्रह्म. **पदार्थान्तरम्** अक्षरस्वरूपम्. तत्र हेतुः **अभ्यासाद्** इति, आर्थिकानन्दाभ्यासाद् इति अर्थः. ***अभ्यासभेदकत्वम्** इति. तथाच आनन्दस्य अभ्यस्तत्वेन अन्नमयादिभ्यो भिन्नस्वरूपत्वं सिद्धम्. भेदकानि आहुः **शब्दान्तराभ्यास–संख्या–गुण–प्रक्रिया–नामधेयानां भेदकत्वम्**. शब्दान्तराद् भेदो यथा 'यजति', 'ददाति', 'जुहोति' इत्यत्र कर्मभेदः. तत्र धात्वर्थभेदेन भावनाभेदः उत एका भावना सर्वधात्वर्थसम्बद्धा विधीयते? इति संशयः. नानाभावनाविधानेन अपूर्वकल्पनायां गौरवाद् एका भावना इति पूर्वपक्षः.

सिद्धान्तस्तु प्रत्ययांशस्य साम्येऽपि प्रकृत्यंशस्य भिन्नत्वात् तत्प्रकृत्यर्थानुकूला भावना भिन्नैव इति. अभ्यासाद् भेदो यथा "**समिधो यजति**", "**तनूनपातं यजति**", "**इडो यजति**", "**स्वाहाकारं यजति**", "**बर्हिः यजति**" (तैत्ति.सं.२।६।१) इत्यत्र पञ्चकृत्वो 'यजति'पदम् अभ्यस्तं तद् 'यजति'पदं किम् एकां भावनां बोध्यति उत अनेकाम्? ततश्च सर्वैः एको यागो बोध्यते उत अनेके? तत्र यागभेदे भावनाभेदः, तदेकत्वे भावनैक्यं, तत्र सर्वत्र 'यजति'पदस्य एकस्यैव श्रवणात् तदर्थस्य च ऐक्याद् एकएव यागो न यागभेदः इति पूर्वपक्षः. तत्र 'यजति'पदाभ्यासाद् यागभेदः इति सिद्धान्तः. संख्यया कर्मभेदो यथा, पृथक्संख्यानिवेशात् संख्यया कर्मभेदः. उत्पत्तिवाक्यगतकर्मसमानाधिकरणासंख्या कर्मभेदिका, यथा "**तिस्र आहुतीर्जुहोति द्वादश द्वादशानि जुहोति**" (तैत्ति.सं. २।३।९). तत्र एकएव होमो विधीयते बहवो वा? इति संशयः. तत्र सकृद् आख्यातश्रवणाद् एकएव होमो बोध्यते इति. तर्हि संख्यायाः क्व निवेशः इति चेद्, यथा "**एकादश प्रयाजान् यजति**" (तैत्ति.सं. ६।३।७) इत्यत्र ज्ञातसंख्येषु प्रयाजेषु आवृत्त्या एकादशत्वनिवेशः तथा अत्रापि होमावृत्यसंख्या(?)-निवेशइति न कर्मभेदः इति पूर्वपक्षः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

एवं पूर्वपक्षे प्राप्ते सूत्रम् अभिधीयते "**आनन्दमयो अभ्यासात्**". अभ्यासस्य भेदकत्वप्रसिद्धिम् आहुः **अभ्यासस्य** इति. यथा पूर्वतन्त्रे जैमिनीयसूत्रे द्वितीयाध्याये द्वितीये प्रथमसूत्रम्. "**शब्दान्तर**"इति शब्दान्तरादीनां कर्मभेदकत्वं यथा

सिद्धान्तस्तु उत्पत्तिवाक्ये संख्याविशिष्टानामेव होमानां विधानाद् आख्यातेन एकत्वविशिष्टहोमविधानासम्भवात् संख्यया कर्मभेदएव, प्रयाजेषुतु न उत्पत्तिशिष्टा संख्या अस्ति इति आवृत्या एकादशत्वनिवेशः कर्मभेदाभावश्च अविरुद्धएव इति सिद्धम्. गुणभेदात् कर्मभेदो यथा, चातुर्मास्येषु श्रूयते ‘‘**तप्ते पयसि दध्यानयति वैश्वदेव्यामिक्षा वाजिभ्यो वाजिनम्**’’ (बौधा.श्रौ.सू.५।१) इति. तत्र संशयः, किम् आमिक्षायागएव वाजिनरूपो गुणो विधीयते उत वाजिनरूपद्रव्यविशिष्टं कर्मान्तरं विधीयते इति. तत्र पूर्वपक्षः, आमिक्षायागेएव वाजिनरूपो गुणो विधीयते कर्मान्तरकल्पने अपूर्वान्तरकल्पने च गौरवात्. नच उत्पत्तिशिष्टामिक्षागुणावरुद्धे कर्मणि अलब्धावकाशं वाजिनं कर्मान्तरं कुतो न निविशते इति वाच्यम्, उभयोरपि वाक्ययोः समानकालप्रवृत्तत्वेन गुणद्वयस्यापि समानशिष्टत्वेन आमिक्षामात्रस्य उत्पत्तिशिष्टत्ववचनासम्भवाद् इति पूर्वपक्षः.

सिद्धान्तस्तु ‘‘**वैश्वदेवि**’’(तैत्ति.ब्राह्म.१।३।४।४) इति तद्धि श्रुत्या विश्वेदेवा देवता अस्य इति ‘इदं’शब्देन सर्वशब्दार्थेन विश्वेदेवदेवताविशिष्टामिक्षाद्रव्यकर्मणो लाभाद् वाक्यार्थसमाप्तेः तत्र इतरगुणसमावेशासम्भवाद् वाजिनद्रव्यकवाजिदेवताकं कर्म भिन्नमेव इति. प्रकरणभेदस्य कर्मभेदकत्वं यथा कुण्डवापिनामयने(?) उपसद्भिः चरित्वा ‘‘**मासम् अग्निहोत्रं जुह्वति, मासं दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत**’’ (   ) इत्यादि श्रुतम्.

तत्र सन्देहः, किं प्राप्ताग्निहोत्रानुवादेन मासो विधीयते उत कर्मान्तरम् इति. तत्र ‘अग्निहोत्र’शब्देन प्रकृतस्यैव उपस्थितेः तत्रैव अप्राप्तो मासो विधीयते न कर्मान्तरम् इति पूर्वपक्षः. सिद्धान्तस्तु प्रकरणभेदेन प्राप्ताग्निहोत्रोपस्थापकाभावेन तदुपस्थितेः असम्भवात् प्रकरणान्तरस्य तदुपस्थितिप्रतिबन्धकत्वाच्च मासाग्निहोत्रं कर्मान्तरमेव इति. सञ्ज्ञाभेदात् कर्मभेदो यथा ‘‘**अथैष ज्योतिः अथैषः सर्वज्योतिः एतेन सहस्रदक्षिणेन यजेत**’’(ताण्ड्यब्रा.१६।८।१) इति.

तत्र संशयः, किं यजेत इति सन्निहितज्योतिष्टोमानुवादेन सहस्रदक्षिणालक्षणगुणविधानम् उत एतद्गुणवशिष्टकर्मान्तरविधानम्? इति. तत्र ज्योतिष्टोमबोधक‘ज्योतिः’पदसमानाधिकरण‘यजेत’ इति पदेन पूर्वप्रक्रान्तज्योतिष्टोमानुवादेन सहस्रदक्षिणालक्षणो गुणएव विधीयते न कर्मान्तरम् इति पूर्वपक्षः.

सिद्धान्तस्तु विषयवाक्यगताधिकारार्थक‘अथ’शब्देन प्रकरणान्तरस्य द्योतनात् प्रकरणान्तरेण च अव्यवहितपूर्वस्यापि ज्योतिष्टोमस्य उपस्थितिबाधनाद् द्वादशशतदक्षिणया सहस्रदक्षिणाविकल्पापत्तेश्च एतत्सञ्ज्ञकं कर्मान्तरमेव विधीयते इति.

नामधेयानां षण्णां कर्मभेदकत्वम् एवमेव आनन्दमयस्यापि अभ्यासात् पूर्ववैलक्षण्यम्. अतो अतुल्यत्वाद् ब्रह्मत्वम्. एवम् अभ्यासः श्रूयते **''को हि एवान्यात् कः प्राण्यात्, यदेश आकाश आनन्दो न स्यात्. एष हि एव आनन्द याति''**(तैत्ति.उप.२।७) इति अर्थतो अभ्यासः. स्तुत्या मयडर्थत्व-प्रकृतिस्तु

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

एवमेव कर्मभेदप्रकारेणैव **अभ्यासात् ''को ह्येवान्यात्''** (तैत्ति.उप.२।७) इत्यादि-वक्ष्यमाणाभ्यासविषयत्वात्. **पूर्ववैलक्षण्यम्** अन्नमयादिचतुष्टयापेक्षया वैलक्षण्यम्. **अतो** वैलक्षण्याद् हेतोः. **अतुल्यत्वात्** पूर्वचतुष्केन अतुल्यत्वात्. **ब्रह्मत्वम्** आनन्द-मयस्य परब्रह्मत्वम्. **अर्थतो अभ्यासः** अर्थस्य अभ्यस्यमानत्वेन अर्थनिष्ठो अभ्यासः इति अर्थः. ननु स्तुतिवाक्ये 'आनन्द'शब्दः परब्रह्मानन्दवाचकएव, 'आनन्दमय'शब्दस्तु विकृतानन्दवाचकः इत्यतः आहुः **स्तुत्या मयडर्थत्वे**त्यादि. तथाच मयडर्थः प्राचुर्यं विद्यते यस्मिन् सः मयडर्थः प्रचुरानन्दः परब्रह्मव्यापकानन्दः, तस्य भावो मयडर्थत्वम्. प्रचुरानन्दत्वावच्छिन्नबोधिकानन्दशब्दरूपा **प्रकृतिः** सा **तुल्या** स्तुतिवाक्ये स्तुत्या परमानन्दप्रतिपादकानन्दमयशब्देतु प्राचुर्यार्थकमयट्प्रत्ययेन परमानन्दप्रतिपादिका एवं

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तथा तत्रैव अनुसन्धेयम् इति विस्तरभयाद् विरम्यते. **अभ्यासाद्** इति आनन्दमयः इत्यस्य यो अर्थः आनन्दः इति तस्य आर्थिकस्य अभ्यासाद् इति अर्थः. **पूर्ववैलक्षण्यम्.** पूर्वस्माद् अन्नमयाद् इति अर्थः. वैलक्षण्यं भेदकत्वम्. **अतः** कारणाद्. **अतुल्यत्वात्.** अन्नमयादितुल्यवचनत्वाभावात्. **श्रूयते** अस्मिन्नेव प्रपाठके श्रूयते. अभ्यासबोधकं वाक्यम् आहुः **को ह्ये**ति. **यद्** यदि **आकाशः** पूर्णः **आनन्दः** साक्षी प्रेरको **न स्याद्,** तदा **को वा अन्याद्,** बलेत्, **को वा** विशिष्य **प्राण्याद्** जीवेत्, तस्माद्, **एष एव आनन्दयति** इति अर्थः. 'याति' इति छान्दसः प्रयोगः. इति स्तुतिवाक्यार्थः. **अर्थतो अभ्यासः** इति आनन्दमयः इत्यस्य आनन्दार्थः तस्य अभ्यासः इति अर्थः. शब्दाभ्यासस्य अन्नमयादिष्वपि सत्त्वाद् आर्थिकः इति उक्तम्. ननु पूर्ववाक्ये 'आनन्दमयः' इति पदं तस्य च प्रचुरानन्दः इति अर्थः. तथाच आनन्दे प्राचुर्यं 'मयट्'प्रत्ययेन बोध्यते. स्तुतिवाक्यद्वयेतु केवलम् 'आनन्द'पदेन आनन्दो बोध्यते इति अर्थभेदात् कथम् अर्थतो अभ्यासः इत्यतः आहुः **स्तुत्या.** मयटो अर्थत्वम् इति बोध्यते इति शेषः. स्तुतिवाक्यबोधितस्तवनेन आनन्दे प्रचुरत्वरूपं मयडर्थत्वं तद् बोध्यते इति अर्थः. तथाच स्तवनन्तु परब्रह्मणएव सच प्रचुरानन्दरूपएव इति तात्पर्यवशादेव अयम्

तुल्या. पुनर्वचनेन अभ्यासेन प्रवाहाद् भेदे साधिते ब्रह्मत्वम्. नतु द्वयापत्तिः, उत्तरस्य साधकत्वात्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तुल्या इति अर्थः. ननु अत्र मयड्विकारार्थकएव कुतो न स्याद्? इति चेद्, न, तथा सति स्तुतिवाक्यवैयर्थ्यापत्तेः. तथाच स्तुतिवाक्यैकवाक्यतार्थं प्राचुर्यमेव अर्थो वक्तव्यः इति भावः. पुनः वचनेन इत्यनेन निगमयन्ति **पुनर्वचनेन** स्तुतिवाक्यद्वयेन, आनन्दस्य पुनर्वचनेन. **प्रवाहाद्** अन्नमयादिचतुष्कात्. **भेदे** वैलक्षण्ये. **ब्रह्मत्वम्** आनन्दमयस्य परब्रह्मत्वम्. ननु आनन्दमयस्य ब्रह्मत्वे ‘‘**तस्य प्रियमेव शिरः**’’ (तैत्ति.उप.२।५।१) इत्यादौ षष्ठ्या सुखरूपे शिरसि आनन्दमयस्य भेदप्रदर्शनाद् ब्रह्मभेदस्य च ‘‘**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**’’‘ (छान्दो.उप.३।१४।१), ‘‘**ऐतदात्म्यम् इदं सर्वम्**’’ (छान्दो.उप.६।८।७) इत्यादौ निषिद्धत्वाद् न आनन्दमयो ब्रह्म इत्यतः आहुः **नतु द्वयापत्तिः** इति. कुतः? इति आकांक्षायां हेतुम् आहुः **उत्तरस्य** इति. एतदभ्यासवाक्याद् उत्तरस्य ‘‘**यदा ह्येवैष एतस्मिन् उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति**’’ (तैत्ति.उप.२।७) इति ‘अन्तर’शब्दस्य भेदबोधकत्वेन तस्य च निन्दाश्रवणात् ‘‘**तस्य प्रियमेव शिरः**’’ (तत्रैव२।५।१) इत्यादौ ‘‘राहोः शिरः’’ इतिवद् अभेदार्थषष्ठीकल्पनाद् न द्वयापत्तिः इति भावः. सिद्धम् आहुः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अर्थो लभ्यते इति भावः. ननु तथापि स्तुतिवाक्ये प्राचुर्यबोधकप्रत्ययाभावाद् किञ्चिद् अंशे शब्दतः समानत्वं नास्ति इत्यतः आहुः **प्रकृतिस्तु** इति. आनन्दरूपा प्रकृतिः इति अर्थः. तथाच यथा ‘घटः’ इत्यादिस्थले केषाञ्चिद् मते ‘एकत्वविशिष्टो घटः’ इति शाब्दबोधः, तत्र ‘घटः’ इति प्रकृतितएव जायते. प्रत्ययस्य एकत्वांशे तात्पर्यग्राहकत्वं नतु वाचकत्वम्. केषाञ्चिद् मतेतु प्रत्ययस्यैव एकत्वादौ शक्तिः. एवञ्च वाच्यवृत्त्या प्रत्ययार्थस्य विवादग्रस्तत्वात् प्रत्ययांशे साम्याभावेऽपि प्रकृत्यंशे शब्दतः साम्यम् अपेक्षितं तत् च अस्ति इति भावः. सिद्धम् आहुः **पुनर्वचनेन** इति. तृतीयार्थो बोधितत्वं तथाच आनन्दस्य स्तुतिवाक्ये यत् पुनर्वचनं तेन बोधितो यः आर्थिको अभ्यासः तेन इति अर्थः. **प्रवाहाद्** इति अन्नमयादिचतुष्काद् इति अर्थः. ननु आनन्दमयप्रकरणे ‘‘**तस्य प्रियमेव शिरः**’’(तैत्ति.उप.२।५) इति वाक्यं पठितम्. षष्ठी च सम्बन्धे, सच भेदं विना न सम्भवतीति ब्रह्मभेदः स्याद् इत्यतः आहुः **न द्वये**ति. न ब्रह्मद्वयापत्तिः इति अर्थः. ननु कुतो अवगम्यते इत्यतः आहुः **उत्तरस्य** इति. एतद् अभ्यासवाक्याद् उत्तरस्य ‘‘**यदा ह्येवैष एतस्मिन् उदरमन्तरं कुरुते, अथ तस्य भयं भवति**’’(तैत्ति.उप.२।७) इति वाक्यद्वयस्य इति अर्थः. **साधकत्वाद्** भेदाभावसाधकत्वात्. तथाच षष्ठीतु ‘‘राहोः

तस्माद् आनन्दमयं ब्रह्मैव.

अथवा **''स नैव रेमे. तस्माद् एकाकी न रमते. स द्वितीयम् ऐच्छत्. स हि एतावान् आस''**(बृहदा.उप.१।४।३) इत्यादिश्रुतिभिः, **''एष उ एव''** (कौषी. उप.३।८) इति श्रुतेश्च तानि-तानि साधनानि कारयित्वा तानि-तानि फलानि ददद् भगवान् स्वक्रीडार्थमेव जगद्रूपेण आविर्भूय क्रीडति इति वैदिकैः निर्णीयते. एतदेव काण्डद्वयेऽपि प्रतिपाद्यते.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तस्माद् इत्यादि. एवम् अस्मिन् वर्णके अन्नमयादीनां ब्रह्मकार्यत्वेन पदार्थान्तरत्वम् उपपाद्य आनन्दमयस्य फलत्वार्थकथनात् तेभ्यो भेदः साधितः.

साम्प्रतं वर्णकान्तरेतु अखण्डब्रह्मवादेन पूर्वसिद्धसकलकार्यस्यापि ब्रह्मत्वम् अनूद्य आनन्दस्य साधनशेषत्वेऽपि रूपभेदेन फलत्वानपायाद् ज्ञेयकोटौ आनन्दं निवेश्यापि अन्नमयादिभ्यः आनन्दमयस्य भेदः **''तस्यैष एव शारीर आत्मा''**(तत्रैव) इत्यादि-वाक्याभ्यासाद् आधिदैविकं पक्षम् आश्रित्य साध्यते **अथवा** इत्यादि. अखण्डाद्वैत-वादपुरःसरं सर्वश्रुतीनां ब्रह्मपरत्वेन एकवाक्यत्वाय प्रतीयमानस्य बाध्यताप्रकारबोधनाय च सृष्टिप्रक्रियास्मारणपुरःसरम् अखण्डब्रह्मवादस्वरूपं सप्रमाणं निरूपयितुम् आहुः **''स वै नैव रेमे''** इत्यादि. **वैदिकैः** इति. प्राचीनौपनिषदैः व्यासादिभिः इति अर्थः. एतेन उक्ते अर्थे शिष्टानां सम्मतिः प्रदर्शिता. **एतदेव** कर्मज्ञानप्रक्रियाप्रकाशनमुखेन भगवतः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

शिरः'' इतिवद् अभेदार्थिका इति भावः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति.

अखण्डब्रह्मवादम् आश्रित्य प्रकरणान्तररूपं वर्णकान्तरम् आहुः **अथवा** इति. अत्र पूर्ववर्णकः अन्नमयादीनां ब्रह्मकार्यत्वम् आनन्दमयस्यतु फलत्वार्थम् आर्थिकाभ्यासेन भेदः उक्तः. ब्रह्मज्ञानं साधनं साधने फलवैलक्षण्यार्थं ज्ञानविषयीभूत-ब्रह्मणः स्वरूपलक्षणः आनन्दांशनिवेशोऽपि न कृतः. अस्मिन् वर्णकेतु कार्यं कारणं साधनं फलञ्च सर्वं ब्रह्मैवेति अभेदः प्रतिपादितः. साधनशेषब्रह्मत्वरूपलक्षणः आनन्दांशनिवेशोऽपि क्रियते. भेदस्तु **''तस्य एषएव शारीर आत्मा''** इति वाक्याभ्यासेन आधिदैविकभेदम् आश्रित्य प्रतिपाद्यते इति पूर्ववर्णकाद् वैलक्षण्यं बोध्यम्. अखण्डब्रह्मवादे प्रमाणम् आहुः **स नैव** इति. **एष उ एव** इति. **''एष उ एव साधुकर्म कारयति''** (कौषि .उप.३।८) इत्यादिश्रुतेश्च इति अर्थः. **वैदिकैः** इति पूर्वर्षिभिः इति अर्थः. **एतदेव** इति. क्रीडेच्छया सृष्टीच्छा तया च जगद्रूपेण आविर्भवनमेव इति अर्थः. **काण्डद्वयेऽपि** पूर्वोत्तरकाण्डेऽपि.

अन्यथा जीवस्य साधन-फले निरूपयन्त्याः श्रुतेः जीवपरत्वमेव स्याद् न ब्रह्मपरत्वम्. कर्म-ब्रह्मणोरपि जीवशेषत्वं न अपेयात्.

एवं सति पूर्वकाण्डे अवान्तरफलानि उक्त्वा **''एतस्यैव आनन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्राम् उपजीवन्ति''** (बृहदा.उप.४।३।३२) इति श्रुतेः निरवध्यानन्दात्मकमेव परमं फलम् इति तद्विवक्षमाणा पूर्वं सामान्यतः आह,

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

क्रीडनमेव. **अन्यथा** सृष्टेः भगवत्क्रीडार्थत्वाभावे. **साधनफले** कर्मोपासनरूपाणि साधनानि स्वर्गमोक्षादिरूपाणि फलानि च इति अर्थः. **श्रुतेः** पूर्वोत्तरकाण्डश्रुतेः इति अर्थः. **न ब्रह्मपरत्वम्**. तथाच **''सर्वे वेदाः यत् पदमामनन्ति''** (कठोप.१।२।५), **''वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य''** (भग.गीता.१५।१५) इति विरोधः. श्रुतेः जीवपरत्वापत्तिम् उपपाद्य श्रुत्यर्थस्य जीवपरत्वापत्तिम् आहुः. **कर्म-ब्रह्मणोः** इत्यादिना. **जीवशेषत्वं** जीवस्य स्वर्गमोक्षादिफलसम्पत्तौ कर्म-ब्रह्मणोः उपयोगाद् जीवार्थत्वमेव स्याद् नतु रमणार्थत्वम्. तथाच **''स नैव रेमे. तस्माद् एकाकी न रमते. स द्वितीयमैच्छत्. स हैतावानास''** (बृह.उप.१।४।३) इत्यादिश्रुतिभिः नामरूपसृष्टे रमणार्थत्वोक्तिः बाध्येत इति भावः.

एवं सति पूर्वोक्तसर्वदोषनिराकरणाय सर्वस्य वेदराशेः ब्रह्मपरत्वे उच्यमाने सति. **अवान्तरफलानि** पशुपुत्रस्वाराज्यादिरूपाणि. **एतस्यैव** परब्रह्मानन्दस्यैव. **अन्यानि भूतानि** ब्रह्मादिमनुष्याद्यन्तानि. **मात्रां** यथायोग्यांशम्. **तद्विवक्षमाणा** साधकेषु निरवध्यानन्दरूपं फलं बोधयन्ती सती श्रुतिः सकरुणा. **पूर्वं** साधनादृष्टसम्पत्तेः पूर्वम्. **सामान्यतः** यथाकथञ्चित्साधनतया.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

विपक्षे बाधकं तर्कम् आहुः **अन्यथा** इति. भगवतः जगद्रूपत्वाभावे, न ब्रह्मपरत्वम् इति. तथाच **''सर्वे वेदा यत्पदम् आमनन्ति''** (कठोप.१।२।५) इति श्रुतिविरोधः इति भावः. श्रुत्यर्थस्य जीवपरत्वापत्तिम् आहुः **कर्मे**ति. **जीवशेषत्वं** जीवाङ्गत्वम्. **न अपेयाद्** न गच्छेत्. तथाच जीवस्य स्वर्गार्थं मोक्षार्थं च कर्मब्रह्मोपासनाकथनेन जीवाङ्गापत्तितदुभयोः इति भावः. एवम् अखण्डब्रह्मवादे आधिदैविकवादेन भेदं साधयितुं विषयवाक्यम् अवतारयन्ति **एवं सति** इति. **अवान्तरफलानि** स्वर्गादीनि. **एतस्यैव** इति कथितस्य परमानन्दस्य इति अर्थः. **भूतानि** ब्रह्मादीनि. **मात्रां** लेशम् इति. **तद्विवक्षमाणा** इति. **इति** अनेन प्रकारेण, तद् आनन्दरूपं फलं, **विवक्षमाणा** श्रुतिः **पूर्वं** प्रथमं तैत्तिरीये साधनसहितं **फलम्, आह** इति अर्थः. अनुपदमेव विशेषतः उच्यते अतः **पूर्वं**

ससाधनं तैत्तिरीये **‘‘ब्रह्मविदाप्नोति परम्’’** (तैत्ति.उप.२।१) इति. अक्षरब्रह्मवित् परं ब्रह्म आप्नोति इति अर्थः. अत्र ‘पर’शब्दस्य पूर्वपरत्वे ‘तद्’ इत्येव वदेत्. पूर्वं ‘ब्रह्मो’क्त्वा अग्रे यत् ‘परम्’ इति आह तेन सान्निध्यात् ततएव परं पुरुषोत्तमरूपमेव अत्र अभिप्रेतम् इति ज्ञायते.

किञ्च. प्रतिवादिना तदाप्तिः ज्ञानात्मिकैव वाच्या. तथा सति ब्रह्मप्राप्तो ब्रह्म प्राप्नोति इति अर्थः स्यात्. सच असङ्गतः, साधनसाध्यभावव्याहतिश्च. अतः परं विशेषतः तद्विवक्षमाणानुभवैकगम्यं तत् स्वरूपं न

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

‘पर’शब्दस्य परब्रह्मवाचक‘पर’शब्दस्य. **पूर्वपरत्वे** अक्षरब्रह्मार्थत्वे. **ततएव** अक्षरब्रह्मणः सकाशादेव. ननु अक्षरब्रह्मवित् **परं** ब्रह्मादिदेवापेक्षया परं, मुक्त्यात्मकफलरूपतया वा परम् अक्षरं प्राप्नोति इति अर्थो वाच्यो, नतु ‘पर’शब्देन पुरुषोत्तमः इत्यतः आहुः **किञ्च** इत्यादि. **प्रतिवादिना** अक्षरापेक्षया उत्कृष्टब्रह्मस्वरूपानङ्गीकर्त्रा. **तदाप्तिः** परापदार्थीभूताक्षरावाप्तिः. **असङ्गतः** पुनरुक्तिदोषेण बोधजननासम्भवाद् असङ्गतः. दोषान्तरम् आहुः **साधनसाध्ये**त्यादि. **व्याहतिः** आत्माश्रयदोषेण कार्यकारणभावभङ्गः इति अर्थः. तथाच अक्षरवित् परं पुरुषोत्तमं प्राप्नोति इत्येव अर्थो वाच्यः इति फलितम्. एवं सामान्यतो अक्षरात् परपदार्थं निरूप्य विशेषतः तं निरूपयितुं

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सामान्यतः इति उक्तम्. **सामान्यतः** सङ्क्षेपेण. **अत्र** ‘ब्रह्मविद्’इतिवाक्ये. **पूर्वपरत्वे** इति ज्ञानविषयीभूतब्रह्मपरत्वे इति अर्थः. **तद् इत्येव** इति ब्रह्मविदाप्नोति तद् इत्येव वदेद् इति अर्थः. **तेन** इति ज्ञायते इत्यनेन अन्वयः. **सान्निध्याद्** इति एकवाक्यान्तर्गतत्वाद् इति अर्थः. **ततएव** परम् इति. **ततः** अक्षरब्रह्मणः, **परम्** उत्कृष्टम् इति अर्थः.

ननु अक्षरापेक्षया परम् अन्यं न भवति किन्तु मोक्षरूपत्वात् तदेव परम् इत्यतः आहुः **किञ्च** इति. ‘‘ब्रह्मविदाप्नोति’’ इति ब्रह्मज्ञानवान् भवति इति अर्थः. **असङ्गतः** इति. यथा ‘‘दण्डवान् दण्डवान्’’ इत्यादिनिराकाङ्क्षवाक्याद् शाब्दबोधो न जायते, तथा ‘‘ब्रह्मविद् ब्रह्मज्ञानवान्’’ इत्यस्मादपि शाब्दबोधस्य असङ्गतत्वम् इति अर्थः. ननु विरूपपदोपस्थितयोरेव शाब्दबोधः. तच्च प्रकृतेऽपि अस्ति, ‘ब्रह्मवित्’-‘पराप्ति’पदयोः विरूपत्वात् शाब्दबोधस्य समानाकारत्वे क्षतिविरहाद् इत्यतः आहुः **साधने**ति. **व्याहतिः** इति. अभेदे किं साधनम्? किं साध्यम्? इति वक्तुं न शक्यते इति क्षतिः इति अर्थः.

अतः परम् इति ब्रह्मवित् परं पुरुषोत्तमं प्राप्नोति इति सामान्यतः यद् उक्तं

अन्यमानगम्यम् इति ज्ञापयितुम् अन्यमुखेन आह ‘‘**तद् एषाभ्युक्ता**’’ (तैत्ति.उप. २।१) इति. अन्यथा सर्वार्थतत्त्वप्रतिपादिका श्रुतिः एवं कथं वदेत् ‘तद्’ इति अव्ययम्. तथाच ‘तत्’ पूर्वोक्तं ब्रह्मविदः परप्राप्तिलक्षणम् अर्थं विशदतया

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

प्रकारान्तरेण तस्य ज्ञातुम् अशक्यतया ‘‘**भक्त्या माम् अभिजानाति**’’ (भग.गीता १८।५५) इति वाक्याद् भक्त्या अनुभवैकगम्यमेव परस्वरूपं न युक्तिगम्यमिति परब्रह्म–भक्तैः उक्ताम् ऋचमेव परपदार्थज्ञानसाधनत्वेन तादृशभक्तमुखेन इति अर्थबोधकवाक्यावतरणम् आहुः **अतः** इत्यादिना. **अतः परं** पूर्वोक्तप्रकारैः परपदार्थनिर्णयासम्भवानन्तरम्. **विशेषतः** भक्तग्राह्यतावच्छेदकरूपतः. **तद्विवक्षमाणे**त्यादि. परपदार्थनिरूपणेच्छवो ये तद्भक्ताः तदनुभवैकगम्यं परस्वरूपम् अनुभवेतरमानगम्यं न इति तन्मुखेन निर्णायकम् आहुः इति अर्थः. **तदेषाभ्युक्ता** इति. **अन्यथा** व्याख्यानश्रुतेः अभावे परपदार्थस्य तदनुभवस्य च अभावे. **एवम्** अन्यमुखेन कथनं **तदेषाभ्युक्ता** इत्येवंरूपम्. **‘तद्’इति अव्ययं** पञ्चम्यन्तम् अध्याहार्यम् इति अर्थः. श्रुतिस्थं ‘तत्’पदं परपदार्थरूपवस्तुबोधकम्. **तथाच** इत्यनन्तरं **तत्** तस्मात् कारणात् तदेव इति ऋगर्थरूपकारणाद् इति योज्यम्. श्रुतिस्थ‘तत्’पदार्थम् आहुः **तत्** पूर्वोक्तम् इति. **उपगृह्य** हृदि

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तदनन्तरम् इति अर्थः. **विशेषतः** विशेषरूपेण स्वरूपलक्षणकथनादिना. **तद्विवक्षमाणा** इति. श्रुतिः इति शेषः. तं विशेषार्थं वक्तुम् इच्छावती श्रुतिः इति अर्थः. अत्र इत्थं साधनिका, वक्तुम् इच्छति विवक्षते इति विवक्षमाणा ‘ब्रुञ् धातोः’ सन् तस्य ‘‘**ब्रुवो वचिः**’’ (पाणि.सू.२।४।५३) इति वच्यादेशः द्वित्वम्, अभ्यासलोपः, ‘‘**चोः कुः**’’ (पाणि.सू.८।२।३०) इति कुत्वं, सकारस्य षत्वं सन्नन्तात् कर्तरि शानच्, ‘‘**आने मुक्**’’ (पाणि.सू.७।२।८२) इति मुगागमः, अदन्तत्वात् टाप् , ‘ब्रुञ्’ इति उभयपदाद् धातोः सन्. ‘‘**पूर्ववत् सन्**’’ इति आत्मनेपदम्. विवक्षमाणा इति. **अन्यमुखेन,** ब्रह्मज्ञमुखेन, आहुः **उक्तवती.** वचनम् आहुः **तदेषा** इति. **अन्यथा** इति. अनुभवैकगम्यत्वास्वीकारे. ‘तदेषा’ इत्यस्य अर्थम् आहुः. **तद्** इति. तदर्थम् इति अर्थः. ‘‘**अव्ययादाप् सुपः**’’ (पाणि.सू.२।४।८२) इत्यनेन चतुर्थ्या लुक्. तथाच ‘‘**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**’’ इत्यस्य अर्थपरिज्ञानार्थम् इति यावत्. प्रकारान्तरेण तद् इति अस्य अर्थम् आहुः **तथाच** इति. **तत्** तम् इति अर्थः. अव्ययत्वेन अमो लुक् (आमः २।४।८१ आमः परस्य लुक्) अर्थः इत्यस्य विशेषणत्वार्थमेव अव्ययत्वम्. **उपगृह्य** निश्चयं कृत्वा. **सम्पद्यते** इति तात्पर्यार्थो

प्रतिपाद्यत्वेन अभिमुखीकृत्य उपगृह्य ऋगेषा विदितपरब्रह्मकैः उक्ता. पूर्ववाक्योक्तार्थस्य वैशद्यम् अनया क्रियते इति अर्थः सम्पद्यते. तामेव आह **‘‘सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म. यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता’’**(तैत्ति.उप.२।१) सोपपत्तिकम् आनन्दात्मकत्वम् अग्रे निरूपणीयमिति अधुना तदनिरूप्य सच्चिदंशौ देशकालापरिच्छिन्नत्वञ्च उक्तवती. अथवा, अक्षरब्रह्मणि आनन्दात्मकत्वे सत्यपि तस्य परिच्छिन्नत्वाद् न परमफलत्वम् अतः आनन्दे अपरिच्छिन्नत्वमेव परमफलतावच्छेदकम् इति तद्धर्मपुरःसरं परमानन्दएव ‘अनन्त’शब्देन उच्यते अत्र. **‘‘सत्यं**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

निश्चित्य. **एषा** अग्रे वक्ष्यमाणविवरणरूपा. **पूर्वे**त्यादि. ‘‘ब्रह्मविदाप्नोति परम्’’ इति वाक्यार्थस्य **अनया** विवरणर्चा. **इति अर्थः सम्पद्यते** ‘‘तदेषाभ्युक्ता’’ इत्यस्य एतावान् अर्थः सम्पद्यते इति अर्थः. **तां** पूर्वप्रतिज्ञातां विवरणर्चम्. **अग्रे** परपदार्थस्य फलस्य निरूपणावसरे. **तत्** परपदार्थरूपं वस्तु. **देशकालापरिच्छिन्नत्वम्** ‘अनन्त’पदेन देशकालापरिच्छिन्नत्वम्. **उक्तवती** ज्ञेयांशम् उक्तवती इति अर्थः. ‘अनन्त’पदस्य अर्थान्तरं वक्तुं वर्णकान्तरम् आहुः **अथवा** इत्यादि. **तस्य** अक्षरानन्दस्य, **परिच्छिन्नत्वात् ‘‘स ब्रह्मण एक आनन्दः’’** (तैत्ति.उप.२।८) इत्यनेन गणनाविषयत्वात्. **तद्‌धर्मपुरःसरं** परिच्छिन्नत्वरूपधर्मपुरस्कारेण. **परमानन्दएव** प्रजापतेः आनन्दापेक्षया उत्कृष्टानन्दएव. ननु ‘अनन्त’शब्दस्य आनन्दबोधकतायां किं गमकम्? इत्यतः आहुः

गोस्वामिश्रीमद्‌गिरधरविरचितं विवरणम्

भवति इति अर्थः. यथार्थः क्रियते. ताम् आहुः **सत्यम्** इति. गुहायाम् इत्यस्य अर्थस्तु अनुपदमेव वक्ष्यते. ‘‘सत्यं ज्ञानम्’’ इति ऋगर्थम् आहुः **सोपपत्तिकम्** इति. **अग्रे** फल-निरूपणावसरे. **उक्तवती** इति ‘‘सत्यं ज्ञानम्’’ इति ऋक् सत्य-ज्ञानपदाभ्यां सच्चिदंशौ, ‘अनन्त’पदेन अपरिच्छिन्नत्वं च ज्ञेयस्य ब्रह्मणः उक्तवती इति अर्थः. एतेन पूर्ववर्णक-रीत्या ज्ञेयांशे कारणत्वाय आनन्दांशनिवेशो न कृतः इति बोध्यम्.

ननु पूर्ववर्णकरीत्या स्वरूपलक्षणे ज्ञेयांशे आनन्दांशप्रवेशाभावे प्रकरणान्तरापर्यायं वर्णकान्तरम् इदं न स्याद् इति अतो ‘अनन्त’शब्दस्य आनन्दरूपार्थान्तरः आहुः **अथवा** इति. तस्य अक्षरब्रह्मणः. **परिच्छिन्नत्वाद्** इति. **‘‘य एते शतं प्रजापतेरानन्दाः, सः एको ब्रह्मणः आनन्दः’’** (तैत्ति.उप.२।८) इतिश्रुत्या अक्षरब्रह्मणः गणितानन्दत्वाद् इति अर्थः. **अपरिच्छिन्नत्वमेव** अगणितत्वमेव. **तद्धर्मः** इति अपरिच्छिन्नत्वधर्मः इति

विज्ञानम्आनन्दंब्रह्म’’(शाण्डि.उप.२।२)‘‘**सच्चिदानन्दविग्रहम्**’’(मुण्ड.१।४) इत्यादिश्रुतिषु त्रयाणामपि एकप्रक्रमपठितत्वाद् द्वितयोक्तौ तन्नियतसहचरितत्वेन अनुक्तोऽपिआनन्दःप्राप्स्यतएवइतिआशयेनवाआनन्दःस्फुटतयानउक्तः.

अथ वेदनपदार्थम् आह ‘‘**यो वेद**’’ इत्यादिना. अत्र इदम् आकूतम्. ‘‘**नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन, यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनुं स्वाम्**’’ (मुण्ड.३।२।३) इतिश्रुत्या वरणेतरसाधनाप्राप्यत्वम् उच्यते. एवं सति श्रुतिद्वयविरोधपरिहाराय अक्षरब्रह्मज्ञानेन

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सत्यम् इत्यादि. **द्वितयोक्तौ** सत्यज्ञानयोः द्वयोः उक्तौ. **तन्नियते**ति सत्यज्ञानोभयनियतेत्यर्थः. **अथ** वेद्यनिरूपणानन्तरम्. **वेदनपदार्थम्** अक्षरातिरिक्तं वेद्यं पदार्थम् इति अर्थः. द्वेधा निरूपणस्य किं प्रयोजनम्? इति आकांक्षायां तद् विशदयन्ति **अत्र इदम्** इत्यादिना. आकूतमेव उपपादयन्ति ‘‘**नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन, यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः, तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम्**’’ (मुण्ड.उप.३।२।३) इति श्रुतिः वरणैकलभ्यत्वं वदति. ‘‘**ज्ञानादेव हि कैवल्यम्**’’ ( ), ‘‘**ऋते ज्ञानाद् न मुक्तिः**’’ ( ) इति श्रुतिः ज्ञानमात्रलभ्यत्वं वदति. तदेव **श्रुतिद्वयविरोधः** इत्यनेन उच्यते.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अर्थः. ननु ‘अनन्त’पदेन अपरिच्छिन्नत्वेन रूपेण परमानन्दो बोध्यते इत्यत्र गमकं नास्ति इत्यतः पक्षान्तरम् आहुः ‘‘**सत्यं विज्ञानम्**’’ (शाण्डि.उप.२।२) इति. **अनुक्तोऽपि** इति. **सत्यम्** इति. स्वरूपलक्षणः इति शेषः. आनन्दः परमानन्दः.

एतावता प्रबन्धेन पूर्ववर्णके वेद्यत्वम् अक्षरब्रह्मणः उक्तम्, अस्मिन् वर्णके वेद्यत्वं परमानन्दस्य इति वैलक्षण्यं बोध्यम्. अथ साधनाङ्गभूतवेद्यनिरूपणोत्तरम्. ननु अक्षरपरमानन्दोभयरूपस्य वेदस्य प्रकरणद्वयेन निरूपणे किं तात्पर्यम् इत्यतः आहुः **अत्र** इति. इदम् ‘‘यो वेद’’ इति व्याख्यानांशे वक्ष्यमाणम्. **आकूतं** तात्पर्यम्. तात्पर्यमेव आहुः **न अयम् आत्मा** इत्यादिना.

श्रुतिद्वयेति ‘‘**ब्रह्मविदाप्नोति**’’ (तैत्ति.उप.२।१) इति अस्मिन् वाक्ये ब्रह्मज्ञानप्राप्यत्वं ‘‘**नायमात्मा**’’ (मुण्ड.उप.३।२।३) इत्यादिवाक्ये वरणेनैव प्राप्यत्वम् इति श्रुतिद्वयविरोधः इति अर्थः. **परिहाराय** तादृशविरोधपरिहाराय. निर्णीयते इत्यनेन अन्वयः. **प्राकृते**ति सत्त्वरजस्तमसां राहित्येन इति अर्थः. **तादृशः** इति. ज्ञानेन परप्राप्तौ

अविद्यानिवृत्त्या प्राकृतधर्मराहित्येन शुद्धत्वसम्पादनेन पुरुषोत्तमप्राप्तौ स्वरूपयोग्यता सम्पाद्यते. तादृशे जीवे स्वीयत्वेन वरणे भक्तिभावात् सहकारियोग्यतासम्पत्त्या पुरुषोत्तमप्राप्तिः भवति इति निर्णीयते. तदैव गुहायां परमव्योमाविर्भावः. परो मीयते दृश्यते अनेन इति तथा. ज्ञानमार्गीयजीवज्ञेयप्रकारकाद् वैशिष्ट्येनापि तथा. परमव्योम्नो अत्यलौकिकत्वज्ञापनाय

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तादृशे अक्षरज्ञानेन प्राप्तिस्वरूपयोग्यतावति. **गुहायां** भक्तहृदयाकाशे. **परमे**त्यादि. भगवल्लीलाविशिष्टव्योमाविर्भावः इति अर्थः. **तथा** परमपदवाच्यः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

स्वरूपयोग्यतासम्पन्नः इति अर्थः. तथाच वरणे सति भक्तिभावो जायते, तदनन्तरं तत्सहकारित्वं योग्यतायाः सम्पत्तिः, तदनन्तरं पुरुषोत्तमरूपपरप्राप्तिः इति निर्णयः क्रियते इति भावः. ननु भवतु श्रुतिद्वयविरोधपरिहाराय एवं निर्णयः, तथापि अत्र किञ्चिद् बीजम् अपेक्षितम् इत्यतः आहुः **तदैव** इति. भगवता अङ्गीकारे कृते भक्तिभावकालएव इति अर्थः. व्योम्नि परमत्वं विवरीतुं परमपदार्थम् आहुः **परो मीयते** इति. परो मीयते अनेन व्योम्नेति परमम्. तस्मिन् परमे व्योम्नि चिदाकाशे. परमत्वं च लीलाविशिष्टत्वं भगवत्सम्बन्धित्वम्. तथाच भक्तहृदये परमव्योमाविर्भावेन भगवत्साक्षात्कारएव अक्षरब्रह्मज्ञानम्. अतएव गुहायां निहितं यो वेदः इति उक्तं श्रुतौ, तदनन्तरं सो अश्नुते इति वाक्योक्तपुरुषोत्तमप्राप्तिरेव फलम् इति भावः. ननु ज्ञानमार्गिणां कथम् एतादृशाक्षरब्रह्मज्ञानम्? इत्यतः आहुः **ज्ञानमार्गीये**ति. ज्ञानमार्गीयो यो जीवः तस्य यद् ज्ञेयं ज्ञानविषयीभूतं ब्रह्म सत्यज्ञानानन्तरूपं तत्प्रकारको यः भगवत्साक्षात्कारः तस्माद् हेतोः इति अर्थः. **तद्वैशिष्ट्येनापि** भगवत्सम्बन्धित्वेनापि इति अर्थः. 'अपि'ना हेतोः समुच्चयः. तथा व्योम्नि परमत्वम्. तथाच ज्ञानिनः अक्षरज्ञानानन्तरं वरणे भक्तिभावे परमव्योमाविर्भावे साक्षात्कारः. तदनन्तरं परप्राप्तिरूपं फलम्. भक्तस्यतु अङ्गीकारानन्तरमेव परमव्योमाविर्भावकाले लीलाविशिष्टसत्यज्ञानानन्दरूपम् अक्षरब्रह्मज्ञानं तदनन्तरं परप्राप्तिः इति भावः. अतएव प्रथमवर्णके ज्ञानिनः ज्ञेयकोटौ आनन्दघटितं **''सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म''** इति उक्तम्. द्वितीयवर्णके भक्तस्य ज्ञेयकोटौ **''सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म''** इति अत्र परमानन्दः इति व्याख्यातम्. इदमेव द्विधा व्याख्याने बीजं बोध्यम्. उभयपक्षेऽपि अङ्गीकारानन्तरमेव आनन्दरूपपरमव्योमाविर्भावः इति हृदयम्. 'व्योमे'ति पदं चिदाकाशबोधकं नतु लौकिकभूताकाशबोधकम् इति आहुः **परमव्योम्नो अत्यलौकिकत्वे** इति. परमव्योम्नो अत्यलौकिकत्वज्ञापनाय इति अर्थः. अयमेव पाठः समीचीनः.

अलौकिकः प्रयोगः कृतः. ‘‘**भक्त्याहमेकया ग्राह्यः**’’(भाग.पुरा.११।१४।२१) ‘‘**नाहं वेदैः**’’ (भग.गीता ११।५२) इति उपक्रम्य ‘‘**भक्त्या त्वनन्यया शक्यः**’’ (तत्रैव११।५४) इत्यादिस्मृतिरपि एवमेव सङ्गच्छते. अन्यथा ज्ञानमार्गीणामपि ब्रह्मविदां परप्राप्तिः स्याद् नतु एवम् ‘‘**मुक्तानामपि सिद्धानां नारायण-परायणः, सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने, तस्मान् मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः, न ज्ञानं नच वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेद् इह**’’(भाग.पुरा.६।१४।५,६) इत्यादिवाक्यैः. एतदेव आह. गुहायां हृदयाकाशे यदाविर्भूतं परमं व्योमाक्षरात्मकं व्यापिवैकुण्ठं, तस्य पुरुषोत्तमगृहरूपत्वात् तत्र निहितं स्थापितमिव वर्तमानं यो वेद स भक्तो ब्रह्मणा नित्याविकृतरूपेण विपश्चिता, विविधं पश्यच्चित्वं हि विपश्चित्वं पृषोदरादित्वात् पश्यच्छब्दावयवस्य यच्छब्दस्य लोपं कृत्वा व्युत्पादितो ‘विपश्चिच्’छब्दः. तेन विविधभोगचतुरेण सह सर्वान् कामान् अश्नुते इति अर्थः. एतेन परप्राप्तिपदार्थः उक्तो भवति. शुद्धपुष्टिमार्गीयत्वाद्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अलौकिकेत्यादि. सप्तम्यन्त‘व्योमन्’इति प्रयोगः इति अर्थः. **एवमेव** वरणैकलभ्यत्वाङ्गीकारएव. **नतु एवम्** इत्यत्र प्रमाणम् आहुः **मुक्तानाम्** इत्यादिना. **तेन** एवंरीत्या

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

कृतः इति. ‘व्योम्नि’ इति वक्तव्ये ‘व्योमिन्’ इति सप्तम्यन्तो वैदिकः प्रयोगः कृतः इति अर्थः. ननु श्रुतौ ‘वरण’पदं वर्तते इति एतदर्थं भक्तिपक्षाश्रयं कृत्वा विरोधपरिहारापेक्षया ‘वरण’पदस्यैव लक्षणवृत्त्या ज्ञापनार्थकत्वं वक्तव्यम् इति वरम् इत्यतः आहुः **भक्त्या** इति. परप्राप्तिस्तु भक्त्यैव जायते इति श्रुतिप्राप्तार्थबोधिकायां स्मृतावपि एकया अनन्यया इति उक्तम्. **अन्यथा** इति. एतादृशश्रुतितात्पर्यानङ्गीकारे. ननु ज्ञानिनां परप्राप्तौ इष्टापत्तिः इत्यतः आहुः **नतु एवम्** इति. ‘‘**मुक्तानाम्**’’ इत्यादिवाक्यैः नतु एवम् इति अर्थः.

एतदेव इति पूर्वोक्तार्थः एवम् इत्यादिश्रुतौ आह इति अर्थः. **नित्याविष्कृतः** इति निरन्तरं प्रकटीभूतेन. ‘विपश्चिता’ इत्यस्य अवयवार्थम् आहुः **विपश्चिता** इति. **पृषोदरादित्वाद्** इति, ‘‘**पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्**’’(पाणि.सू.६।३।१०९) इति सूत्रम्. पृषोदरसदृशानि शिष्टैः यथोच्चारितानि तथैव साधूनि बोध्यानि इति सूत्रार्थः. ‘पृषद् उदरम्’ इति वक्तव्ये ‘पृषोदरम्’ इति अभियुक्तप्रयोगो यथा साधुः तथा ‘पश्यच्चित्वम्’ इति वक्तव्ये ‘विपश्चिता’ इति उक्ते. तत्र विपश्चिता इत्यस्य पश्यद् इत्यस्य अवयवीभूत–‘यत्’शब्दस्य लोपं कृत्वा विपश्चित्. **एतेन** इति ‘सो अश्नुते’ इति

अस्य भक्तस्य स्वातन्त्र्यं भोगे उच्यते. सहभावोक्त्या ब्रह्मणो गौणत्वम्. अतएव भक्ताधीनत्वं भगवतः स्मृतिष्वपि उच्यते “**अहं भक्तपराधीनः**” (भाग.पुरा. ९।४।६३), “**वशे कुर्वन्ति मां भक्त्या**” (तत्रैव ९।४।६६) इत्यादिवाक्यैः.

यद्यपि ‘अश’ भोजने इति धातोः अश्नाति इत्येव रूपं भवति, ‘अशूङ्’ व्याप्तौ इति धातोः भवति अश्नुते इति रूपं, विकरणभेदात् पदभेदाच्च. तथापि अत्र ‘अश’ भोजने इति धातोरेव प्रयोगः इति ज्ञायते. तथा हि. अत्र अशनक्रियायां ब्रह्मणा सहभावः उच्यते. तथाच व्याप्त्यर्थकत्वे ब्रह्मणा सहभूतान् कामान् व्याप्नोति इति अर्थो भवति अथवा ब्रह्मणा सहभूतः सः जीवः कामान् व्याप्नोति इति. एतौतु अनुपपन्नौ. नहि कामवज्जीवकर्तृकव्यापनक्रियाकर्मत्वं ब्रह्माणि सम्भवति अतिमहत्त्वात्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

‘विपश्चिच्’छब्दव्युत्पादनेन. ‘विपश्चिच्’छब्दस्य फलितम् अर्थम् आहुः **विविधे**त्यादि. **एतेन** “सो अश्नुते” इत्यादिश्रुतिभागेन. **स्वातन्त्र्यं** भोगे कर्तृत्वप्रतिपादनेन स्वातन्त्र्यम्. **उच्यते** ‘सः’इति पदेन उच्यते. ‘अश्नाति’ इत्येव परस्मैपदित्वाद् इति अर्थः. **अश्नुते** इति ङित्त्वेन आत्मनेपदित्वाद् इति अर्थः. **विकरणभेदाद् “अश भोजने”** (धातुपा.क्र्यादि ५४) इत्यस्य ‘ना’विकरणत्वात्. **प्रयोग इति** इति. श्रुतौ ‘अश्नुते’ इति प्रयोगः इति अर्थः. **व्याप्त्यर्थकत्वे** “अशूङ् व्याप्तौ” (धातुपा.स्वादि १८) इत्यस्य प्रयोगाङ्गीकारे इति अर्थः. **अतिमहत्त्वाद्** इति. तथाच अतिमहद्ब्रह्म अणुजीवेन व्याप्तं भवति इति न सम्भवति इति अर्थः. जीवस्य ब्रह्मस्वरूपं प्रति व्यापकत्वासम्भवेऽपि कामान् प्रति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

वाक्येन इति अर्थः. **अस्य** इति अङ्गीकृतस्य इति अर्थः. **सहभावः** इति ब्रह्मणा इत्यत्र इति शेषः. अस्मिन् अर्थे स्मृतिप्रमाणम् आहुः **अतएव** इत्यादि.

अश्नुते इत्यत्र शङ्कते **यद्यपि** इति. “ **‘अशू’ व्याप्तौ’** इति. धातुपाठे अत्र “द्वावतुदात्तौ” इति उपक्रम्य “‘अशू’ व्याप्तौ” इति धातुः पठितः. तत्र ‘अशू’ इत्यत्र उकारस्य अनुदात्तत्वात् तस्य च इत्त्वाद् **‘अनुदात्तङित आत्मनेपदम्**”(पाणि.सू.१।२।१२) इत्यादिना अनुदात्तेत्त्वाद् आत्मने पदम् ‘अश्नुते’ इति रूपं सिद्ध्यति. क्वचित् पुस्तके “ ‘अशूङ्’ व्याप्तौ” इति अपपाठः. दूषयन्ति **तथापि** इति. प्रयोगसिद्धिं व्युत्पादयन्ति **तथाहि** इत्यादिना. व्याप्त्यर्थकत्वे अर्थद्वयं तत्र आद्यम् अर्थम् आहुः **ब्रह्मणा सह** इति. द्वितीयम् आहुः **अथवा** इति. आद्यं दूषयन्ति **न हि** इति. सम्भवति इत्यनेन अन्वितम्. **कामवद्**

व्यापनं च अत्र स्वाधीनीकरणमेव वाच्यम्. नहि कामानां तथात्वं स्वतःपुरूषार्थरूपम्, भोगशेषत्वात् तेषाम्. पूर्वोक्तपरप्राप्ति-व्याकृतिरूपत्वाच्च अस्य तथा अर्थो अनुपपन्नः. तेन 'अश' भोजने इतिधातोरेव अयं प्रयोगो अर्थस्य अलौकिकत्वज्ञापनाय अलौकिकः प्रयोगः कृतः. ''**व्यत्ययो बहुलम्**'' (पाणि.सू. ३।१।८५) इति सूत्रेण छन्दषि तद्विधानात्, श्ना-प्रत्यय-परस्मैपदयोः व्यत्ययेन

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

व्यापकत्वं वाच्यं तच्च न सम्भवति, व्यापकत्वस्य सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगित्वरूपत्वात्, कामानां च इच्छात्वेन गुणत्वाद्, अतः कामानां जीवैः स्वाधीनीकरणमेव जीवानां कामान् प्रति व्यापकत्वं वाच्यम् इति आहुः **व्यापनं च अत्र** इत्यादि. तद् दूषयन्ति **न हि** इत्यादि. **तथात्वं** स्वाधीनीकरणम्. **स्वतःपुरुषार्थरूपं** भोगवत्फलरूपम् इति अर्थः. **भोगशेषत्वाद्** भोगैकप्रयोजनार्थत्वात्. **तेषां** कामानां तथाच तेषां स्वाधीनीकरणत्व-रूपव्यापकत्वार्थोऽपि अपुरुषार्थपर्यवसायीति अप्रयोजकएव इति फलितम्. ऋगुत्तरार्धस्य फलीभूतपरमपुरुषार्थरूप-परपदार्थविवरणरूपता च पूर्वोक्ते अर्थे क्रियमाणे अनुपपन्ना स्याद् इति आहुः **पूर्वोक्तः** इत्यादिना. **अस्य** अश्नुते इत्यस्य. **तथा अर्थः** कामानां स्वाधीनीकरणत्वरूपः. **अनुपपन्नः** अपुरुषार्थरूपत्वाद् अनुपपन्नः इति अर्थः. **तेन** ''अशूङ् व्याप्तौ'' इत्यस्य अयं प्रयोगः इति उक्तौ उक्तदोषसमूहेन. **अयम्** अश्नुते इति. **अर्थस्य** परेण सह भोगरूपस्य. **अलौकिकत्वे**त्यादि. वरणमात्रलभ्यत्व-ज्ञापनाय इति अर्थः. **अलौकिकः** इत्यादि पदविकरणव्यत्ययेन '' 'अश' भोजने'' इत्यस्यैव प्रयोगः कृतः इति अर्थः. ननु अलौकिकोऽपि व्याकरणासिद्धः चेद् असङ्गतः इति चेत्, तत्र व्याकरणेन साधुताम् उपपादयन्ति **व्यत्ययः** इत्यादिना. **तद्विधानात्** पदविकरण-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति. कामाधिकरणे इति अर्थः. द्वितीयं दूषयन्ति **व्यापनम्** इति. **तथात्वं** स्वाधीनीकरणं फलं न हि इति अर्थः. कुतः? **भोगशेषत्वाद्** भोगाङ्गत्वात्. **पूर्वोक्तः** इति ''**ब्रह्मविद् आप्नोति परम्**'' इति पूर्ववाक्योक्त्या या परप्राप्तिः तस्याः या **व्याकृतिः** व्याख्यानं तद्रूपत्वाद् इति अर्थः. **अस्य** अश्नुते इत्यस्य. **तथा अर्थः** कामस्वाधीनीकरणरूपो अर्थः. **अनुपपन्नम्** इति. तथाच विवरणेन कामप्राप्तिरेव उक्ता स्याद् नतु ब्रह्मप्राप्तिः इत्यतो अयम् अर्थो अनुपपन्नः इति अर्थः. तथाच सिद्धार्थम् आहुः **तेन** इति. **अयं प्रयोगः** इति 'अश्नुते' इति प्रयोगः इति अर्थः. **अर्थस्य** परेण सह भोगरूपार्थस्य. व्याक्रिया-प्रणीतत्वरूपं साधुत्वमपि अस्ति इति आहुः **व्यत्ययेन** इत्यादिना **ज्ञेयम्** इत्यन्तेन इति.

श्नु-प्रत्ययात्मनेपदे जाते इति भोगार्थकएव अयं धातुः एवमेव, **‘‘न तदश्नोति कञ्चन, न तदश्नोति कश्चन’’**(बृहदा.उप.३।८।८) इत्यत्र प्रत्ययमात्रव्यत्ययेन प्रयोगो ‘अश’धातोरेव इति ज्ञेयम्. अन्यथा सर्वव्यापकस्य ब्रह्मणः तन्निषेधो अनुपपन्नः स्यात्.

ननु सकामो अत्र उपासकः तदुपास्यञ्च सगुणं ब्रह्म, द्वयोरपि कामोपभोगश्रवणात्. **‘‘यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति’’**(बृहदा. उप.४।५।१५) इति उपक्रम्य **‘‘यत्रतु अस्य सर्वमात्मैव अभूत् तत् केन कं पश्येत्’’** (तत्रैव४।५।१५) इत्यादिना अन्यदर्शनादिनिषेधात् ब्रह्मविदः कामोपभोगासम्भवश्च इति चेत्, मा एवम्. **‘‘तदेषाभ्युक्ता’’**(तैत्ति.उप.२।१) इति वाक्येन पूर्ववाक्योक्तार्थनिरूपिका इयम् ऋगिति उक्तत्वेन प्राकृतगुणसम्बन्धस्य तत्र

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

व्यत्ययविधानात्. **एवमेव** व्यत्ययेनैव. **तद्** ब्रह्म. **कञ्चन** भोज्यमानम्. **न अश्नोति** न भुनक्ति. **तद्** भोग्यत्वेन कर्मीभूतं ब्रह्मस्वरूपम्. **कश्चन** कर्ता. **न अश्नोति** न भुनक्ति इति अर्थः. **प्रत्यये**इत्यादि. श्नाविकरणस्थाने श्नुविकरणप्रयोगेन इति अर्थः. अन्यथा ‘‘अशूङ्’ व्याप्तौ’’ इत्यस्य ‘अश्नोति’ इति प्रयोगः इति अङ्गीकारे, **तन्निषेधः ‘‘न तदश्नोति कञ्चन’’** इत्यनेन सर्वव्यापकत्वस्य ब्रह्मणि निषेधवचनम्.

ननु अत्र **‘‘सो अश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा’’** (तैत्ति.उप.२।१) इत्यत्र द्वयोरपि कामश्रवणेन सगुणत्वात् परपदार्थस्य कथं निर्गुणपरब्रह्मरूपत्वम्? इति आशङ्काम् आहुः **ननु** इत्यादिना. **यत्र** ब्रह्मप्राप्तौ सत्याम्. **अस्य** प्राप्तब्रह्मजीवस्य. कामोपेत्यादि. द्वितीयादर्शनेन भोगासम्भव इति अर्थः. समाधानम् आहुः **‘‘तदेषा...’’** इत्यादिना. तथाच **‘‘ब्रह्मविदाप्नोति परम्’’** इति उपक्रम्य ब्रह्म–तज्ज्ञान–परब्रह्म–तत्प्राप्तितद्योग्याः ये पदार्थाः उक्ताः तेषां स्वरूपं न लौकिकप्रमाणगम्यम् अन्यथा

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

प्रथमाद्विवचनम्. तथाच श्नुप्रत्ययः आत्मनेपदं च जातम् इति अर्थः. अस्मिन् अर्थे श्रुत्यन्तरं प्रमाणम् आहुः **एवमेव** इति व्यत्ययेनैव इति अर्थः. निर्विशेषं ब्रह्म न कमपि भुङ्क्ते कोपि ब्रह्म न भुङ्क्ते इति श्रुत्यर्थः. **प्रत्ययमात्रेति** श्नाविकरणस्थाने श्नुविकरणेन इति अर्थः.

कामोपभोगस्यैव फलरूपत्वे शङ्कते **ननु** इति. **यत्र** संसारदशायाम्. **अस्य** ब्रह्मज्ञानिनः. समाधानम् आहुः **मैवम्** इति. अलौकिके अर्थे गुणसम्बन्धाभावाद् साधक–ब्रह्मणोः उभयोरपि निर्गुणत्वम्. अतएव ‘तदेषाभ्युक्ता’ इत्यनेन विदितब्रह्मकैः

वक्तुम् अशक्यत्वात्. तथा सति ब्रह्मवित्प्राप्यत्वपरत्वयोः असम्भवापत्तेः. नच वेद्यस्य अगुणत्वम् उत्तरस्य सगुणत्वम् इति वाच्यम्, परत्वानुपपत्तेः. *साधनशेषभूतस्य अगुणत्वं तत्फलस्य सगुणत्वम् इति असङ्गततरञ्च. ‘‘**यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः**’’(भाग.पुरा.१०।२८।१५) इति श्रीभागवतवाक्येन गुणातीतपुंसां वैकुण्ठदर्शनाधिकारः उच्यते यत्र तत्र किमु वाच्यं तत्परदर्शने.

यच्च उक्तं ब्रह्मविदो द्वैतदर्शनानुपपत्त्या कामभोगासम्भवः इति तत्रापि उच्यते. ‘‘**यत्रतु अस्य सर्वमात्मैव अभूत्**’’ (बृहदा.उप.२।५।१५) इति श्रुतिः अखण्डब्रह्माद्वैतभाने ब्रह्मविदः प्रापञ्चिकभेदादर्शनं वदति, नतु प्रपञ्चातीतार्थदर्शनं बोधयति निषेधति वा. पुरुषोत्तमस्वरूपन्तु यावत् स्वधर्मविशिष्टं प्रपञ्चातीतमेव इति तद्दर्शनादौ किम् आयातम्. ‘‘**पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्**’’(शु.यजु.संहि.३१।२) इत्यनेन ब्रह्मात्मकत्वं प्रपञ्चस्य उक्त्वा एतदपि तस्य विभूतिरूपं पुरुषस्तु इतो महान् इति आह ‘‘**एतावान् अस्य महिमा**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

‘‘**तदेषाभ्युक्ता**’’ इत्यनेन अनुभूतपरब्रह्मकैः उक्ता ऋग् न उदातिष्ठेत्. तस्माद् उक्तानां तेषां स्वरूपं श्रुत्यैकगम्यम् इति **सत्यम्** इति ऋगुक्ता, अतो न तेषु सर्वेषु प्राकृतगुण–सम्बन्धो वक्तुं शक्यः इति अर्थः. **तथा सति** परपदार्थस्य प्राकृतत्वे सति. **वेद्यस्य** अक्षरस्य. **उत्तरस्य** परस्य. ***साधनशेषस्य** अक्षरस्य. **तत्फलस्य** अक्षरज्ञानफलस्य परस्य. असङ्गतिमेव उपपादयन्ति **यद्धि** इत्यादिना. तथाच यत्साधकानां निर्गुणत्वं तत्फलस्य सगुणत्वम् इति असङ्गतम् इति अर्थः.

निर्गुणलीलायां दोषसम्भावनाम् अनुवदन्ति **यच्च उक्तम्** इत्यादिना. समाधानम् आहुः **उच्यते** इत्यादिना. **ब्रह्मविदः** अक्षरब्रह्मविदः. **प्रपञ्चातीते**त्यादि. आधिदैविकार्थः इत्यादि. **किम् आयातम्** ‘‘**यत्र त्वस्ये**’’ति (बृह.उप.४।५।१५) श्रुत्या किं प्रतिपादितम्? इति अर्थः. **एतदपि** यद् ब्रह्मात्मकत्वं प्रपञ्चे प्रतिपादितं तद् ब्रह्मापि. **तस्य** पुरुषोत्तमस्य. **पुरुषः** पुरुषोत्तमः. **इतः** अक्षरात्. **एतावान्** प्रपञ्चविशिष्टाक्षररूपः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उक्ता इति उक्तम्. **तथा सति,** ब्रह्मज्ञानानन्तरं गुणसम्बन्धे स्वीक्रियमाणे.

द्वितीयम् अनूद्य दूषयन्ति **यच्च** इति. **तत्रापि** इति. **यावत्स्वधर्मविशिष्टम्** अलौकिक–लीलाविशिष्टम्. **किम् आयातम्** इति. न किमपि दूषणं समायातम् इति काकूक्तिः इति अर्थः. अत्र अर्थे पुरुषसूक्तं प्रमाणम् आहुः **पुरुष एवेदम्** इति.

अतोज्यायांश्च पूरुषः'' (तत्रैव ३१।३) इति श्रुतिः. अतो न किञ्चिद् अनुपपन्नम्. एवं सति ब्रह्मविदः परप्राप्तेः पूर्वदशा तत् केन इत्यादिना उच्यते, उत्तरदशातु ''**सोऽश्नुते**'' इत्यनेन उच्यते इति सर्वं सुस्थम्. छान्दोग्येऽपि ''**यत्र नान्यत् पश्यति**''(छान्दो.उप.७।२४।१) इत्यादिना भूमस्वरूपम् उक्त्वा ''**आत्मैव इदं सर्वम्**'' (तत्रैव ७।२५।२) इत्यन्तेन तद्विभावम् उक्त्वा उच्यते. ''**स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति**'' (तत्रैव

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अस्य पुरुषोत्तमस्य. **महिमा** माहात्म्यज्ञानविषयीभूतः पदार्थः. **अतः** अक्षरात्. **ज्यायान्** श्रेष्ठतमः. **पुरुषः** पुरुषोत्तमः. **अतः** पुरुषोत्तमस्य अक्षरप्रतिपादकश्रुत्यविषयत्वाद् हेतोः. **न किञ्चिद्** इत्यादि. ''यत्र त्वस्य'' इति श्रुत्यर्थस्य न कापि अनुपपत्तिः इति अर्थः. **उत्तरदशा**तु वरणोत्तरकालीना भक्ततादशा इति अर्थः. **सर्वं सुस्थम्** श्रुतिद्वयम् अविरुद्धम् इति अर्थः. अक्षरातीतपुरुषोत्तमलीलासत्त्वे सम्मत्यन्तरम् आहुः **छान्दोग्ये**त्यादिना. **छान्दोग्ये** सनत्कुमार-नारदसंवादे. **यत्र** विरहदशायाम्. **नान्यत् पश्यति** भक्तो येन विरहितः तद् अन्यं न पश्यति इति अर्थः. **भूमस्वरूपं** भक्तरतिविषयीभूतं पुरुषोत्तमस्वरूपम्, ''**आत्मैवेदं सर्वम्**'' (छान्दो.उप.७।२५।२) इत्यादिना ''प्रासादे सा दिशि दिशि सा'' इत्यादिवत्. **तद्विभावं** शृङ्गाररसनिष्पाद-कारणसमूहम्. एतदुदाहरणञ्च ''**चरणेन भुवं लिखन्ति**'' (भाग.पुरा.१०।२६।३०) इत्यत्र पञ्चाध्याय्याम् अवसेयम्. **स वा एषः** पूर्वतनरससामग्रीशाली अयं भक्तः. एतेन भक्तानां सर्वात्मभावसिद्धिः उक्ता. अग्रे ''**एवं विजानन्**''(छान्दो.उप.७।२५।२) इत्यन्तेन ''**एवं पश्यन्**''(तत्रैव) इत्यादिना अहङ्कारादेशः उक्तः. सच स्वपौरुषेण अन्वेषणादिना प्रियं प्राप्स्यामः इत्येवंरूपः. सोऽपि भावः पञ्चाध्याय्यां प्रसिद्धः. एवम् ''**आत्मरतिः आत्मक्रीड**''(तत्रैव) इत्यादिना च आत्मादेशः उक्तः. सच स्वस्य भगवत्कृत्यादि-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

प्रमाणान्तरम् आहुः **छान्दोग्येऽपि** इति. **तद्विद्भावम्.** ब्रह्मविद्भावं सर्वात्मभावम् इति यावत्. क्वचिद् 'तद्विभावम्' इति पाठः. तस्य विभावं तद्विभावम्. तस्य सर्वात्मभावस्य विभावम् उद्दीपकविभावम्, अखण्डब्रह्मभानरूपम् इति अर्थः. उक्तं च भरतसूत्रे ''**विभावानुभावसञ्चारिभावाद् अस्य निष्पत्तिः**'' ( ) इति. एतत्पञ्चाध्याय्यां सुबोधिन्यां विस्तरेण उक्तमिति अत्र उपरम्यते. अत्रापि वक्ष्यन्ति इति

७।२५।२) इति. एतच्च, ‘‘**लिङ्गभूयस्त्वात् तद्धि बलीयस्तदपि**’’ (ब्रह्मसू. ३।३।४३) इति अधिकरणे प्रपञ्चयिष्यते.

अथवा ‘‘**तदेषाभ्युक्ता**’’ इति वाक्येन पूर्ववाक्योक्तब्रह्मनिरूपिका इयम् ऋगिति उच्यते. तत्र साधनफले निरूपिते इति ऋच्यपि तएव निरूप्येते. तथाहि. आनन्दस्य फलात्मकत्वेन साधनशेषभूते ब्रह्मणि तम् अनुक्त्वा, ‘‘**यो वेद**’’ इति अन्तयर्चा ‘‘**ब्रह्मवित्**’’ इति एतावतो वाक्यस्य विवरणं क्रियते. एतेन फलाप्तौ स्वरूपयोग्यतासम्पत्तिः उक्ता. ततः उक्तरीत्या भगवद्वरणेन भक्तिलाभे गुहायाम् आविर्भूतं यत् परमं व्योमः तस्मिन् निहितः पुरुषोत्तमएव इति. तं निहितम् इति तृतीयार्थे द्वितीया. तथाच तत्र निहितेन ब्रह्मणेति अग्रे पूर्ववत्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

करणरूपः. सोऽपि भावः पञ्चाध्याय्यां भक्तेषु प्रसिद्धएव. उक्तस्य भावत्रयस्य विवरणस्थानं प्रदर्शयन्ति **एतच्च** इत्यादिना.

छान्दोग्योक्तार्थमेव द्रढयितुं वर्णकान्तरम् आहुः **अथवा** इत्यादिना. **पूर्ववाक्योक्ते**त्यादि. पूर्ववाक्यं ‘‘**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**’’ (तैत्ति.उप.२।१।१) इति. तदुक्ते ये साधनफलरूपे ब्रह्मणी तयोः निरूपिका इयम् ऋक् ‘‘**सत्यं ज्ञानम् अनन्तम्**’’ इति ऋक्. **तत्र** ‘‘**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**’’ इतिवाक्ये. **ऋच्यपि** विवरणऋच्यपि. **तएव** साधनफलएव. **तम् अनुक्त्वा** ‘‘**सत्यं ज्ञानम् अनन्तम्**’’ इति अक्षरनिरूपकभागमध्ये आनन्दम् अनुक्त्वा इति अर्थः. **एतेन** अक्षरब्रह्मवेतृत्वेन. **फलाप्तौ** आनन्दरूपपरफलप्राप्तौ. **ततः** वरणस्वरूपयोग्यतासिद्ध्यनन्तरम्. **तद्वरणेन** भगवत्कृतभक्तवरणेन. ‘‘**यो वेद**’’ इत्यन्तेन अक्षरज्ञानसम्पत्तिम् उक्त्वा ‘‘**यो वेद**’’इति भागस्य अग्रेऽपि देहलीदीपन्यायेन ‘‘**गुहायां निहितं यो वेद**’’ इति अन्वयं स्वीकृत्य फलनिरूपकभागव्याख्यानम् आहुः **गुहायाम्** इत्यादिना. **तृतीयार्थे**त्यादि. तथाच ‘‘**सक्तून् जुहोति**’’(तैत्ति.सं.३।३।८) इत्यत्र

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आहुः **एतत् च** इति. छान्दोग्यार्थम्. **अधिकरणे** लिङ्गभूयस्त्वाधिकरणे.

अथ छान्दोग्यार्थैकवाक्यतार्थं प्रथमवर्णकानुसारेण पक्षान्तरम् आहुः **अथवा** इति. **ब्रह्मणि तम् अनुक्त्वा** इति. ‘‘**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**’’ इत्यत्र ‘ब्रह्मविद्’ इत्ययं साधनभागः. तस्यैव ‘यो वेदः’ इत्यन्तं विवरणम्. फलस्य साधने प्रवेशो मा भूद् इति एतदर्थम् आनन्दांशनिवेशो न कृतः इति केवलम् अक्षरज्ञानं कारणम् इति अर्थः. भक्तेः द्वारत्वम् आहुः **ततः** इति. **उक्तरीत्या** ‘‘ब्रह्मणा सह’’ इति पूर्ववत्. एतावता प्रबन्धेन

अथ परमफलत्वात् निरवध्यानन्दात्मकत्वम् अन्तरङ्गेभ्योऽपि अन्तरङ्गत्वं स्वस्मिन् ज्ञापयितुं सर्वस्य सर्वरूपत्वेन सर्वाधिदैविकरूपत्वमपि ज्ञापयितुम् आधिभौतिकादिरूपेण आविर्भवितुं भगवान् आकाशादिरूपेण आविर्भूतो अतएव

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

होमक्रियायां सक्तूनां कर्मत्वेन अन्वये जातेऽपि शास्त्रतात्पर्यनिर्वाहाय द्वितीयायाः तृतीयार्थे लक्षणा क्रियान्ते सक्तुभिः जुहोति इति. तद्वद् अत्रापि 'निहितम्' इत्यस्य वेदनक्रियाकर्मत्वेन अन्वये जातेऽपि अग्रे 'ब्रह्मणा' इत्यनेन निहितस्य अन्वयतात्पर्यनिर्वाहाय 'निहितम्' इति द्वितीयायाः तृतीयार्थे लक्षणा ततो निहितेन इति अर्थः पर्यवस्यति. तेन तृतीयार्थे लक्षणायां वेदनक्रियायां गुहानिहितस्य कर्मत्वेन अन्वयो अनुपपन्नः इति शङ्का निरस्ता वेदितव्या.

ननु "**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**" इत्यत्र अक्षरस्वरूपं, परपदार्थस्य स्वरूपं, तस्य फलत्वञ्च निरूपितम्. उभयप्राप्तिसाधनानाञ्च निर्णयः कृतः. इतः परम् अग्रिमसन्दर्भनिरूपणे प्रयोजनाभावः तावतैव फलसाधनगोचराकांक्षाया निवृत्तेः अतः आहुः **अथ** इत्यादि. तथाच परपदार्थस्य यथाकथञ्चित् फलत्वनिरूपणेऽपि वक्ष्यमाणप्रकारेण परमानन्दस्य फलरूपता यथा हृदयारूढा भवति तथा न निरूपितमिति तथा निरूपयितुम् अयम् आरम्भइति न वैयर्थ्यशङ्कालेशः. **परमफलत्वात्** परपदार्थस्य परमफलत्वाद्, **अन्तरङ्गेभ्यः** अन्नमयादिभ्यः उत्तरोत्तरम् अन्तरङ्गेभ्यः. **अन्तरङ्गत्वम्** आनन्दमयस्य अन्तरङ्गत्वम्. **सर्वस्य** इत्यादि. "**चक्षुषश्चक्षुः श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो यं मनो विदुः**" (बृह.उप.४।४।१८) इतिरीत्या सर्वस्य सर्वरूपत्वेन इति अर्थः. **सर्वे**त्यादि. जगति प्रसिद्धानि यावन्ति भौतिकानि वस्तूनि तेषां सर्वेषां स्वस्मिन् आधिदैविकरूपत्वं ज्ञापयितुम् इति अर्थः. **आधिभौतिके**त्यादि आकाशादिरूपेण इति अर्थः. ननु अत्र कारणात् कार्याणाम् उत्पत्तिक्रमएव प्रतियते नतु कार्याणां कर्तृरूपता इत्यतः आहुः **अतएव**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ऋगर्थो निरूपितः. तावतैव फलसिद्धौ "तस्माद् वा" इत्यादिवाक्यानां प्रयोजनाभावः इति आशङ्कानिवारणार्थम्.

आकाशादीनां प्राकृतत्वशङ्कानिवारणाय विभूतिरूपत्वं वक्तुम् आधिदैविकवादं स्वीकृत्य अग्रिमग्रन्थतात्पर्यम् आहुः **अथ परमे**ति. **आनन्दात्मकत्वम्** इति. तत् स्वस्मिन् ज्ञापयितुम् इत्यनेन अन्वितम्. "**आनन्दमय आत्मा मे शुद्ध्यन्तां ज्योतिरहम्**" (महाना.उप.२०।२१) इत्यनया श्रुत्या जीवानन्दमयस्यापि आधिदैविकानन्दमयत्वं ज्ञापयितुम् इति अर्थः. **अन्तरङ्गत्वम्** इति. अन्नापेक्षया प्राणा अन्तरङ्गाः. एवं रीत्या

भवनः आकाशस्यैव कर्तृत्वम् उच्यते. अग्रे अन्नमयादीनि चत्वारि रूपाणि पूर्वं निरूपितानि उत्तरोत्तरम् अन्तरङ्गभूतानि. अन्नरसमयशरीरभूतात् प्राणमयः, तस्मात् मनोमयः, तस्मात् विज्ञानमयः.

कश्चित्तु एतानि रूपाणि विकारात्मकत्वात् प्राकृतान्येव एतेभ्योऽपि अन्तरङ्गो विमुक्ताविद्यो जीवएव आनन्दमयः उच्यते इति आह. सः प्रतिवक्तव्यः. अग्रिमप्रपाठके भृगुणा ''**अधीहि भगवो ब्रह्म**''(तैत्ति.उप.३।१)

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्यादि. **अतएवेति** एवं कर्तुः कार्याणां च उपादानोपादेयभावेन अभेदो अस्ति अतएव इति अर्थः. **आकाशस्यैव** साक्षादुपादानोपादेयभावेन अभेदस्य स्फुटत्वार्थम् आकाशस्यैव इति अर्थः. अत्र 'आकाश'पदं वाय्वादीनाम् उपलक्षणम्. एवं भौतिकानां तद्रूपत्वम् उक्त्वा आध्यात्मिकानां विभूतीरूपाणां तद्रूपत्वं वक्तुम् आहुः **अग्रे**त्यादि. उत्तरोत्तरम् अन्तरङ्गतां बोधयितुम् आहुः **अन्ने**त्यादि. **शरीरभूताद्** अन्तरङ्गभक्तानां विभूत्यात्मकशरीररूपाद् इति अर्थः. अत्र पञ्चस्वपि कोशेषु विकारार्थकप्रत्ययान्तार्थत्वम् उरीकृत्य लौकिकत्वं वदति आनन्दमयमपि जीवं तन्मतं निरसितुम् अनुवदन्ति **कश्चित्तु** इति. **कश्चित्** मायावादी. **प्राकृतानि** प्रकृतिविकारभूतानि. **विमुक्ताविद्यः** विज्ञानेन विमुक्ताविद्यः प्राप्तब्रह्मस्वरूपः. **सः** मायावादी **प्रतिवक्तव्यः** प्रत्युत्तरणीयः. प्रत्युत्तरमेव आहुः **अग्रिमे**त्यादि. **अग्रिमे** ब्रह्मप्रपाठकस्य अग्रिमे भृगुप्रपाठके इति अर्थः. **अधीहि** उपदिश

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सर्वस्य इति प्राणस्य प्राणरूपत्वे न इति अर्थः. ''**प्राणस्य प्राणम् उत चक्षुषः चक्षुः**'' (बृहदा.उप.४।४।१८) इत्यादिश्रुत्या इति शेषः. 'भगवान्' इति पदस्य सर्वतुमुन् प्रत्ययान्तेन साकम् 'आविर्भूतः' इत्यनेन अन्वयः. अतएव आविर्भावादेव भवतः आकाशस्यैवेति, उत्पत्तिमदाकाशस्य इति अर्थः. भगवदाविर्भावमहिम्ना कार्यस्यापि कारणत्वम् इति भावः. अन्तरङ्गेभ्योऽपि अन्तरङ्गत्वम् आहुः **अग्रे** इत्यादि. ''**अन्योन्तर आत्मा**'' (तैत्ति.उप.२।३) इति सर्वत्र उच्यते आनन्दमयानन्तरं न उच्यते अतो ज्ञायते परमानन्दः सएव इति. अत्र मायावादि शङ्कते **कश्चिद्** इति. एतन्मतम् अनूद्यति **विमुक्ताविद्य** इति. ब्रह्मज्ञानेन इति शेषः. **आनन्दमये**ति. मयटो विकारार्थकत्वाद् इति शेषः.

खण्डयन्ति **सः प्रतिवक्तव्यः** इति. सः प्रत्युत्तरदानार्हः करणीयः. प्रत्युत्तरमेव अग्रे वदन्तः मयडर्थसन्देहे श्रुत्यन्तराद् निर्णयम् आहुः **अग्रिमे**ति ब्रह्मप्रपाठकान्तम् इति अर्थः. **तदा** प्रश्नानन्तरम्. **अधिकारातिशये**ति. सति इति शेषः. सर्वत्र पञ्चस्वपि इति

इति पृष्टो वरुणः तदा उत्तमाधिकाराभावात् स्वयं ब्रह्मस्वरूपम् अनुक्त्वा, तपसा अधिकारातिशयक्रमेण स्वयमेव ज्ञास्यति इति तदेव साधनं सर्वत्र उपदिष्टवान्. ‘‘**तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व**’’ (तैत्ति.उप.३।२) इति. ब्रह्मातिरिक्तेन साधनेन न तज् ज्ञातुं शक्यम् इति ज्ञापनाय ‘‘**तपो ब्रह्म**’’ इति सर्वत्र उक्तवान्. तथाच तपसा साधनेन ब्रह्मत्वेन ज्ञातानि रूपाणि प्राकृतानि इति विचारकेण न वक्तुं शक्यम् इति. तर्हि पुनः ब्रह्मविषयकप्रश्नसाधनोपदेश-तत्करणपूर्वातिरिक्त-ब्रह्मज्ञानानां परम्परा न उपद्यते इति चेत्, मा एवम्. भगवतो हि विभूतिरूपाणि अनन्तानि. तत्र येन रूपेण यत् कार्यं करोति तेन रूपेण समर्थोऽपि तदतिरिक्तं न करोति. तथैव तल्लीला यतः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इति अर्थः. **तदा** प्रश्नदशायाम्. **तदेव** तपोरूपमेव. **सर्वत्र** ‘‘अधीहि भगवो ब्रह्म’’ इति पञ्चस्वपि प्रश्नेषु. उपदेशम् आहुः **तपसा** इति. **तद्** ब्रह्मस्वरूपम्. **तर्हि** अविकृत-ब्रह्मरूपस्य अन्नमयात्यन्यतरस्य साधनेन प्राप्तौ. **तत्करणे**ति तपःकरणम् इति अर्थः. **समर्थोऽपि** वामनरूपेणैव एकरूपेण सर्वकार्यकरणसमर्थोऽपि इति अर्थः. **तदतिरिक्तं** जलकार्यातिरिक्तं वह्निकार्यं जलेन न करोति. एवं वह्निकार्यातिरिक्तं जलकार्यं वह्निना न करोति इति अर्थः. **एवम्** अन्यत्रापि ऊह्यम्. **तथैव** स्वस्य बहुभवनपूर्वकाले ‘‘अस्मिन् अधिकारिणि अनेन साधनेन इदं कार्यं करिष्ये’’ इति विचारितम् अस्ति तथैव इति अर्थः. **यतः** इति एकरूपेणैव उच्चनीचनानाविधलीलाकरणे ‘‘**सो अकामयत बहु स्यां प्रजायेय**’’ (तैत्ति.उप.२।६), ‘‘**तस्माद् एकाकी न रमते...स हैतावानास**’’(बृह.उप. १।४।३) इत्यादिषु उच्चनीचभावेन नानाविधभवनम् अनुपपन्नं स्याद् यतो अतः इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अर्थः. उपदेशस्वरूपम् आहुः **तपसा ब्रह्म** इति. **तद्** ब्रह्म. ननु मयटो विकारार्थकत्वेन प्राकृतानि स्युः इत्यतः आहुः **तथाच** इति. **न वक्तुं शक्यम्** इति. तथा सति ब्रह्मत्वेन ज्ञानं न स्याद् इति भावः. ननु ब्रह्मत्वेन एकवारं ज्ञानं जातं चेद् पुनः ब्रह्मविषयकप्रश्नो न उपपद्यते इति आशयेन शङ्कते **तर्हि** इति. **पूर्वातिरिक्ते**ति. अन्नातिरिक्तः प्राणः इति अर्थः. समाधानम् आहुः **मैवम्** इति. **न करोति** इति. वह्निकार्यं जलेन न करोति इति अर्थः. **तथैव तल्लीला यतः** इति. यतः कारणाद्, भगवल्लीला तथैव इति अर्थः. तथाच यथा लौकिकः कश्चित्पुरुषः ‘‘एवं रीत्या अहं करिष्यामि’’ इति निश्चयं कृत्वा तदनन्तरं किञ्चित् कार्यं करोति तथा भगवतापि विचारं कृत्वा उच्चनीचभाव-

तथाच अन्नमयादिरूपैः क्षुद्राण्येव फलानि ददाति. हीनाधिकारिणां तावतैव आकाङ्क्षानिवृत्तिः भवति. एवं सति यादृशेन अधिकारेण अन्नमयस्वरूपज्ञानं भवति तादृशे तस्मिन् सम्पन्ने तज् ज्ञानमपि तथा. एवमेव उत्तरत्रापि. तथाच आकाशादिरूपम् आधिभौतिकस्वरूपम् उक्त्वा आध्यात्मिकं तत् पुरुष-

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्थञ्च सृष्टनानारूपाणां मध्ये येन रूपेण यत्फलं दातुं स्वयं विचारितम् अस्ति तन्मर्यादारक्षायै स्वयं सर्वदा समर्थेभ्योऽपि रूपेभ्यः स्वविचारितमेव फलं ददाति न अनियतम् इति अर्थः. तदेव उपपादयन्ति **तथाच** इत्यादिना. **क्षुद्राण्येव** अन्नादिप्राप्तिरूपाण्येव. **ददाति** उपासकाय भगवान् ददाति इति अर्थः. ननु तेषां रूपाणां क्षुद्रफलदाननिश्चये तेषाम् उपासनां कः करिष्यति? इत्यतः आहुः **हीने**त्यादि. **तावतैव** क्षुद्रफललाभेनैव. **एवं सति** चित्तशुद्धिरूपाधिकारतारतम्येन ज्ञान-फलयोः तारतम्ये सति. **तादृशे** तत्तज्ज्ञानसम्पादके. **तस्मिन्** अधिकारे. **तज्ज्ञानं** अन्नमयादिरूपब्रह्मज्ञानम्. **तथा** अधिकारानुरूपम्. **एवम्** इत्यादि. तथाच एकैकोपासनया यथा चित्तशुद्धिः तथा उत्तरोत्तरप्रश्नोपदेशोपासनज्ञानफलानि आनन्दमयोपसंक्रमान्तानि मर्यादामार्गे बोध्यानि इति फलितम्. **उक्त्वा "तस्माद् वा एतस्माद्"** (तैत्ति.उप.२।२) इत्यादिना उक्त्वा. **तत्**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सृष्टिरूपलीला कृता इति भावः.

ननु भगवता कथं विचारितम्? इत्यतः आहुः **तथाच** इति. **अन्नमयादिरूपैः** इति. 'आदि'ना प्राणमयादिपरिग्रहः. तथाच "ब्रह्मत्वे न अन्नोपासकस्य अन्नप्राप्तिरूपं क्षुद्रं फलम् अन्नमयादिरूपेण अहं ददामि" इति निश्चयस्य सृष्टेः पूर्वं कृतत्वाद् इति भावः. ननु कथं भगवतः क्षुद्रफलदत्वम् अतः आहुः **हीनाधिकारिणाम्** इति. तथाच सृष्टौ एकरूपकरणेन लीलासम्पत्तिः न भवति इति कृत्वा उच्चनीचभावो अपेक्षितः. सच अधिकारिसाधनाधीनः इति तथैव फलदत्वेन लीलासम्पत्तिः इति भावः. एतदेव आहुः **एवं सति** इति. तारतम्येन फलदत्वे सति इति अर्थः. यादृशाधिकारेण उपासनारूपाधिकारेण तथा, उक्तफलदम् इति अर्थः. युक्तफलदम् इति भावः. प्राणमयादिष्वपि इति अर्थः.

एतावता विभूतीनां ज्ञानं, फलञ्च उक्त्वा इतः परम् आनन्दमयस्य आधिदैविकत्वं वक्तुं भूमिकाम् आहुः **तथाच** इति. **उक्त्वा** इति ब्रह्मप्रपाठके **"तस्माद्वा"** इत्यारभ्य **"अन्नात् पुरुषः"** (तैत्ति.उप.२।१) इत्यन्तेन उक्त्वा इति

स्वरूपं वदन्ती पक्षिरूपम् आह. यतः तेनैव रूपेण आधिभौतिके रूपे आध्यात्मिकस्य पुरुषस्य प्रवेशः. तदुक्तं वाजसनेयिशाखायाम् **‘‘पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः, पुरः स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुष आविशत्’’**(बृहदा.उप.२।५।१८) इति. वस्तुतस्तु पुरुषएव. परन्तु पुरःसम्बन्धी सन् पक्षी भूत्वा पुरः शरीराणि आविशद् इति अर्थः. प्राकृतीषु विविधासु पूर्ष्वप्राकृतस्य एकविधस्य प्रवेशो अनुचितो यद्यपि तथापि स्वप्रवेशं विना न किञ्चिद्भावीति गतिप्रतिबन्धकम्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पुरुषस्वरूपम् आध्यात्मिकाक्षरपुरुषरूपम् अन्नमयादिचतुष्कम्. **तेनैव** पक्षिरूपेणैव. **तदुक्तं** भौतिकद्विपदचतुष्पदादिषु पक्षिरूपस्य प्रवेशनम् उक्तम्. **पुरुषएव** इति. तथाच वस्तुगत्या द्विपदादिपूर्षु आध्यात्मिकः पुरुषएव प्रविशति तथापि शाखान्तरे तस्य पक्षिरूपेण प्रवेशनम् उक्तमिति तथैव सिद्धान्तितम्. **विविधासु** द्विपदचतुष्पदादिषु रूपासु. ननु अप्राकृतस्य सदैकरसस्य ब्रह्मणः प्राकृतशरीरेषु प्रवेशो असम्भवी निष्प्रयोजनश्च इति आशङ्कते **प्राकृतीषु** इत्यादिना. समाधानम् आहुः **तथापि** इत्यादिना. **न किञ्चित्** तेन शरीरेण भगवद्विचारितं कर्तव्यं न किञ्चिद् इति अर्थः. **गतिप्रतिबन्धके**त्यादि. गतिः क्रिया

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अर्थः. तेषाम् अन्नमयादीनां पुरुषरूपम्. ***वदति** इति श्रुतिः इति शेषः. **‘‘स वा एष पुरुषो अन्नरसमयः’’** (तैत्ति.उप.२।१।१) इति वाक्येन वदति इति श्रुतिः इति अर्थः. **पक्षिरूपम्** इति ‘‘**तस्य इदमेव शिरः**’’ (तैत्ति.उप.२।१) इत्यादिवाक्यपञ्चकेन पक्षिरूपम् आह इति अर्थः. ननु आध्यात्मिकपुरुषस्य प्रत्यक्षविषयत्वं नास्ति ‘‘**तस्य इदमेव शिरः**’’ (तैत्ति.उप.२।१) इत्यत्र ‘इदं’ शब्देन तु प्रत्यक्षविषयीभूतपक्षी बोध्यते, तेन कृत्वा किं ज्ञायते भौतिकशरीरस्यैव पक्षिरूपत्वं श्रुत्या आरोप्यते अतः आहुः **यतः** इति. **तेनैव रूपेण** इति पक्षिरूपेणैव इति अर्थः. तथा च प्रवेशार्थं पक्षिरूपं तावता आध्यात्मिकपुरुषापेक्षया भिन्नं न भवति इति भावः. अस्मिन् अर्थे सम्मतिम् आहुः **तदुक्तम्** इति. **पुरश्चक्रे**ति द्विपदादिभौतिकशरीरं चक्रे इति अर्थः. वस्तुतस्तु पुरुषएव इति, नतु पक्षी इति अर्थः. ननु भौतिकशरीरस्य प्राकृतत्वाद् विकाररहितस्य प्रवेशो अनुचितः इति आशयेन शङ्कते **प्राकृतीषु** इति. विविधाषु पूर्षु द्विपदादिशरीरेषु. अथ **प्राकृतस्य** विकारशून्यस्य. **एकविधस्य** इति. अन्नमयशरीरे अन्नमयः, प्राणमयशरीरे प्राणमयः इति एकाकारस्य इति अर्थः. समाधानम् आहुः **तथापि** इति. **गतिप्रतिबन्धकम्** इति. भौतिकशरीरसमानाकारं द्विपदत्वं चतुष्पदत्वं यत् सर्वत्र गतौ प्रतिबन्धकं

उल्लङ्घ्य अलौकिकया गत्या प्रविशामि इति ज्ञापनाय पक्षिभवनम्. सः हि तादृशः. अतएव द्विपदः चतुष्पदः इति उक्तम्. आधिदैविकः एकएव इति **“यः पूर्वस्य”** (तैत्ति.उप.२।३) इति सर्वत्र उक्तम्.

ननु आनन्दमयेऽपि एवम् उक्तेः न अयमपि परमकाष्ठापन्नरूपः, किन्तु

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तस्याः प्रतिबन्धकं व्यापकत्वं, तदुल्लङ्घ्य पुरुषरूपो भूत्वा इति अर्थः. ननु मूर्तत्वम् अङ्गीकृत्य पुरुषत्वाङ्गीकारे पुरुषरूपएव सर्वशरीरेषु कुतो न प्रविशति? इत्यतः आह **अलौकिके**त्यादि. तथाच पुरुषरूपेण शरीरे प्रवेशे पुरुषाधिकारिकविहितनिषिद्ध–निखिलपदार्थानां स्वस्यापि पालनीयतापत्तेः तत्फलभोगापत्तेश्च, तेषाम् अनादरेतु वैदिकमर्यादोच्छेदः इत्यतः अलौकिकविधिनिषेधानर्हपक्षिरूपेण प्रवेशनम् इति फलितम्. **स हि** पुरुषो हि. **तादृशः** सर्वोचितसर्वकार्यकरणसमर्थः. **अतएव** विचित्रसामर्थ्यादेव. **इति उक्तं** द्विपद–चतुष्पदकरणम् उक्तम् इति अर्थः. ननु एवम् अधिभूताध्यात्मिकयोः उक्तौ आधिदैविकः कुतो न उक्तः? इत्यतः आहुः **आधिदैविकः एकएव** इत्यादि. आनन्दमयः आधिदैविकः एकएव उक्तः इति अर्थः. ननु आध्यात्मिकपक्षिरूपस्य प्रतिजीवं भिन्नत्वेन नानात्ववद् आनन्दमयस्यापि नानात्वं कुतो न स्यात्? कथम् एकएव इति उक्तम्? इत्यत्र एकत्वे नियामकम् आहुः **यः पूर्वस्य** इत्यादि. **सर्वत्र** पञ्चस्वपि स्थानेषु इति अर्थः. तथाच आनन्दमयस्य परमकाष्ठापन्नब्रह्मत्वेन तद्भेदे अद्वैतश्रुतीनां सर्वासां विरोधः स्याद् अतएव एकत्वं तस्य पञ्चस्वपि श्रुतिः बोधयति **यः पूर्वस्य** इति.

एवं विषयवाक्यार्थोक्तौ यः पूर्वः पक्षः उत्तिष्ठति अधिकरणम् आरचयितुं तम् आहुः **ननु** इत्यादि. **एवम् उक्तेः “तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य”** (तैत्ति.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तम् **उल्लङ्घ्य** इति अर्थः. **अलौकिके**ति यत्र द्विपदां चतुष्पदामपि गमनं नास्ति, तत्रापि पक्षिणां गमनम् अस्ति इति सूचयितुम् अलौकिकत्वं गतौ ज्ञेयम् इति अर्थः. अतएव आहुः **स हि** इति. सः पक्षी, तादृशः द्वारं विनापि सर्वत्र इष्टदेशे प्रवेष्टुं समर्थः. **अतएव** इति अलौकिकगत्या प्रवेष्टुम् असमर्थत्वादेव अद्विपदत्वादिकं पुरां विशेषणात् प्रतिबन्धकत्वं ज्ञायते इति भावः. ननु आधिदैविकविचारः कुतो न कृतः इत्यतः आहुः **आधिदैविकः** इति. आनन्दमयः इति अर्थः. ननु एकएव सर्वत्रेति कुतो ज्ञायते इत्यतः आहुः **यः** इति. तथाच आनन्दमये अयमेव विशेषः इति श्रुत्या ज्ञायते इति भावः.

अथ एवं विषयवाक्यार्थकथनानन्तरम् अस्मिन् अधिकरणे पूर्वपक्षम् आहुः **ननु**

पूर्वोक्तेभ्यो अतिशयितधर्मवान् विभूतिरूपएव. नच शिर आदीनाम् आनन्दरूपत्वेनैव उक्तेः अयं परमात्मैव इति वाच्यम्. अन्नमये यथा अवयवानां तद्रूपत्वं तथा आनन्दमयेऽपि तेषां तद्रूपत्वाद् अन्यथा ‘‘**तस्य एषएव शारीर आत्मा**’’ इति न वदेत्. शरीरं हि पूर्वोक्तं, तत्सम्बन्धी हि शारीरः तद्भिन्नः प्रतीयते. तथाच परब्रह्मत्वं स्वान्यात्मवत्त्वञ्च सर्वश्रुतिविरुद्धम्.

ननु एतद् अतिरिक्तं चेद् ब्रह्म स्यात् तदा ‘‘**आनन्दमयाद् अन्योऽन्तर आत्मा ब्रह्म**’’ इत्यपि वदेत्. नतु एवम् अतो अयं परएव इति चेत्, न, आध्यात्मिकरूपाणामेव अत्र निरूपणात्, तेषां च पञ्चरूपत्वात् तावतामेव निरूपणम् अतो अस्माद् अन्यएव परः इति प्राप्ते प्रतिवदति ‘‘**आनन्दमयो**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उप.२।६।२) इत्युक्तेः इति अर्थः. **पूर्वोक्तेभ्यः** अन्नमयादितुल्यएव नतु आधिदैविकः परमकाष्ठापन्नवस्तुरूपः इति अर्थः. **शिरआदीनाम्** इति. तथाच दक्षिणोत्तरपक्षात्मशिरःप्रभृति सर्वावयवानाम् आनन्दरूपत्वेन एकरसत्वात् परमात्मैव इति अर्थः. **तद्रूपत्वम्** निखिलान्नमयावयवानामपि शिरःपाण्यादीनां **तद्रूपत्वम्** अन्नमात्ररूपत्वम्. **अन्यथा** आनन्दमयस्य परमात्मत्वे **न वदेद्** अन्नमयादितुल्यतया न वदेद् इति अर्थः. **पूर्वोक्तम्** आनन्दमयरूपम्. **तत्सम्बन्धी** आनन्दमयशरीरसम्बन्धी. **तद्भिन्नः** आनन्दमयापेक्षया आत्मा भिन्नः इति अर्थः. **सर्वश्रुतिविरुद्धं** परब्रह्मणि स्वान्यात्मत्वाभावात् सर्वश्रुतिविरुद्धम् इति अर्थः.

सिद्धान्ती शङ्कते **ननु** इति. **नतु एवम्** नतु एवम् उक्तम् इति अर्थः. **अत्र** कोशनिरूपणप्रस्तावे **पञ्चरूपत्वाद्** इति तेषां चतूरूपत्वेऽपि तत्प्रायपाठाद्, आनन्दमयस्यापि तद्रूपतया तेषु गणनात् पञ्चरूपत्वोक्तिः इति भावः. **अस्माद्** आनन्दमयात्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति. **एवम् उक्तेः** इति ‘‘यः पूर्वस्य’’ इति उक्तेः इति अर्थः. **आनन्दमयेऽपि** विभूतिरूपे आनन्दमयोऽपि. अन्यथा विभूतिरूपत्वास्वीकारे. **तद्भिन्नः** विभूतिरूपापेक्षया भिन्नः. **श्रुतिविरुद्धम्** इति आनन्दमयकोशे ब्रह्मत्वं स्वीक्रियते चेत् तदन्ये आत्मत्वं न स्वीकर्त्तव्यं तत् च श्रुतौ स्वीकृतम् इति विरुद्धम् इति अर्थः.

सिद्धान्ताशयम् अनूद्य खण्डयन्ति **ननु** इत्यादिना **अन्यएव परः** इत्यन्तेन. तथाच पञ्चसु गणनया परब्रह्मत्वं न स्वीकर्त्तव्यम् इति भावः. सूत्रकारः समाधत्ते ‘‘**आनन्दमयो अभ्यासात्**’’. **तस्य** प्राणमयस्य. **एषएव** आनन्दमयएव. **पूर्वस्य**

अभ्यासात्''. आनन्दमयशब्दवाच्यः परएव. कुतः? अभ्यासात्. **''तस्यैषएव शारीर आत्मा. यः पूर्वस्य''**(तैत्ति.उप.२।५) इति अन्नमयादिषु सर्वत्रैव आत्मत्वेन आनन्दमयस्यैव कथनात्.

ननु न किञ्चिद् मानम् अत्र पश्यामः. किञ्च, आनन्दमयस्यैव सर्वत्र आत्मत्वेन कथने आनन्दमयेऽपि **''तस्यैष एव''** इत्यादि न वदेद् **''अयमेव पूर्वस्य आत्मा''** इति वदेद् अतो न आनन्दमयः परः इति चेत्, उच्यते. न हि ईश्वराद् अन्यः सर्वेषाम् एकः आत्मा भवितुम् अर्हति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

प्रतिवदति सूत्रकारः समाधत्ते **आनन्दमयः** इत्यादिना. **तस्य** इत्यादि. **तस्य** प्राणमयस्य. **एषएव** परएव. **पूर्वस्य** अन्नमयस्य. **सर्वत्र** प्राणमयादिषु. अन्नमयेतु ''यः पूर्वस्य'' इत्यनेनैव प्राणमयाद् अन्नमयस्य पूर्वत्वात् परात्मत्वं बुद्धं नतु तत्रापि ''तस्यैष एव'' इत्यपि युक्तम् इति बोध्यम्.

अत्र आनन्दमयस्य सर्वात्मत्वे, **न वदेद्** आनन्दमयाद् अतिरिक्तम् आत्मानं न वदेत्. परस्मिन् स्वातिरिक्तात्मनो अभावाद् इति अर्थः. **अयमेव** आनन्दमयएव. **पूर्वस्य** अन्नमयादिचतुष्कस्य. **अतः** एवम् उक्त्यभावात्. **उच्यते** आनन्दमयस्य परब्रह्मत्वं प्रतिपाद्यते इति अर्थः. ननु ''तस्यैष एव'' इत्यनेन सर्वेषाम् आत्मैव उक्तो नतु आनन्दमयः आत्मा इति. तथाच अक्षरमेव सर्वेषाम् आत्मा स्याद् नतु आनन्दमयः इत्यतः आहुः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अन्नमयस्य. एतत्तत्त्वं गुणोपसंहारपादे विवेचयिष्यते.

शङ्कते **ननु** इति. **अत्र** इति. ''तस्यैष एव'' इति वाक्ये 'आत्म'पदेन आनन्दमयएव धर्तव्यः इत्यत्र बाधकमपि आहुः **किञ्च** इति. समाधानम् आहुः **उच्यते** इति. पूर्वपक्षिणा न किञ्चिद् मानम् इति उक्तं तद् दूषयन्ति **न हि** इत्यादि **मन्तव्यम्** इत्यन्तेन. अयम् आशयः : श्रुतौ प्राणमयएव उक्तम् ''यः पूर्वस्य'' इति, तत्र अन्नमये यः आत्मा वर्तते सः एषः सर्वत्र मन्तव्यः इति समायातम्. ननु अन्नमये अन्तरात्मा ईश्वरएव इति कथं बोद्धव्यम् इति चेद्, न, एतत्पूर्ववाक्यैः तावद् 'पर'शब्दविवरणं कृत्वा ''तस्माद्वा एतस्माद्'' इत्यादिवाक्येन परस्यैव सृष्टिकर्तृत्वम् उक्तम्, अनन्तरं च अन्नमयनिरूपणानन्तरं प्राणमयनिरूपणावसरे ''यः पूर्वस्य'' इति उक्तम्, तेन कृत्वा किं ज्ञायते जगत्कर्ता परः ईश्वरएव पूर्वोपक्रान्तः अन्नमयस्य अन्तरात्मा इति बोद्धव्यम् इति. ननु भवतु अन्तरात्मा एकः सर्वेषां सच आनन्दमयः इत्यत्र

तस्य आनन्दरूपत्वन्तु **''एतस्यैव आनन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्राम् उपजीवन्ति''**(बृहद.उप.४।३।३२) इति. **''रसो वै सः. रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दीभवति. कोह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्. एष ह्येवानन्दयाति''**(तैत्ति.उप.२।७) इत्यादिश्रुतिभिः निर्णीयते. एवं सति तदेकवाक्यतायै प्रकृतोऽपि 'आनन्दमय'शब्दः तद्वाच्येव इति मन्तव्यम्. अन्यथा ''आनन्दमयाद् अन्योऽन्तर आत्मा'' इत्यपि वदेत्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तस्य इत्यादिः. **तस्य** सर्वात्मत्वेन उक्तस्य. तथाच अन्नमयादिचतुर्णाम् आध्यात्मिकत्वेन अक्षररूपत्वाद् अक्षरात्मत्वं च न अक्षरस्य किन्तु परएव अक्षरस्य आत्मा इति तस्य परमात्मत्वं सिद्धम्. ननु तस्य परमात्मत्वं सिध्यताम्, आनन्दरूपतायां किं गमकम्? अतः आहु **आनन्दत्वन्तु** इत्यादि. **एतस्यैव** परमात्माभिन्नस्यैव. **अन्यानि भूतानि** अस्मदादिब्रह्मान्तानि. **मात्राम्** एकम् अंशम्. **अयं** परममुक्त्यधिकारी. **अन्यात्** चेष्टेत. **प्राण्यात्** श्वासोच्छ्वासं कुर्याद्. अत्र **'आकाश'**पदं व्यापकपरब्रह्मत्वार्थम्. **एषः** परमात्मा. **निर्णीयते** परमात्मनः आनन्दरूपत्वं निर्णीयते. **तस्य आनन्दे**त्यारभ्य निरूपणस्य प्रयोजनम् आहुः **एवं सति** इत्यादि. तदेकवाक्यतायै ''**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**''(तैत्ति.उप.२।१।१) इति उपक्रमे परस्य उपक्रान्तत्वाद्, मध्ये च ''**सोऽश्नुते**'' इत्यनेन परस्यैव निरूपणाद्, अन्ते च ''**एतम् आनन्दमयम् आत्मानम् उपसंक्रामति**'' (तैत्ति.उप.३।१०।५) इति उपसंहाराद् उपक्रमबलीयस्त्वेन 'आनन्दमय'शब्दस्य परपदार्थेन एकवाक्यताबोधाय इति अर्थः. **प्रकृतोऽपि** एतत्प्रकरणपठितोऽपि. **तद्वाच्येव** परवाच्येव इति अर्थः. **अन्यथा** आनन्दमयस्य परमात्मत्वाभावे. **इत्यपि वदेत्** तथाच यथा अन्नमयादिनिरूपणानन्तरं ''**तस्माद् अन्योऽन्तर आत्मा प्राणमयः**'' (तैत्ति.उप.२।२) एवं विज्ञानमयपर्यन्तं निरूप्य अग्रे आनन्दमयनिरूपणोत्तरं तथा न उक्तम् इति ज्ञायते, ततः परः कोऽपि न अस्ति इति.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

किं प्रमाणम् अतः आहुः **तस्य** इति. **तद्वाच्येव** इति. परब्रह्मवाचकत्वास्वीकारे. (वाचकत्वस्वीकारे-?). अत्र शङ्कते **ननु** इति. समाधानम् आहुः **उक्तरीत्या** इति. तथाच सर्वान्तरत्वम् आधिदैविकस्यैव इति भावः. अत्र उपष्टम्भकम् आहुः **अतएव** इति. **भार्गव्याम्** इति. अग्रिमाध्याये ''**भृगुर्वैवारुणिः**'' (तैत्ति.उप.३।१) इत्यत्र.

ननु ''**आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानाद्**'' (तैत्ति.उप.३।६) इत्यत्र भृगोः

ननु उक्तम् आध्यात्मिकानामेव अत्र निरूपणाद् इत्यादिः इति चेद्, न. उक्तरीत्या आधिदैविकस्यैव अन्ते निरूपणात्. अतएव भार्गव्यां विद्यायामपि भृगोः अन्नमयादिज्ञानानन्तरमपि पुनः ब्रह्मजिज्ञासा उक्ता, नतु आनन्दमयज्ञाने. न हि भृगोः आध्यात्मिकज्ञानार्थं प्रवृत्तिः, किन्तु ब्रह्मज्ञानार्थमेव, **''अधीहि भगवो ब्रह्म''** (तैत्ति.उप.३।१) इति प्रश्नवचनात्.

किञ्च, **''ब्रह्मविदाप्नोति परम्''** (तैत्ति.उप.२।१) इति उपक्रमाद् अन्ते ज्ञेयानन्दगणनाम् उक्त्वा, **''स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये. स एकः''** (तैत्ति.उप.२।८) इति वाक्यैः ब्रह्मविदि पुरुष आदित्ये च तदेव अक्षरं ब्रह्म प्रतिष्ठितम् इति तदानन्दोऽपि तथैव इति तयोः आनन्दयोः ऐक्यम्. एवं रूपं ब्रह्म इति यो वेदः तस्य क्रमेण अन्नमयादिप्राप्तिम् उक्त्वा अन्ते वदति **''एतम् आनन्दमयम् आत्मानम् उपसङ्क्रामति''**(तैत्ति.उप.२।८) इति. एवं सति

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

वादी शङ्कते **ननु** इति. **अत्र** कोशनिरूपणप्रसङ्गे. तथाच आनन्दमयस्यापि तन्मध्यपाठाद् आध्यात्मिकत्वम् इति भावः. **उक्तरीत्या** परपदार्थैकवाक्यतया आनन्दमयस्यापि परत्वम् इति उक्तरीत्या इति अर्थः. **अन्ते** ब्रह्मप्रपाठकान्ते. **निरूपणाद् ''एतम् आनन्दमयम् आत्मानम् उपसंक्रामति''** (तैत्ति.उप.२।८) इत्यनेन निरूपणाद् इति अर्थः. **अतएव** आनन्दमयस्य परब्रह्मत्वादेव. **अन्नमयः** इत्यादि. अन्नमयादिविज्ञानमयान्तानां ज्ञानानन्तरमपि इति अर्थः. आनन्दमयस्य परत्वे साधकान्तरम् आहुः **किञ्च** इत्यादि. **तदानन्दः** अक्षरानन्दः. **तथैव** पूर्वोक्तानन्दगणनायां गणितत्वेन उक्तरूपएव. **तयोः** पुरुषादित्यस्थितयोः. **एवं रूपं** पूर्वोक्तस्वरूपं **ब्रह्म** अक्षरं ब्रह्मणएव भवितव्यत्वाद् इति अर्थः. **उक्तेः** सकलसाधनसम्पत्त्युत्तरं प्रपाठकान्ते **''एतम् आनन्दमयम् आत्मानम्**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आनन्दमयवाक्य-श्रवणानन्तरम् आनन्दरूपब्रह्मज्ञानं जातम् इति कृत्वा पुनः जिज्ञासा न कृता. अत्रतु मयट्प्रत्ययान्तं वाक्यं तद्बोध्यम्. आनन्दमयन्तु ब्रह्म न भवति, तस्य विभूतिरूपत्वाद् अतः ब्रह्मप्रपाठके साधकान्तरम् आहुः **किञ्च** इत्यादि **परः** इत्यन्तेन. **ज्ञेयानन्दे**ति. **''ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः, स एको ब्रह्मणः आनन्दः''** (तैत्ति.उप.२।८) इतिवाक्येन गणनाम् उक्त्वा इति अर्थः. **यो वेद** इति. **''स एकः, स य एवं विद्''**(तैत्ति.उप.२।८) इति वाक्याद् वेद इति अर्थः. **उपसङ्क्राम**ति इति**''अस्माद् लोकात् प्रेत्य, एतम् अन्नम्''** (तैत्ति.उप.२।८) इत्यारभ्य **''एतम् आनन्दमयः''** (तत्रैव)

उपक्रमे परप्राप्तेः फलत्वेन उक्तेः उपसंहारेऽपि तथैव भवितव्यत्वाद् आनन्दमयप्राप्तेरेव अन्ते फलत्वेन उक्तेः तदुत्तरम् अन्यस्य अनुक्तेः आनन्दमयएव परः.

ननु उपसङ्क्रमणं हि अतिक्रमणम् अतो न तथा इति चेत्, हन्तैवम् अतिक्रान्तशब्दार्थाः त्वन्मतिः भाति. यतः ‘सङ्क्रमण’शब्दः प्राप्त्यर्थकः सर्वत्र श्रूयते. अतएव रवेः मकरादिराशिप्राप्तौ तत्तत्सङ्क्रमणम् इति उच्यते. न च इयं न परममुक्तिः, ‘‘**अस्माद् लोकात् प्रेत्य**’’ इति पूर्वम् उक्तेः. अतएव पुरुषोत्तमानन्दानुभवे सति अनुभवैकगम्यो अयम् आनन्दो न मनोवाग्विषयः इति ज्ञात्वा

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उपसंक्रामति’’ इति उक्तेः **परः** परं ब्रह्म इति अर्थः.

अनभिज्ञः आशङ्कते **ननु** इति. **अतिक्रमणम्** इति. यथाच अन्ते आनन्दमयम् अतिक्रम्य परब्रह्म प्राप्नोति इति अर्थो भवति. **अतः** अतिक्रमणरूपार्थकरणात्. **न तथा** आनन्दमयो न परं ब्रह्म. **हन्त** इति. **मतिः** खेदरूपा. तत्र हेतुः **यतः** इत्यादि. **उच्यते** ‘‘**कार्मुकं तु परित्यज्य झषं सङ्क्रमते रविः**’’ (   ) इति स्मृतौ प्राप्त्यर्थकः उच्यते इति अर्थः. **इयम्** आनन्दमयप्राप्तिः. समाधानम् आहुः **अस्माद्** इत्यादि. तथाच संसारोत्तरणानन्तरम् आनन्दमयप्राप्तेः उक्तत्वात् सा परममुक्तिरेव इति फलितम्. आनन्दमयप्राप्तेः परममुक्तित्वे उपष्टम्भकम् आहुः **अतएव** इत्यादि. **अनुभवैकगम्यः** भगवत्कृत-वरणादिसामग्रीतो अनुभवैकगम्यः. **अयम्** ‘आनन्दमय’पदवाच्यः. **न मनः**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इत्यादिना वाक्योक्तम् उपसङ्क्रमणं विहितम् इति अर्थः. **उपक्रमे.** ‘‘**ब्रह्मणा विपश्चिता**’’ (तैत्ति.उप.२।१) इति वाक्येन इति शेषः. **तदुत्तरम्** इति. आनन्दमय-वाक्योत्तरम् इति अर्थः.

शङ्कते **ननु** इति. आनन्दमयस्य अतिक्रमणेन तस्य फलरूपत्वं नास्ति इति पूर्वपक्ष्याशयः. समाधानम् आहुः **हन्तैवम्** इति. हन्त इति खेदे. वास्तविको यः शब्दस्य अर्थः सः त्वदीयबुद्ध्या अतिक्रान्तः त्यक्तः. एतादृशी ‘अतिक्रान्त’शब्दार्था त्वन्मतिः भाति इति अर्थः. तथाच शब्दार्थपरिज्ञानमेव तव नास्ति इति खेदः इति भावः. कथम् इदं ज्ञायते त्वया? इत्यतः आहुः **यतः** इति. ‘‘कार्मुकं तु परित्यज्य झषं सङ्क्रमते रविः’’ इत्यादिषु श्रूयते इति अर्थः. ननु यदि ‘सङ्क्रमण’शब्दः प्राप्त्यर्थकः तदा भेद आगतः तथाच जीवन्मुक्तिः इति आशयेन शङ्कते **नच** इति. उत्तरयन्ति **अस्माद्** इति. अत्र उपष्टम्भकम् आहुः **अतएव** इति.

लोकवेदकालादिभ्योऽपि न बिभेति इति ‘‘**यतो वाच**’’(तैत्ति.उप.२।४) इति श्लोकेन उक्तवती. अन्यथा आनन्दे मनसोऽपि अगम्यत्वम् उक्त्वा, ‘विद्वान्’ इति कथं वदेत्? एवं सति ‘‘**सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता**’’ (तैति.उप.२।१) इति ऋचि यत् फलम् उक्तं तदेव अन्ते विवृतम् इति ज्ञायते. अन्यथा ‘‘**अस्माद् लोकात् प्रेत्य**’’ इति उक्तत्वाद् देहाभावेन भयानुपस्थित्या तन्निषेधासम्भवः कामभोगासम्भवश्च. अतएव सामानाधिकरण्यम् अनुक्त्वा,

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्यादि. स्वसामर्थ्येन न मनोवाग्विषयः इति अर्थः. **उक्तवती** ‘‘**आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन**’’ (तैत्ति.उप.२।९) इतिभागेन उक्तवती इति अर्थः. **अन्यथा** स्वसामर्थ्येन मनोवागविषयत्वं भगवद्दत्तसामर्थ्येन च मनोवागादिविषयत्वम् इति अर्थानङ्गीकारे, **कथं वदेद्** इति उपलक्षणं तेन ‘‘**कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानम् ऐक्षत्**’’ (कठोप.२।१।१) इत्यपि अनुपपन्नं स्याद् इति बोध्यम्. **तदेव** ऋगुक्तमेव **अन्ते** प्रपाठकान्ते **विवृतं** ‘‘**यतो वाचो निवर्तन्ते**’’(तैत्ति.उप.२।९) इति श्लोकेन विवृतम्. आनन्दमयप्राप्तेः परममुक्तित्वे विनिगमकम् आहुः **अन्यथा ‘अस्माद्’** इति. **अन्यथा** भयाभावोक्तेः परममुक्तिलिङ्गबोधकत्वाभावे. तथाच भयाभावपरममुक्तिलिङ्गेनापि आनन्दमयप्राप्तेः परममुक्तित्वं सिद्धम्. अन्यथा देहादिरूपभयसामग्र्यभावेन अभय-बोधकश्रुतिवैयर्थ्यं स्याद् इति अर्थः. लौकिकदेहस्य गतत्वाद् ब्रह्मानन्दज्ञानरूप-परममुक्तिदशायां वरणेन अग्रे भक्त्या प्राप्य अलौकिकदेहस्य च अभावेन मध्यदशायां कामभोगः ‘‘**सो अश्नुते**’’ इत्यनेन उक्तोऽपि असम्भवी इति आहुः **कामभोगे**त्यादिना. **अतएव** ब्रह्मानन्दवेदनस्य

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उक्तवती इति. श्रुतिः इति शेषः. ‘‘**स यश्चायं पुरुषे**’’ इत्यारभ्य ‘‘**न बिभेति कुतश्चन**’’ इत्यन्तेषु उक्तवती इति अर्थः. **अन्यथा** अनुभवैकगम्यत्वास्वीकारे. सिद्धम् आहुः **एवं सति** इति. आनन्दमयरूपपुरुषोत्तमप्राप्तेरेव परममुक्तित्वे सति. **विवृतं** ‘‘**यतो वाचः**’’ इत्यादि श्रुत्या विवृतम्. अत्र अयम् आशयः, ज्ञानमार्गे ‘‘**ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति**’’(मुण्ड.उप.३।२।९) इति श्रुत्या ब्रह्मज्ञानानन्तरं ब्रह्माभेदः. सैव परममुक्तिः. भक्तिमार्गेतु न. भक्त्या वरणे ब्रह्माभेदो नाम स्वरूपयोग्यता सम्पत्तिः ब्रह्मतादात्म्यं तेन कृत्वा फलानुभवएव परममुक्तिः इति. **अन्यथा** ज्ञानमार्गे या मुक्तिः तस्याः फलोपभोगसाधकालौकिकशरीरे योग्यतासम्पादकत्वाभावे.

साधकान्तरमपि आहुः **अतएव** इति. **सामानाधिकरण्यम्** अभेदम्. विवरणेन

‘‘**आनन्दं ब्रह्मणः**’’ इति उक्तम्. एतेन लौकिकं पूर्वदेहं त्यक्त्वा साक्षाद्भगवद्भजनोपयोगिनं भगवद्विभूत्यात्मकं सङ्घातं प्राप्नोति आदौ. तथाहि. देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणजीवात्मको हि सङ्घातः. तत्र स्थूलं शरीरम् आद्यविभूतिरूपम्. द्वितीयं स्पष्टम्. तृतीयं सर्वेन्द्रियसम्बन्धित्वेन इन्द्रियरूपत्वेन च अन्तःकरणात्मकत्वेन च इन्द्रियान्तःकरणरूपम्. तुरीयं जीवतत्त्वात्मकम्. यत्र गुहायां भगवद्वरणेन परमव्योमार्विर्भावः ततः पूर्णानन्दात्मकं पुरुषोत्तमस्वरूपं

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

परममुक्तिरूपस्य संसारावस्थाफलभोगावस्थयोः मध्यवस्थत्वादेव. **सामानाधिकरण्ये**त्यादि. संसारावस्थफलावस्थदेहयोः आनन्दज्ञाने सामानाधिकरण्यम् अनुक्त्वा ‘‘**आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्**’’ इत्यनेन भक्तिफलपूर्वदशारूपा मुक्तिरेव उक्ता इति बोध्यम्. ‘‘**सो अश्नुते**’’ इति विवरणस्य सिद्धं फलम् आहुः **एतेन** इत्यादि. **एतेन** विवरणर्चि उक्तफलभोगस्य अलौकिकदेहं विना लौकिकदेहेन असम्भवेन इति अर्थः. **आदौ** लीलाप्रवेशपूर्वं विरहपूर्णतादशायां विभूतिरूपसंघातमेव उपपादयन्ति **तथाहि** इत्यादिना. **आद्यविभूतिरूपम्** अन्नमयविभूतिरूपम्. **द्वितीयं** प्राणमयविभूतिरूपम्. तृतीय–मनोमयविभूतिरूपस्य इन्द्रियान्तःकरणरूपत्वे हेतुम् आहुः **तृतीयम्** इत्यादि. **तुरीयं** विज्ञानमयविभूतिरूपम्. तद् जीवस्वरूपाद् भिन्नं बुद्ध्यात्मकान्तःकरणवृत्तिरूपं भविष्यति इति शङ्काव्युदासाय आहुः **जीवे**त्यादि. तथाच लीलाविशिष्टभगवत्साक्षात्काराधिकारी जीवएव ‘विज्ञानमय’शब्देन उच्यते इति फलितम्. **यत्र** जीवतत्त्वपदवाच्ये विज्ञानमये **ततः** गुहायां निहितस्य वेदनानन्तरं **तेन** पूर्णानन्दपुरुषोत्तमेन. ननु ‘‘**एतम् आनन्दमयम् आत्मानम् उपसंक्रामति**’’ (तैत्ति.उप.२।८) इत्यत्र आनन्दमयप्राप्तिमात्रस्य उक्तत्वाद् ऋगर्थो भक्तप्राध्यान्यतया लीलाकरणरूपो वक्तुं कथं शक्यते ? इत्यतः आहुः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सिद्धम् आहुः **एतेन** इत्यादि **अवगम्यते** इत्यन्तेन. एतेन ‘‘**सोऽश्नुते**’’ इति उपक्रमोपसंहारयोः एकार्थत्वेन. **आदौ** भक्तिदार्ढ्यदशायां फलानुभवात् पूर्वम्. सङ्घातप्राप्तिमेव उपपादयन्ति **तथाहि** इत्यादिना. अन्तःकरणेन चतुर्णां मनोबुद्धिचित्ताहङ्काराणां संग्रहः. **आद्यविभूतिरूपम्** इति. अन्नमयम् इति अर्थः. **स्पष्टं** प्राणमयम्. **तृतीयम्** मनोमयम्, तस्य सर्वेन्द्रियसम्बद्धत्वादिहेतूनां सत्त्वाद् इन्द्रियान्तःकरणरूपत्वम्. **तुरीयं** विज्ञानमयम्. **जीवतत्त्वात्मकम** इति. जीवस्य यत् तत्त्वं ब्रह्मणा सह कामोपभोगे योग्यत्वं तत्स्वरूपत्वम्. अत्र गमकम् आहुः **यत्र** इति. **यत्र** विज्ञानमयविभूतौ. जीवे इति शेषः.

फलरूपं प्राप्य उक्तऋगर्थरीत्या तेन सह सर्वकामाशनमेव मनोवागविषयानन्दवेदनं तद्वान् भवति इति वाक्यैकवाक्यतया अवगम्यते.

अथ इदं विचार्यते. ‘‘**पुरश्चक्रे द्विपदः**’’ (बृहदा.उप.२।५।१८) इति श्रुतौ वस्तुतस्तु पुरुषएव. परन्तु पुरःसम्बन्धी सन् पक्षी भूत्वा पुर आविशद् इति निरूपितम्. प्रकृते च अन्नमयादयः तथैव उक्ताः. एवं सति एकस्यां पुरि बहूनां

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

मनोवागविषयेत्यादि. तथाच उपक्रमे विवरणर्चम् उक्त्वा उपसंहारे मनोवागविषयत्वम् उक्त्वा ‘‘**आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन**’’ (तैत्ति.उप.२।४) इति उक्तम्. इत्थञ्च मनोवागविषयस्य वेदनं न लौकिकसाधनसाध्यं किन्तु फलरूपः परमानन्दएव तद्वेदने हेतुः वाच्यः इति फलरूपप्रधानस्यैव गौणत्वं साधनरूपत्वम् उक्तम्. ऋच्यपि प्रधानस्य गौणीभूय लीलाकरणत्वम् उक्तमिति आनन्दसंक्रमणश्रुत्यापि एकवाक्यतया ऋगर्थएव उक्तइति न अनुपपत्तिलेशोऽपि इति बोध्यम्.

वाजसनेयके पुरुषस्य पक्षिरूपेण पुरः प्रवेशे उक्तः तैत्तिरीयके च अन्नमयादिपञ्चविभूतिरपाणामेव पक्षिरूपेण पुरः प्रवेशः उक्तः. स च अग्रिमलीलानिष्पत्त्यर्थएवेति तच्छ्रुत्यर्थाविचारे तत्स्फुटं ज्ञातुम् अशक्यमिति पक्षिप्रवेशबोधकश्रुतिविचारं प्रतिज्ञाय तद्विचारबीजं वक्तुं प्रथमतो विषयम् आहुः **अथ इदम्** इत्यादि. **प्रकृते** तैत्तिरीयशाखायां, **तथैव** पक्षिरूपेण प्रवेशकर्तारः, **एवं सति** अन्नमयादिपञ्चसु पूर्षु अन्नमयादिपञ्चविभूतिरूपपक्षिणां प्रवेशस्य प्राप्तत्वे सति, एकस्यां पञ्चानां मध्ये एकस्यां **तेषां** विभूतिरूपाणां पञ्चपक्षिणां, **तथा वाच्यः** एकैकस्य प्रवेशो वाच्यः. **अप्राकृतत्वे**त्यादि. तथा च पञ्चस्वपि पक्षिषु अप्राकृतत्वब्रह्मत्वयोः तुल्यत्वाद् इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तथाच जीवः तद्वान् भवति इति अग्रतनेन अन्वयः. **सर्वकामाशनम्** इति. अस्य अभेदेन ‘आनन्द’पदेन अन्वयः. तथाच ‘अशनं’ भोगः, सच साक्षात्कारः वेदनरूपः इति भावः. **वाक्यैकवाक्यतया** इति. उपक्रमे विपश्चिद्ब्रह्मणा सहास्थानम्, उपसंहारे आनन्दमयोपसङ्क्रमणम् एतद्द्वयबोधकवाक्यैकवाक्यतया इति अर्थः.

सिंहावलोकनन्यायेन पूर्वोक्तवाजसनेयिशाखोक्तश्रुतिं प्रकृतश्रुत्यैकवाक्यत्वेन व्याख्यातुम् आहुः **अथ** इति. इदं प्रतिज्ञावाक्यम् उक्ता इत्यन्तेन. प्रकृते, ब्रह्मवित्प्रपाठके ‘‘**तस्येदमेव शिरः अयं दक्षिणः पक्षः**’’(तैत्ति.उप.२।१) इत्यादिवाक्येषु. **तथैव** पक्षिरूपेणैव. अत्र शङ्कते **एवं सति** इति **इति चेद्** इत्यन्तम्. **एवं सति** अन्नमयादिषु

तेषां प्रवेशो न वक्तुम् उचितः. प्रयोजनाभावाद् इतः एकैकस्यां पुरि तथा वाच्यः. तत्र कीदृश्यां तस्यां कस्य प्रवेशः? इति विचार्यमाणे प्राकृतत्व-ब्रह्मत्वयोः अविशेषात् विनिगमकाभावात् सर्वेषां सर्वत्र प्रवेशो अप्रवेशो वा भवेद् इति चेत्,

अत्र इदं प्रतिभाति. **''अस्माद् लोकात् प्रेत्य''** (तैत्ति.उप.२।८) इति वाक्ये 'इदं' शब्दप्रयोगात् प्राकृतगुणमयं प्रपञ्चम् अतिक्रम्य गुणातीतं प्रपञ्चं साक्षाल्लीलोपयोगिनं प्राप्नोति इति अवगम्यते. तत्प्राप्त्यैव भगवद्भावे समपन्ने

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

समाधानम् आहुः **अत्र इदम्** इत्यादिना. **इति वाक्ये ''अस्माद् लोकात् प्रेत्य. तमेतम् आनन्दमयम् आत्मानम् उपसंक्रामति''** (तैत्ति.उप.२।८) इति वाक्ये. **इदम्** इत्यादि. सन्निकृष्टार्थबोधकः 'इदं'शब्दप्रयोगाद् इति अर्थः. इति **अवगम्यते** सन्निकृष्टार्थत्यागोक्त्या भयाभावोक्त्या आनन्दवेदनोक्त्या ''एवं पश्यन् एवं मन्वान एवं विजानन्'' (छान्दो.उप.७।२५।२) इत्याद्युक्त्या च अवगम्यते इति अर्थः. **तत्प्राप्त्यैव** गुणातीतभगवल्लीलोपयोगिदेहप्राप्त्यैव. **भगवद्भावे** रसात्मकभगवद्भावे. **पूर्वं** संयोगात्मकरसदललाभात् पूर्वम्. **शरीरे**त्यादि. गुणातीतलीलोपयोगिशरीरेन्द्रियप्राणा-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तादृशानामेव विभूतिरूपाणां प्रवेशे सति. **एकस्याम्** इति पञ्चानां मध्ये एकस्याम्. **इतः** इति इतः परम् इति अर्थः. तथा एकैकस्य प्रवेशः. **सर्वत्र** इति. यद्यपि अन्नमये अन्नमयस्य इत्यादि यथासङ्ख्येन पञ्चानां पञ्चसु प्रवेशः प्राप्नोति तत्तत्पक्षिरूपस्य विनिगमकस्य सत्त्वात्, तथापि, प्रवेशप्रयोजकतावच्छेदकीभूतं ब्रह्मत्वं पञ्चस्वपि अविशिष्टमिति तेन रूपेण प्रवेशः सर्वेषां पञ्चानाम् एकस्मिन् अन्नमये तथा प्राणमये पञ्चानाम्. एवं रीत्या सर्वत्र सर्वेषां प्रवेशः इति भावः. ननु एकस्मिन् अन्नमये तदाकारपक्षिणएव प्रवेशः स्वीक्रियते अन्येषान्तु अप्रवेशः इत्यतः आहुः **अप्रवेशो वा** इति. तथाच पक्षिरूपस्य अन्नमयस्य ब्रह्मत्वेनैव प्रवेशः. तच्च ब्रह्मत्वं सर्वेषाम् इति केवलान्नमयप्रवेशे बीजाभावात् सर्वेषाम् अप्रवेशः इति अर्थः.

समाधानम् आहुः **अत्र इदम्** इति. **'इदं' शब्दः** इति प्रत्यक्षविषये अर्थेएव 'इदं' शब्दस्य प्रयोगाद् इति अर्थः. **प्राकृतगुणमयं प्रपञ्चम्** इति शरीरम् इति अर्थः. **गुणातीतम्** इति गुणातीतप्रपञ्चो वर्तते तत्प्राप्तिश्च भक्तानाम् अक्षरब्रह्मज्ञानिनां च इति फलप्रकरणे स्फुटीभविष्यति. **तत्प्राप्त्यैव** इति गुणातीतशरीरप्राप्त्यैव इति अर्थः. **भगवद्भावः** इति. ततः इति शेषः. भगवति भावः रत्याख्यः स्थायिभावः तस्मिन् **सम्पन्ने**

पूर्वं भगवद्विरहभावेन अतितीव्रत्वेन सर्वोपमर्दिना शरीरेन्द्रियप्राणान्तःकरणानि नष्टान्येव स्युः यदि तत्तद्रूपं ब्रह्म तेषु-तेषु न प्रविष्टं स्यात्. जीवस्य च ब्रह्मण्येव लयेन लीलारसाननुभवेन नाशएव सः. तथाच तत्तद्रूपं ब्रह्म तेषु-तेषु स्थितमिति न

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

न्तःकरणानि इति अर्थः. **तत्तद्रूपम्** अन्नमयादिपञ्चात्मकानि पक्षिरूपाणि इति अर्थः. **तेषु तेषु** इत्यादि. अन्नमये अन्नमयं प्राणमये प्राणमयं मनोमये मनोमयं विज्ञानमये विज्ञानमयं ब्रह्मात्मकं पक्षिरूपं प्रविष्टं न स्याद् इति अर्थः. ननु जीवस्य नित्यत्वेन नाशासम्भवात् सएव लीलारसानुभवं स्वप्रकाशचिता करिष्यति इति अतः आहुः **जीवस्य** इत्यादि. **लयेन** इत्यादि. तथाच सायुज्यमुक्त्यात्मकलये सम्पन्ने तस्य च ''**स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः**'' (भाग.पुरा.६।१७।२८) इत्यनेन अफलत्वकथनात् फलनाशेन **नाशएव** फलाविशिष्टस्य इति भावः. फलितम् आहुः **तथाच** इत्यादि. **तत्तद्रूपम्** अन्नमयादिप्रत्येकरूपम्. **तेषु–तेषु** अन्नमयादिस्वसजातीयेषु तेषु–तेषु इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सति, अत्युत्कटे जाते सति इति अर्थः. **पूर्वं भगवद्विरहभावेन** इति गुणातीतप्रपञ्चप्राप्तिपूर्वं यः भगवद्विरहभावः विप्रलम्भशृङ्गारस्थायिभावः. सच गुणातीतप्रपञ्चप्राप्त्यनन्तरम् इति अर्थः. तत्प्राप्त्यनन्तरम् अत्युत्कटतीव्रत्वेन सर्वोपमर्दी जातः तेन नष्टान्येव स्युः इति अर्थः. **तत्तद्रूपम्** इति. अन्नमये पक्षिरूपम् अन्नमयं ब्रह्म इति अर्थः. एवम् अग्रेऽपि, जीवस्य विद्यमानत्वात् सएव सर्वं करिष्यति इत्यतः आहुः **जीवस्य** इति. यथा ज्ञानिनो ब्रह्मणि लयः, एवं भक्तस्यापि ब्रह्मणि लयः इति अर्थः. **लीला** इति. वरणाभावः इति शेषः. **नाशएव स्यात् सः** इति. **सः** लीलारसाननुभवरूपो **नाशः** जीवस्य नाशएव स्याद् इति अर्थः. यद्यपि जीवस्य नित्यत्वाद् नाशो न भवति, तथापि ''**सविशेषणे हि विधिनिषेधौ विशेषणम् उपसङ्क्रामतः सति विशेष्ये बाधे**'' इति न्यायेन अस्य नाशः इति उक्तम्. यथा ''स्वर्गो (र्गात्?) ध्वस्तः'' इत्यत्र स्वर्गविशिष्टे पुरुषे जीवे नाशप्रतियोगित्वं बाधितमिति तत्र विशेषणे स्वर्गे ध्वंसप्रतियोगित्वतात्पर्येण अभियुक्तानां प्रयोगः तथा अत्रापि लीलारसानुभवनाशतात्पर्येण जीवस्य नाशः इति उक्तम्. नच लीलारसानुभवस्य भावित्वात् पूर्वं तस्य नाशो न सम्भवति इति वाच्यम्. लीला–रसानुभवयोग्यतानाशाभिप्रायेण इयम् उक्तिः. अथवा लीलारसाननुभवो नाम तादृशा–नुभवाभावः, सच संसर्गाभावत्रितयमध्ये किं रूपो वा भवतु परन्तु जीवस्य सः नाशतुल्यः इति औपचारिको अयं जीवस्य नाशः इति प्रयोगः इति सर्वम् अनवद्यम्. ननु

तेषां नाशः. जीवेतु आनन्दमयः पुरुषोत्तमः प्रविशति इति रसात्मकत्वाद् आनन्दात्मकमेव विरहभावरसाब्धिम् अनुभूय पश्चात् प्रादुर्भूतं प्रभुस्वरूपं प्राप्य **“न बिभेति कुतश्चन”** (तैत्ति.उप.२।९) इतिवाक्येन लोकात् तदभावम् उक्त्वा, **“एतं ह वाव न तपति किमहं साधु नाकरवं किमहं पापमकरवम्”** (तैत्ति.उप.२।९) इति वाक्यैः वेदाद् भयाभावः उच्यते. शरीरप्राणमनोऽन्तःकरणजीवात्मनां शरीरत्वं वाजसनेयिशाखायाम् अन्तर्यामिब्राह्मणे पठ्यते.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तेषाम् अलौकिकशरीरघटकानां पञ्चकोशानाम्. **जीवेतु** इति ‘तु’शब्देन जीवातिरिक्तेषु पुरुषोत्तमविभूतिरूपाणां प्रवेशो नतु साक्षाद् आनन्दमयपुरुषोत्तमस्य इति बोधितम्. **प्रादुर्भूतं** गुहायां निहितम् अनुभूतम् इति अर्थः. इत्थञ्च “तस्यैषएव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य” इत्यादिना बोधितो अभेदो न विज्ञानमयः जीवप्रविष्टेन वक्तुं शक्यः किन्तु पूर्वेषु प्रविष्टानां सर्वेषाम् अभेदमात्रं पुरुषोत्तमे प्रतिपाद्यते इति बोध्यम् अन्यथा जीवेतु आनन्दमयः इति अस्य असङ्गतिः स्याद् इति भावः. प्राप्तपूर्णानन्दस्य भक्तस्य अवस्थाम् आहुः **“न बिभेति”** इत्यादिना. **वेदाद् भयाभावः** इति. तथाच प्राप्तपरमदशायां पूर्वकृतपुण्यपापपुञ्जानाम् अनुसन्धानं कृत्वा तेषां फलभोगाभावं स्वस्मिन् निश्चित्य वेदाद् वेदाविहितनिषिद्धकरणाद् यद् भयं तदभाववान् भवति इति अर्थः. ननु **“तस्यैषएव शारीर आत्मा”** इत्यादिना अन्नमयादीनां शरीरत्वं ब्रह्मणश्च आत्मरूपत्वम् उक्तं तत्र किं मूलम्? इति अतः आहुः **शरीरे**त्यादि. **शरीरत्वं** ब्रह्मशरीरत्वम्. अत्र ग्रन्थे.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आनन्दमयस्य विभूतीनां तत्तच्छरीरे नाशाभावार्थं प्रवेशो अस्तु नाम परन्तु जीवस्यतु नित्यत्वात् तत्र प्रवेशो अनुचितः इत्यतः आहुः **जीवेतु** इति. ‘तु’कारेण विभूतेः प्रवेशो व्यावर्त्यते. **इति** इति. इति हेतोः इति अर्थः. **रसाब्धिम्** इति संयोगो विप्रलम्भश्च इति शृङ्गारस्य द्विविधत्वाद् इति भावः. **प्रादुर्भूतम्** गुहायाम् इति शेषः. क्वचित् पुस्तके ‘प्रादुर्भूतप्रभुस्वरूपम्’ इति अपपाठः. कुतः गुहायाम् इत्यत्र साकाङ्क्षस्य असमर्थस्य प्रादुर्भूतम् इत्यस्य समासाघटकत्वात्. इतः परं मुक्तावस्थायाः निर्भयत्वं प्रतिपाद्यते. तत्र आदौ लोकाद् भयाभावम् आहुः **न बिभेति** इति. वेदात् तम् आहुः **एतम्** इति. **ह वाव** इति अव्ययम्. मया पुण्यं न कृतं पापं च कृतम् इति स्मरणेन सन्तापः तस्य न जायते इति भावः. ननु मुक्तानां शरीरसम्बन्धांशएव संशयः कदाचिद् ब्रह्मशरीरत्वं वक्तव्यम्, अत्रतु मानाभावः इत्यतः प्रमाणम् आहुः **शरीरे**ति. **शरीरत्वम्** इति ब्रह्मशरीरत्वम् इति अर्थः.

''यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यस्य प्राणः शरीरं यस्य वाक् शरीरं यस्य चक्षुः शरीरं यस्य श्रोत्रं शरीरं यस्य मनः शरीरं यस्य त्वक् शरीरम्'' (बृहदा.उप.३।७) इत्यादेः अन्ते **''यस्यात्मा शरीरम्''** इति. अत्र पूर्वोक्तनिर्गुणदेहानां भगवच्चरणरेणुजत्वेन भूतरूपत्वाद् ब्रह्मशरीरत्वम्. तत्र अन्नमयतत्प्रवेशेन तत्स्थितिः प्राणेष्वपि तथा. ज्ञानेन्द्रियेषु विज्ञानमयप्रवेशात् तथा. मनसि मनोमयप्रवेशात् तथात्वम्. जीवेतु आनन्दमयः प्रविशतीति तथात्वम् अतो युक्तं पक्षित्वकथनम्. आनन्दमयस्य

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पूर्वोक्तेत्यादि. लीलानुभवार्थं पूर्वम् उक्तानाम् इति अर्थः. **भगवच्चरणे**त्यादि. **''या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्रपादाब्जरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री''**(भाग.पुरा.१।१९।६) इत्यत्र सुबोधिन्यां सिद्धम् अवसेयम्. **भूतरूपत्वाद्** अलौकिकलीलोपयोगिशरीरघटकविभूतिरूपभूतरूपत्वाद् इति अर्थः. **ब्रह्मशरीरत्वं** पूर्वोक्तशरीरप्रभृतीनां ब्रह्मशरीरत्वम्. तत्प्रवेशेन ब्रह्मप्रवेशेन. **तत्स्थितिः** विरहदशायाम् अन्नमयस्य स्थितिः. तथा प्राणमयब्रह्मणः प्रवेशेन प्राणमयस्य स्थितिः.

ननु जीवस्य वरणेनैव सर्वसामर्थ्यसिद्धेः तत्र विज्ञानमयप्रवेशो व्यर्थः इति प्राप्तशङ्कावारणाय मध्यएव समाधानम् आहुः **ज्ञानेन्द्रियेषु** इत्यादि. तथाच

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

श्रुतिम् आहुः **यस्य** इति. ब्रह्मणः इति अर्थः. **इत्यादेः** इति. वाक्यस्य इति शेषः. ननु तादृशशरीराणां भौतिकत्वं वक्तव्यं वा न वा? इति आशङ्कायाम् आहुः **अत्र** इति अत्र मुक्तशरीरविषये. **भगवद्** इति इदञ्च **''या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्रपादाब्जरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री''**(भाग.पुरा.१।१९।६) इति प्रथमस्कन्धसुबोधिन्यां प्रसिद्धम्. **भूतरूपत्वाद्** इति. यथा प्राकृतशरीरस्य पार्थिवरेणुत्वेन भूतरूपत्वं तथा भगवच्चरणरेणुजत्वेन तस्यापि अलौकिकभूतरूपत्वाद् इति अर्थः. अतएव आहुः **ब्रह्मशरीरत्वम्** इति. **तत्र** शरीरे. **अन्नमयतत्प्रवेशेन** इति. अन्नमयं यत् तद् ब्रह्म तस्य प्रवेशेन इति अर्थः. **ज्ञानेन्द्रियेषु** इति यद्यपि मनोमयत्वोक्त्यनन्तरं विज्ञानमयत्वोक्तिः तस्य पुनः मनोमयात् पूर्वं ज्ञानेन्द्रियेषु कथं स्थितिः उक्ता तथापि जीवस्य वरणलभ्यं सर्वसामर्थ्यम् इति क्रमप्राप्तो जीवे विज्ञानप्रवेशो व्यर्थः इति मनसः पूर्वं ज्ञानेन्द्रियाणां सत्त्वात् तत्र पूर्वं विज्ञानमयप्रवेशः उक्तः इति भावः. ननु तर्हि जीवे कस्य प्रवेशः? इत्यतः आहुः **जीवे** इति. **तथात्वम्** इति लीलानुभवयोग्यत्वम्. **अतः** इति प्रवेशकरणाद् हेतोः इति अर्थः. **युक्तम्** इति आनन्दमयस्य पक्षित्वकथनं युक्तम् इति अर्थः.

स्वरूपं विशेषतो वक्तुम् अशक्यम् इति **''यः पूर्वस्य''** इति सर्वत्र उक्तम्. शरीरप्रवेशप्रयोजनकपक्षिरूपित्वं पञ्चस्वपि साधारणम् इति तेषु तथा वदन्ति आनन्दमयेऽपि *तथैव उक्तवती श्रुतिः इति ज्ञेयम्. एवं सति स्पर्शमणि-सम्बन्धित्वेन रजतादेः हेमत्वमिव उक्तप्रकारकप्रवेशाद् आश्रयाणामपि तत्तदात्मकत्वम् इति उच्यते. वस्तुतस्तु परोक्षवादो अयम् इति ज्ञायते. तथाहि **''ब्रह्मविदाप्नोति परम्''** इतिवाक्येन ब्रह्मविदः परप्राप्तिं सामान्यतः उक्त्वा

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

विज्ञानमयप्रवेशाधिकरणं ज्ञानेन्द्रियाण्येव अन्यथा तेषां लीलारसानुभवसामर्थ्यं न स्यादिति एतदर्थं तेषु विज्ञानमयप्रवेशो नतु जीवेऽपि इति अर्थः. **विशेषतो वक्तुम् अशक्यम्** इति **''यतो वाचो निवर्तन्ते''** (तैत्ति.उप.२।९) इति वाक्यात् स्वसामर्थ्येन वक्तुम् अशक्यम् इति फलितम्. **पञ्चस्वपि** आनन्दमयान्तेषु. ***तथोक्तवती** प्रवेशम् उक्तवती. तथाच तस्य पक्षित्वनिमित्तमेव तथावचनं नतु तत्र प्रवेशे किञ्चित्प्रयोजनम् अस्ति इति भावः. **उक्ते**त्यादि. पक्ष्याकारपुरुषोत्तमप्रवेशाद् इति अर्थः. **आश्रयाणाम्** अन्नमयादिचतुर्णाम्. **तदात्मकत्वं** भगवद्रूपत्वम्. गूढाभिसन्धिम् उद्घाटयन्ति **वस्तुतस्तु** इत्यादिना. **परोक्षवादः ''वेदास्त्रिकाण्डविषया ब्रह्मात्मविषया इमे, परोक्षवादः ऋषयः परोक्षं च मम प्रियम्''** (भाग.पुरा.११।२१।३५) इति वाक्यात्. अयं विभूतिरूपकोशेषु

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ननु आनन्दमयस्य पक्षित्वकथनेन तस्य स्वरूपकीर्तनं जातम् इत्यतः आहुः **आनन्दमयस्य** इति. ननु एवं चेत् तर्हि तस्य पक्षित्वं किमर्थं श्रुत्या उक्तम् इत्यतः आहुः **शरीरे**ति. ननु **''यः पूर्वस्य''** इत्यनेन आनन्दमयस्य सर्वत्र प्रवेशो अस्ति इति ज्ञायते तावता तत्तच्छरीराणां ब्रह्मशरीरत्वं कथम्? इति आशङ्कायां दृष्टान्तम् आहुः **एवं सति** इति. **आश्रयाणाम्** इति अन्नमयादीनाम् इति अर्थः. **तत्तदात्मकत्वम्** इति. अन्नमयादिब्रह्मशरीरत्वम् इति अर्थः. एवं प्राणमयादिष्वपि बोध्यम्. यथा यादृशाकारं रजतपात्रं तत्र स्पर्शमणिसम्बन्धे तादृशाकारमेव सुवर्णपात्रं भवति तथा अन्नमयादिशरीरमपि ब्रह्मशरीरं भवति आनन्दमयप्रवेशेन इति भावः.

एतावता प्रबन्धेन अन्नमयादिश्रुत्यर्थः सामान्येन वर्णितः. इतः परं श्रीमत्प्रभुचरणाः स्वाभिमतं परोक्षवादं स्वीकृत्य श्रुतितात्पर्यं वर्णयन्ति **वस्तुतस्तु** इति. **परोक्षवादो** अयम् इति. यत्र अन्यथास्थितो अर्थः सङ्गोपयितुम् अन्यथा कृत्वा उच्यते स परोक्षवादः. अत्र प्रमाणं **''परोक्षप्रिया इव हि देवाः, आत्मन्नात्मन्नित्यामन्त्रयते''** (बृहदा.उप.४।२।२)

तत्तात्पर्यं ‘‘**सत्यं ज्ञानम्**’’ इति ऋचा उक्तम्. तत्र सर्वात्मभाववान् भक्तो भगवता सह तत्स्वरूपात्मकान् कामान् भुङ्क्त इति उक्तव्याख्यानेन तदर्थो अवधार्यते. उक्तभक्तस्य सदैव, विरहभावेतु विशेषतः प्रियस्वरूपातिरिक्तास्फूर्त्या अन्नप्राणादिरूपः सएव इति ज्ञापनाय तत्तद्रूपत्वम् उच्यते. तेन परमप्रेमवत्वं

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अन्नमयादिषु पक्षिरूपेण प्रवेशनपदार्थः. परोक्षवादमेव उपपादयन्ति **तथाहि** इत्यादिना. **सामान्यतः** विवरणऋचि वक्ष्यमाणप्रकारम् अनुद्घाट्य इति अर्थः. **तत्तात्पर्यं** ‘‘ब्रह्मविदाप्नोति परम्’’ इति वाक्यतात्पर्यं इति अर्थः. **तदर्थः** विवरणऋगर्थः. **उक्तभक्तस्य** भगवच्चरणरेणुजन्यदेहवत्वेन परमव्योम्नि दृष्टभगवद्रूपत्वेन अग्रे भगवता सह सर्वकामाशनयोग्यस्य. **सदैव विरहभावे** तत्र सर्वात्मभाववान् इत्याद्युक्त-‘सर्वात्मभाव’पदवाच्यविरहभावस्य सर्वदा सत्वे. **अन्नप्राणादिरूपः** इति. तथाच तादृशभक्तानां सर्वदैव भगवदतिरिक्तास्फूर्तिः अस्ति तथाऽपि विप्रयोगस्य अतितीव्रत्वेन कालान्तरीण(?)स्फूर्तिसमानविषयस्फूर्तौ भक्तदेहादि तिरोहितमेव स्याद् यदि तेषाम् अन्नप्राणमनोरूपो भगवान् न भवेद् इति अर्थः. **सएव** इति ‘एव’कारेण तद्दशायाम् अतद्रूपत्वव्यवच्छेदः. **तत्तद्रूपत्वं** भक्तीयान्नमयादेः आध्यात्मिकस्य भगवदीयाधिदैवि-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति श्रुतिः. ‘‘**परोक्षवादो वेदोऽयं**’’ (भाग. पुरा.११।३।४४) ‘‘**परोक्षं च मम प्रियम्**’’ (तत्रैव११।२१।३५) इति एकादशस्कन्धीयं वाक्यमपि. तमेव आहुः **तथाहि** इत्यादिना **प्रतिष्ठारूपत्वं च** इत्यन्तेन. **अवधार्यते** इति. ऋगर्थो ज्ञायते इति अर्थः. अयं भावः वरणेतरसाधनाप्राप्यत्वं ‘‘**यमेवैष वृणुते**’’(मुण्ड.उप.१।२।२५) इत्यादिश्रुतिसिद्धम्. तथाच श्रवणादिसाधनेन कृत्वा अक्षरब्रह्मज्ञानानन्तरं परप्राप्तिः यस्य उच्यते तत्र प्रथमतः ब्रह्मज्ञानानन्तरं वरणं ततो भक्तिभावेन विरहे सति सर्वात्मभावो जायते गुहायाम् आविर्भावः इति. यस्यतु पूर्वमेव वरणेन भक्तिभावः तदनन्तरं विरहेण सर्वात्मभावे जाते गुहायाम् अक्षरब्रह्मज्ञानम् आविर्भवति इति उच्यते. एवञ्च विरहे सति सर्वात्मभावः सम्पद्यते इति. **उक्त भक्तस्य** सर्वात्मभाववतो भक्तस्य. **सदैव** इति. तथाच यावत्पर्यन्तम् आनन्दमयप्राकट्यं नास्ति तावत्पर्यन्तम् अतितीव्रत्वं विरहस्य इति भावः. तीव्रत्वमेव आहुः **प्रियस्वरूपे**ति. **प्राणादिरूपः** इति ‘आदि’शब्देन मनसः परिग्रहः. **तत्तद्रूपत्वम्** इति विरहिभक्तस्य अन्नादिषु भगवद्रूपत्वस्फूर्त्या अन्नमयादिरूपत्वं भगवतः श्रुत्या उच्यते नतु आधिदैविकस्य प्रवेशः इति अर्थः. ननु एतादृशश्रुतितात्पर्यकथनेन किं

सिध्यति. ततो भगवदाविर्भावे सत्यपि पूर्वभावस्य अतितीव्रत्वेन ज्ञानादिसर्वतिरोधानेन अग्रिमरसानुभवो न भविष्यतीति स्वयमेव तदनुभवात्मको भवति इति ज्ञापनाय विज्ञानरूपत्वम् उच्यते. तदानुभवविषयः प्रकट आनन्दमयः इति तत्स्वरूपम् उच्यते. तत्र निरुपधिप्रीतिरेव मुख्या, न अन्यद् इति ज्ञापनाय

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

कान्नमयादिरूपत्वम् इति अर्थः. **तेन** भक्तीयान्नमयादिषु भगवतः प्रवेशेन. **सिद्ध्यति** इति तादृशप्रवेशाभावेतु तादृशयोग्यतायाः असत्वेन परमप्रेमाधिकरणता अनुपपन्नैव स्याद् इति अर्थः. ततः परमप्रेमसिद्ध्यनन्तर्. **ज्ञानादिसर्वे**त्यादि. ज्ञानेन्द्रियाणां तथासामर्थ्याभावेन ज्ञानेन्द्रियकार्यस्य तिरोधानेन इति अर्थः. **स्वयमेव** इत्यादि. भक्तज्ञानेन्द्रियेषु विज्ञानमयस्य स्वस्य प्रवेशेन तदिन्द्रियाणां भगवद्रूपत्वेन तदिन्द्रियसम्पाद्यानुभवस्याऽपि भगवद्रूपत्वात् स्वयमेव भक्तानुभवरूपो भवति इति बोध्यम्. **विज्ञानरूपत्वं** भक्तेन्द्रियेषु ज्ञानजनकेषु विज्ञानमयप्रवेशेन तेषां भगवद्विज्ञानरूपत्वम्. तदा पुरुषोत्तमस्य भगवदीयप्रवेशानन्तरकाले. **अनुभवविषयः** भक्तानुभवविषयः. **प्रकट** इत्यादि. भक्तलौकिकप्रत्यक्षविषयः. तत्स्वरूपम् अनुभवविषयानन्दमयस्वरूपम्. **उच्यते ‘‘तस्य प्रियमेव शिरः. मोदो दक्षिणः**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सिद्ध्यति इत्यतः आहुः **तेन** इति. तथाच लोके यस्य यत्र परमं प्रेम तस्य पुनः तदेव भासते. अत्रतु भगवद्रूपत्वं सर्वस्य वास्तविकमेव परन्तु विशेषरूपेण इतरेषां स्फूर्तिः भक्तानान्तु तद्रूपभानमेव, अतएव स्तम्भे प्रह्लाददृष्ट्यैव नृसिंहाविर्भावः तदनन्तरं भक्तस्य परम–रूपसिद्धौ सत्यां साक्षात्कारः इति भावः. ननु एवं सति भक्तज्ञानस्य विज्ञानमयभगवद्रूपत्वं किमर्थम् उक्तम्? इत्यतः आहुः **ततः** इति. ततः प्रेमसिद्ध्यनन्तरम्. **आविर्भावे**ति. तथाच परमप्रेमोत्तरक्षणएव **आविर्भावः** इति भावः. **पूर्वभावस्य** विरहभावस्य. **तिरोधानेन** इति नतु नाशः इति अर्थः. **तदनुभवात्मके**ति भक्तस्य इति शेषः. अग्रिमरसानुभवात्मकः इति अर्थः. **विज्ञानरूपत्वम्** इति नतु विज्ञानमयप्रवेशः श्रुत्या उच्यते इति अर्थः. **तदा.** तस्मिन् कालएव. **प्रकटः** इति सर्वदा साक्षात्कारविषयः इति अर्थः. **तत्स्वरूपम्** इति. ब्रह्मस्वरूपम् इति अर्थः. एतेन परमते आनन्दमयस्य विभूतिरूपत्वम् उच्यते, नतु ब्रह्मरूपत्वम् इति अस्वरसो ज्ञेयः. ननु विभूतिरूपस्य पक्षित्वेन प्रवेशकर्तृत्वं न स्वीक्रियते चेद् ‘‘**पुरश्चक्रे द्विपदः**’’ (बृह.उप.२।५।१८) इत्यादिश्रुतौ प्रकृतश्रुतावपि विभूतीनां पक्षिरूपत्वं किमर्थम् उक्तम्? इति आशङ्कायां श्रुत्या कल्पनया उपदिश्यते इति आहुः **तत्र** इति. **तत्र** आनन्दमयप्राकट्ये.

प्रियस्य प्रधानाङ्गत्वम् उच्यते. तदा प्रियेक्षणादिभिः आनन्दात्मकएव विविधरसभावसन्दोहः उत्पद्यते यः सः दक्षिणः पक्षः उच्यते. ततः स्पर्शादिभिः पूर्वविलक्षणः प्रकृष्टानन्दसन्दोहो यः सः उत्तरः पक्षः उच्यते. नानाविधपक्षसमूहात्मकत्वात् तयोः पक्षयोः युक्तं तथात्वम्. स्थायिभावस्य एकरूपत्वाद् आत्मत्वम् उच्यते. यतः ततएव विभावादिभिः विविधभावोत्पत्तिः. परप्राप्ति-

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पक्षः. प्रमोद उत्तरः पक्षः. आनन्द आत्मा. ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा''(तैत्ति.उप.२।५) इतिश्रुत्या कल्पनया उपदिश्यते इति अर्थः. इतः आरभ्यैव कल्पनोपदेशो बोध्यो नतु पूर्वोक्तेऽपि इति ध्येयम्. **प्रियस्य** आनन्दस्य. **प्रधानाङ्गत्वं ''तस्य प्रियमेव शिरः''** इत्यनेन शिरोरूपत्वम्. **दक्षिणः पक्षः उच्यते** कल्पनया उच्यते इति अर्थः. एवम् अग्रे सर्वत्राऽपि कल्पनोपदेशो ज्ञेयः. **पक्षसमूहः** इति नानाविधानन्तररससमूहः इति अर्थः. तयोः दक्षिणोत्तरत्वेन निर्दिष्टयोः. **तथात्वं** पक्षत्वेन निर्वचनम्. **स्थायी**त्यादि. शृङ्गारे स्थायिभावस्य 'रति'पदवाच्यानन्दस्य पक्षवद् नानावयवत्वाभावाद् एकात्मरूपत्वम् उक्तं तस्यैव तद्रसे आत्मस्वरूपत्वाद् इति अर्थः. **ततएव** स्थायिभावतएव. नतु

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

प्रियस्य प्रियस्वरूपस्य. **प्रधानाङ्गत्वम्** शिरस्त्वम्. **उच्यते** कल्पनया इति शेषः. एवम् अग्रेऽपि, पक्षिरूपार्थविषये सर्वत्र कल्पना बोध्या. **तदा,** आनन्द-प्राकट्यसमये. मोदपदार्थम् आहुः **विविधे**ति. **रसभावः** इति रसानुकूलो विकारो भावः इति अर्थः. सच मनोविकारः शारीरोऽपि केषाञ्चिद् मते उच्यते. कल्पनया उपदिश्यते. **ततः** इति तदनन्तरम्. प्रमोदपदार्थम् आहुः **प्रकृष्टे**ति. स्पर्शजन्यत्वात् प्रकृष्टत्वं बोध्यम्. **नानाविधे**ति. अनुभावव्यभिचारीभावानां नानात्वाद् इति अर्थः. **स्थायिभावस्य** इति. आनन्दस्य इति अर्थः. **एकरूपत्वाद्** इति. सर्वदा विद्यमानत्वाद् इति अर्थः. ननु **''व्यक्तः स तैः विभावाद्यैः स्थायीभावो रसः स्मृतः''** (भरतना.शा. ७।८) इति रसस्य स्वरूपकथनम्. लक्षणन्तु रत्याद्यवच्छिन्नसच्चिदानन्दत्वम्. तस्यतु सर्वदा विद्यमानत्वं यथा अन्धकारे स्थितस्य घटादिपदार्थस्य अभिव्यञ्जकः आलोकादि, तथा अत्रापि सर्वदा विद्यमानस्य स्थायिभावस्य रतिरूपावच्छिन्नानन्दस्य सिद्धस्य रसरूपस्य विभावानां व्यञ्जकत्वम्. तदुक्तं, **''विभावानुभावसञ्चारिभावा रसनिष्पत्तिः''** ( ) इति भरतसूत्रम् इति काव्यप्रकाशे. तथाच यावत्पर्यन्तं स्थायी अभिव्यक्तो न भवति तावत्पर्यन्तं संस्थायी, अभिव्यक्तश्चेत्, सएव रसभावम् आपद्यते. इत्थञ्च प्रकृते आनन्दस्य एकरूपत्वात् सर्वदा स्थायित्वमेव स्याद् न रसभावत्वम् इत्यतः आहुः **यतः**

साधनीभूतब्रह्मज्ञानदशायां तदानन्दोऽपि यः पूर्वम् अनुभूतः सः गणितानन्दः इति एतद् आनन्दानुभवानन्तरं तुच्छत्वेन भाति इष्टगतौ असाधनत्वेन स्वरूपतोऽपि तस्माद् हीनत्वं च इति पृष्ठभागादपि दूरस्थितपुच्छरूपत्वं ब्रह्मणः उच्यते.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

स्थायिभावशून्यस्य वैयाकरणादेः रसकारणसम्भवः रतिशून्यस्य ज्ञानिनो वा. **'विभावादिभिः'** इत्यादि पदेन व्यभिचारभावालम्बनोद्दीपनभावाः ग्राह्याः. विविधभावोत्पत्तिः इति पूर्वभावानुकारिविविधभावोत्पत्तिः इति अर्थः. **''ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा''** इत्यस्य अर्थं वक्तुम् आहुः **परप्राप्तिः** इत्यादि. **ब्रह्मज्ञाने**त्यादि. **''ब्रह्मविदाप्नोति परम्''** (तैत्ति.उप.२।१) इतिवाक्योक्ताक्षरज्ञानदशायाम् इति अर्थः. **तदानन्दः** अक्षरानन्दः. **पूर्वम्** अक्षरज्ञानदशायाम्. इष्टगतौ **''सोऽश्नुते सर्वान् कामान्''** (तैत्ति.उप.२।१) इति फलप्राप्तौ. असाधनत्वेन सर्वात्मभाववत् साक्षाद् असाधनत्वेन. **स्वरूपतोऽपि** गणितानन्दस्वरूपतोऽपि. **तस्मात्** पुरुषोत्तमानन्दात्. **पृष्ठभागात्** पुरुषोत्तमपृष्ठभागात्. **ब्रह्मणः** अक्षरब्रह्मणः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति. **ततः** इति. आनन्दरूपस्य स्थायिभावतः इति अर्थः. आत्मनः इति वा अर्थः. **विभावादिभिः** इति. आदिना अनुभावसञ्चारिभावानां ग्रहणम्. **विविधभावोत्पत्तिः** इति. विविधभावानां रसानाम् अभिव्यक्तिः रसस्य आनन्दरूपस्य अनुकूलभावस्यापि आनन्दरूपत्वाद् रसस्य भावत्वोक्तिः. यद्वा, **यतः** इति, यतः आत्मरूपस्थायिभावस्य सर्वदा एकरूपत्वतः. **ततएव** आनन्दरूपात्मनः सकाशादेव. **विभावादिभिः** विभावानुभावादिभिः. **विविधभावोत्पत्तिः** इति विविधभावस्य विविधभावसमूहस्य उत्पत्तिः अभिव्यक्तिः इति अर्थः. तथाच विविधाः ये स्थायिभावाः रतिर्हासश्च इति अष्टविधाः तेषां विभावादिभिः अभिव्यक्तिरेव रसः सएव भक्तस्य प्रकटानन्दः इति भावः. इतः परं **''ब्रह्म पुच्छम्''** इति वाक्यस्य तात्पर्यम् आहुः **परप्राप्ती**ति. **पूर्वम्** इति, परप्राप्तेः पूर्वम् इति अर्थः. **सः गणितानन्दः** इति. अस्य 'भाति' इत्यनेन अन्वयः. **''स एको ब्रह्मण आनन्दः''** (तैत्ति.उप.२।८) इति वाक्योक्तगणितानन्दः इति अर्थः. **इष्टगतौ असाधनत्वेन** इति. यथा पक्षिणः पक्षयोः इष्टगतिसाधनत्वं नतु पुच्छस्य यथा सः तथा **''सर्वेषु कामचारो भवति''** (छान्दो.उप. ७।२५।२) इति छान्दोग्यश्रुत्या पुरुषोत्तमप्राप्तेरेव इष्टगतिसाधनत्वं नतु अक्षरब्रह्मणः इति भावः. **स्वरूपतः** इति, पुरुषोत्तमानन्दाद् अयं गणितानन्दः इति स्वरूपतः इति अर्थः. **पृष्ठभागाद्** इति

पुरुषोत्तमाधिष्ठानत्वात् प्रतिष्ठारूपत्वं च. एवं सति अक्षरादपि उत्तमत्वेऽपि अप्रधानीभूयः भक्तकामपूरणकर्तृत्वे असम्भावना विपरितभावना च सम्भवति. तदभावाय **‘‘असन्नेव स भवति’’**(तैत्ति.उप.२।६) इत्याद्युक्तम्. स्वानुभवाभावेऽपि गुरूपदेशादिनापि तदस्तित्वमात्रमपि यो जानाति तं ब्रह्मविदः सन्तं सत्त्वधर्मविशिष्टं वर्तमानञ्च विदुः इति अग्रे अवदद् **‘‘अस्ति ब्रह्मेति चेद्’’**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

एवं सति पूर्वोक्तरीत्या श्रुत्यर्थपरिष्कारे सति. **अप्रधानीभूय** ‘‘सह ब्रह्मणा’’ इत्यत्र भक्तस्य प्राधान्येन स्वयम् अप्रधानीभूय लीलाकरणेन. **असम्भावना** न इदं ब्रह्म परं किन्तु तद्विभूतिरूपः कश्चिद् अन्यएव भविष्यति अन्यथा स्वयम् अप्रधानीभूय न क्रीडेत इत्येवंरूपासम्भावना. **विपरीतभावना** ‘‘सह ब्रह्मणा’’ इत्यत्र ‘ब्रह्म’पदोपादानाद् अप्रधानत्वस्याऽपि बोधनाद् ब्रह्मैव मायिकं मायोपाधिकं विग्रहं स्वीकृत्य क्रीडते नतु आनन्दात्मकविग्रहेणाऽपि अन्यथा तस्य क्रीडायाम् अप्राधान्यं न स्याद् इति विपरीतभावना. **तदभावाय** परब्रह्मणि असम्भावनाविपरीतभावनयोः अभावाय. **‘‘असन्नेव स भवति. असद् ब्रह्मेति वेद चेद्. अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद. सन्तमेनं ततो विदुः’’** (तैत्ति.उप.२।६) इति उक्तम् इति अर्थः. श्रुतिपूर्वार्द्धेन उक्ताशङ्के निरस्य श्रुत्युत्तरार्द्धस्य अर्थं वक्तुम् आहुः **स्वानुभवे**त्यादि. **तदस्तित्वे**त्यादि. ‘अस्तित्वमात्र’पदेन ऐश्वर्यादिव्यवच्छेदः. **अग्रे** उत्तरार्धे. **अवदत्** श्रुतिवक्ता अवदत्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

मोदप्रमोदयोः पक्षरूपयोः पृष्ठे स्थितिः अक्षरस्यतु ततोऽपि दूरस्थितत्वम् इति अर्थः. एतावता प्रबन्धेन **‘‘ब्रह्मविदाप्नोति’’** इत्यारभ्य **‘‘ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा’’** इति एतदन्तम् ऋगर्थो वर्णितः. इतः परम् **‘‘असन्नेव स भवति’’** (तैत्ति.उप.२।६) इति श्रुतितात्पर्यम् आहुः **एवं सति** इत्यादिना **ज्ञायते** इत्यन्तेन. **असम्भावना** इति. भक्तः ब्रह्मणा सह क्रीडति इति उक्तम्, अत्र स्वतन्त्रस्य जगत्कर्तुः क्रीडायाम् अस्वातन्त्र्यं न सम्भवति इति अन्यएव कश्चित् स्याद् इति असम्भावना इति अर्थः. **विपरीतभावना** इति ब्रह्मपदोपादानेन ब्रह्मैव क्रीडति परन्तु सहभावोक्त्या स्वयं साक्षाद् आनन्दमयविग्रहेण न क्रीडति किन्तु रूपान्तरेण, भक्तस्यतु आनन्दाभासः इति विपरीतभावना इति अर्थः. **उक्तम्** इति. भावनाद्वयनिवारकम् **‘‘असन्नेव स भवति’’** इत्यादिवाक्यद्वयम् उक्तम् इति अर्थः. **‘‘अस्ति ब्रह्म’’** इति वाक्यार्थम् आहुः **स्वानुभवे**ति. **अवदद्** इति. श्रुतिः इति शेषः. असम्भावनादिनिवारकं यद् वाक्यद्वयं तस्य अग्रे ‘‘अस्ति ब्रह्मेति चेद्’’ इत्यादिना

(तैत्ति.उप.२।६)इत्यादिना. ब्रह्मासत्त्वज्ञाने असन् भवति इति उक्त्वा तदस्तित्वज्ञाने सन् भवति इति अनुक्त्वा, ‘‘**सन्तमेनं विदुः**’’ इति तत्त्वेन अन्यज्ञानं यद् उक्तं तेन उक्तपुरुषोत्तमानन्दानुभववन्तं ज्ञानक्रियाविशिष्टं जीवं वर्तमानं विदुः. अननुभवे केवलं गुरूपदेशादिना तादृग्ब्रह्मास्तित्वज्ञाने स्वरूपतः सन्तं तं विदुः नतु ज्ञानादिमन्तम्. तदसत्त्वज्ञाने तु अलीकतुल्यम् इति श्रुतितात्पर्यम् इति ज्ञायते.

एवं विचारचातुर्यवद्भिः सद्भिर्व्रजाधिपे।
आनन्दमयतानन्द-सन्दोहायावधार्यते।। ।।११।।

ननु आनन्दमयस्य न ब्रह्मता वक्तुं शक्या. मयटो लोके विकाराधिकार-विहितत्वाद् इति आशङ्क्य स्वयमेव परिहरति.

विकारशब्दान्नेति चेन्न प्राचुर्यात्।।१२।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तत्त्वेन सत्त्वेन वर्तमानत्वेन च इति अर्थः. **अन्यज्ञानं विदुः** इति क्रियाकर्तॄणां ज्ञानम्. उक्तसूत्रार्थम् उपसंहरन्ति **एवम्** इत्यादिना।।११।।

सूत्रान्तरम् अवतारयन्ति **ननु** इत्यादिना. **स्वयमेव** सूत्रकारएव. ननु पूर्वसूत्रेणैव आनन्दमयस्य अभ्यासेन अन्नमयाद्याध्यात्मिकेभ्यः उत्कृष्टाधिदैविकरूपत्वं साधितमेवेति किम् अनेन सूत्रेण सेत्स्यति ? इति अतः आहुः **अनेनैव** इत्यादि. **पूर्वसूत्रार्थः** आनन्दमयस्य

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

स्वानुभवाभावेऽपि इत्यारभ्य वर्तमानं च विदुः इति श्रुतिः अवदद् इति योजना. श्रुतिः यद् अवदद्, अन्ये विदुः इति, तस्याः तात्पर्यम् आहुः **तेन उक्तपुरुषोत्तमे**ति. **वर्तमानम्** इति. वर्तमानकालेऽपि तेषां सत्त्वम् अस्ति इति ज्ञापनार्थमन्यज्ञानं श्रुत्या उच्यते. **सन्तम्** इति. नतु वर्तमानम् इति अर्थः. तेन परानुभववतएव कालत्रयाबाध्यत्वम् इति भावः. अस्मिन् पक्षे परोक्षवादरूपे वर्णके भक्तानां विरहप्राबल्येन सर्वात्मभावः. तदनन्तरम् आनन्दमयप्राप्तिः इति आनन्दमयस्यैव ब्रह्मत्वम् इति वास्तिविके अर्थे आनन्दमयस्य पक्षिरूपेण कथनं परोक्षतयेति वेदस्य परोक्षवादत्वम् इति सर्वम् अनवद्यम्. इतः परं वेदान्तार्थविचारे क्रियमाणे अयमेव विचारः कर्त्तव्यः इति उपदिशन्ति **विचारे**ति. विचारे यत् चातुर्यं परोक्षवादेन ज्ञानं तदाश्रयैः. **अवधार्यते** इति. सद्भिः अवधार्यते इति कृत्वा सर्वैः अवधार्यताम् इति उपदेशः. एतावता प्रबन्धेन प्रथमसूत्रार्थो वर्णितः।।११।।

इतः परं सूत्रान्तरम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **विकाराधिकारे**ति. ‘‘**मयड्वैतयोः भाषायाम्**’’ (पाणि.सू.४।३।१४३) इतिसूत्रेण इति शेषः.

अनेनैव पूर्वसूत्रार्थः सिद्धो भविष्यति. विकारवाचि शब्दो ‘मयट्’प्रत्ययो यस्मिन् तद्विकारशब्दं तस्मात् तच्छब्दवाच्यं ब्रह्म न भवति. ब्रह्मणो अविकारित्वाद् **इति चेत्, न.** अत्र विकारे मयट्, किन्तु **प्राचुर्यात्.** प्राचुर्यम् अतति प्राप्नोतीति प्राचुर्यात्. तथाच पाणिनिः. **“तत्प्रकृतवचने मयट्”** (पाणि.सू.५।४।२१) प्राचुर्येण प्रस्तुतं वचनं तत् प्रकृतवचनं, तस्मिन् ‘मयट्’-प्रत्ययो भवति इति अर्थः. प्राचुर्येण पूर्वापेक्षयापि आधिक्येन **“को ह्येवान्यात् कः**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अविकृतब्रह्मतारूपः. सूत्रार्थम् आहुः **विकारवाची** इत्यादि. **तच्छब्दवाच्यं** विकारार्थकप्रत्ययान्तशब्दवाच्यम्. **अत्र** ‘आनन्दमय’शब्दे. **“तत्प्रकृतवचने मयट्”** (पाणि.सू.५।४।२१) इति पाणिनीयसूत्रार्थम् आहुः **तेन** प्राचुर्येण. **प्रस्तुतं** स्तुतिविषयीभूतम् ‘आनन्द’शब्दार्थरूपं वस्तु. **तद्वचनं** तद्वचनान्तबोधनं ‘मयट्’शब्देन. **तस्मिन्** इत्यादि. तथाच व्यापकानन्दबोधकानन्द–शब्दार्थः परब्रह्मानन्दरूपः तदर्थकएव अत्र ‘मयट्’प्रत्ययः इति पाणिनीयसूत्रार्थः सिद्धः. **पूर्वापेक्षया** अन्नमयादिचतुष्टयापेक्षया.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सूत्रम् आहुः **“विकारशब्दान्नेति चेन्न प्राचुर्यात्”**. आनन्दमयं ब्रह्म न भवति. कुतः? विकारशब्दाद् इति चेद्, न, कुतः? प्राचुर्याद् इति अन्वयः. **पूर्वसूत्रार्थः** आनन्दमयस्य ब्रह्मत्वम् इति सूत्रार्थः. सूत्रार्थम् आहुः **विकारवाची** इति. **विकारशब्दम्** इति. ‘आनन्दमय’पदम् इति शेषः. समाधानसूत्रार्थम् आहुः **किन्तु प्राचुर्याद्** इति. प्राचुर्याद् इत्यस्य प्रथमान्तत्वं स्वीकृत्य अर्थम् आहुः **प्राचुर्यम् अतति** इति. ‘आनन्दमय’ शब्दः इति शेषः. तथाच अत्र मयट्प्रत्ययः प्राचुर्यरूपम् अर्थं प्राप्नोति इति. प्राचुर्यार्थे मयट्प्रत्यय इत्यत्र प्रमाणम् आहुः **तथाच** इति. प्राचुर्ये मयड्विधायकं सूत्रम् आहुः **‘तत्प्रकृतवचने’**ति. सूत्रार्थम् आहुः **प्राचुर्येण** इति. अत्र कैश्चित् ‘तद्’ इति प्रथमान्तं स्वीकृत्य सूत्रार्थो वर्णितः. कैश्चित् ‘तत्’शब्दस्य प्रयोजनाभावं स्वीकृत्य, सूत्रार्थो वर्णितः. एतत् सर्वं मनसि निधाय, ‘तद्’ग्रहणसार्थक्यानुसारेण तत्प्रकृतवचने इत्यस्य अर्थम् आहुः **तत्प्रकृते**ति. तेन प्रकृतं तत्प्रकृतं, उच्यते इति वचनं, प्राचुर्येण प्रस्तुतस्य वचनं तत्प्रकृतवचनं तस्मिन् इति अर्थः.

ननु कुत्र प्राचुर्येण प्रस्तुतम् इत्यतः आहुः **“को ह्येव”** (तैत्ति.उप.२।७) इति. तथाच **“यद्येष आकाश आनन्दो न स्याद्”** (तैत्ति.उप.२।७) इति अग्रिमवाक्यस्थानन्दपदबोध्यानन्दस्यैव पूर्ववाक्येन स्तवनमते मयट्प्रत्ययः पूर्वभावापेक्षया ‘मयट्’प्रत्ययेन

प्राण्यात्'' (तैत्ति.उप.२।७) इति वाक्ये प्रकर्षेण स्तुतम्. अतो मयट् पूर्वापेक्षया प्राचुर्यमयते. एकदेशनिर्देशेन तदर्थलक्षणया प्राचुर्यः. प्राचुर्येण प्रस्तुतार्थ-वाचकत्वाद् इति अर्थः इति वा. छन्दसि द्व्यज्-व्यतिरिक्तस्थले मयटो विकारे विधानाभावात् व्याकरणमपि अर्थनिर्णायकम्. विज्ञानमयानन्दमयशब्दौ पश्यन्नपि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अयते गमयत इति अर्थः. ननु 'आनन्दमय'शब्दे 'मयट्'प्रत्ययः प्राचुर्यार्थकएव अस्तु तथाऽपि सः प्राचुर्यमेव बोधयेद् नतु प्रचुरानन्दम् इति अतः आहुः **एकदेशे**त्यादि. तथाच यथा **''सोमेन यजेत''** (   ) इत्यत्र 'सोम'पदस्य मत्वर्थलक्षणया धर्मिबोधकता तद्वद् मयटोऽपि मत्वर्थलक्षणया प्राचुर्यविशिष्टानन्द-बोधकता इति अर्थः. **प्राचुर्यः** प्राचुर्यवान् इति अर्थः. 'प्राचुर्याद्' इति पञ्चमीपक्षे मयटा शक्त्या धर्मिबोधनार्थम् आहुः **प्राचुर्येण** इत्यादि. तथाच प्राचुर्येण प्रस्तुतः **''को ह्येवान्याद्''** (तैत्ति.उप.२।७) इत्यादिना स्तुतः प्रचुरानन्दः तद्वाचकः इति. तथाच वैयाकरणानां मते प्रत्ययानां विशिष्टे शक्तिः विशिष्टस्य प्रकृत्यर्थे अभेदेन अन्वयः. इत्थञ्च शक्त्या मयट् प्राचुर्यवतो बोधकः. प्राचुर्यवतश्च 'आनन्द'शब्दार्थे अभेदेन अन्वयः इति परिष्कारो बोधकः. एवं 'मयड्' इति शक्त्यैव प्रचुरानन्दं धर्मिणं बोधयति इति अर्थः. अत्रत्यमयटो विकारार्थत्वाभावे गमकम् आहुः **छन्दसि** इत्यादि. 'मयट्' इत्यस्य अनन्तरं विकारार्थस्य इति शेषः. छन्दसि द्व्यज्व्यतिरिक्ताद् अचः सकाशाद् मयटो विकारार्थत्वे बाधम् आहुः **व्याकरणम्**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आधिक्यं बोध्यते इति भावः. **पूर्वापेक्षया** इति. 'मयट्'प्रत्ययात् पूर्वं केवलानन्दशब्दाद् आनन्दएव बोध्यते तदनन्तरं ''यद्येष''इति वाक्ये स्तवनेन आधिक्यबोधनार्थं 'मयट्'-प्रत्यये कृते तदनन्तरं प्राचुर्यम् अयते बोध्यते इति भावः. ननु 'आनन्दमयः' इत्यत्र प्राचुर्यविशिष्टानन्दो बोध्यते प्राचुर्याद् इति, प्रथमान्तपक्षे 'मयट्'प्रत्ययेन प्राचुर्यरूपधर्मो बोध्यते इति वैषम्यम् इत्यतः आहुः **एकदेशे**ति. **तदर्थलक्षणया** इति प्राचुर्यविशिष्टार्थे लक्षणया इति अर्थः. प्राचुर्यः प्राचुर्यविशिष्टः इति अर्थः. वस्तुतस्तु प्राचुर्याद् इति, पञ्चम्यन्तपक्षस्यैव आदृतत्वेन आहुः **प्राचुर्येण** इति. **इति अर्थः** इति. प्राचुर्याद् इत्यस्य अर्थः इति अर्थः. ननु **''नित्यं वृद्धशरादिभ्यः''**(पाणि.सू.४।३।१४४) इति सूत्रे **''मयड्वैतयोः भाषायाम्''**(पाणि.सू.४।३।१४३) इति सूत्राद् भाषायाम् इति अनुवर्तते. तथाच 'आनन्द'शब्दस्य वृद्धत्वाद् वेदे विकल्पेन विकारे 'मयट्'प्राप्नोति इत्यतः आहुः **छन्दसि** इति. **अर्थनिर्णायकम्** इति. छन्दसि बह्वच्स्थले विकारे मयट् नैव जायते इति

पाणिनिः “**मयड्वैतयोः भाषायां**” (पाणि.सू.४।३।१४३) “**द्व्यचश्छन्दसि**” (तत्रैव ४।३।१५०) इति कथम् अवोचत्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्यादिना. **द्व्यचः** इत्यादि एतयोः अर्थयोः छन्दसि द्व्यचएव भवति त्यचः प्रभृति सकाशात्तु विकारार्थको न भवेदेव इति अर्थः.

पाणिनीयानुशासनस्य प्रस्तुतं समाप्य मतान्तरं दूषयितुम् उपन्यस्यन्ति **अत्र** इति. **केचित्** शङ्कराचार्याः. अत्र आनन्दमय इत्यत्र ‘मयट्’ प्रत्यये. तथाहि अत्र अन्नमयादि-विज्ञानमयान्तप्रायपाठाद् ‘आनन्दमय’शब्दस्य प्राचुर्यार्थत्वं ब्रह्मार्थत्वं वा वक्तुं न शक्यते, प्रायपाठविरोधाद् आकस्मिकार्थत्वापत्तेश्च, ब्रह्मप्रपाठकपठितत्वाद् ब्रह्मत्वाङ्गीकारे अन्नमयादीनामपि ब्रह्मत्वापत्तिः. अन्नमयादीनाम् अन्यो आन्तरः आत्मा उक्तः आनन्दमये सो अन्यो न उक्तइति तत्र ब्रह्मत्वाङ्गीकारे आनन्दमयस्यैव शिरःपुच्छान्तोक्तावयव-रूपत्वम् अवयविरूपत्वं स्वीकार्यम्. इदञ्च सर्वथा विरुद्धम्, ऐक्ये अवयवावयविभावासम्भवात्. किञ्च तस्मिन् अवयवसम्बन्धाङ्गीकारे सर्वविशेषवत्वं स्याद् नतु निर्विशेषब्रह्मत्वम् इतोऽपि इष्टासिद्धिः. किञ्च मोदप्रमोदाद्यवयवविशिष्टस्य सर्वत्र प्रसिद्धत्वाद् “**असन्नेव स भवति. असद् ब्रह्मेति वेद चेद्**” (तैत्ति.उप.२।६) इति श्रुत्युक्तासत्वोक्तिरपि तस्मिन् न सम्भवतीति अतोऽपि अतिरिक्तं ब्रह्म वाच्यम्. किञ्च तादृशसावयवस्य सर्वत्र सर्वैः प्रतिपाद्यत्वाद् “**यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह**” (तत्रैव२।९) इति श्रुतिविरोधोऽपि. अन्यच्च, यत्र ब्रह्मणि “**नान्यत् पश्यति नान्यत् श्रुणोति नान्यद् विजानाति**”(छान्दो.उप.७।२४।१) इति सुखैकरसे भूम्नि ब्रह्मणि अधिकारतारतम्येन तरतमभावापन्नमोदप्रमोदादीनाम् उपपादनमपि विरुद्धतरं स्यात् तदात्मकत्वे ब्रह्मस्वरूपेऽपि तरतमभावापत्तेः अतो न आनन्दमयस्य ब्रह्मत्वं वक्तुं शक्यम्. “**सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म**”(तैत्ति.उप.२।१) इति श्रुतौ “**एको देवः सर्वभूतेषु गूढः, सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा**”(श्वेता.उप.६।११) इति श्रुतौ च ब्रह्मणो अनन्तैकत्वयोः श्रवणात्. किञ्च उक्तो अभ्यासोऽपि आनन्दस्यैव नतु आनन्दमयस्याऽपीति अतोऽपि न आनन्दमयस्य ब्रह्मत्वम्. “**तमेतम् आनन्दमयम् आत्मानम् उपसंक्रामति**”(तैत्ति.उप.२।८) इति एतदपि प्राणमयादिसंक्रमणप्रवाहपठितत्वाद् न ब्रह्मत्वसाधकम्, अतो न

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अर्थनिर्णायकम् इति अर्थः. अस्मिन् अर्थे उपष्टम्भकम् आहुः **विज्ञानमये**ति. छन्दसि अचोऽपि विकारे यदि ‘मयट्’ स्यात् तदा ‘**द्व्यचश्छन्दसि**’ (पाणि.सू.४।३।१५०) इति द्व्यचः सकाशादेव मयड्विधायकशास्त्रं न प्रणयेद् इति भावः.

अत्र केचित् सर्वविप्लववादिनो विकारार्थत्वं वदन्ति, श्रुतिसूत्रादीनाम् अर्थाज्ञानात्. तद् वेदाद्यर्थविद्भिः भगवतो नवमावतारकार्यं ज्ञात्वा उपेक्ष्यम्. यो अर्थः तम् अवोचाम।।१२।।

शब्दबलविचारेण मयटो विकारार्थत्वं निवारितम्. अर्थबलविचारेणापि निराकरोति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आनन्दमयो ब्रह्म इति पूर्वः पक्षः.

समाधानन्तु अधिकरणसमाप्तौ भविष्यतीति अत्र उपेक्षामात्रम् उक्तम्. **सर्वविप्लववादिनः विकारार्थत्वं** त्र्यचो मयटो विकारार्थत्वम्. **श्रुतिसूत्रे**त्यादि. उपसंहारे ''**तमेतम् आनन्दमयमात्मानम् उपसंक्रामति**'' इति श्रुतिः. **सूत्रं** ''**विकार–शब्दाद्**'' इति. ''**तत्प्रकृतवचने**'' इत्यादिव्याकरणसूत्रं च. तेषां अर्थस्य पूर्वविवृतस्य अज्ञानात्. तत् सर्वस्य जगतो नामरूपात्मकस्य मिथ्यात्ववादिनो मतम्. **नवमावतारकार्यं** बुद्धावतारस्य वेददूषणरूपं कार्यम्. **यो अर्थः** इत्यादि. तथाच पूर्वसूत्रे 'अभ्यासाद्' इति उक्तत्वाद् आनन्दमयस्य परब्रह्मत्वं साधितम्. एतत्सूत्रेतु प्राचुर्यादियुक्तेः पञ्चस्वपि मयटो प्राचुर्यार्थकथने बाधकाभावेन सर्वत्र प्राचुर्यार्थकथने आनन्दमयशब्देऽपि एतदर्थस्य प्रायपाठेनैव सिद्धान्तित्वाद् विकारार्थत्वं सुदूरं पराहतमेव इति अयम् अर्थः तम् **अवोचाम** अवदाम इति अर्थः।।१२।।

सूत्रम् अवतारयन्ति **शब्दबले**त्यादिना. शब्दबलं व्याकरणबलं तद्विचारेण इति अर्थः. **निवारितं** पूर्वसूत्रे निवारितम्. **अर्थबले**त्यादि. अर्थस्य शेषित्वेन तद्बलस्याऽपि प्रधानत्वात् तद्विचारेण इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अत्र शाङ्करमतम् आहुः **अत्र केचिद्** इति. **सर्वविप्लववादिनः** सर्वं मायिकम् इति वादिनः. **नवमावतारकार्यम्** वेददूषणरूपं बुद्धावतारकार्यम्. **अवोचाम** इति व्याकरणानुसारेण सिद्धो यः प्राचुर्यार्थक'मयट्'प्रत्ययेन आनन्दमयस्य ब्रह्मत्वरूपार्थः तम् अवोचाम इति अर्थः ।।१२।।

सूत्रान्तरम् अवतारयन्ति **शब्दबले**ति. व्याकरणबलत्वञ्च श्रुतिस्मृतिसिद्धम्. तथाहि, ''**ताम् इन्द्रो मध्यतोपक्रम्य व्याकरोत् तस्माद् इयं व्याकृता वा गुह्यते**'' (तैत्ति.संहि.६।४।७।४) इति षष्ठाष्टके तैत्तिरीये श्रुतिः. ''**मुखं व्याकरणम्**'' (   ) इति स्मृतिः.

तद्धेतुव्यपदेशाच्च।।१३।।

हेतुत्वेन व्यपदेशो हेतुव्यपदेशः. तस्य हेतुव्यपदेशः **तद्धेतुव्यपदेशः** तस्मात्. ‘‘**एष ह्येवानन्दयाति**’’ (तैत्ति.उप.२।७) इति. आनन्दयति इति अर्थः. सर्वस्यापि विकारभूतस्य आनन्दस्य अयमेव आनन्दमयः कारणम्. यथा विकृतस्य जगतः कारणं ब्रह्म अविकृतं सच्चिद्रूपं एवमेव आनन्दमयोऽपि कारणत्वाद् अविकृतो अन्यथा तद्वाक्यं व्यर्थमेव स्यात्. तस्माद् न आनन्दमयो विकारार्थः. ‘च’कारः समुच्चयं वदन् सूत्रद्वयेन एको अर्थोमध्ये प्रतिपादितः इति आह।।१३।।

ननु किमिति निर्बन्धेन सूत्रत्रयेण एवं वर्ण्यते? अन्नमयादिवद् उपासनापरत्वेनापि श्रुत्युपपत्तेः पक्षपुच्छादित्वेन मोदप्रमोदादीनाम् उक्तत्वाच्च. तस्मात् ब्रह्मत्वेन साधितमपि आवश्यकोपपत्यभावात् न ब्रह्मपरत्वम् इति प्राप्ते

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सूत्रार्थेन सिद्धान्तम् आहुः **हेतुत्वेन** इत्यादि. ‘‘एतस्यैव अन्यानि भूतानि मात्राम् उपजीवन्ति’’(बृह.उप.४।३।३२) इति श्रुत्या आनन्दमयस्यैव अन्यानन्दहेतुत्वेन व्यपदेशः श्रुतौ उक्तिः. **एष ह्येव** सन्निधानाद् आनन्दमयएव. **कारणत्वाद्** उक्तसकलेतरानन्दकारणत्वात्. **अन्यथा** सकलेतरेषाम् आनन्दे आनन्दमयस्य अहेतुत्वे. **तद्वाक्यम्** ‘‘**एतस्यैव आनन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्राम् उपजीवन्ति**’’ इतिवाक्यम्. **विकारार्थः** विकाररूपो अर्थः. **चकारः** सौत्रश्चकारः. **समुच्चयम्** आनन्दमये अविकारित्वसमुच्चयम्. **मध्ये** अधिकरणमध्ये. **इति आह चकारः** इमम् अर्थम् आह इति अर्थः।।१३।।

सूत्रम् अवतारयन्ति **ननु किम्** इत्यादिना. **सूत्रत्रयेण** आनन्दमयसूत्रम् आरभ्य तद्धेतुसूत्रान्तसूत्रत्रयेण इति अर्थः. एवं आनन्दमयस्य परब्रह्मत्वम्. **उपासनापरत्वेन** आनन्दमयस्य फलत्वानङ्गीकारेण, उपासनार्थत्वनिर्वचनेनाऽपि इति अर्थः. **उक्तत्वाच्च** उपासनार्थम् उक्तत्वाच्च इति अर्थः. **साधितम्** आनन्दमयस्य इदं साधितम्. **न ब्रह्मपरत्वम्** ‘आनन्दमय’शब्दस्य न ब्रह्मार्थत्वम्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सूत्रार्थम् आहुः **हेतुत्वेन** इति. व्यपदेशवाक्यम् आहुः **तद्वाक्यम्** इति. ‘‘**एष ह्येव आनन्दयाति** ’’ (तैत्ति.उप.२।७) इति वाक्यम् इति अर्थः।।१३।।

अग्रिमं सूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **अन्नमयादिवद्** इति. एतेन प्रकरणबलं सूचितम्. लिङ्गबलम् आहुः **पक्षे**ति. **साधितमपि** इति. आनन्दमयपदम् इति शेषः. **ब्रह्मपरत्वम्** इति. अर्हति इति शेषः.

अभिधीयते.

मान्त्रवर्णिकमेव च गम्यते।।१४।।

''सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म. यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्. सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता'' (तैत्ति.उप.२।१) इति मन्त्रः. मन्त्रेण अभिधया वृत्त्या प्रतिपाद्यं **मान्त्रवर्णिकम्.** तदुपपादनग्रन्थे तदेव मुख्यतया ज्ञायते. यत्र यदुद्दिष्टं तदेव मुख्यतया ज्ञातव्यम्. उपपादनीयं च सन्दिग्धम्. तत्र **''ब्रह्मणा विपश्चिता''** इति सन्दिग्धं सर्वज्ञं ब्रह्म.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ननु अनेन मन्त्रेण कथम् अभिधया आनन्दमयः प्रतिपाद्यते? तत्र आहुः **तदुपे**त्यादि. आनन्दमयप्रतिपादके सकलब्रह्मप्रपाठके इति अर्थः. 'आनन्दमय'शब्द-प्रतिपाद्यं ब्रह्मैव. आनन्दमयस्य मुख्यत्वे उपपत्तिम् आहुः **यत्र यद्** इत्यादि. **यत्र** प्रकृते ब्रह्मप्रपाठके. **तदेव** प्रकृते आनन्दमयमेव. **उपपादनीयं** सम्पूर्णब्रह्मप्रपाठकेन उपपादनीयम्. **सन्दिग्धं** ''ब्रह्मविदाप्नोति परम्'' इत्यत्र आनन्दमयप्रतिपादकं 'पर'पदं द्वितीयान्तं ''ब्रह्मणा विपश्चिता'' इत्यत्र 'ब्रह्म'पदं तृतीयान्तम् इति 'पर'पद-'ब्रह्म'पदयोः सामानाधिकरण्येन आनन्दमयरूपैकार्थप्रतिपादकत्वं सन्दिग्धम्. सन्देहे बीजम् आहुः तत्र इत्यादि. तथाच **''सह ब्रह्मणा विपश्चिता''** इति विवरणऋचि मुख्यतया भक्तस्य फलभोक्तृत्वम् उक्तम्, ब्रह्मणस्तु गौणतया इति. **''ब्रह्मविदाप्नोति परम्''** इत्यत्र च फलस्य परत्वेन मुख्यतया इति 'ब्रह्म'पदवाच्यं फलवाक्योक्तं परमेव तदन्यद् वा इति रीत्या सन्दिग्धम् इति अर्थः. **सर्वज्ञं ब्रह्म** 'ब्रह्मणा' इति तृतीयान्तेन

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सूत्रम् आहुः **''मान्त्रवर्णिकमेव च गम्यते''**. मन्त्रम् आहुः **सत्यम्** इति. 'मान्त्रवर्णिक'पदस्य अर्थम् आहुः **मन्त्रेण** इति. अभिधया इत्यनेन लक्षणाव्यवच्छेदः. तदुपपादनग्रन्थे मन्त्रव्याख्यानरूपे सम्पूर्णे ब्रह्मवित्प्रपाठके. **तदेव** इति. मान्त्रवर्णिकम् आनन्दमयमेव इति अर्थः. ननु सन्दिग्धस्यैव व्याख्यानं लोके प्रतीयते, ब्रह्मणस्तु फलत्वांशे सन्देहाभावाद् किमर्थं व्याख्यानम् इत्यतः आहुः **उपपादनीयम्** इति. ब्रह्मणः फलत्वेन उपपादनं सन्दिग्धम् इति अर्थः. सन्देहं स्फुटीकुर्वन्ति **तत्र** इत्यादिना. **सर्वज्ञं ब्रह्म** इति. **इदम् उपपाद्यते** इत्यनेन अन्वितम्. तथाच **''सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता''** (तैत्ति.उप.२।१) इतिमन्त्रे द्वितीयान्तानां कामानां फलत्वं ज्ञायते. ब्रह्मणस्तु सहभूतत्वेन गौणत्वम् अतः तस्य फलत्वांशे सन्देहः इति अर्थः. ननु अस्तु मन्त्रे सन्देहः

तस्य हि फलत्वं वाक्ये न उपपाद्यते. फलन्तु सर्वैः स्तुतः आनन्दः. अभ्यासात् स्तुतत्वम् इति अवोचाम. शिरःपाण्यादिकन्तु स्तुत्यर्थमेव पुरुषविधत्वाय.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

प्रतिपाद्यं सर्वज्ञं ब्रह्म इति अर्थः. वाक्येन ''ब्रह्मविद्'' इति वाक्येन.

ननु 'पर'–'ब्रह्म'पदयोः श्रवणेऽपि आनन्दमयस्य कथं फलत्वं लब्धम्? इति अतः आहुः **फलन्तु** इति. **सर्वैः** सर्वैः प्रकारैः. प्रकारस्तु आनन्दमयस्य अभ्यस्तत्वं सर्वान्तरत्वप्रतिपादनम् अग्रे प्रश्नाभावेन सर्वाधिकत्वबोधनं च इति. **स्तुतः** अत्युत्कृष्टत्वेन बोधितः. अभ्यासाद् इति. इदन्तु ''को ह्येव'' इत्यादिना उक्तं पूर्वम्. ननु आनन्दमयस्य फलत्वे अमूर्तानन्दत्वेनैव उपपादनं स्याद् नतु शिरःपाण्यादिमत्वेन, अतो ज्ञायते उपासनार्थमेव आनन्दमयोक्तिः इति अतः आहुः **शिर** इत्यादि. स्तुतितात्पर्यम् आहुः **पुरुषे**त्यादि. तथाच आनन्दमयस्य **आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादि** पुरुषोत्तमस्वरूपता–बोधनतात्पर्येण तथा कल्पनया उपदेशः कृतो नतु उपासनार्थमिति न काचित् फलत्वे

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

'ब्रह्मविद्' इति वाक्येतु सन्देहाभावात् किमर्थं प्रपाठकरूपं व्याख्यानम्? इत्यतः आहुः **तस्य हि** इति. ब्रह्मणः इति अर्थः. **वाक्ये** ''ब्रह्मविद् आप्नोति परम्'' इति वाक्ये. **न उपपाद्यते** इति ब्रह्मणः फलत्वेन उपपादनं न क्रियते. किन्तु साधनशेषत्वेन, तत्रतु परस्यैव फलत्वेन प्रतिपादनाद् इति अर्थः. यद्वा, उपपादनीये सन्देहम् उपपादयन्ति **तत्र** इत्यादि **उपपाद्यते** इत्यन्तेन. तत्र, मन्त्रे ''**ब्रह्मणा विपश्चिता**'' इति पदद्वयं तत्र 'ब्रह्मणा' इति शब्देन सन्देहविषयीभूतं 'विपश्चित्'शब्देन च सर्वज्ञं ब्रह्म उपपाद्यते. तस्यैव हि इत्यत्र 'हि'कारः एवार्थे. वाक्येन इति तृतीयान्तम्. तथाच वाक्येन 'ब्रह्मविद्' इति वाक्येन तस्यैव सर्वज्ञः ब्रह्मणएव 'पर'शब्दप्रतिपाद्यं फलत्वम् उपपाद्य इत्यस्य आवृत्त्यान्वयो बोध्यः. एवञ्च पूर्ववाक्ये 'पर'शब्दप्रतिपाद्यफलस्य ब्रह्मणा सह इत्यनेन गुणभूतत्वोक्त्या सन्देहः फलस्य मुख्यत्वाद् इति भावः. तथाच स्फुटतया ब्रह्मणः फलत्वानुक्तौ प्रपाठकरूपे व्याख्याने ब्रह्मणः प्रचुरानन्दत्वेन फलत्वोक्तिः इति भावः. प्रपाठकार्थमेव आहुः **फलन्तु** इत्यादिना **मान्त्रवर्णिकमेव** प्रतीयते इत्यन्तेन. **सर्वैः** इति. सर्वान्तरत्वाभ्यासादिसर्वैः प्रकारैः इति अर्थः. ननु शिरादिकल्पनया उपासनार्थत्वं स्याद् इत्यतः आहुः **शिरः** इति. तथाच शिरःपाण्यादिकल्पना उपासनार्था नास्ति इति भावः. ननु शिरःपाण्यादिना कथं स्तुतिः ज्ञायते? इत्यतः आहुः **पुरुषविधत्वाय** इति. पुरुषाकारत्वाय इति अर्थः. यदि स्वयं पुरुषाकारश्चेद् उपरितनः अन्नमयान्तः सर्वोऽपि पुरुषाकारो भवति इति. इदञ्च ''**तस्य पुरुषविधताम्, अन्वयं पुरुषविधः**'' इति श्रुत्या ज्ञायते इति भावः. आनन्दमयस्य

लोके हि अन्तर्भूतं बहिः वेष्टितं च तदाकारं भवति. जीवो अत्र मुख्यः, कर्तृत्वेन व्यपदेशात्. सच वस्तुतो हंसरूपः. पुरुषाधिकारकं हि शास्त्रम्. तेन पुरुषशरीरे

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अनुपपत्तिः इति भावः. **पुरुषविधत्वाय** आनन्दमयस्य पुरुषविधत्वे हि विज्ञानमय-मनोमयप्राणमयान्नमयानां आनन्दमयोपर्युपरितनानां वेदोक्तं पुरुषविधत्वं सम्भवेत् तत्त्वाय इति अर्थः. ननु आनन्दमयस्य पुरुषविधत्वे इतरेषां पुरुषविधत्वं कथं स्याद्? इति अतः आहुः **लोके हि** इत्यादि. **अन्तर्भूतम्** इत्यादि. तथाच लोके सिक्थप्रतिमां कृत्वा, तां मृदा वेष्टयित्वा, सिक्थं बहिः निःसार्य, तन्मूषायां धातुरसानां पूरणे अन्तर्भूतसिक्थाकारा प्रतिमा भवति. एवं बहिः पुरुषादौ सीवित-वस्त्रादिकं च तदाकारं भवति. इत्थञ्च प्रकृते तादृशो अयं देहः तत्र देहे आन्तरः तादृशः कश्चिद् अस्ति यद् उपरि समागता अन्नरसादयः पुरुषाकाराः भवन्ति, नियामकाभावेतु सर्वे राशीभूता भवेयुः. अत्रतु श्रुतौ ''**तस्माद् वा एतस्माद् अन्नरसमयाद् अन्योन्तरात्मा प्राणमयः तेनैष पूर्णः स वा एष पुरुषविधएव तस्य पुरुषविधताम् अन्वयं पुरुषविधः**''(तैत्ति.उप.२।२) इत्यादौ आन्तरेण पुरुषविधेन प्राणमयेन अन्नमयस्य पुरुषविधता उक्ता. एवम् उत्तरोत्तरम् आनन्दमयस्य पुरुषविधतया इतरेषां चतुर्णां पुरुषविधता अवसेया. **अत्र मुख्यः**. **अत्र** फलभोगे. **मुख्यः** फलभोग-कर्तृत्वाद् मुख्यः. **व्यपदेशात्** ''**सोऽश्नुते**'' इति श्रुतौ **सः** इत्यनेन जीवस्य व्यपदेशात्. **सच** जीवश्च. **वस्तुतः** इति उपलक्षणतया उपासनार्थम् अवास्तवं हंसरूपत्वम् अत्र उक्तम् इति कस्यचिद् मतनिराकरणाय उक्तम्. तत्र वास्तवत्वे प्रमाणन्तु ''**द्वासुपर्णौ**'' (श्वेता. उप.४।६) इति श्रुतिः, ''**एवं स मानसो हंसो हंसेनैव प्रबोधितः**'' (भाग.पुरा.४।२८।२४)

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

पुरुषाकारत्वे सर्वेषां पुरुषाकारत्वं भवति इत्यत्र लौकिकीं युक्तिम् आहुः **लोके हि** इति. मूषानिषिक्तप्रतिमादौ अन्तर्भृतं सीवितवस्त्रप्रतिमादौ च बहिर्वेष्टितं तदाकारं भवति इति लोके हि प्रसिद्धम् इति अर्थः. वेदेतु ''**तस्माद्वा एतस्माद् अन्नरसमयाद्**'' इत्यादिना प्राणमयस्य पुरुषविधताम् उक्त्वा तेन पूर्णत्वम् अन्नमयस्य उक्तं लोकवद्बोध्यम्.

ननु एतावता आनन्दस्य स्तवनं कथं सिद्धम्? इत्यतः आहुः **जीवः** इति. **अत्र** शास्त्रप्रवृत्तौ. ननु कथं तस्य मुख्यता ज्ञायते? इत्यतः आहुः **कर्तृत्वेन** इति. ''सोऽश्नुते'' इतिश्रुत्या भोगकर्तृत्वस्य उक्तत्वात्. **सच** जीवश्च. **वस्तुतः** इति. ''**द्वा सुपर्णौ**'' (ऋक्.संहि.१।१६४।२०, श्वेता.उप.४।६) इति श्रुत्या उभयोरपि हंसरूपत्वाद् जीवस्यापि वास्तविकं हंसरूपत्वम् इति अर्थः. ननु अस्तु तावता शास्त्रप्रवृत्तौ, जीवस्य मुख्यता कथम्? इत्यतः आहुः **पुरुषाधिकारकम्** इति. शास्त्रप्रवृत्तिः हि जीवस्य

तदाकारः सर्वं फलं प्राप्नोति. अतः पुरुषं हंसरूपेण अनुवर्णयति. पञ्चस्वपि शारीरः आत्मा जीवः एकएव. तत्र अन्नमये निःसन्दिग्धत्वात् ‘‘**तस्यैषएव**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इति स्मृतिश्च. **पुरुषाधिकारकम्** इत्यादि. तथाच पुरुषाधिकारेण प्रवृत्तं शास्त्रं यदि पुरुषं प्रति अर्थवद् न भवेद् व्यर्थमेव स्यादिति जीवस्य फलभोगार्थं शास्त्रप्रवृत्तिः. तत्र विजातीयाकारेषु तद्विजातीयाकाराणां रसोदयभोगयोः असम्भवाद् भगवानपि पुरुषो जीवस्य अन्तर्निविष्टः आनन्दमयः ततः तद्वेष्टनरूपो जीवोऽपि विज्ञानमयः पुरुषाकारो जातः. **तेन** आनन्दमयपुरुषवेष्टनरूपत्वेन. **तदाकारः** प्राप्तपुरुषाकारो जीवः. **सर्वं फलं** दृष्टान्ते लौकिकं सर्वं, दार्ष्टान्तिके वैदिकं सर्वं फलम् इति अर्थः. अतः पञ्चस्वपि कोशेषु फलभोगप्रवेशयोः समानत्वात्. **पुरुषं** जीवं तन्नियामकं परमात्मानं च इति अर्थः. **एकएव** फलभोक्ता एकएव इति अर्थः. ननु ‘‘**तस्यैष शारीर आत्मा यः पूर्वस्य**’’ (तैत्ति.उप. २।६।२) इति प्राणमयादिषु प्रदर्शनं कृतं तथा अन्नमये कुतो न कृतम्? अतः आहुः **तत्र** इत्यादि. **तत्र** पञ्चानां मध्ये. तथाच लौकिकान्नमयकोशस्य शरीरत्वस्य एकात्म–

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ब्रह्मज्ञानार्थं, तच्च ज्ञानं जीवस्य पुरुषाकारत्वे सति भवति. शास्त्रस्य च फलम् उपदेशः, तस्य च पुरुषाधिकारकत्वात्. अतो जीवस्य हंसरूपत्वेऽपि पुरुषाकारत्वं, ततः ज्ञानसम्पत्तिः इति अर्थः. तथाच तस्य ब्रह्मणा सह सर्वकामोपभोगकर्तृत्वं सम्पद्यते इति मुख्यत्वम् इति अर्थः. ननु अस्तु तावता आनन्दमयस्य हंसाकारत्वं किमर्थम्? अतः आहुः **तेन** इति. तेन कारणेन इति अर्थः. **तदाकारः** हंसाकारः इति अर्थः. तथा जीवः पुरुषशरीरे हंसाकारः सर्वफलभाक् भवति इति अर्थः. **अतः** इत्यतः कारणादेव इति अर्थः. **पुरुषं** परमात्मानम्. **हंसरूपेण** हंसाकारत्वेन इति अर्थः. **अनुवर्णयति** श्रुतिः इति शेषः. तथाच पुरुषः परमात्मा हंसरूपे जीवे हंसाकारः सन् प्रविष्टः समतां विना फलानुभवाभावात्. एवञ्च पुरुषवेष्टनेन जीवस्यापि पुरुषाकारत्वं तेन सर्वफलभोक्तृत्वं सिद्ध्यति. हंसाकारः परमात्मा फलम् अनुभावयति इति भावः. तथाच राज्ञा अल्पस्य जनस्य सुखार्थं कश्चन व्यापारः कृतः चेत् तस्य यथा स्तुतिः एवं जीवस्य फलभोगार्थम् एवं कृतः चेद् भगवतः स्तवनं सिद्ध्यति इति भावः.

ननु एतावता जीवार्थम् आनन्दमयस्य भगवतः पुरुषविधत्वम् अस्तु नाम परन्तु अन्नमयादीनां किमर्थम्? इत्यतः आहुः **पञ्चस्वपि** इत्यादिना. पञ्चसु फलरूपासु अन्नमयादिविभूतिषु इति अर्थः. **एकएव** इति. फलभोक्ता जीवः एकएव इति अर्थः. तथाच हंसरूपजीवस्य शास्त्राधिकारार्थं पुरुषविधत्वं तच्च आनन्दमयस्य पुरुषविधत्वं

आत्मा’’ इति न उच्यते. द्वितीयादिषु प्रथमोक्तमेव अतिदिश्यते. तत्र अन्नमये

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

भोग्यत्वस्य च सर्वजनसिद्धत्वाद् लौकिकान्नमयकोशेऽपि शरीत्वैकात्मभोग्यत्वयोः तद्दृष्टान्तेनैव सिद्धत्वाद् **न उच्यते** इति फलितम्.

द्वितीयादिषु प्राणमयादिषु. **प्रथमोक्तं** शरीरत्वैकात्मभोग्यत्वम्. **हस्तेन** इत्यादि. ‘‘**यः पूर्वस्य**’’ इत्यनेन हस्तेन प्रदर्शयन्निव इति अर्थः. एवम् अन्नमयनिष्ठपञ्चावयवत्वादिकं प्राणमयादिषु अतिदिश्य अतिदेशदृढत्वार्थम् अग्रेऽपि

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

विना न सम्भवति, तस्यापि तथात्वम्. एवञ्च पञ्चात्मा फलरूपः आनन्दमयः. शरीरः इत्यादिपुरप्रवेशवर्णनन्तु फलरूपस्य भगवतः पञ्चसु प्रवेशं विना तेषां फलत्वं न सम्भवति इत्यतः पञ्चापि उक्तफलरूपा व्यापकाएव बोध्याः. अतएव तैत्तिरीयोपनिषदि ‘‘**अन्नात् प्राणा**’’(महाना.उप.१७।१) भवन्ति इति उपक्रम्य ‘‘**स वा एष पुरुषः पञ्चधा पञ्चात्मा येन सर्वमिदं प्रोतं पृथिवीं चान्तरिक्षं च**’’(महाना.उप.१७।१४) इत्यादिना विभूतिरूपपञ्चविधत्वज्ञानेन क्रममुक्तिरपि उक्ता. एवञ्च ब्रह्मज्ञानिजीवः तत्पञ्चकोशाद् उत्क्रम्य क्रमेण अन्नमयादिषु विभूतिषु फलरूपासु भोगार्थं प्रविश्य अन्ते आनन्दरूपो भवति इति अयम् अर्थो वर्णितः प्रपाठके. अतएव श्रीभागवतेऽपि ‘‘**आनन्दमानन्दमयो अवसाने**’’(भाग.पुरा.२।२।३१) इत्यनेन अयमेव अर्थो वर्णितः. इत्थञ्च मान्त्रवर्णिकः आनन्दएव इति सिद्धम्. भक्तस्यतु ‘‘**बहिश्चेत् प्रकटः स्वात्मा वह्निवत् प्रविशेद् यदि**’’ (सन्न्या.निर्ण.११) इति उक्तत्वाद् अस्मिन् देहेएव सर्वेषां विभूतीनां भोगः. प्राकट्याभावेतु शरीरत्यागानन्तरम् अलौकिकदेहप्राप्त्या क्रमेण सर्वोपभोगानन्तरम् आनन्दमयो भवति इति ज्ञायते. अधिकन्तु प्रकाशाद् अनुसन्धेयम् इति विस्तरभयाद् विरम्यते.

इदानीं प्रकृतं विचार्यते. ननु सर्वत्र आत्मा एकएव चेद् अन्नमये कुतो न उच्यते ? इत्यतः आहुः **तत्र** इति. तथाच अन्नमयकोशे स्वयं प्रत्यक्षः इति विभूतावपि सएव इति तत्र न उक्तम् इति भावः. अतएव शारीरः आत्मा जीवः अन्नमये यः प्रत्यक्षसिद्धः सएव भोक्ता सर्वत्र अस्ति इति ‘‘यः पूर्वस्य’’ इति सर्वत्र उक्तम् इति शारीरः आत्मा इति विचारितम्.

इतः परं पञ्चावयवत्वं विचार्यते. **द्वितीयादिषु** इत्यादिना. **प्रथमोक्तम्** इति. अन्नमयोक्तं पञ्चावयववत्त्वम् इति अर्थः. **अतिदिश्यते** इति. पञ्चावयवास्तु सर्वत्र भिन्नाएव पञ्चावयवत्वन्तु सर्वत्र अस्ति इति अतिदेशः इति अर्थः. यथा देवताभेदेऽपि दर्शपूर्णमासप्रकरणपठितानां पञ्चप्रयाजादीनां ‘‘**प्रकृतिवद् विकृतिः कर्तव्या**’’ (आपोदेवी) इति अतिदेशशास्त्रेण सौर्येष्ट्यादौ अतिदेशः तथा अत्रापि इति बोध्यम्.

हस्तेन प्रदर्शयन्निव निःसन्दिग्धं व्याख्यातम्. तदन्तरो हि प्राणः आन्तरव्यवहारकारणम्, बलभोजनविसर्गादिषु उपयोगात्. तस्य सञ्चारः आकाशे परिनिष्ठितः पृथिव्याम्. एवं लौकिकव्यवहारार्थं बाह्याभ्यन्तरभेदेन द्वयम्.

तदनु वैदिकव्यवहारः. स च मनोमयः पुरुषः. आदेशः कर्मचोदना.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उपपादितम्. द्वितीयं विशेषः उच्यते **तदन्तरः** इत्यादिना. **तदन्तरः** अन्नमयकोशस्य अन्तरः. आन्तरव्यवहारं स्फुटीकुर्वन्ति **बले**त्यादिना. इदञ्च अलौकिककोशानां दृष्टान्ततया प्रदर्शनार्थं लौकिकानां निरूपणं नतु आध्यात्मिकब्रह्मरूपान्नमयादिपुरुषाणां कोशानामपि इदमेव फलम् इति बोध्यम्. **तस्य** प्राणमयस्य. **परिनिष्ठितः** स्थितः. **पृथिव्यां** पृथिव्याः तत्पुच्छत्वेन प्रतिष्ठारूपत्वाद् इति भावः. **लौकिकव्यवहारार्थं** दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकान्तर्भावदर्शनार्थम्. **द्वयं** द्वेधा कोशप्रदर्शनं कृतम् इति अर्थः. अन्नमयप्राणमयकोशयोः निरूपणं फलितम्. तत्र अन्नमयस्य शिरः तस्य पाण्याद्यवयवाः प्रसिद्धाः. प्राणमयस्यतु नासिकानिस्सरणे वृत्तिरूपः प्राणएव प्राधान्यात् स्थिरः(शिरः?), तस्य प्राधान्यं च तद्रोधे सर्वेषां व्याकुलीभावाद्, व्यानस्य दक्षिणपक्षत्वं सर्वशरीरक्रियाहेतुत्वात्. अपानस्य ततो हीनत्वाद् उत्तरपक्षत्वम्. समानस्य आत्मत्वं तस्य आकाशे सञ्चाराद् मध्यस्थत्वात्. पृथिवी देवतारूपा आध्यात्मिकस्य प्राणस्य धारयित्रीति पुच्छरूपा.

लौकिकव्यवहारोपयोगिकोशद्वयनिरूपणम् अनु वैदिकव्यवहारोपयोगिकोशद्वयं निरूप्यते इति आहुः **तदनु** इत्यादिना. तथाच आद्यकोशद्वयेन शरीरपाटवे सत्येव वैदिकव्यवहारप्रवृत्तिरिति **तदनु** इति उक्तम् इति अर्थः. **मनोमयः पुरुषः** आध्यात्मिकः इति अर्थः. अनियताक्षरपदावसानो मन्त्रो यजुः, तस्य मनोमयवेदपुरुषे शिरस्त्वं

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अयमेव अर्थो विस्तरेण प्रदर्श्यते. **तत्र** इति. फलरूपासु पञ्चसु. **हस्तेन** इति. अन्नमये कोशे श्रुतिः **हस्तेन** प्रदर्शयन्निव दर्शयन्निव वदति अतो फलरूपे अन्नमयेऽपि एतएव अवयवाः बोध्याः. प्राणमये विशेषम् आहुः **तदनन्तरः** इति. तस्य शिरस्त्वं बले उपयुज्येत. ‘‘**अन्नेन प्राणाः प्राणैः बलम्**’’(महाना.उप.१७।१३) इति श्रुतेः. व्यानोदानाभ्यां दक्षिणोत्तरपक्षाभ्यां भोजनविसर्गौ जायेते. प्राणमयः कोशस्य हृदये विभूतेस्तु आकाशे सञ्चारः, तस्य आत्मत्वात्. पृथिवी पुच्छरूपा इति तस्यापरिनिष्ठितः. **द्वयम्** इति. अन्नमयेन बाह्यः प्राणमयेन आन्तरो यो लौकिको व्यवहारः तत्सिद्ध्यर्थं विभूतिद्वयम् इति अर्थः.

कर्म इति. चोदना विधिवाक्यम्. **वैदिकः** इति. शिरः पक्षद्वयं मिलित्वा

ब्राह्मणानि सशेषाणि. अथर्वाङ्गिरसे ब्रह्मकर्मत्वात् प्रतिष्ठा.

तदनु नानाविधयागादिसाधनवतः फलं विज्ञानमयः. तत्र श्रद्धा आपः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

हविर्दानकरणत्वेन प्राधान्यात्. यजुषा हि हविः दीयते प्राधान्यात् स्वाहाकारादिना. ऋचां दक्षिणपक्षत्वम् अर्थप्राधान्यात्, साम्नाम् उत्तरपक्षत्वं गीतिप्राधान्यात्. **आदेश**ः इत्यादि. कर्मविधायकानि ब्राह्मणवाक्यानि अर्थवादसहितानि अतिदिष्टविधायकसहितानि तेषाम् आत्मत्वं प्रवर्तकत्वेन प्राधान्यात्. **अथर्वाङ्गिरसे** अथर्ववेदे ब्रह्मकर्मत्वाद् ब्रह्मणः कृताकृतावेक्षणेन शान्तिकपौष्टिककर्मभिः यागोपयुक्तऋत्विगादिरक्षणसम्पादनद्वारा यागोपयुक्तत्वात् पुच्छत्वम्. एतेन नानावृत्तिकाद् मनोमयकोशाद् लौकिकाद् आध्यात्मिकस्य भेदोऽपि दर्शितः.

एवं बाह्याभ्यन्तरभेदेन ऐहिकनानाविधभोगोपयिकं विज्ञानमयकोशं निरूपयितुम् आहुः **तदनु नानाविधे**त्यादिना. **नानाविधयागादिसाधनवतः** पञ्चाग्निविद्यावतः इति अर्थः. **फलं विज्ञानमयः** विज्ञानप्राचुर्यं ब्रह्मसाक्षात्कारः इति अर्थः. विज्ञानमयावयवान् आहुः **तत्र श्रद्‌धा** इत्यादिना. तथाच शुद्‌धिहेतुत्वात् श्रद्‌धैव विज्ञानमयस्य शिरः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

वेदत्रयी. आदेशः आत्मनोर्थम् आहुः ब्राह्मणवाक्यानि अङ्गबोधकवाक्यसहिता, एतेषाम् आत्मत्वम् इति अर्थः. **अथर्वाङ्गिरसे** इति. यज्ञे ब्रह्मा ऋत्विक् आथर्वणिको भवति. तस्य मर्माथर्वणवेदसिद्धं तेन च शान्त्यादिकर्मणा यज्ञसंरक्षणं कर्त्तव्यम् इति प्रतिष्ठारूपत्वं पुच्छत्वं च बोध्यम्. एवञ्च वेदचतुष्टयात्मको अयं मनोमयः विभूतिरूपो अयं पुरुषः अनेकवृत्तिकाद् मनोमयकोशाद् भिन्नएव इति भावः. अयं च "**स एष जीवो विवर-प्रसूतिः**"(भाग.पुरा.११।१२।१७) इत्यादिना एकादशस्कन्धे स्पष्टएव उक्तः. इतः परं नानावितानसाध्यं पारलौकिकफलानुभवजनकं चतुर्थम् आहुः **तदनु** इति. **विज्ञानमयः** इति. अत्र प्राचुर्ये मयट्. **तत्र** पञ्चावयवेषु मध्ये. **श्रद्धा** इति. "**श्रद्धा वा आपः श्रद्धामेव आरभ्य प्रणीय प्रचरति**"(तैत्ति.संहि.१।६।८।१(?)) इदं तृतीयाष्टके ब्राह्मणे प्रणीताप्रणयनप्रकरणे पठितम्. तथाच सर्वयज्ञादौ प्रणीताप्रणयनस्य विधीयमानत्वेन श्रद्धायां मुख्यत्वात् शिरस्त्वम्. अथवा छान्दोग्ये पञ्चाग्निविद्यायां प्रथमाहुतौ "**देवाः श्रद्धां जुह्वति**" (   ) इति उक्तं तेनापि तस्याः मुख्यत्वं, वक्ष्यते इति रंहत्यधिकरणे.**यथोक्तकर्तृत्वाद्** इति. अन्नमयादिना यथोक्तेन विधिना उपासनाकर्तृत्वात्.

तृतीयाध्यायेतु अयम् अर्थो विस्तरेण वक्ष्यते. यथोक्तकर्तृत्वात् क्रममुक्तिः.

ऋतसत्यौ प्रमीयमाणानुष्ठीयमानौ धर्मौ योगश्च मुख्यत्वाद् आत्मा. अधोभागो महर्लोकः. तादृशस्य ततो अर्वाक् संसृत्यभावात्. ततोऽपि ब्रह्मविदः आनन्दमयः फलम्. तस्य स्वरूपस्य एकत्वात् धर्मभेदेन शिरःपाण्यादि निरूप्यते. तस्य मुख्यतया प्रीतिविषयत्वं धर्मः तच्छिरः मोदप्रमोदौ अपरिनिष्ठितपरिनिष्ठितौ आनन्दातिशयौ. आनन्दस्तु स्वरूपम्. साधनरूपत्वात् ब्रह्म पुच्छम् इति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

कल्पनोपदेशवारणाय आहुः **तृतीये**त्यादि रहंत्यधिकरणे इति अर्थः. ननु प्रथमाहुतौ दैवैः श्रद्धारूपा आपएव हूयन्ते मृताग्निहोत्रे ततः संस्कृतपञ्चभूतसहितस्य यजमानस्य सोमलोकाग्नौ होमः तैः क्रियते. ततो वृष्ट्यग्नौ, ततो अन्ने अग्नौ, ततो रेतो अग्नौ इति क्रमेण यजमानाहुतिकरणेन रेतसः पुरुषभावः इति अवयवपूर्त्यभावात् कथम् आहुतीनां फलसाधकता? इत्यतः आहुः **यथोक्तः** इत्यादि. तथाच पूर्वम् अन्नमयाद्युपासनादशायां श्रद्धारूपाङ्गस्य अभावेऽपि इदानीं श्रद्धारूपाङ्गस्य दार्ढ्यात् सर्वावयवनिष्पत्त्या क्रममुक्तिरूपसर्वफलभोगोपपत्तिः इति फलितम्. एवंविधविज्ञानमयनिरूपणेन एतस्य संशयविपर्यासाद्यात्मकलौकिकविज्ञानमयकोशाद् भेदोऽपि प्रदर्शितः. प्रमीयमाणधर्मस्य प्राथम्याद् दक्षिणपक्षत्वम्, अनुष्ठीयमानधर्मस्य तदुत्तरत्वात् उत्तरपक्षत्वम्. **योगः** इति चित्तवृत्तिनिरोधः, तस्य विद्यायां मुख्यत्वाद् आत्मरूपत्वम्. **अधोभागः** प्रतिष्ठा पुच्छरूपः. **तादृशस्य** विद्यासम्पन्नदेवयानमार्गाधिकारिणः. **ततो अर्वाक्** महर्लोकाद् अधः. ज्ञानप्राप्त्या यद् मुख्यं फलं भवति तद् निरूपयितुम् आहुः **ततोऽपि** इत्यादि. **तस्य** आनन्दमयस्य. **स्वरूपस्य** यावदवयवविशिष्टब्रह्मस्वरूपस्य. **धर्मभेदेन** भक्तप्रतीतधर्मभेदेन. **प्रीतिविषयत्वं** भक्तप्रीतिविषयत्वम्. **आनन्दातिशयौ** भक्तयोः आनन्दातिशयौ. **आनन्दः** क्रमेण दक्षिणोत्तरपक्षरूपः **स्वरूपं** आत्मा इति अर्थः. **साधनरूपत्वाद्** “**यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्**”(तैत्ति.उप.२।१।१) इत्यत्र ज्ञानविषयत्वेन

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ऋतसत्यौ ज्ञायमानौ क्रियमाणौ धर्मौ तद्वति पक्षरूपो धर्मौ. अधोभागः पुच्छम्. **तादृशस्य** तादृशवितानाद्यन्नमयाद्युपासनावतः महर्लोकं प्राप्तस्य इति अर्थः. **ततो अर्वाग्** इति. महर्लोकाद् अर्वाक् या संसृतिः संसारः तस्य न जायते इति अर्थः. अन्तिमम् आहुः **ततोऽपि** इति. **साधनरूपत्वाद्** इति. विषयतया साधनत्वाद् इति अर्थः. अक्षरब्रह्मज्ञानस्य कारणत्वाद् इति भावः. एतावता आनन्दरूपो भगवान्

श्लोकौतु सच्चिदंशबोधकौ केवलानन्दत्वपरिहाराय. अपरौतु श्लोकौ माहात्म्य-ज्ञापनाय वाग्गोचरागोचरभेदेन. अवान्तरानन्दास्तु सर्वे तस्मात् न्यूनतया

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सर्वकामफलभोगसाधनरूपत्वाद् इति अर्थः. तथाच गुहायां भक्तहृदयाकाशे 'परमव्योम'पदवाच्यभगवद्गृहात्माक्षराधिकरणकपुरुषोत्तमाविर्भावे तत्पृष्ठतो अक्षराविर्भावावश्यम्भावाद् अक्षरस्य पुच्छत्वेन उक्तिः इति भावः. **श्लोकौतु** अक्षरस्य प्रजाप्राणनादिहेतुताबोधकौ श्लोकौतु. तौतु ''**अन्नाद् वै प्रजाः प्रजायन्ते**'' (तैत्ति.उप.२।२) ''**प्राणं देवा अनु प्राणन्ति**'' (तैत्ति.उप.२।३) एतौ प्रथमस्य सदंशप्रतिपादकत्वं द्वितीये केवलवायोः देवप्राणनहेतुत्वासम्भवात् चित्संवलितप्राणस्यैव हेतुत्वाङ्गीकारात् चित्प्रतिपादकत्वम्. **केवले**त्यादि. अक्षरस्य अगणितानन्दाभावाय इति अर्थः. आयुर्दानार्थन्तु प्राणोपादानम्. **अपरौ** इति. तौतु ''**यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह. आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन**'' (तैत्ति.उप.२।९) इति. ''**विज्ञानं यज्ञं तनुते विज्ञानं ब्रह्म चेद् वेद**'' (तैत्ति.उप.२।५।१) इति च. अत्र 'वाक्'पदं मनोभिन्नेन्द्रियलक्षणम्. **माहात्म्ये**त्यादि. तथाच जीवसाधनैः इन्द्रियागोचरं, भगवत्सामर्थ्येन च इन्द्रियगोचरत्वात् 'विद्वान्' इति उक्तं 'चेद् वेद' इति उक्तम्. ''**प्रत्यगात्मानम् ऐक्षद् आवृत्तचक्षुः**'' (कठोप.२।१।१) इति च उक्तम्. एतेन कर्तुम् अकर्तुं सामर्थ्यं माहात्म्यं प्रदर्शितं बोध्यम्. ननु मनुष्यानन्दम् आरभ्य अक्षरानन्दपर्यन्तम् आनन्दगणनायाः क्व उपयोगः? इत्यतः आहुः **अवान्तरे**त्यादि. **अवान्तरानन्दाः**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अन्नमयाद् इति विभूतिरूपपञ्चात्मा हंसरूपः सन् जीवे अनुप्रविष्टः पुरुषविधएव लौकिकशरीरे आनन्दमयाद् आरभ्य अन्नमयान्तकोशान् मूषानिषिक्त-प्रतिमान्यायेन प्रतिशरीरं सम्पादयति. तत्र ते ये विभूतिरूपाः लोके हि इत्यादिना वर्णयति इत्यनेन सङ्क्षेपेण उक्ताः तएव पञ्चसु इत्यादिना विस्तरेण उक्ताः. तत्र ब्रह्मज्ञानी भक्तो वा जीवः परप्राप्त्यनन्तरं सर्वान् कामान् भुङ्क्ते इत्यत्र यो भोगः उक्तः सः विभूतीनामेव, परं वस्तु विपश्चिद् आनन्दमयएव इति सिद्धम्. तत्र पञ्चविभूतिनिरूपणानन्तरं श्लोकचतुष्टयम् उक्तम्. तत्र प्रथमश्लोकद्वयस्य प्रयोजनम् आहुः **श्लोकौ तु** इत्यादिना. अपरश्लोकद्वयस्य तात्पर्यम् आहुः **अपरौ** इति. **वाग् गोचरे**ति. ''**भीषा अस्माद् वातः पवते**'' (तैत्ति.उप.२।८) इत्यनेन वाग्गोचरं ''**यतो वाचो निवर्तन्ते**'' (तैत्ति.उप.२।९) इत्यनेन वागगोचरं यद् माहात्म्यं तद्बोधनाय इति अर्थः. ननु अग्रे आनन्दनिरूपणं किमर्थम्? इत्यतः आहुः **अवान्तरे**ति. गणितानन्दाः इति अर्थः. **तदुत्कर्षत्वम्** इति.

तदुत्कर्षत्वबोधनाय. तस्मात् सर्वत्र प्रपाठके मान्त्रवर्णिकमेव प्रतीयते. अतो मुख्योपपत्तेः विद्यमानत्वेन आनन्दमयः परमात्मैव. 'च'कारो मध्ये प्रयुक्तो विधिमुखविचारेण अधिकरणसम्पूर्णत्व-बोधकः।।१४।।

निषेधमुखेन चतुःसूत्रि इदमेव अधिकरणं पुनः विचार्यते सुदृढत्वाय. इदम् अत्र आकूतम्. जीवएव आनन्दमयो भवतु, फलस्य पुरुषार्थत्वात्. सः ब्रह्मविदानन्दमयो भवति इति स्वर्गादिसुखवद् अलौकिकमेव रूपम् आनन्दमयं

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

मात्रारूपा इति अर्थः. **तस्मात्** पुरुषोत्तमानन्दात्. **न्यूनतया** गणनाविषयत्वेन न्यूनतया. **तदुत्कर्षत्वे**त्यादि. इतरानन्दोत्कर्षापेक्षया पुरुषोत्तमानन्दे उत्कृष्टोत्कृष्टत्व–बोधनाय इति अर्थः. **तस्मात्** पूर्वोक्तरीत्या आनन्दमये परब्रह्मधर्मरूप–लिङ्गप्रदर्शनात्. **प्रपाठके** ब्रह्मप्रपाठके. **मान्त्रवर्णिकमेव ''सत्यं ज्ञानम्''** इति मन्त्रप्रतिपादितमेव. **अतः** सकलप्रपाठके प्रतिपादनात्. **मुख्योपपत्तेः** श्रुत्या अभिधया वृत्या परब्रह्मत्वेन बोधनरूपोपपत्तेः. **चकारः** सौत्रः चकारः।।१४।।

सूत्रान्तरम् अवतारयितुम् आहुः **निषेधमुखेन** इत्यादि. **इदमेव** आनन्दमयाधिकरणमेव. **सुदृढत्वाय** स्थूणाखननन्यायेन दृढत्वसम्पादनाय इति अर्थः. ननु आनन्दमये कस्य सन्देहस्य निरासाय निषेधमुखेन पुनः चतुःसूत्र्याधिकरणरचना? इत्यतः आहुः **जीवएव** इत्यादिना. तत्र हेतुम् आहुः **फलस्य** इत्यादि. जीवार्थत्वेन गौणत्वाद् न परब्रह्मत्वम् इति अर्थः. ''सो अश्नुते'' इतिमन्त्रविरोधं परिहर्तुम् आहुः **सः** इत्यादि. **सः** ब्रह्मविद्, सर्वान् कामान् अश्नन् विपश्चिता ब्रह्मणा सहभूतः आनन्दमयो भवति इति व्याख्यानाद् न मन्त्रविरोधः इति अर्थः. दृष्टान्तार्थम् आहुः **स्वर्गादी**ति. तथाच प्राप्तस्वर्गसुखावस्थं यथा जीवस्वरूपं लौकिकं सुखरूपम् उच्यते तथा प्राप्तमुक्तिरूप–

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अगणितानन्दत्वम् इति अर्थः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति. **मान्त्रवर्णिकमेव** इति. आनन्दमयमेव इति अर्थः. श्रीभागवतेऽपि उक्तं वेदस्तुतौ **''पुरुषविधो अन्वयोऽत्र चरमः''** (भाग.पुरा. १०।८४।१७) इति. चरमः आनन्दमयः।।१४।।

अग्रिमसूत्रम् अवतारयन्ति **निषेधे**ति. **जीवएव** इति. आनन्दमयेऽपि **''तस्यैष–एव शारीर आत्मा''** इति श्रवणाद् इति भावः. मान्त्रवर्णिकविरोधं परिहरन्ति **सः ब्रह्मविद्** इति. विपश्चिता ब्रह्मणा सह आनन्दमयो भवति इति अर्थः. **इति प्राप्ते.** पूर्वपक्षे प्राप्ते. सूत्रम् अभिधीयते **''नेतरोनुपपत्तेः''.**

जीवस्य फलभूतम् इति प्राप्ते अभिधीयते.

नेतरोऽनुपपत्तेः।।१५।।

इतरो जीवो **न.** आनन्दमयो न भवति. कुतः? **अनुपपत्तेः.** जीवस्य फलरूपत्वमात्रेण आनन्दमयत्वं न उपपघते. तथा सति तस्य स्वातन्त्र्येण जगत्कर्तृत्वे अत्यलौकिकमाहात्म्यवत्त्वेन निरूपणं न उपपद्यते. अतो न जीवः आनन्दमयः।।१५।।

भेदव्यपदेशाच्च।।१६।।

इतोऽपि न जीवः आनन्दमयः. यतो भेदेन व्यपदिश्यते. **''रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दीभवति''**(तैत्ति.उप.२।७) इति. आनन्दो अस्य अस्ति इति आनन्दी. **''एष ह्येवानन्दयाति''**(तत्रैव २।७) इति. आनन्दयति इति अर्थः. **'च'**करात्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

परमानन्दं जीवस्वरूपमपि अलौकिकम् आनन्दमयम् उच्यते. **फलभूतं** फलावस्थम्. **इति प्राप्ते** आनन्दमयो जीवएव इति पूर्वपक्षे प्राप्ते सूत्रार्थेन समाधानम् आहुः **इतरः** इत्यादि. **तथा सति** जीवस्य आनन्दमयरूपता अङ्गीकारे सति. **तस्य** जीवस्य. **स्वातन्त्र्येण** सृष्टेः पूर्वं कारणसामग्रीविरहेण. **जगत्कर्तृत्वे** इत्यादि. **''तस्माद् वा एतस्माद् आत्मनः''** इत्यनेन उक्तं जगत्कर्तृत्वम्. फलितम् आहुः **अतः** इति।।१५।।

इतोऽपि जीवस्य आनन्दमयतो भेदव्यपदेशतोऽपि. भेदव्यपदेशम् आहुः **रसम्** इत्यादिना. तथाच आनन्दमयस्य कर्मत्वेन जीवस्य कर्तृत्वेन च भेदो व्यपदिष्टः इति बोध्यम्. प्रकारान्तरेण आनन्दमयतो भेदं जीवे बोधयितुम् आहुः **आनन्दो अस्य अस्ति** इत्यादि. **एव**कारेण ''एष ह्येव'' इत्यनेन जीवव्यवच्छेदः. **चकारात्** सौत्रचकारात्।।१६।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अनुपपत्तिम् आहुः **तथा सति** इति. **तस्य** आनन्दमयस्य. **स्वातन्त्र्येण** इतरनैरपेक्ष्येण. **जगत्कर्तृत्वे** इति विषयत्वं सप्तम्यर्थः. तस्य निरूपणे अन्वयः, **निरूपणम्** इति. **''तस्माद्वा एतस्माद्''**(तैत्ति.उप.२।२) इति वाक्येन, **''भीषास्माद् वातः पवते''**(तत्रैव२।८) इत्यादिवाक्येन च इति. न उपपद्येत इति जगत्कर्तृत्वादिकं जीवे नास्ति इति तद्बोधकवाक्यस्य जीवे उपपत्तिः नास्ति इति अर्थः।।१५।।

दूषणान्तरम् आहुः **भेदव्यपदेशाच्च.** कुण्डली इत्यत्र कुण्डल-देवदत्तयोः यथा भेदो बुद्ध्यते एवम् आनन्दी इत्यत्रापि श्रुत्या आनन्द-जीवयोः भेदो व्यपदिश्यते इति अर्थः. एवम् आनन्दयति इति अत्र आनन्दजनको भवति इत्यत्रापि भेदो बोध्यः।।१६।।

सूत्रद्वयेन जीवो न आनन्दमयः इति निरूपितम्।।१६।।

तर्हि जडो भवतु आनन्दमयः. न, आन्तरत्वात् न कार्यरूपो भवति किन्तु कारणरूपः. *सः स्वमते नास्ति इत्येव. मतान्तरेतु प्रकृतिः भवेत्. तन्निवारयति.

कामाच्च नानुमानापेक्षा।।१७।।

जडा प्रकृतिः नास्ति इति कारणत्वेन निराकृतैव. अथ एतद् वाक्यान्यथानुपपत्या सत्वपरिणामरूपा कल्प्येत. सा कल्पना न उपपद्यते. कुतः? **कामात्.** आनन्दमयनिरूपणानन्तरं ‘‘**सो अकामयत**’’(तैत्ति.उप.२।६) इति श्रूयते. सः कामः चेतनधर्मः. अतः चेतनएव आनन्दमयः इति. ‘**च**’कारात् ‘‘**स तपो अतप्यत**’’(तैत्ति.उप.२।६) इत्यादिः. अतो अनुमानपर्यन्तम् अर्थम् अबोधयद्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

‘‘**कामाच्च**’’ इत्यादिसूत्रद्वयम् अवतारयितुम् आहुः **तर्हि जड** इत्यादि. **न** आनन्दमयो जडो न भवत्येव इति अर्थः. तत्र विभज्य दूषणम् उपपादयन्ति **आन्तरत्वाद्** इत्यादिना. **आन्तरत्वाद्** आनन्दमयस्य कोशचतुष्टयान्तरत्वात्. **न कार्यरूपः** आनन्दमयो न कार्यरूपः. **कारणरूपः** ‘‘**तस्माद् वा एतस्माद्**’’ इत्याद्युक्तकारणरूपः. ***यः** कारणत्वेन अभिमतो जडस्वरूपः. **मतान्तरे** सांख्यानां मते. **प्रकृतिः भवेत्** कारणीभूतो जडः ‘प्रकृति’पदवाच्यो भवेद् इति अर्थः.

निराकृतैव जडायाः ईक्षणासम्भवेन ईक्षणपूर्वककर्तृत्वासम्भवेन निराकृतैव इति अर्थः. **एतद्वाक्ये**त्यादि. ‘‘**अथ तस्य प्रियमेव शिरः**’’ (तैत्ति.उप.२।५) इति वाक्येति अर्थः. तथाच एतदवयवकल्पनावाक्यस्य निरवयवे पुरुषे असम्भवाद् अन्यथानुपपत्या आनन्दस्य सुखरूपत्वाद् हेतोः सत्त्वपरिणामरूपा पञ्चावयवरूपा कार्यरूपा च प्रकृतिरेव कल्प्यते इति अर्थः. **सा** वाक्येन आनन्दस्य प्रकृतिरूपात्मिका. **अतः** अचेतने ‘आनन्दमय’पदवाच्यत्वासम्भवात्. **अनुमानपर्यन्तम्** ‘‘**अथ तस्य**’’ इति वाक्यश्रवणानन्तरम् अनुमानपर्यन्तम्. आनन्दमयः सत्त्वपरिणामः, पञ्चधा आनन्दविकारित्वाद्,

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अग्रिमसूत्रद्वयम् अवतारयन्ति **तर्हि** इति. जडो द्विविधः कार्यरूपः कारणरूपश्च. कार्यरूपः सुखात्मकः. सतु न सम्भवति. आनन्दस्य आन्तरत्वाद् कारणस्तु वेदे नास्ति इति कृत्वा स्वमते नास्त्येव साङ्ख्यमतोक्तः प्रकृतिरूपो वक्तव्यः. तन्निराकरोति **कामाच्च नानुमानापेक्षा.** निराकृतैव वेदे तस्याः नामापि न श्रूयते इत्यतो अस्मिन् शास्त्रेति शेषः. **अथ एतद्** इति. ‘‘**तस्य प्रियमेव शिरः**’’ इति वाक्ये इति अर्थः.

वाक्यं न तिष्ठति इति अर्थः।।१७।।

अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति।।१८।।

इतश्च न जडः आनन्दमयः. **अस्मिन्** आनन्दमये **अस्य** जीवस्य च ‘‘**आनन्दमयम् आत्मानम् उपसङ्क्रामति**’’ (तैत्ति.उप.२।८) इति तेन रूपेण योगं शास्ति. फलत्वेन कथयति इति. न हि जीवस्य जडापत्तिः युक्ता. ‘‘**ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति**’’ (बृहदा.उप.३।४।६) इतिवद् *अस्यापि अर्थः. तस्मात् न अयं जीवो, नापि जडः. पारिशेष्याद् ब्रह्मैव इति सिद्धम्.

*ये पुनः अधिकरणभङ्गं कुर्वन्ति, तेषाम् अज्ञानमेव. यतः तैरपि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

लौकिकोत्कृष्टसुखवद् इति अनुमानेन आनन्दमये सत्त्वपरिणामत्वानुमितिपर्यन्तम्. तथाच प्रकृते शाब्दत्वेऽपि अनुमानगम्येति वक्तुं न शक्यते इति अर्थः।।१७।।

सूत्रार्थस्तु **अस्मिन्** आनन्दमये, **अस्य** उपासकजीवस्य, **तद्योगं** आनन्दमयीभूतस्य आनन्दमयप्राप्तिरूपं योगम्. **इतः** एवं सूत्रार्थसम्भवात्. **न हि** इत्यादि. तथाच चेतनस्य जीवस्य जडरूपतासिद्धिः फलरूपा न युक्ता, हीनतासम्पादकत्वाद् इति अर्थः. **इतिवद् *अस्य अर्थः** इति. तथाच ‘‘**आनन्दम् आनन्दमयो अवसानः**’’ (भाग.पुरा. २।२।३१) इति वाक्याद् उपासकः आनन्दमयः सन् अवसाने आनन्दमयप्राप्त्य-व्यवहितपूर्व-काले तादृशः सन् ‘‘**आनन्दमयम् आत्मानम् उपसंक्रामति**’’ इति अर्थः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति. **अयम्** आनन्दमयः. **पारिशेष्याद्** जीवजडप्रकाराणां दूषितत्वात्.

इदानीं स्वसिद्धान्तदृढीकरणाय परमतं दूषयितुम् आहुः ***ये तु** इत्यादि. **ये** शाङ्कराः. **अधिकरणभङ्गं** ‘‘**विकारशब्दान्नेति चेन्न**’’ इति सूत्रव्याख्याने ‘‘**अत्र**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सत्त्वपरिणामेति. कार्यसुखरूपेत्यर्थः. **न तिष्ठति** इति. अनुमानपर्यन्तं स्वार्था न बोधक्षमं वाक्यं मूकं न तिष्ठति इति अर्थः. तथाच ‘आनन्दमय’पदवाच्यं पक्षीकृत्य जडप्रकृतिरूपसत्त्वपरिणामाभेदः साध्यते, प्रियाद्यवयवत्वं हेतुः, लौकिकसुखं दृष्टान्तः. अत्र यावत्पर्यन्तव्याप्तिज्ञानं परामर्शः ततः पूर्वमेव वाक्यश्रवणानन्तरम् आनन्दे चैतन्यविषयकशाब्दबोधे जाते जडाभेदानुमितिः न भविष्यति इति भावः।।१७।।

अस्यापि अर्थः इति. ‘‘**आनन्दमयम् आत्मानम् उपसङ्क्रामति**’’ (तैत्ति.उप. २।८) इति अस्यापि आनन्दमयो भूत्वा आनन्दमयं प्रविशति इति अर्थः.

इदानीम् अधिकरणान्ते शङ्करमतं दूषयन्ति **ये पुनः** इति. **अधिकरणभङ्गम्**

आनन्दमयः कः पदार्थः इति वक्तव्यम्. न तावज् जीवः, तस्य ब्रह्मज्ञानफलत्वेन **''ब्रह्मणा विपश्चिता''** इति आनन्दमयस्य उक्तवात्. अथ जडः स्वर्गवत् तदा किम् आश्रितः इति वक्तव्यम्. जडाश्रितत्वे कर्मफलमेव स्यात्. ज्ञानस्यापि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

केचिद्'' इत्यादिस्थले पूर्वपक्षे उक्तरीत्या आनन्दमयपदार्थस्य ब्रह्मत्वखण्डनपुरस्कारेण व्यासोक्ताधिकरणस्य अष्टसूत्रस्य भङ्गं कुर्वन्ति. विधिमुखचतुःसूत्रैः भिन्नम् अधिकरणं, निषेधमुखैश्च भिन्नम् अधिकरणम् इतिरीत्या अधिकरणभङ्गं कुर्वन्ति इति अर्थः. **तेषां** शाङ्कराणाम्. **अज्ञानम्** श्रुतिसूत्राज्ञानम्. तत्र हेतुम् आहुः **यतः** इत्यादि. आनन्दमय-पदार्थः अयमिति ब्रह्मातिरिक्तः तैरपि वक्तुं न शक्यते इति अर्थः. तदेव उपपादयन्ति **न तावद्** इत्यादिना. तथाच ब्रह्मातिरिक्तं जीवजडात्मकं जगदेव सम्भवति. तत्र जीवो वक्तुं न शक्यतइति आहुः **तस्य** इत्यस्य अग्रे **आनन्दमयस्य** इत्यनेन अन्वयः. इत्थञ्च **तस्य** भवतां जीवत्वेन अभिमतस्य **ब्रह्मज्ञानफलत्वेन ''ब्रह्मविदाप्नोति परम्''** इत्यत्र 'पर'पदवाच्यानन्दमयस्य ब्रह्मज्ञानफलतया उक्तत्वेन इति अर्थः. **''ब्रह्मणा विपश्चिता''** इति ब्रह्मविपश्चित्पदाभ्यामपि आनन्दमयस्यैव उक्तेः बाधितब्रह्मत्वसिद्धेः जीवत्वम् अशक्यवचनम् इति अर्थः. ब्रह्मप्रकरणे अग्रे अन्नमयादिप्राप्तिद्वारा अन्ते **''तमेतम् आनन्दमयम् आत्मानम् उपसंक्रामति''**(तैत्ति.उप.२।८) इति आनन्दमयप्राप्तेः उक्तत्वाद् इति अर्थः. **अथ** पक्षान्तरे **जडः** आनन्दमयो जडः स्यात्. तत्र जडफलं दृष्टान्तः उच्यते **स्वर्गवद्** इति. तत्र जडस्य घटादेः मृत्पिण्डाद्याश्रितत्वस्यैव दृष्टत्वाद् आनन्दमयस्यापि जडत्वाङ्गीकारे क्वचिद् जडे आश्रितत्वं वाच्यम्. तत्र आश्रयीभूतं जडं किम्? इति आकांक्षायाम् कर्मफलमेव जडम् अभेदेन तदाश्रयः स्याद् इति आहुः. **जडाश्रितत्वे** इत्यादि. आश्रितत्वं च अत्र सम्बद्धत्वरूपं पारिभाषिकमेव यथा **''गोदोहनेन पशुकामस्य प्रणयेत्''** (आप.श्रौ.सू.१।१६।२) तत्र प्रणयनाश्रितं गोदोहनं फलाय विधीयते. तेन

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति 'आनन्दमय'-पदस्य ब्रह्मपरत्वास्वीकारेण इति शेषः. **तस्य** इति. तस्य जीवस्य यद् ब्रह्मज्ञानं तस्य फलत्वेन इति अर्थः. शङ्कते **अथ** इति. जडः आनन्दमयः जडरूपः इति अर्थः. दृष्टान्तम् आहुः **स्वर्गवद्** इति. यथा स्वर्गसुखं जडरूपं तथा आनन्दोऽपि जडरूपः इति अर्थः. समाधानम् आहुः **तदा** इति. **कर्मफलमेव** इति. जडस्य घटस्य जडकपालश्रितत्वं यथा जडरूपानन्दाश्रयं कर्मफलं स्वर्गादिरूपमेव भविष्यति. **''तस्य च कर्मचितो लोकः क्षीयते''** इतिश्रुत्या अनित्यत्वं स्याद् इति अर्थः. आनन्दमयं कर्मफलं न भवति किन्तु ज्ञानफलमेव इति आशयेन शङ्कते **ज्ञानस्यापि** इति. **फलम्** इति.

अवान्तरफलम् इति चेद्, न. तर्हि किम् आनन्दात् तस्य अतिरिक्तं फलं भविष्यति. जडचिद्रूपतायाः पूर्वमेव विद्यमानत्वात्. ‘‘**अस्यैवानन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्राम् उपजीवन्ति**’’(बृहदा.उप.४।३।३२) इति श्रुतिविरोधश्च. पुच्छत्वेन ब्रह्मवचनात् प्रद्वेषः इति चेत्, तर्हि ‘‘**स एको ब्रह्मण आनन्दः**’’ (तैत्ति.उप.२।८) इत्यत्रापि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अभेदे आश्रितत्वानुपपत्तिः परिहृता बोध्या. तथाच कर्मफलस्य अनित्यत्वाद् ब्रह्मज्ञानफलस्य च नित्यत्वाद् आनन्दमयस्य च ब्रह्मज्ञानफलत्वाद् उक्तकर्मफलाश्रितत्वं बाधितमेव इति अर्थः. पुनः आशङ्कते **ज्ञानस्य** इत्यादि. **अवान्तरे**त्यादि. आनन्दमयो ज्ञानस्य अवान्तरं फलम् इति अर्थः. तथाच क्रममुक्तावपि तत्तल्लोकीयानन्दमेव भुनक्ति. नतु ज्ञानस्य आनन्दातिरिक्तमपि फलं किञ्चिद् दृष्टं श्रुतम् अस्ति इति भावः. ननु चिज्जडात्मकमेव किञ्चित् फलं भवतु अतः आहुः **जडे**त्यादि. **पूर्वमेव** ज्ञानसाधनसम्पत्तेः पूर्वं जीवस्य सत्त्वाद् इति अर्थः. ननु आनन्दमयस्य आनन्द–रूपत्वेऽपि वैषयिकानन्दवद् न ब्रह्मत्वम् अतो न फलत्वम् अतः आहुः **अस्य** इत्यादि. **अस्यैव** पूर्णानन्दस्यैव. **अन्यानि** इत्यादि. मनुष्यादिब्रह्मान्तानि इति अर्थः. **मात्राम्** अंशम्. **उपजीवन्ति** फलत्वेन उपभोगं कुर्वन्ति इति अर्थः. **श्रुतिविरोधः** तस्य फलत्वानङ्गीकाराद् भवतां श्रुतिविरोधः इति अर्थः. **च**कारेण पूर्वोक्तदूषणानां समुच्चयः. अधिकरणभङ्गे बीजान्तरं वादिनः उपन्यस्यन्ति **पुच्छत्वेन** इत्यादि. **पुच्छत्वेन** आनन्दमयपुच्छत्वेन. **ब्रह्मवचनाद्** अस्माकं प्रधानतया फलत्वेन जिज्ञास्यस्य अक्षरब्रह्मणो निर्देशात्. **प्रद्वेषः** इति आनन्दमयस्य ब्रह्मताप्रतिपादकैकाधिकरणरचनायां प्रद्वेषः. तथाच आनन्दमयस्य ब्रह्मताखण्डनार्थम् अधिकरणभङ्गकरणम् इति अर्थः. तद् दूषयन्ति **तर्हि** इत्यादिना. तथाच ‘‘ब्रह्मपुच्छम्’’ इत्यत्र ब्रह्मणः पुच्छम् इत्यत्र अक्षरस्य षष्ठ्या

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आनन्दमयः इति शेषः. निराकुर्वन्ति **न** इति. **तस्य** ज्ञानस्य. **फलम्** इति. मुख्यम् इति शेषः. ननु ज्ञानस्य मुख्यं फलं जडरूपं चिद्रूपं वा अस्तु को दोषः ? इत्यतः आहुः **जडे**ति. **पूर्वमेव** इति. ज्ञानाद् इति शेषः. तथाच ज्ञानपूर्वभाविनाः फलत्वं न सम्भवति इति भावः. आनन्दमयस्य अवान्तरफलत्वे दूषणान्तरम् आहुः **अस्यैव** इति. अधिकरणभङ्गे अन्यदेव बीजम् इति वादी वदति **पुच्छत्वेन** इति. अस्मिन् वेदान्तशास्त्रे च जिज्ञास्यं ब्रह्मैव मुख्यं, तच्च आनन्दमयस्य पुच्छत्वे उपन्यस्तम् इति प्रद्वेषः इति अर्थः. निराकुर्वन्ति **तर्हि** इति. यथा पुच्छत्ववचनं प्रद्वेषजनकं तथा भेदवचनमपि इति भावः. **ब्रह्मणः** इति. आनन्द–

षष्ठ्या भेदनिर्देशाद् ब्रह्मणः परमपुरुषार्थत्वं न अङ्गीकुर्यात्.

उपक्रमादिसर्वविरोधश्च पूर्वमेव प्रतिपादितः. *यद्यपि अधिकरणम्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ब्रह्मभेदबोधनेन अब्रह्मत्वम् आयातीति प्रद्वेषः इति चेत् **''स एको ब्रह्मणः आनन्द''** (तैत्ति.उप.२।८) इत्यत्रापि अक्षरानन्दस्य षष्ठ्या ब्रह्मभिन्नत्वबोधनेन आनन्दस्य अब्रह्मत्वेन पुरुषार्थत्वासम्भवाद् आनन्दातिरिक्तस्य च मुख्यफलत्वासम्भवाद् ब्रह्मणो अक्षरस्य पुरुषार्थत्वं न स्याद् इति फलितम्. यदितु **''स एको ब्रह्मणः आनन्द''** इत्यत्र ''राहो शिरः'' इतिवद् अभेदषष्ठ्या आनन्दस्य ब्रह्मताम् उपपाद्य ब्रह्मणः पुरुषार्थता उपपाद्यते तदा ''ब्रह्मणः पुच्छम्'' इत्यादावपि पुच्छादीनाम् अभेदषष्ठ्या आनन्दस्य ब्रह्मताम् उपपाद्य ब्रह्मणः पुरुषार्थता उपपाद्यते. एवं ''ब्रह्मणः पुच्छम्'' इत्यादावपि पुच्छादीनाम् अभेदषष्ठ्या आनन्दमयब्रह्मरूपतासिद्धेः पुच्छत्वस्य परोक्षवादेन भाक्तत्वात् प्रद्वेषे बीजाभावाद् अधिकरणभङ्गो अज्ञानविजृम्भितएव इति बोध्यम्.

आनन्दमयस्य ब्रह्मत्वे पूर्वं दत्तानि वादिमते उपक्रमोपसंहारविरोधरूपाणि दूषणानि स्मारयन्ति **उपक्रमे**त्यादि. तथाच **''ब्रह्मविदाप्नोति परम्''**(तैत्ति.उप.२।१) इत्यत्र 'पर'पदेन आनन्दमयएव आदौ ब्रह्मप्रपाठके उक्तः. मध्येऽपि **''सह ब्रह्मणा विपश्चिता''**(तत्रैव) इत्यनेन आनन्दमयएव उक्तः. अन्ते च **''तमेतम् आनन्दमयम् आत्मानम् उपसंक्रामति''**(तत्रैव २।८) इत्यनेन उक्तत्वाद् अस्य अब्रह्मत्वे सर्वोऽपि प्रपाठको असङ्गतएव स्याद् इति प्रतिपादितम् इति अर्थः.

ननु न वयम् अधिकरणभङ्गं कुर्मः किन्तु पूर्वोक्तमेव अधिकरणं विधिमुखतया उक्तं, निषेधमुखतया आनन्दमयस्य अब्रह्मत्वप्रतिपादनेन परिष्कुर्मः इति तद् दूषयितुम् आहुः **यद्यपि** इत्यादि. अन्यथाहुस्ते आनन्दमयस्य पुच्छरूपावयवत्वेन अक्षरस्य ब्रह्मत्वं विवक्षितम् अवयवावयविनोः अभेदाद् उत स्वयम् अक्षरस्य प्राधान्येन? इति. तत्र पूर्वः पक्षः, अक्षरे 'पुच्छ'शब्दप्रयोगाद् आनन्दमयावयवत्वेन अक्षरं ब्रह्म विवक्षितं धर्मिरूपेण

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

भिन्नस्य इति शेषः. सच्चिदानन्दरूपब्रह्मणएव परमफलत्वाद् इति भावः.

ननु आनन्दातिरिक्तब्रह्मणएव पुरुषार्थत्वम् अस्तु इत्यतः आहुः **उपक्रमे**ति. **''ब्रह्मविद् आप्नोति परम्''** (तैत्ति.उप.२।१) इत्यत्र उपक्रमे 'पर'शब्देन आनन्दमयएव उक्तः. उपसंहारे च **''एतम् आनन्दमयम् आत्मानम् उपसङ्क्रामति''** (तैत्ति.उप.२।८) इत्यनेन आनन्दमयएव उक्तः इत्यतः तस्याः पुरुषार्थत्वे उपक्रमविरोधः स्याद् इति भावः. परैः स्वमतरीत्या अधिकरणरचना या कृत्वा सा दूषयितुम् उपन्यस्यति, ***यदपि** इति.

अन्यथारचितं ‘‘**ब्रह्म पुच्छम्**’’ इति. तत्र न पुच्छस्य ब्रह्मत्वं प्रतिपाद्यते, येन अन्यथासमाधानं भवेत्. किन्तु ब्रह्मणः पुच्छत्वम् इति. पूर्वन्यायेन ‘‘**इदं पुच्छं**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तस्य आनन्दमयब्रह्मभिन्नत्वाद् इति. तत्र तेषां सिद्धान्तः ‘‘**ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा**’’ इत्यत्र स्वयं प्रधानं ब्रह्मैव उच्यते ब्रह्मत्वे सति पुच्छत्वं निषेधशेषत्वेन अन्त्यत्वाद् उक्तं, सर्वाधारत्वात् च प्रतिष्ठारूपत्वम् उक्तम्. तत्र पुच्छप्रतिष्ठारूपस्यैव प्रधानब्रह्मत्वे विनिगमकन्तु ‘‘**असन्नेव स भवति असद्ब्रह्मेति वेद चेद् अस्ति ब्रह्मेति चेद् वेद सन्तम् एनं ततो विदुः**’’(तैत्ति.उप.२।६) इति श्लोके ‘पर’शब्दा‘ऽऽनन्दमय’शब्दौ अनुपादाय केवलं ‘ब्रह्म’शब्दाभ्यासएव इति.

तन्मतं दूषयितुम् आहुः **तत्र** इत्यादि. **तत्र** ‘‘**ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा**’’ इति वाक्ये. **न पुच्छस्य** इत्यादि आनन्दमयस्य पुच्छम् उद्दिश्य वेदनविषयीभूतं प्रधानं ब्रह्माभेदेन विधीयतइति न इति अर्थः. **येन** अप्रधानपुच्छरूपतायाः प्रधानीभूतवेदनविषयब्रह्मणि अयुक्तत्वेन. **अन्यथासमाधानम्** ‘असन्नेव’ इति श्रुत्युक्ताभ्यासेन वेदनविषयब्रह्मणः प्रधानतया उपपादनरूपं समाधानम्. **किन्तु** इत्यादि. तथाच ब्रह्मोद्देशेन पुच्छमेव अभेदेन

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अधिकरणरचनामेव उपपादयन्ति **ब्रह्मपुच्छम्** इति. ‘‘**ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा**’’ (तैत्ति.उप. २।५) इति विषयवाक्ये ‘ब्रह्म’पदवाच्यम् अक्षरमेव ‘पुच्छं’ निषेधशेषं सर्वाधारत्वात्मधानं प्रतिष्ठारूपं प्रतिपाद्यते. अथवा तदेव आनन्दमयस्य पुच्छम् अवयवं प्रतिपाद्यते इति सन्देहे अवयवमेव प्रतिपाद्यते इति पूर्वपक्षे, सिद्धान्तस्तु ‘‘**आनन्दमयो अभ्यासाद्**’’ इति. आनन्दमयः आत्मा अक्षरः ब्रह्म कुतः? अभ्यासाद्, ‘‘**असन्नेव स भवति**’’(तैत्ति.उप.२।६) इति वाक्ये केवलाक्षरस्यैव अभ्यस्यमानत्वात्. एवं रीत्या अक्षरब्रह्मणएव प्रधानत्वम् इति. दूषणम् आहुः **तत्र** इति. तत्र ‘‘ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा’’ इति वाक्ये. **न पुच्छस्य** इति पूर्वपदम् उद्देश्यबोधकम् अपरं विधेयबोधकम् इति रीतिः, ‘‘पर्वतो वह्निमान्’’ इतिवत्. एवञ्च प्रकृते ‘ब्रह्म’पदं पूर्वं भवति इति कृत्वा तद्बोध्यं ब्रह्मैव उद्देश्यं, पुच्छं विधेयम्. नतु पुच्छं उद्दिश्य ब्रह्मत्वम् अभेदेन विधीयते येन विधेयस्य अप्रधानत्वात् प्रधानीभूतस्य ज्ञेयब्रह्मणोऽपि अप्राधान्यं स्याद् इति शङ्का स्यात्. तदैव यदि ब्रह्मणः प्राधान्यं न स्वीक्रियते चेद्, ‘‘**असन्नेव स भवति**’’ इत्यादिना केवलब्रह्मणएव अभ्यासाद् तस्यैव प्राधान्यं वेदबोधितम् इति एतादृशम् अन्यथा समाधानं भवेद् इति अर्थः. **अन्यथा समाधानम्** इति. शङ्कां विनैव समाधानम् इति अर्थः.

प्रतिष्ठा'' इतिवत्. तत्र श्रुतिबाधो ब्रह्मणापि अशक्यः. मौर्ख्यं च एतत्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

विधीयते इति ब्रह्मणः प्राधान्यशङ्कैव नास्तीति अपार्थमेव समाधानम् इति भावः. इदम् उपलक्षणं, वस्तुतस्तु शिरःपक्षादिसर्वेषामेव प्रियादिब्रह्मोद्देशेन विधानात् सर्वत्र ब्रह्मणएव प्राधान्यं नतु अवयवानामिति न क्वापि शङ्कावकाशः इति बोध्यम्. **पूर्वन्यायेन** इत्यादि. ''**समिधो यजति**'' इत्यादिन्यायेन इति अर्थः. तथाच '**समिधो यजति**'' इति न्याये अभ्यासेन समभिव्याहृतसमिदादिपदार्थानां परिच्छेदएव क्रियते नतु बाधः तद्वद् इहापि श्रुतौ 'ब्रह्म'पदाभ्यासः 'ब्रह्म'पदसमभिव्याहृत'पुच्छ'–'प्रतिष्ठा'पदार्थयोः परिच्छेदपूर्वकं निर्णयमेव करिष्यति नतु तयोः बाधइति ब्रह्मणः श्रुत्युक्तपुच्छरूपावयवताबाधो **ब्रह्मणापि अशक्यवचन** इति. तद्बाधनार्थं स्वीयम् अन्यथाधिकरणनिर्वचनं व्यर्थमेव इति भावः. **वद्** इति इवार्थम्. तथाच पूर्वन्यायेनेव पुच्छप्रतिष्ठादिकं निश्चेतव्यम् इति अर्थः. **तत्र** ब्रह्मणि. **श्रुतिबाधः** पुच्छप्रतिष्ठाबोधकश्रुतिबाधः. दूषणान्तरम् आहुः **मौर्ख्यम्** इत्यादि. **एतत्** प्रकारान्तरेण अधिकरणरचनम् अधिकरणभङ्गश्च इति अर्थः. मौर्ख्यम् उपपादयन्ति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तथाच नच शङ्का नच उत्तरम् इति भावः. वास्तविकोद्देश्य–विधेयभावमेव आहुः **किन्तु** इति. **पुच्छत्वम्** इति ''**इदं ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा**'' इति वाक्यं पूर्वन्यायेन ''समिधो यजति'' इतिन्यायेन. पुच्छं प्रतिष्ठा इति वदन् बोधयन् ब्रह्मणः पुच्छत्वं प्रतिपादयति इति अन्वयः. क्वचित् पुस्तके ''पुच्छं प्रतिष्ठेतिवद्'' इति पाठो दृश्यते (भाष्य पृ.१४३ पं.३) तत्र प्रदीपकारैः 'वद्' इत्यस्य इवार्थं कृत्वा पूर्वन्यायेन इत्यत्र अन्वयः कृतः. सतु समीचीनतया न प्रतिभाति. कुत्रापि शास्त्रे अमुकाधिकरणन्यायेन इत्यस्य अनुक्तत्वात्. किञ्च, पूर्वन्यायेन इति उक्त्यैव सादृश्यलाभाद् अमुकन्यायेन अत्र बोद्धव्यम् इतिवद्, किञ्च, 'वदन्' इति पाठे श्रुतिरेव पुच्छं वदति तत्र श्रुतिबाधो ब्रह्मणापि अशक्यः इति स्वारस्यं प्रतिभाति. पूर्ववाक्ये प्रतिपाद्यते इति वर्तते तस्य एवं प्रतिपादयति इति विपरिणामेन अन्वयः प्रतिपाद्यते इति पूर्वेण अन्वयः. **पूर्वन्यायेन** इति. यथा ''समिधो यजत'' इत्यादिपञ्चप्रयाजविधायकवाक्येषु 'यजति' इति अभ्यासेन यागभेदएव प्रतिपाद्यते. नतु 'यजति'पदम् अभिव्याहृतसमिधादिपदार्थानां बाधः. तथा अत्रापि ''**असन्नेव स भवति**'' इत्यादिवाक्येषु 'ब्रह्म'पदाभ्यासेन तत्समभिव्याहृत–पुच्छप्रतिष्ठापदार्थभेदएव प्रतिपाद्यते नतु तयोः बाधः. तथाच आनन्दमयावयवत्वम् अक्षरब्रह्मणः श्रुतिप्रतिपाद्यम् इति, तादृशश्रुतिबाधो ब्रह्मणापि कर्त्तुं न शक्यते इति अर्थः. अन्यदपि दूषणं वदन्ति **मौर्ख्यम्** इति. **स्याद्** इति. पूर्वमेव दूषणनिरासस्य कृतत्वाद् इति

आनन्दमयस्यैव ब्रह्मत्वे न कोऽपि दोषः स्यात्. आनन्दमयस्य अब्रह्मत्वं परिकल्प्य तत्पुच्छत्वेन ब्रह्म वेदबोधितम् इति ज्ञात्वा तत्समाधानार्थं यतमानो महामूढः इति विषयफलयोः किं मुख्यम् इत्यपि अनुसन्धेयम्. पुच्छत्वोक्तिस्तु पूर्वभावित्वाय. अतएव ज्ञानविषयत्वं प्रतिष्ठा च. आनन्दमयो ब्रह्मण्येव प्रतिष्ठिते इति. अत्र

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आनन्देत्यादिना. तथाच आनन्दमयस्य अब्रह्मत्वार्थं सर्वोऽपि पूर्वोक्तः प्रयासः तस्य च ब्रह्मत्वं पूर्वोक्तप्रकारैः सर्वथासिद्धमिति वृथाप्रयासकरणाद् मौर्ख्यमेव पर्यवसितम् इति अर्थः. **आनन्दमयस्य** इत्यादि. **अब्रह्मत्वम्** इत्यादि. मयटो विकारार्थत्वं परिकल्प्य तादृशप्रत्ययान्तार्थत्वेन आनन्दमयस्य अब्रह्मत्वं परिकल्प्य इति अर्थः. **तत्पुच्छत्वेन** अब्रह्मानन्दमयपुच्छत्वेन इति अर्थः. **ब्रह्म** अक्षरम्. **तत्समाधानार्थम्** अब्रह्मपुच्छत्वेन ब्रह्मणोऽपि अब्रह्मत्वापत्ति–दूषणसमाधानार्थम्. **महामूढः** ''विकारशब्दाद्'' इति सूत्रम्. ''**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**'' इत्यादि श्रुत्युपक्रमोपसंहारः च तेषाम् अज्ञानाद् दूषणभूषणोपन्यासाद् महामूढः इति अर्थः. तदेव उपपादयन्ति **विषये**त्यादिना. **विषयः** परप्राप्तिसाधनीभूतज्ञानविषयो अक्षरं ब्रह्म. **फलं** परपदार्थः आनन्दमयः. **पूर्वभावित्वाय** परप्राप्तेः पूर्वज्ञातत्वबोधनाय इति अर्थः. **ज्ञानविषयत्वं** परप्राप्तिकारणज्ञानविषयत्वम्. **प्रतिष्ठा च** अक्षरस्य प्रतिष्ठारूपता च ''**यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम**''(भग.गीता१५।६) ''**विष्णोर्धाम परं साक्षाद्**''(भाग.पुरा.३।११।४१) इत्यादि वाक्यैः बोध्या. तदेतत्साधनाय उक्तम् **आनन्दमयः** इत्यादि. ननु आनन्दमयस्य ब्रह्मत्वे कथम् अवयवावयविभावः, तस्य आनन्दैकरसत्वेन अवयवेषु उपदिष्टतरतमभावस्य

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

भावः. आनन्दमयस्य अब्रह्मत्वे दूषणम् उद्भावयन्ति **आनन्दमयस्य** इति. **तत्समाधानाम्** इति. अमुख्यरूपदूषणस्य 'असन्नेव' इति अभ्याससूचितमुख्यत्वसमाधानार्थम् इति अर्थः. ज्ञानविषयस्य अक्षरब्रह्मणः मुख्यत्वं पूर्वम् उक्तमेव परन्तु फलनिरूपितं मुख्यत्वं तस्य नास्ति इति आहुः **विषये**ति. ननु साधनविषयत्वेन आवश्यकस्य पुच्छत्वोक्तिसमञ्जसेत्यतः आहुः **पुच्छे**ति. **पूर्वभावित्वाय** परप्राप्तेः पूर्वं ज्ञातत्वबोधनाय **प्रतिष्ठा च** इति. ब्रह्मणः इति शेषः. अत्र प्रमाणम् आहुः **आनन्दमये**ति. ननु एवं चेद् द्वैतापत्तिः इत्यतः आहुः **अत्र** इति. अत्र आनन्दमये. अवयविनो भावः अवयवित्वम्. क्वचिद् 'अवयवावयविभावः' इति अपपाठः. तस्य आनन्दब्रह्मोभयनिष्ठत्वाद् अत्र इत्यस्य आनन्दमयार्थकत्वं न स्यात्. एकस्य अवयवित्वे पुच्छनिष्ठा–

अवयवावयविभावो भाक्तः इतितु युक्तम्, प्राणमयादीनामपि तथात्वात्. अन्तःस्थितस्य बाह्यानुरोधेन तथात्वम् इति सर्वं सुस्थम्।।१८।।

इति प्रथमाध्याये प्रथमपादे पञ्चमम् आनन्दमयाधिकरणम्।।५।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तस्मिन् असम्भवाद् अतः आहुः **अत्र** इत्यादि. **अत्र** आनन्दमयादौ. **भाक्तः** तत्तद्धर्मिणि तत्तदवयवकार्यनिर्वाहकत्वमेव तत्तदवयवत्वव्यवहारप्रयोजकम् इदमेव भाक्तत्वं नाम. कैमुतिकन्यायम् आनन्दमयस्य अवयवावयविभावे उपपादयन्ति **प्राणे**त्यादिना. अन्नमये लौकिके अन्नमयानां प्रत्यक्षत्वेन भाक्तत्वस्य वक्तुम् अशक्यत्वात् प्राणमयपर्यन्तम् अनुगमनम्. वस्तुतस्तु अलौकिकविभूतिरूपान्नमयकोशेऽपि धर्मिस्वरूपेणैव सर्वावयवव्यवहाराद् भाक्तएव अवयवावयविभावः. एवं पञ्चस्वपि तादृशव्यवहारस्य भाक्तत्वं बोध्यम्. **तथात्वाद्** भाक्तावयवावयविभाववत्त्वात्. धर्मिस्वरूपेण अवयवावयविकार्यनिर्वाहकत्वरूपभाक्तावयवावयविभावाङ्गीकारप्रयोजनम् आहुः **अन्तः** इत्यादिना. **अन्तःस्थितस्य** आनन्दमयविज्ञा–नमयादेः. **बाह्यानुरोधे** बाह्यकोशानाम् आकारसम्पादनानुरोधेन इति अर्थः. **तथात्वम्** अन्तःस्थितानां धर्मिरूपेण अवयवावयविकार्यकरणम्. **इति** हेतोः भाक्तत्वाङ्गीकाराद् हेतोः. **सर्वम्** आनन्दमयस्य परब्रह्मत्वं पुच्छप्रतिष्ठात्वेन उक्तस्य अक्षरब्रह्मत्वम् इति **सर्वं सुस्थम्** इति अर्थः।।१८।।

‘‘**अथ य**’’ इत्यादि छान्दोग्ये प्रथमप्रपाठके श्रूयते, एतच्छ्रुतौ हि सवितरि विद्यमानत्वेन आधेयत्वेन परिच्छिन्नत्वं, पुरुषत्वेन शरीरित्वं, हिरण्यश्मश्रुत्वादिना रूपवत्त्वं, नामनिर्वचनेन तादृग्नामवत्त्वं श्रूयते. ब्रह्मतु उक्तयावद्धर्मशून्यमिति कथम् अस्य

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

वयवत्वस्य अर्थसिद्धत्वाच्च भाक्तः गौणः. औपचारिकः इति यावत्. ननु भाक्तत्वे हंसाकारता तस्य किमर्थम् उक्ता? इत्यतः आहुः **प्राणे**ति. प्राणमयादीनां जीवानाम् **तथा–त्वाद्**. हंसाकारत्वाद्. एतेन बाह्यस्य हंसाकारत्वं सिद्धम्. **अन्तःस्थितस्य** इति. आनन्द–मयस्य इति शेषः. **बाह्यानुरोधेन** जीवानुरोधेन. **तथात्वं** हंसाकारत्वम्. **सर्वं सुस्थम्** इति सर्वम् आनन्दमयाधिकरणं सुष्ठु तिष्ठति इति सुस्थम् अचलायमानम् इति अर्थः।।१८।।

आनन्दमयाधिकरणे ब्रह्मत्वेन प्रतिपाद्यस्य आनन्दमयस्य ‘‘**यश्च असौ आदित्ये**’’ (तैत्ति.उप.२।८) इति श्रुत्या आदित्येऽपि विद्यमानत्वम् उच्यते श्रुत्यन्तरे. तस्यैव शरीरम् उच्यते इति सन्देहनिराकरणार्थम् अन्तस्तद्धर्मोपदेशाधिकरणम् आरचयन्ति **अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्.**

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्।।१९।। (१।१।६)

‘‘अथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्यमयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यस्मश्रुः हिरण्यकेशः आप्रणखात् सर्वएव ससुवर्णः.(६) तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकम् एवम् अक्षिणि तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः. उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेदः(७)... इति अधिदैवतम्’’(छान्दो.उप.१।६।६-८). **‘‘अथ अध्यात्मम्’’** (तत्रैव १।७।१) अपि **‘‘अथ य एषोऽन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते’’** (तत्रैव १।७।५) इत्यादिः. तत्र संशयः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

परब्रह्मत्वम्? इति संशयबीजात् संशयम् आहुः **तत्र** इत्यादिना. **तत्र** उक्तवाक्यार्थे.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अत्र छान्दोग्यप्रथमप्रपाठकस्थं विषयवाक्यम् आहुः **अथ** इति. अथ विषयवाक्यम्.

> **इयमेव ऋगग् अग्निः साम तदेतदेतस्याम् ऋचि अध्यूढं साम तस्माद् ऋचि अध्यूढं साम गीयते इयमेव सा अग्निरमः तत् साम ।।१।। अन्तरिक्षमेव ऋग् वायुः साम तदेतदेतस्याम् ऋचि अध्यूढं साम तस्माद् ऋचि अध्यूढं साम गीयते अन्तरिक्षमेव सा वायुरमः तत् साम ।।२।। द्यौरेव ऋग् आदित्यः साम तदेतदेतस्याम् ऋचि अध्यूढं साम तस्माद् ऋचि अध्यूढं साम गीयते द्यौरेव सादित्यो अमः तत् साम ।।३।। नक्षत्राण्येव ऋक् चन्द्रमाः साम तदेतदेतस्याम् ऋचि अध्यूढं साम तस्माद् ऋचि अध्यूढं साम गीयते नक्षत्राण्येव सा चन्द्रमा अमः तत्साम ।।४।। अथ यदेतद् आदित्यस्य शुक्लं भाः सैव ऋग् अथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्याम् ऋचि अध्यूढं साम तस्माद् ऋचि अध्यूढं साम गीयते।।५।। अथ यदेवैतद् आदित्यस्य शुक्लं भाः सैव सा अथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमः तत् सामा अथ य एषो अन्तरादित्ये हिरणमयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेशः आप्रणखात् सर्वएव सुवर्णः ।।६।। तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवम् अक्षिणी तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्यः उदित उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद ।।७।। तस्य ऋक् च साम च गेष्णौ तस्माद् उद्गीथः तस्मात्वे व उद्गाता एतस्य हि गाता स एष ये च अमुष्मात् प्राञ्चो लोकाः तेषां चेष्टे देवकामानां चेत्यधिदैवतम् ।।८।।**(छान्दो.उप.१।६)
>
> **अथ अध्यात्मं वागेव ऋक् प्राणः साम तदेतदेतस्याम् ऋचि अध्यूढं साम तस्माद् ऋचि अध्यूढं साम गीयते वागेव सा प्राणो अमः तत् साम।।१।।**

किम् अधिष्ठातृदेवताशरीरम् आहोस्वित् परब्रह्म इति, ब्रह्मणो वा शरीरम्? इति. तदर्थम् इदं विचार्यते. ‘हिरण्मय’शब्दः सुवर्णविकारवाची, आहोस्वित्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

किम् अधिष्ठातृदेवता सूर्यमण्डले चक्षुषि च आधेयभूता तदधिष्ठात्री तदभिमानिनी देवता इति एका कोटिः. **शरीरं** विद्याकर्मातिशयात् प्राप्तचक्षुःसूर्याधिष्ठानस्य जीवस्य श्रुत्युक्तं शरीरं च इति द्वितीया कोटिः. **परब्रह्म** इति तृतीया कोटिः. ननु “**उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद**” (छान्दो.उप.१।६।७) इत्यनेन यज्ज्ञानस्य सर्वपाप्मतरणहेतुत्वम् उक्तं सो अभिमानी कथं स्याद् अभिमानिज्ञानस्य वा कथं पाप्मतरणहेतुत्वम्? प्राप्तब्रह्मपदजीवज्ञानस्य कदाचित् पाप्मतरणहेतुत्वं सम्भवत्यपि निरभिमानित्वाद् अतः आहुः **ब्रह्मणो वा शरीरम्** इति तृतीयां कोटिम्. **तदर्थं** परब्रह्मणः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

> **चक्षुरेव ऋग् आत्मा साम तदेतदेतस्याम् ऋचि अध्यूढं साम तस्माद् ऋचि अध्यूढं साम गीयते चक्षुरेव सा आत्मा अमः तत् साम ।।२।। श्रोत्रमेव ऋङ् मनः साम तदेतदेतस्याम् ऋचि अध्यूढं साम तस्माद् ऋचि अध्यूढं साम गीयते श्रोत्रमेव सा मनो अमः तत् साम ।।३।। अथ यदेतद् अक्ष्णः शुक्लं भाः सैव ऋग् अथ यन्नीलं परः कृष्णं तत् साम तदेतदेतस्याम् ऋचि अध्यूढं साम तस्माद् ऋचि अध्यूढं साम गीयते। अथ यदेव एतद् अक्ष्णः शुक्लं भाः सैव सा अथ यन्नीलं परः कृष्णं तद् अमः तत् साम ।।४।। अथ य एषो अन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते सैव ऋक् तत् साम तदुक्थं तद्यजुः तद्ब्रह्म तस्य एतस्य तदेव रूपं यदमुष्य रूपं यावमुष्य गेष्णौ तौ गेष्णौ यन्नाम तन्नाम ।।५।। स एष ये चैतस्माद् अर्वाञ्चो लोकाः तेषां चेष्टे मनुष्यकामानां चेति तद्य इमे वीणायां गायन्त्येतं ते गायन्ति तस्मात् ते धनसनयः ।।६।। अथ य एतदेवं विद्वान् साम गायति उभौ स गायति सो अमुनैव स एष ये चामुष्मात् पराञ्चो लोकान् तान् च आप्नोति देवकामान् तान् च ।।७।। अथ अनेनैव ये चैतस्माद् अर्वाञ्चो लोकान् तान् च आप्नोति मनुष्यकामान् च तस्मादु ह एवंविद् उद्गाता ब्रूयात् ।।८।। कं ते कामम् अगायानीत्येष ह्येव कामगानस्येष्टे य एवं विद्वान् साम गायति साम गायति ।।९।।** (छान्दो.उप.१।७)

अथ भाष्यं, संशयम् आहुः **किम्** इत्यादि **शरीरम्** इत्यन्तेन. त्रिकोटिकं संशयं प्रतिपाद्यते. **तदर्थम् इदम्** इति. संशयोत्पत्तिबीजम् इति अर्थः. विचारमेव आहुः **हिरण्मयः** इति. त्रिकोटिकसंशये प्रथमं देवताशरीरकोटौ बीजम् आहुः **सुवर्णे**ति.

प्रकाशसाम्येन आनन्दवाची इति. ‘‘**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**’’ (तैत्ति.उप.२।१) इति उपक्रम्य आनन्दमयस्य फलत्वम् उक्त्वा द्विवतीयोपाख्याने ‘‘**स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः स य एवंविद्**’’(तैत्ति.उप.३।१०) इति साधनस्य ‘‘**आनन्दमयम् आत्मानम् उपसङ्क्रम्य**’’ (तैत्ति.उप.३।१०) इति फलं श्रुतम्. तत्र सवितरि विद्यमानस्य अब्रह्मत्वे फलं न उपपद्यते इति विचारारम्भः. तत्र

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

संशये कोटित्वार्थम्. **इदं** ‘हिरण्मय’पदम्. **विकारवाची** ‘‘**मयड्वैतयोर्भाषायां**’’ (पाणि.सू.४।३।१४३) ‘‘**द्वयचश्छन्दसि**’’(पाणि.सू.४।३।१५०) इति स्मृत्या द्व्यचः सकाशात् छन्दसि विकारार्थकमयटोऽपि सम्भवाद् इति अर्थः. **प्रकाशसाम्येन** प्राप्तौ सुखसाम्येन इति अर्थः. ननु पूर्वश्रुत्युक्तस्य अब्रह्मत्वे का क्षतिः ? इत्यतः आहुः **ब्रह्मविद्** इत्यादि. यद्यपि प्रथमोपाख्यानएव ‘‘**स यश्चायं पुरुषे यश्च असौ आदित्ये स एकः य एवं विद्**’’ (तैत्ति.उप.२।८) इत्येतज्ज्ञानलक्षणस्य साधनसहितस्य आनन्दमयात्मोपसङ्क्रमणं फलम् उक्तं तथापि द्विवतीयोपाख्यानोक्तिरूपाख्यानद्वयस्य एकवाक्यताबोधाय इति अवसेयम्. **फलं न उपे**त्यादि ‘‘**य एवंविद्**’’ इति ज्ञानस्य फलं परब्रह्मप्राप्तिरूपं न उपपद्यते इति अर्थः. पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र** इत्यादिना. **विकारवाची** तथाच संसारी जीवएव

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आदित्यमण्डलान्तर्गतसुवर्णविकारभूतशरीरवाची इति अर्थः. द्वितीयतृतीयकोटौ बीजम् आहुः **आहोस्विद्** इति. **प्रकाशसाम्येन** इति. प्रकाशेन जगत्प्रकाशकत्वरूपप्रकाशेन साम्यं सादृश्यं तेन. यथा ‘चन्द्र’पदस्य आह्लादकत्वेन साम्यताम् आदाय मुखवाचकत्वं एवं प्रकाशेन साम्यताम् आदाय अधिष्ठातृदेवता शरीरवाचक‘हिरण्मय’शब्दः आनन्द–रूपब्रह्मवाची इति अर्थः. यथा सूर्यमण्डलान्तःस्थपुरुषशरीरनिष्ठजगद्भासकः प्रकाशः तथा ‘‘**यस्य भासा सर्वम् इदं विभाति**’’(भाग.पुरा.१०।१३।५५) इति श्रुतिप्रतिपाद्य ब्रह्मप्रकाशोऽपि इति रूपकालङ्कारेण ‘हिरण्मय’पदप्रतिपाद्यम् आनन्दमयं ब्रह्म भवति इति द्वितीयकोटौ ‘हिरण्मय’पदं बीजं बोध्यम्. अथच आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिरूपं ब्रह्मशरीरमपि तादृशप्रकाशसाम्येन ‘हिरण्मयपद’प्रतिपाद्यं भवति इति तृतीयकोटावपि तदेव बीजं बोध्यम् इति भावः. सङ्गतिम् आहुः **ब्रह्मविद्** इत्यादिना **विचारारम्भः** इत्यन्तेन. **द्वितीयोपाख्याने**ति. ‘‘**भृगुर्वै वारुणिः**’’ इति उपाख्यनः इति अर्थः. **फलं न उपपद्यते** इति. ब्रह्मज्ञानस्यैव फलजनकत्वाद् इति भावः. पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र** इति. **विकारे**ति. द्व्यच्त्वाद् विकारवाचीति अर्थः. ‘‘**मृता वा एषा**’’ इति इयं श्रुतिः तैत्तिरीये

‘हिरण्मय’शब्दो विकारवाची. केशनखादयः च उच्यन्ते शरीरधर्माः. ‘‘**मृता वा एषा त्वगमेध्या यत् केशश्मश्रु**’’ (कठोप.३) इति शरीरम् अन्तरा न उपपद्यते. परिच्छेदश्च आधिदैविकादिवचनञ्च बाधकम्. अतः सर्वथा तच्छरीरम् इतितु मन्तव्यम्. चाक्षुषत्वाच्च. इन्द्रियवत्त्वञ्च श्रूयते ‘‘**यथा कप्यासं पुण्डरीकम् एवमक्षिणी तस्य**’’ (छान्दो.उप.१।६।७) इति. कपेः आसः आसनम्. आरक्तं तस्य आसनं भवति इति. असभ्यतुल्यता च. अतो देहेन्द्रिययोः विद्यमानत्वाद्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उच्यते इति अर्थः. **शरीरधर्माः** संसारिजीवशरीरधर्माः इति अर्थः. उक्तजीवशरीरधर्मत्वं दृढीकुर्वन्ति **मृते**त्यादिना. **परिच्छेदश्च** चक्षुषि आदित्ये च स्थितेः उक्त्या परिच्छेदः. **आधिदैविके**त्यादि. ‘‘**इत्याधिदैवतम्..अध्यात्मम्**’’ इति वचनम्. **बाधकम्** ‘‘**आध्यात्मिकस्तु यः प्रोक्तः सोसावेवाधिदैविकः**’’(भाग.पुरा.२।१०।८) इति स्मृतौ तस्य आध्यात्मिकाभेदकथनाद् आध्यात्मिकस्य जीवत्वात् तद्वचनमपि परब्रह्मत्वे बाधकम् इति अर्थः. **अतः** ब्रह्मत्वबाधकहेतूक्तितः. **तच्छरीरं** तत्स्थानप्राप्तजीवशरीरम्. **चाक्षुषत्वात्** ‘‘पुरुषो दृश्यते’’ इति उक्त्या चाक्षुषत्वात्. बाधकान्तरम् आहुः **इन्द्रिये**त्यादि. इन्द्रियबोधकश्रुतिम् आहुः ‘‘**यथा कप्यासम्**’’ इत्यादि. **असभ्ये**त्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

षष्ठाष्टके प्रथमप्रपाठके प्रथमानुवाके यजमानस्य वपनविधौ पठ्यते. **परिच्छेदः** इति ‘अन्तरादित्य’ इत्यत्र ‘अन्तः’शब्देन उक्तः इति अर्थः. अस्य च बाधकम् इत्यत्र लिङ्गविपरिणामेन अन्वयः. बाधकः इति अर्थः. **आधिदैविके**ति. ‘‘**य एवं वेद**’’ ‘‘**इति अधिदैवतम्**’’ इति श्रुतौ वचनम् इति अर्थः. तथाच ‘‘**आध्यात्मिकस्तु यः प्रोक्तः सो असावेव आधिदैविकः**’’(भाग.पुरा.२।१०।८) इति स्मृतिप्रामाण्याद् उभयोः अभेदेन आध्यात्मिकस्य जीवत्वाद् आधिदैविकस्यापि जीवत्वेन ब्रह्मत्वं नास्ति इति भावः. आधिदैविकादिवचनम् इत्यत्र ‘आदि’पदेन ‘‘स यश्चायं पुरुषे’’ इति श्रुतिप्रतिपाद्यस्य ‘‘यः एषोऽन्तरक्षिणि’’ इत्युक्ताध्यात्मिकस्य अक्षिपुरुषधर्मस्यापि संग्रहः. **बाधकम्** इति. ब्रह्मत्वबाधकम् इति अर्थः. **तच्छरीरम्** इति. अधिष्ठातृदेवताशरीरम् इति अर्थः. **चाक्षुषत्वाच्च** इति. **मन्तव्यम्** इति पूर्वेण अन्वयः. इन्द्रियवत्त्वं साधयति **इन्द्रिये**ति. **यथा कप्यासम्** इति. आस्यते उपविशते अनेन इति आसम्. उपवेशनार्थकास्‌धातोः करणे घञ्‌कृते ‘आसम्’ इति. कपेरासमिव कप्यासम् इति लुप्तोपमा. एवञ्च यथा मर्कटस्य अधोभागः आरक्तः एवम्. **असभ्ये**ति. नीचतुल्यता इति अर्थः. तथाच यदि

जीवः कश्चिद् अधिकारी सूर्यमण्डलस्थः इति गम्यते. *फलं तत्सायुज्यद्वारा इति. अथ उच्येत **''एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः''** (छान्दो.उप. १।६।७) इति अपहतपाप्मत्वादिधर्मश्रवणात्. पूर्वदोषस्यापि विद्यमानत्वाद् ब्रह्मणएव केनचित् निमित्तेन शरीरपरिग्रहः इति. तस्य च शरीरस्य कर्मजन्यत्वाभावाद् अपहतपाप्मत्वादिः सङ्गच्छते. सुवर्णशरीरत्वमपि अलौकिकत्वाद् ब्रह्मणएव सङ्गच्छते. शरीरवद् इन्द्रियस्यापि परिग्रहः. वर्णमात्रपरिग्रहात् न असभ्यता. स्थावरापेक्षया

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तथाच अप्राकृतेन्द्रियेषु असभ्यदृष्टान्तस्य अनौचित्यात् प्राकृतान्येव तद् इन्द्रियाणि इति अर्थः. **गम्यते** पूर्वोक्तश्रुत्या बोध्यते. ननु तस्य जीवत्वे तज्ज्ञानात् पाप्मतरणोक्तिः अनुपपन्ना स्याद् अतः आहुः ***फलन्तु** इति. तथाच तादृशाधिकारी जीवसायुज्येऽपि यथोचितमुक्तिपापतरणयोः सम्भवात् श्रुत्युक्तफलोपपत्तिः बोध्या. ननु **''एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः''** इतिश्रवणाद् अपहतपाप्मत्वलक्षणब्रह्मधर्मश्रवणात् ''परमात्मेव अयम्'' इत्यतः आहुः **अथ उच्यते** इत्यादि. **पूर्वे**त्यादि. केशश्मश्वादिदोषस्य इति अर्थः. **केनचिद्** इत्यादि. भक्तविशेषोपर्यनुग्रहविशेषेण लीलासुखदानार्थम् इति अर्थः. **तस्य** ब्रह्मणा लीलार्थं गृहीतस्य. **शरीरवद्** लौकिकशरीरवत्. **परिग्रह** इति. **सङ्गच्छते** इत्यनेन अन्वयः. **वर्णे**त्यादि कप्यासवर्णसदृशवर्णपरिग्रहाद् न असभ्यता इति अर्थः.

ननु रक्तकमलदलोपमानं त्यक्त्वा किमिति निषिद्धोपमानम् उक्तम्? अतः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ब्रह्म स्यात् तर्हि नीचतुल्यता न स्याद् इति भावः. कमलम् आरक्तं तद्वद् अक्षिणी यस्य इति अर्थः. कपेः अधोभागस्य वर्णम् आहुः **आरक्तम्** इति. यद् गम्यते ज्ञायते इति अर्थः. ननु सूर्यमण्डलस्थो जीवः स्यात् तदा तदुपासनया फलं न स्याद् इत्यतः आहुः **फलम्** इति. भगवदाज्ञैव एतादृशी मदीयाधिकारिद्वारा सायुज्यम् उपासकानां भवतु इति. अत्र अर्थे प्रमाणं तैत्तिरीये **''अम्भस्य''** इति प्रपाठके **''आदित्यो वा एष एतन्मण्डलम्''** (महाना.उप.१०।१) इति अनुवाकएव.

पूर्वपक्षी अधिष्ठातृदेवताशरीरकोटिं साधयित्वा ब्रह्मशरीरकोटिं साधयति **अथ** इति. अथ सिद्धान्ती **''एषः सर्वेभ्यः''** इतिवाक्येन मण्डलस्थः ब्रह्मैव इति उच्यते तदपि न इति आह **अपहतपाप्मत्वाद्** इति. **पूर्वदोषस्य** इति. शरीरेन्द्रियकोशादिमत्त्वादिदोषस्य इति अर्थः. **केनचिद्** इति. **''भक्तानुग्रहार्थं हि ब्रह्मणो रूपकल्पना''** (   ) इति वचनाद् भक्तानुग्रहेण इति अर्थः.

जङ्गमस्य उत्कृष्टत्वात् स्थावरावयवोपमानवद् जङ्गमावयवोपमानं स्थावरस्यापि इति सर्वब्रह्मभावाय श्रुत्युक्तत्वाच्च. तस्माद् ब्रह्मणएव इदं शरीरम् इति एवं प्राप्ते, उच्यते. **अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्.**

अन्तः दृश्यमानः परमात्मैव. कुतः? **तद्धर्मोपदेशात्.** तस्य ब्रह्मणो धर्माः उदित्यादिधर्माः उपदिश्यन्ते. **''स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः''** (छान्दो. उप.१।६।७) इति. अयम् आशयः. ब्रह्म कारणं, जगत् कार्यम् इति स्थितम्. तत्र कार्यधर्माः यथा कारणे न गच्छन्ति तथा कारणासाधारणधर्माऽपि कार्ये. तत्र

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आहुः **स्थावरे**त्यादि. **स्थावरावयवे**त्यादि. तथाच स्थावरावयवो रक्तोत्पलदलं तदुपमावान् कप्यासः तदुपमेयता च अक्ष्णोः इति परम्परया स्थावरोपमेयत्वाद् न दोषः इति अर्थः. ननु तथापि परम्परया स्थावरोपमानतापि तादृशाक्ष्णोः दोषएव इत्यतः आहुः **स्थावरस्य** इत्यादि. तथाच **''सर्वं खलु''** (छान्दो. उप.३।१४।१) इति श्रुत्या सर्वस्यैव ब्रह्मत्वोक्तेः स्थावरस्यापि ब्रह्मत्वात् तदुपमानता न दोषाय इति अर्थः, एवं कप्यासोपमानतापि निर्दुष्टा ज्ञेया. **उच्यते** सूत्रेण सिद्धान्तः उच्यते इति अर्थः.

सूत्रार्थम् आहुः **अन्तः** इत्यादिना. आदित्यान्तर्दृश्यमानः इति अर्थः. **परमात्मैव** इति 'एव'कारेण अधिकारिजीवव्यवच्छेदः **उदित्यादि** उदितिनामत्वा-द्युपदेशमेव आहुः **'स एष'** इत्यादिना. ननु ब्रह्मधर्मः कारणगतो अपहतपाप्मत्वादि कार्येजीवे संक्रमिष्यति, तन्तुधर्माणां पटे संक्रमवत् तथाच जीवएव श्रुत्युक्तो अपहतपाप्मा स्याद् इत्यतः आहुः **ब्रह्म कारणम्** इत्यादि. **कारणासाधारणे**त्यादि तन्तुत्वपटसमवायिकारणत्वादयः **तत्र**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उत्कृष्टत्वाद् इति. परम्परया अत्र जङ्गमोपमानत्वम् इति भावः. ननु स्थावरोपमानता जङ्गमस्य उचिता नतु विपरीतम् इत्यतः आह **सर्वं ब्रह्म** इति. **''सर्वं खल्विदं ब्रह्म''**(छान्दो.उप.३।१४।१) इति श्रुत्युक्तत्वाच्च इति अर्थः. समाधानम् आहुः **अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्.** सूत्रार्थम् आहुः **अन्तः** इति. ननु साधकन्तु अपहतपाप्मत्वादिरूपम् एकं केशश्मश्र्वादिरूपबाधकानि अनेकानि इति कथम् इदं वक्तव्यम्? कुतः? सति एकस्मिन् बाधके साधकसहस्रस्यापि अकिञ्चित्करत्वाद् इतिन्यायाद् इत्यतः आहुः **अयम् आशयः** इति. **कारणासाधारणधर्माः** इति. केषाञ्चित् कारणधर्माणां कार्ये सङ्क्रमणं दृश्यते इत्यतः उक्तम् **असाधारणे**ति. तथाच तन्तुत्वादीनां पटे सङ्क्रमणं नास्ति इति भावः. **कार्ये** इति. न गच्छन्ति इति पूर्वेण

अपहतपाप्मत्वादयः कारणधर्माः ते यत्र भविन्त तद् ब्रह्म इत्येव अवगन्तव्यम्, बलिष्ठत्वात् कारणधर्मस्य. नामतुल्यतामात्रम् उभयेषामपि धर्माणाम्. ते श्रुत्येकसमधिगम्या ब्रह्मणि. लोके प्रमाणान्तरमपि प्रवर्तते. अतः सर्वरसादयो ब्रह्मनिष्ठाएव धर्माः. स्थूलत्वादयस्तु ये ब्रह्मणि निषिध्यन्ते. अस्थूलादिवाक्येषु ते

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

कारणतासाधारणधर्माणां मध्ये. **कारणधर्माः** कारणासाधारणधर्माः. **अपहतपाप्मत्वादयः** इत्यादिपदेन अगणितानन्दत्वादयो ग्राह्याः. **बलिष्ठत्वाद्** असाधारणधर्मवत्वेन परब्रह्मत्वानुमापकत्वात्. ननु **''उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद''**(छान्दो.उप. १।६।७) इति ब्रह्मवेदनवतो जीवस्यापि अपहतपाप्मत्वस्य श्रुत्योक्तत्वात् कथम् अपहतपाप्मत्वम् असाधारणो ब्रह्मधर्मः? इत्यतः आहुः **नामतुल्यता** इत्यादि. **उभयेषाम्** इत्यादि. ईश्वरीयापहतपाप्मत्वस्य जीवीयापहतपाप्मत्वादिधर्माणां च नामतुल्यतामात्रं नतु अर्थतुल्यता इति अर्थः. ईश्वरे त्रैकालिकपापशून्यत्वरूपस्य तस्य जीवे कदाचित् पापसम्भवेन असम्भवात् तत्र विनिगमकम् आहुः **ते** इत्यादि. **ते** ब्रह्मधर्माः. **लोके** जीवीयकादाचित्कापहतपाप्मत्वे. **प्रमाणान्तरम्** अनुमानम्. तथाच जीवीयापहतपाप्मत्वं पापसमानाधिकरणं, ध्वंसत्वाद्, यो-यो ध्वंसः सः प्रतियोगिसमानाधिकरणः, शब्दध्वंस-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अन्वयः. तथाच कार्यकारणयोः भेदसिद्ध्यर्थं परस्परासाधारणधर्मसङ्क्रमणं न स्वीकर्त्तव्यम् इति भावः. ननु एवं सति प्रकृते किम् आयातम्? इत्यतः आहुः **तत्र** इति. **अपहते**ति. तस्योदिति नाम इति प्रकृतविषयवाक्योक्तापहतपाप्मत्वादयः **कारणधर्माः** इति अर्थः. ननु अस्तु कारणधर्माणां बलिष्ठत्वं परन्तु अपहतपाप्मत्वं कदाचिद् जीवेऽपि स्याद् इत्यतः आहुः **नामतुल्यता** इति. जीवे अपहतपाप्मत्वं पापनाशानन्तरं ब्रह्मणितु त्रैकालिकम् अपहतपाप्मत्वम् इति. एवञ्च केवलम् अपहतपाप्मत्वरूपं यद् नामतुल्यत्वमात्रम् इति अर्थः. **उभयेषाम्** इति. कार्यकारणानाम् इति अर्थः. **ते** इति. अपहतपाप्मत्व-हिरण्यश्मश्रुत्वादिधर्माः इति अर्थः. तथाच श्रुतिप्रतिपाद्यत्वात् तेषां ब्रह्मधर्मत्वमेव इति अर्थः. **प्रमाणान्तरम्** इति. अनुमानादिप्रमाणान्तरम् इति अर्थः. **अतः** इति. श्रुतिप्रतिपाद्यत्वाद् इति अर्थः. **अस्थूलादिवाक्येषु** इति. **''स होवाच एतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्ति अस्थूलम् अनणु अह्रस्वम् अदीर्घम्''** (बृह.उप.३।८।८) इत्यादिबृहदारण्यकश्रुतिवाक्येषु इति अर्थः.

ननु 'अनण्वि'तिवाक्ये अणुत्वनिषेधः कार्यधर्मस्यैव इत्यतः आहुः

कार्यधर्माः. ‘‘**अणोरणीयान्**’’ (कठोप.२।२०) इत्यादिषु कारणधर्माएव. अतः एकोऽपि असाधारणो धर्मो विद्यमानः शिष्टान् सन्दिग्धानपि ब्रह्मधर्मानिव गमयति. इममेव श्रुत्यभिप्रायम् अङ्गीकृत्य सर्वत्र ब्रह्मवाक्यनिर्णयम् आह सूत्रकारः. तथाच *श्रुतिव्यतिरिक्तस्थले तथैव अवगन्तव्यम्. अनन्तम् इति

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

वद् इति. **अतः**(?) श्रुत्या ब्रह्मासाधारणधर्मत्वेन प्रतिपादनतः. **कार्यधर्माः** ‘‘**अस्थूलम् अनणुः**’’(बृह.उप.३।८।८) इत्यादिश्रुत्या परमाणुगताणुत्वस्य आकाशादिगतमहत्वस्य इति अर्थः. ननु निषिध्यमानाणुत्वमहत्त्वादीनां कथं कार्यमात्रधर्मत्वम्? ‘‘**अणोरणीयान्**’’ (कठोप. १।२।२०) इति श्रुत्या तेषामेव ब्रह्मणि विधानाद्. अतः आहुः **कारणधर्माएव** इति. ‘एव’कारेण कार्यधर्मत्वं व्यवच्छिद्यते. तथाहि निषेध्यास्तु कार्यीभूतपरमाण्वाकाशयोः धर्माः. ‘‘**अणोरणीयान् महतो महीयान्**’’(कठोप.१।२।२०) इति श्रुत्या विधेयास्तु परमाण्वाकाशाणुत्व-महत्वातिरिक्ताणुत्व-महत्वधर्माएव, स्फुटं श्रुतितएव तथा प्रतीतेः अन्यथा बाधितार्थप्रतिपादकत्वेन श्रुत्योः अप्रामाण्यापत्तेः. **अतः** असाधारणधर्माणां बलिष्ठत्वतः. **असाधारणः** अपहतपाप्मत्वादिलक्षणः. **सन्दिग्धान्** अणुत्वमहत्वादिरूपान्. **इममेव** सन्दिग्धार्थश्रुतितात्पर्यं निश्चित्य अयमेव श्रुत्यभिप्रेतो अर्थः इति निश्चयार्थमेव, अन्यथा सर्वत्र श्रुत्या निर्णीतार्थकथने व्यासशास्त्रवैयर्थ्यापत्तेः इति भावः. फलितार्थम् आहुः **तथाच** इत्यादिना. इत्थञ्च ब्रह्मणि श्रुतिमात्रगम्ये श्रुत्युक्तासाधारणधर्मैरेव निर्णयः. ***श्रुत्यतिरिक्तस्थले** श्रुत्यतिरिक्तलौकिकप्रमाणगोचरे लौकिकपदार्थे ब्रह्मस्वरूपे. **तथैव अवगन्तव्यं** लौकिकप्रमाणैरेव वस्तुस्वरूपं निश्चेतव्यम्. ननु

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अणोरणीयान् इति. एतादृशवाक्येषु श्रूयमाणम् अणुत्वं कारणधर्मो भिन्नएव इति अर्थः. तथाच निषेधवाक्यानुरोधाद् निषिध्यमानानां धर्माणां लौकिकत्वमेव, यत्र निषेधो नास्ति तत्र अलौकिकाः ब्रह्मधर्माएव इति भावः. **इममेव** इति. इमं भावमेव इति अर्थः. **सर्वत्र** इति. सर्वेषु अधिकरणेषु इति अर्थः. ननु श्रुतौ सन्देहे सति सूत्रवाक्याद् निर्णयो भवतु नाम, परन्तु लोके कथं ज्ञातव्यम्? इत्यतः आहुः **तथाच** इति. **तथैव** इति. लोके प्रत्यक्षादिना क्वचिद् अनुमानेन वा यत्र यादृशम् अवगम्यते, तत्र तादृशमेव अवगन्तव्यम्, ‘‘**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**’’ (छान्दो.उप.३।१४।१) इति वाक्याद् इति अर्थः. ननु एवं चेद् ब्रह्मणो नानात्वापत्तिः ‘‘**एकमेवाद्वितीयम्**’’ (छान्दो.उप.६।२।१) इति श्रुतिविरोधश्च इत्यतः आहुः **अनन्तम्** इति. ‘‘**सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म**’’ (तैत्ति.उप.२।१।१) इति

अनन्तमूर्तिता च ब्रह्मणः प्रतिज्ञाता. अन्यथा ‘‘**गुहायां निहितम्**’’ इति विरुद्ध्येत. तस्मात् साकारं तादृशमेव ब्रह्म. ब्रह्मणः शरीरम् इतितु सर्वथा असङ्गतम्. सर्वकर्तुः ब्रह्मणः का वा अनुपपत्तिः स्याद् येन स्वस्यापि शरीरं कल्पयेत्. किन्तु लीलया व्यामोहनार्थम् अन्यथा भासयेत् नटवत्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

श्रुतिमात्रगम्यं ब्रह्म श्रुतितद्व्यतिरिक्तलौकिकप्रमाणगम्यमपि ब्रह्मैव ‘‘**सर्वं खलु**’’ (छान्दो. उप.३।१४।१) इति श्रुतिदर्शनाद् इत्थञ्च ‘‘**तद्वैतत्**’’ (बृहदा.उप.१।४।१०) श्रुतिविरोधः इत्यतः आहुः ‘**अनन्तम्**’ इत्यादि. तथाच ‘‘**सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म**’’ (तैत्ति.उप. २।१) इति स्वरूपलक्षणे एकस्यैव ब्रह्मणो अनन्तमूर्तिताप्रतिपादनाद् न श्रुतिविरोधः इति अर्थः. नच ‘अनन्त’पदस्य अविनाशित्वमेव अर्थः इति वाच्यं, ‘ब्रह्म’पदेनैव अविनाशित्वलाभाद् अनन्यलभ्यस्यैव शब्दार्थत्वाद् **अन्यथा** परिच्छिन्नपरिमाणकनानामूर्तितानङ्गीकारे. **गुहायां** भक्तहृदयाकाशे. **निहितम्** इत्यादि. तथाच गुहायाम् अत्यल्पप्रमाणवत्त्वेन आकाशतोऽपि अतिव्यापकस्य ब्रह्मणो निहितत्वासम्भवात् श्रुतिविरोधः स्फुटः इति अर्थः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादिना. **तादृशमेव** व्यापकं श्रुतिमात्रगम्यं कारणरूपं नानामूर्तिकं, कार्यरूपं लौकिकप्रमाणगम्यं, यादृशं-यादृशं श्रुत्युक्तं तादृशमेव इति अर्थः. श्रुतिप्रतिपाद्यस्य हिरण्मयपुरुषस्य ब्रह्मत्वं निर्णीय संशयोल्लिखितां तृतीयां कोटिं दूषयितुम् आहुः **ब्रह्मणः** इत्यादि. **सर्वकर्तुः** निमित्ताभिन्नोपादानस्य सर्वकर्तुः. ननु शरीरतद्ग्रहणत्यागादीनाम् उपलभ्यमानत्वाद् लीलाविशेषं कर्तुं शरीरपरिग्रहे को दोषः? इत्यतः आहुः **किन्तु** इत्यादि. अतएव ‘‘**अज्ञत्वं पारवश्यञ्च विधिभेदादिकं तथा, तथा प्राकृतदेहत्वं देहत्यागादिकं तथा, असुराणां विमोहाय दोषा विष्णोः न हि क्वचिद्**’’( ) इत्यादिस्मृतिरपि उपपन्ना

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

वाक्येन एकस्यैव अनन्तत्वोक्तेन श्रुतिविरोधः इति अर्थः. अत्र अर्थे अर्थापत्तिप्रमाणम् आहुः **अन्यथा** इति. अनन्तमूर्त्तित्वाभावे एकस्यैव सर्वत्र व्यापकस्य गुहायामपि स्थितत्वाद् निहितम् इति अनुपपन्नं स्याद् इति अर्थः. **साकारम्** इति. एकम् अनन्तं साकारं वेदगम्यम् इति अर्थः.

एतावता अधिष्ठातृदेवतापक्षो निराकृतः. ब्रह्मणएव शरीरम् इति पक्षं निराकुर्वन्ति **ब्रह्मणः शरीरम्** इति. ननु कथम् असङ्गतम्? इत्यतः आहुः **सर्वकर्तुः** इति. **नटवद्** इति. लीलया शरीरवद् भासयेद् नटवद् इति अर्थः. अत्र प्रमाणं श्रीमद्भागवतीयप्रथमस्कन्धीयवाक्यम्, ‘‘**यथा मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्याद् यथा नटः**’’(भाग.पुरा.१।

तस्माद् वेदातिरिक्तेऽपि उपपत्तिपूर्वकं यत्र ब्रह्मधर्मः तद् ब्रह्म इति मन्तव्यम्. ब्रह्मतु वेदैकसमधिगम्यं यादृशं वेदे प्रतिपाद्यते तादृशमेव इति असकृद् अवोचाम. प्रकृतेऽपि ‘हिरण्मयः’ इत्यत्र ‘य’कारलोपः छान्दसः. अतो न द्व्यच्. ‘हिरण्य’शब्दः आनन्दवाची, लोकेऽपि तस्य आनन्दसाधकत्वात्. अतः केशादयोऽपि सर्वे आनन्दमयाएव. तादृशमेव ब्रह्मस्वरूपम् इति मन्तव्यम्. अतएव **‘‘ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ति नारायणः सरसिजासन सन्निविष्टः, केयुरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः’’** (आन.हृद.५५) इत्यत्रापि ‘वपुः’ स्वरूपम्. **‘‘माया ह्येषा मया सृष्टा’’** (महाभा.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ज्ञेया. श्रुत्युक्तस्य कैमुतिकन्यायेन ब्रह्मत्वं वक्तुम् आहुः **तस्माद्** इत्यादि. **वेदातिरिक्ते** भक्तानुभूतस्मृतिप्रतिपादितब्रह्मस्वरूपस्थले. **उपपत्तिपूर्वकं** निराबाधयुक्तिपूर्वकम्. **यत्र** ‘‘**किं स्वप्न एतदुत**’’ इत्यादिना यत्र ब्रह्मत्वनिर्णयः तादृशस्थले इति अर्थः. इत्थञ्च वेदैकसमधिगम्यस्य ब्रह्मत्वे किं वाच्यम्? इति अर्थः. ननु द्वयच्प्रकृतिक‘हिरण्मय’-शब्दार्थस्य कथं न विकारित्वम्? अतः आहुः **प्रकृतेऽपि** इत्यादि. **अतएव** तादृशपुरुषस्य आनन्दमयमात्रस्वरूपत्वादेव **वपुः स्वरूपम्** इति उपलक्षणं वस्तुगत्या यावद्धर्मविशिष्टं ध्येयस्वरूपं प्रतिपादितं तावत् सर्वमेव आनन्दस्वरूपम् इति बोध्यम्. ननु एवञ्च ‘‘**माया ह्येषा मया सृष्टा यन् मां पश्यसि नारद**’’ (महा.भा.१२।३३९।४५) इति कथम् उपपद्येत? इत्यतः आहुः **माया** इत्यादि. तथाच भूतगुणैः युक्तं मां यत् पश्यति सा माया इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

१५।३५) इति. ननु हिरण्मयः इत्यत्र मयटो विकारार्थकत्वात् कथं तस्य ब्रह्मवाचकत्वम्? अतः आहुः **प्रकृतेऽपि** इति. तथाच अयम् अच् तेन न विकारार्थे प्रत्ययः इति भावः.

ननु ब्रह्मणः आनन्दरूपत्वं श्रुतिसिद्धं नतु हिरण्यरूपत्वम् इत्यतः आहुः **हिरण्यशब्दः** इति. अस्मिन् अर्थे प्रमाणम् आहुः **ध्येयः** इति. **वपुः स्वरूपम्** इति. ब्रह्मस्वरूपम् इति मन्तव्यम् इति पूर्वेण अन्वयः. ननु हिरण्यश्मश्रुः इत्यादिना वपुः स्वरूपं दृश्यते इति उक्तं ‘‘**ध्येयः सदा**’’(आन.हृद.५५) इति अस्मिन् पद्येऽपि ‘वपुः’पदमेव उक्तं तेन च कृत्वा किं ज्ञायते ब्रह्मणैव शरीरं धृतम् इत्यतः आहुः **माया ह्येषा** इति. भारते, ‘‘**माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद, सर्वभूतगुणैः युक्तं न मां पश्यन्ति सूरयः**’’ (महाभा.१२।३३९।४५) इति भारतीयभगवद्वाक्ये. ‘‘सर्वभूतगुणैः युक्तं यन्मां पश्यसि, एषा माया मया सृष्टा’’ इति अन्वयः. तथाच मायया एतादृशं मां पश्यन्ति नतु

१२।३३९।४५) इत्यादिभगवद्वाक्यं *भगवन्मायया भगवन्तम् अन्यथा पश्यन्ति इति आह, नतु भगवानेव मायिकः इति. शरीरे सति जीवत्वमेव इति निश्चयः. अतो ब्रह्मधर्मोपदेशात् सूर्यमण्डलस्थः परमात्मैव।।१९।।

भेदव्यपदेशाच्चान्यः।।२०।।

इतोऽपि सूर्यमण्डलस्थः परमात्मा, **भेदव्यपदेशात्**. ‘‘**य आदित्ये तिष्ठन् आदित्याद् अन्तरो, यम् आदित्यो न वेद, यस्य आदित्यः शरीरं, य आदित्यम् अन्तरो यमयति, एष त आत्मा अन्तर्याम्यमृतः**’’ (बृहदा.उप.३।७।९) इति श्रुत्यन्तरे आधिदैविकं सूर्यमण्डलाभिमानिभ्यां भेदेन निर्दिष्टम्. यद्यपि तत्र आकारो न श्रूयते तथापि ‘हिरण्मय’वाक्येन एकवाक्यत्वात् सर्वत्र साकारमेव ब्रह्म इति मन्तव्यम्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

***भगवान्** नारदः. **अन्यथा पश्यति** भूतगुणैः युक्तं पश्यति. **ब्रह्मधर्मः** अपहतपाप्मत्वम्।।१९।।

पूर्वोक्तार्थदृढीकरणाय हेत्वन्तरम् आह ‘‘**भेदव्यपदेशाच्चान्यः**’’. **इतोऽपि** एतद् हेतुतोऽपि. भेदव्यपदेशमेव आहुः ‘‘**य आदित्ये**’’ इत्यादिना. ‘‘**य आदित्ये तिष्ठन् आदित्याद् अन्तरो यम् आदित्यो न वेद यस्य आदित्यः शरीरं य आदित्यम् अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्याम्यमृत**’’(बृह.उप.३।७।९) इति. **श्रुत्यन्तरे** एतस्यां श्रुतौ. **आधि-दैविकम्** इति **निर्दिष्टम्** इत्यनेन अन्वयः. **सूर्यमण्डले**त्यादि. तथाच मण्डलं जडम्, अभिमानी जीवः चेतनः, ताभ्यां भेदेन इति अर्थः. **तत्र** श्रुत्युक्तान्तर्यामिस्वरूपे.

ननु अत्र भेदनिर्देशमात्रेण कथं परमात्मलाभः? इत्यतः आहुः **अन्तर्यामी**त्यादि. तद्धर्मैः आधारधर्मैः. ‘‘**य आदित्ये तिष्ठन्नादित्याद् अन्तरः**’’ इत्यनेन जडं मण्डलम्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

मया शरीरं धृतम् इति भावः. इदमेव आहुः **नतु** इति. ननु किमर्थम् अयम् आग्रहः शरीरसत्त्वे बाधकं किम् अतः आहुः **शरीरः** इति. तथाच ‘शरीराभिमानित्वं जीवत्वम्’ इति लक्षणाद् जीवत्वम् इति भावः।।१९।।

आदित्यमण्डलान्तःस्थं ब्रह्मैव इत्यत्र साधकान्तरसूत्रम् आहुः ‘‘**भेदव्यपदेशाच्चान्यः**’’. **भेदेन** इति जडं सूर्यमण्डलं, जीवः तदभिमानी आदित्यः तयोः भेदेन इति अर्थः. व्यपदेशवाक्यमेव आहुः ‘‘**यः आदित्ये**’’ इति.

अस्मिन् वाक्ये परमात्मप्रतिपादनप्रकारम् आहुः **अन्तर्यामी** इति **तदर्थम् इति** इत्यन्तेन. अर्थचतुष्टयमेव आहुः **सर्वत्र** इति. ‘‘**आदित्ये तिष्ठन्**’’ (बृहदा.उप.३।७।९)

अन्तर्यामिब्राह्मणे चत्वारो अर्थाः उच्यन्ते. सर्वत्र तिष्ठन् तद्धर्मैः न सम्बध्यते. सर्वमुक्तिपरिहाराय स्वधर्मैः तद् न बद्ध्यते. *स्वलीलासिद्ध्यर्थं तच्छरीरम् इति. तस्य नियमनं तदर्थम् इति. **‘च’**काराद् धर्माः उच्यन्ते. तस्मात् सर्वविलक्षणत्वाद् **अन्य**एव, न अभिमानी. उपचारव्यावृत्त्यर्थम् ‘अन्य’पदेन

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आधारत्वेन निर्दिश्य तस्यापि अन्तरत्वोक्त्या तद्भेदः प्रदर्शितः. आदित्याद् अन्तरत्वं तदभिमानिनो जीवस्यापि अस्तीति तज्जीवतोऽपि भेदबोधनाय ‘‘**यमादित्यो न वेद**’’ इत्यनेन अभिमान्यज्ञेयत्वम् उक्तम्. यदि अभिमानी जानीयाद् मुक्तएव स्याद् इति अर्थः. तच्छरीरं ‘‘**यस्यादित्य शरीरम्**’’ इति उक्तम् इति अर्थः. तस्य नियमनं ‘‘**य आदित्यम् अन्तरो यमयति**’’ इत्यनेन नियमनम् उक्तम् इति अर्थः. **तदर्थं** लीलाकरणार्थम्. **चकारात्** सूत्रस्थ‘च’कारात्. **धर्माः** हिरण्मयपुरुषधर्माः. **उपचारे**त्यादि. तथाच सूर्यमण्डलाभिमानिनः उपासनार्थम् ‘‘**आत्मान्तर्याम्यमृतः**’’(बृह.उप.३।७।९) इति उक्तं नतु वास्तवामृतत्वादिरूपतापि अस्तीति उपचारः तद्व्यावृत्यर्थम्. **अन्यपदेन** उक्तान्तर्यामिणि

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इत्यनेन आदित्याद् भेदे साधिते परमात्मा आदित्यधर्मैः न सम्बध्यते इति एको अर्थः. आदित्यमण्डलान्तःस्थजीवोऽपि तद्भिन्नो भवति इति एतदर्थम् उक्तं ‘‘**यम् आदित्यो न वेद**’’ (तत्रैव) इति. तेन परमात्मलाभः. अत्र ‘मण्डलाभिमानी जीवः तं जानीयाद् तदा मुक्तः स्याद्’ इति अर्थापत्तिप्रमाणेनापि तदज्ञत्वं बोध्यम्. अतएव आहुः **सर्वमुक्तिपरिहाराय** इति. **स्वधर्मैः** इति. सर्वज्ञापहतपाप्मत्वादिधर्मैः इति अर्थः. तद्**,** मण्डला–भिमानवद् वस्तु. **न बध्यते,** न व्याप्नोति तेन मण्डलाद् जीवाच्च भेदसिद्धिः. अयं द्वितीयो अर्थः. तृतीयार्थम् आहुः **स्वलीला** इति. जगद्भानेन स्वस्वधर्मप्रवृत्तिरूपलीलासिद्ध्यर्थम्. चतुर्थम् आहुः **तस्य** इति. **तस्य** मण्डलाभिमानिनः. ***तत्सिद्ध्यर्थम्** इति लीलासिद्ध्यर्थम् इति अर्थः. तथाच नियमनं विना लीलासिद्धिः न जायते इति लोकास्थितिरपि इति भावः. अत्र प्रमाणं ‘‘**भीषा अस्माद् वातः पवते भीषा उदेति सूर्यः**’’ (तैत्ति.उप.२।८) इति श्रुतिः. इति चत्वारो अर्थाः उक्ताः. **चकाराद्,** सूत्रस्थ‘च’कारात्. **उच्यन्ते** इति. एवञ्च ‘च’कारस्य उक्तसमुच्चायकत्वात् पूर्वसूत्रोक्तधर्माः समुच्चीयन्ते इति अर्थः. ननु जीवः एषः एते धर्माः आरोप्यन्ते तथाच जीवपरमेव इदम् अधिकरणं स्याद् इत्यतः आहुः **उपचारे**ति. उपचारो आरोपः. तथाच ‘‘**नेतरो अनुपपत्तेः**’’ (ब्रह्मसू.१।१।१५) इतिवद् अत्रापि अन्यपदेन उपसंहारः. ननु उपासनार्थम् आरोपएव कुतो न

उपसंहारः. ब्रह्मत्वे सिद्धे ज्ञानं वा उपासना वा इति, न अस्मत् सिद्धान्ते कश्चन विशेषः. कारणे कार्यधर्मारोपस्तु अयुक्तएव. कार्ये पुनः कारणधर्माधिकरणत्वेन उपासना अभेदात्. फलाय इति सर्वत्र व्यवस्थितिः ।।२०।।

इति प्रथमाध्याये प्रथमपादे षष्ठम् अन्तस्तद्धर्माधिकरणम्।।६।।

“अस्य लोकस्य का गतिः ? इति आकाश इति होवाच. सर्वाणि ह वा

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

साक्षादभिमानिभेदबोधकान्यन्यपदेन. ननु “**ॐ इत्येतद् अक्षरम् उद्गीथम् उपासीत**” (छान्दो.उप.१।१।५) इति उपासनोपक्रमाद् उपासनायाश्च आरोपितधर्मेणैव करणसम्भवात् कथम् एतद्वाक्ये ब्रह्मत्वेन ज्ञानसिद्ध्यर्थं वास्तवब्रह्मतानिर्णायकत्वम्? अतः आहुः **ब्रह्मत्वे**त्यादि. **कश्चन** इति. तथाच ज्ञानं वा उपासना वा वास्तवधर्मैरेव नतु उपासनायाम् आरोपाकाङ्क्षा इति अविशेषः इति भावः. ननु सर्वत्र उपास्ये वास्तवोपास्यधर्माः न सम्भवन्ति ॐकाररूपत्वेन उद्गीथोपासनायाम् उद्गीथे ॐकाररूपत्वधर्मस्य असम्भवाद् अतः आहुः **कारणे**त्यादि. **अयुक्तएव** युक्तिबाधितएव. **कार्ये** उद्गीथादिरूपे. **कारणधर्माः** ॐकारादिकारणानां धर्माः. **उपासना** कार्योपासना. **अभेदात्** कार्यकारणाभेदात्।।२०।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

स्वीक्रियते इत्यतः आहुः **ब्रह्मत्वे**ति. तथाच सूर्यमण्डलान्तःस्थं वास्तविकं ब्रह्मैव तस्य ब्रह्मत्वेन ज्ञाने जाते यत्कार्यं जायते तदेव कार्यं कारणधर्मारोपेण जायते, ज्ञानोपासनयोः अस्मन्मते समफलत्वाद् इति भावः।।२०।।

पूर्वाधिकरणद्वयेन ‘विकारे प्राचुर्ये वा मयड्’ इति प्रत्ययसन्देहो निवारितः. इदानीं प्रकृतिसन्देहं वारयितुं आकाशाधिकरणम् एकेन सूत्रेण रचयाञ्चक्रुः. “**आकाशः तल्लिङ्गात्**”. अत्र छान्दोग्यप्रथमप्रपाठकस्थं विषयवाक्यम् आहुः **अस्य** इति.

> **“अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते आकाशं प्रति अस्तं यन्ति आकाशो ह्येवैभ्यो ज्यायान् आकाशः परायणं स एष परोवरीयान् उद्गीथः स एषोऽनन्तः परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकान् जयति य एतदेवं विद्वान् परोवरीयां समुद्गीथम् उपास्ते. तं हैतम् अतिधन्वा शौनक उदरशाण्डिल्यायोल्को वा च याज्ञवल्क्य एनं प्रजायाम् उद्गीथं वेदिष्यन्ते परोवरीयो हैभ्यस्तावद् अस्मिन् लोके जीवनं भविष्यति तथा अमुष्मिंल्लोके लोक इति स य एतमेवं विद्वान् उपास्ते परोवरीय एव हा**

इमानि भूतानि आकाशादेव समुत्पद्यन्ते. आकाशं प्रत्यस्तं यन्ति. आकाशो ह्येव एभ्यो ज्यायानाकाशः परायणम्'' (छान्द.उप.१।९।१) इति.

तत्र संशयः. भूताकाशो ब्रह्म वा? इति. ननु कथम् अत्र सन्देहः? 'आकाश'-'व्योम'शब्दाः बह्मण्येव प्रयुज्यन्ते ब्रह्मप्रकरणे. कार्यनिरूपणेतु महाभूतवचनः. यथा ''**आकाश आनन्दो न स्यात्**''(तैत्ति.उप.२।७) ''**परमे व्योमन् प्रतिष्ठित**''(तत्रैव ३।६) इत्यादि. ''**आत्मनः आकाशः सम्भूतः**'' (तत्रैव २।१) इति कार्यनिरूपणम्. अतः प्रकरणादेव सन्दिग्धनिर्णये किमिति सूत्रारम्भः. जन्मादिलक्षणसूत्रेण च अयम् अर्थो निर्णीतः. अन्यथा 'ब्रह्म'शब्देऽपि सन्देहः स्यात्, महाभूतवेदादिवाचकत्वात्. तस्मात् प्रकरणादेव परिज्ञानं भविष्यति इति चेद्, उच्यते. असन्दिग्धे प्रकरणे तथैव निर्णयः. इह पुनः प्रकरणमपि सन्दिग्धम्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

छान्दोग्यप्रथमप्रपाठकस्थविषयवाक्यम् उक्त्वा अधिकरणप्रयोजनं स्फुटीकर्तुं संशयादिकम् आहुः **तत्र** इत्यादिना. श्रुत्युक्ताकाशशब्दे ब्रह्मार्थकत्वम् आहुः **यथा आकाशः** इत्यादि. कार्याकाशम् आहुः **आत्मनः** इत्यादि. ननु ब्रह्मणः उत्पत्तिस्थितिभङ्गादिहेतुत्वरूपलक्षणार्थम् इदं सूत्रम् अतः आहुः **जन्मादि** इति. **निर्णीत**ः. तथाच वैयर्थ्यमेव पर्यवसितं सूत्रस्य. **अन्यथा** 'आकाश'शब्दे ब्रह्मार्थकत्वनिर्णायकप्रकरणसत्वेऽपि सन्देहाङ्गीकारे. **'ब्रह्म'शब्दे**त्यादि. तथा च 'ब्रह्म'शब्दनिर्णयार्थमपि किञ्चित् सूत्रं स्याद् इति भावः. **इति चेद्** इति पूर्वपक्षः प्राप्तः चेद् इति अर्थः. **उच्यते** सिद्धान्तः उच्यते. **सन्दिग्धं** भूताकाशवाचका'काश'शब्दस्य ब्रह्मवाचका'काश'शब्दैकप्रकरण–

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अस्यास्मिन् लोके जीवनं भवति तथा अमुष्मिन् लोके लोक इति
लोके लोक इति''. (छान्दो.उप.१।११।७)

अथ भाष्यम्. अधिकरणप्रयोजनम् आहुः **ननु** इत्यादिना **विचार**ः इत्यन्तेन प्रकरणात्. सन्देहएव न उत्पद्यते इति आहुः **आकाशे**ति. ब्रह्मप्रकरणम् आहुः **यथा** इति. कार्यप्रकरणम् आहुः **आत्मनः** इति. **सन्दिग्धनिर्णये**ति. सन्दिग्धस्य सन्देह–विषयीभूतस्य शब्दार्थस्य निर्णये सति इति अर्थः. ननु ब्रह्मण उत्पत्त्यादित्रयहेतुत्व–सिद्ध्यर्थम् इदं प्रणीतम् इत्यतः आहुः **जन्मादी**ति. **अन्यथा** इति. प्रकरणस्य सन्देहवारकत्वे. **महाभूते**ति. आकाशस्यापि बृहत्त्वाद् तद्वाचकत्वाद् इति अर्थः. **सन्दिग्धम्** इति ब्रह्मभूताकाशोभयवाचकम् 'आकाश'पदम् एकस्मिन्नेव प्रकरणे पठितम् इति इदं ब्रह्मविषयकं

अतो विचारः. अवान्तरविद्यायां पर्यवसितप्रकरणवद् अस्यापि प्रकरणस्य भूताकाशएव पर्यवसानम् इति लोकभाष्यन्यायेन आकाशो भौतिकएव इति पूर्वपक्षः. तत्र आह.

आकाशस्तल्लिङ्गात्।।२१।। (१।१।७)

आकाशः परमात्मैव. कुतः? **तल्लिङ्गात्.** श्रुतिलिङ्गादयो नियामकत्वेन पूर्वतन्त्रवद् इहापि गृह्यन्ते. लिङ्गं श्रुतिसामर्थ्यम् एकवाक्यता च सर्वासां

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पठितत्वेन उभयोः सन्देहात् प्रकरणिनोऽपि सन्देहः इति अर्थः इति बोध्यम्. **अवान्तरविद्यायाम्** इति. तथाच जानश्रुत्युपाख्यानं यथा संवर्गविद्यायां पर्यवसितं तथा इदमपि प्रकरणं भूताकाशएव पर्यवसितं स्याद् इति अर्थः. **लोकभाष्यन्यायेन** लोके गृहीतशक्तिकः शब्दो वेदेऽपि बोधकः इति न्यायेन. इत्थञ्च विचारः आवश्यकः इति अर्थः. **तत्र आह** पूर्वपक्षे सूत्रकारः समाधानम् आह इति अर्थः.

''आकाशस्तल्लिङ्गात्''. तल्लिङ्गात् ''यदेष आकाश आनन्दो न स्याद्'' (तैत्ति.उप.२।७) इत्यत्र 'आकाश'पदस्य ब्रह्मप्रकाशनसामर्थ्यात्. **नियामकत्वेन** अर्थ-विशेषनिर्णायकत्वेन ''**अर्थविप्रकर्षाद्**''(जैमि.सू.३।३।१४) इति जैमिनिसूत्रोक्ताः. **इहापि** व्यासमीमांसायामपि. **सामर्थ्यम्** अर्थप्रकाशनम्. **सर्वासां ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते**''(तैत्ति.उप.३।१), ''**आकाशादेव सर्वाणि भूतानि जायन्ते**''(छान्दो.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

भूताकाशविषयकं वा प्रकरणम् इति प्रकरणं सन्दिग्धम् इति अर्थः. पूर्वपक्षम् आहुः **अवान्तरे**ति. यथा सम्वर्गविद्यायां जानश्रुत्युपाख्यानं पर्यवसितं तथा अत्रापि 'आकाश'शब्दस्य भूताकाशएव पर्यवसानम् इति अर्थः. **लोके**ति. येन पदेन लोके भाष्यते कथ्यते यो अर्थः इति अर्थः. तथाच लोके अवगतसामर्थ्यः शब्दो वेदेऽपि बोधकः इति न्यायेन इति यावद्, भूताकाशे ब्रह्मत्वेन उपासनया फलं भविष्यति इति पूर्वपक्ष्याशयः.

समाधानम् आहुः ''**आकाशस्तल्लिङ्गात्**''. **श्रुतिलिङ्गादयः** इति. ''**श्रुति-लिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानानां समवाये पारदौर्बल्यम् अर्थविप्रकर्षाद्**'' (जैमि. सू.३।३।१४) इति जैमिनिसूत्रोक्ता इति अर्थः. नियामकत्वेन अर्थनिश्चयजनकत्वेन. एकवाक्यता च इति. अत्र पूर्वमीमांसासूत्रं, इदञ्च पूर्वमीमांसायां तृतीयाध्याये विस्तरेण उक्तं विस्तरभयाद् विरम्यते. निःसन्दिग्धेषु ''**यतो वा इमानि**'' इति वाक्येषु

ब्रह्मश्रुतीनाम्. तत्र ब्रह्मैव जगत्कारणम् इति निःसन्दिग्धेषु सिद्धम्. सर्वशब्दवाच्यत्वं ब्रह्मण्येव. तत्र वाक्यार्थापेक्षया पदार्थस्य दुर्बलत्वाद् वाक्यार्थः सर्वगतित्वादिः. तद्वाक्यार्थान्यथानुपपत्त्या ‘आकाश’पदार्थो ब्रह्म इति सर्वशब्दवाच्यत्वाच्च न लक्षणा, मुख्यत्वाच्च. यावत् मुख्यपरत्वं सम्भवति तावद् न

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उप.१।९।१) इत्यादिरूपाणाम्. **तत्र** जगत्कारणतायाः ब्रह्मणि व्यवस्थापकश्रुतौ. **निःसन्दिग्धेषु ‘‘यतो वा’’ ‘‘तस्माद् वा’’** इत्यादिवाक्येषु. **‘सर्व’शब्दे**त्यादि. श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां समवाये पारदौर्बल्यतात्पर्यालोचने **‘‘सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि आकाशादेव’’**(छान्दो.उप.१।९।१) इति श्रुतिघटक‘सर्व’पदप्रतिपाद्यत्वम्. **तत्र ‘‘अस्य लोकस्य का गतिः’’**(छान्दो.उप.१।९।१) इति श्रुतिवाक्ये. **वाक्यार्थापेक्षया ‘‘का साम्नो गतिः’’** (छान्दो.उप.१।८।४) इत्यारभ्य लोकपर्यन्तसर्वेषां गतिम् आश्रयरूपाम् उक्त्वा **‘‘अस्य लोकस्य का गतिः’’** (छान्दो.उप.१।९।१) इति प्रश्ने **‘आकाशः’** इति उक्तेः सर्वगतित्वम् आकाशपदार्थब्रह्मणएव नतु भूताकाशस्य. तथाच वाक्यार्थः सर्वगतित्वं तच्च ब्रह्मण्येव उपपन्नं नतु भूताकाशइति ब्रह्मैव ‘आकाश’पदवाच्यं नतु भूताकाशः, तस्य लोकान्तःपातित्वेन सर्वलोकगतित्वासम्भवात्. **पदार्थस्य** भूताकाशरूपपदार्थस्य. **तद्वाक्यार्थे**त्यादि. आकाशे सर्वगतित्वबोधकवाक्यार्थः इति अर्थः. **सर्वशब्दे**त्यादि. **‘‘सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि आकाशादेव समुत्पद्यन्ते’’** इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सन्दिग्धेषु आहुः **सर्वे**ति. अत्र ‘सर्व’शब्देत्यनेन विषयवाक्यं गृह्यते. तथाच **‘‘सर्वाणि ह वा इमानि’’**(छान्दो.उप.१।११।५) इत्यादिवाक्यबोध्यत्वं ब्रह्मण्येव इति अर्थः. अथवा **‘‘सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति’’**(कठोप.१।२) इति श्रुत्या ‘सर्व’शब्देत्यनेन सर्वोपनिषद्–वाक्यं गृह्यते. तस्य तत्रैव तात्पर्यमिति तद्वाच्यत्वं ब्रह्मण्येव इति अर्थः. तत्र विषयवाक्ये वेदवाक्यार्थम् आह **सर्वगतित्वाद्** इति. सर्वेषां भूतानां गतिः आश्रयः इति अर्थः. तद्वाक्यार्थान्यथानुपपत्येति सर्वेषां ब्रह्मणएव उत्पत्तिः तत्रैव लयः एवञ्च सर्वाश्रयं ब्रह्म इति सर्ववेदान्तवाक्यार्थः. तथाच अत्रापि आकाशादेव उत्पत्तिः लयश्च प्रतिपाद्यते. अत्रत्य ‘आकाश’पदं ब्रह्मवाचकं न चेद् अत्र अन्यएव सर्वाश्रयो भविष्यति इति सर्वेषाम् एकवाक्यत्वं न स्याद् इति अनुपपत्त्या ‘आकाश’पदवाच्यं ब्रह्मैव इति भावः. ननु लोके ‘आकाश’पदस्य भूताकाशवाचकत्वाद् अत्र अनुपपत्त्या तस्य ब्रह्मणि लक्षणा अस्तु इत्यतः आहुः **सर्वशब्दे**ति. ब्रह्मणः वाच्यवृत्त्या सर्ववेदबोध्यत्वाद् न लक्षणा इति अर्थः.

कस्यापि वेदान्तस्य अपरब्रह्मपरत्वम् इति मर्यादा. तस्माद् ‘‘**यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्**’’(तैत्ति.उप.२।७) इतिवद् अत्रापि आकाशो ब्रह्मैव इति सिद्धम्।।२१।।

इति प्रथमाध्याये प्रथमपादे सप्तमम् तल्लिङ्गाधिकरणम्।।७।।

अतएव प्राणः।।२२।। (१।१।८।२२)

‘‘**प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता**’’(छान्दो.उप.१।११।४) इति

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

श्रुत्युपात्तासङ्कुचितवृत्तिक‘सर्व’शब्दवाच्यत्वस्य भूताकाशेऽपि सत्वात्. तथाच ‘आकाश’पदेन भूताकाशोपादाने तस्यापि स्वस्माद् उत्पत्यापत्तिः स्यात्. सातु बाधितात्माश्रयदोषप्रसङ्गाद् इति अर्थः. ननु शक्त्या ‘आकाश’पदं ब्रह्मबोधकं लक्षणया भूताकाशं बोधयतु अतः आहुः **न लक्षणा** इत्यादि. तथाच युगपद्वृत्तिद्वयविरोधाद् मुख्यार्थे बाधाभावाच्च न लक्षणा इति अर्थः. **मुख्यब्रह्मपरत्वम्** उत्पत्यादित्रितय-कर्तृब्रह्मपरत्वम्. **कस्यापि** आकाश-प्राण-ज्योतिरादिशब्दानां मध्ये कस्यापि इति अर्थः. **अपरे**त्यादि. आध्यात्मिकादिब्रह्मपरत्वम् इति अर्थः. **आकाशो ब्रह्म** इति. तथाच श्रुतौ ‘आकाश’पदे ब्रह्मरूपार्थप्रकाशनसामर्थ्यरूपलिङ्गाद् आकाशपदार्थोअत्र ब्रह्मैव नतु भूताकाशः इति फलितम्।।२१।।

अतएव श्रुतौ ‘प्राण’पदे ब्रह्मप्रकाशनरूपसामर्थ्यस्य लिङ्गस्य सत्त्वादेव **प्राणः** प्राणपदवाच्यः परमात्मैव इति अर्थः. छान्दोग्यप्रथमप्रपाठकवाक्यं विषयवाक्यत्वेन आहुः **प्रस्तोतर्ये**त्यादि. अत्र ‘देवता’पदेन उपक्रमाद् ‘आदित्य’सहपाठाच्च न ब्रह्मप्रकरणम्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ननु क्वचिद् लक्षणापि सम्भवति इत्यतः आहुः **मुख्यत्वाच्च** इति. **मुख्यपरत्वम्** इति परब्रह्मपरत्वम् इति अर्थः. **अपरब्रह्म** इति. आध्यात्मिकब्रह्म इति अर्थः. **तस्माद्** इति. वाक्यार्थान्यथानुपपत्या ‘आकाश’पदस्य ब्रह्मप्रकाशनसामर्थ्याद् इति अर्थः।।२१।।

अस्मिन् अधिकरणे पूर्वाधिकरणसादृश्याद् अतिदेशेन विचारं कर्तुं प्राणाधिकरणम् आरचयन्ति. ‘‘**अतएव प्राणः**’’. पूर्वस्थलीयं विषयवाक्यम् उदाहरन्ति **प्रस्तोतर्या** इति. अथ विषयवाक्यम् (छान्दो.उप.१।१०।१).

मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्या सह जाययोषस्तिर्ह चाक्रयण इभ्य ग्रामे प्रदाणक उवास सहेभ्यं कुल्माषान् खादन्तं विभिक्षे तं ह उवाच ने तोन्ये विद्यन्ते यच्च येम इम उपनिहिता इत्येतेषां मे देहीति ह उवाच तान् अस्मै

प्रददौ हन्तानुपानम् इत्युच्छिष्टं वैमे पीतं स्याद् इति ह उवाच नस्विदेतेप्युच्छिष्टामो इति न वा अजीविष्यम् इमा न खादन्निति ह उवाच, काम उदकपानम् इति स ह खादित्वातिलेषां जायाया आजहार साग्रएव सुभिक्षा बभूव तान् प्रतिगृह्य निदधौ सह प्रातः सञ्जिहान उवाच यद्वतां नस्य लभेमहि लभेमहि धनमात्रां राजासौ यक्ष्यते समासर्वैः आर्त्विज्यैः वृणीतेति तं जायोवाच हन्त पात इम एव कुल्माषा इति तान् खादित्वा अमुं यज्ञं विततमैयाय तत्रोद्गातॄनास्तावे स्तोष्यमाणा–नुपोपविवेश सह प्रस्तोतारम् उवाच प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावम् अन्वायत्ता तां चेद् अविद्वान् प्रस्तोष्यसि मूर्द्धा ते विपतिष्यतीत्यमेव उद्गातारम् उवाच उद्गातर्या देवतोद्गीथम् अन्वायत्ता तां चेद् अविद्वान् उद्गास्यसि मूर्द्धा ते विपतिष्यति इत्येवमेव प्रतिहर्तारम् उवाच, प्रतिहर्तर्यादेवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेद् अविद्वान् प्रतिहरिष्यसि मूर्द्धा ते विपतिष्यतीति तेह समारताः तूष्णीमासाञ्चक्रिरे.

अथ हैनं यजमान उवाच भगवन्तं वा अहं विविदिषाणीत्युषस्तिरस्मि चाक्रायण इति ह उवाच स ह उवाच भगवन्तं का अहम् एभिः सर्वैः आर्त्विज्यैः पर्येशिषं भगवतो वा अहमवित्यान्यानवृषि भगवांस्त्वेव मे सर्वैः आर्त्विज्यैरिति तथेत्यथ तर्हि एतएव समतिसृष्टाः स्तुवतां यावत्वेभ्यो धनं दद्यास्तावन् मम दद्या इति, तथेति ह यजमान उवाच अथ हैनं प्रस्तोतोपससाद प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावम् अन्वायत्ता तां चेद् अविद्वान् प्रस्तोष्यसि मूर्द्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवान् अवोचकत् कतमा सा देवतेति प्राण इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेव अभिसम्विशन्ति प्राणम् अभ्युज्जिहते सैषा देवता प्रस्तावम् अन्वायत्ता तां चेद् अविद्वान् प्रास्तोष्यो मूर्द्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेत्यथहैनम् उद्गातोपससाद उद्गातर्या देवतोद्गीथम् अन्वायत्ता तां चेद् अविद्वान् उद्गास्यसि मूर्द्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवान् अवोचत् कतमा सा देवतेति आदित्य इति ह उवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि आदित्यम् उच्चैः सन्तं गायन्ति सैषा देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेद् अविद्वान् उदगास्यो मूर्द्धा ते व्यपतिष्यत् तथोक्तस्य मयेत्यथ हैनं प्रतिहर्ता उपससाद प्रतिहर्तया देवता प्रतिहारम् अन्वायत्तां तां चेद् अविद्वान् प्रतिहरिष्यसि मूर्द्धा ते विपतिष्यतीति मा

उपक्रम्य श्रूयते. ‘‘**कतमा सा देवतेति प्राण इति होवाच. सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जहते. सैषा देवता प्रस्तावमन्वायत्ता**’’ (छान्दो.उप.१।११।५) इति. तत्र संशयः. प्राणः आसन्यो ब्रह्म वा? इति. पूर्वपक्षसिद्धान्तौ पूर्ववदेव इति अतिदिशति. ननु अधिकरणानां न्यायरूपत्वात् सर्वत्र गमिष्यति, किमिति अतिदिश्यते इति. उच्यते.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

‘‘**प्राणस्य प्राणम्**’’ (बृह.उप.४।४।१८) इत्यादिश्रुतिः ब्रह्मप्रकरणस्था इति सन्देहबीजम्. **प्रस्तावमन्वायत्ता** इति. प्रस्तावं सामोपासनाविशेषः तादृशोपासनाविषयीभूता नियता ‘अन्वायत्ता’पदेन उच्यते देवता इति अर्थः. **तत्र** श्रुत्युपात्त‘प्राण’पदे. **प्राणः** श्रुत्युपात्तः ‘प्राण’पदवाच्यः. **आसन्यः** वायुभेदो **ब्रह्म वा** इत्याकारः इति अर्थः. **पूर्ववदेव** लोकपुराणादिप्रसिद्ध्या वायुभेदएव इति पूर्वपक्षः. श्रुत्युक्तसर्वभूतसंवेशनरूपलिङ्गस्य ब्रह्मण्येव सम्भवेन ‘प्राण’पदेन ब्रह्मैव उच्यते इति सिद्धान्तः **अतिदिशति** ‘अतएव’ इत्यनेन लिङ्गाद्यर्थकेन सूत्रकारो अतिदिशति इति अर्थः. एतद् अधिकरणे वैयर्थ्यम् आशङ्कते **ननु** इत्यादिना. **सर्वत्र** ‘‘प्रस्तोतरि’’इत्यादिविषयवाक्यस्थलेऽपि **गमिष्यति**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

> **भगवान् अवोचत् कतमा सा देवता इति अन्नम् इति ह उवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि अन्नमेव प्रतिहरमाणानि जीवन्ति सैषा देवता प्रतिहारम् अन्वायत्ता तां चेद् अविद्वान् प्रतिहरिष्यो मूर्द्धा ते व्यपतिष्यत् तथोक्तस्य मयेति तथोक्तस्य मयेति.**

अथ भाष्यम्. ‘प्राण’पदम् अस्मिन्नेव विषयवाक्ये **अन्नादित्यसहपाठे** प्रयुज्यते इति. ब्रह्मप्रकरणस्थं न भवति. ‘‘**प्राणस्य प्राणम्**’’ (बृह.उप.४।४।१८) इति श्रुतिस्तु ब्रह्मप्रकरणस्थेति सन्देहबीजं मनसि निधाय संशयम् आहुः **तत्र संशयः** इति. **आसन्यः** इति. आस्ये भवः आसन्यः, वायुरूपः मुख्यप्राणः इति अर्थः. पूर्ववद् इति पुराणप्रसिद्धो हृदिस्थः आसन्यो ग्राह्यः. **‘प्राण’**पदेन इति. पूर्वपक्षः. सिद्धान्तस्तु, **अतएव** लिङ्गादेव ‘प्राण’शब्दस्य ब्रह्मप्रकाशनसामर्थ्यादेव ‘प्राण’शब्देन ब्रह्म उच्यते इति पूर्ववद् इति अर्थः. **अतिदिशति** इति. **अतएव** इति पदेन इति शेषः. अत्र पूर्वपदेन विचारः चेद् इदम् अधिकरणं न कर्तव्यम् इति शङ्कते **ननु** इति. **सर्वत्र** इति. यत्र ब्रह्मासाधारणधर्मः तत्र ब्रह्मत्वम् इति पूर्वाधिकरणन्यायः सर्वत्र गमिष्यति इति अर्थः. समाधानम् आहुः **उच्यते** इति. ब्रह्मासाधारणधर्मः सर्वभूतसम्वेशनत्वं सच प्राणेऽपि

प्राणस्य मुख्यस्यापि सर्वभूतसंवेशनं स्वापादौ श्रुतावेव उपपाद्यते **''यदा वै पुरुषः स्वपिति प्राणं तर्हि वागप्येति''** (शत.ब्राह्म.१०।३।३।६) इत्यादिना. तत्र यथा प्राणविद्यायाः न ब्रह्मपरत्वम् एवमेव अस्यापि न ब्रह्मपरत्वमिति न न्यायेन प्राप्नोति. अतो अतिदिशति. अनेन च अयम् अतिरिक्तो न्यायः आपादितः. यत्रैव प्रकरणे ब्रह्मपरत्वे कल्प्यमाने न किञ्चिद् बाधकं तत्रैव ब्रह्मपरत्वं कल्पनीयम् इति, नतु अन्यस्मिन् सम्भवे तत्परत्वम् इति. अतएव तल्लिङ्गात् 'प्राण'शब्दवाच्यं ब्रह्म इति।।२२।।

इति प्रथमाध्याये प्रथमपादे अष्टमम् अतिदेशाधिकरणम्।।८।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पूर्वोक्ताधिकरणमेव समानन्यायस्थले गमिष्यति. **मुख्यस्य** वायुभेदरूपस्य. **अस्यापि** एतच्छ्रुतिस्थ-'प्राण'पदस्यापि. **न्यायेन** अतिदिष्टाधिकरणान्तरेण. **प्राप्नोति** 'प्राण'पदस्य ब्रह्मार्थत्वं प्राप्नोति. **अनेन** अतिदेशेन. **अतिरिक्तः** पूर्वाधिकरणाद् अतिरिक्तः. **न किञ्चिद् बाधकं** यथा **''प्राणं तर्हि वागप्येति, प्राणं चक्षुः, प्राणं श्रोत्रं, प्राणं मनो यदा बुध्यते प्राणादेवाधि पुनः जायते''** (शत.ब्राह्म.१०।३।३।६) इत्यत्र इन्द्रियरूपभूतानां वायुरूपप्राणसन्निवेशेन प्राणविद्यायां प्राणस्य बोधे न बाधकत्वं तथा इति अर्थः. **अन्यस्मिन्** प्राणादिरूपे अन्यस्मिन्. **तत्परत्वं** ब्रह्मपरत्वम्. **तल्लिङ्गात्** श्रुतौ ब्रह्मप्रकाशनरूप-सामर्थ्यस्य 'प्राण'पदे सत्वात्।।२२।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अस्ति इति आहुः **प्राणस्य** इति. श्रुतिम् आहुः **पदे**ति. अत्र पूर्वन्यायो न प्रवर्तते इति आहुः **तत्र** इति. न प्राप्नोति, 'प्राण'पदस्य न ब्रह्मपरत्वं प्राप्नोति इति अर्थः. अतिदेशस्य फलम् आहुः **अनेन** इति. **यत्रैव** इति. प्राणविद्या द्विविधा, **''यदा वै पुरुषः स्वपिति''** (शतप.ब्राह्म.१०।३।३।६) इति एका, **''सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि''** (छान्दो.उप. १।११।५) इति अपरा. पूर्वविद्यायां स्वापकाले प्राणे 'सर्वभूत'-शब्दप्रतिपाद्यः सर्वेन्द्रियसन्निवेशः प्रतिपाद्यते. अपरायां प्राणे सर्वभूतानां प्राणिनाम् अभिसम्वेशः लयकाले प्रतिपाद्यते इति प्रकरणभेदाद् बाध्य-बाधकभावो नास्ति इति अतिदेशेन ब्रह्मप्रकरणस्थ-'प्राण'शब्दस्य ब्रह्मपरत्वम् इति ज्ञापनार्थम् इदम् अधिकरणम्. यदि इदम् अधिकरणं न स्यात् तर्हि पूर्वाधिकरणन्यायेन पूर्वविद्यायां ब्रह्मपरत्वाभावेन अपरविद्यायाः अपि ब्रह्मपरत्वं न स्याद् इति आखण्डलार्थः. सूत्रार्थम् आहुः **अतएव** इति. **तल्लिङ्गाद्** इति. तस्याः श्रुतेः लिङ्गात् सामर्थ्याद् इति अर्थः।।२२।।

ज्योतिश्चरणाभिधानात्।।२३।। (१।१।९)

इदम् आमनन्ति. ‘‘**अथ यदतः परो दिवो ज्योतिः दीप्यते, विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेषु अनुत्तमेषु उत्तमेषु लोकेषु इदं तावद्यदिदम् अस्मिन्नतः पुरुषे**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आमनन्ति छान्दोग्यपञ्चमप्रपाठके पठन्ति इति अर्थः. **विश्वतः पृष्ठेषु** सर्वतः उत्तरितस्यैव विवरणं **सर्वतः पृष्ठेषु** इति.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इदानीं यत्र ब्रह्मासाधारणधर्मः स्पष्टं न प्रतीयते श्रुतिसामर्थ्यमपि नास्ति तत्र ब्रह्मपरत्वबोधनाय चतुर्भिः सूत्रैः ज्योतिश्चरणाधिकरणं रचयाञ्चक्रुः. ‘‘**ज्योतिश्चरणाभिधानाद्**’’. छान्दोग्यपञ्चमप्रपाठकस्थं विषयवाक्यम् आहुः **अथ यद्** इति. अत्र आदितः विषयवाक्यम् (छान्दो.उप.३।१२।१).

> **गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किञ्च वाग्वै गायत्री वाग्वा इदं सर्वं भूतं गायति च त्रायते च या वै सा गायत्री यं वाव सा या इयं पृथिवी अयां हीदं सर्वं भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव नातिशीयते या वै सा पृथिवी इयं वाव सा यदिदम् अस्मिन् पुरुषे शरीरम् अस्मिन् हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते यद्वैतत्पुरुषे शरीरमिदं वाव तद्यदिदम् अस्मिन् अन्तःपुरुषे हृदयम् अस्मिन् हि इमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री तदेतद् ऋच अभ्यनूक्तं तावान् अस्य महिमा ततो ज्यायांश्च पूरुषः, पादो अस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्य अमृतं दिवीति यद्वै तद् ब्रह्म इतीदं वाव तद् यो अयं बहिर्द्धा पुरुषाद् आकाशो यो वै स बहिर्द्धा पुरुषाद् आकाशो अयं वाव स यो अयम् अन्तःपुरुष आकाशो यो वै सो अन्तःपुरुष आकाशो यं वाव स यो अयम् अन्तर्हृदय आकाशः तदेतत्पूर्णमप्रवर्ति पूर्णामप्रवर्तिनीं श्रीयं लभते य एवं वेद.**
>
> **तस्य ह वा एतस्य हृदयस्य पञ्चदेवसुषयः स यो अस्य प्राङ्सुषिः स प्राणः तच्चक्षुः स आदित्यः तेद् एतत् तेजो अन्नाद्यम् इति उपासीत तेजसि अन्नादो भवति य एवं वेद अथ योस्य दक्षिणः सुषिः स व्यनः तच्छ्रोत्रं स चन्द्रमाः तदेतत् श्रीश्च यशश्च इति उपासीत, श्रीमान् यशस्वी भवति य एवं वेद अथ यो अस्य प्रत्यङ्सुषिः सोपानः सा वाक् सो अग्निः तदेतद् ब्रह्मवर्चसम् अन्नाद्यम् इति उपासीत ब्रह्मवर्चसि अन्नादो भवति य एवं वेद अथ यो अस्य उदङ्क्सुषिः स समानः तन्मनः स पर्जन्यः तदेतत्कीर्तिश्च**

ज्योतिः''(छान्दो.उप.३।१३।७) इति. तत्र 'ज्योतिः'शब्देन प्राकृतं ज्योतिः आहोस्विद् ब्रह्मैव ? इति संशयः.

अत्र असाधारणब्रह्मधर्माभावात् पूर्वपक्षः. सिद्धान्तेतु चरणस्य ब्रह्मधर्मत्वम् इति ''**एतावान् अस्य महिमा. अतो ज्यायांश्च पूरुषः. पादो अस्य**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

असाधारणेत्यादि. ''**ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः**'' (भग.गीता १३।१७) इति ब्रह्मासाधारणधर्मः तस्य अत्र अनुक्तेः, प्राकृतं जाठररूपं ज्योतिरेव इदम् इति पूर्वः पक्षः.

एतावान् इत्यादि. सर्वसृष्टम् आरभ्य अक्षरब्रह्मान्तः. **अस्य** परब्रह्मणः. **महिमा** माहात्म्यम्. **अतः** माहात्म्यविशिष्टाक्षरब्रह्मणः. **ज्यायान्** श्रेष्ठतमः. **पूरुषः** पुरुषोत्तमः. **पादः** इत्यादि. सर्वभूतविशिष्टाः जीवाः **अस्य** पुरुषोत्तमस्य एकः पादः इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

> **व्युष्टिश्च इति उपासीत कीर्तिमान् व्युष्टिमान् भवति य एवं वेद अथ यो अस्य ऊर्द्ध्वः सुषिः स उदानः स वायुः स आकाशः तदेतद् ओजश्च महश्च इति उपासीत औजस्वी महस्वान् भवति य एवं वेद ते वा एते पञ्चब्रह्म–पुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः स य एतानेवं पञ्चब्रह्मपुरुषान् स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान् वेदास्य कुले वीरो जायते प्रतिपद्यते स्वर्गं लोक य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान् स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान् वेदाथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेषु अनुत्तमेषु उत्तमेषु लोकेषु इदं वाव तद् यद् इदम् अस्मिन् अन्तः पुरुषे ज्योतिः तस्य एषा दृष्टिः यत्र एतद् अस्मिन् शरीरे संस्पर्शे नोष्णिमानं विजानाति तस्यैषा श्रुतिः यत्र एतत्कर्णौ अभिगृह्य निनदमिव नदथुरिव अग्नेरिव ज्वलत उपश्रुणोति तदेतद् दृष्टं च श्रुतं च इति उपासीत चक्षुष्यः श्रुतो भवति य एवं वेद य एवं वेद.**

अथ भाष्यम्. **अथ यद्** इति. अथ गायत्र्याख्ये ब्रह्मविद्योपास्यनन्तरं यद् ज्योतिः अतः दिवो द्युलोकात् परः परस्माद् विश्वतः प्राणिवर्गाद्, सर्वस्माद् भुवरादिलोकात् पृष्ठेषु उपरिभागेषु, न विद्यते उत्तमाः येभ्यः एतादृशेषु लोकेषु दीप्यते यदेव इदम् अस्मिन् पुरुषे जाठराग्नौ तदिदम् एकमेव इति अर्थः.

संशयम् आहुः **तत्र** इति. पूर्वपक्षम् आहुः **अत्र** इति. **असाधारणे**ति. ''**ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः**'' (भग.गीता.१३।१७) इति गीतावाक्योक्तासाधारणधर्माभावात् प्राकृतो जठराग्निरेव अत्र ज्योतिः गृह्यते, इति पूर्वपक्षः इति अर्थः. सिद्धान्तम् आहुः **चरणस्य** इति. चरणस्य ब्रह्मधर्मत्वप्रसिद्धिम् आहुः **एतावान् अस्य** इति.

सर्वा भूतानि त्रिपाद् अस्यामृतं दिवि’’ (छान्दो.३।१२।६) इति पूर्ववाक्यम्. **‘‘गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किञ्च’’**(छान्दो.उप.३।१२।१) इति गायत्र्याख्य-ब्रह्मविद्यां वक्तुं तस्याः पादचतुष्टयं प्रतिपाद्य ब्रह्मणः चतुष्पात्त्वम् उक्तम्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पूर्वपादस्य ब्रह्मधर्मत्वेऽपि मुख्यं धर्मरूपं द्वितीयं पादम् आह **त्रिपादस्य** इत्यादिना. त्रयः पादाः विद्यन्ते यस्मिन् तत् त्रिपाद् एतादृशम्. **अमृतं** मोक्षसुखरूपम्. **दिवि** विद्यमानम्. **पूर्ववाक्यम् ‘‘अथ यद् अतः परः’’**(छान्दो.उप.३।१३।७)इत्यस्य वाक्यस्य पूर्ववाक्यम्. इत्थञ्च पूर्ववाक्ये ब्रह्मणः चरणविशिष्टस्य निरूपणाद्, उत्तरवाक्यस्य च पूर्ववाक्ये एकवाक्यतापन्नत्वाद्, उत्तरवाक्ये चरणानुपादानात् सूत्रे **चरणाभिधानाद्** इति हेतुः स्वरूपासिद्धः इति आशङ्का निरस्ता बोध्या. एकवाक्यता च पूर्वश्रुतौ **‘‘एतावान् अस्य महिमा’’** (छान्दो.उप.३।१२।६) इति ‘एतच्’छब्दोपादानाद् उत्तरश्रुतौ च ‘‘यदतः परम्’’ इति ‘यच्’छब्दोपादानाद् बोध्या. ननु तथापि ‘‘यदतः परम्’ इत्यनेन विश्वात्मकाक्षराद् दूरस्थितत्वं बुध्यते, निराधारं च ब्रह्म, तस्य सर्वविश्वाधारकत्वम् असम्भवदुक्तिकम् इति चेद्, न, वृक्षाग्रस्थिते श्येने वृक्षाग्रात् परः श्येन इति उपरिदेशसङ्गवति श्येने वृक्षाग्राधिकरणके तथा पञ्चमीपरशब्दयोः प्रयोगदर्शनाद् **‘‘य आदित्ये तिष्ठन् आदित्याद् अन्तरः’’**(बृह.उप.३।७।९) इति श्रुतौ ब्रह्मणः साधिकरणतायाः निरूपणाच्च अनुपपत्तिलेशाभावात्. नानास्थलेषु ब्रह्मणः पादानां निरूपणं प्रदर्शयितुम् आहुः **गायत्री** इत्यादि. तस्याः ब्रह्मत्वेन प्रतीकोपासनाविषयीभूतायाः. **प्रतिपाद्ये**त्यादि. तथाच गायत्र्याः ब्रह्मप्रतीकत्वेन उपासनार्थं ब्रह्मणः पादाएव गायत्रीपादत्वेन निरूपितेति ब्रह्मणएव अत्र पादनिश्चयः कृतः इति फलितम्. **गायत्र्याख्यब्रह्मविद्यां** गायत्री या छन्दोरूपा तस्याः ब्रह्मत्वेन उपासनारूपां विद्याम् इति अर्थः पूर्वप्रतीकस्य बोध्यः.

पूर्वोक्तार्थदृढीकरणाय ब्रह्मणः चरणनिर्णायकस्थलान्तरम् आहुः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

‘तावानस्य’ इति पाठः. **पूर्ववाक्यम्** इति. एतद्वाक्येन एकवाक्यताबोधनार्थम् इयम् उक्तिः. तथाच अन्यत्र वाक्ये चरणस्य ब्रह्मधर्मत्वोपादानात् तदैकवाक्यतया अत्रापि तद्धर्मत्वेन ज्योतिषः ब्रह्मत्वं बोध्यम् इति भावः. ननु कीदृशम् एकं वाक्यं वाक्यैकवाक्यता वा कीदृशी इत्यतः आहुः **गायत्री** इत्यादिना **निरूप्य इति सिद्धम्** इत्यन्तेन. अत्र स्पष्टप्रतिपत्तिः आदितः विषयवाक्ये ज्ञेया. **ब्रह्मणः** इति. **उक्तम्** इति. ऋचा इति शेषः. तथाच ब्रह्मणः चरणाभिधानेन ब्रह्मप्रकरणसिद्धौ तत्प्रकरणपठितस्य ‘ज्योतिः’शब्दस्य

पुरुषसूक्तेऽपि आश्रमचतुष्टयस्था जीवाः पादत्वेन उक्ताः. तथा प्रणवब्रह्मविद्यायामपि अकारोकारमकारनादवाच्याः चत्वारः पादाः विश्वतैजसप्राज्ञतुरीयाः उक्ताः. **“तद्विष्णोः परमं पदम्”**(कठोप.१।३।९) इति च. **“ब्रह्म पुच्छम्”**(तैत्ति.उप.२।५) इति च. सत्यकामब्राह्मणेतु स्पष्टाएव ब्रह्मणः चत्वारः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पुरुषसूक्तेत्यादि. “**त्रिपाद् ऊर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोस्येहाभवत् पुनः ततो विश्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने उभे**” (ऋग्वेद १०।९०।४) इत्यत्र आश्रमत्रयस्थान् जीवान् पादत्वेन उक्त्वा ‘**पादोस्येहा**’ इति एकवचनेन चतुर्थाश्रमजीवस्य भगवति स्थितस्य पादत्वम् उक्तम्. तेभ्यः पादेभ्यः ‘साशनानशन’पदवाच्ये नित्यानित्यफले विशेषेण अक्रामत् प्राप्तवान् इति आश्रमचतुष्टयस्था जीवाः पादत्वेन उक्ताः. न हि अब्रह्मणः एते पादाः सम्भवन्तीति अन्यत्रापि पादान् प्रदर्शयितुम् आहुः **प्रणवे**त्यादि. अकारोकार–मकार–नादानां पादानां नामानि आहुः **विश्वतैजसप्राज्ञतुरीया** इति. इत्थञ्च प्रणवब्रह्मविद्यायां ब्रह्मणः चत्वारपादाः उक्ताः. तथा “**यदतः परो दिवो ज्योतिः**” (छान्दो.उप.३।१३।७) इत्यत्र ‘ज्योतिः’पदवाच्यस्य ब्रह्मणः पादाः निर्णीताः ज्ञेयाः. एवं ब्रह्मणः चरणनिर्णायकान्तरम् आहुः “**तद्विष्णोः परमं पदम्**” इति. “**सदा पश्यन्ति सूरयः**” (सुबा.उप.६।१) इत्यनेन चरणे प्रत्यक्षं प्रमाणम् उक्तम्. पुनः निदर्शनानन्तरम् आहुः “**ब्रह्म पुच्छम्**” **इति च** इति. अत्र ‘पुच्छ’पदेन पुरुषोत्तमस्थितिस्थानम् अक्षरं चरणरूपम् उक्तम् इति पादसत्वे सम्मतिः उक्ता. निःसन्दिग्धं ब्रह्मपादानां निर्णायकस्थलम् आहुः **सत्यकामब्राह्मणः** इत्यादिना. तथाहि ‘सत्यकाम’नामा जबालापुत्रो जाबालो मातरं प्रति आमन्त्र्याञ्चक्रे, मातर्ब्रह्मचर्यं चरित्वा गुरूकुले वसन् स्वाध्यायम् अध्येष्ये इति इच्छा जाता अस्ति मम इत्यअतः किङ्गोत्रो अहम्? इति मां वद, यतो गुरुः “त्वं किङ्गोत्रो असि” इति वर्णनिश्चयार्थं प्रश्नं करिष्यति, त्रैवर्णिकानामेव अधिकारात् तन्निर्णयार्थम् एवं पृष्टा

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ब्रह्मप्रतिपादकत्वम् इति भावः. अन्यत्रापि ब्रह्मणः चतुष्पात्त्वसिद्धिम् आहुः **पुरुषसूक्तेऽपि** इति. “**त्रिपाद् ऊर्ध्व**” इत्यत्र आश्रमचतुष्टयवद् देहिनां जीवानां पादत्वेन उक्तिः. यदि ब्रह्मणः पादाएव न सन्ति चेत् कथम् इयम् उक्तिः सम्भवति इति भावः. स्पष्टं च इदं द्वितीयस्कन्धे सूक्तविवरणाध्याये, अन्यत्र ब्रह्मप्रकरणे ब्रह्मणः चतुष्पात्त्वसिद्धिम् आहुः **तथा** इति. ‘**प्रणवे**’ति माण्डूक्ये. काठके ‘**तद्विष्णोः**’ इति, तैत्तिरीयके ‘**ब्रह्मपुच्छम्**’ इति, पुच्छं स्थितिस्थानम्. अक्षरं ब्रह्म इति यावद्, तस्य चरणे रूपत्वम् उक्तम् **सत्यकामे**ति. छान्दोग्यस्थेति शेषः. **स्पष्टाएव** इति. जाबालं प्रति

पादाः निरूपिताः. अतः सच्चिदानन्दरूपस्य प्रत्येकसमुदायाभ्यां चतूरूपत्वम्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

जबाला "**न अहं तव गोत्रं जानामि**" इति उवाच. ततो मात्रा उक्तं "**नामतु तव जानामि. सत्यकामजाबालः त्वम्**" इति. ततो जाबालो हारिद्रुमतं गुरुम् उपेयिवान्. तदनन्तरं गुरुणा पृष्टः तथैव उक्तवान्. ततः सत्योक्त्या निश्चितब्राह्मण्यो गौतमः तम् उपनीतवान्. तदनन्तरं गुरुणा समुदायात् पृथक्-पृथग् गवां शतचतुष्टयं तस्मै चारयितुं दत्तम्. "**आसां सहस्र-संख्यापूर्तौ प्रत्यानेया**" इति च उक्तम्. ततः तथैव यवसजलशिवे अरण्ये मनः समाधाय कृतवान्. ततः तावत्संख्यासिद्धौ दिक्सम्बन्धिनी वायुदेवता प्रसन्ना ऋषभम् अनुप्रविश्य उक्तवती "**अस्माकं संख्यापूर्तिः जाता. आचार्यम् अस्मान् प्रापय. अहं तुष्टास्मि. ते ब्रह्मणः पादं कथयिष्यामि. तज्ज्ञानेन ते श्रेयो भविष्यति**". ततो दिक् चतुष्कलं प्रकाशवान् नामानम् एकं पादम् उपदिश्य अग्रे "**द्वितीयपादम् अग्निः वदिष्यति**" इति उक्त्वा उपरराम. ततो द्वितीयदिवसे आश्रमाभिमुखः सायम् अग्निसमि-न्धनोत्तरम् 'अनन्त'नामानं द्वितीयचरणं तम् अग्निः उपदिष्टवान्. "**हंसः त्वां तृतीयम् उपदेक्ष्यति**" इति च उक्तवान्. ततः तदुत्तरदिने अग्निसमीपे हंसो अग्नि-सूर्य-चन्द्र-विद्युच्चतुष्कलं ज्योतिष्मन्तं पादम् उपदिश्य "**'मद्गु'नामा जलचरः पक्षी चतुर्थं त्वाम् उपदेक्ष्यति**" इति उक्त्वा उपरराम. तदनन्तरदिने पूर्ववदेव मद्गुः प्राणचक्षुः-श्रोत्रमनो-रूपचतुष्कलम् आयतवान्नामानं चतुर्थचरणम् उपदिश्य उपरराम. एवं सत्यकामब्राह्मणे स्पष्टं ब्रह्मणः चत्वारः पादाः उक्ताः इति 'ज्योतिः'पदवाच्यब्रह्मणः पादाः एतद् दृष्टान्तेन सिद्धेति 'चरणाभिधानाद्' इति हेतुः न असिद्ध इति भावः.

ननु ब्रह्मणः पादानां चतुसंख्यावैशिष्ट्ये ब्रह्मणः एकत्वाद् अद्वैतश्रुतिविरोधो अवयवावयविभावे लौकिकत्वापत्तिश्चेति अतः आहुः **अतः सच्चिदानन्दे**त्यादि. तथाच अत्र गायत्र्याः भूतपृथिवीशरीरहृदयरूपाः चत्वारः पादाः उक्ताः. हृदयरूपचतुर्थस्य षड्विधत्वं च अग्रे स्फुटं वाच्यम्. "**पादोस्य सर्वा भूतानि**" (छान्दो.उप.३।१२।६) इति श्रुतौतु सर्वाणि भूतानि एकः पादः उक्तः. अमृतरूपः पादस्तु त्रिपाद्रूपत्वात् पादत्रयम् उच्यते. एवंरीत्या चतुष्पाद्ब्रह्मत्वे सन्देहः इति तन्निरासार्थम् आहुः **प्रत्येके**त्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

चतुर्भिः ब्रह्मणः पादाः उपदिष्टाः इति कथारूपेण स्पष्टा इति अर्थः. ननु पूर्णस्य ब्रह्मणः अंशनिरूपितांशिभावो असङ्गतः इत्यतः आहुः **अतः** इति. यतः सर्वोपनिषत्सु पादाः उक्ताः. **अतः** कारणाद् इति अर्थः. **चतूरूपत्वम्** इति. जन्माद्यधिकरणेषु सिद्धम् इति शेषः. तथाच ब्रह्मणः विरुद्धधर्माश्रयत्वं अंशिभाववत्त्वं स्वीक्रियते इति भावः. अतएव

तत्र केवलानां कार्यत्वमेव. चतुर्थपादस्यतु ब्रह्मत्वम्. तत्रापि षड्विधत्वप्रतिज्ञानाद्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्थञ्च ''**पादोस्य सर्वा भूतानि**'' इत्यत्र सर्वभूतानि एकः पादः, अमृतरूपस्तु पादत्रय-समुदायः एवं चतूरूपत्वम्. द्वितीयस्थले भूतपृथिवीशरीराणां प्रत्येकरूपेण पादत्वं चतुर्थस्य हृदयरूपस्य षण्णां समुदायात्मकस्य एकपादत्वम्, एवं प्रत्येकसमुदायाभ्यां चतुष्पादत्वम् इति अर्थः. **तत्र** आद्यपादत्रिकद्वये तेजोऽबन्नरूपे **केवलानां** तेजस्त्वाप्त्वपृथिवीत्वरूपप्रत्येकधर्मावच्छिन्नानाम्. **कार्यत्वमेव** प्रत्येकरूपे कार्यत्वमेव, समुदायत्वेन ब्रह्मरूपत्वं चरणरूपत्वं च इति बोध्यम्. वस्तुतस्तु सिद्धान्ते आविर्भाव-तिरोभाववेव उत्पत्तिविनाशाविति न शङ्कावकाशः इति भावः. **चतुर्थपादस्य** प्रथमचतुर्थस्य अमृतरूपस्य, द्वितीयचतुर्थस्य हृदयरूपस्य इति अर्थः.

तत्रापि हृदयरूपचतुर्थेऽपि. **प्रतिज्ञानात्** ''**सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री**'' (छान्दो.उप.३।१२।५) इति उपसंहारे गायत्री या अर्थरूपा ब्रह्मात्मिका तस्याः पादचतुष्टयमध्ये हृदयरूपस्य ब्रह्मात्मकस्य षड्विधत्वप्रतिज्ञानाद् इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

''**ममैवांशो जीवलोके**'' (भग.गीता १५।७) इति गीतावाक्यं सङ्गच्छते.

ननु भवतु जन्माद्यधिकरणेषु चतूरूपत्वं रूपचतुष्पात्त्वसिद्धिः तथापि प्रकृते किम् आयातम् इत्यतः आहुः **तत्र** इति. तत्र, अंशरूपपादेषु मध्ये, **केवलानां**, सदंश-चिदंशानन्दाशांनां **कार्यत्वमेव** जडजीवान्तर्यामिरूपेण इति शेषः. अतएव उक्तं निबन्धे द्वितीयस्कन्धसुबोधिन्यां च श्रीमदाचार्यचरणैः ''**जडो जीवोऽन्तरात्मेति व्यवहारस्त्रिधा मतः**''(तत्त्वदी.नि.१।३०) इत्यादि. भगवदंशस्य कार्यरूपत्वं कथम्? इति शङ्का-निरासोऽपि तत्रैव आवरणभङ्गादिग्रन्थेषु प्रतिपादितइति विस्तरभयाद् विरम्यते. **चतुर्थपादस्य** इति. सच्चिदानन्दरूपस्य इति अर्थः. तथाच ब्रह्मणः चतुष्पात्त्वप्रसिद्धिः तेन हेतुना 'ज्योतिः'पदस्य ब्रह्मवाचकत्वसिद्धिः इत्यपि प्रकृते समायातम् इति भावः. विषयवाक्येऽपि चतुर्थपादस्य ब्रह्मत्वं वक्तुं तस्य पुनः षड्विधत्वं निरूपयितुं ''**गायत्री वा व**'' इत्यादिसम्पूर्णविषयवाक्यैकवाक्यतां प्रतिपादयन्ति **तत्रापि** इति. **चतुर्थः पादो निरूप्यते** इति अग्रतनेन अन्वयः. यस्मिन् वाक्ये गायत्र्याख्यब्रह्मविद्यायाः पादचतुष्टयम् उक्तं तत्रापि चतुर्थपादस्य ब्रह्मत्वम् उक्तम् इति अर्थः. कथम् उक्तम्? इति आकाङ्क्षायाम् एकवाक्यतां प्रतिपादयन्ति **षड्विधत्वे**ति. **प्रतिज्ञानाद्** इति. ''**सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री**'' (छान्दो.उप.३।१२।५) इति प्रतिज्ञानन्तरम् इति अर्थः.

भूतपृथिवीशरीराणां परिचायकत्वेन षड्विधत्वम् अनिरूप्य हृदयस्य षड्विधत्वं निरूपयन् ‘‘**तस्य ह वा एतस्य**’’(छान्दो.उप.३।१३।१) इत्यादिना पञ्च देवपुरुषान् निरूप्य तेषां द्वारपालत्वज्ञानानन्तरम्, ‘‘**अथ यदतः परो ज्योतिः दीप्यते**’’ (तत्रैव३।१३।७) इति चतुर्थपादस्य षष्ठविधत्वप्रतिपादनात्. अतः चतुर्थपादे

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

परिचायकत्वेन कार्यरूपतया चरणत्रयस्य कारणरूपब्रह्मात्मकचतुर्थचरणानुमापकत्वेन. **अनिरूप्य** तेषां ब्रह्मत्वेऽपि परिचायककोटौ निवेशाद् अनिरूप्य इति अर्थः. **तस्य ह वा** इत्यादि. ‘‘**तस्य ह वा एतस्य हृदयस्य पञ्च देव**’’(छान्दो.उप.३।१३।१) इत्यादिना **पञ्च देवपुरुषान्** इत्यादि. तथाच पूर्वद्वारस्य पालकः प्राणो देवः तदुपासनया स्वर्गो गौणं फलं भवति, एवं ब्रह्मात्मकचतुर्थचरणरूपहृदयस्य पञ्च द्वाराणि भवन्ति. चतुर्दिक्षु चत्वारि ततो ‘‘**अथ योस्योर्ध्वः सुषि**’’(छान्दो.उप.३।१३।५) इत्यनेन पञ्चमोर्ध्वमुखः उक्तः. तत्र पूर्वद्वारस्य प्राणः उक्तः, दक्षिणद्वारस्य व्यानो देवता पालकः तदुपासकस्यापि गौणं फलं स्वर्गएव. प्रत्यक्द्वारस्य अपानः तदुपासनस्यापि पूर्वोक्तमेव फलम्. उदङ्मुखद्वारस्य समानः पालको देवः तदुपासनस्यापि तदेव गौणं फलम्. ऊर्ध्वद्वारस्य उदानो देवः तदुपासनस्यापि स्वर्गएव गौणं फलम् उक्तम्. एवम् उक्त्वा उपसंहरति ‘‘**य एतान् एवं पञ्च पुरुषान् स्वर्गस्य द्वारपान् वेद**’’(छान्दो.उप.३।१३।६) इत्यादिना.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

भूतपृथिवी इति विषयवाक्ये वाग्भूतपृथिवीशरीरहृदयप्राणानां गायत्रीरूपब्रह्मणः षड्विधत्वम् उक्तम्. **परिचायकत्वेन** उपलक्षणत्वेन. **तस्य ह वा** इति. ‘‘**तस्य ह वा एतस्य हृदयस्य**’’ (छान्दो.उप.३।१३।१) इत्यादिना. **प्रतिपादनाद्** इति प्रतिपादनं कृत्वा इति अर्थः. **अतः** इति अनेन प्रकारेण इति अर्थः. तथाच भूतपृथिवी-शरीरादीनाम् उपलक्षणत्वं वक्तुं शक्यतइति तेषां पृथक् निरूपणं कर्तुं न शक्यते इति. परन्तु तद्विशिष्टगायत्र्युपासना न विवक्षिता, किन्तु हृदयस्य षड्विधत्वविशिष्टैव इति तस्याएव मुख्यत्वम् अतः गायत्र्याः षड्विधत्वनिरूपणप्रत्युक्ताकाङ्क्षापूरणार्थं हृदयस्य षड्विधत्वं निरूपयन् वेदे षष्ठो अन्तःपुरुषे उपसंहरति इति आखण्डलार्थः. एतेन ‘‘अर्थैकत्वे सति साकाङ्क्षत्वम् एकवाक्यत्वम्’’ अतएव उक्तं पूर्वतन्त्रे जैमिनिभिः ‘‘**अर्थैक्याद् एकं वाक्यं साकाङ्क्षं चेद् विभागे स्याद्**’’(जैमि.सू.२।१।४६) इति. तथाच प्रकृते गायत्रीवाक्ये वाग्भूतादिषड्विधत्वोक्त्या आकाङ्क्षापूरणेन निराकाङ्क्षत्वम्. ‘‘**अथ यदिति ज्योतिः**’’ वाक्ये च हृदयस्य षड्विधत्वोक्तावपि ‘अथ’इत्यनेन वाक्यभेदः प्रतीयते. एवञ्च ब्रह्मरूपार्थैक्येऽपि परस्परनिराकाङ्क्षत्वाद् वाक्यभेदः इति निरस्तम्. तादृशब्रह्मणः उपासनाङ्गत्वेन द्वारपालादि-

पञ्च पुरुषाः, ततः परो दिवो ज्योतिः षष्ठः. तस्यैव सर्वत्र दीप्यमानत्वं निरूप्य तदेव अन्तःपुरुषे उपसंहरति. **‘‘तस्मात् पूर्वं त्रिपादस्यामृतं दिवि’’** (छान्दो.उप.३।१२।६) इति उक्तत्वाद् अस्य त्रिपात्सम्बन्धि अमृतम् उपरितनलोकेषु इति. अतो अत्र चतुर्थः पादो निरूप्यते इति सिद्धम्. अतः पादानां ब्रह्मधर्मत्वाद् ज्योतिषो ब्रह्मत्वम् इति ब्रह्मधर्मनिर्णयार्थम् इदम् अधिकरणं चरणानाम् औपचारिकत्व-व्यावृत्त्यर्थम्. एतद् निर्णयेन प्रणवादिविद्या निर्णीता वेदितव्याः।।२३।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ततः पुरुषपञ्चकोपासनानन्तरं ब्रह्मोपासनाधिकारो भवति इति ज्ञापयितुम् **‘‘अथ यदतः परो ज्योतिर्दीप्यत’’**(छान्दो.उप.३।१३।७) इत्यत्र ‘अथ’शब्दः उक्तः. **ततः** तदनन्तरं, पञ्चपुरुषेभ्यः परः इति अर्थः. **तदेव** दीप्यमानमेव. **अन्तःपुरुषे** हृदयान्तःस्थराजस्थानापन्ने परमात्मनि. **उपसंहरति** हृदयान्तःस्थो ‘ज्योतिः’पदवाच्यः इति. **‘‘परो दिवो ज्योतिः’’** इत्यनेन व्यवस्थापयति उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि. **पूर्वं** ‘‘परो दिवो ज्योतिः’’ इति मन्त्रात् पूर्वम्. **त्रिपाद्** इत्यादि. **अस्य** भगवतः **‘‘अमृतं क्षेमम् अभयम्’’** (भाग.पुरा. २।६।१८) इति त्रिपाद्रूपम् ‘अमृता’ख्यं पादं दिवि इति अर्थः. **सम्बन्धिः** अभेदरूप–सम्बन्धवत्. **अमृतं** मोक्षवाचका‘ऽमृत’पदवाच्यम्. **उपरितनलोकेषु** लोकचतुष्टयस्य उपरितना ये जन–तपः–सत्य–लोकाः तेषु तिष्ठति इति अर्थः. **अतः** अमृतरूपपादस्य ब्रह्मत्वेन ब्रह्मधर्मत्वसम्भवतः. **अतः** भूतादिपादसूत्रे सर्वेषां पादानां ब्रह्मधर्मत्वनिर्वचनतः. **पादानां** श्रुत्युक्तानाम् एषां पादानाम्. **औपचारिकत्वे**त्यादि. अकारोकार–मकारनादेति पादचतुष्टयवत् प्रणवसादृश्येन गौण्या लक्षणया उपासनार्थं ‘ज्योतिः’पदवाच्ये ब्रह्मपादानाम् आरोपवारणार्थम् इति अर्थः. **एतन्निर्णयेन** पादवैशिष्ट्येन ज्योतिषो ब्रह्मत्वनिर्णयेन **प्रणवादी**त्यादि पादविशिष्टविद्याविषयाणां ब्रह्मता निर्णीता इति अर्थः।।२३।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

गुणविधानार्थं **‘‘तस्य ह वा’’** इत्यादिग्रन्थेन गायत्र्याख्यब्रह्मणएव अग्रे निरूपणात् तत्रत्यषड्विधत्वनिरूपणेनैव आकाङ्क्षापूर्तिरिति न निराकाङ्क्षत्वम्. ‘अथ’शब्दस्य गायत्र्याः ब्रह्मप्रतिपादकत्वाद् ब्रह्मत्वम् इति भूतादिषण्णाम् अनिरूपणाद् विद्यान्तरारम्भार्थत्वाच्च इति न किञ्चिद् एतत्. ननु तद्धर्मोपदेशाधिकरणे ब्रह्मधर्मेण ब्रह्मत्वसिद्धिः उक्तैव, पुनः इदम् अधिकरणं व्यर्थम् इत्यतः आहुः **ब्रह्म** इति. चरणस्य ब्रह्मधर्मत्वम् अस्ति वा न वा? इति संशयनिवारणार्थम् इति अर्थः. चरणस्य ब्रह्मधर्मत्वनिर्णयस्य अन्यदपि फलम् आहुः **एतद्** इति. प्रणवादीत्यादिना सर्वासां पादवतीविधानां संग्रहः इति।।२३।।

छन्दोऽभिधानान्नेति चेन्न तथा चेतोर्पणनिगदात् तथा हि दर्शनम्।।२४।।

ननु न अत्र ब्रह्म चतुष्पाद् निरूपितं किन्तु गायत्री छन्दः. **''गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किञ्च''**(छान्दो.उप.३।१२।१) इति उपक्रम्य तामेव भूत-पृथिवी-शरीर-हृदय-भेदैः व्याख्याय, **''सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री. तदेतद् ऋचाभ्युक्तम्''**(तत्रैव३।१२।५) **''एतावान् अस्य महिमा''**(तत्रैव३।१२।६) इति. तस्यामेव व्याख्यानरूपायां गायत्र्याम् उदाहृतो मन्त्रः कथम् अकस्माद् ब्रह्म चतुष्पादभिदध्यात्. **''यद्वै तद् ब्रह्म''**(तत्रैव३।१२।७) इति 'ब्रह्म'पदमपि छन्दसः प्रकृतत्वात् तत्परमेव अवगन्तव्यम्. शब्दस्यापि ब्रह्मवाचकत्वसिद्धेः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

किञ्चिद् आशङ्कापरिहारेण पूर्वोक्तार्थदृढीकरणाय सूत्रकारः सूत्रं निर्वक्ति, **''छन्दोभिधानान्नेति चेन्न तथा चेतोर्पणनिगदात्तथा हि दर्शनम्''**.

सूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इत्यादिना. **अत्र** **''त्रिपादस्यामृतं दिवि''**(छान्दो.उप. ३।१२।६) इति पूर्वमन्त्रे गायत्रीं प्रकृत्य एतन्मन्त्रपठनाद् इति भावः. **तदेतत्** गायत्र्याः पादवत्त्वम्. **ऋचा** **''तावान् अस्य''** (तत्रैव ३।१२।६) इति ऋचा इति अर्थः. **तस्यां** पादचतुष्टयविशिष्टतया पूर्वोक्तायाम्. **व्याख्यानरूपायां** शब्दात्मिकायाम् इति अर्थः. **मन्त्रः** **''तावान् अस्य महिमा''** इति मन्त्रः. **अकस्माद्** प्रकरणं विना. **ब्रह्म** इत्यादि. पादचतुष्टयविशिष्टतया परमात्मानं कथम् अभिदध्याद् इति अर्थः. ननु एतत्प्रकरणोक्तं ब्रह्मत्वं शब्दात्मिकायां गायत्र्याम् अनुपपन्नम् अतो मन्त्रस्य अन्यथानुपपत्या परमात्मपरता उच्यते अतः आहुः **यद्वै तद्** इत्यादि. **छन्दसः** वर्णसमुदायरूपगायत्र्याः. **तत्परं** वर्णात्मकगायत्रीबोधकम्. **ब्रह्मवाचकत्वसिद्धिः** 'ब्रह्म'पदेन बोधकतासिद्धेः इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

छन्दोभिधानाद् इति. पूर्वपक्षार्थम् आहुः **ननु** इति. छन्दो वर्णसमाम्नायरूपः. **गायत्र्याम्** इति. शब्दरूपायाम् इत्यादि. ननु अस्मिन् प्रकरणे 'ब्रह्म'पदप्रयोगो अस्ति इत्यतः आहुः **यद्वैतद्** इति. **तत् परम्** इति. गायत्रीरूपशब्दपरम् इति अर्थः. ननु 'ब्रह्म'शब्दस्य कथं गायत्रीरूपशब्दपरत्वम्? इत्यतः आहुः **शब्दस्यापि** इति. **ब्रह्मवाचकत्वे**ति. गायत्रीरूपशब्दस्यापि ब्रह्मापरपर्यायत्वसिद्धेः इति अर्थः. यथा 'घट'-शब्दस्य घटवाचककलशापरपर्यायत्वं तथा अत्रापि इति भावः. 'ब्रह्म'शब्दस्य शब्दपरत्वे

ब्रह्मोपनिषद् इतिवत् शब्दब्रह्म इति च. तस्मात् छन्दसएव पादाभिधानाद् न ब्रह्मधर्माः पादाः इति चेद्, न एषः दोषः. **तथा चेतो अर्पणनिगदात्. तथा** तेन द्वारेण चेतसो अर्पणं निगद्यते. **''गायत्री वा इदं सर्वं यदिदं किञ्च''** (तत्रैव ३।१२।१) इति. न हि वर्णसमाम्नायरूपस्य सर्वत्वम् अनुपचारेण सम्भवति. यथा सूचीद्वारा सूत्रप्रवेशः तथा गायत्रीद्वारा बुद्धिः तत्प्रतिपाद्ये ब्रह्मणि प्रविशेद् इति. कुतः एतद् एवं प्रतिपाद्यते? इति, तत्र आह **'तथा हि दर्शनम्'**. तथा तेनैव प्रकारेण दर्शनं ज्ञानं भवति. स्थूलाबुद्धिः न आहत्यैव ब्रह्मणि प्रविशेद् इति. एतेन सर्वाः मन्त्रोपासना व्याख्याताः. हि युक्तश्च अयम् अर्थो. लोके स्वतो यद् न

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

'ब्रह्म'पदस्य वाचकोदाहरणम् आहुः **ब्रह्मोपनिषद्** इत्यादि. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि.

एवं पूर्वपक्षे प्राप्ते सूत्रकारः (भाष्यकारः?) समाधत्ते **न एषः दोषः** इत्यादि. **तथा तेन** इत्यादि. तथाच ब्रह्मस्वरूपस्य अतिसूक्ष्मतया स्थूलबुद्ध्यग्राह्यत्वात् छन्दोमय्याः गायत्र्याः ब्रह्मधर्मैः वर्णने कृते तादृशधर्मैः गायत्रीस्वरूपज्ञाने जाते चेतःशुद्ध्या ब्रह्मणि चेतसः प्रवेशार्थं तथा गायत्रीनिरूपणम् इति अर्थः. गायत्र्याः वास्तवोक्तधर्मसत्वे बाधकम् आहुः **न हि** इत्यादि. **अनुपचारेण** इति धर्म्यभेदेन तथावर्णनानङ्गीकारेण इति अर्थः. तथाच ब्रह्मणः सर्वरूपत्वाद् गायत्रीरूपावयवेऽपि अभेदसत्वाद् धर्मि-धर्मैः वर्णनम् इति अर्थः. तद्द्वारेण चेतसः प्रवेशे दृष्टान्तम् आहुः **यथा** इत्यादि. **कुतः एतत्?** कस्माद् हेतोः उपचारेण गायत्र्या ब्रह्मरूपतया वर्णनम् इति अर्थः. **तेनैव** इत्यादि. गायत्रीद्वारेणैव इति अर्थः. **ज्ञानं** ब्रह्मज्ञानम्. **नाहत्य** नियमपुरःसरया. **एतेन** उत्सर्गतया ब्रह्मरूपता-निरूपणप्रकारेण. **मन्त्रोपासनाः** मन्त्रप्रतिपाद्यरूपाणाम् उपासनाः. **''मनो ब्रह्म इति उपासीत''** (तैत्ति.उप.३।४) इत्याद्याः. सौत्रः **हि** शब्दार्थम् आहुः **हि युक्तः** इत्यादिना.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

दृष्टान्तम् आहुः **ब्रह्मोपनिषद्** इति. अत्रापि ब्रह्माभिन्नं यद् उपनिषद् इति अयम् अर्थो न स्वीक्रियते. किन्तु ब्रह्मवाचकं यद् उपनिषद् इत्यतः अपरं दृष्टान्तम् आहुः **शब्दब्रह्म** इति. **''शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति''**(मैत्रा.उप.६।२२) इत्यत्र निःसंशयः इति 'च'कारार्थः. सिद्धान्तम् आहुः **न एषः दोषः** इति. **तेन** इति. ब्रह्मप्रतिपादक-मन्त्रोपासनया ब्रह्मणि चेतःप्रवेशानन्तरं तत्प्राप्तिः इति हृदयम्. निगदम् आहुः **गायत्री** इति. **उपचारेण** लक्षणया. लौकिकीं युक्तिम् आहुः **यथा** इति. गायत्रीरूपेण ब्रह्मप्रतिपादनफलम् आहुः **तथाहि** इति. शेषं सुगमम्।।२४।।

प्रविशति तद् उपायेन विशति इति. नतु अदृष्टद्वारा, दृष्टे सम्भवति अदृष्टकल्पनायाः अन्याय्यत्वात्. तस्मात् पादाः ब्रह्मधर्माः।।२४।।

भूतादिपादव्यपदेशोपपत्तेश्चैवम्।।२५।।

किञ्च, भूतादयो अत्र पादाः व्यपदिश्यन्ते. भूत-पृथिवी-शरीर-हृदयानि चत्वारि. न हि एतानि गायत्र्याः पादाः भवितुम् अर्हन्ति. ब्रह्मपरिग्रहेतु उपपद्यन्ते. यावद् मुख्यम् उपपद्यते तावद् न गौणं कल्पनीयम्.

अयम् अर्थः. पूर्वहेतौ छन्दसोऽपि पादाः व्यपदेशाद् भवन्ति. तथापि ब्रह्मणएव युक्ताः इति. पुरुषसूक्ते **''एतावान् अस्य''** (ऋग्सं.१०।९०।३) इति अस्य ब्रह्मपरत्वात्. अस्मिन् वाक्येतु गायत्र्याः पादाएव न उपदिष्टाः किन्तु ते

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ननु सूचिप्रवेशे दृष्टं द्वारं साधकानां ब्रह्मणि चित्तप्रवेशेतु अनेकजन्मसिद्धसंस्काररूपम् अदृष्टं द्वारं वाच्यमिति कथं गायत्रीरूपं दृष्टं द्वारम् उच्यते? इत्यतः आहुः **नतु अदृष्टे**त्यादि. **दृष्टे** गायत्रीरूपे दृष्टे द्वारे।।२४।।

ननु **''सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री''**(छान्दो.उप.३।१२।५) इतिमन्त्रेण साक्षाद्वर्णसमुदायरूपगायत्र्याः उक्ताः पादाः कथम् उपलभ्यन्ते? इति आशङ्कायां सूत्रकारः समाधानम् आह **''भूतादिपादव्यपदेशोपपत्तेश्चैवम्''**. **एतानि** भूतादिचत्वारि. **गायत्र्याः** वर्णात्मिकायाः. **ब्रह्मपरिग्रहे** 'गायत्री'पदेन ब्रह्मपरिग्रहे. **उपपद्यन्ते** ब्रह्मणः पादानां च अर्थरूपत्वेन साजात्यात् पादाः उपपद्यन्ते इति अर्थः. **मुख्यं** साक्षादवयवनिरूपणम्. **गौणः** धर्म्यभेदेन उपचारेण अवयवकल्पनम्.

अयम् अर्थः अभेदोपचारेण छन्दसः पादकल्पनारूपो अर्थः. **पूर्वहेतौ** इति तथा 'चेतोर्पणनिगदाद्' इति पूर्वहेतौ सति छन्दसो ब्रह्मप्राप्तिसाधनत्वावगमाद् ब्रह्मप्राप्तिसाधनानामपि ब्रह्मतुल्यत्वाद् अभेदोपचारेण छन्दसोऽपि ब्रह्मत्वेन प्रतीकोपासनार्थं पादाः व्यपदेशात् सादृश्यात् सम्भवन्ति इति अर्थः. **युक्ताः** उपचाराभावाद् युक्ता इति अर्थः. युक्तत्वमेव उपपादयन्ति **पुरुषसूक्ते**त्यादिना. 'अस्य' इति अस्य षष्ठ्यन्ते 'इदम्'शब्दस्य. **अस्मिन् वाक्ये ''पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्य अमृतं दिवि''** (छान्दो.उप. ३।१२।६) इति वाक्ये. **किन्तु** इत्यादि. भूतपृथिवीशरीरहृदयपदोक्ताः तेजोऽबन्न-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सूत्रवैय्यर्थ्यं परिहरन्ति **अयम् अर्थः** इत्यादिना. **ब्रह्मपरत्वाद्** इति. गायत्रीविवरणर्चि **''तावान् अस्य''**(छान्दो.उप.६।१२। ६)इत्यस्य ब्रह्मपरत्वं, यथा पुरुषसूक्तेऽपि

ब्रह्मणएव पादाः इति. तद्वाचकत्वेन गायत्र्याम् उपचारेण उपसंहारः. ‘च’काराद् अर्थाः न शब्दस्य पादाः भवन्ति, किन्तु अर्थस्यैव इति. तस्माद् ब्रह्मवाक्यत्वे भूतादीनां पादत्वम् उपपद्यते न अन्यथा इति. तस्मात् पादानां ब्रह्मधर्मत्वम्।।२५।।

उपदेशभेदान्नेति चेन्नोभयस्मिन्नप्यविरोधात्।।२६।।

‘‘**पादोऽस्य विश्वा भूतानि**’’(छान्दो.उप.३।१२।६) सर्वाणि भूतानि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ब्रह्मरूपाः पादाः. **ब्रह्मणएव** ‘पादोस्य’ इति अनेकवाक्यसत्त्वाद् ब्रह्मणएव इति अर्थः. **तद्वाचकत्वेन** गायत्र्याः ब्रह्मवाचकत्वेन. **उपचारेण** नामसादृश्येन. उपचारः परम्परा–सम्बन्धेन छन्दसि पादव्यवहारः. **चकारात्** सौत्रचकारात्. **अर्थाः** तेजोऽबन्नादिरूपाः. **शब्दस्य** छन्दोरूपवर्णसमुदायरूपगायत्र्याः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि. **ब्रह्मवाक्यत्वे** छन्दसो ब्रह्मरूपार्थोपादाने।।२५।।

ननु अस्तु पूर्ववाक्योक्तं चतुर्थचरणरूपं ब्रह्म तथापि ‘‘**अथ यदतः परो दिवो ज्योतिः**’’ (छान्दो.उप.३।१३।७) इतिवाक्ये चरणानुपादानाद् उपदेशभेदाद् ज्योतिर्वाक्यं न पूर्ववाक्यैकवाक्यतापन्नम् इति आशङ्कायाम् आह सूत्रकारः ‘‘**उपदेशभेदान्नेति चेन्नोभयस्मिन्नप्यविरोधात्**’’. पूर्वं ‘‘**सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री**’’(तत्रैव३।१२।५) इति ब्रह्मणः पादचतुष्टयोक्तेः तदनुरोधेन ‘‘**पादो अस्य सर्वा भूतानि**’’ (तत्रैव ३।१२।६) इत्यत्रापि पादचतुष्टयं ब्रह्मणो निरूपितम् इति एका व्याख्या. द्वितीयातु पुरुषसूक्तीयो यो मन्त्रः ‘‘पादोऽस्य’’ इत्यादिरूपः तदनुरोधेन ब्रह्मणो द्विपात्वं निरूप्यते. तदेव आहुः **पादो अस्य** इत्यादिना.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ब्रह्मपरत्वेन ब्रह्मणएव पादाः इति अर्थः. **अर्थाः** इति. भूतादयः अर्थाः इति अर्थः।।२५।

अस्मिन् सूत्रे उपदेशभेदो द्विविधः, शब्दतः अर्थतश्च. पुरुषसूक्ते ‘‘**पादो अस्य विश्वा भूतानि**’’ (ऋक्.संहि. १०।९०।३) अस्मिन् विषयवाक्ये ‘‘**पादो अस्य सर्वा भूतानि**’’(छान्दो.उप.३।१२।६). अत्र ‘विश्व–सर्व’शब्दयोः अर्थैक्येऽपि शब्दतो भेदो अस्ति, परन्तु दूषणतावहो न भवति इति. अर्थतः एकार्थप्रतिपादकत्वाभावरूपः उपदेशभेदस्यैव प्रतिपादयितुम् आहुः **पादो अस्य** इति. ‘‘**पादो अस्य विश्वा भूतानि**’’ इति पुरुषसूक्तस्थमन्त्रस्य प्रतीकम्. अस्य अर्थः, **अस्य** भगवतः **विश्वा** विश्वानि सर्वाणि, **भूतानि** कालत्रयवर्त्तीनि प्राणिजातानि, **पादः** चतुर्थो अंशः. **त्रिपादस्य** इति

एकः पादः. पादत्रयम् अमृतं दिवि इति एको अर्थः.

पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः।
अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोऽधायि मूर्धसु।।१५।।

इति अपरः. पुरुषसूक्तानुरोधे द्वितियएव अर्थः. प्रथमे तावत्, ननु

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

एको अर्थः पादत्रयं मिलित्वा एकः पादः इति अर्थः. तथा ''**चतुष्पात् षड्विधा गायत्री**'' इत्यत्रापि भूतपृथिवीशरीराणि मिलित्वा एकः पादः, षड्विधहृदयरूपश्च द्वितीयः इति द्वितीयव्याख्यायां बोध्यम्. ''**पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थिति पदो विदुः, अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोधायि मूर्धसु**'' (भाग.पुरा.२।६।१८) इति अर्थस्तु 'स्थिति'-शब्देन जनानां निवासभूताः भूरादिलोकाः उच्यन्ते. ते पादाः यस्य इति स्थितिपाद् भगवान्, तस्य **पुंसः अमृतं क्षेमम् अभयम्** इति सुखरूपं पादत्रयम्. **त्रिमूर्ध्नः** भूरादि-लोकत्रयस्य मूर्ध्नः महर्लोकस्य **मूर्धसु** जनतपःसत्यलोकेषु **अधायि** स्थापितवान् इति अर्थः. एतेन आद्यलोकचतुष्टये अपकृष्टसुखम् आयातम्. **द्वितीयएव अर्थः** 'पादोस्य' इति मन्त्रानुरोधेन ब्रह्म द्विपादेव इति अर्थः पुरस्कार्यः इति अर्थः. उपदेशभेदसूत्रोक्तम् उपपादयितुम् आहुः **प्रथम** इत्यादि. **प्रथमे** ''**अथ यदतः परो दिवो ज्योतिः**'' इत्यतः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

त्रिपाद् अस्य इति छेदः. तथाच अस्य त्रिपात् स्वरूपं यद् अवशिष्टं तद्, **अमृतं** विनाशरहितं सद् **दिवि** व्यवतिष्ठते इति शेषः. छान्दोग्यमन्त्रेतु ''**पादो अस्य सर्वा भूतानि**'' इति वर्तते इति शब्दतः भेदस्य अकिञ्चित्करत्वं स्वीकृत्य छान्दोग्यानुसारेण व्याख्याम् आहुः **सर्वाणि भूतानि एकः** इति.

पादत्रयम् इति अंशत्रयम् इति अर्थः. **अमृतं** विनाशरहितम्. **दिवि** द्योतनात्मके. **एको अर्थः** प्रथमो अर्थः. अस्मिन् अर्थे पादत्रयम् अमृतं स्वस्वरूपमेव अवतिष्ठते. द्वितीयस्कन्धानुसारेण अपरम् आहुः **पादेषु** इति. **स्थिति**पदवाच्याः भूरादिलोकाः पादा यस्य सः स्थितिपात्. एतादृशस्य **पुंसः पादेषु** सर्वाणि **भूतानि विदुः**. त्रयाणां मूर्द्धा इति त्रिमूर्द्धा, तस्य **त्रिमूर्ध्नः** त्रयाणां भूरादिलोकानां मूर्द्धा शिरोभागः महर्लोकः तस्य **मूर्द्धसु** उपरितनेषु जन-तपः-सत्य-लोकेषु भगवता अमृतादित्रयम् **अधायि** स्थापितम्. **अपरः** इति द्वितीयः इति अर्थः.

पुरुषसूक्तानुरोधेन द्वितीयस्कन्धीयपुरुषसूक्तविवरणानुरोधेन. **एव**कारो अप्यर्थे. यद्वा, मुख्यार्थे प्रथमे अर्थे. उपदेशभेदम् आहुः **प्रथमे**ति. सूत्रस्थं पूर्वपक्षम् आहुः

‘दिवि’इति मन्त्रे सप्तम्याः आधारत्वं प्रतिपाद्यते. ‘अतःपरम्’ इति अत्र पञ्चम्याः अनाधारत्वम् अतः **उपदेशभेदात्** पूर्वोक्तपरामर्शाभावाद् **न** ज्योतिषो ब्रह्मत्वम् **इति चेद्, न** एषः दोषः, **उभयस्मिन्नपि अविरोधात्.** मन्त्रे दिव्येव उक्तम्. अस्मिन् वाक्ये सर्वत्र उच्यते. सर्वत्र विद्यमानस्य दिवि विद्यमानत्वं न विरुध्यते.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

प्रथमे. **‘दिवी’ति मन्त्रे** ‘त्रिपादस्यामृतं दिवि’ इति मन्त्रे. **आधारत्वं** त्रिपाद्रूपब्रह्मणो दिवि आधारत्वम्. **‘अतः परम्’** इत्यत्र **‘‘अथ यदतः परम्’’** इत्यत्र. **अनाधारत्वं** दिवः सकाशाद् अतिरिक्तदेशवृत्तित्वबोधनेन दिवि अनाधारत्वम्. **उपदेशभेदाद्** निरूप्य-वस्तुभेदलाभात्. निरूप्यवस्तुभेदम् उपपादयन्ति **पूर्वोक्ते**त्यादि. पूर्वोक्तं **‘‘त्रिपादस्यामृतं दिवि’’** इति मन्त्रे ‘अस्य’ इत्यनेन ब्रह्मोक्तं तस्य परामर्शः. तस्य **‘‘अथ यदतः परो दिवो ज्योतिः’’** इति ब्राह्मणवाक्यस्थ‘ज्योतिः’पदेन कर्तुम् अशक्यत्वाद् इति अर्थः. परामर्शाभावे च पूर्वोक्तसप्तमीपञ्चमीकृतोपदेशभेदेन वस्तुभेदो हेतुः **ज्योतिषः** **‘‘अथ यदतः परो दिवो ज्योतिः’’** इति ‘ज्योतिः’पदोक्तस्य. **न एषः दोषः** ज्योतिःपदार्थस्य अब्रह्मत्वरूपो दोषो न इति अर्थः. तत्र हेतुम् आहुः **उभयस्मिन्** इति. ‘त्रिपादस्य’ इति षष्ठ्यर्थे ब्रह्मवाक्यस्थज्योतिःपदार्थेच ब्रह्मणि इति अर्थः. **अप्यविरोधात्** उभयार्थस्य ऐक्याद् इति अर्थः. **मन्त्रे** इत्यादि. **‘‘त्रिपादस्यामृतं दिवि’’** इतिमन्त्रे. **उक्तं** **‘‘यदतः परो दिवो ज्योतिः’’** इति ब्रह्मणोक्तं च इति अर्थः. **अस्मिन् वाक्ये सर्वत्र** **‘‘दिवो ज्योतिः’’** इतिवाक्ये **‘‘विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेषु अनुत्तमेषु उत्तमेषु लोकेषु’’** (छान्दो.उप. ३।१३।७) इत्यादिषु सर्वत्र उच्यते इति अर्थः. **‘‘अथ यदत’’** इत्यत्र ‘अतः’शब्दार्थं वक्तुम् आहुः **सर्वत्रे**त्यादि. तथाच ‘यदतः’ इति ल्यब्लोपे पञ्चमी. **अतः** द्युलोकम् आरभ्य **परः** अन्यसम्बन्धी इति अर्थः. **अतः परम्** इत्यस्य अर्थं दृढयितुम् आहुः **सर्वत्र**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ननु इति. **‘दिवी’ति मन्त्रे** ‘‘त्रिपाद् अस्य अमृतं दिवी’’ति मन्त्रे. **अतः परम्** इति. **‘‘यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते’’** इति ब्राह्मणे. ननु ‘अतः’ इत्यनेन ‘दिवि’इत्यस्य परामर्शो भविष्यति इत्यतः आहुः **पूर्वोक्ते**ति. पञ्चम्यन्तेन सप्तम्यन्तस्य परामर्शाभावाद् इति अर्थः. **न ज्योतिषः** इति. मन्त्रेतु अस्य ब्रह्मणः, अमृतं दिवि इति उक्तं, ब्राह्मणे अतःपरं ज्योतिः इति उक्तम्, तेन कृत्वा किं ज्ञायते निरूप्यवस्तुभेदाद् न ज्योतिषो ब्रह्मत्वम् इति अर्थः. प्रथमे अर्थे समाधानसूत्रम् आहुः **उभयस्मिन्नपि अविरोधात्.** **सर्वत्र उच्यते** इति. ब्रह्मणे **‘‘यदतः परे’’**ति उक्त्वा **‘‘सर्वतः पृष्ठेषु’’** इत्यनेन सर्वत्र

‘अतः’शब्देन न तत्र अविद्यमानत्वं किन्तु ततोऽपि अन्यत्र सत्त्वं बोध्यते तस्मात् सप्तमी-पञ्चमी-निर्देशो न विरुद्धः. द्वितीयेतु, ननु मन्त्रे ‘अमृत’पदम् अत्र ‘ज्योतिः’पदम् अतः **उपदेशभेदात्** चतुर्थश्च पादो हृदयम्. ‘अतः’शब्दाच्च

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्यादि. **‘‘विश्वतः पृष्ठेषु अनुत्तमेषु लोकेषु’’. ‘अतः’शब्देन ‘‘अथ यदतः परो दिवः’’** इत्यत्रत्या‘ऽतः’शब्देन. **तत्र** दिवि. **ततोऽपि अन्यत्र** ल्यब्लोपे पञ्चमीकरणाद् दिवम् आरभ्य इति अर्थसम्भवात्, सर्वत्र विद्यमानत्वम् अर्थो लभ्यते इति अर्थः. **सप्तमी**त्यादि. **‘‘त्रिपादस्यामृतं दिवि’’** इति सप्तमीनिर्देशः. **‘‘यदतः परम्’’** इति पञ्चमीनिर्देशः. **न विरुद्धः** उभयत्रापि ‘ज्योतिः’पदवाच्ये ‘अमृत’पदवाच्ये ब्रह्मणि दिवि विद्यमानत्व–लाभाद् न विरुद्धः इति अर्थः.

द्वितीयेतु मन्त्रार्थप्राधान्याद् ब्रह्मणो द्वावेव पादौ इति पक्षे इति अर्थः. एतत्पक्षे पूर्वपक्षम् आहुः **ननु मन्त्रे** इत्यादि. **‘अमृत’पदं ‘‘त्रिपादस्यामृतं दिवि’’** इति मन्त्रे ब्रह्मवाचकम् ‘अमृत’पदम्. **अत्र ‘‘यदतः परो दिवो ज्योतिः’’** इत्यत्र ब्रह्मवाचकं ‘ज्योतिः’पदम् इति अर्थः. तथाच पूर्वं पञ्चमी–सप्तमी–बोधितोपदेशाभेदं समाधायापि ‘‘ननु मन्त्रे’’त्यादिना अमृत–ज्योतिः–पदभेदकृतः उपदेशभेदो अन्यः उक्तः. पुनः उपदेशभेदान्तरम् आहुः **चतुर्थश्च पादः** इत्यादिना. तथाच मन्त्रे **‘‘पादोस्य विश्वा भूतानि’’** इत्यत्र जनतपःसत्यलोकात्मकः एकः पादः उक्तः. **‘‘सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री’’** इति ब्राह्मणेतु भूतपृथिवीशरीरेति पादत्रयम् उक्त्वा हृदयं चतुर्थः पादे उक्तः इति चतुर्थपादरूपं षड्विधत्वं रूपब्रह्मणोः भिन्नयोः उपदेशाद् ब्रह्मभेदः सिद्धः इति अर्थः. पुनः उपदेशभेदान्तरम् आहुः **अतःशब्दात् च** इत्यादिना. **‘‘अथ यदतः परो दिवो ज्योतिः’’** इत्यत्र **‘अतः’**शब्दस्य पूर्वपरामर्शित्वात् पूर्वमन्त्रे **‘‘एतावान् अस्य महिमा अतो**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उच्यते इति अर्थः. **अतः** इति. ल्यब्लोपपञ्चमीं कृत्वा अतः आरभ्य इति अर्थं विधाय आहुः **अतः** इति. **न विरुद्धः** इति ‘‘वृक्षाग्रे श्येनः’’ ‘‘वृक्षाग्रात् परतः श्येनः’’ इतिवद् न विरुद्धः इति अर्थः. उभयत्रापि यथा श्येनभानम् अविरुद्धं तथा अत्रापि ब्रह्मभानम् इति भावः. एवं रीत्या प्रथमे अर्थे सूत्रसङ्गतिम् उक्त्वा **द्वितीये** तम् आहुः **द्वितीये**ति. पूर्वपक्षम् उत्थापयति **ननु** इति. **चतुर्थश्च** इति. ब्राह्मणे इति शेषः. इदम् उपलक्षणम्. मन्त्रे जनादिलोकत्रये अमृतादिपादत्रयम् उक्तम्, ब्राह्मणे भूतपृथिवीशरीराणां पादत्रयत्वम् उक्तम् इति भेदः. तृतीयं दूषणम् आहुः **अतः शब्दाच्च** इति. **सर्वस्माद्** इति. यत्र

सर्वस्माद् भेदः प्रतिपाद्यते. अतः उपदेशभेदाद् न एकवाक्यता अस्मिंश्च वाक्ये चरणाभावात्. स्वरूपासिद्धो हेतुः इति चेत्, न एषः दोषः उभयस्मिन् 'ज्योतिः'पदे 'अमृत'पदे च प्रयुज्यमाने एकार्थत्वाद् न विरोधः. पादत्रयम् उपरितनलोकेषु चतुर्थं सर्वत्र इति. अन्यथा वैजात्यं पादानाम् आपद्येत

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ज्यायांश्च पूरुषः पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि'' (छान्दो.उप.३।१२।६) इति मन्त्रोक्तात् सर्वस्माद् अर्थाद् ज्योतिःपदार्थस्य भेदो 'अतः'शब्दाद् आयातीति अर्थभेदाद् उपदेशभेदः सिद्धः इति अर्थः. उपदेशभेदत्रयेण सिद्धम् अर्थम् आहुः **अतः** इति. अतः एतस्यैव विवरणं **उपदेशभेदाद्** इति. **न एकवाक्यता** मन्त्रब्राह्मणयोः न एकवाक्यता. **अस्मिन्** इत्यादि. ''**अथ यदतः परः**'' इति वाक्ये. **चरणाभावात्** चरणनिरूपणाभावात्. **हेतुः** चरणाभिधानाद् इति सौत्रो हेतुः. **स्वरूपासिद्धः** चरणप्रतिपादकमन्त्रेण अस्य एकवाक्यत्वाभावाद् अस्मिंश्च ब्राह्मणे चरणानभिधानात् स्वरूपासिद्धः इति अर्थः. **इति चेत्** पूर्वोक्तरीत्या दोषः प्रतिपाद्यते चेद् इति अर्थः. **एषः** मन्त्रब्राह्मणयोः वाक्यभेदरूपः. समाधानम् आहुः **उभयस्मिन्** इत्यादि. उभयस्मिन् मन्त्रे ब्राह्मणे च इति अर्थः. **'ज्योतिः'पदे** ब्राह्मणवाक्यस्थे 'ज्योतिः'पदे. **'अमृत'पदे** मन्त्रवाक्यस्थे 'अमृत'पदे. **एकार्थत्वाद्** ब्रह्मरूपैककार्यत्वात्. ननु ''चतुष्पदा षड्विधा गायत्री'' इति ब्राह्मणात् कथं गायत्रीं त्यक्त्वा मन्त्र-ब्राह्मणयोः एकवाक्यतया ब्रह्मणः पादौ उच्येते ? इति प्रकाराकांक्षायां पादान् आहुः **पादत्रयम्** इत्यादि. पादाः त्रयो विद्यन्ते यस्मिन् तत्पादत्रयं अमृतरूपः पादः. **चतुर्थम्** अमृतरूपपादघटकं यत् पादत्रयं तदपेक्षया चतुर्थम् अमृतरूपैकपादापेक्षया द्वितीयं सर्वभूतात्मकं पादम्. **सर्वत्र** सर्वलोकेषु इति आहुः. तथाच 'गायत्री'शब्देन गायत्र्यर्थो ब्रह्मैव उच्यते. तस्यैव व्यस्तसमस्तपादभेदम् आदाय चतुष्पात्वं

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

वाक्यभेदः तत्रैव पूर्वपरामर्शः. अत्र 'अतः'शब्दस्य पूर्वपरामर्शित्वेन सर्वस्माद् भेदः इति अर्थः. **अतः उपदेशभेदाद्** इति. एवं प्रकारत्रयेण प्रतिपाद्य, वस्तुभेदाद् इति अर्थः. सूत्रस्थहेतौ स्वरूपासिद्धत्वम् आहुः **अस्मिंश्च** इति. **वाक्ये** ''यदतःपरो दिव'' इति वाक्ये. द्वितीयार्थे समाधानम् आहुः **उभयस्मिन्** इति. मन्त्रे ब्राह्मणे च इति अर्थः. **एकार्थत्वाद्** ब्रह्मरूपः एकार्थप्रतिपादकत्वात्. ननु अस्तु तथापि अमृतहृदयादिरूपपादभेदाद् विभागे साकाङ्क्षत्वं नास्ति इत्यतः आहुः **पादे**ति. मन्त्रे ब्राह्मणे च अमृतज्योतीरूपब्रह्मणः इति शेषः. **चतुर्थः** अमृतज्योतिरूपं ब्रह्म. तथाच साकाङ्क्षत्वाद्

परिच्छेदविरोधश्च. अतो ‘अमृत-ज्योतिः’शब्दयोः एकार्थत्वेन विरोधाभावाद् एकवाक्यत्वम्. अतो अत्र चरणसद्भावात् तस्य च ब्रह्मधर्मत्वात् ज्योतिब्रह्मैव ।।२६।।

इति प्रथमाध्याये प्रथमपादे नवमं ज्योतिश्चरणाधिकरणम्।।९।।

प्राणस्तथानुगमात्।।२७।। (१।१।१०)

अस्ति कौषीतकिब्राह्मणोपनिषदि इन्द्र-प्रतर्दनसंवादः. **‘‘प्रतर्दनो ह वै**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

द्विपात्त्वं च बोध्यम्. हृदयरूपः चतुर्थचरणो ब्रह्मैव, सएव अमृत-ज्योतिः-पादाभ्याम् उच्यतइति न विरोधगन्धः इति भावः. **अन्यथा** छन्दोरूपगायत्र्याः अर्थात्मिकायाः पादाः इति उक्तौ. **वैजात्यम्** अवयव्यवयवयोः वैजात्यम् अवयविनः शब्दत्वाद् अवयवानां च अर्थरूपत्वाद् इति भावः. **परिच्छेदविरोधः** गायत्र्याः वर्षरूपायाः परिच्छेदसत्वेन ब्रह्मत्वे विरोधः इति अर्थः. **एकवाक्यत्वं** ‘ज्योतिः’पदार्थस्य ब्रह्मत्वाद्, ब्रह्मणश्च मन्त्रे पादाभिधानाद्, ‘ज्योतिः’पदार्थेऽपि पादाकांक्षासत्त्वाद् अर्थैक्याद्, ‘‘एकं वाक्यं साकांक्षं चेद् विभागे स्याद्’’ इति एकवाक्यतालक्षणसत्त्वाद् एकवाक्यत्वम् इति अर्थः. **अतः** मन्त्रेण एकवाक्यतः. **अत्र** ज्योतिःपदार्थे. **तस्य** अमृतरूपचरणस्य।।२६।।

‘‘प्राणस्तथानुगमात्’’. **‘‘प्रतर्दनो ह’’** इत्यादि. एतद्ब्राह्मणे इन्द्र-प्राण-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

एकवाक्यत्वम् अस्ति इति भावः. **अन्यथा** स्पष्टब्रह्मधर्माभावेन एतादृशार्थास्वीकाराद् गायत्रीपरतया व्याख्याने. **वैजात्यम्** इति. गायत्रीपादाः शब्दरूपाः ब्रह्मणः पादाः अर्थरूपाः इति **वैजात्यम्** इति अर्थः. **परिच्छेदः** इति. गायत्र्याः शब्दात्मिकायाः परिच्छिन्नत्वं ज्योतीरूपब्रह्मणः **‘‘सर्वतः पृष्टेषु’’** इत्यादिना परिच्छेदराहित्यम् इति विरोधः इति अर्थः. ननु तथापि किं सिद्धम्? अतः आहुः **अतः** इति. एकवाक्यत्वेन ब्रह्मप्रकरणत्वात्. अत्र **‘‘अथ यदतः परो दिव’’** इतिवाक्ये. एतेन पादवतीविद्यानां ब्रह्मणि समन्वयः इति फलितम्।।२६।।

इदानीं छान्दोग्यस्थः **‘‘प्रस्तोतर्यादेवता’’** इत्यादिविषयवाक्यस्थ‘प्राण’शब्दस्य कौषीतकिब्राह्मणस्थ‘प्राण’शब्दस्य च भेदं साधयितुं चतुर्भिः सूत्रैः अनुगमाधिकरणम् आरचयन्ति **प्राणस्तथानुगमात्**. **अस्ति** इति. पञ्चमाध्याये इति शेषः. अथ विषयवाक्यम् (कौ.उप.३।१).

प्रतर्दनो ह वै दैवोदासिः इन्द्रस्य प्रियं धाम उपजगाम ।

दैवोदासिः'' (कौषी.उप.३।१) इत्यादिना **''एष लोकपाल एष लोकाधिपतिरेष**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

युद्धेन पौरुषेण च तं हेन्द्र उवाच प्रतर्दनं वरं ते ददानीति स होवाच प्रतर्दनः त्वमेव वृणीष्व यं त्वं मनुष्याय हिततमं मन्यस इति तं हेन्द्र उवाच न वै वरं परस्मै वृणीते त्वमेव वृणीष्व इति अवरो वै तर्हि किल म इति होवाच प्रतर्दनो अथो खलु इन्द्रः सत्यादेव नेयाय सत्यं हीन्द्रः स होवाच मामेव विजाहि एतदेव अहं मनुष्याय हिततमं मन्ये यन् मां विजानीयां त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रम् अहनम् अवाङ्मुखातन अतीन्सालावृकेभ्यः प्रायच्छं बह्वीः सन्धा अतिक्रम्य दिवि प्रह्लादीनतृणम् अहम् अन्तरिक्षे पौलोमान्पृथिव्यां कालकाश्यां–स्तस्य मे तत्र न लोम च नामीयते स यो मां विजानीयाद् न अस्य केन च कर्मणा लोको मीयते न मातृवधेन न पितृवधेन न स्तेयेन न भ्रूणहत्यया नास्य पापं च न चकृषो मुखाद् नीलं वेत्तीति।।१।।

स होवाच प्राणो अस्मि प्रज्ञात्मा तं माम् आयुः अमृतम् इति उपास्व आयुः प्राणः प्राणो वा आयुः प्राण उ वाच अमृतं यावद्धि अस्मिन् छरीरे प्राणो वसति तावद् आयुः प्राणेन ह्येव अमुष्मिंल्लोके अमृतत्वम् आप्नोति प्रज्ञया सत्यसङ्कल्पं स यो म आयुः अमृतम् इति उपास्ते सर्वम् आयुः अस्मिन् लोक एव आप्नोति अमृतत्वम् अक्षितिं स्वर्गे लोके तद्धैक आहुः एकभूयं वै प्राणा गच्छन्तीति न हि कश्चन शक्नुयात् सकृद्वाचा नाम प्रज्ञापयितुं चक्षुषा रूपं श्रोत्रेण शब्दं मनसा ध्यानम् इति एकभूयं वै प्राणा भूत्वा एकैकं सर्वाण्येव एतानि प्रज्ञापयन्ति वाचं वदतीं सर्वे प्राणा अनुवदन्ति चक्षुः पश्यत्सर्वे प्राणा अनुपश्यन्ति श्रोत्रं श्रुण्वत्सर्वे प्राणा अनुश्रुण्वन्ति मनो ध्यायत्सर्वे प्राणा अनुध्यायन्ति प्राणं प्राणन्तं सर्वे प्राणा अनुप्राणन्ति इत्येवम् उहैवा एतदिति हेन्द्र उवाच आस्ति इत्येव प्राणानां निःश्रेयसादानम् इति ।।२।।

जीवति वागपेतो मूकान्विपश्यामो जीवति चक्षुरपेतो अन्धान्विपश्यामो जीवति श्रोत्रापेतो बधिरान् विपश्यामो जीवति बाहुच्छिन्नो जीवति ऊरुच्छिन्न इत्येवं हि पश्याम इत्यथ खलु प्राणएव प्रज्ञात्मेदं शरीरं परीगृह्योत्थापयति तस्माद् एतमेव उक्थम् उपासीत यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वा प्रज्ञा स प्राणः सह हि एतौ

अस्मिन् छरीरे वसतः सहोत्क्रामतः तस्य एषैव दृष्टिः एतद्विज्ञानं यत्र एतत्पुरुषः सुप्तः स्वप्नं न कंचन पश्यत्यथ अस्मिन् प्राण एवैकधा भवति तदैनं वाक्सर्वैर्नामभिः सह अप्येति चक्षुः सर्वै रूपैः सह अप्येति श्रोत्रं सर्वैः शब्दैः सह अप्येति मनः सर्वैर्ध्यातैः सह अप्येति स यदा प्रतिबुध्यते यथा अग्नेर्ज्वलतो विस्फुलिङ्गा विप्रतिष्ठेरन् एवमेव एतस्माद् आत्मनः प्राणा यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः तस्यैषैव सिद्धिः एतद्विज्ञानं यत्र एतत्पुरुषः आर्तो मरिष्यन्नाबल्यं न्येत्य मोहं नैति तदाहुः उद क्रमीत् चित्तं न श्रुणोति न पश्यति वाचा वदति अथा अस्मिन् प्राण एव एकधा भवति तदैनं वाव सर्वैः नामभिः सह अप्येति चक्षुः सर्वैः रूपैः सह अप्येति श्रोत्रं सर्वैः शब्दैः सह अप्येति मनः सर्वैर्ध्यातैः सह अप्येति स यदा प्रतिबुध्यते यथाग्नेर्ज्वलतो विस्फुलिङ्गा विप्रतिष्ठेरन् एनेवमेव एतस्माद् आत्मानः यथायतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः ।। ३ ।।

स यदा अस्मात् शरीराद् उत्क्रामति वागस्मात् सर्वाणि नामानि अभिविसृजते वाचा सर्वाणि नामानि आप्नोति प्राणो अस्मात् सर्वान् गन्धान् अभिविसृजते प्राणेन सर्वान् गन्धान् आप्नोति चक्षुः अस्मात् सर्वाणि रूपाणि अभिविसृजते चक्षुषा सर्वाणि रूपाणि आप्नोति श्रोत्रम् अस्मात् सर्वान् च्छब्दान् अभिविसृजते श्रोत्रेण सर्वान् च्छब्दान् आप्नोति मनो अस्मात् सर्वाणि ध्यातानि अभिविसृजते मनसा सर्वाणि ध्यातानि आप्नोति सैषा प्राणे सर्वाप्तिर्यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वा प्रज्ञा स प्राणः स ह ह्येतावस्मिन् षरीरे वसतः सह उत्क्रामतो अथ खलु यथा प्रज्ञायां सर्वाणि भूतानि एकीभवन्ति तद्व्याख्यास्यामः ।। ४ ।।

वागेव अस्मा एकमङ्गमुदूढं तस्यै नाम परस्तात् प्रतिविहिता भूतमात्रा घ्राणमेव अस्या एकम् अङ्गम् उदूढं तस्य गन्धः परस्तात् प्रतिविहिता भूतमात्रा चक्षुरेव अस्या एकम् अङ्गम् उदूढं तस्य रूपं परस्तात् प्रतिविहिता भूतमात्रा श्रोत्रमेव अस्या एकम् अङ्गम् उदूढं तस्य शब्दः परस्तात् प्रतिविहिता भूतमात्रा जिह्वैवास्या एकम्

अङ्गम् उदूढं तस्यान्नरसः परस्तात् प्रतिविहिता भूतमात्रा हस्तावेव अस्या एकम् अङ्गम् उदूढं तयोः कर्म परस्तात् प्रतिविहिता भूतमात्रा शरीरमेव अस्या एकम् अङ्गम् उदूढं तस्य सुखदुःखे परस्तात् प्रतिविहिता भूतमात्रा उपस्थएव अस्या एकम् अङ्गम् उदूढं तस्य आनन्दो रतिः प्रजातिः परस्तात् प्रतिविहिता भूतमात्रा पादावेव अस्या एकम् अङ्गम् उदूढं तयोरित्या परस्तात्प्रतिविहिता भूतमात्रा प्रज्ञैवास्या एकम् अङ्गम् उदूढं तस्यै धियो विज्ञातव्यं कामाः परस्तात् प्रतिविहिता भूतमात्रा ।।५।।

प्रज्ञया वाचं समारुह्य वाचा सर्वाणि सामानि आप्नोति प्रज्ञया प्राणं समारुह्य प्राणेन सर्वान् गन्धान् आप्नोति प्रज्ञया चक्षुः समारुह्य चक्षुषा सर्वाणि रूपाणि आप्नोति प्रज्ञया श्रोत्रं समारुह्य श्रोत्रेण सर्वान् शब्दान् आप्नोति प्रज्ञया जिह्वां समारुह्य जिह्वया सर्वान् अन्नरसान् आप्नोति प्रज्ञया हस्तौ समारुह्य हस्ताभ्यां सर्वाणि कर्माणि आप्नोति प्रज्ञया शरीरं समारुह्ये शरीरेण सुखदुःखे आप्नोति प्रज्ञया उपस्थं समारुह्य उपस्थेन आनन्दं रतिं प्रजातिम् आप्नोति प्रज्ञया पादौ समारुह्य पादाभ्यां सर्वा इत्या आप्नोति प्रज्ञयैव धियं समारुह्य प्रज्ञयैव धियो विज्ञातव्यं कामान् आप्नोति ।।६।।

नहि प्रज्ञापेता वाङ्नाम किञ्चन प्रज्ञपयेद् अन्यत्र मे मनो अभूद् इति आह नाहमेतन्नाम प्राज्ञासिषमिति न हि प्रज्ञापेतः प्राणो गन्धं कञ्चन प्रज्ञपयेद् अन्यत्र मे मनो अभूद् इति आह न अहम् एतं गन्धं प्राज्ञासिषमिति नहि प्रज्ञापेतं चक्षू रूपं किञ्चन प्रज्ञपयेद् अन्यत्र मे मनो अभूद् इति आह नाहम एतद्रूपं प्राज्ञासिषमिति नहि प्रज्ञापेतं श्रोत्रं शब्दं कञ्चन प्रज्ञपयेद् अन्यत्र मे मनो अभूद् इति आह नाहमेतं शब्दं प्राज्ञासिषम् इति नहि प्रज्ञापेता जिह्वान्नरसं कञ्चन प्रज्ञपयेद् अन्यत्र मे मनो अभूद् इति आह नाहमेतम् अन्नरसं प्राज्ञासिषमिति नहि प्रज्ञापेतो हस्तौ कर्म किञ्चन प्रज्ञपयेतामन्यत्र मे मनो अभूद् इति आह नाहमेतत्कर्म प्राज्ञासिषमिति नहि प्रज्ञापेतं शरीरं सुखदुःखं किञ्चन प्रज्ञपयेद् अन्यत्र मे मनो अभूद् इति आह नाहम् एतत्सुख–दुःखं प्राज्ञासिषमिति नहि प्रज्ञापेत उपस्थ आनन्दं रतिं प्रजातिं कञ्चन

लोकेशः स म आत्मेति विद्यात् स म आत्मेति विद्यात्’’ (तत्रैव ३।८) इत्येतदन्तम्. तत्र वरदाने ‘‘**मामेव विजानीह्येतदेवाहं मनुष्याय हिततमं मन्ये**’’ इत्युपक्रम्य

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

जीव-ब्रह्मणां चतुर्णां बोधकानि लिङ्गानि सन्ति. तथाहि ‘‘**मामेव विजानीहि**’’ (कौषी. उप.३।१) इति देवतात्मनः इन्द्रस्य बोधकम्. ‘‘**अथ खलु प्राणएव प्रज्ञात्मा इदं शरीरं परिगृह्योत्थापयति**’’ (तत्रैव ३।३) इति प्राणस्य बोधकम्. ‘‘**न वाचं विजिज्ञासीत वक्तारं**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

> **प्रज्ञपयेद् अन्यत्र मे मनो अभूद् इति आह नाहम् एतम् आनन्दं रतिं प्रजातिं प्राज्ञासिषमिति नहि प्रज्ञापेतौ पादौ इत्यां काञ्चन प्रज्ञपयेताम् अन्यत्र मे मनो अभूद् इति आह नाहम् इत्यां प्राज्ञासिषमिति नहि प्रज्ञापेता धीः काचन सिद्ध्येद् न प्रज्ञातव्यं प्रज्ञायेत ।।७।।**
>
> **न वाचं विजिज्ञासीत वक्तारं विद्याद् न गन्धं विजिज्ञासीत घ्रातारं विद्याद् न रूपं विजिज्ञासीत रूपविदं विद्याद् न शब्दं विजिज्ञासीत श्रोतारं विद्याद् न अन्नरसं विजिज्ञासीतान्नरसविज्ञातारं विद्याद् न कर्म विजिज्ञासीत कर्तारं विद्याद् न सुखदुःखे विजिज्ञासीत सुखदुःखयोः विज्ञातारं विद्याद् न आनन्दं रतिं प्रजातिं विजिज्ञासीतानन्दस्य रतेः प्रजातेर्विज्ञातारं विद्याद् न इत्यां विजिज्ञासीतैतारं विद्याद् न मनो विजिज्ञासीत मन्तारं विद्यात् ता वा एता दशैव भूतमात्रा अधिप्रज्ञं दश प्रज्ञामात्रा अधिभूतं यद्धिभूतमात्रा न स्युः न प्रज्ञामात्राः स्युः यद्वा प्रज्ञामात्रा न स्युः न भूतमात्राः स्युः ।।८।।**
>
> **न ह्यन्यतरतो रूपं किञ्चन सिद्ध्येद् नो एतद् नाना तद्यथा रथस्य अरेषु नेमिः अर्पिता नाभौ अरा अर्पिता एवमेव एता भूतमात्राः प्रज्ञामात्रासु अर्पिताः प्रज्ञामात्राः प्राणे अर्पिता एष प्राणएव प्रज्ञात्मानन्दो अजरो अमृतो न साधुना कर्मणा भूयाद् नो एव असाधुना कर्मणा कनीयान् एष ह्येवैनं साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषत एष उ एवैनम् असाधुकर्म कारयति तं यमधो निनीषते. एष लोकपाल एष लोकाधिपतिरेष सर्वेश्वरः स म आत्मेति विद्यात् स म आत्मेति विद्यात् ।।९।।**

अथ भाष्यम्. अत्र ‘‘**अथ खलु प्राणएव**’’ (कौषी.उप.३।३) इति. ‘‘**मामेव विजानीहि**’’ (तत्रैव ३।१) इति. ‘‘**वक्तारं विद्याद्**’’ (तत्रैव ३।८) ‘‘**आनन्दो अजरो**

त्वाष्ट्रवधादिना आत्मानं प्रशस्य स्वोपासनायाः पापाभावं फलत्वेन प्रतिपाद्य कस्त्वम् इति विवक्षायां **‘‘प्राणो वा अहम् अस्मि प्रज्ञात्मानं मामायुः अमृतम् इत्युपास्व’’**(तत्रैव ३।२) इति उक्त्वा आयुषः प्राणत्वम् उपपाद्य अमृतत्वञ्च प्राणस्य उपपाद्य, **‘‘प्राणेन ह्येवामुष्मिन् लोके अमृतत्वम् आप्नोति’’** (तत्रैव३।२) इति अमृतत्वं योगेन प्रतिपादयति. तत्र सन्देहः. प्राणः किम् आसन्यो ब्रह्म वा? इति. **‘‘अतएव प्राणः’’**(ब्रह्मसू.१।१।२३) इत्यत्र ‘प्राण’शब्दमात्रे सन्देहः. अत्र

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

विद्याद्’’ (तत्रैव ३।८) इति जीवबोधकम्. **‘‘आनन्दो अजरो अमृतः’’** (तत्रैव ३।९) इत्यादि ब्रह्मबोधकं बोध्यम्. **‘‘स म आत्मा’’** (तत्रैव ३।९) इति इन्द्रोक्तिः. **वरदाने** इन्द्रेण प्रतर्दनाय वरदाने. **मामेव** इति इन्द्रोक्तिः. **एतदेव** उपदेष्टुः आत्मनो ज्ञानमेव. **विवक्षायां** प्रष्टुः इच्छायाम्. **प्राणेन** ‘प्राण’पदवाच्येन. **अमुष्मिन्** परलोके.

तत्र उक्तब्राह्मणार्थे. तथाच एतद्ब्राह्मणे चतुर्णां प्रकाशकानि लिङ्गानि सन्तीति अन्ये प्राणो वा, इन्द्रदेवतात्मा वा, जीवो वा, ब्रह्म वा इति चतुष्कोटिकं संशयं मन्यन्ते. तत्र **‘‘प्राणेन ह्येव अमुस्मिंन् लोके अमृतत्वम् आप्नोति**’’ (तत्रैव ३।२) इति प्राणयोगेन अमृतत्वे अमृतदातृत्वे स्वस्मिन् प्रतिपादिते सति इन्द्रे प्राणब्रह्मणोरेव लिङ्गप्राबल्याद् द्विकोटिकएव अत्र संशयो नतु चतुष्कोटिकः इति आहुः **प्राणः** ‘प्राण’पदवाच्यः **किम् आसन्यो ब्रह्म वा** इति.

ननु **‘‘अतएव प्राणः’’** (ब्रह्मसू.१।१।२२) इति पूर्वाधिकरणेनैव ‘प्राण’पदस्य ब्रह्मार्थत्वनिश्चयात् तेनैव गतार्थत्वात् किमिति अधिकरणान्तरारम्भः? इत्यतः आहुः **अतएव** इत्यादि. **शब्दमात्रे सन्देहः** ‘‘किं प्राणो वायुविशेषो ब्रह्म वा’’ इत्याकारकः तद्विषयवाक्यानुसारी. **अत्र अर्थेऽपि** इत्यादि. एतत्सूत्रविषयवाक्ये **अर्थेऽपि सन्देहः**. प्राण-देवतात्म-जीव-ब्रह्मणां चतुर्णाम् अर्थानां सन्देहइति तन्निरासाय अधिकरणान्तरम् आवश्यकम् इति अर्थः. **बाधकञ्च** इत्यादि जीवप्राणादिलिङ्गानां ब्रह्मबोधे बाधकानां च सत्त्वं वर्तते इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अमृतः’’(तत्रैव३।९) इति वाक्यचतुष्टयेन भासमानं प्राणो वा देवात्मा वा जीवो वा ब्रह्म वा इति चतुष्कोटिकसंशयं निराकर्तुम् आहुः **तत्र सन्देहः** इति. **‘‘प्राणो न ह्येव अमुष्मिन् लोके**’’(तत्रैव३।२) इत्यनेन उभयोरेव लिङ्गप्राबल्याद् द्विकोटिकः इति अर्थः. ननु अत्रापि द्विकोटिकएव सन्देहः चेत् प्राणाधिकरणाद् वैलक्षण्यं न स्याद् इत्यतः आहुः **अतएव** इति.

अर्थेऽपि सन्देहः. बाधकञ्च वर्ततइति पृथग् अधिकरणारम्भः. तत्र साधकासाधारणधर्मस्य अभावाद् बाधकानां विद्यमानत्वाद् न ब्रह्मत्वम् इति पूर्वपक्षः. सिद्धान्तस्तु चतुर्भिः सूत्रैः प्रतिपाद्यते. तत्र प्रथमं साधकधर्ममम् आह एकेन. त्रिभिः बाधकनिराकरणम्. **प्राणः** परमात्मा भवितुम् अर्हति. कुतः? **तथा अनुगमात्.** तथाहि. पौर्वापर्येण पर्यालोच्यमाने वाक्ये पदार्थानां समन्वयो ब्रह्मप्रतिपादनपरः उपलभ्यते. उपक्रमे तावत् ‘‘**वरं वृणीष्व**’’ इति इन्द्रः प्रतर्दनोक्तः परमपुरुषार्थं वरम् उपचिक्षेप. ‘‘**त्वमेव मे वृणीष्व यं त्वं मनुष्याय हिततमं मन्यसे**’’(कौषी.उप.३।१) इति. तस्मै हिततमत्वेन उपदिश्यमानः प्राणः कथं परमात्मा न स्यात्. न हि परमात्मनो अन्यद् हिततमम् अस्ति, परमानन्दस्वरूपत्वात्. पापाभावश्च ब्रह्मविज्ञानएव. ‘‘**क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे**’’(मुण्ड.उप.२।२।८) इति श्रुतेः. प्रज्ञात्मत्वञ्च तस्यैव सम्भवति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र साधके**त्यादि. **तत्र** विषयवाक्ये. **साधके**त्यादि ‘प्राण’पदस्य ब्रह्मार्थसाधकः इति अर्थः. **सिद्धान्तस्तु** ब्रह्मार्थत्वनिर्णयस्तु. **तत्र** चतुर्णां मध्ये. **प्रथमम्** आदौ. **साधकधर्मं** ‘प्राण’पदस्य ब्रह्मार्थत्वसाधकधर्मम्. **एकेन** प्रथमसूत्रेण. **त्रिभिः** वक्ष्यमाणैः त्रिभिः सूत्रैः. सूत्रार्थम् आहुः **प्राणः** इत्यादिना. **तथा** प्राणपदस्य ब्रह्मपरत्वे. **अनुगमात्** सर्वेषां विषयवाक्यानां ब्रह्मणि समन्वयात्. समन्वयमेव उपपादयन्ति **तथाहि** इत्यादिना. **वाक्ये** इन्द्रप्रतर्दन-संवादरूपविषयवाक्ये. **प्रतर्दनोक्तः** प्रतर्दनेन उक्तः इति अर्थः. **परमपुरुषार्थं** मोक्षरूपम्. **उपचिक्षेप** दातुं प्रतिज्ञातवान्. **त्वम्** इति प्रतर्दनः. **मे** मत्तः इन्द्राद् इति अर्थः. **हिततमं** सर्वोत्कृष्टं मोक्षरूपम्. **तस्मै** प्रतर्दनाय. **परमात्मनो अन्यद्** इत्यादि. ‘‘**आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति**’’ (बृह.उप.२।४।५) इति श्रुतेः इति अर्थः. **पापाभावः** प्रतिबन्धकाभावः. **तस्यैव** इत्यादि प्रज्ञात्मत्वं

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र** इति. **बाधकानाम्** इति. जीवस्य मुख्यप्राणस्य च लिङ्गरूपबाधकानाम् इति अर्थः. सिद्धान्तसूत्रेषु प्रथमसूत्रार्थम् आहुः **प्राणे**ति. **तथा,** ब्रह्मैव. कुतः? **अनुगमात्.** ‘प्राण’पदस्य ब्रह्मपरत्वे विषयवाक्यगतपदार्थानां ब्रह्मणि समन्वयात्. तदेव उपपादयन्ति **तथाहि** इत्यादिना. कथम् उपलभ्यन्ते इत्यतः आहुः **उपक्रमे**ति ‘‘**वरं वृणीष्व**’’ इति उपक्रमवाक्ये. **प्रतर्दनोक्तः** प्रतर्दनेन उक्तः. **उपचिक्षेप** दातुं प्रतिज्ञातवान्. मे मतः. ननु पापरूपकर्मणाम् अनेकजन्मसञ्चितानां सत्त्वात् कथम्

उपसंहारेपि ‘‘**आनन्दो अजरोमृतः**’’(कौषी.ब्रह्म.३।८) इति, ‘‘**एष लोकाधिपतिः**’’(तत्रैव ३।८) इत्यादि च. तस्मात् सर्वत्रानुगमात् प्राणो ब्रह्म ।।२७।।

न वक्तुरात्मोपदेशाद् इति चेद् अध्यात्मसम्बन्धभूमा ह्यस्मिन् ।।२८।।

बाधकम् आह. यद् उच्यते ‘‘प्राणो ब्रह्म’’ इति, तद् **न**, कुतः ? **वक्तुः आत्मोपदेशात्.** वक्ता हि इन्द्रः आत्मानम् उपदिशति. ‘‘**मामेव विजानीहि**’’ इति उपक्रम्य ‘‘**प्राणो वा अहम् अस्मि प्रज्ञात्मानं मामायुरमृतम् इत्युपास्व**’’ (कौषी.उप.३।२) इति. स एष प्राणो वक्तुः आत्मत्वेन उपदिश्यमानः कथं ब्रह्म स्यात् ? तथाच वाचो धेनुत्वोपासनवद् देवतायाः प्राणत्वोपासना बोध्यते. अन्ये च

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

परमात्मनएव सम्भवति नतु प्राणस्य वायुरूपस्य इति अर्थः. **उपसंहारे** प्राणपदार्थस्य उपसंहारे. **उपसंहरन्ति तस्माद्** इत्यादि. **सर्वत्र** आदिमध्यावसानेषु. **अनुगमाद्** धर्माणां ब्रह्मणि समन्वय-प्रदर्शनात्. **प्राणः** अत्रत्य‘प्राण’पदवाच्यः।।२७।।

‘प्राण’पदस्य ब्रह्मपरत्वे किञ्चिद् बाधकम् आशङ्क्य समाधातुम् आह सूत्रकारः ‘‘**न वक्तु...**’’. **बाधकं** ‘प्राण’पदस्य ब्रह्मपरत्वे बाधकं सूत्रार्थम् आहुः **वक्ता हि** इत्यादिना. आत्मोपदेशम् आहुः **मामेव** इत्यादिना. **अहम्** इन्द्रः **वक्तुः** इन्द्रस्य. ननु ‘प्राण’पदस्य वायुविशेषे रूढत्वात् कथम् इन्द्रबोधकता? इत्यतः आहुः **वाचो धेनुत्वे**त्यादि. तथाच धेनूनामिव वाचाम् उपासने फलसम्भवात् सदृशलक्षणया वाचि ‘धेनु’पदप्रयोगः तथा क्रियाकारणशक्तेः बलरूपायाः इन्द्रेऽपि सत्त्वात् ‘‘**प्राणो वै बलम्**’’

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आनन्दस्य परमत्वम्? अतः आहुः **पापाभावः** इति. **श्रुतेः** इति. उपनिषदवाक्याद् इति अर्थः. **सम्भवति** इति चिद्रूपत्वाद् ब्रह्मणएव इति शेषः. ‘एव’कारेण प्राणव्यवच्छेदः. **उपसंहारे** उपसंहारवाक्ये. तथाच उपक्रमोपसंहारवाक्ययोः एकार्थप्रतिपादनपरत्वार्थं ‘प्राण’पदस्य ब्रह्मपरत्वम् आवश्यकम् इति भावः. **सर्वत्र** आदौ मध्ये तथाच अन्ते. **अनुगमाद्** इति. ब्रह्मधर्मत्वेनैव समन्वयो अस्ति इति प्राणो ब्रह्म इति अर्थः।।२७।।

साधकसूत्रं व्याख्याय बाधकनिराकरणसूत्राणि क्रमेण व्याख्यातुम् आहुः ‘‘**न वक्तु...**’’. **बाधकम् आह** इति. सूत्रांशेन इति अर्थः. व्यासः इति शेषः. **बाधकः इति चेद्** इत्यन्तेन वर्णयन्ति **यद् उच्यते** इत्यादिना. **उपदिशति** इति. अहङ्कारवादेन इति शेषः. **कथं ब्रह्म स्याद्** इति. तथाच ‘प्राण’पदेन इन्द्रदेवताएव बोध्यते इति भावः. **वाचो धेनुत्वे**ति. ‘‘**वाचं धेनुम् उपासीत**’’(बृह.उप.५।८।१) इत्यत्र वाचि ‘धेनु’पदप्रयोगः

ब्रह्मधर्माः प्राणस्तावकाइति कथम् अस्य ब्रह्मोपाख्यानत्वम्? इति चेत्, न, **अध्यात्मसम्बन्धभूमा हि अस्मिन्. अस्मिन्** प्रकरणे **अध्यात्मसम्बन्धः.** आत्मानम् अधिकृत्य यः सम्बन्धः. ‘आत्म’शब्दो ब्रह्मवाची. वस्तुतो जीवस्य ब्रह्मत्वाय तथावचः. तस्य सम्बन्धः. तद्धर्माः. तेषां बाहुल्यं प्रतीयते. **‘‘एष लोकपालः’’** (कौषी.उप.३।८) इत्यादि. यावद् यथाकथञ्चिदपि ब्रह्मप्रकरणत्वं सिद्ध्यति, तावद् अन्यप्रकरणत्वम् अयुक्तम् इति ‘हि’शब्दार्थः. प्राणस्य प्रज्ञानात्मत्वम्. स्वातन्त्र्येण आयुर्दातृत्वम्. **‘‘न वाचं विजिज्ञासीत वक्तारं**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

(बृह.उप.५।१४।३) इति श्रुतेः बलवत्त्वसाजात्यात् ‘प्राण’पदस्य इन्द्रे गौणीलक्षणया इन्द्रबोधसम्भवाद् न इन्द्रबोधकतानुपपत्तिः इति अर्थः. **देवतायाः** इन्द्रात्मरूपदेवतायाः **प्राणत्वोपासना** प्राणत्वेन रूपेण इन्द्रात्मदेवतायाः उपासना इति अर्थः. **अन्ये च** इत्यादि. **अन्ये** प्राणत्वातिरिक्ताः **ब्रह्मधर्माः** अमृतत्वसर्वलोकाधिपतित्वादयो धर्माः. **प्राणस्तावकाः** ‘प्राण’पदबोध्यः इन्द्रस्य ब्रह्मत्वेन उपासनार्थं स्तावकाः इति अर्थः. **अस्य** इन्द्रप्रतर्दनसंवादरूपस्य. **तथावचः** ‘ब्रह्म’पदं विहाय **‘‘स मे आत्मा’’** इति ‘आत्म’पदप्रयोगः. **तस्य** ब्राह्मणः सम्बन्धपदस्य धर्मार्थत्वम् आहुः **तद्धर्माः** इति. **तेषां** ब्रह्मधर्माणां **बाहुल्यं** इन्द्रप्रतर्दनसंवादे बाहुल्यम्. ननु जीवप्राणदेवतात्मनामपि लिङ्गसत्वात् तएव कुतो न निर्णीयन्ते? इत्यतः आहुः **यावद्** इत्यादि. **हिशब्दार्थः** सौत्र‘हि’शब्दार्थः. **प्राणस्य** इत्यादि. **‘‘प्राणोहम् अस्मि प्रज्ञात्मानं मामायुरमृतम्’’** (कौषी.उप.३।२) इत्यत्र उक्तं प्राणस्य प्रज्ञात्मत्वम् **आयुर्दातृत्वं** ‘प्राण’पदवाच्यस्य

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तथा बलत्वसाधारणधर्मेण ‘प्राण’पदस्य इन्द्रे गौणिलक्षणया प्रयोगसम्भवः इति अर्थः. ब्रह्मधर्माः अमृतत्वादयः. **अस्य** इन्द्रप्रतर्दनसम्वादरूपस्य सिद्धान्तांशम् आहुः **अध्यात्मसम्बन्धभूमा हि अस्मिन्.** अस्मिन् प्रकरणे, अध्यात्मसम्बन्धभूमा अध्यात्मसम्बन्धबाहुल्यम्. प्रतीयते इति शेषः. सूत्रार्थम् आहुः **अस्मिन्** इति. ‘आत्म’पदं जीववाचकमपि अस्ति इत्यतः आहुः **ब्रह्मवाची** इति. तर्हि ‘ब्रह्म’पदमेव कुतो न उक्तम् अतः आहुः **वस्तुतः** इति. **वचः** इति. सूत्रे इति शेषः. सूत्रस्थ **हि** शब्दार्थम् आहुः **यावद्** इति. अत्र ‘हि’शब्दकथनाद् एवम् अवगम्यते इति अर्थः. अयुक्तत्वमेव उपपादयन्ति **प्राणस्य** इति. ‘प्राण’पदवाच्यस्य ब्रह्मणः **प्रज्ञानात्मत्वम्** इति श्रुतिस्थ‘प्रज्ञात्म’पदस्य अर्थकथनम्. **स्वातन्त्र्येण** इति तथाच ब्रह्मणो अन्यस्य प्राणस्य इदं न सम्भवति इति

विद्यात्’’(कौषी.ब्राह्म.३।८) इति च उपक्रम्य, ‘‘**तद् यथा रथस्यारेषु नेमिः अर्पिता, नाभावरा अर्पिता एवमेवैता भूतमात्राः प्रज्ञामात्रास्वर्पिताः, प्रज्ञामात्राः प्राणे अर्पिताः. स एष(प्राणएव) प्रज्ञात्मानन्दो अजरो अमृतो न साधुना कर्मणा**’’(तत्रैव ३।८) इत्यादिविषयेन्द्रियव्यवहारे अरनाभिभूतं प्रत्यगात्मानमेव उपसंहरति. ‘‘**स म आत्मेति विद्यात्**’’(तत्रैव ३।८) इति च उपसंहारः. तस्माद् अध्यात्मसम्बन्धबाहुल्याद् ब्रह्मोपदेशएव अयम्।।२८।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

भगवतः स्वातन्त्र्येण आयुर्दातृत्वं, **भूतमात्राः** शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धात्मिकाः. **प्रज्ञामात्रासु** चक्षुरादिपञ्चेन्द्रियेषु. **प्राणेर्पिताः** प्राणाधीनाः कृताः. ‘प्राण’पदेन अत्र परमात्मा बोध्यः. **सः** पूर्वोक्तः **एषः** ‘प्राण’पदवाच्यः **न साधुना** इत्यादि. ‘‘**न साधुना कर्मणा भूयान् भवति नो एव असाधुना कनीयान्**’’ (तत्रैव ३।९) इत्यनेन जीवकृत-साध्वसाधु-कर्मफलासम्बन्धं प्राणे प्रतिपाद्य ‘‘**एष उ एव साधु कर्म कारयति**’’ (तत्रैव ३।८) इत्यादि उक्तं ततः उपसंहारः कृतः इति आहुः **विषयेन्द्रिये**त्यादि. **व्यवहारे** विषयविषयक-ज्ञानजनन-नियमने **अरनाभिभूतं** तदात्मकं **ब्रह्मोपदेशः** प्राणपदेन ब्रह्मोपदेशः **अयम्** इन्द्रप्रतर्दनसंवादरूपः।।२८।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

भावः. **उपक्रम्य** इति ‘‘**न गन्धं विजिज्ञासीत, घ्रातारं विद्याद्**’’ (कौषी.उप.३।८) इत्यपि बोध्यम्. उपक्रमोत्तरवाक्यं पठति **तद्यथा** इति. **रथस्य** रथचक्रस्य. **अरेषु** नाभिप्रतिष्ठितेषु तीक्ष्णाग्रेषु काष्ठेषु. **नेमिः** अरेभ्यो बहिर्देशवर्ति वर्तुलं काष्ठम्. **अर्पितः** संलग्नतया स्थापितः. **नाभौ** इति रथचक्रस्य इति शेषः. नाभो लोहकीलरूपो यो अक्षः तदाधारछिद्रवति वर्तुले अन्तःकाष्ठे. **अरा अर्पिताः** प्रतिष्ठिताः. **भूतमात्राः** गन्धादिविषयाः. **प्रज्ञामात्रेषु** घ्राणेन्द्रियादिषु. **प्राणे** मुखनासिकासञ्चारिणि अन्तर्यामि-ब्रह्मणि. तथाच रथचक्रस्य अक्षाधारच्छिद्राधिकरणं वर्तुलम् अन्तःकाष्ठं नाभिः तत्र संलग्नाः दण्डाकाराः तीक्ष्णाग्रा अराः, तेषु अर्पितः नेमि, तद्वत् नाभिस्थानापन्नः प्राणः, अराः प्रज्ञामात्राः, नेमिस्थानिया विषयाः. एवं रीत्या बोध्यम्. **कर्मणा** इति.

> **‘‘न साधुना कर्मणा भूयान् भवति, न एव असाधुना कनीयानेष ह्येव साधुकर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते एष एवासाधुस्तं यमधो निनीषते एष लोकपाल स म आत्मा’’** (कौषी.उप.३।९) इत्यादि ।।२८।।

तर्हि बाधकस्य का गतिः ? इत्यतः आह.

शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत्।।२९।।

पूर्वसूत्रेण *अपहृतम् अत्र परिहरति **‘तु’**शब्दः. अयं दोषो व्यवहारदृष्ट्योपदेशे. **‘‘अहं ब्रह्म’’**इति आर्षेण दर्शनेन तु उपदेशः. ननु **‘‘तत्त्वमसि’’**(छान्दो.उप.६।९।४), **‘‘अयमात्मा ब्रह्म’’**(बृहदा.उप.२।५।१९) इति वाक्येषु जीवस्य ब्रह्मत्वं बोध्यते तत्र **‘‘प्रत्यधिकारं शास्त्रप्रवृत्तिः’’** इतिन्यायेन स्वात्मनएव ब्रह्मत्वावगतिः मुख्या, न प्रतर्दनस्य इन्द्रजीवब्रह्मत्वावगतिरुपासनं वा पुरुषार्थाय. अतः शास्त्रदृष्टिरपि न एवंविधा.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अग्रिमसूत्रावतरणम् आहुः **तर्हि** इत्यादि. ***अपरिहृतम्** इन्द्रस्य स्वात्मोपदेशरूपं दूषणम्. **अयं दोषः** इति वेदान्तेषु ब्रह्मणएव उपास्यत्वाद् इन्द्रस्य स्वात्मोपदेशरूपं दूषणम्. **व्यवहारदृष्ट्या** लौकिकदृष्ट्या. **आर्षेण** ब्रह्मत्वप्रकारकाखण्डब्रह्मज्ञानेन. शास्त्रदृष्ट्या इन्द्रस्य प्रतर्दनोपदेशं दूषयितुम् आहुः **ननु तत्त्वम्** इत्यादि. **प्रत्यधिकारम्** इत्यादि. यस्य ब्रह्मत्वेन स्वात्मानं ज्ञातुम् अधिकारो वर्तते तं प्रत्येव शास्त्रप्रवृत्तिः इति अर्थः. **स्वात्मनः** प्रतर्दनात्मनः. **ब्रह्मत्वावगतिः** ‘‘अहं ब्रह्मास्मि’’ इति धीः. **मुख्या** प्रतर्दनस्य मुक्तिसाधिका. **इन्द्रजीवे**त्यादि. इन्द्रजीवो ब्रह्मास्ति इति अवगतिः इति अर्थः. **उपासनम्** इन्द्रजीवस्य ब्रह्मत्वेन उपासनम्. **न एवंविधा** न

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अग्रिमं सूत्रम् अवतारयन्ति **तर्हि** इति. **बाधकस्य** आत्मोपदेशरूपबाधकस्य. **अयं दोषः** स्वात्मोपदेशरूपो दोषः. ननु अत्र कया दृष्ट्या ? इत्यतः आहुः **अहम्** इति. अत्रतु इति शेषः. **आर्षेण** जन्मान्तरीयश्रवणादिना अस्मिन् जन्मनि स्वतः सिद्धं दर्शनम् आर्षं तेन दर्शनेन इति अर्थः. एवञ्च एवं रीत्या भासमानेऽपि आर्षज्ञानेन इन्द्रस्य ब्रह्मात्मकत्वेन उपदेशकर्तृत्वम् इति दोषः. अत्र अर्थे सूत्रोक्तं दृष्टान्तम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **प्रत्यधिकारम्** इति. अधिकारं प्रति, अधिकारं लक्षीकृत्य इति प्रत्यधिकारम्. तथाच शुद्धान्तःकरणवानेव अधिकारी. तत्रैव ‘‘तत्त्वमस्या’’द्युपदेशशास्त्रप्रवृत्तिः नतु जीवमात्रे. एवञ्च इन्द्रेण प्रतर्दनेऽपि अधिकारं विज्ञाय महावाक्यानुरोधेन ‘‘तव आत्मा प्राणः’’ इति वक्तव्ये ‘‘अहं प्राणः’’ इति उक्तम्. इयञ्च शास्त्रदृष्टिः न भवति इति आहुः **स्वात्मनएव** इत्यादिना. **प्रतर्दनस्य** स्वात्मनएव **ब्रह्मत्वावगतिः** मुख्यमोक्षसाधिका, न इन्द्रजीवे ब्रह्मत्वावगतिः इति अन्वयः. **न एवं विधा** इति इन्द्रे जीवे ब्रह्मत्वबोधिका न इति अर्थः.

केवलस्य चैतन्यमात्रस्य तादृशे ब्रह्मण्यैक्यावगतिः विरोधात् ‘तत्त्वमस्या’-दिवाक्यार्थो अध्यवसीयते. नतु ब्रह्मधर्माः जीवे वक्तुं शक्यन्ते इति आशङ्क्य परिहरति. **वामदेववत्. ‘‘तद्धैतत् पश्यन् ऋषिर्वामदेवः प्रतिपेदे ‘अहं मनुरभवं सूर्यश्च’ ’’** (तत्रैव १।४।१०) इति. यएव प्रत्यबुद्ध्यते सः सर्वं भवति.

तत्र सर्वेषां सर्वभावे सर्वानन्त्यप्रसङ्गात् सर्वम् एकमेव इति वक्तव्यम्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ब्रह्मप्रापकोपदेशसम्पादिका इति अर्थः. तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थपरिष्कारपूर्वकं पूर्वपक्षं समाधानाय आहुः **केवलस्य** इत्यादिना. **तादृशे** चैतन्यरूपे. **ऐक्यावगतिः** योग्यताबलाद् जीवचैतन्यस्य ऐक्यावगतिः एतस्य अवसीयते इत्यनेन अन्वयः. **विरोधाद्** अज्ञत्व-सर्वज्ञत्वाभ्यां सुखित्वदुःखित्वाभ्यां जीवस्य सर्वथा ब्रह्मत्वे विरोधात्. **ब्रह्मधर्माः** अपहतपाप्मत्वसर्वभवनसामर्थ्यसार्वज्ञ्यादयो ब्रह्मधर्माः. **परिहरति** सूत्रकारः परिहरति. **वामदेववद्** वामदेवस्य ब्रह्मज्ञानावेशाद् उक्तिः यथा ब्रह्मोक्तिः तथा इन्द्रस्यापि ब्रह्मावेशाद् उक्तिः ब्रह्मोक्तिरेव इति अर्थः. तत्र बृहदारण्यकीयं पुरुषविधब्राह्मण-वाक्यप्रमाणम् आहुः **‘‘तद्वैतत् पश्यन् ऋषिर्वामदेवः प्रतिपेदे ‘अहं मनुरभवं सूर्यश्च’ ’’**(बृह.उप.१।४।१०) इति. **प्रत्यवबुध्यत** ब्रह्मस्वरूपं ज्ञातवान् जीवन्मुक्तो जातः इति अर्थः.

सर्वस्य सर्वभावे वादी पूर्वपक्षयते **तत्र** इत्यादि. इयं स्वस्य सर्वात्मभावस्फूर्तिः सर्वेषां मुक्तानां वाच्या. तेषां च आनन्त्यात् सर्वपदार्थानन्त्यं स्यात्. अतो अनेकत्वेन भासमानं ‘सर्व’पदवाच्यं ब्रह्मैव इति प्रतितिरेव उरीकार्या. साच कारणीभूते ब्रह्मणि सर्वेषां लयादेव सूपपादा, तादृशकारणलयएव च ‘सर्वभाव’पदवाच्यः इति उपेयम्. **इति** इत्यतो हेतोः इति अर्थः. तथाच ‘‘सर्वं ब्रह्म’’ इत्याकारिका प्रतीतेरेव आर्षं ज्ञानं नतु **अवयुत्य**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ननु जीवमात्रस्य ब्रह्मैक्यावगतिः इत्यपि तत्त्वमस्यादिशास्त्रे दृश्यते इत्यतः आह **केवलस्य** इति. **तादृशे**ति. केवले इति अर्थः. **विरोधाद्** इति. किञ्चिज्ज्ञत्व-सर्वज्ञत्वादि-धर्मविरोधाद् इति अर्थः. **अध्यवसीयते** सर्वेषां जीवानां सर्वज्ञत्वादिकं न दृश्यते इति अन्यथानुपपत्त्यापि चैतन्यैक्यरूपो वाक्यार्थो ज्ञायते इति अर्थः. **शक्यन्ते** इति. केवलचैतन्यैक्यमात्रेण न वक्तुं शक्यन्ते इति अर्थः. इमाम् आशङ्कां सूत्रकारः दृष्टान्तेन परिहरति **वामदेववद्** इति. **तद्धैतद्** इति बृहदारण्यके पुरुषविधब्राह्मणे श्रूयते.

तत्र श्रुतौ. **एकमेव** ब्रह्मैव. **लये**ति. ब्रह्मणि लये जाते सत्येव इति अर्थः.

ततः कारणलयएव सर्वभावः इति ‘‘**मनुरभवं सूर्यश्च**’’ इति अवयुत्य अनुवादो अनुपपन्नः. तत्र यथा ज्ञानावेशात् सर्वधर्मस्फूर्तिः एवम् अत्रापि ब्रह्मावेशाद् उपदेशः इति. त्वाष्ट्रवधादयो ब्रह्मधर्माएव, तदावेशेन क्रियमाणत्वात्. ‘‘**नन्वेष वज्रस्तव शक्र तेजसा हरेर्दधीचेस्तपसा च तेजितः, तेनैव शत्रुं जहि विष्णुयन्त्रितः**’’ (भाग.पुरा.६।११।२०) इति वृत्रवचनं श्रीभागवते. तस्माद् युक्तं ब्रह्मधर्मवचनम्.

ननु ‘‘**स्वाप्ययसम्पत्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि**’’(ब्रह्मसू.४।४।१६)

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पृथक्कृत्य मनुसूर्यादिशरीरावच्छिन्नानां स्वात्मनि अभेदग्रहः सर्वभावः आर्षज्ञानं वा इति श्रुतौ आर्षज्ञानानुवादो अनुपपन्नएव इति अर्थः. पूर्वोक्ताशङ्कायां समाधानम् आहुः **तत्र यथा** इत्यादिना. नहि कारणलयेएव सर्वभावः इत्यत्र किञ्चिद् नियामकम् अस्ति किन्तु वस्तुयाथात्म्यज्ञानमेव सर्वभावे आर्षज्ञाने च नियामकम्. अन्यथा वामदेवस्य तथा ज्ञानं श्रुतिः न अनुवदेत्. तथाच तस्य ब्रह्मांशत्वेन ब्रह्मरूपत्वात्, स्वस्य ब्रह्मात्मत्वस्फूर्तौ याथात्म्यज्ञानात्, सर्वरूपत्वादिब्रह्मधर्माणामपि स्वस्मिन् स्फूर्त्या ‘‘**अहं मनुरभवम्**’’ इत्याद्युपदेशो यथा ज्ञानावेशात् तथा इन्द्रेऽपि ब्रह्मावेशाद् उक्तोपदेशो द्रष्टव्यः इति अर्थः. **तदावेशेन** ब्रह्मावेशेन. ब्रह्मावेशेन उपदेशकरणे प्रमाणम् आहुः **ननु एषः** इत्यादि.

पूर्वपक्षम् आहुः **ननु** इत्यादिना. **स्वाप्यये**ति. **स्वाप्ययः** सुषुप्तिः. **सम्पत्तिः**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अवयुज्य पृथक्कृत्य. भावानन्तरं पृथक्भावाभावाद् अनुपपन्नः इति अर्थः. ननु एवं चेत् कथम् उक्तम् ‘‘**अहं मनुरभवम्**’’(बृहदा.उप.१।४।१०) इत्यतः आहुः **तत्र** इति. **ज्ञानावेशाद्** इति. ‘‘**य एव प्रत्यबुध्यत**’’(तत्रैव) इत्यादिना प्रबोधानन्तरं सर्वभावः श्रुतिसिद्धः ततश्च सर्वज्ञतायां सिद्धायां ज्ञानावेशाद् इति अर्थः. **सर्वधर्मः** इति. मनुत्व-सूर्यत्वादिधर्माणाम् एषामेव ज्ञानं स्वस्मिन्, नतु स्वस्य पृथक्त्वेन ज्ञानम् इति भावः. **ब्रह्मावेशाद्** इति. जीवस्य ब्रह्माभिन्नत्वं वर्ततएव, परन्तु, आवेशस्तु भगवदनुग्रहाधीनः इति भावः. **उपदेशः** इति. एवञ्च शास्त्रदृष्ट्या उपदेशो द्विधा ‘‘मां ब्रह्म जानीहि’’ इत्याकारकः शिष्योपदेशः एकः. अत्र प्रमाणं ‘‘**मय्येव सकलं जातम्**’’(कैव.उप.१९) इति श्रौतं वाक्यम्. ‘‘त्वं ब्रह्म असि’’ इत्याकारकः शिष्योपदेशः अपरः. अत्र प्रमाणं ‘तत्त्वमस्या’दिवाक्यम्. एवञ्च प्रतर्दनं प्रति इन्द्रेण उक्तम् ‘‘**अहं प्राणः**’’ इति ब्रह्मोपदेशएव इति फलितम्. ननु त्वाष्ट्रवधादयः इन्द्रजीवधर्माः, नतु ब्रह्मधर्माः इति कथम् एतद् उक्तम्? इत्यतः आहुः **त्वाष्ट्रे**ति. **तदावेशेन** ब्रह्मावेशेन. अत्र भागवतं प्रमाणम्

इति सूत्रे सुषुप्तौ ब्रह्मसम्पतौ च ब्रह्मधर्माविर्भावो नतु अन्यद् इति कथम् एवम् ? इति चेत्, मा एवम्. उपदेशभावनादिष्वपि कदाचिद् उत्तमाधिकारिविषये ब्रह्मप्राकट्यम् इति अङ्गीकर्तव्यम्, **''मय्येव सकलं जातम्''** (कौषी.उप.१।१९) इत्यादिवाक्यानुरोधात्. **''इहैव समवनीयन्ते प्राणाः ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति''** (नृसिंहोत्त.५) इत्यपि आविर्भावापेक्षम्. तस्य च प्रायिकत्वाद् न सूत्रे फलत्वम्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

मोक्षः. एतद् अन्यतरद् उपेक्ष्य ब्रह्म आविर्भवति इति अर्थः. **कथम् एवम्** उक्तावस्थान्यतरस्याः अभावाद् इन्द्रे कथं ब्रह्माविर्भावः इति पूर्वपक्षिप्रश्नः.

समाधानम् आहुः **मा एवम्** इत्यादि. **उपदेशे**त्यादि. तथाच उत्तमाधिकारिभिः यदा उपदेशः क्रियते तदा अधिकारोत्कर्षात् तेषु ब्रह्माविर्भावो भवत्येव. एवं तादृशाधिकारिभिः ब्रह्मभावनाकरणेऽपि तेषु ब्रह्माविर्भावो भवति. तत्र नियमबोधकाभावात् **कदाचिद्** इति उक्तम्. तत्र आविर्भावे प्रमाणम् आहुः **मय्येव** इत्यादि. श्रुतिसम्मतिम् आहुः **इहैव** इत्यादि. उत्तमाधिकारिणि उपदेशभावनादिना यदा अन्तर्ब्रह्माविर्भावो जातः तदैव तदीयाः प्राणाः ब्रह्मणि समवलीयन्ते इति उक्तश्रुत्यनुरोधाद् उपदेशभावनादिस्थलेऽपि अवश्यं ब्रह्माविर्भावो अङ्गीकर्तव्यः इति फलितम्. **इत्यपि** ब्रह्मणि प्राणविलापनमपि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आहुः **ननु एषः** इति. अग्रिमसूत्रविरोधम् आशङ्कते **ननु** इति. **कथम् एवम्** इति. इन्द्रस्य प्रतर्दनोपदेशकाले कथम् इति अर्थः. समाधानम् आहुः **मा एवम्** इति. **अङ्गीकर्तव्यम्** इति. तथाच 'सम्पत्ति'पदं उत्तमाधिकारिविषयस्यापि उपलक्षकमिति सूत्रे न न्यूनता इति भावः. यद्वा कदाचित् पदस्वारस्याद् उत्तमाधिकारिणोऽपि सर्वदा आविर्भावो नास्ति इत्यतः सूत्रे न उक्तम्. एतत्पक्षे 'सम्पत्ति'पदं न उपलक्षकम्. **वाक्ये**ति. श्रुतिस्थेति शेषः. ननु पूर्णज्ञाने सति सर्वदा ब्रह्मभावसम्पत्तौ सत्यामेव **''अहं मनुरभवमप्येव''** (तत्रैव) इत्यादिकं ज्ञानं जायते. इन्द्रस्यतु उपदेशकाले कादाचित्कः आविर्भावः इति पूर्णज्ञानित्वरूपसाधारणधर्माभावाद् वामदेववद् इति उपमानोपमेयभावो न सङ्गच्छते इत्यतः आहुः **इहैव** इति. **''प्राणान्तम्''** उपक्रमवाक्यम्, **''ब्रह्मैव''** इति उपसंहारवाक्यम्. तथाच **''ब्रह्मैव सन्''** इत्यनेन आविर्भावः. **उच्यते** इति. सद्योमुक्तावपि आविर्भावापेक्षा इति अर्थः. मुक्तस्य **''इहैव प्राणाः समवलीयन्ते''**(नृसिंहोत्त.५), **लीयन्ते** उत्क्रामन्ति इति श्रुत्यर्थः. 'आविर्भावो' नाम ब्रह्मभावः. सच ब्रह्मधर्माविर्भावपूर्वकब्रह्मस्फूर्तिरूपः. सच ज्ञानकाले मोक्षदशायां च अस्ति. एवञ्च वामदेवे इन्द्रे च ब्रह्माविर्भाववत्त्वरूपसाधारण–

आह. जीवन्मुक्तानामपि परममुक्तेः वक्तव्यत्वाच्च. असम्प्रज्ञातसमाधाविव आविर्भावदशायामेव शरीरवियोगे वियोजकाभावाद् वागादिमात्रं लीयते. तस्य च प्राप्तत्वादेव न अर्चिरादिगतिः. तथापि प्रायिकत्वाद् न सूत्र-गीतादिषु तद्वचनम्. सगुण-निर्गुणभेदेन नियमवचनन्तु अप्रामाणिकमेव. ब्रह्मवादे गुणानङ्गीकाराच्च. तस्माद् युक्तम् उक्तं **शास्त्रदृष्ट्यातु उपदेशः** इति।।२९।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तस्य तादृशाविर्भावस्य. **प्रायिकत्वाद्** अनियतत्वात्. मुक्ते यथा सार्वदिकः आविर्भावः तथा न भवति इति अर्थः. ननु तादृशसर्वभाववतां जीवन्मुक्तानाम् आवेशिनां च फलावश्यम्भावात् सूत्रे तत् कुतो न उक्तम्? अतः आहुः **जीवन्मुक्तानाम्** इत्यादि. तथा अग्रे वक्तव्यत्वाद् इदानीं न उक्तम् इति अर्थः. ननु ''**ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति**'' (बृह.उप.४।४।६) इत्युक्ता मुक्तिः ब्राह्मभावोत्तरकाले जायमाना ब्रह्माविर्भावेन ब्रह्मभावे सम्पत्तिकालएव कुतो न भवति? ब्रह्मसम्बन्धस्य अवशिष्टत्वाद् अतः आहुः **असम्प्रज्ञाते**त्यादि. तथाच असम्प्रज्ञातसमाधिस्थानां ब्रह्माविर्भावेन ब्रह्मभावस्य सत्त्वेऽपि मुक्त्यव्यवहितप्राक्क्षणरूपकारणस्य शरीरादिवियोजकस्य अभावाद् यथा न मुक्तिः, तथा अत्र ब्रह्मभावकालेऽपि न मुक्तिः. ततः पूर्वं मुक्तिजनककालरूपकारणस्य अभावाद् ब्रह्मभावकालएव मुक्तिजनककालस्य सत्त्वाद् उत्तरक्षणएव मुक्तिः नतु ब्रह्मभावकाल इति अर्थः. तथाच ब्रह्मभावकाले मुमुक्षोः वागादीन्द्रियलयएव जायते, तदुत्तरक्षणएव मुक्तिः इति फलितम्. असम्प्रज्ञातसमाधित्वं बहिःवेदनशून्यत्वम्. ननु सः मुमुक्षुः अर्चिरादिदेवमार्गे कुतो न गच्छति? इत्यतः आहुः **तस्य** इत्यादि. **तस्य** ब्रह्मणः. **प्रायिकत्वाद्** अनुग्रहमात्राधीनत्वेन तादृशसद्योमुक्तेः साधनासाध्यत्वेन अनियतकालत्वाद् इति भावार्थः. केषाञ्चिद् मतम् उपन्यस्यन्ति **सगुणे**त्यादि. **नियमवचनम्** इत्यादि. तथाच सगुणोपासकस्य अर्चिरादिमार्गेण गतिः निर्गुणोपासकस्य सद्योमुक्तिः इति व्यवस्थारूपनियमः इति **न** इति अर्थः. तत्र उपपादकं **ब्रह्मवादे**ति. तथाच ब्रह्मवादे जीवतुल्यतापत्त्या सगुण-निर्गुणभेदस्य ब्रह्मण्यनङ्गीकारात् सगुणपक्षस्य मायाधीनत्वकृतत्वात् तस्य च ब्रह्मण्यसंवादाद् अप्रामाणिकत्वमेव इति अर्थः. ननु ब्रह्मणः पुरुषत्वात् तत्र च प्रकृतिगुणसम्बन्धावश्यकत्वाद् ब्रह्मणः सगुणत्वं वाच्यम् अतः आहुः **गुणान-**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

धर्मवत्त्वसत्त्वाद् उपमानोपमेयभावः सङ्गच्छते इति भावः. ननु प्रतर्दनोपदेशकाले ''अहं प्राणः'' इति आविर्भावस्य साधनत्वम् उक्तं न फलत्वम् अतः आहुः **तस्य** च इति. **प्रायिकत्वाद्** उपदेशकालएव सत्त्वात्. **आह** इति. व्यासः इति शेषः।।२९।।

जीवमुख्यप्राणलिङ्गाद् न इति चेद् नोपासात्रैविध्यादाश्रितत्वादिह तद्योगात्।।३०।।

अन्यद् *बाधकद्वयम् आशङ्कते. ननु यद्यपि ब्रह्मधर्माः भूयांसः प्रकरणे श्रूयन्ते. तद्वद् जीवधर्माः मुख्यप्राणधर्माश्च बाधकाः सन्ति. **''न वाचं विजिज्ञासीत वक्तारं विद्याद्''**(कौषी.ब्राह्म.३।८) इत्यादि. अत्र हि वागादिकरणाध्यक्षस्य जीवस्य विज्ञेयत्वम् अभिधीयते. **''अथ खलु प्राणएव प्रज्ञात्मेदं शरीरं परिगृह्य''**(तत्रैव ३।३) इति शरीरधारणं मुख्यप्राणधर्मः. **''मा मोहमापद्यथा, अहमेवैतत् पञ्चधात्मानं प्रविभज्य एतद् बाणम् अवष्टभ्य विधारयामि''**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ङ्गीकाराद् इति. सूत्रकारेण तन्मतखण्डनाद् इति भावः. **''सच्च त्यच्चाभवद् निरुक्तं च अनिरुक्तं च निलयनं च अनिलयनं च विज्ञानं च अविज्ञानं च सत्यं च अनृतं च सत्यम् अभवद्. यदिदं किञ्च तत्सत्यम् इत्याचक्षते''**(तैत्ति.उप.३।६) इत्यादि ब्रह्मवादे ब्रह्मातिरिक्तासम्भवेनापि सगुणवादो अशक्यवचन इत्यपि बोध्यम् उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति. ब्रह्मदृष्टेः अभ्यासबाहुल्याद् इति अर्थः।।२९।।

शास्त्रोपदेशं दृढीकर्तुं किञ्चिद् आशङ्क्य परिहरति सूत्रकारः. **''जीवमुख्य...''**. ***बोधकद्वयं** जीवस्य मुख्यप्राणस्य च वाक्ये बोधकं लिङ्गद्वयम्. **न वाचम्** इत्यादि. जीवबोधकं तदेव अत्र 'इत्यादिना' उच्यते. **वागादिकरणाध्यक्षस्य** वागादि–करणानि इन्द्रियाणि तदध्यक्षस्य तन्नियामकस्य. **विज्ञेयत्वम्** उपदेश्यत्वं प्रकरणे इति अर्थः. प्रकरणे मुख्यप्राणबोधकं लिङ्गम् आहुः **अथ खलु** इत्यादिना. **प्रज्ञात्मा** ज्ञानेन्द्रियाणां सामर्थ्यसम्पादकः. **मुख्यप्राणधर्मः** मुख्यप्राणबोधकं लिङ्गम्. तत्र श्रुत्यन्तरसंवादम् आहुः **मा मोहम्** इत्यादि. प्राणसंवादे वागादीन् प्रकृत्य तान् वरिष्ठः प्राणः उवाच **''मा मोहम् आपद्यथा अहमेव एतत् पञ्चधात्मानं प्रविभज्य एतद् बाणम् अवष्टभ्य**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इदानीं सार्वकालिकब्रह्माविर्भावस्यापि साधनत्वं स्वीकृत्य आहुः **जीवन्** इति. तथाच प्रायिकस्य आविर्भावस्य फलत्वं नास्ति, सार्वकालिकस्यतु परमत्वं नास्ति इति इयान् विशेषः इति भावः. ननु आविर्भावकाले वागादीनां लयाद् इन्द्रस्य वक्तृत्वानुपपत्तिः इत्यतः आहुः **असम्प्रज्ञातः** इति. असम्प्रज्ञातसमाधौ यथा दिवि लये सति मूकीभावमात्रं जायते नतु शरीरवियोगः इति वाक्यार्थः।।२९।।

एतद् बाणम् इति. एतत् शरीरं तच्च वाणं 'वाति गच्छति इति वानं' ब–वयोः

(प्रश्नोप.२।३) इति श्रवणात्. **‘‘यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या प्रज्ञा स प्राणः’’**(कौषी. ब्राह्म.३।३) इति जीवमुख्यप्राणवाच्यत्वे प्रज्ञाप्राणयोः सहवृत्तित्वाद् उपचारो युज्यते, उत्क्रान्तिश्च, नतु सर्वथा विलक्षणस्य ब्रह्मणः. तस्माज् **जीवमुख्यप्राणलिङ्गयोः** विद्यमानत्वाद् **न** ब्रह्मप्रकरणम् **इति चेद्, न, उपासात्रैविध्यात्.**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

विधारयामि’’(प्रश्नोप.२।३) इति संवादः. श्रुतौ ‘बाण’पदेन शरीरं बोध्यम्. **‘‘यो वै प्राणः सा प्रज्ञा**’’(कौषी.उप.३।३) इति अभेदः कथम् उपपद्यते ? इत्यतः आहुः **सहवृत्तित्वाद्** इत्यादि. तथाच सहवृत्तित्वाद् अभेदोपचारो नतु वास्तवो अभेदः इति अर्थः. **जीवमुख्यप्राणवाच्यत्वे** जीवमुख्यप्राणयोः अभेदेन बोधकतायाम् इति अर्थः. सहवृत्तित्वं दृढीकर्तुम् आहुः **उत्क्रान्तिश्च** इति. **‘‘स यदा अस्मात् शरीराद् उत्क्रामति सहैव एतैः सर्वैः उत्क्रामति**’’(तत्रैव३।४) इति उत्क्रमणे सहभावः उक्तः. इत्थञ्च अत्र जीवप्राणयोरेव धर्माः उक्ताः नतु ब्रह्मणः. तत्र हेतुः सर्वविलक्षणः इति. तथाच **‘‘निष्कलं निष्क्रियं शान्तम्**’’ (श्वेता.उप.६।१९) इतिरीत्या विलक्षणं ब्रह्म, तत्र वक्त्रशरीरोत्थापकत्वेन्द्रियोपकारकत्वायुर्दातृत्वादीनि लिङ्गानि सर्वथा बाधितानीति न ब्रह्मप्रकरणम् इति अर्थः. उक्तं वादिमतं निरसितुं सूत्रकारः आह **इति चेद्, न** इति. ब्रह्मप्रकरणं न इति वादिना यद् उक्तं तद् न इति अर्थः. वाद्यभिप्रायप्रकटनाय प्रश्नः **किम् अत्र** इत्यादि. **अत्र** एतद्विषयवाक्ये. **चोद्यते**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अभेदाद्, बाणम् अस्थिरं शरीरम् इति अर्थः. **अवष्टभ्य** आश्रित्य. ननु एवं सति उभयोः अनिश्चयाद् इदं जीवप्रकरणमपि न स्याद् इत्यतः आहुः **यो वै प्राणे**ति. ‘प्रज्ञा’शब्देन जीवः एवञ्च एकार्थप्रतिपादकत्वरूपं सामानाधिकरण्यं श्रुतौ प्रतिपादितम् इति हेतोः प्रकरणे जीवमुख्यप्राणयोः वाच्यत्वे सिद्धे जीवप्रकरणमेव इति भावः. ननु श्रुतौ विद्यमानानां ब्रह्मधर्माणां का गतिः ? इत्यतः आहुः **प्रज्ञाप्राणयोः** इति. **सहवृत्तित्वाद्** इति, शरीरावच्छेदेन सामानाधिकरण्याद् इति अर्थः. तथाच अनेन हेतुना प्राणो जीवएव नतु ब्रह्म भवितुम् अर्हति इतिश्रुतौ विद्यमानानां ब्रह्मधर्माणाम् उपासनार्थं जीवे उपचारकल्पनं युक्तम् इति जीवप्रकरणमेव इदं इति भावः. हेत्वन्तरम् आहुः **उत्क्रान्तिश्च** इति. **च** अप्यर्थे. **‘‘स यदा अस्मात् शरीराद् उत्क्रामति सहैव एतैः उत्क्रामति**’’(कौषी.उप.३।४) इतिश्रुतौ उत्क्रान्तिरपि उक्ता इति अर्थः. **विलक्षणस्य** इति सहस्थितिसहोत्क्रमणरूपः उभयविलक्षणस्य इति अर्थः. **ब्रह्मणः** इति प्रकरणम् इति शेषः. **नतु** इति पूर्वेण अन्वयः. सिद्धान्तम् आहुः **उपासात्रैविध्यात्.** उपासायाः

अयम् अर्थः. किम् अत्र चोद्यते ? जीवमुख्यप्राणलिङ्गाद् ब्रह्मधर्माणां जीवपरत्वं, त्रयाणामपि स्वतन्त्रत्वं वा, लिङ्गद्वयस्यापि ब्रह्मधर्मत्वम् उच्यताम् इति वा. *आद्यः पूर्वमेव परिहृतः. न हि ब्रह्मधर्मा अन्यपरत्वेन *परिणेतुं शक्या इति. द्वितीये दूषणम् आह, **उपासात्रैविध्यात्.** तथा सति उपासनं त्रिविधं स्यात्. तद् वाक्यभेदप्रसङ्गाद् न युक्तम्. तृतीयेतु उपपत्तिः उच्यते. जीवधर्मा ब्रह्मणि न विरुध्यन्ते, **आश्रितत्वात्.** जीवस्यापि ब्रह्माधारत्वात् तद्धर्मापि भगवदाश्रिताएव.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आशङ्क्यते इति अर्थः. **जीवपरत्वं** श्रुत्युक्तब्रह्मधर्माणां जीवपरत्वं तव अभिप्रेतम् इति एका कोटिः. **त्रयाणां** जीवप्राणब्रह्मणां, **स्वतन्त्रत्वं** स्वातन्त्र्येण उपास्यत्वं तव अभिप्रेतम् इति द्वितीया कोटिः. **लिङ्गद्वयस्य** जीवप्राण-लिङ्गयोः इति अर्थः. इयं तृतीया कोटिः. ***आद्यः पक्षः** ब्रह्मधर्माणां जीवपरत्वपक्षः. **पूर्वमेव परिहृतः ''न वक्तुः''** इति सूत्रव्याख्याने ब्रह्मधर्माणां बाहुल्याद् बहूनाम् अनुग्रहो न्याय्यः इतिरीत्या परिहृतः इति अर्थः. परिहारप्रकारम् आहुः **न हि** इत्यादि. **अन्यपरत्वेन** जीवपरत्वेन. ***परिमातुं शक्याः** लाक्षणिककार्यस्य अयुक्तत्वाद् इति अर्थः. **द्वितीये** त्रयाणामपि स्वतन्त्रत्वम् इति पक्षे. **त्रिविधं** जीवप्राणब्रह्मणां त्रयाणामपि प्रत्येकरूपेण उपासनं वाक्येन बोधनीयं स्याद् इति अर्थः. तथासति दोषम् आहुः **तद्वाक्यभेद** इत्यादि. **तृतीये** जीवप्राणधर्माणां ब्रह्मपरत्वपक्षे. **ब्रह्माधारत्वाद्** ब्रह्मवृत्तित्वात्. नच घटपटाद्यवयविनामेव अवयववृत्तित्वम्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उपासनस्य त्रैविध्यं तस्मात्. यथाश्रुतेन इदं समाधानं न घटते इत्यतः पूर्वपक्षस्य विकल्पत्रयं कृत्वा द्वितीयपक्षे इदं दूषणम् इति बोधयितुम् आहुः **अयम् अर्थः** इति. **किम्** इति. अत्र विषयवाक्ये, पक्षत्रयमध्ये किं चोद्यते विधीयते इति अर्थः. पक्षत्रयमेव आहुः **जीवमुख्ये**ति. अयं पञ्चम्यन्तो हेतुः स्थलत्रये बोध्यः. **त्रयाणाम्** इति. जीवप्राणब्रह्मणाम् इति अर्थः. **उच्यताम्** इति. इदञ्च पक्षत्रयबोधकम्, यत् त्वान्तवाक्यत्रयं तत्र अन्वेति. **परिहृतः** इति. **''न वक्तुरात्मोपदेशाद्''** इति सूत्रे ब्रह्मधर्मबाहुल्यहेतुना परिहृतः. **शक्या** इति. लक्षणां विना इति शेषः. बहुषु लक्षणा वक्तव्या. तदपेक्षया अल्पस्य ब्रह्मपरत्वं सुवचम् इति भावः. **वाक्यभेदः** इति **''मामेव विजानीहि''** इत्यत्र 'विजानीहि' इत्यस्य आवृत्तौ विधेयभेदविध्यावृत्तिः इति अर्थः. इदम् उपलक्षणम्. 'माम्'इत्यस्य अर्थत्रये सति अन्ययोगव्यवच्छेदार्थकः 'एव'कारोऽपि न सङ्गच्छेत. **उपपत्तिः** इति. स्वीकृतत्वाद् इति हेतुः पूरणीयः. **तद्धर्माः** जीवधर्माः. तथाच **''मयि**

‘इह’ इति उभयत्र सम्बन्धो ब्रह्मवादे. मुख्यप्राणेतु तद्योगात्. तेन योगः तद्योगः तस्मात्. प्राणधर्माः भगवति न विरुध्यन्ते. प्राणस्य भगवत्सम्बन्धात् तद्धर्माणामपि भगवत्सम्बन्धात्. अथवा वक्तृत्वादयो न जीवधर्माः किन्तु

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अनुभवसिद्धं नतु अवयवानाम् अवयविवृत्तित्वम् इति चेद्, न. संयोगेन कार्योत्पत्तिस्थले तथानुभवेऽपि विभागेन कार्योत्पत्तिस्थले अवयवानामेव अवयविवृत्तित्वं स्वीकार्यं ‘‘**मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव**’’ (भग.गीता.७।७) इत्यादिप्रमाणसिद्धत्वात्. **तद्धर्माः** जीवधर्माः. **भगवदाश्रिताएव** अवयवानाम् अवयव्यभेदाद् भगवदाश्रिताएव इति अर्थः. **इह इति उभयत्र** इत्यादि. तथाच **इह** ब्रह्मणि जीवस्य आश्रिततत्वात् तद्धर्माणां पञ्चवृत्तिशून्यस्य मुख्यप्राणस्यतु सुषुप्तौ प्राज्ञेन सङ्गात् तद्धर्माणां भानं स्फटिके जपाकुसुमधर्माणामिव. इत्थञ्च उभयत्र आश्रिततत्वे तद्योगे च ब्रह्मणः सम्बन्धः इति अर्थः. **ब्रह्मवादे** इति मायावादिनां मते जीवस्यैव ब्रह्मत्वेन ऐक्याद् आश्रयाश्रयिभावासम्भवात् तद्बोधकश्रुतिविरोधप्रदर्शनाय उक्तम्. **मुख्यप्राणे** वृत्तिपञ्चकशून्ये. **तद्योगात्** सुषुप्तौ ब्रह्मसंयोगात्. अस्मिन् पक्षे जीवप्राणधर्माणां साक्षाद्भगवद्धर्मत्वं न आयातीति पक्षान्तरम् आहुः **अथवा** इत्यादि. **वक्तृत्वादयः** इन्द्रकर्तृत्वेन प्रतीयमानाः वक्तृत्वादयः. **ब्रह्मधर्माः** साक्षाद्ब्रह्मधर्माः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सर्वम् इदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव’’ (भग.गीता.७।७) इति गीतावाक्याद् ब्रह्मणो जीवाधारत्वेन परम्परया जीवधर्माधारत्वमपि बोध्यम् इति भावः. **उभयत्र** इति. देहलीदीपन्यायेन इति शेषः. ‘देह’इति पदस्य आवृत्तौ इह जीवः आश्रिततत्वाद्, इह प्राणे तद्योगाद् इत्येवंरीत्या उभयत्र सम्बन्धः. अन्वयः इति अर्थः. **ब्रह्मवादे** इति. मायावादिमते अभेदस्यैव प्रतिपादितत्वाद् आश्रयाश्रयिभावो अवयवावयविभावो नास्ति इत्यतः उक्तं ब्रह्मवादः इति. जीवेतु उपपत्तिः उक्ता मुख्यप्राणे ताम् आहुः **मुख्ये**ति. **सम्बन्धाद्** इति. यथा स्वस्वामिभावसम्बन्धः, तथा नियम्य-नियामकत्वरूप-सम्बन्धोऽपि अस्ति इति तस्माद् इति अर्थः. ‘‘**न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन, इतरेणतु जीवति यस्मिन् एतौ उपाश्रितौ**’’ (कठोप.२।२।५) इत्यादिवचनम् अत्र प्रमाणं बोध्यम्. भगवत्सम्बन्धः. परम्परया इति शेषः. तथाच प्राणधर्माः भगवद्धर्माएव इति भावः. ननु परम्परया तद्धर्मवत्त्वं लक्षणया भविष्यति नतु शक्त्या इति अस्वरसाद् आहुः **अथवा** इति. **ब्रह्मधर्माः** इति. साक्षाद् इति शेषः.

ब्रह्मधर्माएव. जीवे आश्रितत्वाद् भासन्ते, ‘‘**परात्तु तच्छ्रुतेः**’’(ब्रह्मसू. २।३।४१) इतिन्यायात्. प्राणेऽपि तथा. स्वाप्ययसम्पत्त्योः जीवस्य ब्रह्माश्रितत्वम्. आध्यात्मिकाधिदैविकरूपत्वाद् न संयोगः. प्राणस्यतु संयोगएव. तस्मात् सर्वे धर्माः ब्रह्मणि युज्यन्ते. सहोत्क्रमस्तु क्रिया-ज्ञानशक्त्योः भगवदीययोः देहे सहैव स्थानं सहोत्क्रमणम् इति भगवदधीनत्वं सर्वस्यापि बोध्यते. ननु ‘‘**प्राणः तथानु**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तत्र प्रमाणम् आहुः **परात्तु** इत्यादि. **तथा** ब्रह्मधर्माएव इति अर्थः. **स्वाप्ययः** सुषुप्तिः, **सम्पत्तिः** मोक्षः तयोः इति अर्थः **आध्यात्मिके**त्यादि जीवान्वयी. **न संयोगः** ऐक्याद् न संयोगः. **संयोगएव** प्राणस्य भौतिकत्वात् सुषुप्तौ प्राज्ञेन संयोगएव इति अर्थः. **सर्वे धर्माः** इन्द्रप्रतर्दनोक्ताः सर्वेधर्माः.

ननु अन्यधर्माणां भगवति सत्त्वसम्भवेऽपि जीवस्य ज्ञानशक्तिः प्राणस्य क्रियाशक्तिरूपस्य भगवत्त्वे ‘प्राण’पदवाच्यत्वस्य च ब्रह्मणि उरीकारे ‘‘**यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वै प्रज्ञा स प्राणः**’’(कौषी.उप.३।३) इति अभेदनिर्देशानन्तरमपि ‘‘**सहैव अस्मिन् शरीरे वसतः सहोत्क्रामत**’’ (तत्रैव ३।३) इति द्विवचनम् अनुपपन्नं ब्रह्मणो व्यापकत्वाद् इत्यतः आहुः **सहोत्क्रमस्तु** इति. **भगवदधीनत्वम्** इत्यादि. सर्वस्यापि प्रपञ्चव्यवहारस्य जीवप्राणात्मकभगवदधीनत्वबोधनायैव तथोक्तिः नतु तयोः भेदबोधनार्थः इति भावः. प्रज्ञा-प्राणयोः धर्मिरूपत्वे समाधानाय शङ्काम् आहुः **ननु** इत्यादि. **धर्मयोः** जीवप्राणयोः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

परात्तु इति. तथा जीववद् ब्रह्मधर्माएव इति अर्थः. ननु प्राणस्य जीवतुल्यत्वे आश्रितत्वहेतुनैव चारितार्थ्ये तद्योगाद् इति हेत्वन्तरं व्यर्थं स्याद् इत्यतः आहुः **स्वाप्यया** इति. सुषुप्तिकाले मोक्षे च इति अर्थः. जीव-ब्रह्मणोः संयोगाभावे हेतुम् आहुः **आध्यात्मिके**ति. तादात्म्ये संयोगो नास्ति इति फलितम्. **सर्वे धर्माः**. कौषीतकिब्राह्मणोक्ताः सर्वे धर्माः. ननु ‘‘**सहैव अस्मिन् शरीरे वसतः सहैव उत्क्रामत**’’ इति ब्रह्मणोक्तं वाक्यं न सङ्गच्छते. सहोत्क्रमस्य एकत्वविघटकत्वाद् इत्यतः आहुः **सहोत्क्रमस्तु** इति. हस्तोत्क्षेपणस्य शरीरधर्मत्वेऽपि शरीरापेक्षया यथा न भिन्नत्वं तथा सहोत्क्रमस्यापि भगवदभिन्नत्वं शक्तिशक्तिमतोः अभेदाद् इति अर्थः. **क्रियाज्ञानशक्त्योः** इति. प्राणजीवयोः इति अर्थः. **सहोत्क्रमणम्** इति. अनेन सर्वस्यापि व्यवहारस्य जीवप्राणाधीनत्वेन भगवदधीनत्वं सूचितम्.

अत्र प्राणस्य धर्मत्वे शङ्कते **ननु** इति. **कथम्** इति. धर्म-धर्मिभावो न

ुगमाद्''(ब्रह्मसू.१।१।२७) इति 'प्राण'शब्देन ब्रह्मैव प्रतिपादितं तत् कथं धर्मयोः उत्क्रमणम्? इति चेद्, अत्र धर्मधर्मिणोः एकत्वपृथक्त्वनिर्देशयोः विद्यमानत्वात्. ''**प्राणो वा अहमस्मिन् प्रज्ञात्मा**''(कौषी.ब्राह्म.३।२) इति. अत्र क्रियाज्ञानशक्तिमान् निर्दिष्टः. तदनु एकैकस्य धर्मप्रशंसा, ''**यो वै प्राणः सा प्रज्ञा, या प्रज्ञा स प्राणः**''(तत्रैव३।४) इति उपसंहारान्तम्. पुनः तयोरेव उत्क्रमणप्रवेशाभ्यां ''**सह ह्येवास्मिन् शरीरे वसतः सहोत्क्रामतः**''(तत्रैव ३।४) इति उपक्रम्य सुषुप्ति-मूर्च्छा-मरणेषु प्राणाधीनत्वं सर्वेषाम् इन्द्रियाणाम् उक्त्वा आसन्य-व्यावृत्यर्थं प्रज्ञया ऐक्यं प्रतिपाद्य उपसंहरति. पुनः ज्ञानशक्तेः उत्कर्षं वक्तुम्, ''**अथ खलु यथा प्रज्ञायाम्**''(तत्रैव ३।३) इत्यारभ्य ''**न हि प्रज्ञापेतोऽर्थः कश्चन सिद्ध्येद्**''(तत्रैव३।३) इत्यन्तेन ज्ञानशक्त्युत्कर्षं प्रतिपाद्य धर्ममात्रत्व-निराकरणाय ज्ञानशक्तिमन्तं भगवन्तं निर्दिशति. ''**न हि प्रज्ञातव्यम्**'' (तत्रैव ३।७) इत्यारभ्य ''**मन्तारं विद्यात्**''(तत्रैव३।८) इत्यन्तेन. तदनु ज्ञानक्रिया-

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उत्क्रमणं धर्मोत्क्रमणस्य धर्म्युत्क्रमणाधीनत्वाद् धर्मिणश्च व्यापकत्वाद् इति भावः. **अत्र** एतद्वाक्ये. **एकत्वपृथक्त्वे**त्यादि. तथाच ''**यो वै प्राणः सा प्रज्ञा**'' इत्यनेन अभेदम् उक्त्वापि ''**सहैव अस्मिन् शरीरे वर्ततः सह उत्क्रमत**'' इत्यनेन भेदस्यापि निर्देशात् '**प्राणो वा अहम्**' इत्यनेनापि अभेदनिर्देशाद् अभेदेऽपि हस्तोत्क्षेपणापक्षेपणवद् उत्क्रमणं न विरुद्धम् इति फलितो अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

वक्तव्यः इति 'कथम्' इत्यनेन सूचितम्. समाधानम् आहुः **अत्र धर्मे**ति. अत्र श्रुतौ. उत्क्रमार्थं पृथक्त्वनिर्देशः. कथं विषयवाक्ये विद्यमानत्वम् अतः आहुः **प्राणो वा** इति. अत्र वाक्ये. **निर्दिष्टः** इत्यनेन पृथक्त्वं सूचितम्. **प्रशंसा** इति. **तद्धैक आहुः** इत्यारभ्य **निःश्रेयसम्** इत्यन्तेन. **जीवति वागपेतः** इत्यारभ्य **उत्थापय**ति इत्यन्तेन च प्रत्येकं क्रियाज्ञानशक्त्योः प्रशंसा इति अर्थः. उभयप्रशंसाबोधकं वाक्यम् आहुः **यो वै** इति. ''**यो वै प्राणः**'' इत्यारभ्य ''**उपसंहृता**'' इत्येतदन्ता उभयप्रशंसा इति अर्थः. **पुनः तयोरेव** इति. प्रशंसा उपसंहृता इति शेषः. इदानीं केवलज्ञानशक्तेः उत्कर्षप्रतिपादनम् अनुवदन्ति **पुनः** इति. **सिध्येद्** इत्यन्तेन. **धर्ममात्रत्वे**ति. ज्ञानं केवलं नैय्यायिकवद् भगवद्धर्मो न, किन्तु भगवानेव इति अर्थः. इदानीं भगवतः जगत्स्वरूपत्वं प्रतिपाद्य ततोऽपि अधिकत्वं प्रतिपादयन्ति **तदनु** इति.

शक्त्योः विषयभूतभूतमात्रारूपजगतो भगवदभेदं प्रतिपादयन् **‘‘स एष प्रज्ञात्मानन्दो अजरो अमृतः’’**(तत्रैव ३।८) इति उपसंहरति ब्रह्मधर्मैः. अतः क्रियाज्ञानविषयरूपो भगवानेव इति प्रतिपाद्य न तावन्मात्रं ततोऽपि अधिकः इति एकोपासनैव विहिता. तस्माद् जडजीवरूपत्वात् सर्वात्मकं ब्रह्मैव इति महावाक्यार्थः सिद्धः।।३०।।

इति प्रथमाध्याये प्रथमपादे दशमम् अनुगमाधिकरणम्।।१०।।

इतिश्रीवेदव्यासमतवर्ति-श्रीवल्लभाचार्यविरचिते ब्रह्मसूत्राणुभाष्ये
प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उपसंहरन्ति **उपसंहरति ब्रह्मधर्मैः** उपसंहारविषयत्वं क्रिया–ज्ञानयोः. ननु जीवप्राप्यतद्विषयाणाम् अवयवब्रह्मत्वेन उपासनानियमे इतरोपासनाविषयाणां ब्रह्मत्वं तेषाम् उपासनं बाधितं स्याद् अतः आहुः **न तावन्मात्रम्** इति. ननु तर्हि सर्वाणि उपासनानि अत्र कुतो न उक्तानि इत्यतः आहुः **एकोपासना** इत्यादि. तथाच अत्र एकोपासनोक्तावपि अन्यत्र अन्यानि उपासनानि बोध्यानि इति अर्थः।।३०।।

श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणुभाष्यपदप्रदीपे प्रथमाध्यायस्य प्रथमः चरणः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

महावाक्यार्थः इति. कौषीतकिब्राह्मणान्तर्गतपञ्चमाध्यायार्थः सिद्धः इति अर्थः. अत्र इदम् अवधेयम् ब्रह्मविचारः कर्तव्यः इति उक्तम्, विचारश्च ऊहापोहात्मकः तर्कः, सर्वसूत्रेषु पञ्चम्यन्तहेतुप्रयोगाद् तत्तद्धेतुना तर्कएव कर्तव्यः इति सिद्धम्. ऊहापोहात्मकतर्कस्वरूपन्तु द्वितीयाध्याये प्रथमे पादे ‘‘**तर्काप्रतिष्ठानाद्**’’ (ब्रह्मसू. २।११) इति सूत्रे. ‘‘**तर्को नाम स्वात्मैक्षिता** (स्वोत्प्रेक्षिता) **युक्तिः**’’ (ब्रह्मसू.भाष्य २। १।११) इति श्रीमदाचार्यचरणाः वक्ष्यन्ति. ‘‘**तर्को नाम अर्थस्वभावविषयेण सामान्य–विषयेण वा निरूपणेन प्रामाण्याद् व्यवस्थापकं तद् इतिकर्तव्यतारूपम् ऊहापरपर्यायज्ञानम्**’’(ब्रह्मसू.भाष्यप्र.२।१।४) इति श्रीगोस्वामिपुरुषोत्तमैः प्रकाशे द्वितीयाध्याये प्रथमे पादे ‘‘**न विलक्षणत्वाद्**’’ (ब्रह्मसू.२।१।४) इति सूत्रे तर्कस्वरूपम् उक्तम्. तर्कश्च ‘‘पर्वतो वह्निमान् न स्याद् तर्हि धूमवान् न स्याद्’’ इतिवद्, प्राणादिवाक्यं ब्रह्मपरं न स्यात् तथा निगमो न स्याद् इति ऊहापोहात्मकः सर्वत्र अनुसन्धेयः इति दिक्।।३०।।

श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणुभाष्यविवरणे प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः.

प्रथमो अध्यायः द्वितीयः पादः

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्।।१।। (१।२।१।१)

समन्वये प्रथमे अध्याये सर्वेषां वेदान्तानां ब्रह्मणि समन्वयो वक्तव्यः. तत्र उद्गीथाद्युपासनावाक्यानां मुख्यवाक्येषु फलोपकार्यङ्गत्वम्. ब्रह्मवाक्यानां

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अथ द्वितीयपादं व्याचिख्यासवः पादानां परस्परम् एककार्यत्वरूपां सङ्गतिम् अवसरसङ्गतिं च क्रमनियामिकां प्रतिपादयितुं व्याख्येयाध्यायार्थकथनपूर्वकं पूर्वपादसिद्धः सर्वोऽपि अर्थः संक्षेपेण वक्तव्यो अन्यथा मन्दमतीनां प्रथमपादार्थानवधारणेन द्वितीयपादस्य वक्ष्यमाणे अर्थे सन्देहः स्याद् अतः तम् आहुः **समन्वये**त्यारभ्य **सन्देहो निवारितः** इत्यन्तेन. **समन्वये** सर्ववेदान्तवाक्यानां समन्वयप्रतिपादकत्वेन समन्वयाख्यया प्रसिद्धे प्रथमे अध्याये इति अर्थः. **ब्रह्मणि** परब्रह्मणि. **समन्वयः** अबाधितार्थतया ऋजुरीत्या शक्यार्थान्वयः**,** **तत्र** वक्तव्ये समन्वये**,** **उद्गीथे**त्यादि. तथाच अन्तस्तद्धर्माधिकरणाद्यधिकरणेषु यानि उद्गीथोपासना-बोधकानि वाक्यानि तेषाम्. एवम् अन्यसर्वोपासनाबोधकवाक्यानां च तत्तन्नानारूपैः नानाफलदातृत्वस्य भगवति बोधकतया माहात्म्यज्ञानसम्पादनेन अभेदेन च आत्मनि ब्रह्मोपासनाबोधनेन ब्रह्मणि आत्मत्वेन ज्ञाने जाते सति माहात्म्यज्ञानपूर्वकपरप्रेमलक्षणभक्तौ

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अथ समन्वयाध्यायान्तर्गते अर्थसन्देहनिवारणे द्वितीयपादे चतुर्भिः सूत्रैः प्रसिद्धोपदेशाधिकरणम् आरचयन्ति ‘‘**सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्**’’. पूर्वपादस्य शब्दसन्देहनिवारकत्वं वक्तुं भूमिकाम् आरचयन्ति **समन्वये**त्यारभ्य **शब्दसन्देहो निवारितः** इत्यन्तेन. **समन्वये** समन्वयनामके. **सर्वेषाम्** इति. नानाशाखागतानाम् इति अर्थः. **वेदान्तानां** उपनिषदां **समन्वयः** वाच्यवृत्त्या तात्पर्यज्ञानादिसहकार्येण अपरब्रह्मरूपैकार्थविषयकशाब्दबोधजनकत्वरूपो **वक्तव्यः** इति. परप्राप्तिसाधनार्थम् इति शेषः. ननु तत्तदुपनिषत्सु उपासनाबोधकानि वाक्यान्यपि सन्ति तेषां क्वोपयोगः? इत्यतः आहुः **तत्र** इति. तेषु उपनिषत्सु मध्ये. **उद्गीथ** इति. छान्दोग्यारम्भएव उक्तानाम् ‘‘**उद्गीथम् उपासीत**’’ इत्यादि वाक्यानाम् ‘उद्गीथ’शब्देन प्रणवः ‘‘**अथ खलु उद्गीथः स प्रणवः यः प्रणवः स उद्गीथः**’’(छान्दो.उप.१।५।१) इत्यादि छान्दोग्ये अभिहितम्. **मुख्यवाक्येषु** उपासनायां फलसम्बन्धबोधकेषु तथा च आदित्यादिषु प्रणवेन ब्रह्मोपासना

पुनः निःसन्दिग्धानां समन्वयः स्वतःसिद्धः. सन्दिग्धानि द्विविधानि शब्दतो अर्थतश्च. तदर्थञ्च एतद् विचारितम्. ब्रह्मणि व्यवहारो अस्ति कश्चित् न वा? इति. तत्र प्रथमसूत्रएव व्यवहारः स्थापितः. ‘‘**यतो वाचो निवर्तन्ते**’’ (तैत्ति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पर्यवसानाय भक्तिरूपसाधनस्य परमफलबोधकानि प्रधानवाक्यानि ‘‘**भक्तिरस्य भजनं**’’ (भक्तिसू.१।३), ‘‘**भजति रसति**’’(गोपा.ताप.उप.१।१) इत्यादीनि तैः एकवाक्यतया फलोपकार्यङ्गत्वम् इति अर्थः. एतेन नानेतरोपासनाबोधकवाक्यानां बाहुल्याद् दुर्ज्ञेयत्वेन अन्योपास्यबोधनेन च न ब्रह्मणि समन्वयः इति शङ्का अपास्ता वेदितव्याः. **निःसन्दिग्धानां** ‘‘**नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावम्**’’ (   ) इत्यादिना. **शब्दतः** प्राणाकाशादिशब्दतः. शब्दकृतसन्देहस्य अर्थसन्देहे उपजीव्यत्वाद् आदौ ‘शब्दतः’ इति उपन्यस्तम्. **अर्थतः** गायत्र्यादिशब्दानां वर्णसमुदायो अर्थो ब्रह्म न वा इति अर्थतः सन्देहः **तदर्थम्** उक्तसन्देहानां निरासार्थम्. **विचारितं** प्रथमपादे विचारितम्. **व्यवहारः स्थापितः** व्यवहारः शब्दज्ञानयोः विषयतारूपः सः प्रथमसूत्रएव व्यवस्थापितः व्यवहाराविषये जिज्ञासाप्रतिज्ञाबाधापत्तेः. ननु ब्रह्मणि वाग्ज्ञानगोचरत्वाङ्गीकारे ‘‘**यतो**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उद्गीथोपासना तद्धर्मोपदेशाधिकरणे विषयवाक्योक्ता. ‘आदि’शब्देन सर्वापि उपासना गृह्यते. तत्तदुपासनं फलबोधकवाक्यैः लोकोत्तरफलदातृत्वं भगवतो ज्ञायते तेन च माहात्म्यज्ञानम् उत्पद्यते. ‘‘**आत्मेति उपासीत**’’(बृहदा.उप.१।४।७) इत्यादिवाक्योक्त-ब्रह्माभेदोपासनया स्वस्मिन् यथा स्वाभाविकी प्रीतिः तथा भगवत्यपि स्वाभाविकी प्रीतिः उत्पद्यते. इयमेव माहात्म्यज्ञानपूर्वकं स्वाभाविकी प्रीतिः ‘भक्ति’पदवाच्या. एवं च एतादृशी भक्तिरेव परब्रह्मप्राप्तिरूपफलोपकारिणी इति उच्यते. अनया रीत्या उपासनावाक्यानां फलोपकार्यङ्गत्वम् इति भावः. एवं रीत्या परम्परया उपासनावाक्यानां ब्रह्मणि समन्वयं साधयित्वा साक्षात् केषाञ्चिद् वाक्यानां समन्वयं साधयन्ति **सन्दिग्धान्** इति. ईक्षत्यधिकरणारम्भे यानि चतुर्विधानि सन्दिग्धानि वाक्यानि उक्तानि तान्येव ‘प्राणाकाशा’दिशब्दतो गायत्र्यादीनाम् अर्थतो द्विविधान् इति अर्थः. एवं रीत्या सिद्धस्य साधनं नास्ति इत्यतो निःसन्दिग्धब्रह्मवाक्यभिन्नानां सर्वेषां वेदान्त-वाक्यानां ब्रह्मणि समन्वयः प्रथमाध्याये साधितः इति भावः.

इदानीं प्रथमपादार्थं वक्तुं तदीयाधिकरणानां च प्रयोजनं वक्तुं प्रथमाधिकरणार्थम् आहुः **तदर्थे**त्यारभ्य **तृप्तिवद्** इत्यन्तेन. **तदर्थं** समन्वयसिद्धार्थम्. **विचारितम्** इक्षत्यधिकरणे इत्यादि. **प्रथमसूत्रे** इति. स्थापनस्य प्रतिज्ञारूपत्वात् प्रथम

उप.२।४) इत्यादीनां विशेषेण इदमित्थतया निरूपणनिषेधनपरत्वम्, एवमेव कार्यसिद्धेः. अधीतानां ब्रह्मवाक्यानां चतुर्लक्षण्या ब्रह्मपरत्वे सिद्धे श्रवणं सिद्ध्यति. श्रुतस्य कालान्तरेऽपि असम्भावना-विपरितभावना-निवृत्त्यर्थं पूर्वस्थितानाम् अङ्गानाम् अनपेक्षितानाम् उद्वापेन अन्येषाम् अपेक्षितानाम्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

वाचः'' (तैत्ति.उप.२।४।१) इति श्रुतिविरोधः इत्यतः आहुः **यतः** इत्यादि. **इत्यादीनाम्** इत्यादिपदेन ''**अगृह्यो नहि गृह्यते**'' (बृहदा. उप.३।९।२६) इत्यादीनां सङ्ग्रहः. **इदमित्थतया** इत्यादि. तथाच परिच्छिन्नतया वाङ्मनोभ्यां निर्णयः श्रुत्या निषिध्यते इति अर्थः. एवम् अर्थकरणे प्रमाणन्तु ''**आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन**'' (तैत्ति.उप.२।९) इति उक्तश्रुतिः उत्तरार्धमेव इति ध्येयम्. उक्तार्थकरणावश्यताम् आहुः **एवमेव** ब्रह्मणो वाग्ज्ञानगोचरत्वाङ्गीकारएव. **कार्यसिद्धेः** ''**तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि**''(बृहदा.उप.३।९।२६) इति वाग्गोचरब्रह्मज्ञानेन मोक्षरूपकार्यसिद्धेः इति अर्थः. **अधीतानां** पठितानाम्. **ब्रह्मवाक्यानां** ब्रह्मप्रतिपादकोपनिषद्वाक्यानाम्. **चतुर्लक्षण्या** चत्वारि लक्षणानि समन्वयाविरोधसाधनफलात्मकाः विषयाः यस्यां सा चतुर्लक्षणी अध्यायचतुष्टयात्मिका व्यासमीमांसा तया. **ब्रह्मपरत्वे** परब्रह्मपरत्वे. **श्रवणं** शक्तितात्पर्यनिर्धाररूपश्रवणम्. मननार्थम् उपपत्तिम् आहुः **श्रुतस्य** इत्यादिना. **असम्भावना** कर्मातिरिक्तं ब्रह्म नास्ति इत्यादिरूपा. **विपरीतभावना** जीवमात्रं ब्रह्म इति विपरीतभावना. पूर्वस्थितानां निर्धारकवाक्यपूर्वपठितानाम्. **अङ्गानां** धर्माणाम्. **अनपेक्षितानां** प्रकृतार्थान्वयायोग्यानाम्. **उद्वापेन** त्यागेन. **अन्येषाम्** इत्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति उक्तम्. तेन विचारस्य चतुर्थे सत्त्वेऽपि न क्षतिः. ननु अव्यवहार्यस्य कथं व्यवहार्यत्वम्? अत आहुः **यतः** इति. **इत्यादीनां** श्रुतीनाम् इति अर्थः. **इदमित्थतया** इति. घटादिवद् इति शेषः. ब्रह्मणः शब्दज्ञानजन्यबोधविषयत्वम् अपरोक्षानुभवविषयत्वं च तत्र अनुभवैकवेद्यं वस्तु वाण्या वक्तुं न शक्यते इति तत्परा इयं ''यतो वा'' इति श्रुतिः. शाब्दज्ञानं तु शब्दव्यापारम् अन्तरा न सम्भवतीति श्रवणार्थं तद्विषयत्वं वक्तव्यम् इति आहुः **एवमेवे**त्यादि **तृप्तिवद्** इत्यन्तेन. एवमेवाङ्गीकार एव कार्यसिद्धेः श्रवणादिद्वारा ''**ब्रह्मविद् आप्नोति परम्**''(तैत्ति.उप.२।१) इति श्रुतिबोधितपरप्राप्तिरूपकार्यसिद्धेः. चतुर्लक्षण्या समन्वयाविरोधसाधनफलरूपमीमांसया मननोपपत्तिम् आहुः **श्रुतस्ये**ति. **पूर्वस्थितानां** ब्रह्मवाक्ये स्थितानाम्. **उद्वापेन** त्यागेन. **आवापेन** संग्रहेण.

आवापेन तस्यैव अर्थस्य निर्धारणे मननं भवति.

ततोऽपि एवं ध्यानादिसमाध्यन्तरूपनिदिध्यासनरूपं मनसि सर्वतोनिवृत्तव्यापारे स्वयमुपलब्धनिजसुखानुभवरूपं ब्रह्म. इदमेव ब्रह्मज्ञानम् इति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

प्रकृतान्वययोग्यार्थानाम् **आवापेन** ग्रहणेन इति अर्थः. **तस्यैव** प्रकृतापेक्षितस्यैव. **निर्धारणे** इति सतिसप्तमी. इत्थञ्च तादृशनिर्धारणमेव मननम् इति अर्थः.

‘‘**ब्रह्मसंस्थो अमृतत्वम् एति**’’(छान्दो.उप.२।२३।१) इतिवाक्याद् निदिध्यासनम् आहुः **ततः** इत्यादिना. **ततः** मननानन्तरम्. **एवं** मनननिर्णीतधर्मप्रकारेण. **इदमेव** आनन्दात्मकोक्तब्रह्मोपलब्धिरूपमेव. **ब्रह्मज्ञानं** सुखात्मकानुभवरूपं ज्ञानम् इति अर्थः. अतः अनुभवान्तरस्य आनन्दरूपत्वाभावतः. **तादृशस्य** आनन्दात्मकानुभवविषयब्रह्मणः. **अनुभवैकवेद्यत्वाद्** उक्तानुभवैकवेद्यत्वात्. **युक्तम्** इत्यादि. तथाच लौकिकसाधनज्ञानविषयत्वस्य सत्त्वेऽपि यथोक्तानुभवविषयत्वं ब्रह्मणि तथा इतरग्रहविषयत्वं नास्ति इति ‘‘**यतो वाचो**’’(तैत्ति.उप.२।४।१) इत्यस्य अर्थः. लौकिकब्रह्म-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तस्यैव इति. ब्रह्मणः. **निर्धारणे** उपनियततात्पर्यविषयीभूतो ब्रह्मातिरिक्तो अन्यो अर्थो नास्तीति निश्चिते सति. **मननं** युक्तिभिः ब्रह्मणएव अनुचिन्तनं भवति.

निदिध्यासनम् आहुः **ततोऽपि एवम्** इति. एवं मननस्य दार्ढ्ये जाते प्रारब्धवशात् मननेऽपि विक्षेपो जायते इति दृढता मनने अपेक्षिता इति भावः. **ध्यानादि** इति. ध्यानादिसमाध्यन्तरूपं यद् निदिध्यासनं तद्रूपं यद् मनः तस्मिन् मनसि सर्वतो बाह्यविषयेभ्यो निवृत्तव्यापारे सति इति अर्थः. मननदार्ढ्यानन्तरं ध्यानदार्ढ्यं तदनन्तरं समाधिः. इयमेव एकतानता इति उच्यते. अस्याम् अवस्थायां मनसः सङ्कल्पविकल्पात्मकव्यापाराणां बाह्ये विषये व्यापाराणां वा निवृत्त्यनन्तरं शुद्धिः सम्पद्यते इति निदिध्यासनदार्ढ्यं भवति इति भावः. इदानीं ‘‘**आत्मा वा अरे दृष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः**’’(बृहदा.उप.२।४।५) इति श्रुत्या श्रवणादिजन्यत्वं यादृशं दर्शनं प्रतिपादितं तादृशं दर्शनम् आहुः **स्वयम्** इति. स्वयम् इत्यनेन सूर्ये मेघमण्डलमिव तिरोधाननिवृत्तिरपेक्षिता इति ध्वन्यते. इत्यनेन अतिनैकट्यं व्यज्यते. **अनुभवरूपम्** इति. साक्षात्काररूपम् इति अर्थः. **ब्रह्मे**ति. स्वयम् इत्यनेन सत्, सुखम् इत्यनेन आनन्दः, ‘अनुभव’पदेन चित्. एवञ्च सच्चिदानन्दरूपं ब्रह्म इति अर्थः. ननु स्वरूपम् उक्तं ब्रह्मज्ञानं तत् कीदृशम् अत आहुः **इदम्** इति. साक्षात्कारस्य ज्ञानरूपत्वाद् इति

अतः तादृशस्य अनुभवैकवेद्यत्वाद्युक्तम् अविषयत्वं, पाकभोजनतृप्तिवत्.

अतः श्रवणाङ्गमीमांसायां माहात्म्यज्ञानफलायां भगवद्वाक्यानाम् अन्यपरत्वे अन्यवाक्यानां च भगवत्परत्वे दिव्यधर्मादिव्यधर्मव्यत्यासेन वैपरीत्यं फलम् आपद्येत. तदर्थं दिव्यधर्मनिर्द्धारो द्वितीयाधिकरणे विचारितः. वेदाएव

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ज्ञानापेक्षया सुखात्मकब्रह्मज्ञानस्य वैलक्षण्ये दृष्टान्तम् आहुः **पाके**त्यादिना. तथाच आमान्नभक्षणेन तृप्त्यनुभवापेक्षया पक्वान्नभोजनतृप्त्यनुभवस्य वैलक्षण्यवत् प्रकृते अवसेयम् इति अर्थः.

एवं जिज्ञासाधिकरणे अनुपपत्तिं परिहृत्य जन्माद्यधिकरणे तां परिहर्तुम् आहुः **अतः** इत्यादि. यतः ‘‘**श्रोतव्यो मन्तव्यः**’’(बृहदा.उप.२।४।५) इति वाक्याद् ब्रह्मविद्यायाः मुख्यम् अङ्गं श्रवणं तच्च ‘‘**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**’’(ब्रह्मसू.१।१।१) इति उपक्रमाधीनम्. अतो मीमांसाया अपि श्रवणाङ्गत्वम्. इत्थञ्च मीमांसाङ्गिनः श्रवणस्य स्वविषयीभूतब्रह्ममाहात्म्यज्ञानम् अवान्तरं फलम् इति मीमांसाया अपि तदेव अवान्तरं फलम् इति **माहात्म्यज्ञानफलायाम्** इति उक्तम्. **भगवद्वाक्यानां** परब्रह्मप्रतिपादकवाक्यानाम्. **अन्यपरत्वे** सोपाधिकब्रह्मपरत्वे. **अन्यवाक्यानां** परब्रह्मभिन्नप्रतिपादकवाक्यानाम्. **दिव्ये**त्यादि. **दिव्यधर्माः** जगत्कर्तृत्वशास्त्रैकसमधिगम्यत्वापरिच्छिन्नत्वसर्वज्ञत्वादयः, अदिव्याः तद्विपरीताः. तेषां व्यत्यासः अब्रह्मणि ब्रह्मधर्मज्ञानं ब्रह्मणि च अदिव्यधर्मज्ञानं तेन, **वैपरीत्यं फलम्** ‘‘**अन्यथा सन्तमात्मानम्**’’ (महाभा.शान्ति. प.२२१।२७) इत्याद्युक्तम् फलम् इति अर्थः. **तदर्थं** फलवैपरीत्यनिराकरणार्थम्. **दिव्यधर्मे**त्यादि. जगत्कारणत्वशास्त्रैकसमधिगम्यत्वरूपदिव्यधर्मनिर्धारः इति अर्थः. **द्वितीयाधिकरणे** ‘‘**जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वाद्**’’(ब्रह्मसू.१।१।२) इति अधिकरणे इति अर्थः. ननु द्वितीयाधिकरणे दिव्यधर्माः कुतो अवगता? अतः आहुः **वेदाएव** इत्यादि. तथाच ‘‘**तस्माद् वा एतस्माद् आत्मनः**’’ (तैत्ति.उप.२।२), ‘‘**यतो वा इमानि**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

स्वानुभवो वक्तुं न शक्यत इत्यत्र दृष्टान्तम् आहुः **पाके**ति.

एतावता श्रुतिजन्यशाब्दबोधविषयत्वाद् ब्रह्मणा विचारकर्तव्यतारूपं प्रथमाधिकरणार्थम् उक्त्वा द्वितीयाधिकारणार्थम् आहुः **अत**ः इत्यारभ्य **कर्मेति** इत्यन्तेन. अतो ब्रह्मणः शाब्दबोधविषयत्वरूपव्यवहार्यत्वाद् वैपरीत्यम् इति. अपरं संसाररूपं फलम् इति अर्थः. दिव्यधर्मजगत्कारणत्वरूपः. अग्रिमाधिकरणं जगत्कारणद्वयार्थम्

वाचकाः, अलौकिकमेव कर्म इति. ततः पूर्णालौकिकत्वाय विधिनिषेधमुखेन अधिकरणद्वयम्, समन्वयेक्षतिरूपम्. तदनु प्रथमे पादे शाब्दसन्देहो निवारितो निश्चितार्थे. तत्रापि प्रथमं प्रत्ययसन्देहो निवारितो द्वयेन. प्रकृतिसम्बन्धोऽपि अधिकरणत्रयेण. पुनः अन्तिमम् अधिकरणं संश्लेषनिराकरणाय. एवं प्रथमे पादे शब्दसन्देहो निवारितः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

भूतानि जायन्ते’’(तत्रैव३।१) इत्यादयो वेदाएव जगज्जन्मादिहेतुत्वरूपदिव्यधर्मबोधकाः यतः ततः इति अर्थः. एवं द्वितीयाधिकरणे उपपत्तिम् उक्त्वा तृतीयचतुर्थाधिकरणयोः ताम् आहुः **पूर्णालौकिके**त्यादिना. तथाच अभिन्ननिमित्तोपादानत्वस्य ईक्षतिमात्रेण अनेकब्रह्माण्डात्मकप्रपञ्चनिर्माणस्य च परब्रह्मातिरिक्ते कुत्रापि अभावाद् एतद्धर्मद्वयवत्त्वं पूर्णालौकिकत्वं बोध्यम्. **विधिनिषेधे**त्यादि. समन्वयाधिकरणम् अन्वयेन ईक्षत्यधिकरणं च व्यतिरेकेण पूर्णालौकिकत्वबोधके इति अर्थः. **तदनु** पूर्वोक्ताधिकरणचतुष्टयोत्तरम्. **शाब्दसन्देहः** ‘आनन्दमय’–‘हिरण्मय’शब्दगतमयट्प्रत्ययप्रयुक्तो यः शाब्दबोधसन्देहः सः आनन्दमयाधिकरणान्तस्तद्धर्माधिकरणाभ्यां निवारितः इति अर्थः. **निश्चितार्थे** पूर्वाधिकरणचतुष्टयेन निश्चितार्थे ब्रह्मणि इति अर्थः. **तत्रापि** ‘आनन्दमय’–‘हिरण्मय’शब्दद्वयेऽपि. **प्रथमं** प्रकृत्यर्थनिर्णयाद् प्रथमतः. **प्रत्ययसन्देहः** मयट्प्रत्यये सन्देहः. द्वयेन आनन्दमयाद्यधिकरणद्वयेन. **प्रकृती**त्यादि. आकाश–प्राण–तेजसां श्रौतशब्दार्थानां प्राकृतत्वनिराकरणेन ब्रह्मत्वव्यवस्थापनेन च अब्रह्मत्वसन्देहो निवारितः इति अर्थः. **संश्लेषनिराकरणाय** ब्रह्मजीवप्राणलिङ्गानां ब्रह्मणि उपपत्तिदर्शनाय इति अर्थः. पूर्वपादसिद्धाधिकरणार्थान् अनूद्य उपसंहरन्ति **एवम्** इत्यादि. **शब्दसन्देहः** परब्रह्मप्रतिपादकशब्दानां ब्रह्मेतरप्रतिपादकत्वसन्देहः. **निवारितः** सूत्रकारेण निवारितः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आहुः **तत**ः इति. रूपान्तं पूर्णलौकिकत्वाय इति ब्रह्मणः सर्वत्र समन्वयेन पूर्णत्वम्, ईक्षित्या जगन्निर्माणकर्तृत्वेन अलौकिकत्वं बोध्यम्. प्रथमे पादे यद् वक्तव्यं तद् आहुः **तदन्वि**ति. **निश्चितार्थे**ति. पूर्वाधिकरणेन निश्चयविषयीभूते ब्रह्मरूपार्थ इति अर्थः. **प्रत्यय** इति. मयट्प्रत्ययसन्देह इति अर्थः. **द्वयेन** आनन्दमयाद्यधिकरणद्वयेन. **प्रकृतिसम्बन्ध** इति. प्रकृतौ सम्बन्धो यस्य सः. सन्देहः इति पाठान्तरं वा. **संश्लेषे**ति. प्राणजीवब्रह्मधर्माणाम् एकत्र कथनं **संश्लेषः**. तन्निराकरणे ब्रह्मधर्मत्वेन उपपादनम्. इदानीं ‘‘**यतो वाचः**’’(तैत्ति.उप.२।४) इति श्रुतिसङ्कोचं सम्मुखीकृत्य सर्वथा वागगोचर–

*ये पुनः क्वचित् सगुणनिर्गुणभेदं प्रतिपादयन्ति, ते स्वयमेव स्वस्य ब्रह्मजिज्ञासानधिकारं बोधयन्ति, ब्रह्मवादे साङ्ख्यानामिव गुणानाम् अनङ्गीकारात्. भौतिकगुणानाम् असम्बन्धार्थमेव हि अध्यायारम्भः. अन्यथा सर्वस्यापि तत्कारणत्वेन तत्सम्बन्धस्य विद्यमानत्वाद् अन्यनिराकरणेन

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पूर्वोक्तरीत्या प्रथमचरणाधिकरणानां स्वयं सङ्गतिम् उक्त्वा अन्यैः अन्यथा उक्तां प्रथमचरणसङ्गतिं दूषयितुम् आहुः ***येतु** इत्यादिना. तथाहि ते हि ''**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**''(ब्रह्मसू.१।१।१) इत्यत्र निर्गुणब्रह्मजिज्ञासां प्रतिज्ञाय निर्गुणस्य ज्ञानाविषयत्वात् तत्र जिज्ञासोदयासम्भवाद् जन्मादिसूत्रैः प्रथमतः सगुणमेव ब्रह्म प्रतिपाद्यते. शाखारुन्धतीन्यायेन तत्प्रतिपादनं निर्गुणब्रह्मपरिचयाय उपयुज्यते इति ये वदन्ति **ते** इति अर्थः. **ते** सगुणस्य विचार्यतावादिनः. **अनधिकारं** ब्रह्मविचारानधिकारम्. तत्र हेतुः तेषां मते परब्रह्मणो ज्ञानागोचरत्वमेव. ननु गुणाधीनब्रह्मणो ज्ञानजिज्ञासागोचरत्वात् चैतन्यांशम् आदाय तस्यैव परब्रह्मत्वात् कथं जिज्ञासानधिकारः ? इत्यतः आहुः **ब्रह्मवादे** इत्यादि. ''**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**''(छान्दो.उप.३।१४।१) ''**सर्वस्य ईशानः**''(बृहदा.उप.४।४।२२) इति ब्रह्मवादे ब्रह्मातिरिक्तस्य सर्ववशीकरणसमर्थस्य च गुणस्य सम्भवाभावाद् इति अर्थः. सांख्यानाम् इत्यादि. तथाच सांख्यमते ब्रह्मातिरिक्तप्रधानाङ्गीकारेऽपि सूत्रकारैः तन्मतस्य अग्रे दूष्यत्वाद् वक्तुं न शक्यते इति अर्थः. ननु ''**प्रधानक्षेत्रपतिर्गुणेशः**'' (श्वेता.उप. ६।१६) इति श्वेताश्वतरोपनिषदि उक्तत्वात् कथं भगवति गुणानां निषेधः ? इत्यतः आहुः **भौतिके**त्यादि. तथाच नित्याधिदैविकगुणानां ब्रह्मणि सत्वेऽपि भौतिकगुणानां जनकत्वातिरिक्तसम्बन्धनिराकरणार्थमेव प्रथमाध्यायारम्भः इति भावः. **अन्यथा** जगज्जनकत्वादिरूपाधिदैविकगुणानां ब्रह्मणि अनङ्गीकारे. **सर्वस्य** कार्यजातस्य. **विद्यमानत्वाद्** ब्रह्मणि विद्यमानत्वात्. **अन्यनिराकरणेन** सगुणप्रजापतिप्रभृतीनां जगत्कारणतानिराकरणेन.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

त्वमेव ब्रह्मणः स्वीकुर्वन्ति. श्रोतव्यादिश्रुत्यन्यथानुपपत्या सगुणत्वमपि स्वीकुर्वन्ति. तन्मतं दूषयितुम् आहुः **ये पुनः** इति. ब्रह्मविचारानधिकारबोधनप्रकारम् आहुः **ब्रह्मवादे** इति. **साङ्ख्यानामेव** इति. तेषां मते सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था मूलप्रकृतिः, सैव प्रधानम् इति उच्यते. तस्याएव जगत्कारणत्वं, तच्च अग्रे चतुर्थपादे दूष्यते इत्यतः प्रकृतेः अनङ्गीकाराद् इति अर्थः. ननु ब्रह्मवादे गुणानङ्गीकारे ''**प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेश**''(श्वेता. उप.६।१६) इति श्वेताश्वतरोपनिषदि गुणकथनं न स्याद् इत्यतः आहुः **भौतिके**ति.

तत्प्रतिपादकत्व-निर्धारकाधिकरणानां वैयर्थ्यमेव. अर्थसन्देहनिराकरणार्थं द्वितीयाद्यारम्भः. तत्र अर्थो द्विविधो जीवजडात्मकः प्रत्येकसमुदायाभ्यां त्रिविधः. तत्र प्रथमं जीवपुरःसरेण सन्देहाः निवार्यन्ते.

इदम् आम्नायते. **‘‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तज्जलान् इति, शान्त उपासीत. अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथा क्रतुरस्मिन् लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत. मनोमयः प्राणशरीरः’’** (छान्दो.उप.३।१४।१,२) इत्यादि. तत्र

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तत्प्रतिपादकत्वेत्यादि. परब्रह्मणः सर्वकार्यं प्रति कारणता प्रतिपादकाधिकरणानां **वैयर्थ्यमेव** सगुणकारणनिराकरणपूर्वकनिर्गुणकारणताव्यवस्थापनवैयर्थ्यमेव स्यात्. जनकतासम्बन्धेन परब्रह्मणोऽपि भौतिकगुणसम्बन्धसद्भावाद् इति भावः. प्रासङ्गिकं समाप्य अग्रिमपादत्रयस्य प्रयोजनं प्रदर्शयितुम् आहुः **तत्र अर्थः** इत्यादि. **प्रत्येके**त्यादि. उभयात्मकः समुदायः प्रत्येकं जीवजडात्मकं च अर्थद्वयम् एवम् अर्थः त्रिविधः इति अर्थः. **तत्र** जीवजडोभयेषां सन्देहे निराकार्ये सति, **जीवपुरःसरेण** जीवं पुरस्कृत्य यः सन्देहः तादृशसन्देहप्रकारेण इति अर्थः. **सन्देहाः** उक्तत्रयाणां सन्देहाः. **निवार्यन्ते** द्वितीये जीवे, तृतीये जडे, चतुर्थचरणे उभयेषु सन्देहाः निवार्यन्ते इति अर्थः.

आदौ जीवसन्देहनिराकरणाय छान्दोग्यपञ्चमप्रपाठकस्थं विषयवाक्यम् आहुः **इदम्** इत्यादि. **‘‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म. तज्जलानिति शान्त उपासीत. अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिन् लोके पुरुषो भवति तथा इतः प्रेत्य भवति. स क्रतुं कुर्वीत मनोमयः**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इतः परं द्वितीयपादारम्भे प्रसङ्गसङ्गतिम् आहुः **अर्थे**इति. **त्रिविध** इति. जीवात्मकः, जडात्मकः, जीवजडात्मकः इति अर्थः. अत्र यथासङ्ख्यं पादत्रयेषु विविधानाम् अर्थानां सन्देहनिराकरणे कर्तव्ये द्वितीयपदार्थम् आहुः **तत्र** इति. तत्र प्रथमाधिकरणार्थं वक्तुं विषयवाक्यम् आहुः **इदम् आम्नायत** इति. छान्दोग्ये पञ्चमप्रपाठके आम्नायते. अथ विषयवाक्यम् (छान्दो.उप. ३।१४।१).

> **‘‘सर्वं खलु इदं ब्रह्म तज्जलान् इति शान्त उपासीत अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथा क्रतुः अस्मिन् लोके पुरुषो भवति तथ इतः प्रेत्य भवति सक्रतुं कुर्वीत।।१।।**
>
> **मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसङ्कल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वम् इदम् अभ्यात्तो अवाक्यनादरः।।२।।**
>
> **एष म आत्मा अन्तर्हृदये अणीयान् व्रीहेर्वा यवाद्वा सर्षपाद्वा**

वाक्योपक्रमे **''सर्वं खल्विदं ब्रह्म''** इति सर्वस्य ब्रह्मत्वं प्रतिज्ञाय, **'तज्जलान्'** इति सर्वविशेषणं हेतुत्वेन उक्त्वा तत्त्वेन उपासनम् उक्तम्. नच अयं शमविधिः,

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

प्राणशरीरः'' (छान्दो.उप.३।१४।१,२) इति. तत्र ''सर्वम् इदं प्रतीयमानं ब्रह्मत्वेन उपास्यम्'' इति वक्तुं विकृतत्वेन प्रतीयमानस्य कथं ब्रह्मत्वम्? इति आशङ्कानिरासाय सर्वपदार्थविशेषणं 'तज्जलान्' इति. यतः तस्माद् ब्रह्मणो जायते, तस्मिन् लीयते, तस्मिन् स्थितिकाले अनति चेष्टते अतः सर्वं ब्रह्मैव, अतः शान्तः सन् उपासीत इति सर्वस्यापि ब्रह्मत्वेन उपासनं निर्णीतम् इति अर्थः.

ननु **''तज्जलान्''** (छान्दो.उप.३।१४।१) इति यथा सर्वपदार्थविशेषणम् उक्तम् तथा शान्तः इति उपासकविशेषणमपि उक्तम्. 'इति'शब्दो हेत्वर्थः. तथाच यतो हेतोः जगतो ब्रह्मत्वम् अतः सर्वत्र रागद्वेषादि त्यक्त्वा शान्तो भवेत्. तथा भूत्वा च अग्रे वक्ष्यमाणोपासनं कुर्याद् इति पूर्वोक्तं शमविधिम् अङ्गीकृत्य अग्रे मनोवैशिष्ट्यादि-धर्मकथनाद् उक्तवाक्ये जीवोपासनमेव विहितं कुतो न स्याद्? इति पूर्वपक्षं मनसि निधाय आहुः **नच अयम्** इत्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वा एष म आत्मा अन्तर्हृदये ज्यायान्
पृथिव्या ज्यायान् अन्तरिक्षाद् ज्यायान् दिवो ज्यायान् एभ्यो लोकेभ्यः।।३।।
सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वम् इदम् अभ्यात्तो अवाक्यनादर एष म आत्मान्तर्हृदय एतद् ब्रह्म एतम् इतः प्रेत्य अभिसम्भवितास्मीति यस्य स्याद् अद्धा न विचिकित्सा अस्तीति ह स्माह शाण्डिल्यः शाण्डिल्यः।।४।।

अथ भाष्यम्. **तज्जलान्** इति. इदं नपुंसकलिङ्गं प्रथमान्तं सर्वविशेषणं तस्माद् जायतेति तज्जं, तस्मिन् लीयते इति तल्लं, तस्मिन् अनति चेष्टते इति तदनं, तज्जं च तल्लं च तदनं च इति तज्जलानम्. अस्मिन् कर्मधारये शाकपार्थिवन्यायेन मध्यमपदस्य तच्छब्दस्य लोपः. 'तज्जलानम्' इति वक्तव्ये 'तज्जलान्' इति छान्दसो अवयवलोपः. 'इति'शब्दो हेतौ. शान्तः इति उपासकविशेषणम्. अथ उपासनानन्तरं क्रतुमयः उपासनामयः. अत्र दृष्टान्तम् आहुः **यथा** इति. यथा अस्मिन् लोके अग्निष्टोमादि-क्रतुसाधनेन क्रतुमयो भूत्वा प्रेत्यभावानन्तरं तत्रैव फलं भुङ्क्ते तथा उपासको भवति इति अर्थः. **तत्त्वेन** इति. ब्रह्मत्वेन इति अर्थः. ननु अत्र उपासनार्थं ''शमं कुर्वीत'' इति शमविधेरेव अयं कुतो न आद्रीयते इत्यतः आहुः **नच** इति. न हि इति अर्थः.

वाक्यार्थे लक्षणाप्रसङ्गात्, कारणत्वेन सामान्यतएव सिद्धत्वाच्च. अतः सर्वजगतो ब्रह्मत्वेन उपासनम् उक्तम्. इदमेव पुराणादिषु विराट्त्वेन उपासनम्. अतःपरम् अग्रिमवाक्यार्थे सन्देहः. ‘‘**क्रतुं कुर्वीत**’’ इति. क्रतुः धर्मो यज्ञः इतियावत्. तस्य स्वरूपं ‘‘**मनोमयः प्राणशरीर**’’ इति. उपासनाप्रकरणत्वाद् उपासनैव एषा. तत्र

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

निषेधे हेतुम् आहुः. **वाक्यार्थे** इत्यादि. तथाच ‘‘शान्तो भवेद्’’ इतिवाक्यार्थे लक्षणापत्तिः. एवं ‘उपासीत’ इति पदस्य शमपूर्विकाम् उपासनां कुर्याद् इति वाक्यार्थे लक्षणापत्तिदोषाद् उक्तार्थः त्याज्यः इति भावः. दूषणान्तरम् आहुः **कारणत्वेन** इत्यादि. तस्मात् ‘‘**शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः श्रद्धावित्तो भूत्वा आत्मन्येव आत्मानं पश्येद्**’’ (सुबालोप.९।१४) इत्यत्र ब्रह्मज्ञानकारणत्वेन शमस्य ज्ञातत्वाद् अपूर्वत्वाभावाद् विधानं सम्भवत्यपि न इति अर्थः. सिद्धं विषयवाक्यार्थम् आहुः **अतः सर्वे**त्यादिना. **इदमेव** ब्रह्मत्वेन सर्वोपासनमेव. **पुराणादिषु** ‘‘**पातालमेतस्य हि पादमूलम्**’’(भाग.पुरा.२।१।२६) इत्यादिषु. प्रकृतम् आहुः **अतः परम्** इत्यादिना. **अग्रिमे**त्यादि. ‘‘**स क्रतुं कुर्वीत**’’ (छान्दो.उप.३।१४।१) इतिवाक्यार्थे सन्देहः इति अर्थः. सन्देहम् उपपादयितुम् आहुः **क्रतुः धर्मः** इति. ननु यज्ञस्वरूपघटकद्रव्यदेवतयोः अलाभात् कथं यज्ञत्वोक्तिसम्भवः? इत्यतः आहुः **तस्य** इत्यादि. **तस्य** यज्ञस्य. **मनोमयः** द्रव्यादिरहितो अयं ज्ञानस्वरूपो यज्ञः इति अर्थः. **प्राणशरीरः** प्राणाभिव्यङ्ग्यः. **एषा** ‘क्रतु’पदवाच्या. तथाच रूढिम् अनादृत्य

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

वाक्यार्थेति. उक्तशमविधेः ‘‘**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**’’ इति वाक्यार्थज्ञानान्तरं सम्भवः इति वाक्यार्थे लक्षणा इति अर्थः. ननु अस्तु वाक्यलक्षणावादिनां मीमांसकानां मते सा इत्यतः आहुः **कारणत्वे**ति. सामान्यतः इति ‘‘**शान्तो दान्त आत्मनेव आत्मानं पश्येद्**’’ इत्यनेन सामान्यतः शमत्वेन ब्रह्मज्ञानत्वे कार्यकारणभावे ब्रह्मेति ब्रह्मज्ञानार्थं शमस्य सिद्धत्वात् पुनः न ब्रह्मज्ञानसाधनीभूतोपासनार्थशमसाधनापेक्षा इति भावः. अन्यनिराकरणेन सिद्धम् आहुः **अतः** इति. **विराट्त्वेन** इति. ‘‘**पातालमेतस्य हि पादमूलम्**’’ (भाग.पुरा.२।१।२६) इत्यादिपुराणसम्मतिरपि दर्शिता. इतः परं प्रकृतिसंशयकारणम् आहुः **अतः** इति. सन्देहप्रकारम् आहुः **क्रतुः** इति. **धर्मः** यज्ञत्वम्. **यावद्** इति. यम् उपासनायज्ञः इति यावद् इति अर्थः. ननु द्रव्यदेवतयोः अभावात् कथं यज्ञत्वम्? अतः आहुः **तस्य** इति. ज्ञानयज्ञ–प्राणस्वरूपः इति अर्थः. ननु देवतोद्देश्यत्वेन त्यागएव यागः. अतएव उक्तं तैत्तिरीये तृतीयाष्टके प्रथमप्रपाठके ‘‘**यस्य भूयांसो यज्ञक्रतवः**’’(तैत्ति.संहि.३।१) इति आहुः तं

'मनोमयः' इति प्रमाणभूतो वेदः उक्तः. 'प्राणशरीरः' इति कार्यकारणयोः अभेदोपचारः, अग्रे सत्यसङ्कल्पादिधर्मवचनात्. किम् अयं विज्ञानमयो जीवो ब्रह्मत्वेन उपास्य उत ब्रह्मैव अन्तर्यामी, यः पुराणेषु सूक्ष्मः उक्तः ? तत्र पूर्ववाक्ये जडस्य जगतो ब्रह्मत्वेन उपासनस्य उक्तत्वाद् जीवस्यापि ब्रह्मत्वेन उपासनमेव

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

योग्यताबलात् क्रियते असौ क्रतुः इति यौगिकार्थएव अत्र आदरणीयः इति अर्थः. **मनोमयः** इति 'मनोमय'पदवाच्यः. **वेदः** इति मनोमयनिरूपणस्थले. ''**तस्य यजुरेव शिरः**''(तैत्ति.उप.२।३) इति निरूपणाद् मनोमयस्य वेदत्वं निर्विवादम् इति अर्थः. ननु ''**वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूः**''(भाग.पुरा.६।१।४०) इत्यादिवाक्यात् तस्य प्राणशरीरत्वं कथम् उपपद्यते? अतः आहुः **कार्यकारणयोः** इत्यादि. तथाच वेदानां ब्रह्मत्वात् प्राणादीनां च तत्कार्यत्वात् कार्य-कारणयोश्च अभेदात् प्राणशरीरत्वम् उक्तम् इति अदोषः. मनोमयस्य ब्रह्मरूपत्वे उपपत्तिः अग्रे **सत्यसङ्कल्पे**त्यादि. 'आदि'पदेन ''**एष मे आत्मा**''(छान्दो.उप.३।१४।३) इत्यादेः वेदव्यावर्तकधर्मस्य सङ्ग्रहः. **अयं** 'मनोमय'पदवाच्यः. **विज्ञानमयः** भारूपचिदात्मकतया प्रकाशमानो जीवः इति अर्थः. ''**प्राणशरीरः**''(तैत्ति.उप.३।११।१) इत्यनेन प्राणधारणप्रयत्नवत्त्वं जीवे बोध्यते. सः जीवो ब्रह्मत्वेन उपास्य इति एका कोटिः. सत्यसङ्कल्पादिधर्मोक्तेः द्वितीयां कोटिम् आहुः **उत** इत्यादि. अन्तर्यामित्वे सम्मतिम् आहुः **पुराणेषु इति**. ''**केचित् स्वदेहे हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम्**''(भाग.पुरा.२।२।८) इत्यादिषु.

पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र** इत्यादि. **तत्र** कोटिद्वयमध्ये. **पूर्ववाक्ये** ''सर्वं खलु'' इति वाक्ये. **जीवस्यापि** ''**मनोमयः प्राण**''(मुण्ड.उप.२।२।७) इत्याद्यग्रिमवाक्येन

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

देवता वृणुते इत्यतः आहुः **उपासना** इति. तस्याः च क्रिया इति क्रतुः इति योगेन 'क्रतु'-पदवाच्यम् इति अर्थः. **वेदः** इति. मनोमयस्य वेदत्वन्तु ''**तस्य यजुरेव शिरः**'' (तैत्ति. उप.२।३) इत्यनेन ''**स एष जीवो विवरप्रसूतिः**''(भाग.पुरा.११।१२।१७) इति एकादश-स्कन्धीयभगवद्वचनेन च बोध्यम्. **कार्यकारणयोः** इति. प्राणवेदयोः अभेदः इति अर्थः.

ननु अत्र वेदरूपे अर्थे सन्देहाभावः इत्यतः तम् आहुः **अग्रे** इति. **धर्मवचनात्.** 'सत्यसङ्कल्प'पदे ब्रह्मधर्मः 'आदि'पदग्राह्यः ''**एष मे आत्मा**'' (छान्दो.उप.३।१४।३) इत्यादिना जीवधर्मः इति. धर्मद्वयवचनाद् इति अर्थः. एवं संशयम् उक्त्वा पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र** इति. **उक्तत्वाद्** इति. 'सर्व'पदेन इति शेषः. **आहत्य** बलात्कारेण. जीवस्य

युक्तं, नतु आहत्यैव ब्रह्मवाक्यं भवितुम् अर्हति, ‘‘**विज्ञानं ब्रह्म चेद् वेद**’’ (तैत्ति.उप.२।५) इति शाखान्तरे स्पष्टत्वाच्च. तस्मात् कार्यकारणयोः अभेदाद् जीवएव ब्रह्मत्वेन उपास्यः इति एवं प्राप्ते, उच्यते **सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्.**

‘‘**अथ खलु**’’ इत्यादि ब्रह्मवाक्यमेव. कुतः? **सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्.** ‘कुर्वीत’ इति उपदेशो, नतु उपासना. तत्र परमशान्तस्य सर्वस्य जगतो ब्रह्मत्वेन उपासनया शुद्धान्तःकरणस्य सर्ववेदान्तप्रसिद्धब्रह्मोपदेशएव युक्तो मननरूपो नतु

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

जीवस्यापि. **आहत्यैव** युक्तिं विना आग्रहमात्रेणैव. **विज्ञानं** प्रकाशमानं स्वजीवात्मानम्. ननु अत्र जीवोक्तौ प्रकरणपठितसत्यसङ्कल्पादिनानाविधब्रह्मधर्माणां जीवे कथम् उपपत्तिः स्याद्? अतः आहुः **कार्यकारणयोः** इत्यादि. तथाच ब्रह्माभेदात् सर्वेषाम् उपपत्तिः बोध्या इति भावः. **इति प्राप्ते** जीवस्य ब्रह्मत्वेन उपासनं कार्यम् इतिपूर्वपक्षे प्राप्ते. **उच्यते** सूत्रेण समाधानम् उच्यते. ‘‘**सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्**’’.

समाधानम् उपपादयन्ति **अथ खलु** इत्यादिना. **ब्रह्मवाक्यमेव** सम्पूर्णवाक्यं ब्रह्मोपदेशार्थमेव. कुर्वीत इति अन्वयो अवसेयः. तत्र हेतुः सौत्रः **सर्वत्र प्रसिद्धे**त्यादि, सर्वत्र वेदान्तेषु उत्कृष्टत्वेन प्रसिद्धस्यैव ब्रह्मणः ‘‘सर्वं खलु’’ इतिवाक्येन ब्रह्मज्ञानार्थम् उपदेशः इति अर्थः. **नतु उपासना** ब्रह्मत्वेन जीवोपासनावाक्यार्थो न इति अर्थः. ननु एवं चेत् श्रुतिः ब्रह्मोपदेशमेव वदेद् नतु सर्वरूपत्वातिशान्तत्वादि च इत्यतः आहुः **तत्र** इत्यादि. **तत्र** ब्रह्मोपदेशे कर्तव्ये सति. **परमे**त्यादि. **परमशान्तस्य** शुद्धसत्वाकारान्तःकरण-वृत्तिमतः. **सर्वस्य** इत्यादि. तथाच ‘‘**सर्वं खलु**’’(छान्दो.उप.३।१४।१) इति, ‘‘**शान्त उपासीत**’’(छान्दो.उप.३।१४।१) इत्यादि च ब्रह्मोपदेशयोग्यतासिद्ध्यर्थं ब्रह्मत्वेन

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ब्रह्मत्वेन उपास्यत्वे तैत्तिरयोपनिषत्सम्मतिम् आहुः **विज्ञानम्** इति.

समाधानम् आहुः ‘‘**सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्**’’ सर्वत्र उपनिषत्सु प्रसिद्धस्य प्रतिपाद्यस्य ब्रह्मणः ‘‘**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**’’(छान्दो.उप.१।१४।१) इति वाक्ये ‘क्रतुं कुर्वीत’ इत्यनेन उपदेशाद् इदं ब्रह्मवाक्यमेव इति सूत्रार्थः. **कुर्वीत** इति. मननात्मकं क्रतुं **कुर्वीत** इति अर्थः. ‘‘**केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम्**’’ (भाग.पुरा.२।२।८) इति आदिपुराणेषु उक्तः इति अर्थः. यद्यपि ‘उपासीत’इत्यपि वर्तते तथापि उपासनायाः अधिकारितावच्छेदककोटौ निवेशात्. मुख्यत्वम् इति आशयेन उपदेशं समर्थयन्ति **तत्र** इति. **शुद्धान्तःकरणस्य** इति. अधिकारिणः इति शेषः.

क्वचित् सिद्धस्य जीवस्य उपासना. शाखान्तरेतु अग्रे आनन्दमयस्य वक्तव्यत्वात् तथायुक्तम्, नतु इह तथा. तस्माद् आनन्दरूप-प्राणशरीररूपो वाक्यार्थः ।।१।।

ननु **''क्रतुमयः पुरुषः''** इति यथासङ्कल्पम् अग्रिमदेहकथनात्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सर्वोपासनार्थम् उक्तम् इति अर्थः. **क्वचित् प्रसिद्धस्य** शाखान्तरे **''विज्ञानं ब्रह्म चेद् वेद''** (तैत्ति.उप.२।५) इत्यनेन उक्तस्य इति अर्थः. इत्थञ्च मननरूपः क्रतुब्रह्मोपदेशएव अत्र इति फलितम्. ननु शाखान्तरेऽपि **''विज्ञानं ब्रह्म चेद् वेद''**(तत्रैव) इत्यपि ब्रह्मोपदेशकमेव अस्तु. तथा च जीवोपासनोच्छेदः अतः आहुः **शाखान्तरे** इत्यादि. तथाच **''विज्ञानं ब्रह्म''** इत्यत्र ब्रह्मोपदेशे अग्रे आनन्दमयब्रह्मोपदेशेन पौनरुक्त्यापत्तिः अतः, **तथा युक्तं** शाखान्तरवाक्ये जीवोपासनं युक्तम् इति अर्थः. **नतु इह तथा** क्रतुमयोपदेशस्थले जीवोपासनं न इति अर्थः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादिना. **आनन्दरूपे**त्यादि. आनन्दात्मकाः प्राणाः शरीरं यस्य इति परमात्मा **''अथ खलु क्रतुमयः''** (छान्दो.उप.३।१४।१) इति वाक्यस्य अर्थः इति अर्थः ।।१।।

अग्रिमसूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इत्यादिना. यथा **''क्रतुरस्मिन् लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति''** (छान्दो.उप.३।१४।१) इति पूर्ववाक्यात्. **यथासङ्कल्पं** जन्मान्तरीय-देहप्राप्तिबोधकं श्रुत्युक्तं सङ्कल्पम् अनतिक्रम्य इति अर्थः. **अग्रिमे**त्यादि. **''तथा इतः प्रेत्य भवति''** इत्यनेन अग्रिमदेहकथनाद् इति अर्थः. **लोकान्तरे**त्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ब्रह्मविषयकमननोपदेशत्वाद् अस्य ब्रह्मवाक्यत्वम् इति भावः. शाखान्तरे **''विज्ञानं ब्रह्म चेद् वेद''** (तैत्ति.उप.२।५) इत्यत्र जीवोपसना न स्याद् इत्यतः आहुः **शाखान्तर** इति. **तथा युक्तम्** इति. जीववाक्यत्वं युक्तम् इति अर्थः. तथाच अग्रे आनन्दमय-ब्रह्मप्रतिपादकत्वेन तत्र उपनिषद्वाक्यानां ब्रह्मवाक्यत्वम् सलभम् इति भावः. **अत्र** इति. अस्मिन् विषयवाक्ये स्पष्टब्रह्मप्रतिपादकं वाक्यं न अस्ति इति अर्थः. सिद्धम् आहुः **तस्माद्** इति. **आनन्दरूपः** इति. **''मनसैवानुद्रष्टव्यः''** (बृहदा.उप.४।४।१९) इति श्रुत्या साक्षात्कारानन्तरं मनसोऽपि आनन्दरूपत्वात् प्राप्त्यर्थक-'मयट्'प्रत्ययेन मनोमयः इत्यस्य आनन्दरूपः इति अर्थः. **प्राणशरीरे**ति. अन्तर्यामी इति अर्थः ।।१।।

अग्रिमसूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **पुरुषः** इति. इत्यारभ्य इति अर्थः. **यथासङ्कल्पं** सङ्कल्पानुरूपम्. **अग्रिमे**ति. लोकान्तर्भाविदेहकथनाद् इति अर्थः. तथाच जघन्यफलार्थाद् देहान्तरप्राप्तिः ब्रह्मोपासनफलार्था न भवति इति भावः. **युक्ता**

लोकान्तरभाविफलार्थम् अन्योपासनैवतु युक्ता, नतु ब्रह्मज्ञानस्य तादृशं फलं युक्तम् इति आशङ्क्य परिहरति

विवक्षितगुणोपपत्तेश्च।।२।।

विवक्षिता लोकान्तरे तादृशरूपप्राप्तिः, सा प्रकृतेऽपि उपपद्यते, भगवत्स्वरूपलाभात् सारूप्यलाभाद् वा. नच व्याप्तिः उक्तेति अधमप्राप्त्युपायो

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

भवान्तरीय-भाविदेहरूप-फलार्थम् इति अर्थः. **अन्योपासना** वेदाभिमानिदेवतोपासना. उपासकात्मनो वा ब्रह्मत्वेन उपासना भाविफललाभार्थम् इति अर्थः. **तादृशं** भावान्तरीय-देहात्मकम्. **युक्तम्** इति. ''**तमेव विदित्वा अतिमृत्युम् एति**'' (यजुर्वेद ३१।१८) इति ब्रह्मज्ञानस्य मोक्षफलत्वश्रुतेः न युक्तम् इति अर्थः.

''**विवक्षितगुणोपपत्तेश्च**'' **विवक्षिता** वक्तुं योग्याः. **तादृशरूपप्राप्तिः** आनन्दात्मक-प्राणस्वरूपदेहप्राप्तिः. **प्रकृतेऽपि** ब्रह्मज्ञानेऽपि. **उपपद्यते** ''**ब्रह्मविद् आप्नोति परम्**'' (तैत्ति.उप.२।१।१) इति श्रुतेः अलौकिकदेहलाभाद् न अनुपपत्तिः इति अर्थः. **व्याप्तिः** यत्र-यत्र देहत्वं तत्र-तत्र प्राकृतत्वम् इति व्याप्तिः इति अर्थः. **अधमे**त्यादि. प्राकृतदेहप्राप्त्युपायो जीवोपासनरूपः इति च न इति अन्वयः. तत्र हेतुः देहत्व-प्राकृतत्वयोः अप्राकृतदेहे व्यभिचाररूपः अवसेयः. **च**कारसमुच्चितार्थं वक्तुम्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति. जीवोपासनैव युक्ता इति अर्थः. **युक्तम्** इति. तथाच ब्रह्मप्राप्ते एव ब्रह्मज्ञानस्य फलं इति भावः. **इति आशङ्क्य** इति.

इमाम् आशङ्कां मनसि निधाय सूत्रकारः समाधानम् आहुः ''**विवक्षित-गुणक्षोपपत्तेश्च**''. विवक्षिता अभिप्रेता या गुणरूपा आमुष्मिकदेहप्राप्तिः तस्या उपपत्तेः इति सूत्रार्थः. ननु कथम् उपपत्तिः? इत्यतः आहुः **भगवदि**ति. परप्राप्तिरूप-ब्रह्मदेहलाभाद् इति अर्थः. भगवद्गुणानुवादरसलोभवन्तं प्रति आहुः **सारूप्ये**ति. भगवत्सदंशदेहवतोऽपि पुनरावृत्त्यभावाद् न प्राकृतत्वम् इति भावः. ननु देहत्व-प्राकृतत्वयोः व्याप्यव्यापकभावात् कथम् इदम्? इत्यतः आहुः **नच** इति. कुत्रापि अनयोः व्याप्तिः न उक्ता. किन्तु अस्मिन्नेव विषयवाक्ये यथा क्रतुः इत्यादिना आष्मिकदेहत्व-सङ्कल्पानुरूपत्वयोरेव व्याप्तिः उक्ता इति हेतोः अधमस्य प्राकृतदेहस्य प्राप्त्युपायभूता जीवोपासना न युक्ता इति अर्थः. ननु सङ्कल्पानुरूपदेहप्राप्तेः उक्तत्वात् कथं ब्रह्मदेहप्राप्तिः? इति चेद्, न, सर्वब्रह्मोपासनापूर्वकमननरूपक्रतुना शुद्धसङ्कल्पो-

युक्तः. सत्यसङ्कल्पादिवचनं च ब्रह्मवाक्यत्वपोषकम् इति 'च'करार्थः।।२।।

ननु एतावतापि न एकान्ततो ब्रह्मवाक्यत्वम् उपपत्तेः उभयत्रापि तुल्यत्वाद् इति आशङ्क्य परिहरति

अनुपपत्तेस्तु न शारीरः।।३।।

नच प्राणशरीररूपो जीवो भवति, तिरोहितानन्दत्वेन निराकारत्वात्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आहुः. **सत्यसङ्कल्पे**त्यादि. "**स ईक्षाञ्चक्रे**" (प्रश्नोप.६।३) इत्यनेन ईक्षामात्रेण अनेकब्रह्माण्डादिरूपेण भवनं सत्यसङ्कल्पत्वम्. इदं च ब्रह्मातिरिक्ते असम्भवीति ब्रह्मवाक्यमेव इदम् इति अवसेयम् इति अर्थः।।२।।

सूत्रान्तरम् अवतारयितुम् आहुः **ननु एतावता** इत्यादि. **एतावतापि** उक्तसूत्रद्वयेन उक्तवाक्यस्य ब्रह्मार्थत्वव्यवस्थापनेऽपि. **न एकान्ततः** ब्रह्मपक्षविनिगमकप्रबलयुक्त्यभावतः. **उपपत्तेः** साधकयुक्तेः. **उभयत्रापि** जीवपक्षे ब्रह्मपक्षे च इति अर्थः. **तुल्यत्वात्** पूर्वपक्षोक्तरीत्या जीवपक्षोपपत्तेः सिद्धान्तः उक्तरीत्या ब्रह्मपक्षोपपत्तेश्च समबलत्वाद् इति अर्थः.

सूत्रार्थेन समाधानम् आहुः **नच** इत्यादि. भौतिकशरीरवान् जीवो वाक्यार्थो न भवति, तत्र हेतुः **अनुपपत्तेः** इति. अनुपपत्तिमेव उपपादयन्ति **प्राणशरीरे**त्यादिना. **प्राणशरीररूपः** आनन्दात्मकप्राणशरीररूपः. प्राणस्य आनन्दरूपतातु "**प्राणः तथानुगमाद्**"(ब्रह्मसू.१।१।२८) इत्यस्य विषयवाक्ये प्राणम् उपादाय "**एष प्रज्ञात्मानन्दो अजरो अमृतः**"(कौषी.उप.३।८) इतिव्याख्याता बोध्या. तादृशशरीरत्वाभावे हेतुम्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

दयाद् अलौकिकदेहप्राप्तिः इति सर्वम् अनवद्यम्. सूत्रस्थ'च'कारद्योतितहेत्वन्तरम् आहुः **सत्ये**ति. अयन्तु केवलं ब्रह्मधर्मएव इति भावः ।।२।।

अग्रिमं सूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **न एकान्ततः** केवलम्. **तुल्यत्वाद्** इति. भक्तस्यापि "**न वै क्वचिद् मे मनसो मृषा गतिः**"(भाग.पुरा.२।६।३३) इति वचनात् सत्यसङ्कल्पत्वम्. अन्ततो हिरण्यगर्भे जीवे सर्वधर्माणां सत्त्वात् तुल्यत्वाद् इति अर्थः. समाधानम् आहुः "**अनुपपत्तेस्तु न शारीरः**".

शारीरो जीवो वाक्यार्थो **न,** कुतः? **अनुपपत्तेः** इति सूत्रार्थः. अनुपपत्तिमेव आहुः **नच** इति. प्राणशरीररूपः आनन्दाकारः. 'प्राण'शब्दस्य आनन्दवाचकत्वं व्यवस्थापितम् अधस्ताद् अनुगमाधिकरणे. **निराकारत्वाद्** इति. आनन्दाकाररूपत्वा-

अध्यासेन तथात्वेतु अनुपास्यत्वमेव, इदानीमेव उपासकस्यापि तथात्वात्. नच प्राणादेः लौकिकत्वम्, उपदेशानर्थक्यप्रसङ्गात्. अतः आनन्दरूपप्राणशरीररूपत्वाभावाद् न वाक्यार्थो जीवः. पूर्वपक्षस्य अत्रैव निवृत्तत्वात् **'तु'**शब्दः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आहुः **तिरोहिते**त्यादि. आकारसमर्पक'प्राण'पदवाच्यानन्दस्य जीवे व्युच्चरणकाले तिरोहितत्वाद् इति अर्थः. ननु उपास्यजीवस्यापि प्रतीकोपासनाकाले **''ब्रह्माहम् अस्मि''**, **''सर्वं मयि वर्तते''**, **''आनन्दशरीरश्चाहम्''** इत्याद्याध्यासिकज्ञानसत्त्वेन आध्यासिका–नन्दाकारस्य सत्वात् तदुपासनमेव आस्ताम् इत्यतः आहुः **अध्यासेन** इत्यादि. **तथात्वे** आरोपितानन्दाकारत्वे. **अनुपास्यत्वमेव** अध्याससम्पादकाविद्यावत्वेन जीवस्य अनुपास्यत्वमेव इति अर्थः. **इदानीमेव** मुक्तिपूर्वकालएव इति अर्थः. **उपासकस्यापि** भवदभिमतजीवोपासकस्यापि इति अर्थः. **तथात्वाद्** अविद्याकृतपूर्वोक्ताध्याससम्भवाद् इति अर्थः. ननु प्राणानां सर्वत्र लोके प्रसिद्धानामेव **''मनोमयः प्राणशरीरः''**(छान्दो. उप.३।१४।२) इत्यस्यापि सम्भवात् किमिति आनन्दमयत्वं स्वीक्रियते ? अतः आहुः **नच प्राणादे**ः इत्यादि. तत्र हेतुम् आहुः **उपदेशे**त्यादि. प्राणानां लौकिकत्वे तादृशप्राणशरीरस्य **''मनोमयः प्राणशरीरः''** इत्यनेन ब्रह्मज्ञानार्थम् उपदेशो निष्फलः स्याद् इति अर्थः. उपसंहरन्ति **अतः** इत्यादिना.

ननु प्राणमयादौ धर्मिरूपेण ब्रह्मत्वेन यथा उपासनम् उक्तम् तथा 'मनोमय'–पदवाच्यविज्ञानमयेऽपि ब्रह्मोपासनमेव कुतो न उक्तम्? आनन्दमयप्राणशरीरत्वेन धर्मोपासनं च कुतः उक्तम्? अतः आहुः **विज्ञानमये** इत्यादि. **प्राप्ताप्राप्ते**त्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

भावाद् इति अर्थः. अध्यासेन सच्चिदानन्दरूपो अहम् इति आरोपकृतिः अन्तराध्यासेन तथात्वे प्राणशरीरत्वे अनुपास्यत्वम् इति आरोपस्य अविद्याकृतत्वात् तद्वत्त्वाद् जीवस्य अनुपास्यत्वमेव इति अर्थः. दूषणान्तरम् आहुः **इदानीम्** इति. उपासनाकाले. **तथात्वात्.** आध्यासिकप्राणशरीररूपत्वात्. तथाच अध्यासं विना उपासनैव न सम्भवति इति भावः. एवञ्च उपासनाजन्यफलस्य उपासनाकाले सत्त्वाद् उपासनाव्यर्थत्वम् इति हृदयम्. **उपदेशानर्थक्यप्रसङ्गाद्** इति. 'प्राण'शब्देन लौकिकप्राणएव गृह्यते चेद् लौकिकप्राणशरीरस्य इदानीमपि सत्त्वे तत्तदर्थं ममनोपदेशोऽपि व्यर्थः इति अर्थः. ननु पञ्चकोशप्रकरणे विज्ञानमयस्यापि ब्रह्मवाक्यत्वं स्याद् **''विज्ञानम् आनन्दं ब्रह्म''**(बृहदा.उप.३।९।३४) इतिवाक्याद् 'विज्ञान'शब्दस्य ब्रह्मवाचकत्वेन

विज्ञानमयेतु प्राप्ताप्राप्तविवेकेन धर्मस्यैव उपासना।।३।।

ननु प्राप्तव्यतादृशरूपफलाभिप्रायं भविष्यति इति परिहरति

कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च।।४।।

''एतम् इतः प्रेत्य अभिसम्भवितास्मि'' इति, **''यस्य स्याद् अद्धा न**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

विज्ञानमयोपासनाङ्गानि श्रद्धादीनि तेषाम् आदावेव प्राप्तत्वाद् यदप्राप्तं ब्रह्मज्ञानं तदर्थम् उपायस्यैव कर्तुम् उचितत्वाद् ब्रह्मधर्मज्ञानस्यैव अत्र उपासनम् उक्तम् इति अर्थः. ततश्च अग्रे आनन्दमयलाभः फलम् इति पर्यवसितम्।।३।।

अग्रिमसूत्रावतरणम् आहुः **ननु प्राप्तव्ये**त्यादिना. तथा आदौ स्वात्मनो जीवस्य उपासनायां ब्रह्मत्वेन कर्तव्यायां भावि फलम् आनन्दरूप–प्राणशरीररूपता भाविनी तदभिप्रायकमेव इदं **''मनोमयः प्राणशरीरः''** (यथापूर्वम्) इतिवाक्यं भविष्यति इति दूषणं परिहरति सूत्रकारः **''कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च''**.

प्राप्तव्यफलाभिप्रायम् उक्तवाक्यं न भवति इति अर्थकां श्रुतिम् आहुः **एतम्** इत्यादि. **''एतम् इतः प्रेत्य अभिसम्भवितास्मीति यस्य स्याद् अद्धा न विचिकित्सा अस्तीति ह स्माह शाण्डिल्य''** (छान्दो.उप.३।१४।४) इति. **एतम्** आनन्दमयप्राणशरीरं परमात्मानम्. **इतः प्रेत्य** भौतिकशरीरं त्यक्त्वा. **अभिसम्भवितास्मि** प्राप्स्यामि. **यस्य**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

विज्ञानत्वेन निरूपणाद् इत्यतः आहुः **विज्ञानमयेतु** इति. **प्राप्ताप्राप्ते**ति. तत्र विज्ञानमयस्य **''तस्य श्रद्धैव शिरः''** इत्यनेन श्रद्धादिधर्मत्वाद् जीवत्वं प्राप्तम्. आनन्दमयस्येव सर्वान्तर्यामित्वाभावाद् मुख्यत्वाभावेन आनन्दरूपत्वम् अप्राप्तम् इति विवेकेन प्राप्तस्य बलत्वाद् धर्मस्य जीवस्यैव उपासना इति न ब्रह्मवाक्यत्वम् इति अर्थः. नच जीवस्य भगवद्धर्मत्वं कथम् इति वाच्यम्. यथाग्नेः विस्फुलिङ्गाश्रयत्वं तथा ब्रह्मणोऽपि जीवाश्रयत्वे बाधकाभावाद् इति ।।३।।

अग्रिमं सूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **प्राप्ते**ति. जीवेन इति शेषः. **तादृशरूपे**ति. प्राणशरीररूपेति अर्थः. अयम् आशयः अत्रापि विषयवाक्ये पूर्वोक्तन्यायेन **''क्रतुमयः पुरुष''**(छान्दो.उप.३।१४।१) इत्यनेन जीवत्वं प्राप्तम्. 'प्राणशरीरः' इति ब्रह्मवाक्यफलाभिप्रापकत्वेन ब्रह्मत्वम् अप्राप्तम् इति विवेकेन जीववाक्यत्वम् इति. इमामेव आशङ्कां परिहरति सूत्रकारः **'कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च'**. कर्तृत्वेन जीवस्य कर्मत्वेन ब्रह्मणो व्यपदेशात् कथनाद् न जीववाक्यम् इति सूत्रार्थः. तदेव विशदयन्ति **एतम्**

विचिकित्सास्तीति ह स्माह शाण्डिल्यः''(छान्दो.उप.३।१४।४) इति अग्रे फलवाक्यम्. एतं प्राणशरीररूपं कर्मत्वेन ध्येयत्वेन प्राप्यत्वेन च व्यपदिशति. कर्तृत्वेन च शारीरं व्यपदिशति. नच भजनीयरूपाकथने तादृशं फलं सिद्ध्यति इति **'च'**कारार्थः अधिकरणसम्पूर्णत्वद्योतकश्च।।४।।

इति प्रथमाध्याये द्वितीये पादे प्रथमं सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशाधिकरणम्।।१।।

शब्दविशेषात्।।५।। (१।२।२।)

इदम् आम्नायते. **''यथा व्रीहिर्वा यवो वा श्यामाको वा श्यामाकतण्डुलो**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अधिकारिणः. **स्याद् अद्धा** परमात्मा यस्य प्रत्यक्षो भवेत् **तस्य, इह** एतल्लोके. **न विचिकित्सा अस्ति** न किञ्चित् कर्तव्यम् अवशिष्यते इति अर्थः. **ह** इति प्रसिद्धौ. आह **स्म** इति अर्थः. अग्रे उक्तवाक्याद् अग्रे, 'क्रतु'पदवाच्योपासनाविषयानन्दरूपप्राण-शरीरबोधकवाक्याद् अग्रे इदं फलबोधकं वाक्यम् इति अर्थः. **शारीरं** भौतिकशरीरादिमन्तं जीवम् इति अर्थः. **नच भजनीये**त्यादि. तथाच फलवाक्ये प्राप्तकथनेनैव उपपत्तौ क्रतुविषय-प्राणशरीर-मनोमयस्य भजनीयस्य पूर्ववाक्ये उक्तिः व्यर्था इति आशङ्का निराकृता. भजनकाले तद्रूपाज्ञाने अग्रे तस्य फलत्वासम्भवाद् इति अर्थः।।४।।

इदम् आम्नायते वाजिशाखायाम् आम्नायते. ननु **''य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः**''(छान्दो.उप.१।६।६) इत्यत्र हिरण्मयपुरुषस्य ब्रह्मत्वम् अन्तस्तद्धर्माधिकरणे

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति. **एतं प्राणशरीरं** भगवन्तम् **अभिसम्भवितास्मि** प्राप्स्यामि यस्य साधकस्य अद्धा अपरोक्षः स्यात्. इह अस्मिन् लोके विचिकित्सा कर्तव्यं नास्ति इति अर्थः. **शारीरम्** इति. अधिकारिणं जीवम्. तथाच कर्तृत्व-कर्मत्वयोः भिन्ननिष्ठत्वे ब्रह्मत्व-जीवत्वयोः एकत्र प्राप्त्यर्थाभावाद् अत्र पूर्ववत् प्राप्ताप्राप्तविवेकन्यायो न प्रवर्तते इति. इदं ब्रह्मवाक्यम् इति भावः. ननु उक्तमेव प्राणशरीरः इति फलं परम् अतः आहुः **नच** इति. यद् भजनीयं तदेव प्राप्तव्यम् इति. 'यथा क्रतुः'इत्यादिवाक्येन बोधितम् इति. उक्तवाक्यं मन्तव्यं ब्रह्मपरमेव इति अर्थः. केषाञ्चिन्मते अष्टसूत्रात्मकम् इदम् अधिकरणम् इति तद् दूषयितुम् आहुः **अधिकरणे**ति।।४।।

इदीनीम् अस्य अधिकरणस्य पूर्वाधिकरणेन अन्तस्तद्धर्माधिकरणेन वा गतार्थत्वनिराकरणार्थं शब्दविशेषाधिकरणम् आरचयन्ति **शब्दविशेषाद्** इति. **आम्नायते** इति. वाजिशाखायाम् इत्यादि. सम्पूर्णं विषयवाक्यम् आहुः **यथा** इति.

वा एवम् अयम् अन्तरात्मन् पुरुषो हिरण्मयः'' (शत.ब्राह्म.१०।६।३।२) इति. तत्र संशयः. हिरण्मयः पुरुषः किं जीवः उत ब्रह्म? इति. उपक्रमबलीयस्त्वे जीवः, उपसंहारबलीयस्त्वे ब्रह्म इति. यत्र एकस्य अन्यपरत्वेन एकार्थता सम्भवति तद्बलीयस्त्वम् इति सिद्धं पूर्वतन्त्रे. तत्र चतुर्विधभूतनिरूपणार्थं

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

विषयवाक्ये ‘‘**य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयो दृश्यते**’’ इति उपक्रमे हिरण्यमयपुरुषोपादानं कृतम्. उपक्रमश्च असञ्जातविरोधित्वेन उपसंहारापेक्षया प्रबलइति तस्य ब्रह्मत्वनिर्णयः कृतः. अत्रतु विषयवाक्ये उपक्रमे व्रीहियवादिक्षुद्राणां दृष्टान्तीकरणाद् उपक्रमे जीवएव प्रतीयते. उपसंहारेतु ‘‘**हिरण्मयः पुरुषः**’’ इति. तथाच उपक्रमबलीयस्त्वे जीवो विषयवाक्यार्थः. उपसंहारस्यापि क्वचिद् बलीयस्त्वम् अस्ति इति पक्षेतु ब्रह्मैव सिद्ध्येद् इति संशयः सूक्तएव.

एतदेव उपपादयन्ति **यत्र** इत्यादि. **यत्र** विषयवाक्ये. **एकस्य** उपपक्रमोपसंहारार्थयोः मध्ये एकस्य अर्थस्य. **अन्यपरत्वे** इति अर्थेन अन्वये क्रियमाणे. **एकार्थता सम्भवति** वाक्यभेदो न भवति असन्दिग्धा च एकवाक्यता भवति. **तद्बलीयस्त्वम्** उपक्रमोपसंहारयोः मध्ये तस्य बलीयस्त्वम् इति अर्थः. **सिद्धं पूर्वतन्त्रे** तदैकशास्त्र्याद् अत्रापि उपादेयम् अतो अत्र इति पूर्वतन्त्रे सिद्धम् इति अर्थः. **तत्र** जीव-ब्रह्मपक्षयोः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

पूर्वाधिकरणे मनोमयः पक्षः. अत्र हिरण्मयः पक्षः इति. पक्षभेदप्रयुक्ताधिकरणभेदं सूचयितुं संशयाकारम् आहुः **तत्र संशयः** इति.

ननु अन्तस्तद्धर्माधिकरणे हिरण्मयस्य ब्रह्मत्वम् उक्तमेव इति व्यर्थम् इदम् अधिकरणम् इत्यतः आहुः **उपक्रमे**ति. पूर्वं विषयवाक्ये प्रथमतएव ‘हिरण्मय’-पदोपादानम्. अत्रतु उपसंहारे तदुपादानम्. प्रबलत्वन्तु उभयोरपि इति प्रकृते उपक्रमस्य प्रबलत्वे व्रीह्यादिसादृश्येन जीवः. उपसंहारे समबलवत्त्वे ब्रह्म प्रतीयते इति संशयाद् अधिकरणान्तरम् इति अर्थः. ननु उक्तमेव प्राबल्यनियामकस्य प्राथम्यसत्त्वात् कथम् उभयोः प्रबलत्वम्? इत्यतः आहुः **यत्र** इति. यस्मिन् वाक्ये इति अर्थः. न हि प्राथम्यं प्रबलतायां प्रयोजकं किन्तु इदमेव इति आहुः **एकस्य** इति. उभयोः मध्ये एकस्य इति अर्थः. **अन्यपरत्वेन.** इतरपदार्थान्वयेन. **एकार्थता** एकवाक्यत्वम्. वाक्यस्य इति शेषः. **पूर्वतन्त्रे** पूर्वमीमांसायाम्. तथाच इतरपदार्थान्वयसहकृतैकवाक्यत्वप्रयोजकत्वं प्रबलत्वम्. तच्च क्वचिद् वाक्यविशेषे उपक्रमे क्वचिद् उपसंहारे इति भावः. एवञ्च

जीवस्यैव आराग्रमात्रस्य अन्तर्हृदये प्रतिपादकम् इदं वचनं, फलतो हिरण्मयत्वम् इति. ननु एतादृशाभाससमानत्वं ब्रह्मणो युक्तम् अतो जीवप्रतिपादकमेव इदं वाक्यम् इति प्राप्ते, उच्यते **शब्दविशेषात्.** सः हिरण्मयः पुरुषो न जीवस्य फलमपि, तत्प्राप्तेरेव फलत्वात्. नापि अयं नियमः तस्यामेव मूर्तौ लयः इति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

मध्ये. **चतुर्विधे**त्यादि. जरायुजस्वेदजाण्डजोद्भिज्जभेदेन चतुर्विधानि भूतानि जीवशरीराणि इति निरूपणार्थम् एतस्य अर्थः. ‘‘**न हिंस्यात् सर्वा भूतानि**’’ (कूर्मपुरा.१६।१) इत्यत्रत्य‘भूत’शब्दनिर्णयार्थम् इति अर्थः. **इदं वचनं** ‘‘**यथा व्रीहिः**’’ (शत.ब्राह्म. १०।६।३।२) इत्यादिवचनम्. **फलतः** इत्यादि. जीवस्य मुक्तिदशायाम् इति अर्थः. **एतादृशे**त्यादि व्रीहियवादिदृष्टान्तसमानत्वम् इति अर्थः. **इति प्राप्ते** तत्र चतुर्विधेत्यादिना पूर्वपक्षे प्राप्ते इति अर्थः. ‘‘**शब्दविशेषात्**’’. **हिरण्मये**ति ब्रह्मवाचकशब्दस्य विषयवाक्ये श्रवणात्. ननु उक्तम् जीवएव अत्र उपास्यत्वेन उक्तः तस्यैव फलदशायां हिरण्मयरूपतानुवादेन उपासनाबोधनाद् इत्यतः आहुः **न जीवस्य** इत्यादि. **तत्प्राप्तेः** इत्यादि. तथाच हिरण्मयप्राप्तिरेव फलं नतु जीवस्य हिरण्मयरूपतापि इति अर्थः. ननु सायुज्यमुक्तिपक्षे तद्रूपतापि अविवादैव इत्यतः आहुः **नापि अयम्** इत्यादि. तथाच ब्रह्मणः आनन्दमयादिनानारूपसत्त्वात् तस्य कस्यां मूर्तौ सायुज्यं भविष्यति इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

समानत्वाभावाद् अधिकरणान्तरम् इदम् इति मन्तव्यम्.

पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र** इति. **चतुर्विधे**ति. जरायुजादिचतुर्विधेति अर्थः. छान्दोग्ये त्रिविधानां सत्त्वाद् अत्र चतुर्थस्य अधिकस्य कथनार्थम् इति यावत्. **आराग्रमात्रस्य** इति. तोत्रप्रोतायःशलाकाग्निपरिमाणस्य प्रतिपादकम् इति व्रीह्यादि–चतुर्विधदृष्टान्तैः जीवस्यैव प्रतिपादकम् इति अर्थः. ननु ‘हिरण्मय’शब्दस्य ब्रह्मप्रतिपादकत्वात् संशये पर्यवसानं स्याद् इत्यतः आहुः **फलतः** इति. मोक्षावस्थायाम् इति अर्थः. **आभासे**ति. आभासाः तुच्छा व्रीह्यादयः तत्समानत्वम् इति अर्थः. **उच्यते** सिद्धान्तसूत्रम् उच्यते. ‘‘**शब्दविशेषात्**’’. शब्दे ‘हिरण्मय’शब्दे यो विशेषः आनन्दमयबोधकत्वरूपो ब्रह्मत्वसाधको यो विशेषः तस्मिन् हिरण्मयानन्दमयशब्दयोः पर्यायित्वम्. अन्तस्तद्धर्माधिकरणे स्पष्टम्. जीवस्य फलतोऽपि हिरण्मयत्वं न सम्भवति इति आहुः **तत्प्राप्तेः** इति. इदन्तु आनन्दमयाधिकरणे स्पष्टम्. ननु सायुज्यमुक्तौ हिरण्मयत्वं सम्भवति इत्यतः आहुः **नापि अयम्** इति. अत्र प्रमाणन्तु तैत्तिरीयश्रुतिः. तथाहि, ‘‘**ब्रह्मणः सायुज्यं**

‘अतः’शब्देनैव विशेषस्य उक्तत्वाद् न हिरण्मयः पुरुषो जीवः।।५।।

ननु हृदये विद्यमानत्वाद् अभिमान्येव जीवो युक्तः इति चेत्, तत्र आह

स्मृतेश्च।।६।।

“**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति**”(भग.गीता १८।६१) इति. ननु सर्ववेदानां यद् निःश्वासत्वं तस्य भगवतो वाक्यं कथं स्मृतिः? इति. उच्यते. “**तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि**”(बृहदा.उप.३।९।२६) इति श्रुतेः केवलोपनिषद्वेद्यं ब्रह्म, न प्रमाणान्तरवेद्यम्. ततश्च अर्जुनस्य शिष्यरूपेण प्रपन्नस्य पुष्टिभक्तत्वाभावाद्, भगवद्वाक्ये निर्विचिकित्सविश्वासाभावाद्,

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

भगवदिच्छायाः निर्णयासम्भवाद् इति अर्थः. उपसंहरन्ति **अतः** नियमाभावतः. **शब्देन** ‘हिरण्मय’शब्देन. **विशेषस्य** ब्रह्मत्वरूपजीवव्यावर्तकधर्मस्य।।५।।

ननु अणुत्वबोधकैः व्रीह्यादिदृष्टान्तैः उपक्रमबलीयस्त्वेन च हृदये विद्यमानो देहाभिमानी जीवएव आस्ताम् इति आहुः **ननु** इत्यादि. “**अन्तरात्मन् पुरुषो हिरण्मयः**” (शत.ब्राह्म.१०।६।३।२) इत्यनेन उक्तस्य ब्रह्मत्वसाधिकां स्मृतिम् आहुः **ईश्वरः** इत्यादि. उक्तवाक्यस्य स्मृतित्वे साधकम् आहुः **ननु सर्वे**त्यादिना. **प्रमाणान्तरम्** उपनिषदन्यप्रमाणम्. पुष्टिभक्तत्वाभावो निर्विचिकित्सविश्वासाभावे हेतुः. अविश्वास-बोधकं च वाक्यम् “**अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः**”(भग.गीता४।४) इति वाक्यम्. **रथित्वेनैव** इत्यादि भगवतो रथित्वाभिमानितया अर्जुनस्य स्थाप्यत्वाद् इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सलोकताम् आप्नोति एतासामेव देवतानां सार्ष्टितां समानलोकताम् आप्नोति य एवं वेद इत्युपनिषद्” (महाना.उप.१०।२) इति ।।५।।

“**स्मृतेश्च**” इति सूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **हृदये विद्यमानत्वाद्** इति. अनेनैव लिङ्गाद् अभिमानी जीवएव इति अर्थः. एतेन श्रुत्या फलतो हिरण्मयत्वसन्देहेऽपि लिङ्गादेव जीवत्वं युक्तम् इति सूचितम्. **तत्र आह** इति. इति आशङ्कायाम् आह इति अर्थः. “**सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः**”(गीतामाहा) इति वाक्याद् गीतावाक्येषु स्मृतित्वम् असहमानः शङ्कते **ननु** इति. समाधानम् आहुः **उच्यते** इति. **प्रपन्नस्य** इति. “**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्**”(भग.गीता२।७) इति वाक्यात् प्रपन्नस्य इति अर्थः. अर्जुनस्य पुष्टिभक्तत्वाभावे हेतुम् आहुः **भगवदि**ति. **निर्विचिकित्से**ति. निःसंशयेति अर्थः.“**अपरं भवतो जन्म**”(भग.गीता४।४) इत्यादिना

रथित्वेनैव स्थाप्यत्वाद्, न तादृशाय तादृशदेशकालयोः उपनिषदाम् अवक्तव्यत्वाद्, गुरुरूपतादृशरूपं निःश्वसितवेदोद्गमजनकं स्मृत्वा, तदर्थमपि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अर्थः. **न तादृशाय** उक्ताभिमानिने उपनिषदर्थो न उपदेष्टव्यः इति अर्थः. **तादृशदेश–कालयोः** इति युद्धोपयोगिबुद्धिभ्रमसम्पादकदारुणदेशकालयोः इति अर्थः. **तदर्थं**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

विश्वासे संशयस्य उक्तत्वाद् इति भावः. किञ्च, भक्तौ पुष्टित्वं नाम माहात्म्यज्ञानाद्युपाधिरहितत्वे सति साक्षाद्धर्मिस्वरूपपर्यवसायित्वे सति सुदृढत्वे सति ज्ञानादिसर्वानपनोद्यत्वे सति सर्वतोधिकत्वे सति अगणितानन्दरूपत्वे सति अतुल्यातिशयत्वम्. तच्च यत्र स्नेहरूपभक्तौ सैव 'पुष्टिभक्ति'पदवाच्या, साच गोपीनां गोपालानामेव इति अर्जुनस्यतु माहात्म्यज्ञानोपाधिसद्भावाद् न पुष्टिभक्तत्वम्. अतएव उक्तं विश्वरूपदर्श–नानन्तरम् अर्जुनेन ''**अजानता महिमानं तव**''(भग.गीता११।४१) इत्यादिना असत्कारनिवेदनं च सङ्गच्छन्ते. अतएव गोवर्धनोद्धरणानन्तरं स्वस्थाने स्थापनानन्तरं गोपालैः गोपीभिश्च भगवदुपरि जलं भ्रामयित्वा ''**दधाति तिलकः कृत**''* इति स्नेहकार्यमेव कृतं, नतु माहात्म्यदर्शनेन नमनं विज्ञापनादिकं कृतमिति तेषां तासां च पुष्टिभक्तत्वम् इति. इदं च श्रीमत्प्रभुगोस्वामिचरणैः पुष्टिप्रवाहमर्यादाविवरणे स्पष्टमेव उक्तम् इति विस्तरभयाद् विरम्यते.

तत्तु अर्जुनस्य मास्तु पुष्टिभक्तत्त्वं मर्यादामार्गरीत्या मर्यादाभक्तस्य उपनिषद्वाक्योपदेशे किं बाधकम्? अत आहुः **रथित्वेनैव** इति. **स्थाप्यत्वाच्च** इति. भगवता इति शेषः. तथाच मर्यादामार्गे कृताचमनप्राणायामस्य कुशासनोपविष्टस्य गुरुणा उपनिषद्वाक्योपदेशः कर्तव्यः इति विधि. नतु रथोपविष्टस्यापि (जिज्ञासु)भावमापन्नस्य शिष्यस्य गुरुणा श्रुतिवाक्योपदेशः सम्भवति इत्यतः स्मृतिवाक्योपदेशः इत्यपि बोध्यम्. अतएव मर्यादायां विधिरेव नियामकः पुष्टिमार्गेतु विधेः गौणत्वं स्नेहएव नियामकः इति पुष्टिप्रवाहमर्यादाविवरणे स्पष्टम्. अतएव आहुः **तादृशाय** इति. रथित्वात् तद्युद्धोपयोगिवेषधारिणे कुशासनाद् विहीनाय पुष्टिभक्तिहीनाय च इति अर्थः. ननु शुचौ देशे शुभे काले विध्युक्तकर्मणः प्रसरो भविष्यति इत्यतः आहुः **तादृशे**ति. संग्रामाङ्गण–रूपदेशे युद्धकाले च इति अर्थः. **अवक्तव्यत्वाद्** इति. तत्र सद्भावादिसेवकानाम् अत्यन्तसान्निध्याद् अवक्तव्यत्वाद् इति अर्थः. ननु सर्वम् इदं गीतायाः स्मृतित्वे सम्भवे, तदेवतु नास्ति भगवन्मुखनिःस्सृतत्वाद् इत्यतः आहुः **गुरुरूपे**ति. विधातुः गुरुरूपम्.

---

*(?) भाग.पुरा.१०।२५।२९ ''गोप्यश्च सस्नेहमपूजयन् मुदा दध्यक्षताद्भिः युयुजुः सदाशिषः''.

स्मृत्वा, भगवान् पुरुषोत्तमो वाक्यानि उक्तवान् स्मृतिरूपाणि.

ततो ब्रह्मविचारे तान्यपि उदाहृत्य चिन्त्यन्ते. पुनश्च भगवान् तदधिकारेण ब्रह्मविद्यां निरूप्य स्वकृपालुतया, ‘‘**सर्वगुह्यतमम्**’’(भग.गीता १८।६६) इत्यादिना भक्तिप्रपत्तीएव उक्तवान्. अतो अङ्गत्वेन पूर्वं सर्वनिर्णयाः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

निःश्वसितरूपवेदार्थं स्मृत्वा इति अर्थः. **वाक्यानि** ‘‘**ईश्वरः सर्वभूतानाम्**’’ (भग.गीता १८।६१) इत्यादीनि.

चिन्त्यन्ते सूत्रकारेण ‘‘**स्मृतेश्च**’’(ब्रह्मसू.१।२।६;४।३।११) इत्यादिसूत्रैः उदाहृत्य चिन्त्यन्ते इति अर्थः. **तदधिकारेण** स्मृतिद्वारा अर्जुनस्य ब्रह्मविद्योपदेशाधिकारेण इति अर्थः. **स्वकृपालुतया** इत्यादि. अर्जुनस्य ब्रह्मविद्योपदेशार्हशिष्यसमानगुरूपसत्तिप्रपत्यभावेऽपि स्वस्य भक्तेषु अत्यन्तं दयालुतया स्वस्मिन् भक्तिं शरणागमनं च उपदिष्टवान् इति अर्थः. **अतः** उपदिष्टयोः द्वयोः सर्वोत्कृष्टफलसाधकत्वात्. **पूर्वम्** एतद् उपदेशद्वयं ‘‘**मन्मना भव**’’(भग.गीता७।३४), ‘‘**सर्वधर्मान्**’’ (भग.गीता १८।६६) इत्यादिना कृतं ततः पूर्वं, यावत्फलतारतम्यज्ञानाय उक्तं ते सर्वे निर्णयाः एतदङ्गत्वेन

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तादृशं रूपं विधातृजनकं स्वस्य आदिमं रूपम् इति अर्थः. तस्य आदिमत्वे हेतुम् आहुः **वेदोद्गमे**ति. अत्र प्रमाणं ‘‘**यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै**’’ (श्वेता.उप.६।१२) इत्याद्युपनिषद्वाक्यम्. गीतायाः स्मृतित्वं प्रतिपादयन्ति **स्मृतित्वे**ति. तथाच उभयोः स्मरणेन स्मृतित्वं सिद्धम् इति भावः. स्मृतिरूपाणि स्मृतौ यादृशानि सन्ति तादृशानि वाक्यानि इति अर्थः. ननु एवं चेत् तर्हि ‘‘**तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि**’’ (बृहदा.उप.३।१२।६) इति उक्तत्वाद् उपनिषद्वाक्यैरेव ब्रह्मप्रतिपादनं कर्तव्यम्. तत्र स्मृतिवाक्यानां क्व उपयोगः इत्यतः आहुः **ततः** इति. उपनिषदर्थप्रतिपादकत्वरूपकारणाद् इति अर्थः. एवञ्च गीतावाक्यैः उपनिषत्प्रतिपाद्यपुरुषविचारः सुखेन कर्तव्यः इति भावः. इदानीं ब्रह्मविद्याविचारवान् भक्तः शरणागतश्च अधिकारी इति भगवदाशयं स्फुटीकर्तुं ब्रह्मविद्यायाः तदङ्गत्वं वदन्ति **पुनश्च** इत्यादिना **अध्यवसेयम्** इत्यन्तेन. पुनश्च इत्यस्य स्वकृपालुतया इत्यनेन सम्बन्धः. **तदधिकारेण** भक्तिप्रतिपत्यधिकारेण. **स्वकृपालुतया** इत्यनेन अर्जुनस्य तद्विषयकज्ञानाभावाद् आश्रयाभावेऽपि कथनं सूचितम्. **भक्तिप्रतिपत्ती**ति. ‘‘**मन्मना भव मद्भक्तः**’’ (भग.गीता ७।३४) इत्यादिना भक्तिप्रपत्तिः नाम शरणागमनम्, तच्च ‘‘**सर्वधर्मान् परित्यज्य**’’(तत्रैव१८।६६) इत्यनेन

उक्ताः इति अध्यवसेयम्, तथैव अर्जुनविज्ञानात् ‘‘**करिष्ये वचनं तव**’’ (तत्रैव १८।७३) इति. ‘**च**’कारात् तन्मूलभूतनिःश्वासोऽपि उच्यते. व्यासस्यापि भगवज्ज्ञानांशत्वाद् अदोषः।।६।।

उपक्रमबलीयस्त्वम् आशङ्क्य परिहरति

अर्भकौकस्त्वात् तद्व्यपदेशाच्च न
इति चेन्न निचाय्यत्वाद् एवं व्योमवच्च।।७।।

ननु व्यापकस्य ईश्वरस्य हृदयदेशस्थितिः अयुक्ता, व्रीह्यादिरूपत्वञ्च.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उक्ता इति अर्थः. **तथैव** भक्तिप्रपत्योः अनुभावरूपतयैव. **चकारात्** सौत्र‘च’कारात्. **तन्मूलभूते**ति स्मृतिमूलभूत–**निःश्वासोऽपि उच्यते**. ईश्वरस्य हृदयवृत्तिनिर्णायको वेदोऽपि अस्ति इति भावः. ननु भगवता स्वकृतवेदस्वरूपं कर्तृस्वरूपं च स्मृत्वा तथा उक्तमिति ताः स्मृतयो वेदान्तेषु उदाह्रियन्तां नाम तथापि व्यासैः स्वकृतपुराणवाक्यानि उदाह्रियन्ते तत्र किं मूलम्? इत्यतः आहुः **व्यासस्य** इत्यादि. तथाच स्वस्य भगवदभेदेन स्वकृतस्वरूपं स्वस्वरूपं च स्मृत्वा वदतीति न अनुपपत्तिः इति अर्थः।।६।।

अग्रिमसूत्रम् अवतारयितुम् आहुः **उपक्रमे**त्यादि. **बलीयस्त्वं** उपक्रमस्य असञ्जातविरोधित्वेन बलीयस्त्वम् इति अर्थः. **परिहरति** अत्र उपक्रमबलीयस्त्वं परिहरति इति अर्थः. सूत्रेण पूर्वपक्षं समाधातुम् आहुः **ननु** इत्यादि. **व्यापकस्य** ‘ब्रह्म’शब्दार्थस्य ‘‘**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**’’(छान्दो.उप.३।१४।१) इत्यनेन उपक्रान्तस्य. **अयुक्ता** व्यापकस्य स्वल्पस्थाने मातुम् अशक्यत्वाद् इति अर्थः. **व्रीह्यादिरूपत्वं** व्रीह्यादिरूपकप्रदर्शनं च

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उक्तवान् इति अर्थः. **अतः** इति. प्रधानस्य अन्ते निरूपणरूपकारणाद् इति अर्थः. तन्मूलभूतः निश्वासातिनिःश्वासो वेदः, स वै तैत्तिरीयोपनिषदि ‘‘**हृदयं चाप्यधोमुखम्**’’ (महाना.उप.११।७) इति उपक्रम्य ‘‘**तस्यान्ते सुपिण्डं सूक्ष्मं तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्**’’ (तत्रैव ११।९) इति उक्तम्. ननु क्वचिद् व्यासैरपि पुराणेषु ब्रह्मविद्या प्रतिपाद्यते तत्पुराणवाक्यमपि तन्मूलभूतं स्याद् अतः आहुः **व्यासस्यापि** इति. **अदोषः** इति. तन्मूलभूतत्त्वे दोषो नास्ति इति अर्थः ।।६।।

सूत्रम् अवतारयन्ति **उपक्रमे**ति. उपक्रमस्य जीवनिर्णायकवाक्यस्य बलीयस्त्वे असन्मतिपक्षत्वम्. ‘तद्व्यपदेश’पदस्य व्रीहिसादृश्यव्यपदेशार्थकत्वं ‘निचाय्यत्व’पदस्य प्रत्यक्षविषयत्वार्थकत्वं बोध्यम्. सूत्रस्थशङ्कार्थम् आहुः **ननु** इति. **व्रीह्यादिरूपत्वं च**

अतो **अर्भकम्** अल्पकम् **ओको** हृदयस्थानं यस्य तत्त्वाद् व्रीह्यादीतुल्यत्वाच्च न परमात्मा वाक्यार्थः **इति चेद्, न, निचाय्यत्वात्.** पूर्वं प्रथमदूषणं परिहरति. हृदये ज्ञातुं शक्यते इति तदायतनत्वेन प्रतिपाद्यते. निदिध्यासनानन्तरं हि साक्षात्कारः तदन्तःकरणएव इति निचाय्यत्वम्. भक्तौतु बहिरपि इति विशेषः. द्वितीयं परिहरति. **एवं व्योमवत्.** एवं व्रीह्यादितुल्यतया यत् प्रतिपादनं चतुर्विध-

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अयुक्तं व्रीह्यादीनां परिच्छिन्नत्वाद् इति अर्थः. **तत्त्वात्** हृदयरूपस्वल्पदेशवृत्तित्वात्. **वाक्यार्थः ‘‘अन्तरात्मन् पुरुषो हिरण्मयः’’**(शत.ब्राह्म.१०।६।३।२) इति वाक्यस्य अर्थः. तथाच **‘‘ईश्वरः सर्वभूतानाम्’’**(भग.गीता१८।६१) इति स्मृतिः ईश्वरबोधिका-योग्यतानिर्णयाद् उक्तवाक्यार्थेनैव प्रवर्तते इति अर्थः. **इति चेद् न** उक्तवाक्यार्थो ब्रह्म न इति चेद्, न, इति अर्थः. तत्र हेतुः **निचाय्यत्वाद्** इति. हृदये ब्रह्मणः परिचेयत्वाद् इति अर्थः. **प्रथमदूषणं** ब्रह्म हृदये मातुं न शक्नोति इति दूषणम्. ‘निचाय्यत्वाद्’ अस्य अर्थम् आहुः **हृदये ज्ञातुम्** इत्यादि. **इति** इति हेतौ. **तदायतने**त्यादि. तथाच ब्रह्म यतो हृदये ज्ञातुं शक्यते अतो हृदयायतनं **प्रतिपाद्यते** नतु हृदयमात्रवृत्तित्वमपि इति भावः.

हृदये ज्ञातुं शक्यमेव उपपादयन्ति **निदिध्यासे**त्यादिना. **तदन्तःकरणे** जीवान्तःकरणे. **निचाय्यत्वं** ब्रह्मणः साक्षात्कारविषयत्वम् इति अर्थः. इत्थञ्च सर्वत्र ब्रह्मणः साक्षात्कारविषयत्वाद् व्यापकत्वेन न स्मृत्या बोधजनने अयोग्यतानिर्णयः इति अर्थः. **द्वितीयं** ब्रह्मणि परममहत्परिमाणं न भविष्यति इति दूषणम्. **एवं व्योमवद्** इति. **एवं** ब्रह्मणो वृत्तित्वदूषणपरिहारवत्. **व्योमवत्** उपरवे प्रतीयमानव्योमदृष्टान्तेन इति अर्थः. **चतुर्विधे**त्यादि. जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जभेदेन स्थूलसूक्ष्मतरभूतान्तरत्व-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति. अयुक्तम् इति लिङ्गविपरिणामेन अन्वयः. **न परमात्मा वाक्यार्थः** इति. जीवधर्मस्य स्पष्टप्रतीयमानत्वाद् इति हेतोः पूरणाय सूत्रस्य समाधानार्थम् आहुः **पूर्वम्** इति. तद्धृदयम् आयतनत्वेन **प्रतिपाद्यते**. नतु वस्तुगत्या तद् आयतनम् अस्ति इति भावः. **तदन्तःकरणे** जीवान्तःकरणे. ज्ञानमार्गे उपलब्धिस्थानम् उक्त्वा भक्तिमार्गे सर्वत्रोपलब्धिम् आहुः **भक्तौतु** इति. **बहिरपि** इति. ‘अपि’शब्देन अन्तःकरणस्य संग्रहः. अतएव **‘‘अन्तर्बहिश्च तत् सर्वं व्याप्य नारायणस्थितः’’** (महाना.उप.११।६) इति तैत्तिरीयश्रुतिप्रतिपादितव्यापकतापि सङ्गच्छते. **द्वितीयम्** इति. व्रीह्यादिपरिमाणरूपं दूषणम् इति अर्थः. **चतुर्विधे**ति. जरायुजादिचतुर्विधेति अर्थः. **व्योमवद्** इति. दृष्टान्तं

भूतान्तरत्वख्यापनाय. यथा ‘‘**चत्वार उपरवाः प्रादेशमात्राः**’’(आप.श्रौ.सू.११।११।१) इति तथा तद्हृदयाकाशे प्रकटस्य सच्चिदानन्दस्वरूपसर्वतःपाणिपादान्तस्य तत्स्वरूपम् इति. पूर्वपक्षसिद्धान्तयोः ‘**च**’कारद्वयम् एतादृशवाक्यान्तरे

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ख्यापनाय इति अर्थः. व्योमवद् इति दृष्टान्तम् उपपादयन्ति **यथा** इत्यादिना. ‘‘**चत्वारः उपरवाः**’’ सोमयागे हविर्धानशालाग्नेय्यां प्रादेशमात्रबिलाः चत्वारः उपरवाः क्रियन्ते. तत्रच प्रादेशमात्रपरिमाणवत्तया यथा आकाशः प्रतीयते **तथा** तत्तुल्यतया **तद् हृदयाकाशे** चतुर्विधभूतहृदयाकाशे. **तत्स्वरूपं** चतुर्विधभूतान्तर्हृदये प्रकटस्य ब्रह्मणः स्वरूपम् इति अर्थः. एतदेव उपपादितं तैत्तिरीये ‘‘**अतः परं नान्यदणीयसं हि परात्परं यन्महतो महान्तम्**’’(महाना.उप.१।५) इति नानापरिमाणम् एकमेव ब्रह्मोक्तम् अवसेयम्. **चकारद्वयं** सौत्र‘च’कारद्वयम्. **एतादृशवाक्यान्तरे** इत्यादि. पूर्वोक्तसूत्रद्वये यौ पूर्वपक्षसिद्धान्तम् उक्तौ तदपेक्षया ‘‘**अर्भकोकः**’’ (ब्रह्मसू.१।२।७) सूत्रात्मकं यद् वाक्यान्तरं तत्र पूर्वपक्षसिद्धान्तयोः आधिक्येन उपपत्तिः. तथाच ‘‘**शब्दविशेषात्**’’ (तत्रैव१।२।५), ‘‘**स्मृतेश्च**’’(तत्रैव १।२।६) इति सूत्रद्वयेन हिरण्मयपुरुषस्य ब्रह्मत्वं

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

विशदयन्ति **यथा.** **उपरवाः** इति. सोमयागीयवेद्यां सदो मण्डपात् पुरतो हविर्द्धानम् अस्ति तत्र दक्षिणभागे शकटात् पुरतः चत्वारः प्रादेशमात्राः बिलविशेषाः ‘उपरव’-पदवाच्याः इति अर्थः. दार्ष्टान्तिकं विशदयन्ति **तथा** इति. यथा उपरवचतुर्विधं बिलेषु व्यापकीभूतस्य आकाशस्य प्रादेशमात्रत्वज्ञानम्. तथा चतुर्विधभूतहृदयेषु व्रीह्यादितुल्यत्वेन व्यापकीभूतस्य परब्रह्मणः प्रतिपादनम् इति भावः. **तद्हृदये**ति. चतुर्विधजीवहृदयेति अर्थः. **तत्स्वरूपम्** इति. व्रीहितुल्यस्वरूपम् इति अर्थः. सूत्रस्थचकारद्वयतात्पर्यम् आहुः **पूर्वपक्षे**ति. **एतादृशवाक्यान्तरे** तैत्तिरयोपनिषदि ‘‘**आदित्यो वा एष एतन्मण्डलम्**’’(महाना.उप.१०।१) इति वाक्यान्तरे. **आधिक्ये**ति. आधिक्ये पूर्वापेक्षया वैलक्षण्ये या उपपत्तिः पूर्वपक्षसमाधानं तत्समुच्चयार्थम् इति अर्थः. तथाहि, तैत्तिरीयं विषयवाक्यम् ‘‘**आदित्यो वा हिरण्मयः पुरुषः**’’(बृहदा.उप.४।३।११) अत्र हिरण्मयः पुरुषो जीवो वा ब्रह्म वा इति संशयः. तत्र जीवः इति पूर्वपक्षः. कुतः? आदित्यमण्डले हृदयापेक्षया महत्त्वरूपं वैलक्षण्यं यद्यपि वर्तते, तथापि परममहत्त्वपरिमाणाभावात् तत्रत्यपुरुषस्य जीवत्वमेव वक्तव्यत्वाद् इति सिद्धान्तस्तु तत्रापि निचाय्यएव हृदयादौ इव इत्यत्र प्रमाणं ‘‘**यश्चासावादित्ये स एकः**’’(तैत्ति.उप.२।८) इति श्रुतिरेव. ननु एतादृश-

पूर्वपक्ष-सिद्धान्तयोः आधिक्योपपत्तिसमुच्चयार्थम्. तेन, ‘‘**अतएव प्राणः**’’ (ब्रह्मसू.१।१।२२) इतिवद् अधिकरणान्तरमपि सूचितम् इति।।७।।

बाधकम् आशङ्क्य परिहरति.

सम्भोगप्राप्तिरिति चेन्न वैशेष्यात्।।८।।

यदि सर्वेषां हृदये भगवान् जीववत् तिष्ठेत् तदा जीवस्येव तस्यापि सुखदुःखसाक्षात्कारः तत्साधनादिपरिग्रहश्च प्राप्नोति इति **चेद्, न, वैशेष्यात्.** विशेषस्य भावो वैशेष्यं तस्मात्. सर्वरूपत्वम् आनन्दरूपत्वं स्वकर्तृत्वं *विशेषः. तद्भावो ब्रह्मणि वर्तते, न जीवे इति जीवस्यैव भोगो, न ब्रह्मणः इति. ‘वैशेष्य’पदाद् अयम् अर्थः सूचितः. अपेक्षितएव भोगो, न अनपेक्षितः इति. नतु

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

निर्णीतमेव, पुनः अनेन सूत्रेण स्वातन्त्र्येण पूर्वपक्षं कृत्वा हिरण्मयपुरुषस्य ब्रह्मत्वं निर्णीयते. तादृशार्थद्योतनाय ‘च’कारद्वयम् इति अर्थः. **तेन** भिन्नपूर्वपक्षसिद्धान्ताभ्यां निर्णयकरणादेव. **अधिकरणान्तरं** पूर्वसूत्रद्वयरचिताधिकरणापेक्षया इदम् अधिकरणान्तरम् इति अर्थः।।७।।

बाधकं हिरण्मयपुरुषस्य ब्रह्मत्वे बाधकम्. आशङ्काम् आहुः **यदी**त्यादि. **सर्वेषां** पूर्वोक्तचतुर्विधभूतानाम्. **तत्साधनादि** इति. सुखप्राप्तेः दुःखनिवृत्तेश्च साधनपरिग्रहः ईश्वरस्यापि कर्तव्यो भवेद् इति अर्थः. समाधानम् आहुः **न** इत्यादि. **स्वकर्तृत्वं** ‘‘**स एतावानास**’’(बृहदा.उप.१।४।३) इति, ‘‘**आत्मानं स्वयमकुरुत**’’ (तैत्ति.उप.२।७) इति श्रुतिभिः स्वात्मकप्रपञ्चकर्तृत्वम् इति अर्थः. ननु जीवतुल्यतया ब्रह्मणो भोगवारणार्थं निर्विशेषत्वशुद्धत्वबुद्धत्वमुक्तस्वभावत्त्वाद्येव सूत्रे हेतुः कुतो न उक्तः? ‘‘**वैशेष्याद्**’’ इति किमिति उक्तः? इत्यतः आहुः **अपेक्षितएव** इत्यादि. तथाच

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

विषयवाक्यघटितम् अधिकरणान्तरं स्यात्. तत्र इष्टापत्तिम् आहुः **तेन** इति ।।७।।

बाधकम् इति. सम्भोगप्राप्त्या जीवतुल्यत्वरूपबाधकम् इति अर्थः. ननु कथं बाधकम्? इत्यतः आहुः **यदी**ति. ‘सम्भोग’पदस्य सम्यग् भोगः सम्भोगः इत्यर्थकत्वं मनसि निधाय आहुः **सुखदुःखे**ति. ‘सम्भोग’पदस्य सम्यग् भोगो यस्मात् साधनात् सः इति साधनीभूतपुण्यपापादिपरत्वं मनसि निधाय आहुः **तत्साधने**ति. सुखदुःखसाधनेति अर्थः. समाधानम् आहुः **वैशेष्याद्** इति. **स्वकर्तृत्वं** स्वस्वरूपजगत्कर्तृत्वम्. ***तद्विशेषः**. तस्माद् जीवाद् विशेषः. **तद्भावः** इति. तस्य विशेषस्य भावो वैशेष्यम्

तस्य भोगाभावएव, अग्रिमाधिकरणविरोधात्. यथा इन्द्रियाधिष्ठातृदेवानाम्. ‘‘**तत्त्वमस्या**’’दिवाक्येन जीवस्यापि तथात्वे तस्यापि तद्वदेव भविष्यति।।८।।

इति प्रथमाध्याये द्वितीयपादे द्वितीयं शब्दविशेषाधिकरणम्।।२।।

अत्ता चराचरग्रहणात्।।९।। (१।२।३।)

कठवल्लीषु पठ्यते ‘‘**यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनः, मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः**’’ (कठोप.१।२।२५) इति. अत्र वाक्ये ब्रह्म-क्षत्रयोः ओदनत्वं वदन् ‘यच्’छब्दार्थस्य भोक्तृत्वम् आह. तत्र संशयः. किं

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ब्रह्मणि यथा सर्वरूपत्वसर्वकर्तृत्वादिरूपो विशेषो जीवापेक्षया वर्तते तथा भोगेऽपि वर्तते अतो भोगोपेक्षितएव न अनपेक्षितः इति वैशेष्याद् इत्येव सौत्रो हेतुः समीचीनः इति अर्थः. ननु ‘‘**अन्यो अनश्नन् अभिचाकशीति**’’ (श्वेता. उप.४।६) श्रुतिबलाद् ब्रह्मणो भोगाभावएव वाच्यः इत्यतः आहुः **नतु भोगाभावः** इति. कैमुतिकन्यायेन भगवतो भोगं साधयितुम् आहुः **यथेन्द्रिये**त्यादि. तथाच ‘‘**चक्षुषः चक्षुः**’’(बृहदा.उप.४।४।१८) इत्यादिश्रुत्युक्तेन्द्रियाधिष्ठात्राधिदैविकदेवानां यथा इन्द्रियजभोगभोक्तृत्वं तथा ‘‘**तत् त्वम् असि**’’ आदि वाक्येन सद्गुरुकृपया जीवस्यापि **तथात्वे** भगवत्सम्बन्धत्वे. **तस्यापि** जीवस्यापि. **तद्वदेव** भोगभोक्तृभगवतइव भोगभोक्तृत्वं भविष्यति इति अर्थः।।८।।

पूर्वोक्तं भगवद्भोगं दृढीकर्तुम् अधिकरणम् आह सूत्रकारः कठवल्लीस्थं

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति अर्थः. **अग्रिमे**ति. चराचरेति अर्थः. ‘‘ब्रह्मणो अपेक्षितभोगएव वर्तते’’ इत्यत्र अनुमानमेव प्रमाणम् आहुः **यथा** इति. चक्षुषा सुरूपं कुरूपम् उभयमपि गृह्यते. अधिष्ठातुः तत्पुरुषएव अपेक्षेति तस्यैव अभिनिवेशेन ग्रहणं यथा, तथाच अत्र अस्य अचक्षुषश्चक्षुः अश्रोत्रस्य श्रोत्रम् इति सर्वाधिष्ठातुः ब्रह्मणोऽपि अपेक्षितभोगवत्त्वम् अनुमीयते इति भावः. अनुमानं च ब्रह्मापेक्षितभोगवद्, अधिष्ठातृत्वाद्, इन्द्रियाधिष्ठातृदेवतावत्. **तथात्वे** इति. ब्रह्मत्वे इति अर्थः. भविष्यति इति ब्रह्मवदेव अपेक्षितभोगवत्त्वं भविष्यति इति अर्थः. ततः पूर्वन्तु अविद्यावश्यत्वाद् पुण्यादिसाधनेनैव अपेक्षितभोगवत्त्वं भविष्यति इति सर्वम् अनवद्यम्।।८।।

अपेक्षितभोगवत्त्वं ब्रह्मणि साधयितुं चराचराधिकरणम् आहुः **अत्ता चराचर-ग्रहणात्**. विषयवाक्यम् आहुः **पठ्यते** इति. द्वितीयवल्लिसमाप्तौ. अथ विषयवाक्यम् :

‘‘न जायते म्रियते वा विपश्चिद् नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्.

जीवो ब्रह्म वा ? इति. सच्चिदानन्दरूपत्वं सर्वोपास्यत्वं पूर्वाधिकरणद्वयेन सिद्धम्. सर्वभोक्तृत्वं साधयति. ब्रह्म-क्षत्रयोः अशक्यवधयोः सर्वमारकस्य च मृत्योः भक्षयिता जीवो न भवत्येव इति कथं सन्देहः इति चेद्, उच्यते. ओदनोपसेचनरूपकत्वाद् जीवधर्मत्वम्, स्थानाज्ञानाच्च. नहि सर्वगतस्य स्वहृदयेऽपि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

विषयवाक्यम् आहुः ''**यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनं मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र स**'' (कठोप.१।२।२५) इति. **सिद्धं** ब्रह्मणः सिद्धम्. **सर्वभोक्तृत्वं** ब्रह्मणः सर्वभोक्तृत्वम्. **ओदने**त्यादि. तथाच ओदनस्य जीवभोग्यत्वेन घृताद्युपसेचनस्य च तद्भोजनोपकारित्वेन प्रसिद्धत्वात्. ''**क इत्था वेद**'' इत्यनेन स्थानाज्ञानाच्च इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे.
हन्ता चेद् मन्यते हन्तुं हतश्चेद् मन्यन्ते हतम्.
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते.
अणोरणीयान् महतो महीयान आत्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्.
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादाद् महिमानमात्मनः.
आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः. कस्तं मदात्मकं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति,
अशरीरं शरीरे ह्यनवस्थे ह्यवस्थितम्.
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति.
नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्.
नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः.
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्.
यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनः.
मृत्युर्यस्योपयेचनं क इत्था वेद यत्र सः''(कठोप.१।२।१८-२५).

इति प्रथमाध्याये द्वितीयवल्ली. **अथ भाष्यम्,** संशयम् आहुः **तत्र** इति. तत्र यच्छब्दार्थसङ्गतिम् आहुः **सच्चिद्** इति. **पूर्वाधिकरणद्वयेन** इति. ''**सर्वं खल्विदम्**'' (छान्दो.उप.३।१४।१) इति वाक्ये सद्रूपत्वं ''सत्यसङ्कल्पे''त्यनेन चिद्रूपत्वं ''नित्यतृप्ते''त्यनेन आनन्दत्वं द्वितीयाधिकरणे हृदये सर्वोपास्यत्वं सिद्धम् इति अर्थः. **साधयति** इति. प्रसङ्गतः इति शेषः. अधिकरणवैयर्थ्यम् आशङ्कते **ब्रह्मक्षत्रयोः** इति. समाधानम् आहुः **उच्यते** इति. धर्मद्वयेन जीवकाद्युपस्थितिम् आहुः **ओदने**त्यादिना

प्रतिभासमानस्य “**क इत्था वेद यत्र सः**”(तत्रैव १।२।२५) इति अज्ञानम् उपपद्येत. अलौकिकसामर्थ्याच्च सन्देहः. तत्र निषिद्धत्वात् लौकिकभोजनवद् निरूप्यमाणत्वात् स्थानाज्ञानाच्च कश्चिद् उपासनोपचितालौकिकसामर्थ्यो महादेवादिः अत्ता भविष्यति. नतु तद्विरुद्धधर्माः भगवान् भवितुम् अर्हति, अक्लिष्टकर्मत्वादिधर्मवान्. तस्माद् जीवएव उपासनोपचितमहाप्रभावो वाक्यार्थः इति एवं प्राप्ते अभिधीयते “**अत्ता चराचरग्रहणात्**”. **अत्ता** भगवानेव. कुतः? **चराचरग्रहणात्**. चरं सर्वप्राणिवधार्थं परिभ्रमन् मृत्युः. अचरं ब्रह्मक्षत्ररूपं

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अर्थः, इत्यनेन जीवकोट्युपस्थितिरूपस्थितिः उक्ता ब्रह्मकोट्युपस्थित्यर्थम् आहुः **अलौकिके**त्यादि. ब्रह्मक्षत्रमृत्युभोक्तृत्वस्य अत्यलौकिकस्य ब्रह्मातिरिक्तासाध्यत्वाद् इति अर्थः. **तत्र** उक्तभोक्तृपदार्थे. **निषिद्धत्वाद्** ब्राह्मणादिप्राणहिंसनस्य ब्रह्मण्यदेवे निषिद्धत्वाद् इति अर्थः. **लौकिके**त्यादि. घृताद्युपसेचनयुक्तौदनभोजनस्य लौकिकस्य समानतया ब्रह्मक्षत्रमृत्युभोजनस्य निरूप्यमाणत्वाद् इति अर्थः. **स्थानाज्ञानाच्च** “**कइत्था वेद**” इत्यनेन स्थानाज्ञानाच्च इति अर्थः. **कश्चिद्** इत्यादि. उग्रोपासनया भौमवत्प्राप्तालौकिकसामर्थ्योमहातामसो जीवो महादेवो वा तामसः चेष्टो अत्ता भविष्यति इति अर्थः. महादेवस्यैव तादृशनिषिद्धभोक्तृत्वन्तु अगस्त्यसंहितायां महादेवेन प्रथमाध्याये पार्वतीं प्रति उक्तम् “**भक्त्यार्पयन्ति ये मह्यं तवापि पिशितादिकं, तृप्तिम् उत्पादयत्येव विधिनाविधिनार्पितम्, उत्पादयति चानन्दं गणेभ्यो वा सुरेश्वरी**” (अगस्त्यसं.   ) इत्यादिवाक्यात्. **प्राप्ते** परब्रह्मातिरिक्तस्य उक्तभोक्तृत्वरूपे पूर्वपक्षे

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उपपद्येत इत्यन्तेन. अज्ञातस्थानकत्वरूपं धर्मं जीवस्यैव नतु ब्रह्मणः इति प्रतिपादयन्ति **न हि** इति. तर्हि जीवएव भवतु, मास्तु सन्देहः इत्यतः आहुः **अलौकिके**ति. मृत्यूपसेचनविशिष्टब्रह्मक्षत्रभक्षकत्वं ब्रह्मण्येव, न जीवे इति सन्देहः इति अर्थः. अयम् एको धर्मो जीवेऽपि स्थास्यति इति पूर्वपक्षी वदति. **तत्र** इति. कथं स्थास्यति? इत्यतः आहुः **उपासना** इति. उपासनाविशिष्टः कश्चिद् जीवो महारुद्रो वा ‘आदि’पदग्राह्यः अग्निरपि इति अर्थः. **तद्विरुद्धधर्मे**ति. अग्निः इह अलैकिकभोजनकर्तृत्वरूपविरुद्धधर्मेति अर्थः. सिद्धान्तम् आहुः “**अत्ता चराचरग्रहणात्**” सूत्रे ‘चराचर’पदे श्रुतौ ‘ब्रह्मक्षत्र’पदं च श्रूयते. अनयोः लक्षणां विना सामानाधिकरण्यं न उपपद्यते कैश्चित्. ‘ब्रह्मक्षत्र’पदस्यैव चराचरे लक्षणा एतासां न उपयुज्येत इति वाक्यवृत्त्यैव ‘चराचर’पदम् अपार्थचरम् इति.

कस्यापि अचाल्यम्. तयोः अत्ता न जीवो भवितुम् अर्हति. **''यत्रापि अतिशयो दृष्टः सः स्वार्थान् अतिलङ्घनात्''** इतिन्यायात्. अस्मदादिप्रतिपत्त्यर्थन्तु लौकिकवद् वचनं भोक्तृत्वाय. प्रलयकर्तृत्वाद् न अयुक्तत्वम्. सर्वत्र विद्यमानस्यापि अज्ञायमानत्वात् फलतः स्थानाज्ञानम् उक्तम्. ब्रह्मक्षत्रयोरपि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

प्राप्ते. **अभिधीयते** सूत्रेण समाधानम् उच्यते **''अत्ता चराचरग्रहणात्''**. **अत्ता** चराचरभोक्ता. मृत्योः चरत्वम् आहुः **चरम्** इत्यादिना. ब्रह्म-क्षत्रयोः अचरत्वम् आहुः **अचरम्** इत्यादिना. **अचाल्यं** प्रवाहनित्यतया अचाल्यम्. **''यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च''** (कठोप.१।२।२५) इति 'च'कारद्वयेन वर्णान्तरस्यापि ग्रहणम्, तस्यापि भक्तियोग्यतया मुक्त्यधिकारात्. ननु अमृत्युसम्पादकत्वे संहारकत्वेन ज्ञानदातृत्वेन प्रसिद्धः परमशिवएव अत्ता अस्तु अतः आहुः **यत्रापि** इत्यादि. **अतिशयो दृष्टः**. तथाच अतिशयः स्वामिसमानकार्यकारित्वम्. यथा अमात्ये युवराजे वा तत्रापि स्वार्थानतिलङ्घनादृष्टं, राजमात्रकार्यं यच्छत्रचामराद्यसाधारणं स्वामिमात्रासाधारणधर्मरूपं तस्य अनतिलङ्घनेनैव अन्यस्य कार्यं दृष्टम् इति न्यायात्. **''यतो वा इमानि''**(तैत्ति.उप.३।१) इति श्रुत्या चराचरस्य स्वस्मिन् निवेशनं परब्रह्मण्येव उक्तमिति न अन्यस्य सः धर्मः इति भावः. ननु उपसेचनविशिष्टौदनभोजनदृष्टान्तो लौकिकः किमिति उक्तः अतः आहुः **अस्मदादी**-त्यादि. **भोक्तृत्वाय** भगवतो भोजनबोधनाय. ननु ब्रह्मणो व्यापकत्वेन सर्वत्र स्थितत्वात्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

नच अल्पम् इति. पूर्वमीमांसायां प्रवाहनित्यत्वं तयोः उक्तम् इति भावः. ननु मास्तु जीवो मृत्युञ्जयः सएव अस्ति इत्यतः आहुः **यत्रापि** इति. यत्रापि अमात्यादौ. अतिशयम् प्रजापालने बुद्धिसौष्ठवरूपः सः स्वार्थानतिलङ्घनात् स्वस्य राज्ञो यो अर्थः सार्वभौमत्वरूपः तस्य उल्लङ्घनं न करोति तावत्पर्यन्तमेव अस्ति इति अर्थः. तथाच एवं न्यायाद् अमात्ये सार्वभौमत्वं यथा नास्ति तथा सर्वभोक्तृत्वं रुद्रेऽपि नास्ति इति भावः. उपसेचनादिलौकिकवद् भोजनकर्तृत्वं बाधकम् इत्यतः आहुः **अस्मदादी**ति. भोक्तृत्वापभोजनकर्तृत्वार्थं लौकिकवद्वचनन्तु अस्मदादिप्रतिपत्यर्थम् इति अन्वयः. तथाच उपसेचनविशिष्टौदनभोजनं भगवताऽपि क्रियते इति जीवस्य ज्ञानार्थम् इति भावः. ननु ब्रह्मक्षत्रादीनां भोजनं भगवतो युक्तं न भवति इत्यतः आहुः **प्रलये**ति. प्रलयकाले युक्तायुक्तविचारणायां प्रलयएव न स्याद् इति भावः. ननु भगवतः स्थानाज्ञानं च एतत् कथं प्रह्लादेन उक्तं स्तम्भे अस्ति इत्यतः आहुः **सर्वत्र** इति. **फलतः** इति.

मोक्षापेक्षितत्वात् मृत्युसम्बन्धमात्रेण भगवति भोक्तरि प्रवेशार्थं योग्यरूपत्वमेवौदनत्वम्. प्राणानां तत्रैव समबलयात् मृत्युरपि तत्रैव लीनो अग्रे जन्ममरणाद्यभावाय भगवत्येव प्रविशति. तस्माद् अस्मिन् वाक्ये ब्रह्मक्षत्रमृत्यूनां भोग्यत्वेन ग्रहणाद् अत्ता भगवानेव इति सिद्धम्।।९।।

ननु किमिति एवं प्रतिपाद्यते? पूर्वपक्षन्यायेन यमो अन्यो वा मृत्युं साधनीकृत्य स्ववशे सर्वं करोतीति जीववाक्यमेव किं न स्याद् इत्यतः आह.

प्रकरणाच्च।।१०।।

प्रकरणं हि इदं ब्रह्मणः. “**न जायते**” (कठोप.१।२।१८) इत्यारभ्य “**आसीनो दूरं व्रजति**” (कठोप.१।२।२१) इत्यादिना माहात्म्यं वदन् अन्ते च ब्रह्मक्षत्रं च इति आह. अतः प्रकरणानुरोधात् पूर्वोक्तप्रकारेण ब्रह्मवाक्यत्वम्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

“**क इत्था**”(कठोप.१।२।२५) इत्यादिज्ञानोक्तिः असङ्गता इत्यतः आहुः **सर्वत्र** इत्यादि. फलतः अर्थवशतः. ननु ब्रह्मण्यदेवस्यैव तादृशनिषिद्धभोक्तृत्वं कथं सम्भवति इत्यत्र समाधानम् आहुः **ब्रह्मक्षत्रयोः** इत्यादि. **मोक्षापेक्षितत्वाद्** मोक्षापेक्षा विद्यते येषु ते मोक्षापेक्षिणः तेषां भावः तत्त्वाद् इति अर्थः. **योग्यरूपमेव** इति एवकारेण अयोग्यतावच्छेदः उक्तः. जीवानां मुक्तानां सम्बन्धि मृत्योः भक्षणम् आहुः **प्राणानाम्** इत्यादिना. **तत्रैव** भगवत्येव. **अग्रे** भगवति प्रवेशोत्तरकाले. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि।।९।।

सूत्रान्तरम् अवतारयितुम् आहुः **ननु किम्** इत्यादि. **एवं** ब्रह्मणो भोक्तृत्वं. “**प्रकरणाच्च**”. प्रकरणम् उपपादयन्ति “**न जायते**” इत्यादिना **आह** इत्यन्तेन. **अतः** एतद्वाक्यस्य ब्रह्मप्रकरणित्वतः **अन्यथा** इति अन्यथा “**यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च**” इत्यत्र–

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

स्थानविषयकपरोक्षाभावेऽपि भगवद्विषयकचाक्षुषत्वाभावे पर्यवसानाद् इति अर्थः. ननु प्रलयकर्तृत्वेऽपि क्लिष्टकर्मत्वम् अयोग्यम् इति शङ्का तदवस्थैव इत्यतः आहुः **ब्रह्मक्षत्रे**ति. मृत्योः उपसेचनत्वकथनेन मृत्युना देहसम्बन्धाभावे मोक्षएव सर्वेषां मृत्योरपि भवतु नतु जन्मादौ इति. भगवदाशयेन अक्लिष्टकर्मत्वं तस्य बोध्यम्. “**स न वलयाद् इति इहैव समवलीयन्ते प्राणाः न च उत्क्रामन्ति**” (   ) इति श्रुत्या इति शेषः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति ।।९।।

उत्तरसूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इति. पूर्वपक्षे अतिनिषिद्धत्वादीनां भगवति अनौचित्याद् इति अर्थः. **अन्यो वा** इति. मत्युर्वा रोगादिरूपं मृत्युं साधनीकृत्य इति

इति. अन्यथा प्रकृतहानाप्रकृतकल्पने स्याताम् इति **‘च’**कारार्थः.

इति प्रथमाध्याये द्वितीयपादे तृतीयम् अत्ता चराचरेति अधिकरणम्।।३।।

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्।।११।। (१।२।४)

तस्यैव अग्रे पठ्यते. **‘‘ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे, छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेता’’**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

‘यच्’छब्दस्य जीवार्थत्वे. **प्रकृतहाने**त्यादि. प्रकरणपठितानां ब्रह्मधर्माणां हानम् उद्वापः प्रकरणापठितानां जीवधर्माणां कल्पनमावापश्च स्याद् इति अर्थः।।१०।।

‘‘यस्य ब्रह्म च’’ (कठोप.१।२।२५) इत्यनेन उक्तो भोगः कुत्र? व्यापिवैकुण्ठे अन्यत्र वा? एवं जीवस्यापि उभयोः अपेक्षितभोगस्थानानि निश्चेतुम् अधिकरणम् आरभ्यते **तस्यैव अग्रे** इत्यादिना. **तस्यैव** कठवल्ल्यां **‘‘यस्य ब्रह्म च’’** इत्यस्य अग्रे इति अर्थः. **‘‘ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे, छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेता’’** (कठोप.१।३।१) इति. **ऋतं** सत्यं. **सुकृतस्य** सम्यक्त्वं निश्चित्य कृतस्य कर्मणः फलम्. **पिबन्तौ** भुञ्जानौ. यद्यपि जीवः कर्मफलं भुङ्क्ते न ईश्वरः तथापि ‘‘छत्रिणो यान्ति’’ इति ‘छत्रि’पदस्य छत्र्यच्छत्रिसमुदाये लक्षणावद् अत्रापि भोक्त्रभोक्तृसमुदाये लक्षणा बोध्या. तथैव द्वित्वसामानाधिकरण्येन **‘पिबन्तौ’** इति पानान्वयो नतु द्वित्वावच्छेदेन. इत्थं च योग्यताबलाद् द्वित्वासामानाधिकरण्येन जीवएव कर्मफलभोगान्वयसम्भवाद् लक्षणा न कार्या इत्यपि ध्येयम्. **लोके** अस्मिन् शरीरे. **गुहां** हृदयाकाशम्. **परमे परार्धे** बाह्यपुरुषावयवापेक्षया उत्कृष्टे. तत्र उत्कर्षः परार्धं ब्रह्मणः स्थानं तद्वाचकशब्देन हृदयोल्लेखः इति तद्विभक्तज्ञान्युपा–

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अन्वयः. प्रकरणमेव उपपादयन्ति **‘‘न जायते’’** इति सूत्रस्थ‘च’कारार्थम् आहुः **अन्यथा** इति. अन्यथा अस्य ब्रह्मवाक्यत्वाभावे उपनिषद्वाक्यानां ब्रह्मपरत्वम्. प्रकृतं तत्परित्यागः जीवपरत्वम् अप्रकृतं तत्स्वीकारश्च स्याद् इति. दोषः इति अर्थः।।१०।।

यद्यपि भोगस्थानं भगवतः सर्वत्रैव अस्ति तथापि जीवेश्वरभेदरूपेण भोगस्थानं हृदयमपि इति सूचयितुं गुहाधिकरणम् आरचयन्ति **गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्**. विषयवाक्यस्थानं दर्शयन्ति **तस्यैव** इति. पूर्वसूत्रविषयवाक्यस्य **अग्रे** इति अर्थः. अथ विषयवाक्यम्.

‘‘ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे. छायातपौ

(कठोप.१।२।२०) इति. किम् इदं ब्रह्मवाक्यम् आहोस्विद् अन्यवाक्यम् ? इति. अस्य वाक्यस्य उत्तरशेषत्वे जीवप्रकरणपठितत्वार्थं* ब्रह्मवाक्यत्वं पूर्वशेषत्वेतु ब्रह्मवाक्यम् इति हि प्रकरणनिर्णयः. मध्ये पाठाद् एवं सन्देहः. अर्थविचारेतु

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सकानां ब्रह्मोपलब्धिस्थानं भवति. **छायातपौ** संसारित्वासंसारित्वाभ्यां विलक्षणौ भवतः इति **ब्रह्मविदो वदन्ति**. पुनः **ये पञ्चाग्नयः** श्रौतस्मार्तानुष्ठानकर्तारः. **त्रिणाचिकेताः** त्रिः वा त्रयं नाचिकेतो अग्निः यैः ते अग्निचयनत्रयकर्तारो गृहस्था अपि वदन्ति इति अर्थः. एतद्वाक्ये संशयम् आहुः **किम् इदम्** इत्यादिना. **ब्रह्मवाक्यं** ब्रह्मनिर्णायकं वाक्यम्. **अन्यवाक्यं** ब्रह्मान्यनिर्णायकं वाक्यं वा इति अर्थः. आदौ ‘‘**अन्यत्र धर्माद् अन्यत्राधर्माद्**’’(कठोप.१।२।१४) इति द्वितीयवल्लिस्थं ब्रह्मप्रकरणस्थं वाक्यं तदनन्तरम् ‘‘**ऋतं पिबन्तौ**’’(कठोप.१।३।१) इति वाक्यं तदनन्तरम्. ‘‘**आत्मानं रथिनं विद्धि**’’ (कठोप.१।३।३) इत्यारभ्य जीवनिरूपणाद् जीवस्य प्रकरणम्. एवं स्थिते आहुः **अस्य** इत्यादि. **अस्य** ‘‘**ऋतं पिबन्तौ**’’ इति वाक्यस्य. **उत्तरशेषत्वे** ‘‘**आत्मानं रथिनं विद्धि**’’ इत्यादिजीवप्रकरणघटकत्वे. **पूर्वशेषत्वे** ‘‘**अन्यत्र धर्माद्**’’ इत्यादिब्रह्मप्रकरणघटकत्वे. **प्रकरणनिर्णयः** कर्तव्यः इति शेषः. **मध्ये पाठाद्** ब्रह्मप्रकरणजीवप्रकरणयोः मध्ये एतद्वाक्यस्य पाठात्. **एवं सन्देहः** वाक्ये किम्प्रकरणीयम् इदं वाक्यम् ? इति सन्देहः. तत्प्रयुक्तश्च वाक्ये ब्रह्मजीवपरत्वसंशयः इति अर्थः.

‘‘**ऋतं पिबन्तौ**’’ इतिवाक्ये अन्यतरप्रकरणित्वनिर्णयापेक्षया प्रकरणस्य चतुर्थप्रमाणत्वेन ‘‘**पिबन्तौ**’’ इति प्रथमश्रुतेः द्वित्वविशिष्टार्थप्रकाशनसामर्थ्यरूपलिङ्गस्य च प्रकरणापेक्षया प्रबलत्वात् श्रुतिलिङ्गपुरस्कारेण आहुः **अर्थविचारेतु** इत्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

> **ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः. यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत् परम् अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतं शकेमहि**’’ (कठोप.३।१).

अथ भाष्यम्. अस्मिन् अधिकरणे संशयबीजं विशदयन्ति **किम् इदम्** इति. **उत्तरशेषत्वे**ति. ‘यः सेतुरीजानानाम्’ इति उत्तरवाक्याङ्गत्वेति अर्थः. इदं च विषयवाक्ये स्पष्टम्. ननु प्रकरणपठितत्वांशे कथं सन्देहः? इत्यतः आहुः **मध्ये पाठाद्** इति देहलीदीपन्यायेन उभयत्रापि अन्वययोग्यतायाः सत्त्वाद् इति भावः. ननु अर्थविचारे क्रियमाणे न कोऽपि संशयः इत्यतः आहुः **अर्थविचारेतु** इति. **पूर्वशेषत्वे**ति. ‘‘**हन्ता**

---

*‘...पठितत्वात् न ब्रह्म...’’ इति पुरु.पाठः.

द्विवचननिर्देशात् पूर्वशेषत्वे बद्धमुक्तजीवौ भविष्यतः. उत्तरशेषत्वेतु इन्द्रियमनसी. उभयथापि न बह्मवाक्यं, द्वयोः मुख्यत्वेन प्रतिपादनात्. ब्रह्मवाक्येऽपि न प्रयोजनसिद्धिः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

द्विवचनेत्यादि. ‘**पिबन्तौ**’ इति प्रथमाद्विवचनेन द्वित्वविशिष्टार्थप्रकाशनात्, पूर्वशेषत्वे पूर्वं ‘‘**न जायते म्रियते वा विपश्चिद्**’’(कठोप.१।२।१८) इत्यादिना बद्धं जीवं निरूप्य ‘‘**महान्तं विभुम् आत्मानं मत्वा धीरो न शोचति**’’(कठोप.१।२।२२) इत्यारभ्य मुक्तस्यापि निरूपितत्वात् तदनन्तरं च ‘‘**ऋतं पिबन्तौ**’’ इत्यस्य पठनात्, तदेकवाक्यतया बद्ध-मुक्तजीवौ आयास्यत इति आहुः **बद्धमुक्ते**त्यादि. **उत्तरशेषत्वे** प्रकरणापेक्षया श्रुतिलिङ्गयोः बलीयस्त्वेन उत्तरत्र ‘‘**आत्मानं रथिनं विद्धि**’’(कठोप.१।३।३) इत्यादिभिः इन्द्रियमनसोरेव प्राधान्येन निरूपणात् तदेकवाक्यतया ‘‘**ऋतं पिबन्तौ**’’ इत्यपि वाक्यं इन्द्रियमनोबोधकमेव भविष्यति इति आहुः **इन्द्रियमनसी** इत्यादि. **उभयथापि** एतद्वाक्यस्य उक्तोभयप्रकरणान्यतरप्रकरणघटकत्वेऽपि. ब्रह्मवाक्याभावे हेतुम् आहुः **द्वयोः** इत्यादि. ‘**पिबन्तौ**’ इति द्विवचनोपयुक्तयोः द्वयोः इति अर्थः. **मुख्यत्वेन** समप्राधान्येन. **ब्रह्मवाक्येऽपि** ‘‘**ऋतं पिबन्तौ**’’ इतिवाक्यस्य जीवब्रह्मोभयार्थत्वा-ङ्गीकारेऽपि. **न प्रयोजनसिद्धिः** ब्रह्मणि वाक्यस्य समन्वयरूपा न प्रयोजनसिद्धिः. तत्र हेतुः **द्वयोः मुख्यत्वेन प्रतिपादनाद्** इति पूर्वोक्तएव अवसेयः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

चेन् मन्यते’’(कठोप.२।१९) इत्यनेन ‘‘**मत्वा धीरो न शोचति**’’ (कठोप.६।६) इत्यनेन च बद्धमुक्तजीवयोः उक्तत्वाद् इति भावः. **इन्द्रिये**ति. ‘‘**यस्तु अविज्ञानवान् भवति**’’ (कठोप.१।३।७) इत्यादौ उभयोः निरूपणाद् इति भावः. **उभयथा** इति. शब्दविचारेतु एकस्मिन् पक्षे ब्रह्मवाक्यत्वं समायाति. अर्थविचारेतु ब्रह्मवाक्यत्वमेव अस्य न भवति इति भावः. अत्र पूर्वशेषत्वम् अङ्गीकृत्य जीवब्रह्मपरमेव इदं वाक्यं भवतु. कुतः? ‘‘**येयं प्रेते विचिकित्सा**’’(कठोप.१।२०) इत्यनेन ‘‘**अन्यत्र धर्माद्**’’ इत्यनेन च उभयोः उक्तत्वाद् इति केषाञ्चित् समासमाधानं, तन्निराकुर्वन्ति **द्वयोः** इति. जीवब्रह्मणोः इति अर्थः. **न प्रयोजनसिद्धिः** इति. ‘‘**तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि**’’ (बृहदा.उप.३।१२।६) इति प्रश्ने मुख्यतया केवलब्रह्मप्रतिपादनपरमेव उपनिषद्वाक्यम् उत्तररूपं वक्तव्यम्. तस्य उभयपरत्वे केवलब्रह्मपरत्वाभावाद् असम्भावनाविपरीतभावनानिर्वतकमनना-द्यभावाद् मोक्षरूपप्रयोजनसिद्धिं न भवति इति अर्थः.

अथ मन्यते, उपनिषत्पाठाद् अन्यत्र अनिर्धाराद् जीवब्रह्मपरत्वेऽपि तयोः अभेदाद् ब्रह्मपरतैव वाक्यस्य युक्तः इति. तथापि कस्य निर्णायकत्वं, प्रकरणस्य अर्थस्य वा ? इति. उभयोरपि सन्दिग्धत्वाद् अयुक्तो विचारः इति चेद्, उच्यते.

सन्देहवारकं शास्त्रं पदशक्त्यातु निर्णयः।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उभयप्राधान्येऽपि उभयोः ऐक्याद् वाक्यस्य ब्रह्मणि समन्वयो न विरुद्धः इति एकदेशिमतं दूषयितुम् अनुवदन्ति **अथ** इत्यादिना. **मन्यते** वादी वक्ष्यमाणं मन्यते. ''**तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि**''(बृहदा.उप.३।९।२६) इति श्रुतिम् अवलम्ब्य वदति **उपनिषदि**त्यादि. **पाठाद्** ''**ऋतम्**'' इतिवाक्यस्य पाठाद् इति अर्थः. **अन्यत्र** इत्यादि उपनिषद्भिन्ने जीवब्रह्माभेदानिरूपणाद् एतद्वाक्यस्य जीवब्रह्मोभयपरत्वेऽपि तयोः ऐक्याद् वाक्यस्य ब्रह्मणि समन्वयो न अनुपपन्नः इति अर्थः. तन्मतं दूषयन्ति **तथापि** इत्यादिना. **निर्णायकत्वं** जीव-ब्रह्मणोः तदभेदस्य च निर्णायकत्वम्. **उभयोः** प्रकरणार्थयोः. **सन्दिग्धत्वात्** पूर्वोक्तरीत्या सन्दिग्धत्वात्. **अयुक्तो विचारः** अर्थप्रकरणयोः निर्णायकयोः सन्दिग्धत्वाद् निर्णयासम्भवाद् विचारः एतद्वाक्यस्य अयुक्तः इति अर्थः. **इति चेद्** विचारकर्तव्यतायाः अयुक्तत्वं प्राप्तं चेद् **उच्यते** समाधानं उच्यते.

सन्देहवारकम् इत्यादि. तथाहि, ''**वेदैश्च सर्वैः अहमेव वेद्यः**'' (भग.गीता १५।१५), ''**सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति**''(कठोप.१।२।१५) इत्यादिभिः वाक्यैः एकवाक्यतया सर्वेषां वेदान्तानां ब्रह्मणि जीवमुक्तिप्रतिपादनतात्पर्यकत्वेऽपि कालदोषेण बुद्धिमान्द्याद् जीवानां वेदतात्पर्यानवगमेन मुक्त्युच्छेदं दृष्ट्वा दयालुतया जीवानां वेदतात्पर्यविषयीभूतार्थबोधनाय सूत्रात्मकं शास्त्रं कृतवानिति तेनैव वेदार्थसन्देहो निरसनीयः इति भावः. ननु पूर्वम् उक्तं प्रकरणापेक्षया श्रुति-लिङ्गयोः बलिष्ठत्वात्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ननु जीवब्रह्मणोः ऐक्याद् ब्रह्मपरत्वे सम्भवति इति कथं न प्रयोजनसिद्धिः ? इति आशयेन आशङ्कते **अथ** इति. **उपनिषत्पाठाद्** इति. अस्य वाक्यस्य इति शेषः. तथाच उभयोः ऋतपानकर्तृत्वस्य उपनिषद्येव निर्द्धारः इति भावः. तथापि संशयाकारनिर्णयो न भविष्यति इति आशयेन विचारं निराकुर्वन्ति **तथापि** इति. **सन्दिग्धत्वाद्** इति. अर्थे प्रकरणे च पूर्वोत्तरशेषत्वेन सन्दिग्धत्वाद् इति अर्थः. **उच्यते** इति. विचारे युक्तत्वम् **उच्यते** इति अर्थः.

शास्त्रं व्याससूत्रम्. शङ्काकारे सम्भवति सति व्याससूत्राणां प्रवृत्तिः. सएवतु न

जीवाद् उत्कर्षशब्देन द्वयोर्वाक्येऽपि न क्षतिः।।१६।।

‘गुहा-तप’शब्दाभ्याम् इति अर्थः. ‘‘**ऋतं पिबन्तौ**’’ (कठोप.१।२।१) इत्यत्र एवं संशयः. किं जीवद्वयं निरूपयति आहोस्विद् जीवब्रह्मणी वा? इति. तत्र ब्रह्मप्रकरणस्य सामान्यत्वाद् ‘‘**यस्तु विज्ञानवान् भवति**’’ (कठोप.१।३।५) इति

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पूर्वशेषत्वे जीवद्वयम् उत्तरशेषत्वे इन्द्रिय-मनसी इति आहोस्विद् जीव-ब्रह्मणी इति वक्ष्यमाणः संशयः कथं सम्भवदुक्तिकः? इत्यतः आहुः **पदशक्त्यातु** इति. तथाच यावत्पर्यन्तं वेदानां पदशक्त्या निर्णयः सम्भवति तावत्पर्यन्तम् अर्थनिर्णयार्थं कारणान्तरं न अनुसरणीयम् इति अर्थः. ननु पदशक्त्या निर्णये कर्तव्ये सति ‘छायातप’शब्दाभ्यां शक्त्या लब्धार्थम् आदाय जीवब्रह्मोभयकोटिकएव संशयो युक्तो नतु जीवद्वयकोटिकोऽपि इत्यतः आहुः **जीवाद् उत्कर्षे**त्यादि. तथाच ‘छायातप’शब्दाभ्यां मिलित्वा आद्येन जीवः उक्तः द्वितीयेन जीवाद् उत्कृष्टश्च जीवाद् जीवोऽपि मुक्तः सम्भवति ईश्वरोऽपि इत्यतो जीवद्वयसन्देहो न अनुपपन्नः इति भावः.

गुहातपशब्दाभ्याम् इत्यस्य **उत्कर्षशब्देन** इत्यनेन अन्वयः. संशयस्वरूपम् आहुः **किं जीवद्वयम्** इत्यादिना. पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र ब्रह्म** इत्यादिना. **सामान्यत्वाद्** इत्यादि. तथाच ‘‘**अन्यत्र धर्माद्**’’(कठोप.१।२।१४) इत्यारभ्य ‘‘**अशब्दम् अस्पर्शम्**’’ (कठोप.१।२।१५) एतदन्तं ब्रह्मप्रकरणमेव अस्ति इति तन्मध्यपातित्वेन ‘‘**ऋतं**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सम्भवति प्रकरणादीनां सन्दिग्धत्वाद् इत्यतः आहुः **निर्णयः** इति. संशयाकारस्य निर्णयः कार्यः इति अर्थः. कीदृश पदशक्त्या? इत्यतः आहुः **जीवाद् उत्कर्षे**ति. संशयजनकं कोटिद्वयं व्यवस्थापयन्ति **द्वयो**ः इति. **वाक्येऽपि** विषयवाक्येऽपि. द्वयोः कोट्योः न क्षतिः इति अर्थः.

जीवाद् ‘उत्कर्ष’शब्देन इत्यस्य जीववाचकं पदं तदुत्कर्षवाचकं पदम् इति पदद्वयं मनसि निधाय अर्थम् आहुः **गुहा** इति. तथाच ‘गुहा’पदं छायापरर्यायं जीववाचकम्. ‘आतप’पदम् आकाशापरपर्यायं मुक्तजीववाचकम्. एवञ्च पदद्वयशक्त्यैव कोटिद्वयोपस्थितौ सत्यां संशयाकारनिर्णयः सुखेन सम्भवति इति विचारः कर्तव्यः इति भावः. एवं पदशक्त्या संशयाकारनिर्णयं साधयित्वा स्वरूपम् आहुः **एवं संशय** इति.

पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र** इति. **सामान्यत्वाद्** इति. ‘‘**अन्यत्र धर्माद्**’’ (कठोप.२। १४) इत्यारभ्य ‘‘**अशब्दम्**’’ इत्यन्तं ब्रह्मप्रकरणस्य सामान्यत्वाद् इति अर्थः. तथाच

अग्रे विद्वदविद्वतोः वक्तव्यत्वात् तदर्थम् उभयोः प्रथमनिर्देशः उचितः. मन्त्रेऽपि, ऋतं स्वर्गापवर्गलक्षणं सुखम्. मार्गद्वयस्यापि विहितत्वात् सुकृतलोकत्वम्. गुहा तत्त्वविचारो हृदयं वा.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पिबन्तौ’’ इत्येतद्वाक्यस्यापि ब्रह्मपरत्वमेव उचितम्. तथापि सर्वस्यापि वेदराशेः ब्रह्मप्रकरणत्वेऽपि अवान्तरप्रकरणानां तत्तदर्थनिर्णायकानां मध्ये सत्त्वम् अविरुद्धम्, इत्थं च सामान्यब्रह्मप्रकरणस्य अत्र सत्वेऽपि जीवद्वयप्रकरणम् अविरुद्धम् इति भावः. जीवद्वये विनिगमकम् आहुः **यस्तु** इत्यादि. **वक्तव्यत्वाद्** ‘‘**न जायते म्रियते वा विपश्चिद्**’’(कठोप.१।२।१८) इत्यनेन बद्धस्य ‘‘**महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति**’’ (कठोप.१।२।२२) इत्यस्य मुक्तस्य इत्यनेन वक्तव्यत्वात्. **तदर्थं** तादृशवाक्ययोः निर्वाहार्थम्. उभयोः बद्धमुक्तजीवयोः. उक्तार्थे लिङ्गम् आहुः **मन्त्रेऽपि** इत्यादिना. **स्वर्गे**त्यादि. तथाच बद्धः स्वर्गं भुङ्क्ते मुक्तोपवर्गम् इति अर्थः. ननु बद्धभोग्यस्वर्गस्य कथं सुकृतफलत्वम्? अतः आहुः **मार्गद्वयस्यापि** इत्यादि. स्वर्गापवर्गलक्षणमार्गद्वयस्यापि इति अर्थः.

ननु ‘‘**निहितं गुहायाम्**’’ इत्यादौ सर्वत्र गुहानिधानं ब्रह्मणः श्रूयतइति कथं जीवद्वयस्य गुहाप्रवेशः सम्भवति? इत्यतो ‘गुहा’शब्दार्थम् आहुः **गुहे**त्यादिना. तथाच तत्त्वविचारे हृदये वा जीवप्रवेशो न दुर्घटः इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तन्मध्यपाति ‘‘**ऋतं पिबन्तौ**’’ इति वाक्यम् अवान्तरविशेषप्रकरणस्थम्. एवञ्च ‘‘**सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेद्**’’ इत्यनेन बद्धमुक्तजीवनिर्देशकं वक्तव्यम् इति भावः. अत्र अर्थे उपष्टम्भकम् आहुः **यस्तु** इति. इदं च विषयवाक्ये स्पष्टम्. ननु ‘‘ऋतं पिबन्तौ’’ इत्यत्र बद्धस्य कथं सुखभोगो वक्तव्यः? इत्यतः आहुः **मन्त्रेऽपि** इति. तथाच प्रवृत्तिमार्गेऽपि यज्ञादिसुकृतजन्यलोकरूपशरीरावच्छेदेन बद्धस्यापि स्वर्गरूपकृतषाड्कर्तृत्वं सम्भवति इति भावः. **मार्गद्वयस्यापि.** प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपस्यापि इति अर्थः. **विहितत्वाद्** वेदोक्तत्वात्. **सुकृतलोकत्वं** सुकृतजन्यलोकाभिन्नशरीरत्वम्. ननु ‘गुहा’शब्दार्थः परमव्योमः, तच्च ब्रह्मणः स्थानं, नतु जीवद्वयस्य इत्यतो अन्यएव ‘गुहा’शब्दार्थम् आहुः **गुहा** इति. गहनत्वरूपसामान्यधर्मेण. गुहासादृश्यं तत्त्वविचारे स्वीकृत्य अग्निर्माणवकः इतिवद् गौणलक्षणया ‘गुहा’शब्दार्थम् आहुः **तत्त्वविचारः** इति. ननु गौणीलक्षणादरो अनुचितः इत्यतः आहुः **हृदयं वा** इति. ननु एकस्मिन् हृदये

जात्यपेक्षयातु एकवचनम्. परमपरार्ध्ये सत्यलोकः, तत्र उभयोः भोगात्. अविद्यया पिहितप्रकाशत्वाद् अविदुषः छायात्वम्. ब्रह्मज्ञानेन अतिप्रकाशत्वाद् आतपत्वं विदुषः. अतएव विदुषः स्वरूपं ब्रह्मविदो वदन्ति. पञ्चाग्नयः त्रिणाचिकेताः चेतरम्. इन्द्रिय-मनसोस्तु अचेतनत्वाद् न वाक्यार्थसङ्गतिः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ननु एकवचनान्त-'गुहा'शब्देन अर्थद्वयं कथं लब्धम्? अतः आहुः **जाती**त्यादि. तत्रापि सुखत्वरूपा जातिः बोध्या. **तत्र** ब्रह्मलोके. **उभयोः** सुकृतकर्त्रोः. 'छायातप'शब्दार्थम् आहुः **अविद्यया** इत्यादि. **अतएव** अत्र वाक्ये जीवद्वयोपादानादेव. **पञ्चाग्नयः** श्रौतस्मार्तानुष्ठातारः. **त्रिणाचिकेताः** चयनत्रितयकर्तारः, **इतरद्** 'छाया'पदवाच्यं. ननु अस्य वाक्यस्य उत्तरशेषत्वे इन्द्रिय-मनसोरपि लाभसम्भवात् कथं जीवाएव वाक्यार्थः? इत्यतः आहुः **इन्द्रियमनसोः** इति. तथाच अचेतनयोः सुकृतफलभोक्तृत्वासम्भवाद् गुहाप्रवेशानुकूलयत्नस्य च असम्भवाद् न तौ वाक्यार्थबोधविषयौ, अयोग्यत्वाद्. ननु सुकृतफलभोगे प्रवेशे च वाक्यार्थे इन्द्रिय-मनसोः ज्ञापकौ इति लक्षणाकरणाद् ऋतज्ञापकौ प्रवेशज्ञापकौ इति अर्थकरणाद् अयोगतया

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

''**द्वा सुपर्णौ**'' (श्वेता.उप.४।६) इतिश्रुतौ ब्रह्मजीवप्रवेशस्तु उक्तएव. जीवद्वयप्रवेशस्तु कुत्रापि न उक्तः इति हृदयद्वये वक्तव्यम्. तथाच एकवचनानुपपत्तिः इत्यतः आहुः **जाती** इती. हृदयत्वरूपजात्यपेक्षया इति अर्थः. ननु विषयवाक्ये ''परमे परार्धे'' इति वर्तते. तस्य का वा गतिः? इत्यतः आहुः **परमे**ति. **उभयोः** इति. अविदुषोऽपि कर्मणा सत्यलोकस्थितिः इति भावः. स्वपक्षे विषयवाक्यस्थयोः छायातपद्वयोः विनियोगम् आहुः **अविद्यया** इति. पञ्चाग्नयः अग्निहोत्रिणः इतरं वदन्ति इति अन्वयः. **त्रिणाचिकेताः ''तं हैतमेके पशुबन्धएव उत्तरवेद्यां चिन्वते''** (तैत्ति.ब्राह्म.) इति तृतीयाष्टकतैत्तिरीयब्राह्मणोक्त'नाचिकेत'नामकचयनविशिष्टसोमयागस्य त्रिवारं कर्तारः तेषां ब्रह्मलोकप्राप्तिः इति अर्थः. इतरम् अविदुषः स्वरूपं वदन्ति इति पूर्वेण अन्वयः. ननु पूर्वमेव उक्तम् अर्थविचारे इन्द्रियमनसोः ग्रहणं भवति इत्यतः आहुः **इन्द्रियमनसोः** इति. सर्वेषाम् उपनिषद्वाक्यानां चेतने ब्रह्मणि तात्पर्यात्, तत्रैव वाक्यार्थसङ्गतिः इति सिद्धान्तस्थितिः. तत्र उपनिषदन्तर्गतानां केषाञ्चिद् विशेषाणाम् असम्भवसंशयात् तन्निर्णयार्थं शास्त्रप्रवृत्तिः. इन्द्रियमनसोस्तु अचेतनत्वात्, ''सति कुड्ये चित्रम्'' इतिन्यायेन शास्त्रप्रवृत्तिरेव न भविष्यति इति भावः. एतदेव आहुः

वाक्यार्थयोगे हि विशेषणनिर्णयः. तस्माद् बद्धमुक्तजीवपरतया उपपन्नत्वात् तत्प्रकरणपाठाद् न ब्रह्मवाक्यम् इति. एवं प्राप्ते, उच्यते **‘‘गुहां प्रविष्टौ आत्मानौ हि तद्दर्शनात्’’. गुहां प्रविष्टौ आत्मानौ** गुहा हृदयाकाशः. तत्र सकृद् एकस्मिन् प्रविष्टौ जीवपरमात्मानावेव. **‘‘अनेन जीवेन आत्मनानुप्रविश्य’’** (छान्दो.उप.६।३।२) इति उभयोः प्रवेशश्रवणात्. न हि एकस्मिन् हृदयाकाशे जीवद्वयं प्रवेष्टुम् अर्हति. अर्थस्तु एवं सम्भवति पूर्वाधिकरणे (ब्रह्मसू.१।२।९,

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अन्वयः सुवचएव इत्यतः आहुः **वाक्यार्थयोगे हि** इत्यादि. यथा वाक्यार्थे तीरे लक्षणा क्रियते तथा इन्द्रिय-मनसोः भोगप्रवेशे च वाक्यार्थे सम्बन्धसत्त्वे शक्यसम्बन्धरूपा लक्षणा स्यात्. तथा सति लाक्षणिकार्थ-विशेषणतया इन्द्रिय-मनसोः बोधः स्यात्, सच न सम्भवत्येव इति अर्थः. पूर्वपक्षी उपसंहरति **तस्माद्** इत्यादि. **उपपन्नत्वाद् ‘‘ऋतं पिबन्तौ’’** इतिवाक्यस्य उपपन्नत्वात्. **तत्प्रकरणे**त्यादि. जीवप्रकरणपाठात्. सिद्धान्तम् आहुः **उच्यते** इत्यादिना.

‘‘गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्’’. सम्मत्यर्थं श्रुत्यन्तरम् आहुः **गुहां प्रविष्टौ आत्मानौ** इति. एतद्वाक्ये ‘आत्म’पदाभावेऽपि श्रुत्यन्तरानुरोधाद् जीव-परमात्मानौ ग्राह्यौ. तत्र श्रुतिम् आहुः **‘‘अनेन जीवेन आत्मना अनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि’’** (छान्दो.उप.६।३।२) इति. तथाच श्रुत्यन्तरेण अस्याः **‘‘ऋतं पिबन्तौ’’** इति श्रुतेः एकवाक्यत्वसम्भवे वाक्यभेदस्य अन्याय्यत्वाद् जीव-परमात्मानावेव अत्र उपादेयौ इति फलितम्. ननु ‘‘अनेन आत्मना’’ इति श्रुतौ ‘परमात्म’पदाभावाद् अत्रापि जीवद्वयमेव अस्तु अतः आहुः **न हि एकस्मिन्** इत्यादि. जीव-परमात्मप्रवेशस्यैव बहुषु श्रुतिवाक्येषु दर्शनात् तथा इति अर्थः. पूर्वपक्षग्रन्थोक्तार्थापेक्षया **‘‘ऋतं पिबन्तौ’’** इत्यस्य सिद्धान्तार्थं वक्तुम् आहुः **अर्थस्तु** इत्यादि. **एवं** वक्ष्यमाणप्रकारेण. **साधितः ‘‘यस्य**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

वाक्यार्थयोगे इति. **वाक्यार्थयोगे** सति हि विशेषणनिर्णयः कर्तव्यः सएवतु नास्ति इति अर्थः. पूर्वम् उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति. समाधानम् आहुः **उच्यते** इति.

गुहाम् इति. एकस्मिन् काले सूत्रस्थ‘हि’शब्दस्य प्रसिद्धार्थकत्वं मनसि निधाय श्रुतौ प्रसिद्धिम् आहुः **अनेन** इति. **‘‘नामरूपे व्याकरवाणि’’** (छान्दो.उप.६।३।२) इति श्रुतिशेषः. जीवेन इति अर्थः. एकवचनं च जीवद्वयव्यावृत्त्यर्थम्. **अर्हति** इति. व्याकरणार्थम् एकस्यैव प्रवेशौचित्याद् इति अर्थः. सिद्धान्ते मन्त्रार्थम् आहुः **अर्थस्तु**

१०) यथाभिलषितभोगो भगवति साधितः. प्रकारान्तेणापि ‘‘**ऋतं सत्यं परं ब्रह्म**’’(महाना.उप.१२।१) इति ऋतसत्ययोः ब्रह्मत्वप्रतिपादनात् स्वरूपामृतपातारौ. सुकृतमपि ब्रह्मैव. ‘‘**तस्मात् तत् सुकृतम् उच्यते**’’ (तैत्ति.उप.२।७) इति श्रुतेः सएव लोकः. उपचारात् षष्ठी. अक्षरं वा, परमपरार्ध्योपरि तत्रत्यानां परिदृश्यमानत्वात्. छाया प्रतिसारूप्यं सायुज्यं गतस्य जीवस्यापि तथात्वात्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ब्रह्म च’’(कठोप.२।२५) इत्यनेन साधितः. **प्रकारान्तरेण** ‘‘**ऋतं पिबन्तौ**’’ इति–वाक्योक्तप्रकारेण ‘ऋत’पदार्थस्य ब्रह्मत्वबोधिकां श्रुतिम् आहुः ‘‘**ऋतं सत्यं परं ब्रह्म**’’ इति. **स्वरूपे**त्यादि. तथाच ‘‘**ऋतं पिबन्तौ**’’ इत्यस्य अयम् अर्थः. सुकृतस्य च ब्रह्मत्वे प्रमाणम् आहुः ‘‘**तस्मात् तत् सुकृतम् उच्यते**’ इति श्रुतेः. ‘‘**सुकृतस्य लोके**’’ इत्यत्र ‘‘**राहोः शिरः**’’ इतिवद् अभेदार्थकषष्ठ्या सुकृताभिन्नो लोकः इति अर्थं प्रदर्शयितुम् आहुः **सएव लोकः** इति. **सएव** सुकृतमेव. **उपचाराद्** अभेदार्थाभिप्रायात्. ‘सुकृत’शब्देन परं ब्रह्म इति प्रतिपाद्य तदात्मकं लोकम् उक्त्वा सुकृतलोकत्वम् अक्षरस्य व्यापिवैकुण्ठस्य आहुः **अक्षरं वा** इति. ‘‘**परमे परार्धे**’’ इति अस्य अर्थम् आहुः **परमपरार्धोपरि** इति. परो मीयते यत्र वा परस्य मा लक्ष्मीः यत्र एतादृशं सर्वोत्कृष्टं स्थानं व्यापिवैकुण्ठात्मकं ‘परम’शब्देन उच्यते. तत्र परार्धेपरस्य ब्रह्मणः पुरुषोत्तमस्यार्धेस्थाने तादृशस्थानोपरि इति अर्थः. ‘छाया’शब्दार्थम् आहुः **छाया** इत्यादिना. **प्रतिसारूप्यं** जीवस्य परब्रह्मसारूप्यं समानत्वम्. **तथात्वाद्** ब्रह्मसमानत्वात्. ब्रह्मच्छायारूपत्वम्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति. **प्रकारान्तरेणापि** इति. तथा इति अध्याहार्यम्. तथा जीवेन सह अभिलषितभोगम् अस्मिन् अधिकरणे साधयति इति अर्थः. प्रकारमेव आहुः **ऋतम्** इति. **सएव** इति. तदेव इति वक्तव्ये विशेष्यानुरोधात् ‘सएव’ इति उक्तम्. **उपचाराद्** इति. कुत्रचिद् अभेदेऽपि भेदः उपचर्यते. ‘‘राहोः शिरः’’ इत्यादौ उपचारे सामञ्जस्याभावेऽपि. प्रकारान्तरम् आहुः **अक्षरम्** इति. **परमपरार्धोपरि** इति. परमव्योमात्मकः सत्यलोकाद् उपरि इति अर्थः. तथाच श्रुतिः ‘‘**ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन्**’’ (श्वेता.उप.४।८) इति. परार्द्धोपरि इत्यत्र हेतुम् आहुः **तत्रत्यानाम्** इति. तत्रत्यानां ब्रह्मादीनाम्. ‘छाया’शब्दार्थम् आहुः **प्रतिसारूप्यम्** इति. प्रतिबिम्बम् इति अर्थः. जीवब्रह्मणोः बिम्बप्रतिबिम्बभावस्यापि स्वीकृतत्वात्. अथवा स्वमतेऽपि आहुः **प्रतिसारूप्यं** भगवत्सदृशरूपवत्वम्. ननु स्वमते जीवब्रह्मणोः बिम्बप्रतिबिम्बभावस्य अभावात्. सादृश्यं च बद्धावस्थायाम् अभावात् कथम् इदं

ततोऽपि विशिष्टं ब्रह्म प्रकटानन्दत्वाद् आतपः परोक्षवादः. काण्डत्रयेऽपि तद्वाद इति त्रयाणां ग्रहणम्. अतो युक्तएव अयम् इति ‘हि’शब्दार्थः.

ननु अप्रकृतत्वात् कथम् एवम्? इति तत्र आह **‘तद्दर्शनात्’**. तयोः दर्शनं तद्दर्शनं तस्माद् जीवब्रह्मणोः प्रतिपादनीयत्वात्. **“या इयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये अस्तीत्येके, नायमस्तीति चैके, एतद् विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहम्”** (कठोप.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इति अर्थः. **ततोऽपि** प्राप्तसायुज्यजीवतोऽपि. **आतपः** ‘आतप’पदवाच्यम् इति अर्थः. ननु ‘पूर्णानन्द’पदं त्यक्त्वा किमर्थम् ‘आतप’शब्दः प्रयुक्तः? इत्यतः आहुः **परोक्षवादः** इति. “**परोक्षप्रिया वै देवाः**”(ऐत.उप.१।३।१४), “**परोक्षं च मम प्रियम्**” (भाग.पुरा. ११।२१।३५) इति सिद्धान्तात् तथा उक्तम् इति अर्थः. **काण्डत्रये** ज्ञानकाण्डे, उपासनाकाण्डे, कर्मकाण्डे च इति अर्थः. **तद्वादः** स्वरूपामृतपानप्रशंसारूपो वादः. त्रयाणां ज्ञान्युपासककर्मिणाम्. **ग्रहणं** श्रुतौ “**ब्रह्मविदः पञ्चाग्नयः त्रिणाचिकेता**” (कठोप.१।३।१) इति शब्दैः ग्रहणम् इति अर्थः. अयम् उक्तो अर्थः. **हिशब्दः** सौत्रो ‘हि’शब्दः. ननु “**अस्थूलम् अनणुः**”(बृहदा.उप.३।८।८) इत्यादौ ब्रह्मणो **अप्रकृतत्वात्, कथम् एवं** कथं जीवतुल्यतया उक्तामृतपानकर्तृत्वम्? **तत्र** उक्तानुपपत्तिपरिहारे **तद्दर्शनाद्** इति. **तयोः** जीवब्रह्मणोः. **दर्शनं** स्वरूपामृतत्वेन प्रकरणे निरूपणम्. फलितार्थम् आहुः **जीवब्रह्मणोः** इत्यादिना. **प्रतिपादनीयत्वात्** प्रतिपादनमेव आहुः “**येयम्...**” इत्यादिना. **अयं** विचिकत्सासत्वपक्षः. “**येयं प्रेते विचिकित्सा**”(कठोप.१।१।२०) इत्यादिना नाचिकेत्रा जीवगोचरे प्रश्ने कृते गुरुणा

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सङ्गच्छते? इत्यतः आहुः **तथात्वाद्** इति. भगवत्सदृशत्वात्. छायापेक्षया आतपे विशेषं प्रतिपादयन्ति **ततोऽपि** इति. ब्रह्म आतपः प्रकटानन्दत्वाद् इति अन्वयः. ननु श्रुतौ ‘आनन्द’पदं विहाय ‘आतप’पदप्रयोगे किं प्रयोजनम्? अतः आहुः **परोक्षवादः** इति. “**परोक्षवादो वेदोऽयम्**” (भाग.पुरा.११।३।४४) इतिवचनाद् इति अर्थः. **त्रयाणाम्** इति. ब्रह्मविदो ज्ञानिनः, पञ्चाग्नयः उपासकाः, त्रिणाचिकेताः कर्मिणः इति त्रयाणाम् इति अर्थः. सूत्रस्थ‘हि’शब्दार्थम् आहुः **अतः** इति.

प्रकरणनिर्णयार्थं सूत्रभागम् अवतारयन्ति **ननु** इति. अप्राकृतत्वाद् जीवब्रह्मोभयनिरूपणस्य प्रकरणबहिर्भूतत्वाद् इति अर्थः. **तद्दर्शनात्** तयोः जीव-ब्रह्मणोः प्रकरणस्य दर्शनाद् इति अर्थः. कथं दर्शनम्? इति आकाङ्क्षायां विशदयन्ति **येयम्** इति.

१।१।२०) इति जीवः पृष्टः. **''अन्यत्र धर्माद् अन्यत्राधर्माद् अन्यत्रास्मात् कृताकृतात्, अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत् पश्यसि तद्वद''** (तत्रैव १।२।१४) इति ब्रह्मापि पृष्टम्. तत्र ब्रह्म निरूप्य जीवं निरूपयन् उभयोः तुल्यत्वेन महाभोगं निरूपयन् फलार्थं मध्ये स्वरूपं कीर्तयति. अतो बह्मवाक्यमेव इति सिद्धम्।।११।।

विशेषणाच्च।।१२।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

लोकवरैः प्रलोभ्यमानोऽपि नाचिकेता यदा न चचाल तदा जीवस्वरूपं तज्ज्ञानं तज्ज्ञानफलं तं दुर्दर्शं गूढम् अप्रविष्टम् इत्यादिना गुरुः निरूपितवान्. तदनन्तरं **''एतद् विद्याम् अनुशिष्टः त्वया अहम्''** इति उक्तवान् नाचिकेता. एतदन्तेन जीवः पृष्टः उत्तरितं च तत्र गुरुणा. ततो ब्रह्मापृष्ट्वा **''अन्यत्र...''** इत्यादिना **''तद्वदे''**त्यन्तेन. **तत्र** प्रश्ने कृते सति इति अर्थः. **ब्रह्म निरूप्य** जीवं प्रति ब्रह्म निरूप्य इति अर्थः. **जीवं निरूपयन्** शिष्यं प्रति गुरुः जीवस्वरूपं निरूपयन्, ज्ञात-ज्ञेयभावं निरूप्य अग्रे **''पुनर्न जायते''** इत्यादिना जीवपरमात्मानावेव श्रुत्या निरूपितवान्. तदनन्तरं मध्ये **''यस्य ब्रह्म च''** इत्यनेन अलौकिकं महाभोगम् उक्तवान्. तदनन्तरं जीवस्य कथं स्वरूपामृतपानं? कथं वा तादृशभोगे ब्रह्मणः सहभावः? इति आशङ्कानिराकरणाय **''यस्य ब्रह्म च''** इति **''सेतुरीजानानाम्''** (कठोप.३।२) इति ब्रह्मनिरूपकश्रुत्योः मध्ये जीवब्रह्मणोः उभयोरपि समानतया महाभोगं प्रदर्शयितुं फलभोगार्थं तयोः स्वरूपमपि प्रदर्शयितुं **''ऋतं पिबन्तौ''** इति श्रुतिम् उक्तवान् इति अर्थः. एतेन जीवस्य तादृशफलभोगे अधिकारः ब्रह्मणश्च परमदयालुता बोधितेति न उक्तार्थे शङ्कालेशः इति भावः. इत्थं च अत्र ब्रह्मप्रकरणे अवान्तरप्रकरणानुरोधेन जीवनिरूपणेऽपि सर्वं प्रकरणं ब्रह्मवाक्यमेव इति आहुः **अतः** इत्यादिना।।११।।

एतत्प्रकरणे जीवब्रह्मणोरेव निरूपणं न बद्ध-मुक्तयोः जीवयोः इत्यस्मिन् अर्थे साधकं हेतुम् आहुः **''विशेषणाच्च''.**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इदं च विषयवाक्ये स्पष्टम्. विषयवाक्येतु उभयोः प्रतिपादनीयत्वं विशदयन्ति **तत्र** इति. उभयोः तुल्यत्वेन **''न जायते म्रियते वा''** (भग.गीता २।२०) इत्यनेन तुल्यत्वम्. महाभोगं **''ब्रह्म च क्षत्रं च''**(कठोप.१।२।२५) इत्यनेन महाभोगं मध्ये स्वरूपम् **''ऋतं पिबन्तौ''**(कठोप.३।१) इत्यनेन कीर्तयन् इति अर्थः. **सिद्धम्** इति. उभयनिरूपणस्य प्रकरणबहिर्भूतत्वाभावात् सिद्धं ब्रह्मवाक्यम् इति अर्थः ।।११।।

उभयोः प्रतिपादने हेत्वन्तरप्रतिपादकं सूत्रम् आहुः **''विशेषणाच्च''.**

विशेषणानि पूर्वोक्तानि जीवब्रह्मणोरेव सङ्गतानि. अग्रिमं वा ''**आत्मानं रथिनं विद्धि**''(कठोप.१।३।३) ''**सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्**''(तत्रैव१।३।९) इति जीवप्राप्यं ब्रह्म आह. अतः उभयोरेव सर्वव्यावृत्त्या कथनाद् अग्रिमग्रन्थपर्यालोचनयापि इदं ब्रह्मवाक्यमेव. ''**द्वा सुपर्णा**''(मुण्ड.उप. ३।१) इति निःसन्दिग्धम्. '**च**'कारः प्रकरणोक्तसर्वोपपत्तिसमुच्चयार्थः।।१२।।

इति प्रथमाध्याये द्वितीयपादे चतुर्थं गुहाम्प्रविष्टौ इति अधिकरणम्।।४।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पूर्वोक्तानि इति. तानि च ''**तं दुर्दर्शं गूढम् अनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्टं पुराणम्**''(कठोप.१।२।१२) इतिप्रभृतीनि विशेषणानि. **उभयोः** तथैव ''**न जायते म्रियते वा**''(कठोप.१।२।१८) इत्यादीनि जीवस्य, ''**अणोरणीयान्**''(कठोप. १।२।२०) इत्यादीनि च ब्रह्मणः. इत्यादीनि विशेषणानि जीवब्रह्मणोरेव सङ्गतानि नतु बद्ध-मुक्त-जीवयोः इति फलितम्. ननु उक्तं ''**ऋतं पिबन्तौ**'' इतिवाक्यं उत्तरशेषः इत्यतः आहुः **अग्रिमम्** इत्यादि. तथाच अग्रिममपि द्वयोरेव जीव-ब्रह्मणोः निरूपकम् इति निरूपयन्ति **आत्मानम्** इत्यादिना. ''**आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु**''(कठोप.१।३।३) इत्यादिना परेण ग्रन्थेन रथि-रथादिकल्पनया संसारं त्यक्त्वा मुमुक्षुः भवति ''**सो अध्वनः पारम् आप्नोति तद् विष्णोः परमं पदम्**''(कठोप.१।३।९) इति च गन्तव्यस्थानम् उक्तम्. एवं ''**ब्रह्मविदो वदन्ति**'' इति जीवस्य वक्तृत्वं ब्रह्मणश्च निरूप्यत्वं एवमादीनि उत्तराण्यपि विशेषणानि जीव-ब्रह्मणोरेव उक्तानि इति बोध्ये. ननु ''**द्वा सुपर्णा**''(श्वेता.उप.४।६) इति श्वेताश्वतरीयं विषयवाक्यम् अत्र कुतो न उदाहृतम्? अतः आहुः **द्वासुपर्णा** इत्यादि. **निःसन्दिग्धम्** इति. ''न अनुपलब्धे न निर्णीतार्थे न्यायः प्रवर्तते अपितु सन्दिग्धे अर्थे'' इतिन्यायात्. एतद्वाक्येतु अशनानशनाभ्यां जीवपरमात्मनोः निर्णयाद् न विषयवाक्यत्वम् अस्य इति बोध्यं **सर्वोपपत्तिः** प्रकरणोक्तसर्वधर्माणां जीवब्रह्मणोः उपपत्तिः इति अर्थः।।१२।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

पूर्वोक्तानि इत्यादिकविषयवाक्यस्य. पूर्वप्रकरणे स्पष्टम्. **अग्रिमम्** इति च उत्तरप्रकरणे. **पर्यालोचनयापि** इत्यपि. अस्य मन्त्रस्य उत्तरशेषत्वेऽपि क्षतिः नास्ति इति सूचितम्. केषाञ्चिन्मते अस्मिन् सूत्रे ''**द्वा सुपर्णा**'' (मुण्डकोप.३।१।१) इति विषयवाक्यं, तद् दूषयन्ति **निःसन्दिग्धम्** इति. एतेन ''**द्वा सुपर्णा**'' इति मन्त्रे सन्देहाभावाद् विचारप्रवृत्त्यभावाद् न अत्र इदं विषयवाक्यम् इति सूचितम्।।१२।।

अन्तर उपपत्तेः ।।१३।। (१।२।५)

‘‘य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते. एष आत्मा इति होवाच एतद् अमृतम् अभयमेतद् ब्रह्मेति, तद् यद्यप्यस्मिन् सर्पिर्वोदकं वा सिञ्चति वर्त्मनी एव गच्छति’’

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अक्षरापेक्षया स्थानान्तरमपि पुरुषोत्तमस्य अस्ति इति बोधयितुम् आह सूत्रकारः. छान्दोग्यषष्ठप्रपाठकस्थं उपकोसलविद्यास्थं विषयवाक्यम् उदाहरन्ति **‘‘य एषो अक्षिणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मेति ह उवाचैतद् अमृतम् अभयम् एतद्ब्रह्मेति तद् यद्यपि अस्मिन् सर्पिर्वा उदकं वा सिञ्चति वर्त्मनी एव गच्छति’’** (छान्दो.उप.४।१५।१) इत्यादि. एतदर्थस्तु अक्षिपुरुषोपासकैः **अक्षिणि यः पुरुषो दृश्यते स आत्मा** परं ब्रह्म **इति होवाच** आचार्यः. अत्र ‘आत्म’शब्देन सर्वेषाम् आत्मस्वरूपः उक्तः. **अमृतं** मृत्युभयनिवारकम्. **अभयं** मोक्षसुखरूपम्. **ब्रह्म** व्यापकं, सर्वभवनसमर्थं च. पूर्ववाक्ये आचार्येण यद् उक्तं **‘‘अहं तु ते तव वक्ष्यामि यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्ते एवम् एवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यति तत्र निदर्शनमाचार्यः’’** (तत्रैव ४।१४।३). **तद् यद्यपि** इत्यादि. **तद्** इदं वक्ष्यमाणं निदर्शनम्. **यद्यपि** अस्मिन् अक्षिपुरुषस्थानभूते अक्षिणि. **सर्पिः वा उदकं वा सिञ्चति** धारया पातयति, **वर्त्मनी** पक्ष्मणी एव. **गच्छति** संयुनक्ति. तएव आर्द्रे भवतो नतु अक्षि. तथाच यत्पुरुषस्थानस्य ईदृशं माहात्म्यं तस्य ज्ञाने पापसंश्लेषो न भवति इत्यत्र किं वक्तव्यम् इति बोध्यः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

पूर्वाधिकरणे परमपरार्धोपरितनाक्षरात्मकलोकस्य स्थानत्वम् उक्तम्. तत्र इयं चिन्ता, तदेव स्थानम् अन्यदपि इति. तत्र सर्वं स्थानम् इति बोधयितुम् अक्षिस्थानसूचकम् उपोद्घातसङ्गत्या अक्षिपुरुषाधिकरणम् आहुः **अन्तर उपपत्तेः**. **श्रूयते** इदं विषयवाक्यं छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके उपकोशलविद्यायां श्रूयते. अथ विषयवाक्यम्

> **‘‘य एषो अक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति ह उवाच ऐतद् अमृतम् उभयम् एतद् ब्रह्म इति तद् यद्यपि अयम् अस्मिन् सर्पिर्वा उदकं वा सिञ्चन्ति वर्त्मनी एव गच्छन्ति एतं संयद्वाम इत्याचक्षत एतं हि सर्वाणि वामानि अभिसंयन्ति सर्वाणि एनं वामानि अभिसंयन्ति य एवं वेदैष उ एष वामनीरेष हि सर्वाणि वामानि नयति, सर्वाणि वामानि नयति य एवं वेद एष उ एव भामिनीरेष हि सर्वेषु लोकेषु भाति य एवं वेद अथ यदुचैव अस्मिञ्छव्यं कुर्वन्ति. यदि च न अर्चिषमेव अभिसम्भवन्ति अर्चिषो अहरह्ने आपूर्यमाण पक्षम् आहुः पूर्यमाण पक्षाद्यान् षडुदङ्ङेति मासान् तान् मासेभ्यः सम्वत्सरं**

(छान्दो.उप.४।१५।१) इत्यादि श्रूयते. तत्र संशयः. प्रतिबिम्बपुरुषस्य ब्रह्मत्वेन उपासनापरम् इदं वाक्यं ब्रह्मवाक्यमेव इति वा. विरुद्धार्थवाचकत्वात् सन्देहः.

तत्र ‘दृश्यते’ इति वचनात् प्रतिबिम्बएव अयम्. ब्रह्मप्रकरणस्य च समाप्तत्वाद् **“एषा सौम्य ते अस्मद् विद्या आत्मविद्या च”** (छान्दो.उप. ४।१४।१) इति उपसंहारदर्शनात् तत्सिद्ध्यर्थम् उपासनापरतैव वाक्यस्य युक्ता. अविरोधे हि ब्रह्मपरता. उपास्यत्वेन ब्रह्मधर्माणाम् अन्वयो भविष्यति इति एवं

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अत्र वाक्ये केचित् च चतुष्कोटिकं संशयं वदन्ति : प्रतिबिम्बपुरुषो वा विज्ञानात्मा वा इन्द्रियाधिष्ठाता देवो वा परमात्मा वा इति. सतु न सम्भवति, “पुरुषो दृश्यते” इत्यनेनैव विज्ञानात्मदेवतयोः निरासाद्. अतः संशयाकारम् आहुः **तत्र संशयः** इत्यादिना. संशयबीजम् आहुः **विरुद्धार्थे**त्यादि. दृश्यत्वामृतत्वादीनां विरुद्धार्थानां वाचकशब्दानां वाक्ये सत्त्वात् संशयः इति अर्थः.

पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र** इत्यादिना. **वचनाद् “य एषो अक्षिणि पुरुषो दृश्यते”** (छान्दो.उप.४।१५।१) इतिदर्शनाक्ष्णोः अतीन्द्रिये ब्रह्मणि असम्भवात् प्रतिबिम्बएव अयम् इति भावः. ब्रह्मप्रकरणस्य समाप्तौ हेतुः **उपसंहारे**त्यादि. **तत्सिद्ध्यर्थं** छायापुरुषोपासनायै छायापुरुषे दृश्ये आत्मत्वाभयत्वामृतत्व–ब्रह्मत्वादीनाम् आरोपण–सिद्ध्यर्थम्, **उपासनपरता** छायापुरुषस्य उपासनपरता, **अविरोधे**त्यादिना दृश्यत्वामृतत्वादीनां ब्रह्मणि अविरोधसम्भवे वाक्यस्य ब्रह्मपरता स्यात् सतु न सम्भवति इति अर्थः. **उपास्यत्वेन** इत्यादि. उपासनार्थं **ब्रह्मधर्माणां** वैज्ञानिको **अन्वयो**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सम्वत्सराद् आदित्यम् आदित्यात् चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषो अमानवः स एनान् ब्रह्म गमयति एष देव पथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपाद्यमाना इमं मानवम् आवर्तं न आवर्तन्ते न आवर्तन्ते”. (छान्दो.उप.४।१५।१)

संशयम् आहुः **तत्र** इति. दर्शनविषयत्वं ब्रह्मणि नास्ति इति संशयएव न प्रसरति इत्यतः संशयबीजम् आहुः **विरुद्धार्थे**ति. अमृतत्वमपि उक्तम् इति दर्शनाद् अमृतत्वरूपविरुद्धार्थवाचकपदसत्त्वाद् इति अर्थः. पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र** इति. **तत्सिद्ध्यर्थम्** इति. प्रकरणसमाप्तौ उपसंहारसिद्ध्यर्थम्. **अविरोधे हि** इति. अत्रतु दर्शनं विरुद्धम् इति अर्थः. ननु त्वन्मतेऽपि अमृतत्वं विरुद्धम् इत्यतः आहुः **उपास्यत्वेन** इति. **ब्रह्मधर्माणाम्** अमृतत्वादीनाम्.

प्राप्ते उच्यते. **अन्तरः,** अक्षिमध्ये दृश्यते इति उक्तः परमात्मैव. कुतः? **उपपत्तेः.** उपपद्यते हि तस्य दर्शनम् आर्षम्. सर्वत्र ब्रह्म पश्यन् बहिः सन्निधाने तस्य स्थानस्य उत्कृष्टत्वात् तत्र भगवन्तम् उपदिशति. **''लोकं वा व तेऽवोचन्**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

भविष्यति इति अर्थः. **उच्यते** सिद्धान्तः उच्यते **''अन्तर उपपत्तेः''.**

सूत्रार्थेन सिद्धान्तम् आहुः **अन्तरः** इत्यादिना. **तस्य** परब्रह्मणः. **आर्षं** भगवत्सम्पादितर्षित्वेन, तच्च दर्शनं **''पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूः...कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानम् ऐक्षत् आवृत्तचक्षुः''**(कठोप.२।१।१), **''दिव्यं ददामि''** (भग. गीता११।८) इत्यादिभिः वाक्यैः बोद्धव्यम्. तथाच भगवत्सामर्थ्येन भगवतो दर्शनम् उपपद्यते नतु अनेन उपदिष्टम् अतः आहुः **सर्वत्र** इत्यादि. तथाच आचार्यः सर्वत्र सर्वदेशेषु ब्रह्म पश्यन्नपि **बहिः** चक्षुर्भिन्नदेशे, **सन्निधाने** भगवतः स्वस्य प्रत्यक्षेऽपि, सर्वत्रोपदेशे अविदुषां प्रत्ययासम्भवात्. यथा **''असङ्गो ह्ययं पुरुषः''** (बृहदा.उप.४।३।१५) इत्यादिना असङ्गित्वं पुरुषे अस्ति तादृशमेव स्थानं इतरासङ्गि **''सर्पिः वा उदकं वा''** (छान्दो.उप.४।१५।१) इत्यादिना उक्तं बाह्याङ्गापेक्षया उत्कृष्टं भगवतः स्थानत्वेन उपदिशति इति अर्थम् **लोकम्** इत्यादि. अत्र उपकोसलं विहाय क्वचिद् आचार्यो दूरदेशं गतः तन्मध्ये अग्निभिः उपकोशलाय सगुणब्रह्मविद्योपदिष्टा. ततः आगत्य आचार्येण उक्तं ''**उपकोसल त्वं ''केनचिद् उपदिष्टब्रह्मविद्यो भासि''** इति. तदुत्तरं तेन किञ्चिद् अपह्नुत्य उक्तम् **''अग्निभिरहम् उपदिष्टः''** (छान्दो.उप.४।१४।२) इति. तदुत्तरं बहुकालविरहिणा आचार्येण प्रेम्णा उक्तं **''लोकं वा व ते अवोचन्''** (तत्रैव ४।१४।३). अग्नयः **लोकं** सगुणं ब्रह्म, **ते** तुभ्यम्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

समाधानम् आहुः **अन्तरः** इति. **आर्षम्** इति. भक्त्यादिसाधनसम्पत्तौ भगवद्दर्शनं दक्षिणे अक्षिणि भवति इति ऋषिभिः उक्तत्वाद् आर्षम् इति अर्थः. **''कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षद्''** (कठोप.२।१।१) इति श्रुत्या **सर्वत्र** पश्यन् इति योजना. **बहिःसन्निधाने** परकीयचक्षुःसन्निधाने. **उत्कृष्टत्वाद्** उदकस्य सर्पिषो वा सम्बद्धत्वेन उत्कृष्टत्वात्. अस्य ब्रह्मवाक्यत्वे प्रकरणमपि निणार्यकम् इति आहुः **लोकम्** इति. श्रुतौ बहुवचनान्तपाठोऽपि अस्ति इति सूचयितुं 'लोकान्' इति उक्तम्. उपकोशलेन प्रश्ने कृते ते अग्न्यादयो लोकम् अवोचन्. अहन्तु तद् ब्रह्म वक्ष्यामि इति उक्त्वा ब्रह्मणएव उपक्रमं कृत्वा **''य एषो अक्षिणि''** (छान्दो.उप.४।१५।१) इति उक्तम्. अतः प्रकरणेऽपि अस्ति इति भावः. अधिकन्तु विषयवाक्ये स्पष्टम्. ननु प्रतिबिम्बपुरुषे

अहं तु ते तद्वक्ष्यामि’’ (तत्रैव ४।१४।३) इति महदुपक्रमाच्च. प्रतिबिम्बमात्रस्य च न पुरुषत्वनियमः. तस्माद् विरोधाभावाद् ब्रह्मवाक्यमेव।।१३।।

स्थानादिव्यपदेशाच्च।।१४।।

‘‘एतं संयद्वाम इत्याचक्षत. एतं हि सर्वाणि वामान्यभिसंयन्ति. एष उ एव वामनीरेष हि सर्वाणि वामानि नयति. एष उ एव भामनीरेष हि सर्वेषु लोकेषु भाति’’(छान्दो.उप.४।१५।४) इति. वामानि कर्मफलानि, तेषामेव मनोहरत्वेन

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अहन्तु **ते** तुभ्यं, **तत्** परं निगुर्णं ब्रह्म **वक्ष्यामि** इति उक्तम्. **महदुपक्रमे**त्यादि. तदुपदेशार्थम् आचार्यः तद् ज्ञानफलं वक्तुं **‘‘यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवम् एवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते’’** (तत्रैव ४।१४।१३) इति महदुपक्रमं कृतवानिति परं ब्रह्मैव अत्र इति ज्ञेयम्. महदुपक्रमश्च तादृशपुरुषे पुण्यपापाभाव–निरूपणोपक्रमलक्षणो बोध्यः. चक्षुषि परिदृश्यमानस्य पुरुषस्य प्रतिबिम्बत्वे दूषणम् आहुः **प्रतिबिम्बे**त्यादि. अपुरुषाणामपि प्रतिबिम्बसम्भवाद् न पुरुषत्वनियमः इति अर्थः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि. **विरोधाभावाद्** ब्रह्मानुग्रहेण ब्रह्मदर्शनसम्भवाद् ब्रह्मदर्शनविरोधाभावात्. **ब्रह्मवाक्यमेव ‘‘य एषो अक्षिणि पुरुषो दृश्यते’’** (तत्रैव ४।१५।१) इदं परब्रह्मवाक्यमेव इति अर्थः।।१३।।

पूर्वोक्तमेव अर्थं दृढीकर्तुं हेत्वन्तरम् आह सूत्रकारः **‘‘स्थानादिव्यपदेशाच्च’’**. अक्षिपुरुषनिरूपणोपयोग्यर्थम् आहुः श्रुत्या **एतम्** इत्यादिना. **एतम्** अक्षिपुरुषम्. **संयद्‌वाम** सर्वजीवानां स्वाधीनीकृतकर्मफलम् **एतम्** अक्षिपुरुषम्. **सर्वाणि वामानि** सर्वाणि कर्मफलानि, **अभियन्ति** प्राप्नुवन्ति, एतस्मिन् लीयन्ते इति अर्थः. **‘‘एष उ’’** इत्यादि. सर्वकर्मफलरूपः इति अर्थः. **नयति** जीवेभ्यः प्रयच्छति. **भामानि** सर्वाणि भासकानि, **‘‘एष आत्मेति होवाच’’** (छान्दो.उप.८।३।४) इत्यत्र उक्तेनैव

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ब्रह्मत्वेन उपासनापरत्वे किं बाधकम्? अतः आहुः **प्रतिबिम्बे**ति. अन्यस्यापि **प्रतिबिम्बः** सम्भवति इति अस्त्येव बाधकम् इति भावः ।।१३।।

आचक्षते इति एतदन्तस्य व्याख्यानम् **एतं हि** इति. **एतम्** अक्षिपुरुषं **संयद्वाम** इति. संयन्ति लीनानि भवन्ति वामानि कर्मफलानि यस्मिन्. **‘‘एष उ एव’’** इत्यस्य **‘‘एष हि सर्वाणि’’** इति व्याख्यानम्. श्रुत्यर्थम् आहुः **वामानि**ति. संयद्वाम इत्यनेन कर्मफललयः. **‘‘एष उ एव’’** इत्यनेन कर्मफलदानं भानं च इति **भाति** इत्यनेन उक्तम्.

तदर्थं कर्मकरणात्. कर्मफललयः कर्मफलदानञ्च यतः इति स्वर्गापवर्गफलदातृत्वम् उक्तम्, सर्वलोकेषु भानञ्च. 'एष' इति तमेव अक्षिपुरुषं निर्दिश्य स्थानादि व्यपदिश्यते. न हि प्रतिबिम्बात्मनः **स्थानादिव्यपदेशः** सम्भवति. **'च'**काराद् एतत्त्तुल्यवाक्यस्यापि अयमेव अर्थः. इन्द्रविरोचनप्रजापतिसंवादे **''अथ योऽयं भगवो अप्सु परिख्यायते''**(छान्दो.उप.८।७।४) इति आसुरम्. नतु **''य एषो अक्षिणि पुरुषो दृश्यते''**(तत्रैव ४।१५।१) इत्यादि. तस्माद् अक्षिपुरुषो ब्रह्मैव।।१४।।

ननु किमिति निर्बन्धेन ब्रह्मवाक्यत्वं सम्पाद्यते. उपासनापरत्वे को

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्यनेन इति अर्थः. **स्थानादिव्यपदेशः ''य एषो अक्षिणि''** (तत्रैव ४।१५।१), **''यश्चक्षुषि तिष्ठन् चक्षुषोन्तरः''** (बृहदा.उप.३।७।१८) इत्यादिना स्थानादिव्यपदेशः. 'आदि'पदेन कर्मफलप्रदत्वादि ग्राह्यम्. **चकारात्** सौत्रचकारात्. **एतत्तुल्यवाक्यस्य** छान्दोग्यदशमप्रपाठके **''य एषो अक्षिणि पुरुषो दृश्यते''** एतद्वाक्यसमानार्थवाक्यस्य. तच्च एतत्तुल्यं वाक्यं दशमप्रपाठके इन्द्रविरोचन-प्रजापतिसंवादे **''य एषो अक्षिणि पुरुषो दृश्यते एतदात्मेति ह उवाचैतद् अमृतम् अभयं ब्रह्म''** इति. तस्यापि पूर्वोक्तवाक्यार्थ-समानार्थतैव इति अर्थः. ननु एतद्वाक्योत्तरमेव **''अथ यो अयं भगवो अप्सु परिख्यायते यश्चायम् आदर्शः''** (छान्दो.उप.८।७।४) इति वाक्ये प्रत्यक्षतएव छायापुरुषाभिधानात् **''य एषोऽक्षिणि''** इतिवाक्येऽपि अयम् अर्थः कुतो न उच्यते? एकवाक्यतासम्भवाद्. अतः आहुः **अथ यो अयम्** इत्यादि. तथाच **''यो अयम्''** इति वाक्यं विरोचनोक्तम् 'आदर्श'पदान्तम्. विरोचनश्च असुरश्रेष्ठः, इन्द्रश्च देवानां श्रेष्ठो. अतो विरोचनवाक्यार्थो असुराणां सिद्धान्तइति ब्रह्मणा आसुरम् इति उक्तम्. **इत्यादि** इति तु आसुरं न इति अन्वयः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि।।१४।।

अक्षिपुरुषस्य ब्रह्मतासाधकं स्थानादिव्यपदेशाद् इति हेतुं दृढीकर्तुम् आहुः **ननु** इत्यादि. **ब्रह्मवाक्यत्वं ''य एषोऽक्षिणी पुरुषो दृश्यते''** इति वाक्यत्वम्. **उपासना-**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

स्थानादीति. सर्वेषां कर्मफलादीनाम् आश्रयः इति अर्थः. इदं च प्रतिबिम्बेन सम्भवति इति इदं ब्रह्मवाक्यमेव इति आहुः **न हि** इति. 'च'कारार्थम् आहुः **चकारादेः** इति. **इन्द्रे**ति. इदं च छान्दोग्ये दशमप्रपाठके. ननु तत्रापि **''अथ योऽयम्''** इत्यादिना छायापुरुषाभिधानम् अस्ति इत्यतः आहुः **आसुरम्** इति. विरोचस्य आसुरम् इन्द्रस्य **''य एषोऽक्षिणि''** इत्यादिना दैवम् इति अर्थः. इदं च विषयवाक्ये स्पष्टम् ।।१४।।

दोषः ? इति आशङ्क्य आह

सुखविशिष्टाभिधानादेव च।।१५।।

‘‘एतद् अमृतम् अभयम् एतद् ब्रह्म’’ (छान्दो.उप.४।१५।१) इति. यदि अत्र उपासना विधीयते **‘‘एष आत्मा’’** (तत्रैव ८।३।४) इति तदा अमृतादिवचनं व्यर्थं स्यात्, तद्धर्माणां पूर्वमेव प्राप्तत्वात्. तस्माद् अमृतम् आनन्दः, अभयं चिद्, ब्रह्म सत्, सच्चिदानन्दरूपः आत्मा इति उक्तं भवति. अतः ‘एषः’ इति अक्षिपुरुषं निर्दिश्य सुखविशिष्टम् अभिधीयते. सच्चितोः न ब्रह्मख्यापकत्वमिति सुखमेव निर्दिष्टम्. अतः सुखविशिष्टाभिधानादेव ब्रह्मवाक्यम् इति. एषा मुख्योपपत्तिरिति ‘एव’कारः. ‘च’करात् सदादिभिरपि. तस्माद् बह्मैव अक्षिपुरुषः।।१५।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

परत्वे छायापुरुषस्य ब्रह्मपरत्वेन उपासनापरत्वे. **आह** सूत्रकारः सूत्रेण समाधानम् आह इति अर्थः. **‘‘सुखविशिष्टाभिधानाद्’’** इति. उपासनापक्षे दूषणम् आहुः **‘‘एतद् अमृतम्…’’** इत्यादि. अत्र ‘‘य एषोऽक्षिणि’’ इति वाक्ये. **अमृतादि** इति ‘आदि’पदेन अभयपदमपि व्यर्थं स्याद् इति अर्थः. उपासनाविधिवैयर्थ्यम् उपपादयन्ति **तद्धर्माणाम्** इत्यादि. **पूर्वमेव** छायापुरुषे ब्रह्मत्वेन उपासनाविधाने उपासनाविधेः पूर्वमेव ब्रह्मणि अमृताभयत्वादिधर्माणां प्राप्तत्वेन तद्धर्मोपादानस्य विधेयकोटौ वैयर्थ्यम् इति भावः. तस्माद् ब्रह्मस्वरूपप्रतिपादिकैव इयं श्रुतिः इति उपसंहरन्ति, स्वरूपप्रतिपादकशब्दानेव प्रदर्शयन्ति **अमृतमानन्दम्** इत्यादि. **अतः** इति. यतः ‘एषः’ इति सर्वनामशब्देन ब्रह्मोद्दिश्य ‘अमृता’दिशब्दैः सुखविशिष्टं विधीयते यतः इति अर्थः. **न ब्रह्मख्यापकत्वं** सच्चितोः जीवेऽपि सत्वात् तत्र च अवयविब्रह्मणः तादात्म्याभावात् सच्चिन्निष्ठव्याप्यतानिरूपिता व्यापकता ब्रह्मणि नास्ति इति ताभ्यां ब्रह्मनिर्णयासम्भवात् सुखविशिष्टं ब्रह्म व्याप्यं ब्रह्मरूपनिर्णायकम् उक्तम् इति अर्थः. **ब्रह्मवाक्यं ‘‘य एषोऽक्षिणि’’** इति ब्रह्मवाक्यम् इति अर्थः **एषा** सुखविशिष्टाभिधानरूपा. **एवकारः** सौत्र एवकारः. **चकारात्** सौत्रचकारात्. **सदादिभिः** अपहतपाप्मत्वाद्यव्यभिचारिसच्चित्सुखादिभिरपि ब्रह्मनिर्णयो भवति इति अर्थः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादिना।।१५।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

‘‘एतं संयद्वाम’’ (छान्दो.उप.४।१५।२) इत्यादिवाक्यात् पूर्वं पदम् अभिधीयते तद् आहुः **एतम्** इति. ‘अमृत’पदेन सुखविशिष्टम् अभिधीयते यतः अतः इदं ब्रह्मवाक्यम् इति अर्थः ।।१५।।

श्रुतोपनिषत्कगत्यभिधानाच्च।।१६।।

स्वरूपतो निर्णीय फलतो निर्णयम् आह. **श्रुतोपनिषत्कस्य**, श्रुता उपनिषद्विद्या येन तस्य प्रविदो या **गतिः** देवयानाख्या सा अक्षिपुरुषविदोऽपि उच्यते. ‘‘**अथ यदु चैवास्मिन् शव्यं कर्म कुर्वन्ति, यदि च नार्चिषमेवाभियन्ति**’’ इति उपक्रम्य ‘‘**चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषो अमानवः स एतान् ब्रह्म गमयति. एष देवपथो ब्रह्मपथः इति एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते**’’ (छान्दो.उप.४।१५।५) इति ब्रह्मविदोऽपि एषएव मार्गः पुनरावृत्तिरहितः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अक्षिपुरुषस्य ब्रह्मत्वसाधकं पुनः हेत्वन्तरम् आह सूत्रकारः, एतत्सूत्रपूर्वं हि ‘अमृतम् अभयम्’ इत्यादयो धर्माः उक्ताः ते अक्षिपुरुषे ब्रह्मण्येव सम्भवन्तीति ‘‘अक्षिपुरुषो ब्रह्मैव’’ इति स्वरूपनिर्णयः कृतः. इदानीम् एतत्सूत्रेण अक्षिपुरुषज्ञानस्य फलम् आह ‘‘**श्रुतोपनिषत्कगत्यभिधानाच्च**’’. तदेव आहुः **श्रुतोपनिषत्कस्य** इत्यादिना. अक्षिपुरुषोपासनाफलबोधिकां श्रुतिम् आहुः ‘‘**अथ यद् उ वै वा अस्मिन् शव्यं कर्म कुर्वन्ति यदि च नार्चिषमेवाभियन्ति**’’ (छान्दो.उप.४।१५।५) इत्यादि. **अथ** अक्षिपुरुषोपासनानन्तरं, **यद्** यदि. **उः** सम्बोधने. **वै** निश्चयेन. **अस्मिन्** मृते अक्षिपुरोषोपासके. **शव्यं कर्म** तदौर्ध्वदैहिकं यदि च न कुर्वन्ति तस्य बान्धवाः ते अर्चिरादिमार्गेणैव गच्छन्ति इति अर्थः. **उपक्रम्य** इत्यादि. तथाच उत्तरायणीयषण्मासैः संवत्सरदेवं प्राप्नुवन्ति. ततः आदित्यं, ततः चन्द्रमसं, ततो विद्युतम्, एवंक्रमेण ते गच्छन्ति इति अर्थः. तत्र गमने प्रापकम् आहुः **अमानवः** देवपुरुषः इति अर्थः. **सः** अमानवः. **एतान्** उपासकान्. तथाच चतुर्मुखलोकाद् आगतपुरुषः तत्तत्स्थानाद् **एतान् ब्रह्म गमयति.**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

हेत्वन्तरबोधकसूत्रोत्तरम् आहुः **श्रुतोपनिषत्कगत्यभिधानात्. निर्णीये**ति. सच्चिदानन्दरूपाभिधानत्वेन ब्रह्मवाक्यत्वं निर्णीयेत्यर्थः. **फलतः** इति. ‘‘**न स पुनरावर्तते**’’ (निरा.उप.३३) इति फलतः इति अर्थः. तादृशफलबोधिकां श्रुतिम् आहुः **अथ** इति. **अथ** इति न शङ्कायां नापि आनन्तर्ये, किन्तु, अक्षिपुरुषं विदुः एतादृशं फलं भवत्येव इति प्रतिज्ञायाम्, **अस्मिन्** अक्षिपुरुषविदि, निमित्तसप्तमी, **शव्यं** शवसम्बन्धात् कर्मसंस्कारः परिचितेति न कुर्वन्ति इति अर्थः. पुत्रादयः इति शेषः. उभयथापि तस्य गतिम् आहुः **अर्चिषे**ति. **तत्पुरुषः** तस्य ब्रह्मणः पुरुषो दूतः. **अमानवः** मनुसृष्टौ अनुत्पन्नः. **ब्रह्मपथः** ब्रह्मप्राप्यमार्गः. **आवर्तम्** आवृत्तिजनकं गाङ्गं प्रवाहम् ।।१६।।

‘**च**’कारस्तु उक्तसमुच्चयेन अधिकरणपूर्णत्वबोधकः।।१६।।

इदमेव अधिकरणं पुनः निषेधमुखेन विचारयति. ननु उपासनापरत्वेऽपि सर्वम् उपपद्यते. तद्धर्मव्यपदेशेनैव उपासनोपपत्तेः. अतः सर्वा उपपत्तयो व्यपदेशिवद्भावेन सङ्गच्छन्ते इत्येवं प्राप्ते उच्यते.

अनवस्थितेरसम्भवाच्च नेतरः।।१७।।

इतरो न अत्र वाक्यार्थः. **अनवस्थितेः** अस्थिरत्वात्. उपदेशकवाक्यत्वात् उपदेष्टुरेव चक्षुर्गतं भवेत्. तथाच वक्तुः दर्शनाभावाद् अनाप्तत्वम्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ब्रह्मणा सह ते मुच्यन्ते इति एको अर्थः. भगवल्लोकाद् आगतो अमानवः पुरुषो वा परं ब्रह्म गमयति इति अर्थः. **उक्ते**त्यादि. उपनिषदि अक्षिपुरुषोपासकस्य ये धर्माः उक्ताः तेषां सर्वेषां तत्पुरुषे समुच्चयार्थम् इति अर्थः।।१६।।

शङ्कन्ते **ननु** इत्यादिना. **उपासने**त्यादि. प्रतिबिम्बस्य ब्रह्मत्वेन उपासनापक्षेऽपि पूर्वोक्ताः यावन्तो अर्थाः ते सर्वेउपपद्यन्तएव इति अर्थः. उपपत्तिमेव आहुः **तद्धर्मे**त्यादिना. व्यपदेशिब्रह्मतद्धर्माणाम् अक्षिपुरुषे व्यपदेशः सादृश्योपपादनं तेन उपासनोपपत्तिः इति अर्थः. **सर्वा** इत्यादि. यावत्पूर्वोक्तवाक्यार्थानां छायापुरुषे व्यपदेशि-वद्भावो ब्रह्मदृष्टान्तता तेन इति अर्थः. **इत्येवं प्राप्ते** ‘‘**य एषो अक्षिणि**’’ इति वाक्यस्य छायापुरुषएव अर्थः इति पूर्वपक्षे प्राप्ते. **उच्यते** सूत्रेण सिद्धान्तः उच्यते.

इतरः ब्रह्मेतरः छायापुरुषः इति अर्थः. तत्र हेतुम् आहुः **अनवस्थितेः** इति. बहुकालावस्थिते हि उपासनं भवति. तच्च तत्र असम्भवि, अनवस्थितो हेतुः. **अस्थिरत्वाद्** इति पुरुषस्य चक्षुःसम्मुखस्थितौ प्रतिबिम्बस्थितिः तद्व्यतिरेके

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सिद्धान्तदार्ढ्यार्थम् आहुः **निषेधमुखेन** इति. पूर्वपक्षिमतम् अनूद्यति **ननु** इति. **व्यपदेशिवद्भावेन** इति. उपदेशो व्यवहारः. विशिष्टो उपदेशो व्यपदेशः, मुख्यो व्यवहारः सः यस्य अस्ति इति व्यपदेशी, तत्सदृशो भावो व्यपदेशिवद्भावः. अयन्तु लोकसिद्धो न्यायः. देवदत्तस्य एकपुत्रसत्त्वे अयं मे ज्येष्ठः कनिष्ठो मध्यमः इति. समाधानम् आहुः **उच्यते** इति.

इतरः छाया पुरुषः. प्रथमहेतुं विशदयन्ति **अनवस्थितेः** इति. **उपदेशके**ति. ‘‘**यः एषः**’’ इति. उपदेशकर्त्रा उच्यते. तथाच स्वचक्षुर्गतप्रतिबिम्बप्रत्यक्षे स्वस्य न सम्भवति इति दृश्यते इति अयथार्थवक्तृत्वेन आचार्यस्य अनाप्तत्वम् इति अर्थः. तथाच

द्रष्टुः अपगमे च अपगच्छति सद्वितीयेतु सद्वितीयः. उपासनाकाले च सुतराम् अनवस्थितिः. सद्वितीयोपासनायामपि श्रवण-मननयोः भिन्नविषयत्वाद्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

छायापुरुषव्यतिरेके इति अस्थिरत्वं तस्य, पुनः प्रतिबिम्बपुरुषपक्षे दूषणम् आहुः **उपदेशे**त्यादि. **चक्षुर्गतम्** उपदेष्टुः चक्षुषि विद्यमानं प्रतिबिम्बस्वरूपं वक्तव्यं भवेद् इति अर्थः. **दर्शनाभावाद्** इत्यादि. तथाच उपदेष्टृचक्षुर्गत-प्रतिबिम्बस्य उपदेष्टुः दर्शनाभावात् ''पुरुषो दृश्यते'' इति उक्तेः च उपदेष्टुः अनाप्तत्वापत्तिः इति अर्थः. ननु ''मच्चक्षुषि त्वया दृश्यते'' इति वक्तुः अभिप्रायाद् न अनाप्तोक्तत्वम् अतः आहुः **द्रष्टुः** इत्यादि. तथाच श्रवणकाले तस्य सत्वेऽपि देशान्तरे मननकाले तस्य अभावाद् देशान्तरगतपुरुषेण अनुपास्यता स्याद् उपास्याभावाद् इति भावः. उपास्याभावमेव उपपादयन्ति **सद्वितीये** इत्यादिना. **सद्वितीये** प्रतिबिम्बनिष्ठानुयोगितानिरूपक-प्रतियोगिताश्रय-द्रष्टरि सति. **सद्वितीयः** द्रष्टुगत-प्रतियोगिता-निरूपकानुयोगिताश्रयः प्रतिबिम्बः सम्भवति इति अर्थः. इत्थं च द्वितीयाभावे प्रतिबिम्बाभावाद् उपासनम् असङ्गतम् इति अर्थः. दूषणान्तरम् आहुः **उपासने**त्यादि. उपास्यम् अग्रे स्थापयित्वा तत्र चित्तनिरोधः 'उपासना'. तत्काले च उपास्याभावाद् उपासना बाधिता स्याद् इति अर्थः. ननु उपासनाकाले पूर्वदृष्टप्रतिबिम्बाकारं पुरुषं स्वसन्मुखं स्थापयित्वा उपासनं कार्यम् अतः आहुः **सद्वितीये**त्यादि. **भिन्ने**त्यादि. तथाच श्रुतः चाक्षुषो मन्तव्यश्च अप्रत्यक्षः पुरुषः इति भिन्नविषयत्वम् इति अर्थः. **अनवस्थितिः** उपदिष्टोपास्यानवस्थितिः. ननु

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आचार्यप्रतिपाद्यप्रतिबिम्बपुरुषस्य अस्थिरत्वम् इति भावः. यदा आचार्येणैव उच्यते ''मत् चक्षुषि त्वया दृश्यते'' इति अभिप्रायेण तदा दूषणान्तरम् आहुः **द्रष्टुः** इति. यदा शिष्यो द्रष्टा उपदेशानन्तरं गच्छति तदा प्रतिबिम्बस्य अभावाद् अस्थिरत्वम् इति अर्थः. उपदेशकाले द्वितीयपुरुषेण समं शिष्येण अवश्यं भवितव्यम्. तथाच द्रष्टुः अपगमेऽपि द्वितीयपुरुषचक्षुषि प्रतिबिम्बस्य सद्भावाद्स्थिरत्वम् अतः आहुः **सद्वितीयेतु** इति. सद्वितीयः इति प्रतिबिम्बोऽपि तद्द्वितीयः इति अर्थः. तथाच यदि उपदेशकाले द्वितीयपुरुषसहभावः आवश्यकः. तदा आचार्यचक्षुषि प्रतिबिम्बद्वयसत्त्वात् श्रुतौ पुरुषौ दृश्यते इति एकवचनानुपपत्त्या स्थिरत्वाभावः इति भावः. दूषणान्तरम् आहुः **उपासना** इति. **सुतराम्** इति. चित्तवृत्तिनिरोधरूपयोगोऽपि उपासनाङ्गं सच नेत्रनिमीलनं विना न सम्भवति इति नेत्रनिमीलनसद्भावात् प्रतिबिम्बएव न भवति इति अर्थः. ननु प्रतिबिम्बोपासनान्यथानुपपत्या यागे पत्नीसहभाववद् द्वितीयसहभावोऽपि उपासनायाम्

अनवस्थितिः. वक्तुरेव नियमे गुरोः निर्बन्धेन सुतराम् अनवस्थितिः. किञ्च. मनसा हि उपासनं कर्तव्यम्. तत्र च असम्भवएव तादृशधर्मवत्त्वं च न सम्भवति. आसुरत्वं च भवेद् इति **‘च’**कारार्थः. तस्माद् अक्षिस्थाने सहजएव यो भगवान्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

वक्तारमेव अभिमुखं स्थापयित्वा तत् चक्षुर्गतचाक्षुषपुरुषे उपासना कार्या इत्यतः आहुः **वक्तुरेव** इत्यादि. **नियमे** सर्वदा उपासनाकाले गुरोः सन्मुखस्थापनरूपनियमे. **गुरोः निबन्धेन** गुरोः शिष्याधीनतया तथास्थितेः आवश्यकतया इति अर्थः. तथाच गुरोः तादृशशिष्यनिर्बन्धसहनस्य अप्रामाणिकत्वेन असम्भवात्. तादृशचाक्षुषपुरुषस्य उपासनाकाले अनवस्थितिरेव इति फलितम्. उपदेशकालएव अतिकृपया गुरोः सन्निधानं तस्य शिष्याधीनतयातु स्थितिः दुर्लभा इतिज्ञापनाय ‘सुतराम्’ इति उक्तम्.

पुनः अक्षिपुरुषस्य छायात्वाभावसाधकं हेतुम् आहुः **किञ्च** इत्यादिना. **मनसा** इत्यादि. तथाच उपासनं मनोव्यापारः. सच हृद्देशे. तत्रच छायापुरुषासम्भवाद् उपासनोच्छेदः इति अर्थः. तादृशपुरुषस्य छायात्वोक्तौ दूषणान्तरम् आहुः **तादृशधर्मे**त्यादि. छायापुरुषे अभयामृतत्वादिधर्माणाम् असम्भवः इति अर्थः. **आसुरत्वम्** इत्यादि. तथाच “**अथ यो अयं भगवो अप्सु परिख्यायत इति आसुरम्**” (छान्दो.उप. ८।७।४) इति प्रतिबिम्बोपासकस्य ब्रह्मणा आसुरत्वोक्तेः उपासकस्य आसुरत्वापत्तिः इति अर्थः. **चकारार्थः** सौत्रचकारार्थः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि. **एतद्वाक्यं “य एषो अक्षिणि**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अवश्यं स्वीकर्तव्यः. तथाच स्थिरत्वम् इत्यतः आहुः **सद्वितीये**ति. **भिन्नविषयत्वाद्** इति. उपदेशकाले प्रतिबिम्बस्य सद्वितीयत्वम् इति आश्रयणे एकस्य शिष्यस्यैव स्थितिः अपेक्षिता मननकाले च द्वितीयसहभावः. तथाच श्रवण-मननयोः भिन्नविषयत्वेन वैरूप्याद् अस्थिरत्वम् इति अर्थः. ननु एवं चेद्, गुरुणा उपदेशे कृते तदनन्तरम् उपासनार्थं तस्यैव पुरतः स्थापनं नियमेन कर्तव्यम् इत्यतः आहुः **वक्तुरेव** इति. **सुतराम्** इति. निर्बन्धस्तु गुरोः दुःखजनकत्वात् सुतराम् इति अर्थः.

सूत्रस्थद्वितीयहेतुं व्युत्पादयन्ति **किञ्च** इति. तत्र मनोव्यापारे असम्भवे इति चक्षुर्जन्यप्रत्यक्षे सत्येव प्रतिबिम्बो दृश्यते, नतु मानसिकप्रत्यक्षे इत्यतो अप्रतिबिम्बदर्शनासम्भवः इति अर्थः. मनसि प्रतिबिम्बदर्शने सति तत्र ब्रह्मधर्माणाम् उपपत्तिः कर्तव्या, सैवतु न सम्भवति, अतो न आरोपसम्भवः इति आहुः **तादृशे**ति. अमृतत्वम् अभयत्वं च इति अर्थः. **आसुरत्वम्** इति. यथा विरोचनस्य ईदृशएव प्रतिबिम्बज्ञानेन आसुरत्वे तथा अक्षिणि प्रतिबिम्बज्ञानेन शिष्यस्य आसुरत्वं भवेद् इति अर्थः. उपसंहरन्ति

अस्ति तत्परमेव एतद्वाक्यम् इति सिद्धम्. व्यापकसर्वगतस्य सर्वतःपाणिपादान्तत्वाद् आनन्दमूर्तिः भगवानेव. ब्रह्मवादेतु एषैव मर्यादा. सगुणवादो ब्रह्मवादाज्ञानाद् इति।।१७।।

इति प्रथमाध्याये द्वितीयपादे पञ्चमम् अन्तर उपपत्तेः इति अधिकरणम्।।५।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पुरुषः’’ इतिवाक्यं. ननु अक्षिमात्रस्थितत्वं व्यापकस्य ब्रह्मणः कथं सम्भवेद्? अतः आहुः **व्यापके**त्यादि. तथाच न तन्मात्रस्थितत्वं ब्रूमः किन्तु सर्वत्र विद्यमानस्य चक्षुषि स्थितत्वम्. **भगवानेव** अक्षिपुरुषो भगवानेव इति अर्थः. ननु सर्वतः पाणिपादान्तं ब्रह्म किमिति स्वीक्रियते? इत्यतः आहुः **ब्रह्मवादे** इति. **‘‘स हैतावान् आस’’**(बृहदा. उप. १।४।३), **‘‘एकोऽहं बहुस्याम्’’**(छान्दो.उप.६।२।३) इत्याद्युक्तो ब्रह्मवादः तस्मिन्. **एषैव मर्यादा** सर्वतः पाणिपादान्तत्वमर्यादा ब्रह्मणः इति अर्थः. ननु उपासनाविषयस्य सगुणत्वाद् अक्षिपुरुषस्य कथं परब्रह्मत्वम् उच्यते? इत्यतः आहुः **सगुणे**त्यादि. **ब्रह्मवादे**त्यादि. **‘‘तं त्वौपनिषदम्’’**(बृहदा.उप.३।९।२६) इत्याद्युपनिषदर्थाज्ञानाद् इति अर्थः।।१७।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तस्माद् इति. **सहजएव** इति. यथा आदित्यमण्डले हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते, एवम् अक्षिणि पुरुषो दृश्यते सहजस्वभावादेव केनचिद् अक्षिणा तत्परमेव इदं वाक्यं नतु कस्यचित् पुरुषस्य यः प्रतिबिम्बः तत्परम् इति अर्थः. ननु एतादृशस्य विभोः सूक्ष्मे अस्थाने सहजस्थितिः कथं वक्तव्या? इत्यतः आहुः **व्यापके**ति. व्यापकसर्वगतस्य भगवतः सूक्ष्मे स्थाने स्थितिः अस्ति इति अध्याहृत्य अन्वयः. तत्र हेतुम् आहुः **सर्वतः** इति. एवञ्च सिद्धम् आहुः **आनन्दमूर्तिः** इति. **‘‘बहुस्याम्’’** (छान्दो.उप.६।२।३) इति इच्छयैव सर्वत्र विद्यमानत्वेन स्वल्पस्थानेऽपि तस्य स्थितिः इति तादृशो भगवानेव, नतु प्रतिबिम्बः इति सिद्धम्. ननु किमर्थम् इदम् उच्यते सगुणस्य मायावच्छिन्नस्य शबलब्रह्मणः स्वल्पेऽपि स्थाने स्थितिः उचितैव इत्यतः आहुः **ब्रह्मवादेतु** इति. **‘‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’’** (छान्दो.उप.३।१४।१) इति वादएव ब्रह्मवादः. तत्र तस्यैव निर्गुणस्य सर्वतः पाणिपादान्तत्वेन सर्वत्र स्थितिः इति एषैव मर्यादा, नतु एकं सगुणं ब्रह्म स्वीकृत्य कर्तृत्वबोधकवाक्यानि तत्पराणि, अकर्तृत्वबोधकवाक्यानि निर्गुणब्रह्मपराणि इत्येवं मर्यादा. एकस्मिन्नेव परे ब्रह्मणि कर्तृत्वाकर्तृत्वरूप-विरुद्धधर्मस्वीकारे बाधकाभावाद् इति असकृद् अवोचाम. ननु शबलं ब्रह्मवादं स्वीकृत्य प्रवृत्ते विचारे किं बाधकम्? अतः आहुः **सगुणे**ति. तत्र ब्रह्मवादाज्ञानमेव बाधकम् इति हृदयम्।।१७।।

अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्।।१८।। (१।२।६)

''य इमञ्च लोकं परञ्च लोकं सर्वाणि च भूतान्यन्तरो यमयति'' (बृदा.उप.३।७।१) इति उपक्रम्य श्रूयते. **''यःपृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीम् अन्तरो यमयति एष त आत्मा**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अधिकरणम् आरचयितुं बृहदारण्यकस्थविषयवाक्यम् आहुः **''य इमञ्च...''** इत्यादि. **इमं** जीवदशाकालीनं, **परं** उत्तरकालीनम्, **अन्तरो यमयति** इत्यादि. सर्वाणि भूतादीनि अन्तःस्थितो भ्रामयति इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्‌गिरधरविरचितं विवरणम्

पूर्वाधिकरणे **''य एव अन्तर्यामी अक्षिणि पुरुषो दृश्यते''** इत्यनेन उक्तः, सएव अधिदैवादिषु अस्ति इति ज्ञापयितुं प्रसङ्गसङ्गत्या अन्तर्याम्यधिकरणम् आरचयाञ्चक्रुः **अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्.** विषयवाक्यम् उदाहरन्ति **य इमं च** इति. **श्रूयते.** बृहदारण्यके वाजसनेयिशाखायाम् अन्तर्यामिब्राह्मणे श्रूयते. अथ विषयवाक्यम्.

> **अथ हैनम् उद्दालकम् आरुणिः पप्रच्छ याज्ञवल्क्य इति ह उवाच मद्रेषु अवसाम पतञ्जलस्य काप्यस्य गृहेषु यज्ञम् अधीयानाः तस्य आसीद् भार्या गन्धर्वगृहीता तम् अपृच्छाम को असीति सो अब्रवीत् कबन्ध आथर्वण इति सो अब्रवीत् पतञ्चलं काप्यं याज्ञिकांश्च वेत्थ नु त्वां काप्य तत्सूत्रं येनायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि सन्दृब्धानि भवन्तीति सो अब्रवीत् पतञ्चलः काप्यो नाहं तं भगवन् वेदेति सो अब्रवीत् पतञ्चलं काप्यं याज्ञिकांश्च यो वै तत्काप्यसूत्रं विद्यात् तं चान्तर्यामिणं इति स ब्रह्मवित् स लोकवित् स देववित् स भूतवित् स आत्मवित् स सर्वविदिति तेभ्यो अब्रवीत् तद् अहं वेद तच्चेत् त्वं याज्ञवल्क्य सूत्रम् अविद्वांस्तं चान्तर्यामिणं ब्रह्मगवीरुदजसे मूर्धा ते विपतिष्यतीति वेद वा अहं गौतम तत्सूत्रं तं चान्तर्यामिणम् इति यो वा इदं कश्चिद् ब्रूयाद् वेद वेदेति तथा वेत्थ तथा ब्रूहीति ।।१।।**
>
> **स होवाच वायुर्वै गौतम तत्सूत्रं वायुना वै गौतम सूत्रेण अयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि भवन्ति तस्माद्वै गौतम पुरुषं प्रेतम् आहुर्व्यस्रंसिषतास्य अङ्गानीति वायुना हि गौतम सूत्रेण संदृब्धानि भवन्ति इति एवमेव एतद् याज्ञवल्क्य अन्तर्यामिणं ब्रूहीति ।।२।। यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद**

यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीम् अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।।३।। यो अप्सु तिष्ठन् अद्भ्योन्तरो यम् आपो न विदुः यस्य आपः शरीरं यो आपोन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।।४।। यो अग्नौ तिष्ठन् अग्नेः अन्तरो यम् अग्निः न वेद यस्य अग्निः शरीरं यो अग्निम् अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।।५।। यो अन्तरिक्षे तिष्ठन् अन्तरिक्षाद् अन्तरो यम् अन्तरिक्षं न वेद यस्य अन्तरिक्षं शरीरं यो अन्तरिक्षम् अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।।६।। यो वायौ तिष्ठन् वायोः अन्तरो यं वायुः न वेद यस्य वायुः शरीरं यो वायुम् अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।।७।। यो दिवि तिष्ठन् दिवो अन्तरो यं द्यौर्न वेद यस्य द्यौः शरीरं यो दिवम् अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।।८। य आदित्ये तिष्ठन् आदित्याद् अन्तरो यम् आदित्यो न वेद यस्य आदित्यः शरीरं य आदित्यम् अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।।९।। यो दिक्षु तिष्ठन् दिग्भ्यो अन्तरो यं दिशो न विदुः यस्य दिशः शरीरं यो दिशो अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।।१०।। यः चन्द्रतारके तिष्ठन् चन्द्रतारकाद् अन्तरो यं चन्द्रतारकं न वेद यस्य चन्द्रतारकं शरीरं यः चन्द्रतारकाम् अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।।११।। य आकाशे तिष्ठन् आकाशाद् अन्तरो यम् आकाशो न वेद यस्य आकाशः शरीरं य आकाशम् अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।।१२।। यः तमसि तिष्ठन् तमसो अन्तरो यं तमो न वेद यस्य तमः शरीरं यः तमो अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।।१३।। यः तेजसि तिष्ठन् तेजसो अन्तरो यं तेजो न वेद यस्य तेजः शरीरं यः तेजो अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृत इत्यधिदैवतम् अथ अधिभूतम् ।।१४।। यः सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्यो अन्तरो यं सर्वाणि भूतानि न विदुर्यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यन्तरो यमयत्येष त आत्मा अन्तर्यामी अमृत इत्यधिभूतम् अथ अध्यात्मम् ।।१५।। यः प्राणे तिष्ठन् प्राणाद् अन्तरो यं प्राणो न वेद यस्य प्राणः शरीरं यः प्राणम् अन्तरो यमयति

अन्तर्यामी अमृतः'' (बृहदा.उप.३।७।३) इत्यादि.

तत्र अधिदैवम् अधिलोकम् अधिवेदम् अधियज्ञम् अधिभूतम् अध्यात्मं च

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।।१६।। यो वाचि तिष्ठन् वाचो अन्तरो यं वाङ् न वेद यस्य वाक् शरीरं यो वाचम् अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।।१७।। यः चक्षुषि तिष्ठन् चक्षुषो अन्तरो यं चक्षुर्न वेद यस्य चक्षुः शरीरं यः चक्षुः अरन्तरो यमयति एष त आत्म अन्तर्यामी अमृतः ।।१८।। यः श्रोत्रे तिष्ठन् श्रोत्राद् अन्तरो यं श्रोत्रं न वेद यस्य श्रोत्रं शरीरं यः श्रोत्रम् अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।।१९।। यो मनसि तिष्ठन् मनसोऽन्तरो यं मनो न वेद यस्य मनः शरीरं यो मनो अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।।२०।। यः त्वचि तिष्ठन् त्वचो अन्तरो यं त्वङ् न वेद यस्य त्वक् शरीरं यः त्वचम् अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।।२१।। यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानाद् अन्तरो यं विज्ञानं न वेद यस्य विज्ञानं शरीरं यो विज्ञानम् अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतः ।।२२।। यो रेतसि तिष्ठन् रेतसो अन्तरो यं रेतो न वेद यस्य रेतः शरीरं यो रेतो अन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतम् ।।२३।। अदृष्टो द्रष्टा अश्रुतः श्रोत्रा अमतो मन्ता अविज्ञातो विज्ञाता नान्यो अतौ अस्ति द्रष्टा नान्यो अतो अस्ति श्रोता नान्यो अतो अस्ति मन्ता नान्यो अतो अस्ति विज्ञाता एष त आत्मा अन्तर्यामी अमृतो अन्यद् आर्तं ततो होद्दालक आरुणिः उपरराम ।।२४।। (बृहदा. उप.३।७।१-२४)

अथ भाष्यम्. **अमृतः इत्यादी**ति. 'आदि'पदेन अबग्निः इत्यारभ्य आत्मान्तानि वाक्यानि संगृह्यन्ते. तेषु वाक्येषु संशयम् आहुः **तत्र अधिदैवम्** इति. 'आदि'पदग्राह्येषु वाक्येषु स्तनयित्वन्तानि दशाधिदैववाक्यानि, ततः 'सर्वलोके'ति वाक्यचतुष्टयेन सर्वस्थाने 'अधि'शब्दप्रयोगेण अधिलोकादिचतुष्टयं, तदनन्तरं 'प्राणवाग्' इत्यारभ्य आत्मान्तानि दश अध्यात्मवाक्यानि, अधिदैवादिषण्णां बोधकानि सन्ति. एवं रीत्या चतुर्विंशत्सु अन्तर्यामी अस्ति कश्चिद् इति श्रूयते इति अर्थः.

एवं संशयाधिकरणीभूतवाक्यम् उक्त्वा संशयबीजम् आकारं च आहुः **तत्र संशयः** इति. संशयाकारचिन्तायां प्रथमतो अन्तर्यामी एको वा अनेको वा इति संशये

कश्चिद् अन्तरवस्थितो यमयिता अन्तर्यामी इति श्रूयते. तत्र संशयः. किम् अन्तर्याम्यधिदैवादिषु सर्वत्र एकएव, अथ अधिदैवादिनामभेदाद् भिद्यते इति. सामान्यतस्तु "**अन्तस्तद्धर्मोपदेशाद्**"(ब्रह्मसू.१।२।२०) इति न्यायेन अत्रापि ब्रह्मत्वं सिद्धमेव. तथा शब्दभेदात् सन्दिह्यते. अधिदैवादिषड्भेदाः आधारधर्माः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

संशयम् आहुः **किम् अन्तर्यामी**त्यादि. **अधिदैवादिषु** इत्यादि. अधिदैवादीत्यनेन षट्स्थानानाम् अधिष्ठाता एकः इति एका कोटिः. द्वितीयाम् आहुः **अथ अधिदैवादीनाम्** इत्यादिना. **नामभेदाद् भिद्यते** इति. शब्दान्तराभ्यास-संख्या-गुण-क्रिया-नामधेयानां षण्णां भेदकत्वस्य पूर्वतन्त्रे सिद्धत्वात् षडभिमानिनो भिन्नाएव इति अर्थः. **सामान्यतो** अधिदैवादिषट्शब्दभेदान् अदृष्ट्वा **अत्रापि "यः पृथिव्याम्"** इति वाक्यार्थेऽपि. तथापि **शब्दभेदाद्** आधिदैवादिषट्शब्दभेदाद् उक्तसंशयं दृढीकुर्वन्ति **अधिदैवादिषड्भेदाः** इत्यादिना. **आधारधर्माः** देवलोकवेदयज्ञभूतात्मानः आधारा ब्रह्मणः तद्गताः षड् भेदाः स्फटिके जपाकुसुमारुणिमान्यायेन भासन्ते. तथाच सर्वत्र

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

प्रवृत्ते प्रथमकोटेः सिद्धत्वेन तस्य सत्यभावात्. तादृशं संशयं निरस्यन्ति **किम् अन्तर्यामी** इति. अपरं कोटिम् आहुः **अथ** इति. **भिद्यते** इति. आनन्दमयाधिकरणे शब्दान्तराभ्यासेत्यनेन नामधेयस्य अधिभेदकत्वोक्त्या अन्तर्यामी भिद्यते इति अर्थः. प्रथमकोटेः सिद्धत्वम् आहुः **सामान्यतः** इति. **अत्रापि** अधिदैवादिष्वपि. ननु संशयबीजन्तु कोटिद्वयोपस्थितिः. सातु अत्र न सम्भवति इति व्यर्थम् अधिकरणारम्भः इत्यतः आहुः **तथाशब्दभेदाद्** इति. 'अधिदैवा'दिशब्दभेदाद् इति अर्थः. तथाच तथाशब्दभेदएव सन्देहबीजम् इति अर्थः. एवं सन्देहबीजम् उक्त्वा तदाकारम् आहुः **अधिदैवादी**ति. **षड् भेदाः** इति. दशाऽधिदैवानां भेदाः, दशाऽध्यात्मभेदाः, चतस्रो अधिलोकादयः. एवं चतुर्विंशतिः षण्णाम् अवान्तरभेदाः. ते सर्वेऽपि आधारधर्माः बोध्याः. ननु षण्णां कथम् आधारधर्मत्वम् इति चेद् उच्यते अधिदैवम् इत्यत्र देवानां समूहो दैवं, दैवे अधि इति आधिदैवम् इति अधिकरणार्थकाव्ययीभावसमासे जाते अधिकरणस्य आधारवाचकत्वाद् अधिदैवाभिन्नः आधारो बोध्यते. नच आधारस्य धर्मत्वं कथम्? इति वाच्यम्. पूर्वोत्तरमीमांसकानां मते पदानां धर्मे शक्तिः इति सिद्धान्तः. एवञ्च 'अधिदैवा'दिपदाद् अधिदैवत्वरूपधर्मो बोध्यते. तथाच आधारधर्माः अधिदेव-त्वादयो भगवति अन्तर्यामिणि उपचर्यन्ते इति एका कोटिः इति अर्थः.

भगवति उपचर्यन्ते, अथवा सञ्ज्ञाविशिष्टा अन्यएव इति. तत्र तत्तदधिकृत्य यो वर्तते अभिमानेन तस्य तादृशशब्दप्रयोगः. अधिलोकादयश्च शाखान्तरे अन्यत्रैव प्रसिद्धाः योगख्यापकाः ‘‘**पञ्चसु अधिकरणेषु. अधिलोकम् अधिज्योतिषम्**’’ (तैत्ति.उप.१।३।१) इत्यादि. अतो ‘अधिदैविका’दिशब्दाः यौगिकाः सन्तो न

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अधिष्ठाता एकएव इति सिद्धम्. द्वितीयकोटिस्तु **अथवा** इत्यादि. **सञ्ज्ञाविशिष्टाः** अन्यएव षट् परमात्मभिन्नाएव इति अर्थः. संशयम् उपपाद्य पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र** इत्यादिना. **तत्र** विषयवाक्ये. **तत्तद्** इत्यादि. तत्तदधिकरणं स्वीकृत्य इति अर्थः. **अभिमानेन** अधिकरणभेदाभिमानेन. **तस्य** इत्यादि. तत्तदधिकरणाभिमाने(?)तः तत्तच्छब्दवाच्यत्वन्तु ब्रह्मणः इति अर्थः. **अधिलोकादयः** अधिलोकादिशब्दाः इति अर्थः. **शाखान्तरे** तैत्तिरीयाणां शिक्षोपनिषदि. पञ्चाधिकरणानि आहुः ‘**अधिलोकम्**’’ इत्यादिना. **न भगवति** इत्यादि. तथाच ते अभिमानिनो भिन्नाएव इति अर्थः. ननु बहूनां

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अपरां कोटिम् आहुः **अथवा** इति. तत्तदधिकारे वर्तन्ते ये ते देवाः. तेषां समूहो दैवम्. तत्तद् अधिकाराभिमानिजीवसमुदायः तत्र वर्तते. याः ‘अधिदैव’ इत्यादिसञ्ज्ञाः तद्विविशिष्टाः अभिमानिनो यन्निष्ठा आधारधर्माः अधिदेवकत्वाधिलोकत्वादयो भगवति उपचाराद् भविष्यन्ति ते कल्पनीयाः इति अपरा कोटिः. यथा वा अस्मिन् वाक्ये प्रतिपाद्य अधिदैवत्वाद्युपचारितः. अन्तर्यामी वा तद्विशिष्टा अभिमानिनो जीवाः वा इति संशयाकारः इति अर्थः. अभिमानिपरत्वपक्षं स्वीकृत्य पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र** इति. तत्तदधिकृत्य अधिकरणीभूतद्वैतवादिना तत्तदधिकारं प्राप्य यो जीवो अभिमानेन ‘‘अहम् अमुकाधिकारी’’ इति अभिमानेन तस्य जीवस्य योगवृत्त्या वाचकः इति शेषः. **तादृशे**ति. ‘अधिदैवा’दिशब्दप्रयोगः. एवम् ‘अधिदैवा’दिशब्दानां यौगिकत्वम् उक्त्वा ‘अधिलोक’ शब्दस्य यौगिकत्वे वैदिकप्रसिद्धिम् आहुः **अधिलोके**ति. **शाखान्तरे** तैत्तिरीयोपनिषदि शिक्षाध्याये. तथाहि

‘‘**पञ्चस्वधिकरणेषु अधिलोकम् अधिज्यौतिषम् अधिविधम् अधिप्रजम् अध्यात्मं ता महासंहिता इति आचक्षते. अथ अधिलोकं पृथिवी पूर्वरूपं द्यौरुत्तररूपम् आकाशः सन्धिः वायुः सन्धानम् इति अधिलोकम्**’’ (तैत्ति.उप.१।३।१) इत्यादि.

अन्यत्रैव इति. पृथिव्यादिषु इति अर्थः. **योगे**ति. योगवृत्त्या वाचकः इति अर्थः. **न भगवति** इति. तथाच यौगिकशब्दानाम् औपचारिकत्वाभावाद् उपचारो

भगवति वर्तितुम् उत्सहन्ते नापि अन्ये कल्पनिया यद्धर्माः उपचाराद् भगवति भवेयुः. कल्प्यमानस्य सर्वानुस्यूतस्य तादृशस्य भगवद्व्यतिरिक्तस्य असम्भवात्. तस्माद् अन्तर्यामिब्राह्मणं कुत्रापि अयुक्तं सत् तत्तदभिमानिदेवतास्तुतिपरमेव तत्तदुपासनार्थं भविष्यति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

कल्पने गौरवाद् विद्यया प्राप्तसामर्थ्यः कश्चित् तादृशाधिकारी जीवः तादृशसामर्थ्यवान् योगी प्रधानं वा एकएव अधिष्ठाता कल्पनीयः इत्यतः आहुः **नापि अन्ये** इत्यादि. **उपचारे**त्यादि. यद्धर्मसदृशाः धर्माः भगवति भवेयुः इति अर्थः. तथाच तत्तदधिष्ठात्री देवता तादृशी इति भावः. प्राप्तसामर्थ्यजीवयोगिनां नियामकत्वोक्तौ **‘‘य आत्मनि तिष्ठन् आत्मनोन्तरः’’** (बृहदा.उप.३।७।२३) इति श्रुतेः तस्यापि नियामको अन्यो वक्तव्यः. सः नियामको ब्रह्मभिन्नः चेत् तस्यापि नियामको अन्यो वाच्यः इति अनवस्था. देवतायाः तन्नियामकत्वाङ्गीकारेतु सर्वत्रैव तस्याः नियामकत्वसम्भवे अन्यवैयर्थ्यम् इति अर्थः. प्रधानस्य अन्तर्यामित्वाधिष्ठातृत्वाङ्गीकारेतु तत्र उक्तस्य इच्छावत्व-श्रोतृत्व-वक्तृत्व-विज्ञातृत्वादीनाम् अनुपपत्तिः. तस्य जडत्वेन तत्र तेषाम् असम्भवाद् इति भावः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि. **तत्तदभिमानी**त्यादि. देवलोकादीनाम् अभिमानिदेवता इति अर्थः. **स्तुतिपरम्** इत्यादि. अधिदेवतावाक्यम् अन्तर्यामिवाक्यं च तत्तदभिमानिदेवतायाः उपासनार्थं स्तुतिपरम् इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

भगवति न सम्भवति इति भावः. ननु अस्तु तेषाम् अभिमानिवाचकत्वं, तथापि तद्वति धर्माणां भगवति उपचारेण ब्रह्मप्रतिपादकत्वं वाक्यस्य सुघटमेव इत्यतः आहुः **नापि** इति. अन्याभिमानिवाचकत्वे *बाधकम् आहुः कल्प्यम् आहुः **कल्प्यमानस्य** इति. बहूनां कल्पनापेक्षया लाघवाद् एकस्यैव कल्पना उचिता इति सर्वानुस्यूतं भगवति अतिरिक्तं चेद् भवति इति ब्रह्मैव कल्पनीयम्. तच्च न सम्भवति. तत्र यौगिकशब्दानाम् उपचारेण प्रयोगाभावाद् इति अर्थः. उपसंहरति **तस्माद्** इति. ननु **‘‘यं पृथिवी न वेद’’** इत्यनेन अज्ञत्वकथनेन निन्दैव प्रतीयते, नतु स्तुतिः इत्यतः आहुः **अज्ञानं च** इति. **सन्देहवद्** इति. तैत्तिरीयशाखायां द्वितीयाष्टके ब्राह्मणे अन्तिमप्रपाठके उक्तम्. **‘‘सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद किं स्विद् वनं क उस वृक्ष आसीत्. यतो द्यावापृथिवी निष्ठतक्षुः’’** (तैत्ति. ब्राह्म.२।८।९।६) इत्यत्र असन्देहेऽपि कल्पनया सन्देहोक्तिः तद्वद् अत्रापि ज्ञाने

---

* आद्यसम्पादकीयम् ‘‘केषुचनादर्शेषु ‘बाधकं’ केषुचनेषु च ‘कल्प्यम्’. हस्ताक्षरेषु तु ‘कल्प्यम्’एव.

अज्ञानञ्च असन्देहे सन्देहवद् उपपद्यते. **''देहोऽसवोऽक्षाः''**(भाग. पुरा.६।४।२५) इतिन्यायाद् वा. नतु निषिद्धसञ्ज्ञा भगवति कल्पयितुं शक्या इति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ननु अभिमानिदेवतायाः विग्रहादिसकलोपकरणयुक्तायाः **''यं पृथिवी न वेद''** (बृहदा.उप.३।७।३) इत्याद्यज्ञानोक्तिः अयुक्ता इत्यतः आहुः **अज्ञानं च** इत्यादि. **असन्देहे**त्यादि. तथाच **''सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद''**(तैत्ति.ब्राह्म.२।८।९।६) इत्यत्र यथा कल्पनया सन्देहः उच्यते तथा अत्र अज्ञानमपि स्थूणाखननन्यार्थं कल्पनया उच्यते इति अर्थः. इत्थं च तत्र एकवचनमपि **''यं पृथिवी न वेद''** इत्यादिरूपं जात्यभिप्रायकम्, अन्तर्यामित्वन्तु देवतात्वात्. अमृतत्वं च अस्मदाद्यपेक्षया बहुकालस्थायित्वात्. ननु जडायाः पृथिव्याः अज्ञानोक्तिः अयुक्ता इत्यतः आहुः **''देहो असवः''** इत्यादि. इदं वाक्यं षष्ठस्कन्धे दक्षस्तुतौ अस्ति. **''देहो असवो अक्षा मनवो भूतमात्रा नात्मानमन्यं च विदुः परं यत् सर्वं पुमान् वेद गुणांश्च तज्ज्ञो न वेद सर्वज्ञम् अनन्तम् ईडे''** (भाग.पुरा. ६।४।२५) इति. अर्थस्तु, 'देहः' प्रसिद्धः. 'असवः' प्राणाः. 'अक्षा' इन्द्रियाणि. 'मनवो' अन्तःकरणानि. भूतानि तन्मात्राश्च. 'आत्मानं' स्व-स्वस्वरूपाणि. 'अन्यं' स्वभिन्नं विदुः 'परं यत् सर्वं जीवः पुमान् वेद' सर्वकारणीभूतगुणांश्च पुमान् वेदः. 'तज्ज्ञः' पूर्वोक्तसर्वज्ञोऽपि. यम् अनन्तं सर्वज्ञं न वेद. तम् 'ईडे' स्तौमि इति अर्थः. तथाच अत्र देहादिजडानाम् अज्ञानोक्तिः नित्यानुवादः तथा **''यं पृथिवी न वेद''** इत्यत्रापि बोध्यम् इति अर्थः. ननु को अयम् आग्रहः? भगवानेव तत्तद् अधिष्ठाता एकएव अस्तु, इत्यतः आहुः **निषिद्धे**त्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अज्ञानकल्पनया श्रुत्युपपत्तिः कर्तव्या इति अर्थः.

ननु ज्ञाने अज्ञानकल्पनायाम् असामञ्जस्यम् अतः आहुः **सन्देहः** इति. षष्ठस्कन्धे दक्षस्तुतौ **''देहोऽसवोऽक्षा मनवो भूतमात्रा नात्मानमन्यं च विदुः परं यत्. सर्वं पुमान् वेद गुणांश्च तज्ज्ञो न वेद सर्वज्ञमनन्तमीडे''** (भाग.पुरा.६।४।२५). असवः प्राणाः मनवो अन्तःकरणानि देहादयः सर्वे आत्मानम् अन्यं च न विदुः परन्तु पुमान् जीवः सर्वं देहादिकं वेद सत्त्वादीन् गुणांश्च वेद एतादृशः तज्ज्ञो जीवः सर्वज्ञं न जानाति एतादृशम् अनन्तम् ईडे. अत्र देहादीनां जडत्वाद् ज्ञानासम्भवाद् इदं शशशृङ्गं न भवति इतिवद् न विदुः इति अन्तस्य निषेधो न उपपद्यते, तस्य सत्त्वप्रतियोगिकत्वात्. तथापि नित्यानुवादेन उपपत्तिः यथा, तथा अत्रापि तेन यावदुपपत्तिः बोध्या इति भावः. वा इति पक्षान्तरे. ननु एतादृशक्लिष्टकल्पनापेक्षया अधिदैवादिकं भगवन्नामैव अस्तु इत्यतः आहुः **नतु** इति. **निषिद्धे**ति. निकृष्टेति अर्थः. तथाच अभिमानमूलिकायाः

एवं प्राप्ते, उच्यते **अन्तर्याम्यधिदैवादिषु**. अन्तर्याम्यधिदैवादिषु भगवानेव, न अन्यः तादृशो भवितुम् अर्हति. ननु च उक्तं भगवति कथं निषिद्धकल्पनम् इति. तत्र आह **तद्धर्मव्यपदेशात्**. तेषां धर्माः तद्धर्माः. *तत्प्रयुक्तिबोधकाः. ते विशेषेण भगवति उपदिश्यन्ते. सर्वेषां तत्तत्कार्यं सामर्थ्यञ्च भगवतो नतु स्वतः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

निषिद्धसञ्ज्ञा 'अभिमानी' इति सञ्ज्ञा. सा भगवति कल्पयितुम् अयुक्ता इति हेतोः ते भिन्नाएव इति अर्थः. **इति प्राप्ते** उक्तरीत्या पूर्वपक्षे प्राप्ते. **उच्यते** सिद्धान्तः उच्यते इति अर्थः.

सूत्रेण सिद्धान्तम् आहुः **अन्तर्यामी**त्यादि. सौत्रा'न्तर्यामि'शब्दस्य अर्थः अधिदैवादिषु अन्तर्यामी इति. एतस्यापि निष्कृष्टार्थम् आहुः **अधिदैवादिषु** इति. तथाच पृथिवीम् आरभ्य, अधिदैवम् आरभ्य आत्मपर्यन्तं सर्वत्र अन्तर्यामी भगवानेव. **तादृशः** सर्वेषाम् आत्मरूपो अमृतो अन्तर्यामी च इति अर्थः. सौत्रं हेतुं योजयितुम् आहुः **ननु** इत्यादि. **निषिद्धे**त्यादि. 'अभिमानी'तिसञ्ज्ञाकल्पना निषिद्धकल्पना इति अर्थः. सौत्रं हेतुं व्याकुर्वन्ति **तेषां धर्माः** इत्यादिना. **तेषां** पृथिव्याद्यभिमानिनां जीवस्थानीयदेवानाम् इति अर्थः. **धर्माः** अभिमानादियावत् तत्कृतिसामर्थ्यादिरूपाः. **तत्प्रयुक्तिबोधकाः** स्वेषु भगवत्प्रेरितत्वबोधकाः इति अर्थः. **ते** अभिमानिधर्माः. **विशेषेण** नियम्यनियामक-भावसम्बन्धेन. अपि दृश्यन्ते अभिमानिष्विव भगवत्यपि भासन्ते इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अधिदैवादिसञ्ज्ञायाः निकृष्टत्वेन तदपेक्षया क्लिष्टकल्पनैव अस्ति इति भावः. सिद्धान्तम् आहुः **उच्यते** इति. **अर्हति** इति. सर्वत्र एकएव इति अन्येषां योग्यता न भवति. नानात्वाद् इति भावः. सौत्रं हेतुम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **तद्धर्मव्यपदेशात्**. तेषां पृथिव्यादीनां भूताधारकत्वादिधर्माः. पृथिव्यग्निवाय्वादीनाम् अधिष्ठातृदेवतानां च आवेशेन तत्कार्यकारित्वरूपाः ये धर्माः अधिदैवत्वादयः ते सर्वेऽपि भगवत्प्रयुक्ताः, नतु स्वतः इति बोधकाः सन्तः भगवति व्यपदिश्यन्ते व्यवह्रीयन्ते नतु भगवतः इयम् अधिदैवादिसञ्ज्ञा इति अर्थः. ***तत्प्रयुक्तबोधकाः** इति. भगत्प्रयुक्तबोधकाः इति अर्थः. अयमेव पाठः समीचीनः इति प्रतिभाति. यथा अमात्ये दण्डदानकर्तृत्वं राजप्रयुक्तम्, तथा अत्रापि इति भावः. क्वचित्पुस्तके तत्प्रयुक्तिबोधिका इति पाठः. सच प्रकाशे व्याख्यातः. क्वचित्पुस्तके तत्प्रयुक्तयुक्तिबोधका इति पाठः. ते धर्माः भगवत्प्रयुक्ताः इति अर्थः. अमुमेव अर्थं विशदयन्ति **सर्वेषाम्** इति.

तेषाम् इति. एवञ्च सति अन्यत् सर्वं सङ्गतं भवति. तस्माद् ब्रह्मवाक्यमेव. अन्यथातु अधिकरणरचना, अन्तस्तद्धर्माधिकरणेन गतार्थत्वाद् अयुक्तैव।।१८।।

न च स्मार्तम् अतद्धर्माभिलापात्।।१९।।

ननु ब्रह्मवादे अन्तर्यामी न प्रसिद्धः, जीव-ब्रह्म-जडानामेव

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

एवं सति एकस्य भगवतः पूर्वोक्तसर्वान्तर्यामित्वे सिद्धे सति. **अन्यत् सर्वं** ‘‘**एष त आत्मा अन्तर्याम्यमृतम्**’’(बृहदा.उप.३।७।३) इत्यादि. **सर्वं सङ्गतं भवति** यथाश्रुतार्थमेव सङ्गतं भवति, नतु लक्षणाकरणादिकमपि इति अर्थः. एवम् अदृष्टाश्रुतत्वादिकमपि लौकिकेन्द्रियाग्राह्यत्वाद् उपपद्यते. एवम् एकवचनमपि उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि. येतु तस्य भगवतो धर्माः तेषाम् अभिमानिषु अतिदेशः इति अधिकरणरचनाम् आहुः तन्मतं दूषयितुम् आहुः **अन्यथा** इत्यादि।।१८।।

प्रधानस्य अन्तर्यामित्वं परिहर्तुं सूत्रम् आह. ‘‘**नच स्मार्तम् अतद्धर्माभिलापात्**’’. सूत्रम् अवतारयितुम् आशङ्काम् आहुः **ननु** इत्यादि. **ब्रह्मवादे** ‘‘**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**’’(छान्दो.उप.६।८।७), ‘‘**ऐतदात्म्यम् इदं सर्वम्**’’(तत्रैव) इति हि ब्रह्मवादः. अन्तर्याम्यप्रसिद्धौ हेतुम् आहुः **जीवे**त्यादि. ब्रह्मणः कारणत्वेन जड-जीवयोः कार्यत्वेन प्रसिद्धत्वाद् इति अर्थः. **अतः** यतो वेदान्तेषु अन्तर्याम्यप्रसिद्धो अतः इति अर्थः. ननु प्रकृत्यवच्छिन्नपुरुषस्य सांख्यप्रसिद्धस्य अन्तर्यामित्वं वाच्यम् अतः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

एवं च सति इति. अन्तर्यामिणो ब्रह्मत्वे सिद्धे सति इति अर्थः. ‘‘**सर्वं नान्यो अतो अस्ति द्रष्टा**’’ (बृहदा. उप.३।७।२३) इत्यादिब्रह्मबोधकं सर्वं वाक्यं सङ्गतं भवति. अत्र केषाञ्चिन्मते अन्तर्यामी किम् अधिदैवाद्यभिमानिदेवता परमात्मा वा? इति संशयः. तत्र देवतात्मा इति पूर्वः पक्षः, अमृतत्वादीनां निर्देशात् परमात्मा इति सिद्धान्तः, इति एतादृश्यधिकरणरचनां दूषयितुम् आहुः **अन्यथा** इति. **गतार्थत्वाद्** इति. तत्रापि अमृतत्वादीनां निर्देशात् तत्तुल्यत्वाद् अयुक्तेति अर्थः. अधिकं प्रकाशाद् अनुसन्धेयम्।।१८।।

साङ्ख्यमतसिद्धप्रधानविशिष्टो अन्तर्यामी न भवति इति आहुः **नच स्मार्तम् अतद्धर्माभिलापात्**. आशङ्क्य सूत्रावतरणिकाम् आहुः **ननु** इति. **ब्रह्मवादे** ‘‘**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**’’(छान्दो.उप.३।१४।१) इति श्रुतिप्रसिद्धे ब्रह्मवादे. न प्रसिद्धः इति, कार्यरूपेण कारणरूपेण वा **न प्रसिद्धः** इति अर्थः. कारणरूपेण ब्रह्मणः कार्यरूपेण

प्रसिद्धत्वात्. अतो अन्तर्यामिणः साङ्ख्यपरिकल्पितस्य गुणयोगात् तादृशस्य ब्रह्मत्वे वा कः पुरुषार्थो भवेत्? नहि ईश्वरं प्रकृतिधर्मारूढम् अन्तर्यामिणं मन्यन्ते, तादृशस्य उपनिषत्स्वभावात्. पूर्वपक्षन्यायेन स्तुतिपरता. तन्मतस्य वा श्रौतत्वम् इति आशङ्क्य परिहरति. **नच स्मार्तं**, स्मृतिप्रसिद्धं स्मार्तं साख्यमतसिद्धम् इति यावत्. तादृशम् अन्तर्यामिरूपम् अत्र भवितुं न अर्हति. कुतः? **अतद्धर्माभिलापात्.** तद्धर्माणाम् अनभिलापात्, तद्विरुद्धधर्माणां च

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आहुः **गुणे**त्यादि. तथाच सत्त्वादिगुणयुक्तस्य अन्तर्यामित्वे **तादृशस्य** सगुणस्य वा ब्रह्मत्वे कः पुरुषार्थो भवेद्? न कोऽपि इति अर्थः. **प्रकृतिधर्मारूढं** प्रकृतिधर्मगुणयुक्तम्. मन्यन्ते **उपनिषदः** मन्यन्ते इति अर्थः. तत्र हेतुः **तादृशस्य** इत्यादि. **तादृशस्य** सगुणस्य. **पूर्वपक्षन्यायेन** पूर्वोक्तरीत्या. **स्तुतिपरता** प्रकृत्यधिष्ठातुः उपासनार्थम् अन्तर्यामि-ब्राह्मणं तत्स्तुत्यर्थम् इति अङ्गीकार्यम्. **तन्मतस्य** सांख्यमतस्य च **अश्रौतत्वम्** अङ्गीकार्यम् इति आशङ्का इति अर्थः.

एवं पूर्वोक्तरीत्या आशङ्क्य अन्तर्यामिब्राह्मणस्य देवतास्तुतिपरतायाः अग्रिमसूत्रे निराकर्तव्यत्वात् सांख्यमतस्य च अश्रौतत्वं निराकरोति सूत्रकारः इति आहुः **नच स्मार्तम्** इत्यादिना. 'स्मार्त'पदस्य अर्थम् आहुः **स्मृतिप्रसिद्धम्** इत्यादिना. **तादृशं** प्रकृत्यधिष्ठातृरूपम्. **अत्र** श्रुतिषु. **तद्धर्माणां** प्रकृत्यधिष्ठातृविरुद्धधर्माणाम् इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उभयोः प्रसिद्धिम् आहुः **जीवे**ति. **साङ्ख्ये**ति. साङ्ख्यमतेतु सगुणं ब्रह्म अन्तर्यामी इति प्रसिद्धम्. तत्तु स्वमते स्वीकर्तुं न शक्यते, सगुणत्वात्. सगुणस्य ब्रह्मत्वे मोक्षरूप-पुरुषार्थएव न सिद्ध्येद् इति अर्थः. कुतो न सिद्ध्येद्? इत्यतः आहुः **नहि** इति. **प्रकृति-धर्मारूढम्**. प्रकृतिधर्माः सत्त्वादयः, तदवच्छिन्नं मन्यन्ते. वेदान्तिनः इति शेषः. **मन्यन्ते केऽपि** इत्यपि पाठः. केऽपि वेदान्तिनः इति अर्थः. कुतो न मन्यन्ते? इत्यतः आहुः **तादृशस्य** इति. तादृशस्य सगुणस्य. **उपनिषत्स्वभावाद्** इति. उपनिषत्सु अभावाद् अनुपलभ्यमानत्वाद् इति अर्थः. ननु अन्तर्यामिब्राह्मणस्य का वा गतिः? इत्यतः आहुः **पूर्वपक्षे**ति. तन्मतस्य इति. **साङ्ख्यमतस्य** इति अर्थः. तन्मतस्य श्रौतत्वे स्वीकृते अन्तर्यामिब्राह्मणं तत्परं भविष्यति इति क्षतिः इति भावः.

सूत्रार्थम् आहुः **नच** इति. स्मार्तेति अस्य समानलिङ्गकं विशेष्यम् आहुः **अन्तर्यामिरूपम्** इति. हेत्वंशे अधिकांशं पूरयित्वा व्याख्यानम् आहुः **अतद्धर्मेति.**

अभिलापात्. नहि अत्र सत्त्वरजस्तमोगुणाः तत्कार्यं वा अभिलप्यते. तद्विरुद्धाश्च एते धर्माः, **‘‘यस्य पृथिवी शरीरम्’’** (बृहदा.उप.३।७।२) इत्यादि. तस्मात् साङ्ख्यपरिकल्पितं न अन्तर्यामिरूपम् अत्र भवितुम् अर्हति इति सिद्धम्. एवं सति ब्रह्मधर्माएव एते भवन्ति इति ब्रह्मवादः फलिष्यति।।१९।।

शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते।।२०।।

ननु उक्तन्यायेन शारीरएव भवतु. को दोषः? किमिति ब्रह्मपरत्वं कल्प्यम्? इति. तत्र आह **शारीरश्च.** ‘न’ इति अनुवर्तते. शारीरश्च जीवो न अन्तर्यामिब्राह्मणे तत्तदभिमानिरूपो **‘‘यस्य पृथिवी शरीरम्’’** इति वाक्यानुरोधेन भवितुम् अर्हति. ततोऽपि भिन्नतया अन्तर्यामिणो वचनात्. उभयेऽपि काण्व-

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अर्थः. **अत्र** अन्तर्यामिब्राह्मणे. **तत्कार्यम्** उत्पत्ति-स्थिति-लयाः. उपसंहरन्ति **एवं सति** इत्यादि. **एते** **‘‘यः पृथिव्यां तिष्ठन्’’** (बृहदा.उप.३।७।३) इति ब्राह्मणोक्ताः।।१९।।

सूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **उक्तन्यायेन** यथा संवर्गविद्यायाः ब्रह्मत्वेन जीवोपासनरूपायाः ब्रह्मविद्याङ्गत्वं तथा अन्तर्यामिविद्यायाअपि अस्तु. तथाच अन्तर्यामिब्राह्मणं शारीरस्य उपासनार्थं ब्रह्मत्वेन स्तुत्यर्थम् इति शारीरस्य जीवस्य अन्तर्यामित्वे न कोऽपि दोषः इति अर्थः. **न इति अनुवर्तते** पूर्वसूत्राद् अनुवर्तनीयम् इति अर्थः. सूत्रेण समाधानम् आहुः **शारीरः** इत्यादिना. **तत्तदभिमानी** इत्यादि. देवाद्यात्मान्तानाम् अधिष्ठाता इति अर्थः. **वचनाद्** इति उक्तं वचनमेव आहुः **उभयेऽपि**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अधिकांशम् आहुः **तद्विरुद्धे**ति. अत्र अस्मिन् विषयवाक्ये तत्कार्यं प्रपञ्चः सर्वोऽपि. विरुद्धधर्मान् आहुः **यस्य** इति. आदिना अन्येषामपि सङ्ग्रहः।।१९।।

‘‘शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते’’ इदं सूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **उक्तन्यायेन** इति. सम्वर्गविद्यान्यायेन इति अर्थः. ब्रह्मत्वेन जीवोपासना तस्याम् अभिहिता इति सा यथा ब्रह्मविद्याङ्गभूता, तथा अन्तर्यामिब्राह्मणमपि देवतास्तुति-परत्वेन ब्रह्मविद्याङ्गम् इति जीवएव अन्तर्यामी भवतु इति अर्थः. **अनुवर्तते.** पूर्वसूत्राद् इति शेषः. अनुवृत्त्यनन्तरम् अर्थम् आहुः **शारीरश्च** इति. कुत्र वचनम्? इत्यतः आहुः **उभयेऽपि** इति. अस्य अर्थम् आहुः **काण्वा** इति. विसन्देहार्थम् इति विशेषेण ज्ञानं विज्ञानबुद्धिः इति सन्देहनिराकरणार्थम् इति अर्थः. उभयग्रहणम् इति सूत्रेति शेषः. ननु

माध्यन्दिन-ब्राह्मणद्वयेऽपि **एनं** जीवं **भेदेनैव** **अधीयते** ब्राह्मणाः. निःसन्देहार्थम् उभयग्रहणम्. ''**यो विज्ञाने तिष्ठन्**'' (बृहदा.उप.३।७।२२) इति काण्वाः. ''**यः आत्मनि तिष्ठन्**'' इति माध्यन्दिनाः. नच 'आत्म'शब्देन अन्यः सम्भवति, अन्येषां पूर्वमेव पठितत्वात्. अन्ते हि जीवम् आह. तस्माद् अन्तर्यामिब्राह्मणे ब्रह्मैव वाक्यार्थः इति सिद्धम्।।२०।।

इति प्रथमाध्याये द्वितीयपादे षष्ठम् अन्तर्याम्यधिकरणम्।।६।।

अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः।।२१।। (१।२।७)

मुण्डके हि श्रूयते ''**कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते**''(मुण्ड.उप.१।१।३) इति

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इति सूत्रभागेन. **उभयग्रहणं** सूत्रे **उभये** इति उपादानम् इति अर्थः. **निःसन्देहार्थम्** इत्यत्र 'विज्ञान'पदेन बुद्धिसन्देहः स्यात् तन्निवारणं च द्वितीयश्रुतौ 'आत्मनि' इति 'आत्म'पदग्रहणाद् बोध्यम्. ननु अतति व्याप्नोति इति 'आत्मा' इति योगाद् मनोदिगाकाशादयएव कुतो न गृह्यन्ते इत्यतः आहुः **नच आत्मा** इत्यादि. **अन्येषां** देवभूताद्यात्मान्तानाम्. **पठितत्वाद्** अन्तर्यामि-नियम्यत्वेन पठितत्वाद् इति अर्थः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि।।२०।।

अथवर्णोपनिषदि मुण्डके श्रूयते अस्य विषयः. तत्र उपक्रमे ''**शौनको ह वै महाशालोङ्गिरसं विधिवद् उपसन्नः पप्रच्छ. कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वम् इदं विज्ञातं भवति इति**''. ततो अङ्गिरा उवाच ''**द्वे विद्ये वेदितव्ये**''(मुण्डकोप.१।१।३,४) इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अतति व्याप्नोति इति आत्मा, एवञ्च योगेन कालादीनामपि ग्रहणं स्याद् इत्यतः आहुः **नच** इति।।२०।।

प्रसङ्गसङ्गत्या पूर्वाधिकरणविषयवाक्ये अदृष्टो द्रष्टेति उक्तम्. तत्र किं कारणम्? इति आकाङ्क्षायां निवर्तकम् अदृश्यत्वाधिकरणम् आहुः **अदृश्यत्वादि-गुणको धर्मोक्तेः**. अत्र सम्पूर्णं मुण्डकं विषयवाक्यं बोध्यम्.

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता. स
ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठाम् अथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ।।१।। अथर्वणे
यां प्रवदेत ब्रह्मा अथर्वा तां पुरोवाच अङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्. स भारद्वाजाय
सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजो अङ्गिरसे परावराम् ।।२।। शौनको ह वै महाशालो
अङ्गिरसं विधिवद् उपसन्नः पप्रच्छ कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वम् इदं विज्ञातं

भवतीति ।।३।। तस्मै स होवाच. द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ।।४।। तत्र अपरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो अथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम् इति. अथ परा यया तद् अक्षरम् अधिगम्यते ।।५।। यत्तद् अद्रेश्यम् अग्राह्यम् अगोत्रम् अवर्णम् अचक्षुःश्रोत्रं तद् अपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तद् अव्ययं तद् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ।।६।। यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्याम् ओषधयः सम्भवन्ति. यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि, तथा अक्षरात् सम्भवतीह विश्वम् ।।७।। तपसा चीयते ब्रह्म ततो अन्नम् अभिजायते. अन्नात् प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ।।८।। यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः. तस्माद् एतद् ब्रह्म नाम रूपम् अन्नं च जायते ।।९।। इति प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः।।१।।

तदेतत् सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यानि अपश्यन् तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि. तानि आचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके ।।१।। यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने. तद् आज्यभागाअ अन्तरेण आहुतीः प्रतिपादयेच्छ्रद्धया हुतम् ।।२।। यस्य अग्निहोत्रम् अदर्शम् अपौर्णमासम् अचातुर्मास्यम् अनाग्रयणम् अतिथिवर्जितं च. अहुतम् अवैश्वदेवम् अविधिना हुतम् आसप्तमान् तस्य लोकान् हिनस्ति ।।३।। काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा. स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ।।४।। एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन्. तद् नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेको अधिवासः ।।५।। एहि एहि इती तम् आहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिः यजमानं वहन्ति. प्रियां वामभिवदन्ति अर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ।।६।। प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तम् अवरं येषु कर्म. एतच्छ्रेयो ये अभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेव अपियन्ति ।।७।। अविद्यायाम् अन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः. जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ।।८।। अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इति अभिमन्यन्ति बालाः. यत् कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात् तेन आतुराः क्षीणलोकाः च्यवन्ते ।।९।। इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यत् श्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः. नाकस्य पृष्ठे ते सुकृते अनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति ।।१०।। तपःश्रद्धे ये हि

उपवसन्ति अरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः. सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्र अमृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ।।११।। परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदम् आयात् नास्ति अकृतः कृतेन. तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेव अभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।।१२।। तस्मै स विद्वान् उपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय. येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ।।१३।।

इति प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः ।।२।।

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः तथा अक्षराद् विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैव अपियन्ति ।।१।। दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः. अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात् परतः परः ।।२।। एतस्माद् जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च. खं वायुः ज्योतिरापः पृथिवीं विश्वस्य धारिणी ।।३।। अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः. वायुः प्राणो हृदयं विश्वम् अस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ।।४।। तस्माद् अग्निः समिधो यस्य सूर्यः सोमात् पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम्. पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात् सम्प्रसूताः ।।५।। तस्माद् ऋचः साम यजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च. सम्वत्सरश्च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ।।६।। तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि. प्राणापानौ व्रीहियवौ तमश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ।।७।। सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः. सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ।।८।। अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वे अस्मात् स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः. अतश्च सर्वा ओषधयो रसाश्च येन एष भूतैः तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ।।९।। पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्. एतद्यो वेद निहितं गुहायां सो अविद्याग्रन्थिं विकिरति इह सोम्य ।।१०।। इति द्वितीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ।।१।।

आविः सन्निहितं गुहाचरन्नाम महत्पदम् अत्र एतत्समर्पितम्. एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतद् जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञानाद् यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ।।१।। यदर्चिमद् यद् अणुभ्यो अणु च यस्मिन् लोका निहिता लोकिनश्च. तदेतद् अक्षरं ब्रह्म स प्राणः तदु वाङ्मनः. तदेतत्सत्यं तद्

अमृतं तद् वेद्धव्यं सोम्य विद्धि ।।२।। धनुर्गृहीत्वा औपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं सन्धयीत. आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेव अक्षरं सोम्य विद्धि ।।३।। प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यम् उच्यते. अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत् ।।४।। यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षम् ओतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः. तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्य एष सेतुः ।।५।। अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः. स एषो अन्तश्चरते बहुधा जाय–मानः. ॐ इत्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ।।६।। यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि. दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्या–त्मा प्रतिष्ठितः. मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितो अन्ने हृदयं सन्निधाय. तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपम् अमृतं यद् विभाति ।।७।। भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः. क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।।८।। हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्. तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिः तद् यद् आत्मविदो विदुः ।।९।। न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतो अयम् अग्निः. तमेव भान्तम् अनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वम् इदं विभाति ।।१०।।

इति द्वितीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः ।।२।।

ब्रह्मैव इदम् अमृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्च उत्तरेण. अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैव इदं विश्वम् इदं वरिष्ठम् ।।११।। द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते. तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन् अन्यो अभिचाकशीति ।।१।। समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो अनीशया शोचति मुह्यमानः. जुष्टं यदा पश्यति अन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ।।२।। यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्. तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यम् उपैति ।।३।। प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैः विभाति विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी. आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ।।४।। सत्येन लभ्यः तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्. अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतः क्षीणदोषाः ।।५।। सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः. येनाक्रमन्ति ऋषयो हि आप्तकामा यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम् ।।६।। बृहच्च तद् दिव्यम् अचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं

विभाति. दूरात् सुदूरे तदिह अन्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ।।७।।

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैः देवैः तपसा कर्मणा वा. ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वः ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ।।८।। एषो अणुः आत्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन् प्राणः पञ्चधा सम्विवेश. प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ।।९।। यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान्. तं तं लोकं जयते तांश्च कामान् तस्माद् आत्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः ।।१०।।

इति तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ।।१।।

स वेद एतत्परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम्. उपासते पुरुषं ये हि अकामाः ते शुक्रम् एतद् अतिवर्तन्ति धीराः ।।१।। कामान्यः कामयते मन्यमानः स कामभिः जायते तत्र तत्र. पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ।।२।। नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन. यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ।।३।। नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात् तपसो वाप्यलिङ्गात्. एतैः उपायैः यतते यस्तु विद्वान् तस्य एष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ।।४।। सम्प्राप्य एनम् ऋषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः. ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेव आविशन्ति ।।५।। वेदान्तविज्ञान–सुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः. ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे ।।६।। गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु. कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ।।७।। यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय. तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्त परात्परं पुरुषम् उपैति दिव्यम् ।।८।। स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्य अब्रह्मवित्कुले भवति तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तो अमृतो भवति ।।९।। तदेतद् ऋचा अभ्युक्तम्. क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः स्वयं जुह्वत एकर्षिं श्रद्धयन्तः. तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम्।।१०।। तदेतत् सत्यम ऋषिरङ्गिराः पुरा उवाच नैतद् अचीर्णव्रतो अधीते नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ।।११।।

इति तृतीयमुण्डके द्वितीयः खण्डः ।।२।।

पृष्टे ‘‘**द्वे विद्ये वेदितव्ये**’’(तत्रैव १।१।४) इति उत्तरम् आह. तत्र नामरूपात्मकजगतो विज्ञानार्थं नामांशे वेदादिः. रूपांशे परा च. तत्र वेदादिविद्यायां न सन्देहः. परायां सन्दिह्यते. किम् एषा साङ्ख्यमतविद्या ब्रह्मविद्या वा? इति. साङ्ख्यधर्माभिलापात् सन्देहः. ‘‘**अथ परा यया तदक्षरम् अधिगम्यते, यत् तद् अदृश्यम् अग्राह्यम् अगोत्रम् अवर्णम् अचक्षुः अश्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं, यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः**’’(तत्रैव१।१।५,६) इत्यादि. अग्रे च ‘‘**दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः, अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उत्तरम् आह. **नामरूपात्मकस्य जगतः** ‘सर्व’शब्दाभिधेयस्य **विज्ञानार्थम्**. तत्र **नामांशे** अपरा विद्या उक्ता ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम् इतिहासः पुराणं न्यायो मीमांसा धर्मशास्त्राणि इति. एतद्विद्यायाः अपरत्वन्तु शाब्दज्ञानजनकत्वेन. तत्रतु सन्देहएव नास्तीति तस्यां विचारो न युक्तइति **पराया**मेव रूपात्मकस्य जगतो विज्ञानार्थम् उक्तायां सामान्यशब्ददर्शनाद् भवति संशयः. साच ‘‘**परा यया तदक्षरम् अधिगम्यते**’’(तत्रैव१।१।५) इति अधिगमोपायत्वात् तस्याः. अधिगमश्च अपरोक्षसाक्षात्कारएव अत्र ग्राह्यो अन्यथा परत्वानुपपत्तेः. तत्र सन्देहः **सन्दिह्यते** इत्यनेन उच्यते. **सांख्यविद्या** भूतकारणप्रधानविद्या. **सांख्यधर्मे**त्यादि. ‘अक्षर’शब्दाभिलापाद् इति अर्थः. ‘अक्षर’शब्देन प्रधानम् अक्षरं ब्रह्म वा इति सन्देहः इति अर्थः. सन्देहबीजम् उपपादयन्ति **अथ** इत्यारभ्य **सृष्टिम् आह** इत्यन्तग्रन्थेन. ‘‘**परिपश्यन्ति धीराः**’’ (तत्रैव १।१।६) इत्यन्तं प्रथममुण्डकीयम् उक्त्वा द्वितीयमुण्डकीयम् आहुः **अग्रे च** इत्यादिना. तथाच अदृश्यत्वादिगुणकप्रधाने पूर्वमुण्डकोक्ते भूतयोनित्वस्य सांख्यैः अङ्गीकारात्. द्वितीयमुण्डके च ‘‘**दिव्यो ह्यमूर्तः**’’ (तत्रैव २।१।२) इत्यादिना पुरुषस्वरूपं निरूप्य ततो अग्रे ‘‘**पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात्**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अथ भाष्यम्. **इति पृष्टे** शौनकेन इति शेषः. **उत्तरम्** अङ्गिरा **आह**. परापराविद्याद्वयं सर्वविज्ञानार्थं बोध्यम्. सन्देहबीजम् आहुः **साङ्ख्यधर्मे**ति. अभिलापमेव आहुः **अथ** इत्यादिना **सृष्टिम् आह** इत्यन्तेन. **अदृश्यं** ज्ञानेन्द्रियाणाम् अग्राह्यम्. **अग्राह्यं** कर्मेन्द्रियाणाम् अग्राह्यम्. **अगोत्रम्** अनन्वयम्. शेषं स्पष्टम्. **अग्रे** इति. द्वितीयमुण्डके प्रथममुण्डके ‘भूतयोनि’पदवाच्यं साङ्ख्यमतसिद्धं प्रधानम् उक्तम्. द्वितीयमुण्डके च ‘‘**योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात् सम्प्रसूता**’’ इति उक्तम्. इदमपि

परतः परः''(तत्रैव २।१।२) इति उक्त्वा, ''**एतस्माज् जायते**'' इति निरूप्य ''**अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ**''(तत्रैव २।१।४) इत्यादिना रूपम् उक्त्वा पुनः पुरुषात् सृष्टिम् आह. तत्र एकप्रकरणत्वाद् एकवाक्यता वक्तव्या. पुनः तत्र अक्षर-पुरुषयोः भेदः प्रतीयते. तयोः उभयोरपि सृष्टिः. तद् ब्रह्मवादे न सङ्गच्छते. तस्मात् साङ्ख्यमतमेव एतत्. प्रकृति-पुरुषयोः श्लिष्टत्वाद् अन्यतरप्राधान्येन उभयोः स्रष्टृत्वम्, उभयात्मकत्वात् जगतः. रूपमपि समष्टि-

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सम्प्रसूताः'' (तत्रैव २।१।५) इतिकथनात्. प्रकृत्या सह संयोगात् पुरुषेण सृष्टिः उक्ता इति संशयबीजम् उक्तम्.

पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र** इत्यादिना. **एकवाक्यता** एकार्थप्रतिपादकता. ननु अस्तु एकवाक्यता, को दोषः? इत्यतः आहुः **तत्र अक्षरे**त्यादि. **भेदः** इति अदृश्यत्वादिगुणकं प्रधानम् उक्तं तदभिन्नम् ''अग्निर्मूर्धा'' इत्यादिरूपं च पुरुषस्वरूपम् उक्तम् इति भेदाद् अतो न एकवाक्यता एकार्थप्रतिपादकत्वाभावाद् इति भावः. **तयोः** इत्यादि. प्रधानपुरुषोभयस्मात् श्रुत्या सृष्टिः उच्यते इति अर्थः. ''**तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्**'' (तत्रैव १।१।७) इति अक्षरतः ''**एतस्माद् जायते प्राणः**'' (तत्रैव २।१।३) इति पुरुषतः. **तद् ब्रह्मवादे** इत्यादि. तथाच ब्रह्मवादे ब्रह्मातिरिक्तवस्तुनो अभावेन ब्रह्मणएव अभिन्ननिमित्तोपादानताङ्गीकाराद् द्वयोः कारणत्वं **न सङ्गच्छते** इति अर्थः. पूर्वपक्षम् उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादिना. **तस्माद्** उक्तकारणतायाः ब्रह्मवादे असम्भवाद् इति अर्थः. **एतद्** उभयो(ऽ?)कारणताप्रतिपादकम्. **अन्यतरप्राधान्येन** प्रकृतिप्राधान्येन पुरुषस्य

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

साङ्ख्यमतमेव इति सन्देहबीजम् इति अर्थः.

पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र** इति. सर्वत्र मुण्डके एकवाक्यता तदैव सम्भवति यदा साङ्ख्यमतावलम्बनेन एकप्रकरणं चेदेव. तत्तु वेदान्तिमते न सङ्गच्छते इति आहुः **तत्र** इति. **भेदः** इति. ''**अक्षरात् परतः परः**''(मुण्डकोप.२।१।४) इतिवाक्ये भेदः प्रतीयते इति अर्थः. ननु अस्तु वेदान्तिमते तयोः भेदस्य उक्तत्वाद् इत्यतः आहुः **तयोः** इति. **सृष्टिः** इति. ''**एतस्माद् जायते प्राणः**''(तत्रैव२।१।३) इत्यत्र वेदान्तिमते उभयोः सृष्ट्यभावाद् इति भावः. **न सङ्गच्छते** इति. एकवाक्यता इति शेषः. एतन्मुण्डकप्रतिपाद्यम्.

ननु साङ्ख्ये प्रकृतिः कर्त्री पुरुषस्तु निर्लेपः इत्यतः आहुः **प्रकृती**ति. कार्येण कारणानुमानमपि दर्शयति **उभये**ति. प्रकृति-पुरुषात्मकत्वाद् इति अर्थः. **रूपमपि** इति.

व्यष्टीनाम् अग्रे हि उत्पत्तिः इति. तिरोहितरूपत्वाद् न ब्रह्मविद्या किन्तु स्मृतिरेव इति. ब्रह्मविद्या वेदविद्या, उपचाराद् वा? इति. एवं प्राप्ते उच्यते. अदृश्यत्वादिगुणकः परमात्मैव, ब्रह्मविज्ञानेनैव सर्वविज्ञानात्. ततएव विद्यायापि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

निर्लेपत्वाद् इति अर्थः. **उभयात्मकत्वाद्** जडजीवोभयात्मकत्वाद् इति अर्थः. ननु पुरुषस्य नीरूपत्वात् कथं तत्र रूपनिरूपणम्? अतः आहुः **रूपमपि** इति. तथाच प्रकृतिश्लेषात् तदीयमेव रूपं पुरुषे नतु वास्तवम् इति भावः. **समष्टिव्यष्टी**त्यादि. ‘‘**तस्माद् अग्निः समिद्धो यस्य**’’ इत्यारभ्य व्यष्ट्युत्पत्तिः उक्ता. ‘‘**पुरुषएव इदं विश्वम्**’’ (मुण्डकोप.२।१।१०) इत्यादिना समष्टेः इति ध्येयम्. तत्र सार्वज्ञोक्तिरपि पुरुषोपरागाद् बोध्या. ननु ब्रह्मविद्यैव एषा कुतो न स्याद्? अतः आहुः **तिरोहिते**त्यादि. सच्चिदानन्दानां तथानिरूपणाद् न ब्रह्मविद्या इति अर्थः. **स्मृतिरेव** सांख्यमतविद्यैव इति अर्थः. ननु तर्हि उपक्रमे ‘ब्रह्मविद्या’ इति कथम् उक्तम्? अतः आहुः **वेदविद्या** इति. वेदोक्तत्वाद् इति अर्थः. ननु सर्वविद्याप्रतिष्ठारूपत्वम् अस्याः कथम् उक्तम्? अतः आहुः **उपचारात्.** कारणत्वेन प्रकृति–पुरुषयोः ब्रह्मसाम्यात् तयोः विद्यायापि ब्रह्मविद्यासाम्याद् ‘‘अग्निर्माणवकः’’ इतिवत् सदृशलक्षणया उपपत्तेः इति अर्थः. **एवं प्राप्ते** पूर्वोक्तरीत्या पूर्वपक्षे प्राप्ते **उच्यते** समाधानम् उच्यते इति अर्थः.

‘‘**अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः**’’. **अदृश्ये**त्यादि. तथाच यो अदृश्यत्वादिगुणकः परविद्यासम्बन्धित्वेन उक्तः सः **परमात्मैव. धर्मोक्तेः** यतः तस्यैव धर्माः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

‘‘**अग्निर्मूर्द्धादिव**’’ (तत्रैव २।१।४) इत्यादिना उक्तं रूपमयी इति अर्थः. समष्टेः श्लिष्टस्य एतत् कुतो ज्ञायते? इत्यतः आहुः **व्यष्टीनाम्** इति. ब्रह्मवादे न सङ्गच्छते इति उक्तम्. तद् आहुः **तिरोहते**ति. सच्चिदानन्दस्य मुण्डके क्वापि अभावाद् इति अर्थः. ननु मुण्डके ‘ब्रह्मविद्या’पदम् अस्ति अस्य का वा गतिः? इत्यतः आहुः **ब्रह्मविद्या** इति. तथाच ‘ब्रह्म’पदस्य वेदवाचकत्वाद् इति भावः. ननु विद्ययोः परापरविभागकथनाद् वेदविद्या न भवति इत्यतः आहुः **उपचाराद्** इति. लक्षणाद् इति अर्थः. **स्मृतावपि.** ब्रह्मविद्यासादृश्याद् गौर्वाहीकवद् उपचारः इति भावः. सिद्धान्तम् आहुः **उच्यते** इति.

ननु कुतः परमात्मा? इत्यतः आहुः **ब्रह्मविज्ञानेन** इति. ‘एव’कारस्य अन्ययोगव्यवच्छेदकार्यकत्वाद् न कृतेः व्यवच्छेदः. **ततएव** ब्रह्मप्रतिपादकत्वादेव. ननु एवं चेद् ‘‘**एकविज्ञानेन**’’ इति न सङ्गच्छते. विद्यायाम् अक्षर–पुरुषयोः उभयोरपि

परत्वम् अक्षरस्यापि ब्रह्मत्वं पुरुषस्यापि. तयोः परापरभावः अभेदश्च. एतादृशएव हि ब्रह्मवादः. तत्र प्रथमम् अक्षरस्य ब्रह्मत्वम् आह. अदृश्यत्वादि-गुणकः परमात्मैव. कुतः ? धर्मोक्तेः. ‘‘**तथा अक्षरात् सम्भवति इह विश्वम्**’’ (तत्रैव १।१।७) इति. इयं च उपनिषत्. नहि अत्र ब्रह्मव्यतिरिक्ताद् जगदुत्पत्तिः अस्ति. पुरुषस्य ब्रह्मत्वं निःसन्दिग्धमेव. ईषद् आनन्दतिरोभावेन ब्रह्म अक्षरम् उच्यते. प्रकटानन्दः पुरुषः इति, ‘‘**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**’’ (तैत्ति.उप.२।१) इत्यत्रैव तथानिर्णयात्. तस्माद् अदृश्यत्वादिगुणकः परमात्मैव।।२१।।

विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ।।२२।।

ननु पूर्वपक्षन्यायेन ब्रह्मविद्याख्यायामपि स्मृतिः ब्रह्मविद्यैव अस्तु.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अस्यां विद्यायां बहुशः प्रतिपाद्यन्ते. तथाहि ‘‘**कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वम् इदं विज्ञातं भवति**’’ (मुण्डकोप.१।१।३) इति एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानोपपत्तिः सर्वात्मके ब्रह्मण्येव युज्यते. **ततएव** परमात्मसम्बन्धित्वादेव. **परत्वम्** ‘अथ परे’तिविद्यायाः परत्वं सर्वोत्कृष्टविषयत्वएव सम्भवेद् इति अर्थः. ननु ‘‘**अक्षरात् परतः परः**’’ (तत्रैव २।१।२) इत्यनेन अक्षरभिन्नोत्कृष्टस्यैव पुरुषस्य ब्रह्मत्वमिति अक्षरस्य प्रधानत्वमेव उरीकार्यम् अतः आहुः **एतादृशः** इति. **तत्र** परापरब्रह्मणोः मध्ये. **धर्मोक्तेः** विश्वजनन-धर्मोक्तेः इति अर्थः. तदेव आहुः **तथा अक्षराद्** इत्यादिना. **उपनिषद्** ब्रह्ममात्रप्रतिपादिका. **अत्र** उपनिषदि. **तथानिर्णयात्** परापरभावनिर्णयात्. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि. **तस्माद्** ‘अक्षर’शब्दस्य ब्रह्मपरत्वनिर्धारणात् ।।२१।।

सूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इत्यादि. **पूर्वपक्षे**त्यादि. यद् उक्तम् अत्र उपनिषदि

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उक्तत्वाद् इत्यतः आहुः **अक्षरस्यापि** इति. अभेदमेव आहुः **तत्र** इति. धर्ममेव आहुः **तथा** इति. विश्वोत्पत्तिजनकत्वस्य ब्रह्मधर्मकत्वे युक्तिम् आहुः **इयम्** इति. नच एवं सति ‘‘**अक्षरात् परतः परः**’’ (मुण्डकोप.२।१।४) इति परापरविभागो न सङ्गच्छते इत्यतः आहुः **ईषद्** इति. तथाच एकत्वे क्षतिः न अस्ति इति भावः. एतेन अक्षरं प्रकृतिः इति साङ्ख्यमतं निरस्तम्. अत्र पूर्वोक्तं स्मारयन्ति **ब्रह्मविदे**ति. **निर्णयाद्** इति. आनन्दमयाधिकरणे द्वितीयवर्णके निर्णयाद् इति अर्थः ।।२१।।

अस्य अवतरणिकाम् आहुः **ननु** इति. **पूर्वपक्षन्यायेन** इति. ‘अक्षर’शब्देन

“**‘द्वे ब्रह्मणि वेदितव्ये मूर्तं चामूर्तं च**’’(मैत्रा.उप.६।२२) इत्यत्र विकारस्यैव ‘ब्रह्म’-पदवाच्यत्वम्. अतः प्रकृतिपुरुषावेव वाक्यार्थः इति परिहरति. इतरौ न भवतो वाक्यार्थरूपौ. कुतः? **विशेषणभेदव्यपदेशाभ्याम्.** विशेषणभेदो व्यपदेशश्च ताभ्याम्. अदृश्यत्वादयो गुणाः न प्रकृतेः भवन्ति, सर्वस्यापि तद्विकारत्वात्. न हि घटदर्शनेन मृद् न दृश्यते इति वदितुं युक्तम्. ब्रह्मवादे पुनः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

‘अक्षर’शब्देन प्रधानोक्तौ ‘ब्रह्मविद्या’इति समाख्या कथम् उपपद्यते? इति तत्र उच्यते **स्मृतिः** इत्यादि. स्मृतिरेव ब्रह्मविद्या इति योजना. **मूर्तं** प्रधानम् **अमूर्तं** पुरुषः इति अर्थः. **विकारस्य** जगत्परिणामिनः प्रधानस्य. ‘एव’कारो अप्यर्थः, तेन पुरुषस्यापि ब्रह्मत्वम्. **अतः** अनयोः ज्ञानस्यैव श्रुतौ ब्रह्मविद्यात्वेन अनुवादात्. **वाक्यार्थः** स्मृत्यनुवादो भूतोपनिषद्वाक्यार्थः. **परिहरति** उक्तपूर्वपक्षं सूत्रकारः. **इतरौ** सांख्यमतपरिकल्पितौ प्रधानपुरुषौ. **न** इत्यादि. उपनिषद्–वाक्यार्थरूपौ **न भवतः** इति अर्थः. पृच्छति **कुतः** इति. उत्तरम् आह **विशेषणे**त्यादि. **विशेषणम्** अदृश्यत्वादि. **व्यपदेशो** ‘ब्रह्म’शब्दवाच्यत्वम्. **ताभ्याम्** इतरौ उपनिषदि वाक्यार्थौ न भवतः इति अर्थः. तदेव उपपादयन्ति **अदृश्यत्वे**त्यादिना. **सर्वस्यापि** घटपटादेः इति अर्थः. **तद्विकारत्वात्.** जगति विद्यमानपदार्थदर्शने सति प्रकृतेः दृश्यत्वम् उपपादयन्ति **न हि** इत्यादिना.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

प्रधानम् इति पूर्वपक्षन्यायेन इत्यर्थः. **ब्रह्मविद्यैव** इति. स्मृतेरेव इयं सञ्ज्ञा इति अर्थः. ननु कस्मिन् विज्ञाते इत्यत्र का गतिः? इति चेद् न, तत्र कस्मिन् इत्यस्य कस्मिन् मते इति अर्थेन साङ्ख्यमतज्ञाने सति सर्वज्ञत्वं सम्पद्यते इति भावः. ननु प्रकृतेः कुत्र ‘ब्रह्म’पदवाचकत्वम् उक्तं येन स्मृतेरपि ब्रह्मविद्यात्वं स्याद्? इत्यतः आहुः **द्वे ब्रह्मणी** इति. **मूर्तिः** प्रकृतिः. सूत्रार्थम् आहुः **इतरौ** इति. प्रथमं व्युत्पादयन्ति **अदृश्ये**ति. **सर्वस्यापि** इति. दृश्यस्य घटादेः इति अर्थः. ननु घटादिदर्शनं कथं भवति? इत्यतः आहुः **न हि** इति. ननु प्रपञ्चस्य ब्रह्मरूपत्वात् तद्दर्शनेन ब्रह्मदर्शनं भविष्यति इति कथम् अदृश्यत्वं ब्रह्मणि? इत्यतः आहुः **ब्रह्मवादः** इति. ब्रह्मणस्तु विरुद्धधर्माश्रयत्वम् इति असकृद् अवोचाम. ननु यथा भवद्भिः ब्रह्मणि विरुद्धधर्माश्रयत्वं स्वीक्रियते तथा अस्माभिः प्रधानेऽपि स्वीक्रियते इत्यतः आहुः **न हि** इति. प्रधानम् इति शेषः. प्रकृतेः नित्यत्वादिकं साङ्ख्यैः अनङ्गीकाराद् इति भावः. ननु तदपि स्वीक्रियते इत्यतः आहुः **सर्वे**ति. तथाच प्रधानेति ब्रह्मणएव नामान्तरं नतु अतिरिक्तः पदार्थः इति प्रतिज्ञा

सर्वभवनसमर्थत्वाद् ब्रह्मणि विरोधाभावः. न हि नित्यं सदैकरूपम् अविक्रियमाणञ्च भवितुम् अर्हति. सर्वब्रह्मधर्मतुल्यत्वे तदेव ब्रह्म इति जितं ब्रह्मवादिभिः. **“यः सर्वज्ञः सर्वविद्”**(मुण्ड.उप.१।१।९) इत्यादयस्तु सुतरामेव न प्रकृतिधर्माः. व्यवधानाच्च न पुरुषसम्बन्धः. अक्षरनिरूपणएव पुरुषविशेषणाच्च.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सर्वभवनेत्यादि. तथाच अदृश्यस्यापि ब्रह्मणः कर्तुम् अकर्तुं सर्वशक्तिमत्वेन कार्यस्य प्रत्यक्षत्वेऽपि स्वस्य अदृश्यत्वम् उपपद्यतएवेति न विरोधः इति अर्थः. ननु एवं सर्वशक्तिमत्त्वं प्रधानेपि अस्तु इत्यतः आहुः **नहि** इत्यादि. अदृश्यत्वादिकतिपयधर्माणां प्रधाने सत्त्वेऽपि नित्यत्वसदैकरूपत्वाविक्रियमाणत्वादिधर्मवत्प्रधानं भवितुम् अर्हति इतितु न इति अर्थः. ननु सर्वशक्तिमत्वादि यावद्ब्रह्मणि भवद्भिः स्वीक्रियते तावत् सर्वं प्रधानेऽपि अस्माभिः स्वीकार्यम् अतः आहुः **सर्वब्रह्मे**त्यादि. तथाच ब्रह्मणएव ‘प्रधाने’ति नामान्तरं सिद्धं नतु ‘प्रधान’पदवाच्यं पदार्थान्तरमपि भवदभिमतं सिद्धम् इति ब्रह्मवादिभिः जितम् इति अर्थः. पुनः विशेषणभेदम् आहुः **यः सर्वज्ञः** इत्यादि. **न प्रकृतिधर्माः “यः सर्वज्ञः”** इत्यादयः न प्रकृतिधर्माः. प्रकृतेः जडत्वाद् न प्रकृतिधर्माः इति अर्थः. ननु प्रकृत्यसम्भववृत्तीनां धर्माणां पुरुषविशेषणता अङ्गीकार्या इत्यतः आहुः **व्यवधानाद्** इत्यादि. प्रथममुण्डके अदृश्यत्वसर्वज्ञत्वादिधर्माः उक्ताः. द्वितीयमुण्डके च पुरुषो निरूपितः इति प्रहरे–प्रहरे सहोच्चारिततुल्यत्वेन आसत्तिरूपकारणाभावेन पुरुषविशेषणत्वेन तेषां बोधो बाधितः इति अर्थः. पुनः विशेषणान्तरम् आहुः **अक्षरनिरूपणे**त्यादि. अक्षरएव पुरुषसत्यत्वादिविशेषणानां निरूपणाद् इति अर्थः. एतदेव

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सन्न्यासस्य निग्रहस्थानत्वाद् जितम् इति अर्थः. अन्यमपि विशेषणभेदम् आहुः **यः** इति. ननु एतानि पुरुषविशेषणानि सन्तु इत्यतः आहुः **व्यवधानाद्** इति. प्रथममुण्डके अदृश्यत्वादयो द्वितीयमुण्डके पुरुषनिरूपणम् इति व्यवधानेन असत्यभावाद् इति अर्थः. अन्यं विशेषणम् आहुः **अक्षरे**ति. एवं वा अत्र अक्षरात्मकएव पुरुषो अभिप्रेतः. अक्षरनिरूपणे पुरुषविशेषणदर्शनाद् न ‘अक्षर’शब्देन प्रधानम् इति भावः. तदेव आहुः **येन** इति. **साङ्ख्यपुरुषस्य** इति. नापि पुरुषविशेषणानि च साङ्ख्यपुरुषस्य विशेणानि इति अन्वयः. ननु पुरुषविशेषणानां साङ्ख्यमतसिद्धपुरुषे सत्त्वे किं बाधकम्? अतः आहुः **न हि** इति. **पुरुषस्य** साङ्ख्यमतसिद्धपुरुषस्य. ननु पुरुषाणां मध्ये एकः कश्चित् तादृशः स्वीक्रियते इत्यतः आहुः **न हि** इति. कैश्चित् साङ्ख्यमते पुरुषभेदोऽपि

‘‘येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यम्’’(तत्रैव २।१३) इति. तस्माद् अक्षरविशेषणानि, न प्रकृतिविशेषणानि नापि पुरुषविशेषणानि साङ्ख्यपुरुषस्य. न हि दिव्यत्वादयो गुणाः पुरुषस्य भवन्ति. न हि तन्मते पुरुषभेदो हि अङ्गीक्रियते जीवब्रह्मवत्. नच तस्य बाह्याभ्यन्तरत्वं, सर्वत्वाभावात्. न हि तस्माज् जायते प्राणादिः. तस्मात्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उपपादयन्ति **येन अक्षरम्** इत्यादि. तथाच उपनिषदि ‘अक्षर’पदं अक्षरब्रह्मणः पुरुषस्य बोधकं नतु प्रधानस्य इति अर्थः. **नापि पुरुषे**त्यादि. सांख्यमतप्रसिद्धपुरुषस्यापि विशेषणानि इमानि न इति अर्थः. ननु सांख्यमतप्रसिद्धपुरुषे उक्तविशेषणसत्वे किं बाधकम्? अतः आहुः **नहि दिव्यत्वे**त्यादि. साक्षित्वकैवल्यम् आध्यस्थत्वादृश्यत्वा–कर्तृत्वातिरिक्तधर्माणां पुरुषे तैः अनङ्गीकाराद् दिव्यत्वादयो धर्माः तन्मतपुरुषे न सम्भवन्ति इति अर्थः. तद्धर्माणामपि अङ्गीकारेतु तेषां मतमेव नश्यति इति साहजिकएव पराजयः तेषाम् इति फलितम्. ननु बहूनां पुरुषाणां मध्ये कश्चन एको दिव्यत्वादिधर्मवानपि भविष्यति इत्यतः आहुः **न हि तन्मते**त्यादि. सांख्यानां मते पुरुषभेदएव नास्तीति दिव्य–त्वादिधर्मवान् तादृशः पुरुषो असम्भवीति तन्मते तादृशधर्मबोधकश्रुतिविरोधो अपरिहार्य इति अर्थ. ननु नानापुरुषाएव तन्मतेऽपि अङ्गीकार्या इत्यतः आहुः **जीवब्रह्मवद्** इति. तथाच ब्रह्मवादे जीवब्रह्मणां नियम्यनियामकभावो न्यूनाधिकभावो धर्मवैषम्यं च यथा अस्ति तथा न तेषां मते. बहुपुरुषाङ्गीकारेऽपि सर्वे समाएव इति तेषां सिद्धान्तः. वैषम्याङ्गीकारेतु तन्मतभङ्गएव भवेद् इति भावः. ननु दिव्यत्वं पुरुषे प्रकृतिविलक्षण–धर्मवत्त्वमेव आस्ताम्. एकवचनं जात्यपेक्षया उपपाद्यम्. अमूर्तत्वं च उभयवादिसम्मतम्. इत्थं च कथं दिव्यत्वानुपपत्या तन्मतखण्डनम्? अतः आहुः **नच तस्य** इत्यादि. तथाच पुरुषे श्रुत्युक्तबाह्याभ्यन्तरत्वं तन्मते बाधितम् इति दूषणम्. तदेव उपपादयन्ति **सर्वत्वा–भावाद्** इति. तन्मते एकस्यैव पुरुषस्य अन्तर्यामिजीवादिनानारूपत्वाभावाद् बाह्याभ्य–न्तरत्वादिश्रुत्युक्तिः पुरुषे तन्मते बाधितैव इति अर्थः. दूषणान्तरम् आहुः **न हि तस्माद्**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

स्वीक्रियते इत्यतः आहुः **जीवब्रह्मवद्** इति. तथाच तन्मतेऽपि समानत्वमेव सर्वेषां, नतु नियम्य–नियामकभावः इति भावः. ननु दिव्यत्वम् अलौकिकत्वम् एकत्वं जात्यभिप्रायेण, एवं रीत्या यथा कथञ्चित् सर्वेषां विशेषणानां पुरुषे सम्भवः इत्यतः आहुः **नच** इति. अत्र हेतुम् आहुः **सर्वत्वे**ति. साङ्ख्यपुरुषात् सृष्टिः नास्ति इत्यतः आहुः **न हि** इति. तथाच महदादिक्रमेण साङ्ख्यमते सृष्टिः इति भावः. इतः परं

पुरुषविशेषणान्यपि न साङ्ख्यपुरषविशेषणानि. अतो विशेषणभेदः. व्यपदेशभेदश्च ब्रह्मविद्यैव एषा इति. **''स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याम्''** (मुण्ड.उप.१।१।१) इति उपक्रमे, **''प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्''**(तत्रैव १।२।१३) इति मध्ये, **''तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेद्''**(तत्रैव ३।२।१०) इति अन्ते. तस्माद् न साङ्ख्य-परिकल्पितौ प्रकृतिपुरुषौ वाक्यार्थः. न हि ब्रह्मा ज्येष्ठपुत्राय स्मृतिरूपां विद्यां वदति इति 'च'कारार्थः।।२२।।

रूपोपन्यासाच्च।।२३।।

''अग्निर्मूर्धा चक्षुषी''(मुण्ड.उप.२।१।४) इत्यादिरूपं नहि प्रकृतिपुरुषयोः अन्यतरस्य सम्भवति. ब्रह्मवादे पुनः विश्वकायस्य एतद्रूपम्. सूत्र-

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्यादि. **तस्मात्** प्रधानात्. तथाच तन्मते महदादिक्रमेणैव सृष्टिः. नतु **''एतस्माद् जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च, खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्य धारिणी''** (मुण्डकोप. २।१।३) त्यादिक्रमेण इति अर्थः. विशेषणभेदं व्युत्पाद्य व्यपदेशभेदं व्युत्पादयन्ति **व्यपदेशे**त्यादि. **व्यपदेशो** नाम्ना तत्तद्वस्तुनिरूपणम्. तत्र आदिमध्यावसानेषु त्रिषु त्रिष्वपि स्थलेषु उपनिषदि 'ब्रह्मविद्या' इत्येव व्यपदेशः कृतो नतु क्वचिदपि मध्ये 'सांख्यविद्या' 'तत्त्वविद्या' इति वा व्यपदेशः कृतः इति अर्थः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि. **वाक्यार्थः** उपनिषद्वाक्यस्य अर्थः. उपपत्त्यन्तरम् आहुः **न हि** इत्यादि. ब्रह्मा वेदगर्भः चतुर्मुखः इति अर्थः।।२२।।

पूर्वोक्तौ अक्षरपुरुषौ न सांख्यमतसिद्धौ किन्तु उपनिषन्मात्रवेद्यौ इत्यत्र हेतुम् आह सूत्रकारः. **''रूपोपन्यासाच्च''**. पुनर्विशेषणभेदेन ब्रह्मभेदं तन्मतापेक्षया निरूपयन्ति **अग्निर्मूधे**त्यादिना. **न हि** इत्यादि. यथा ''सुदीप्तात् पावकात्'' इत्यादिना अक्षरात् सृष्टिं निरूप्य तदनन्तरं **''दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः''**(मुण्डकोप.२।१।२) इत्यनेन

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

व्यपदेशभेदं व्युत्पादयन्ति **व्यपदेशे**त्यादिना. व्यपदेशो नाम व्यवहारः. तथाच आदौ मध्ये च अन्ते ब्रह्मविद्याम् इत्येव व्यवहारः, नतु साङ्ख्यविद्याम् इति व्यपदेशभेदः इति अर्थः. 'च'कारसूचितं हेत्वन्तरम् आहुः **ब्रह्म** इति. **ज्येष्ठे**ति. तथाच वेदाध्यापनयोग्यता सूचिता ।।२२।।

रूपोपन्यासाच्च. रूपस्य उपन्यासः. **''अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी''**(मुण्डकोप.२।१।४) इत्यादिरूपं तस्य उपन्यासः श्रुतौ अस्ति. ननु तावता किं सम्पन्नम्? इत्यतः आहुः **न हि**

विभागात् पुनः मुख्योपपत्तिः एषा इति सूचितम्. **‘च’**कारेण श्रुत्यन्तरविरोधः. एकवाक्यता च सर्वेषां वेदान्तानाम् इति. तस्माद् ‘अक्षर’शब्देन ‘पुरुष’शब्देन च ब्रह्मैव प्रोक्तम् इति ब्रह्मविद्यैव एषा इति सिद्धम्।।२३।।

इति प्रथमाध्याये द्वितीयपादे सप्तमम् अदृश्यत्वाधिकरणम्।।७।।

वैश्वानरः साधारणशब्दविशेषात्।।२४।। (१।२।८)

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अक्षराद् उत्कृष्टपुरुषं निरूप्य तदनन्तरम् ‘‘**एतस्माद् जायते प्राणः**’’(मुण्डकोप.२।१।३) इतिमन्त्रेण ‘एतच्’छब्देन पुरुषोत्तमं परामृश्य प्राणादिपृथ्वीपर्यन्तानाम् उत्पत्तिः उक्ता. न हि तत्कारणतायां प्रकृतिनिवेशः सम्भवति. न वा तत् कार्यं श्लिष्टस्य पुरुषस्य इति भावार्थः. ननु ब्रह्मवादे ‘‘अग्निर्मूर्धे’’त्यादि कस्य रूपम्? अतः आहुः **विश्वे**त्यादि. विश्वरूपत्वेन प्रसिद्धस्यैव इदं रूपम् इति न सांख्यमतगन्धोऽपि अस्ति इति भावः. **सूत्रविभागे**त्यादि. तथाच विशेषणभेदव्यपदेशरूपोपन्यासेभ्यः इति सूत्रम् अनुक्त्वा यद् भिन्नं सूत्रं रचितं तद् रूपोपन्यासस्य असाधारणं तन्मतनिराकरणहेतुत्वम् अवधार्य इति अर्थः. **चकारेण** सौत्रचकारेण. **श्रुत्यन्तरविरोधः** अभिन्ननिमित्तोपादानतया ब्रह्मणः कारणताबोधिका श्रुतिः ‘‘**एको अहं बहुस्यां**’’(छान्दो.उप.६।२।३) ‘‘**स हैतावानास**’’ (बृहदा.उप.१।४।३) इत्यादिरूपायाः तन्मते विरोधः. यत्किञ्चित् शक्त्येकदेशं गृहीत्वा सांख्यैः स्वमतोपपादनं सर्ववेदान्तानाम् एकवाक्यताभङ्गइति एते द्वे तन्मतविघटके इति अर्थः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि. **ब्रह्मविद्यैव** इति ‘एव’कारेण सांख्यमतविद्याव्यवच्छेदः।।२३।।

पूर्वाधिकरणेन साकम् अस्य अधिकरणस्य उपोद्घातसङ्गतिं प्रदर्शयितुम् आहुः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति. न हि रूपं सम्भवति इति अन्वयः. **सूत्रविभागाद्** इति. विशेषणभेदव्यपेदशरूपोपन्यासेभ्यः इतितु न सूचितम् किन्तु रूपोपन्यासाद् इति भिन्नं सूचितम्. तेन कृत्वा किं ज्ञायते? रूपोपन्यासरूपा मुख्योपपत्तिः इति अर्थः. ‘च’कारस्वारस्यम् आहुः **चकारेण** इति. चकारेण एतद्द्वयं साङ्ख्यमतस्य बाधकं संगृहीतम् इति शेषं पूरयित्वा व्याख्येयम्. ‘‘**एको अहं बहु स्याम्**’’(छान्दो.उप.६।२।३) इति श्रुत्यन्तरविरोधः. तन्मते प्रकृतेः सकाशात् सृष्टिः, नतु प्रकृतिरूपं सर्वम् एकवाक्यताभङ्गश्च एतद्द्वयं बाधकम् इति अर्थः. स्वमते सिद्धा या सर्वेषां वेदान्तानाम् एकवाक्यता साच साङ्ख्यमते न सम्भवति, सर्वेषां वेदान्तवाक्यानां प्रकृतिपरत्वाभावात्. तथाच एतद्द्वयं तन्मतस्य बाधकम् इति अर्थः।।२३।।

वैश्वानराधिकरणम् आहुः ‘‘**वैश्वानरः साधारणशब्दविशेषात्**’’. अस्मिन्

अधिकरणत्रयेण भोगम् उपपाद्य, पूर्वाधिकरणे अदृश्यत्वादिगुणान् उक्त्वा, प्रसङ्गाद् रूपम् उपन्यस्तम्. अधुना साकारब्रह्मताम् उपपादयितुम् इदम् अधिकरणम् आरभते. **''को न आत्मा किं ब्रह्म''** (छान्दो.उप.५।११।१) इति,

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अधिकरणत्रयेण इत्यादि. **''अत्ता चराचरग्रहणात्'' ''गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्'' ''अन्तरुपपत्तेः''** इति अधिकरणत्रयेण अलौकिकं भोगं भगवति उपपाद्य **पूर्वाधिकरणे** सप्तमाधिकरणे **अदृश्यत्वादी**त्यादि. अननुगृहीतजनैः अदृश्यत्वादि इति अर्थः. **प्रसङ्गात्** प्रसङ्गसङ्गत्या. तत्र स्वरूपाभावाद् अदृश्यत्वं भविष्यति इति शङ्कानिरासाय **रूपम् उपन्यस्तम्** इति अर्थः. **अधुना** वैश्वानराधिकरणेन. **''को न आत्मा''** इत्यादि. इदं च छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके वर्तते. तत्र उपक्रमे प्राचीनशाल–सत्ययज्ञेन्द्रद्युम्नजनबुडिलनामानः पञ्चापि श्रुताध्ययनसम्पन्ना क्वचन समेत्य **मीमांसां** चक्रुः **''को न आत्मा? किं ब्रह्म?''** इत्यादि. अस्मदुपास्य आत्मा कः? किं ब्रह्म तदेकदेशो वा? इति संशयो विचारबीजम्. ते पञ्चापि स्वयं विचारेण निश्चयम् अप्रापयमाणाः 'उद्दालक'नामानं प्रष्टुं गताः. तेन च तद्विद्याविदः कैकेयराजस्य सन्निधौ प्रेषिताः. तत्र गतेषु तेषु कैकेयराजो बहु धनं पुरोहितद्वारा पूजां कृत्वा दातुम् उक्तवान्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अधिकरणे उपोद्घातसङ्गतिं दर्शयन्ति **अधिकरणत्रयेण** इति. चराचराधिकरणत्रयेण इति अर्थः. **पूर्वाधिकरणे** अदृश्यत्वाधिकरणे छान्दोग्यपञ्चमप्रपाठकस्य विषयवाक्यम् उदाहरन्ति **को न आत्मा** इत्यादिः. अथ विषयवाक्यम्.

> **प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञः पौलुषिः इन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विस्ते हैते महाशाला महाश्रोत्रियाः समेत्य मीमांसां चक्रुः को नु आत्मा किं ब्रह्मेति ।।१।। ते ह सम्पादयांञ्चक्रुरुद्दालको वै भगवन्तो अयम् आरुणिः सम्प्रति इमम् आत्मानं वैश्वानरम् अभ्येति तं हन्त अभ्यागच्छामेति तंह अभ्याजग्मुः ।।२।। सह सम्पादयाञ्चकार प्रक्ष्यन्ति मामिमे महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्यो न सर्वमिव प्रतिपत्स्ये हन्त अहम् अन्यम् अभ्यनुशासानीति ।।३।। तान् होवाच अश्वपतिर्वै भगवन्तो अयं कैकयः सम्प्रति इमम् आत्मानं वैश्वानरम् अध्येति तं हन्त अभ्यागच्छामेति तं ह अभ्याजग्मुः ।।४।। तेभ्यो ह प्राप्तेभ्यः पृथग् अर्हाणि कारयाञ्चकार स ह प्रातः सञ्जिहान उवाच न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो न**

''आत्मानमेव इमं वैश्वानरं सम्प्रत्यध्येषि तमेव नो ब्रूहि'' (तत्रैव ५।११।६) इति च उपक्रम्य द्यु-सूर्य-वाय्वाकाश-वारि-पृथिवीनां सुतेजस्त्वादिगुणयोगम् एकैकोपासननिन्दया च मूर्धादिभावम् उपदिश्य आम्नायते.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तैस्तु धनं न गृहीतम्. **''आत्मानमेव इमं वैश्वानरं सम्प्रत्यध्येषि तं नो ब्रूहि''** इति उक्तवन्तः. **इति च उपक्रम्य** 'ब्रूहि'इति उक्तवन्तः इति च उपक्रम्य 'ब्रूहि'इत्यन्तम् उक्त्वा द्यु-सूर्य-वाय्वाकाश-वारि-पृथिवीनां सुतेजस्त्वादिगुणयोगम् उक्त्वा वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाः इति एकैकस्मिन् द्युप्रभृतिषु वैश्वानरोपासनम् उक्तम्. ततः एकैकस्मिन् वैश्वानरत्वेन उपासने मूर्धपातः इति एकैकोपासनं निन्दयित्वा **मूर्धादिभावं** मूर्धाद्यवयवसम्बन्धम्. **उपदिश्य** वैश्वानरे उपदिश्य. **आम्नायते ''यस्तु एतम् एवं**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अनाहिताग्निः न अविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतो यक्ष्यमाणो वै भगवन्तो अहम् अस्मि यावद् एकैकस्मा ऋत्विजे धनं दास्यामि तावद् भगवद्भ्यो दास्यामि वसन्तु भगवन्त इति ।।५।। ते होचुः येन हैव अर्थेन पुरुषश्चरे तं हैव वदेद् आत्मानमेव इमं वैश्वानरं सम्प्रति अध्येषि तमेव नो ब्रूहीति ।।६।। तान् होवाच प्रातर्वः प्रतिवक्तास्मीति ते ह समित्पाणयः पूर्वाह्णे प्रतिचक्रमिरे तान् ह आनुपनीयैव एतद् उवाच ।।७।। इति ११ खण्डः।।

औपमन्यव कं त्वम् आत्मानम् उपास्स इति दिवमेव भगवो राजन्निति होवाच एष वै सुतेजा आत्मा वैश्वानरो यं त्वम् आत्मानम् उपास्से तस्मात् तव सुतं प्रसुतमासुतं कुले दृश्यते ।।१।। अत्सि अन्नं पश्यसि प्रियम् अत्ति अन्नं पश्यति प्रियं भवति अस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतम् एवम् आत्मानं वैश्वानरम् उपास्ते मूर्धा त्वेष आत्मन इति होवाच मूर्धा ते व्यपतिष्यद्यन् मां न आगमिष्य इति ।।२।। इति १२ खण्डः।।

अथ होवाच सत्ययज्ञं पौलुषिं प्राचीनयोग्यं कं त्वम् आत्मानम् उपास्स इति आदित्यमेव भगवो राजन् इति होवाच एष वै विश्वरूप आत्मा वैश्वानरो यं त्वम् आत्मानम् उपास्से तस्मात् तव बहु विश्वरूपं कुले दृश्यते ।।१।। प्रवृत्तो अश्वतरीरथो दासीनिष्को अस्ति अन्नं पश्यसि प्रियम् अत्ति अन्नं पश्यति प्रियं भगवति अस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतम् एवम् आत्मानं वैश्वानरम् उपास्ते चक्षुष्ट्वेतदात्मन इति होवाच अन्धो अभविष्यद् यन् मां न आगमिष्य इति ।।२।। इति १३ खण्डः।।

‘‘यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रम् अभिविमानम् आत्मानं वैश्वानरम् उपास्ते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेषु आत्मसु अन्नम् अत्ति. तस्य ह

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

प्रादेशमात्रम् अभिविमानम् आत्मानं वैश्वानरम् उपास्ते''(छान्दो.उप.५।१।१८) इत्यादि उच्यते इति अर्थः. द्यौः मूर्धा सुतेजाः चक्षुः **विश्वरूपः** सूर्यः. **प्राणो** वायुः. पृथक् वर्त्म स्वभावो यस्य सः **पृथग्वर्त्मात्मा सन्देहो** देहमध्यभागः. **बहुलः** आकाशः व्यापकत्वात्. **बस्तिः** नाभेः अधोभागः. **रयिः** जलं तस्य अन्नवृत्तिहेतुत्वेन रयिरूपत्वम् इति अर्थः. **पृथिवी पादौ** तस्याः पादस्थितिस्थानत्वाद् इति अर्थः. **सः** वैश्वानरोपासकः. **लोकेषु** द्युप्रभृतिषु. **भूतेषु** स्थावरजङ्गमेषु. **आत्मसु** देहेन्द्रियमनोबुद्धिजीवेषु. **अन्नम् अत्ति**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अथ होवाच ऐन्द्रद्युम्नं भाल्लवेयं वैयाघ्रपद्य कं त्वम् आत्मानम् उपास्स इति वायुमेव भगवो राजन्निति होवाच एष वै पृथग्वर्त्मात्मा वैश्वानरो यं त्वम् आत्मानम् उपास्से तस्मात् त्वां पृथग्बलय आयन्ति पृथग् रथश्रेयणो अनुयन्ति ।।१।। अत्सि अन्नं पश्यसि प्रियम् अत्ति अन्नं पश्यति प्रियं भवति अस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतम् एवम् आत्मानं वैश्वानरम् उपास्ते प्राणस्तु एष आत्मन इति होवाच प्राणः त उदक्रमिष्यद् यन् मां नागमिष्य इति ।।२।। इति १४ खण्डः।।

अथ होवाच जनं शार्कराक्ष्य कं त्वम् आत्मानम् उपास्स इति आकाशमेव भगवो राजन् इति होवाच एष वै बहुल आत्मा वैश्वानरो यं त्वम् आत्मानम् उपास्से तस्मात् त्वं बहुलोऽसि प्रजया च धनेन च ।।१।। अत्ति अन्नं पश्यसि प्रियम् अत्ति अन्नं पश्यति प्रियं भवति अस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतम् एवम् आत्मानं वैश्वानरम् उपास्ते सन्देहस्तु एष आत्मन इति होवाच सन्देहः ते व्यशीर्यद् यन्मां नागमिष्य इति ।।२।। इति १५ खण्डः।।

अथ होवाच बुडिलम् आश्वतराश्विं वैयाघ्रपद्य कं त्वम् आत्मानम् उपास्स इत्यप एव भगवो राजन्निति होवाचैष वै रयिः आत्मा वैश्वानरो यं त्वम् आत्मानम् उपास्से तस्मात् त्वं रयिमान् पुष्टिमानसि ।।१।। अत्सि अन्नं पश्यसि प्रियम् अत्ति अन्नं पश्यति प्रियं भवति अस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवम् आत्मानं वैश्वानरम् उपास्ते बस्तिस्तु एष आत्मन इति होवाच बस्तिः ते व्यभेत्स्यद् यद् मां नागमिष्य इति ।।२।। इति १६खण्डः।।

अथ होवाच उद्दालकम् आरुणिं गौतम कं त्वम् आत्मानम् उपास्स

वा एतस्य आत्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाः चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा सन्देहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादौ उदरएव वेदिः लोमानि बर्हिः हृदयं गार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्यपचनम् आस्यम् आहवनीयः'' (छान्दो.उप.५।१८।२) इत्यादि.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सर्वेषां सुकृतफलं भुङ्क्ते इति अर्थः. एतद् वैश्वानरोपासकस्य भोजनस्य अग्निहोत्रतां प्रतिपादयितुम् आहुः **उदरएव वेदिः** इत्यादि. **अन्वाहार्यपचनं** दक्षिणाग्निः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति पृथिवीम् एष भगवो राजन् इति होवाच एष वै प्रतिष्ठात्मा वैश्वानरो यं त्वम् आत्मानम् उपास्से तस्मात् त्वं प्रतिष्ठितो असि प्रजया च पशुभिश्च ।।१।। अत्सि अन्नं पश्यसि प्रियम् अत्सि अन्नं पश्यति प्रियं भवति अस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवम् आत्मानं वैश्वानरम् उपास्ते पादौ तु एतौ आत्मन इति ह उवाच पादौ ते व्यम्लास्येतां यन् मां नागमिष्य इति ।।२।। इति १७ खण्डः।।

तान् ह उवाच एते वै खलु यूयं पृथगिव इमम् आत्मानं वैश्वानरं विद्वांसो अन्नम् आत्थ यस्तु एतमेवं प्रादेशमात्रम् अभिविमानम् आत्मानं वैश्वानरम् उपास्ते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेषु आत्मसु अन्नम् अत्ति ।।१।। तस्य ह वा एतस्य आत्मनो वैश्वानरश्च मूर्धैव सुतेजाः चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा सन्देहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादौ उर एव वेदिः लोमानि बर्हिर्हृदयं गार्हपत्यो मनो अन्वाहार्यपचन आस्यम् आहवनीयः ।।२।। इति १८ खण्डः।।

तद्यद्भक्तं प्रथमम् आगच्छेत् तद् होमीयं स यां प्रथमाम् आहुतिं जुहुयात् तां जुहुयात् प्राणाय स्वाहेति प्राणः तृप्यति ।।१।। प्राणे तृप्यति चक्षुः तृप्यति चक्षुषि तृप्याति आदित्यः तृप्यति आदित्ये तृप्यति द्यौः तृप्यति दिवि तृप्यन्त्यां यत्किञ्च द्यौश्च आदित्यश्चाधिष्ठितः तत् तृप्यति तस्य अनुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिः अन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेन इति ।।२।। इति १९ खण्डः।।

अथ यां द्वितीयां जुहुयात् तां जुहूयाद् व्यानाय स्वाहा इति व्यानःतृप्यति ।।१।। व्याने तृप्यति श्रोत्रं तृप्यति श्रोत्रे तृप्यति चन्द्रमाः तृप्यति चन्द्रमसि तृप्यति दिशः तृप्यन्ति दिक्षु तृप्यन्तीषु यत्किञ्च दिशश्च

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तत्र संशयः. ''को न आत्मा किं ब्रह्म'' इतिवाक्योपक्रमे संशयः इति अर्थः. शङ्कायाः आकारम् आहुः **किं वैश्वानरे**त्यादिना. संशयबीजम् आहुः **अर्थस्य** इत्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

चन्द्रमाश्चाधितिष्ठन्ति तत् तृप्यति तस्य अनुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिः अन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ।।२।। इति २० खण्डः।।

अथ यां तृतीयां जुहुयात् तां जुहुयाद् अपानाय स्वाहा इति अपानः तृप्यति ।।१।। अपाने तृप्यति वाक् तृप्यति वाचि तृप्यन्त्याम् अग्निः तृप्यति अग्नौ तृप्यति पृथिवी तृप्यति पृथिव्यां तृप्यन्त्यां यत्किञ्च पृथिवी च अग्निश्च अधितिष्ठतः तत् तृप्यति तस्य अनुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिः अन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ।।२।। इति २१ खण्डः।।

अथ यां चतुर्थी जुहुयात् तां जुहुयात् समानाय स्वाहा इति समानः तृप्यति ।।१।। समाने तृप्यति मनः तृप्यति मनसि तृप्यति पर्जन्यः तृप्यति पर्जन्ये तृप्यति विद्युत् तृप्यति विद्युति तृप्यन्त्यां यत्किञ्च विद्युच्च पर्जन्यश्च अधितिष्ठतः तत् तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिः अन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ।।२।। इति २२ खण्डः।।

अथ यां पञ्चमीं जुहुयात्तां जुहुयाद् उदानाय स्वाहा इति उदानः तृप्यति ।।१।। उदाने तृप्यति त्वक् तृप्यति त्वचि तृप्यन्त्यां वायुः तृप्यति वायौ तृप्यति आकाशः तृप्यति आकाशे तृप्यति यत्किञ्च वायुश्चाकाशश्चाधितिष्ठः तत् तृप्यति तस्य अनुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिः न्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति।।२।। इति२३ खण्डः।।

स य इदम् अविद्वान् अग्निहोत्रं जुहोति यथा अङ्गारान् अपोह्य भस्मनि जुहुयात् तादृक् तत् स्यात् ।।१।। अथ य एतदेवं विद्वान् अग्निहोत्रं जुहोति तस्य सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेषु आत्मसु हुतं भवति ।।२।। तद् यथा इषीकातूलम् अग्नौ प्रोतं प्रदूयेत एवं ह अस्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वान् अग्निहोत्रं जुहोति ।।३।। तस्मादु ह एवंविद् यद्यपि चण्डालाय उच्छिष्टं प्रयच्छेद् आत्मनि हैव अस्य तद् वैश्वानरे हुतं स्यादिति तदेष श्लोकः ।।४।। यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासते. एवं सर्वाणि भूतानि अग्निहोत्रम् उपासत इति अग्निहोत्रम् उपासत इति ।।५।। (छान्दो.उप.)इति २४ खण्डः।।

इति. अर्थस्य अतिसन्दिग्धत्वात् सन्देहः. तत्र उपक्रमे ‘ब्रह्मात्म’पदप्रयोगो अस्ति न अन्यत् किञ्चित्. उपपादनेतु अतद्धर्माएव. साकारस्यतु लोकन्यायेन अब्रह्मत्वम्. वैश्वानरो यद्यपि अग्नावेव प्रसिद्धः तथापि पूर्वकाण्डसिद्धत्वाद् देवतात्मपरिग्रहो युक्तः. ततश्च ‘‘**संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः**’’(तैत्ति.सं.२।२ ।६) इति श्रुतेः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तथाच उपक्रमे ‘‘को न आत्मा किं ब्रह्म’’ इति निःसन्दिग्धशब्दसत्त्वे ‘वैश्वानर’शब्दश्रवणात् ‘द्युमूर्धत्वा’दिश्रवणात् ब्रह्मणश्च निराकारत्वात् सावयवस्य च ब्रह्मत्वासम्भवाद् अर्थस्य अनिस्सन्दिग्धत्वम् इति अर्थः. **तत्र** उपनिषदि. **उपक्रमे**त्यादि. ‘‘को न आत्मा किं ब्रह्म’’ इत्यादिब्रह्मत्वनिर्णायकशब्दो अस्ति. **न अन्यद्** इत्यादि. ब्रह्मत्वनिर्णयविरोधि किञ्चिद् न अस्ति इति अर्थः. **उपपादनेतु** वैश्वानरपुरुषोपपादनेतु. **अतद्धर्मा**ः मूर्धाद्यवयवरूपाः अब्रह्मधर्माः. **वैश्वानरः** ‘वैश्वानर’शब्दः. **अग्नावेव** भूताग्नावेव. अथवा **पूर्वकाण्डे**त्यादि. ‘‘**विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुम् अह्वाम् अकृण्वन्**’’ (ऋग्वेद ८।४।१२) इत्यादौ अहःकेतुत्वकथनेन उत्कर्षवत्तया सिद्धत्वाद् देवतात्मपरिग्रहः इति युक्तः पक्षः. **ततः** तदनन्तरम् एवं देवतात्मपरिग्रहप्राप्तावपि, बृहदारण्यकसप्तान्नब्राह्मणे ‘‘**संवत्सरो वा अग्निः वैश्वानरः**’’(तैत्ति.सं.२।२।६) इति तैत्तिरीयाणां बृहन्ना–

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अथ भाष्यम्. संशयबीजम् आकारं च आहुः **तत्र** इति. अतिसन्दिग्धत्वमेव उपपादयन्ति **उपक्रमे**ति. आत्मा किं ब्रह्म इति उपक्रमवाक्ये ब्रह्मात्मपदप्रयोगस्य सत्त्वात्. अन्यत् किञ्चिद्वाचकपदप्रयोगस्य असत्त्वाद् इदं वाक्यं ब्रह्मपरमेव प्रतिभाति इति अर्थः. ननु तर्हि सन्देहः कथम्? इत्यतः आहुः **उपपादनेतु** इति. तथाच उपपादनग्रन्थे ‘‘**तस्य ह वा एतस्य वैश्वानरस्य मूर्द्धैव सुतेजा**’’ (छान्दो.उप.५।१८।२) इत्यादिकथनात्. ‘वैश्वानर’शब्दस्य ब्रह्मान्याग्निवाचकत्वाद् मूर्द्धाद्यवयवरूपाणाम् अब्रह्मधर्माणां च विद्यमानत्वात् सन्देहः इति अर्थः. **अतद्धर्मे**ति. तस्य ब्रह्मणो धर्माः तद्धर्माः. न तद्धर्मा अतद्धर्माः, शिराद्यवयवत्वादयः. **लोकन्यायेन** इति. यथा भूरादिलोकानां साकारत्वे न अब्रह्मत्वं तथा अत्रापि इति भावः. पूर्वपक्षम् आहुः **वैश्वानरे**ति. **अग्नावेव**. भूताग्नावेव. **प्रसिद्धः**. कोशादौ प्रसिद्धः. **सिद्धत्वाद्** इति. ‘‘**वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानाम् अभिश्रीः**’’ (तैत्ति.संहि.१।५।११।८) इत्यादिमन्त्रेषु सिद्धत्वाद् देवतारूपो यः आत्मा सएव अत्र ग्राह्यः इति अर्थः. ननु अस्तु पूर्वकाण्डे तथा उत्तरकाण्डे किं सम्पन्नम् इत्यतः आहः **ततः** इति. **इति श्रुतेः** इति. बृहदारण्यके

संवत्सरस्य प्रजापतित्वाच्च हिरण्यगर्भोपासनापरम् इदम् इति गम्यते. 'ब्रह्मात्म'-शब्दावपि हि तत्रैव युक्ततरौ. तदुपासकस्यैव अन्नभोजनत्वमपि सर्वत्र युक्तम्. प्रादेशमात्रत्वमपि मुख्यजीवत्वाद् अस्मदाद्यपेक्षया स्थूलत्वाभिप्रायम्. विराडभिमानित्वाच्च लोकावयवत्वम्. वेदगर्भत्वाद् अग्नित्रयात्मकत्वम् इति. तस्मात् हिरण्यगर्भोपासनापरमेव एतद्वावाक्यं न भगवदुपासनापरम् इत्येवं प्राप्ते उच्यते.

वैश्वानरः परमात्मैव. कुतः? **साधारणशब्दविशेषात्.** साधारण-

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

रायणीयोपनिषदि **''प्रजापतिः संवत्सर''**(महाना.उप.१२।३) इति श्रुतेः **संवत्सरस्य प्रजापतित्वात्** प्रजापतिः यो हिरण्यगर्भः तत्परमेव 'वैश्वानर'पदम् इति अवगम्यते इति अर्थः. **तत्रैव** प्रजापतौ हिरण्यगर्भएव, **युक्ततरौ** प्रजापतेः 'ब्रह्म'नामकत्वात् सर्वजीवसमष्टिरूपत्वाच्च युक्ततरौ इति अर्थः. **तदुपासकस्य** हिरण्यगर्भोपासकस्य. **अन्नभोजनत्वं** **''तं यो अहंग्रहेण उपास्ते तस्य यथाक्रतुः''** इति न्यायेन क्रतुभावात् तदुपासकस्यैव सर्वत्र अन्नभोजनत्वम् अन्नभोक्तृत्वम् इति अर्थः. ननु हिरण्यगर्भस्यापि जीवत्वात् तस्य अणुत्वमेव स्याद् एवं प्रादेशमात्रत्वोक्तिः अनुपपन्ना इत्यतः आहुः **प्रादेशे**त्यादि. **विराडभिमानित्वाद्** हिरण्यगर्भस्य विराडभिमानित्वात्. **लोकावयवत्त्वं** द्युमूर्धत्वादिकम्. **वेदगर्भत्वाद्** हिरण्यगर्भस्य अग्निदैवतवाक्कार्यवत्त्वाद् इति अर्थः. पूर्वपक्षम् उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि. **एतद्वाक्यं** वैश्वानरप्रतिपादिकम्. **उच्यते** समाधानम् उच्यते.

ब्रह्मत्वसाधकं सौत्रं हेतुं विवृण्वन्ति **साधारणशब्दविशेषाद्** इति.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सप्तान्नब्राह्मणे विशेषः. तथाच उत्तरकाण्डे संवत्सररूपा देवता 'वैश्वानर'पदेन ग्राह्येति भावः. ननु एतावतापि किं सिद्धम् इत्यतः आहुः **संवत्सरस्य** इति. **''न्यास इत्याहुः मनीषिणो ब्रह्माणं ब्रह्मा विश्वः कतमः स्वयम्भूः प्रजापतिः संवत्सरः''** (महाना. उप.१२।३) इति तैत्तिरीये नारायणीयश्रुत्या 'संवत्सर'पदस्य प्रजापतिवाचकत्वाद् इति अर्थः. **ब्रह्म** इति. हिरण्यगर्भस्यैव ब्रह्मापरपर्यायत्वं समष्टिरूपत्वाद् 'आत्म'पद–वाच्यत्वम् इति भावः. अन्नभोजनम् इति पाठः सर्वत्र. क्वचिद् अन्नभोजनत्वम् इति पाठे भोक्तृत्वम् अन्नभोजनकर्तृत्वम् अर्थः. नन्द्यादित्वाद् ल्युः. जीवस्य अणुरूपत्वाद् हिरण्यगर्भजीवस्य प्रादेशमात्रत्वोक्तिः असङ्गता इत्यतः आहुः **प्रादेशमात्रत्वम्** इति. **लोकावयवत्वम्.** द्युमूर्द्धत्वादिकम्. समाधानम् आहुः **उच्यते** इति.

शब्दाद् विशेषः. ये पूर्वपक्षे साधारणशब्दाः हिरण्यगर्भपरतया ततोऽपि विशेषो अस्ति येन भगवानेव वैश्वानरो भवति. प्रादेशमात्रस्यैव द्युमूर्धत्वादिधर्मः. न हि विरुद्धर्माश्रयत्वं भगवद्व्यतिरिक्ते सम्भवति, सर्वभवनसामर्थ्याभावात्. साधारणाद् धर्मात् शब्दएव विशेषः इति वा. विशेषाद् इत्येव वक्तव्ये साधारणशब्दशब्दौ प्रादेशमात्रस्यैव 'वैश्वानर'शब्दवाच्यत्वं द्युमूर्धत्वादिकं तस्यैव इति समासेन

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

साधारणेत्यादि. पूर्वपक्षे ब्रह्मात्मवैश्वानरशब्दाः हिरण्यगर्भपरतयापि उपपद्यन्तइति ते साधारणशब्दाः. **येन** विशेषेण, तं विशेषम् आहुः **प्रादेशे**त्यादिना. **नहि** इत्यादि. प्रादेशपरिमाणम् अभिविमानं व्यापकत्वम् एतद् द्वयं विरुद्धम् इति अर्थः. **साधारणाद् धर्मात्** पूर्वपक्षे हिरण्यगर्भसाधारणतया उक्तधर्मापेक्षया इति अर्थः. **शब्दएव** "**प्रादेशमात्रम् अभिविमानम्**"(छान्दो.उप.५।१८।२) इति शब्दएव. 'वा'शब्दो अस्वरसे, सच पूर्वव्याख्यायां हिरण्यगर्भपरतया एतस्य अनन्तरम् उच्यते इति अध्याहारापत्तिरूपः. **विशेषाद् इत्येव** इत्यादि. तथाच हिरण्यगर्भापेक्षया विशेषाद् इति वक्तव्ये इति अर्थः. इत्थं च वैश्वानरो विशेषाद् एतावन्मात्रे सूत्रे वक्तव्ये यत् 'साधारण'इति 'शब्द'इति च यद् अधिकम् उपात्तं तत् प्रादेशमात्रत्वरूपसाधारण्यवैश्वानरत्वद्युमूर्धत्वादिरूपाभिविमानत्वेति त्रयाणां धर्माणां परस्परविरुद्धानां सामानाधिकरण्यबोधनाय इति फलितम्. **समासेन** इत्यादि. तथाच विशेषः विशषेबोधकः शब्दो यस्मिन् इति 'विशेष'शब्दः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सौत्रं हेतुं विशदयन्ति **साधारणे**ति. हिरण्यगर्भसाधारणाय शब्दद्युमूर्द्धत्वादयः, तस्माद् विशेषो दृश्यते इति अर्थः. विशेषम् आहुः **प्रादेशमात्रस्य** इति. अस्य विशेषत्वं समर्थयन्ति **न हि** इति. समासान्तरेण प्रकारान्तरम् आहुः **साधारणाद्** इति. **शब्दएव** इति. प्रादेशमात्रम् अभिविमानम् इति शब्दे. अथवा प्रादेशमात्रद्युमूर्द्धादि–वाक्यरूपे शब्दएव इति अर्थः. विशेषः विरुद्धधर्माधारत्वरूपः. तथाच अभिविमानत्वं व्यापकत्वम्. एवञ्च प्रादेशमात्रस्य व्यापकत्वं विरुद्धम् इति भावः. द्वितीयपक्षे किञ्चित् स्वारस्यम् आहुः **विशेषाद्** इति. वक्तव्येति वैश्वानरो विशेषाद् इत्येव सूत्रे वक्तव्यः इति अर्थः. **साधारणे**ति. प्रादेशमात्रवाक्यरूपः शब्दः साधारणशब्दः. अथच द्युमूर्द्धादि–वाक्यरूपः विशेषशब्दः एतौ शब्दौ इति अर्थः. उभयोः शब्दयोः सामानाधिकरण्ये अनेकार्थप्रतिपादकत्वम् आहुः **प्रादेशमात्रस्य** इति. ननु इदं कथं ज्ञायते इत्यतः आहुः **समासेन** इति. साधारणशब्दस्य सूत्रे निवेशं कृत्वा ततो ल्यब्लोपे पञ्चमीसमासेन सामानाधिकरण्यं

द्योतयतः, अन्यथा विरोधाभावात्. यदपि लोकात्मकं स्थूलं रूपं तदपि भगवतएव, न हिरण्यगर्भस्य इति. पुरुषत्वात् तस्य. विश्वस्य जडस्य नरस्य

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

साधारणशब्दश्च विशेषशब्दश्च इति साधारणविशेषशब्दं तस्मात् साधारणविशेष-शब्दाद् इतिसमासेन इति अर्थः. **अन्यथा** प्रादेशमात्रत्व-वैश्वानरत्व-द्युमूर्धत्वादीनां पूर्वपक्षोक्तरीत्या हिरण्यगर्भपरतया लापनेन परब्रह्मणि एषां सामानाधिकरण्यानङ्गीकारे. **विरोधाभावात्** पूर्वपक्षोक्तरीत्या हिरण्यगर्भे विरोधाभावात्. तथाच पूर्वपक्षस्यैव सिद्धान्ततासम्भवेन अग्रे सिद्धान्तासम्भवाद् अधिकरणभङ्गः स्याद् इति फलितम्. द्युमूर्धत्वादिधर्माणां हिरण्यगर्भपरतानिरासेन ब्रह्मपरतां व्यवस्थापयितुम् आहुः **यदपि** इत्यादि. **लोकात्मकं** चतुर्दशलोकात्मकं. ननु चतुर्दशलोकानाम् अवयवत्वनिरूपणात् कथं ब्रह्मणः तदवयवित्वम्? अतः आहुः **पुरुषत्वात् तस्य** इत्यादि ''**पुरुष एवेदं सर्वम्**'' (ऋग्वेद १०।९०।२), ''**अतो ज्यायांश्च पूरुषः**'' (तत्रैव) इत्यादिना श्रुतिषु ब्रह्मणि पुरुषत्वोक्तेः तत्रच द्युमूर्धाद्यवयवानां सम्भवेन बाधकाभावाद् इति भावः. 'वैश्वानर'-शब्दस्य योगरूढिभ्यां ब्रह्मप्रतिपादकत्वम् आहुः **विश्वस्य** इत्यादि. **विश्वस्य जडस्य**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

द्योत्यते इति अर्थः. तथाच साधारणाद् धर्माद् अपेक्ष्य शब्दविशेषः साधारणशब्दविशेषः तस्माद् इति समासे अपेक्ष्य इति ल्यबन्तपदेन यथा देवदत्ते एतादृशगुणवत्त्वापेक्षया ईदृग्गुणवत्त्वं विशेषः इति साधारणविशेषगुणवत्त्वं देवदत्तएव ज्ञायते तथा ब्रह्मण्यपि विरुद्धोभयधर्मवत्त्वं व्यञ्जनया द्योत्यते इति भावः. **अन्यथा** इति. सामानाधिकरण्याभावे साधारणधर्मम् अपेक्ष्य विशेषधर्मवत्त्वकथनेन भगवतो विरुद्धधर्माश्रयत्वं न स्याद् इति भावः. ननु प्रायशः द्युमूर्द्धत्वं विराण्मये हिरण्यगर्भे श्रूयते अतः आहुः **यदपि** इति. अत्र कारणम् आहुः **पुरुषत्वाद्** इति. यदि हिरण्यगर्भे द्युमूर्द्धत्वं स्यात् तदा भगवत्परपुरुषसूक्ते ''**सहस्रशीर्षा पुरुषः**'' (ऋग्वेद १०।९०।१) इत्यत्र 'पुरुष'पदोपादानं न स्याद् इति भावः. ग्रन्थान्तरे श्रुतौ 'पुरुष'पदस्य चतुर्धा प्रवृत्तिः उक्ता. पुरा आसेति. पुरम् उषति. पुरि शेतेति त्रिधायोगेन आकारविशेषे रूढ्या. एवञ्च साकारब्रह्मणि 'पुरुष'पदस्य प्रवृत्तिः मुख्या इति भावः. इयं च आनन्दमयाधिकरणे ''**स वा एषः पुरुषविधएव**'' (तैत्ति.उप.२।२) इत्यनेन आनन्दमयस्यैव आकारविशेषस्य उक्तत्वात् सएव 'पुरुष'पदवाच्यः इति द्युमूर्द्धत्वं तस्यैव इति हृदयम्. ननु 'पुरुष'शब्दस्य तथास्तु नाम, 'वैश्वानर'शब्दस्य कथं ब्रह्मवाचकत्वम्? अतः आहुः **विश्वस्य** इति. **जडस्य** इति. चतुर्दशभुवनात्मक-ब्रह्माण्डस्य इति अर्थः. जीवस्य तदन्तर्गतहिरण्यगर्भनामकस्य भगवदंशत्वेन इति विश्वो

जीवस्य च भगवदंशत्वेन देवतात्वाद् ‘‘**देवताद्वन्द्वे च**’’ (पाणि.सू.७।३।२१) इति विश्वानरौ. तौ निवासो यस्य इति ‘‘**तस्य निवासः**’’(पाणि.सू.४।२।६९) इति अण्, तेन परमेश्वरएव वैश्वानरो भवति, न अन्यः. भगवदंशत्वाद् अन्यत्र उपचारात् प्रयोगः. तस्माद् वैश्वानरः परमात्मा।।२४।।

स्मर्यमाणम् अनुमानं स्याद् इति।।२५।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

चतुर्दशलोकात्मकस्य इति अर्थः. **नरस्य** जीवस्य ‘हिरण्यगर्भ’पदवाच्यस्य इति अर्थः. **भगवदंशत्वेन** साक्षात् सच्चिद्रूपांशत्वेन. **देवतात्वाद्** नरस्य जीवस्य तयोः अंशयोः आध्यात्मिकतया देवतात्वाद् इति अर्थः. अन्यत्रापि ‘‘**नरे च सञ्ज्ञायाम्**’’(पाणि.सू.६।३।१२९) इत्यनेन ‘विश्व’पदस्य दीर्घत्वं. तथाच विश्वश्च नरश्च विश्वानरौ. विश्वो वैश्वानरः प्रथमपादरूपः, तैजसो हिरण्यगर्भो द्वितीयपादरूपः. तदन्तर्गतो जीवस्थानीयः. तौ निवासो अधिष्ठानं यस्य इति तस्य निवासार्थकाणि कृते इति अर्थः. **तेन** पूर्वोक्तरीत्या ‘वैश्वानर’शब्दस्य योगरूढ्या ब्रह्मपरत्वव्याख्यानेन. ननु उक्तरीत्या ‘वैश्वानर’शब्दस्य परब्रह्मपरत्वे श्रुतौ ‘वैश्वानर’शब्दस्य संवत्सरहिरण्यगर्भलौकिकाग्न्यादिबोधकत्वं न स्याद् अतः आहुः **भगवदंशत्वाद्** इत्यादि. तथाच तेष्वपि भगवदंशत्वेन अभेदात् प्रकाशकत्वरूपभगवद्धर्मस्य तेषु सत्त्वात्. सदृशलक्षणया तथाप्रयोगाद् न अनुपपत्तिगन्धोऽपि इति अर्थः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि।।२४।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

वैश्वानरः प्रथमपादः तैजसो हिरण्यगर्भो द्वितीयपादः इतिश्रुत्या भगवदंशत्वेन इति अर्थः. देवतात्वे सिद्धे ‘वैश्वानर’शब्दस्य योगेन ब्रह्मवाचकत्वम् आहुः **‘देवताद्वन्द्वे च’** इति. तथाच विश्वश्च नरश्च विश्वनरौ इत्येवं देवतयोः द्वन्द्वे कृते ‘‘देवताद्वन्द्वे च’’ इत्यनेन आनङि जाते विश्वानरौ इति सिद्धौ, तौ निवासो अस्य इति ‘सोऽस्य निवासः’ इति अणि कृते ‘वैश्वानरः’ इति पदं योगेन ब्रह्मवाचकम् इति अर्थः. अत्र तौ निवासो अधिष्ठानम् अस्य इति विग्रहे ब्रह्मणः अधिष्ठानं जगद् इति अर्थः समायाति. सच प्रभुचरणानाम् अनतिप्रशस्तः इत्यतः आहुः **‘तस्य निवासः’** इति. तथाच तयोः निवासः आश्रयः इति अर्थः. एवञ्च सूत्रे रूढ्या योगेन च ‘वैश्वानर’पदस्य ब्रह्मपरत्वं सिद्ध्यति इति आहुः **तेन** इति. **अन्यत्र** हिरण्यगर्भादौ. तथाच गौणी लक्षणा. ‘पुरुष’पदवद् ‘वैश्वानर’पदस्यापि अन्यत्र प्रयोगः इति भावः ।।२४।।

एतत्सूत्रान्तरारम्भे प्रयोजनम् आहुः **व्याख्यानेन** इति. वाक्यस्य व्याख्यानेन

व्याख्यानेन भगवत्परत्वाद् वाक्यस्य प्रमाणान्तरम् आह **''केचित् स्वदेहे हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तं, चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशङ्खगदाधरं धारणया स्मरन्ति''**(भाग.पुरा.२।२।८) इति. **स्मर्यमाणं** रूपम् **अनुमानं स्यात्.** प्रादेशमात्रवैश्वानरस्य ब्रह्मत्वे स्मरणं हि मननं श्रुतस्य भवति. श्रुतिवाक्येभ्यएव हि श्रवणम्. यदि प्रादेशमात्रवैश्वानरप्रतिपादकजातीयानां न ब्रह्मवाक्यत्वं स्यात् तदा स्मरणं न उपपद्येत. अतः इति हेतोः प्रादेशमात्रवैश्वानरो भगवानेव इति सिद्धम्।।२५।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ननु पूर्वसूत्रेणैव वैश्वानरस्य परब्रह्मत्वे सिद्धे सूत्रान्तरं किमर्थम्? अतः आहुः **व्याख्याने**त्यादि. **''आत्मानमेव इमं वैश्वानरं सम्प्रति अध्येषितम्''**(छान्दो.उप. ५।११।६) इतिवाक्यस्य व्याख्यानबलेन ब्रह्मपरतया उपपादनेऽपि ऋजुरीत्या 'वैश्वानर'-पदस्य ब्रह्मपरतायाः अनुपपादनाद् ऋजुरीत्या ब्रह्मपरतोपपादनाय सूत्रान्तरम् इति अर्थः. **प्रमाणान्तरम् आह. ''स्मर्यमाणमनुमानं स्यादिति''.** स्मर्यमाणपदार्थं स्फुटीकर्तुम् आहुः **केचिद्** इत्यादि. **स्मर्यमाणं रूपम्** इत्यादि. **अनुमानं स्याद्** इत्यादि. **''केचिद्''** इत्यादिना स्मर्यमाणम् इदम् रूपं श्रुत्युक्त-**प्रादेशमात्रस्य ब्रह्मत्वे** लिङ्गं भवति. तदेव उपपादयन्ति **स्मरणं हि** इत्यादिना. स्मरणं हि मननं, तच्च अनुचिन्तनं श्रुतार्थस्यैव भवति. **''श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्च उपपत्तिभिः''** (न्यायसार ७९), **''तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि''**(बृहदा.उप.३।९।२६) इत्यादिवाक्यात्. तदनुमानं प्रदर्शयन्ति **यदि** इत्यादिना. तथाच प्रादेशमात्रवैश्वानरप्रतिपादकजातीयानि वाक्यानि ब्रह्मवाक्यानि, ब्रह्मप्रतिपादकवाक्यार्थं श्रवणजन्यानुचिन्तनात्मकमननप्रतिपादकवाक्यत्वात्, यत्र प्रतिपादकवाक्यत्वाभावः तत्र मननप्रतिपादकत्वाभावः, यथा 'घटम् आनय'इतिवाक्यम् इति अनुमानं बोध्यम्. निगमयन्ति **अतः** इत्यादिना. **इति हेतोः** ब्रह्मप्रतिपादकवाक्यत्व-साधकमननप्रतिपादकवाक्यत्वाद् हेतोः।।२५।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

भगवत्परत्वं प्रतीयते, नतु स्वारस्येन अतः आग्रहवादित्वशङ्कानिवारणार्थम् अनुमानप्रमाणान्तरसूचकसूत्रान्तरारम्भः इति अर्थः. ननु स्मर्यमाणं तत् किम्? अतः आहुः **केचिद्** इति. **अनुमानं** ब्रह्मत्वे **स्याद्** इति अन्वयः. ननु स्मर्यमाणस्य अनुमितिजनकत्वं कथम्? अतः आहुः **स्मरणं हि** इति. **श्रुतिवाक्येभ्यः** इति. **''श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्च उपपत्तिभिः''** (न्यायसार ७९) इति स्मरणाद् इति अर्थः. यदि प्रादेशमात्रवैश्वानरः श्रुत्यर्थो न स्यात् तदा तस्य स्मरणं न विहितं स्यात्, तत्तु

शब्दादिभ्यो अन्तःप्रतिष्ठानान्नेति चेद् न, तथादृष्ट्युपदेशाद् असम्भवात् पुरुषमपि चैनम् अधीयते।।२६।।

किञ्चिद् आशङ्क्य परिहरति. ननु यदि स्मर्यमाणम् अनुमानं स्याद् इति वाक्यार्थो निर्णीयते, तदा स्मृत्यन्तरेण अन्यथापि व्याख्येयम्. **''अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहम् आश्रितः, प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्''** (भग. गीता१५।१४) इति जाठरएव अग्निः वैश्वानरो भवति, तस्यैव भगवद्विभूतित्वात्. वाक्यार्थो यथाकथञ्चिद् योजयिष्यते.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सूत्रम् अवतारयन्ति **किञ्चिद्** इत्यादि. **ननु यदि** इत्यादि. ननु उपक्रमे ''को न आत्मा किं ब्रह्म'' इति 'आत्म'-'ब्रह्म'शब्दयोः परमात्ममात्रबोधकयोः श्रवणेन परमात्मनः प्रथमतो निर्णयात् चरमावगताग्नि-वैश्वानरादि-शब्दानामपि प्रथमावगतार्थएव नयनम् उचितं नतु चरमावगतानुरोधेन प्रथमस्य नयनम् इति आशङ्का असङ्गता. ननु न आशङ्कासङ्गतिः यतः वाजसनेयिनां वैश्वानरविद्यायाः उपक्रमे **''वैश्वानरं ह वै सम्प्रति वेद तन्नो ब्रूहि''** ( ) इत्यत्र 'आत्म'पद-'ब्रह्म'पदाभावात् कथं वैश्वानरवाक्याद् ब्रह्मनिर्णयो? अतो अत्रापि छान्दोग्यवाक्ये वाजसनेयिवाक्यानुसार्येव निर्णयः उचितः स्याद्, एकवाक्यतानुरोधाद् इति चेद्, न, निश्चितार्थानुरोधेनैव सन्दिग्धार्थस्य निर्णेतुं शक्यत्वाद् वाजसनेयिवाक्यस्य सन्दिग्धत्वात् छान्दोग्यवाक्यस्य च निर्णीतार्थकत्वात्. अन्यच्च द्युमूर्धत्वादीनाम् अपहतपाप्मत्वादीनां च ब्रह्मातिरिक्ते असम्भवाद् न एतत्सूत्रोक्ता आशङ्कासम्भवः इति प्राप्ते, उच्यते, उपक्रान्त-निर्णीतानुरोधेन हि सन्दिग्धस्य तत्र निर्णयः स्याद् अत्र बाधो न स्याद्, ब्रह्मणितु पुरुषे अतः सूत्रोक्ताशङ्का 'वैश्वानर'शब्दार्थे सूपपन्नाएव. **तदा** स्मृत्युक्तलक्षणस्मर्यमाणत्व-निर्णायकत्वे. **अन्यथापि** अग्निपरतयापि इति अर्थः.

ननु अग्नौ ब्रह्मात्मद्युमूर्धत्वादिधर्माणां कथम् अन्वयः स्याद्? अतः आहुः **यथाकथञ्चिद्** इति. तथाच अग्नेः ब्रह्मविभूतित्वाद् अभेदेन योजनेति न अनुपपत्तिः इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

विहितं, तस्मात् सः श्रुत्यर्थः इति तर्कएव अनुमापकः इति भावः ।।२५।।

सूत्रान्तस्थशङ्कांशस्य अर्थम् आहुः **ननु** इति. **यथाकथञ्चिद्** इति. द्युमूर्धत्वादिधर्मवत्त्वं यद्यपि जाठराग्नेः न भवति, तथापि **''अहं वैश्वानरः''**(भग.गीता १५।१४) इत्यादिना भगवद्विभूतित्वात् ''समृद्धः सचिवो राजा सम्वृतः'' इतिवद्

*नतु विरुद्धधर्माणां विद्यमानत्वाद् भगवत्परत्वं वाक्यस्य. विरुद्धधर्माः शब्दादयः अन्तःप्रतिष्ठानञ्च. ‘‘**अग्निर्वैश्वानरः**’’ इति शब्दः केवलवैश्वानरपदे भवेत्. भगवत्परत्वं योगेन. तद् अग्निसाहचर्याद् अग्निरेव भवेत्. तस्यैव च

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

भावः. विभूतित्वं च ‘‘**अहं वैश्वानरो भूत्वा**’’(भग.गीता १५।१४) इत्यादिवाक्याद् बोध्यम्. तथाच अमात्ये ‘राज’पदप्रयोगवद् वैश्वानरे भगवत्सादृश्याद् गौण्या ब्रह्मात्मद्युमूर्धत्वादिबोधकशब्दानां प्रयोगः इति फलितम्. ननु मुख्ये सम्भवति अमुख्यकल्पनस्य अन्याय्यत्वाद् विरुद्धधर्माश्रयत्वस्य प्रादेशमात्रम् अभिविमानत्वादिसम्बन्धरूपस्य भगवल्लिङ्गस्य एवम् अग्निवैश्वानरशब्दान्तःप्रतिष्ठितत्वयोः व्यापके विरुद्धयोः भगवल्लिङ्गस्य च ‘‘अहं वैश्वानरः’’ इति वाक्ये सत्त्वाद् एतद्वाक्यस्थ‘वैश्वानर’पदस्यापि ब्रह्मपरत्वम् आस्ताम् इति आशङ्कन्ते ***ननु** इत्यादि. उक्त**विरुद्धधर्माः** इत्यादिना उक्तविरुद्धधर्माश्रयत्वरूपबोधकबलादेव उक्त‘वैश्वानर’पदस्य ब्रह्मपरत्वं भवति इति आशयेन आहुः **अग्निः वैश्वानरः** इत्यादि. तथाच उक्तः शब्दो यदि केवलवैश्वानरपदे ब्रह्मस्थाने ब्रह्मप्रकरणे भवेत् तदा योगेन पूर्वोक्तेन विश्वनरोभयवृत्तिब्रह्मबोधके ‘वैश्वानर’पदस्य भगवत्परत्वं भवेत्. रूढ्या वृत्त्या ‘वैश्वानर’पदस्य अग्निपरत्वं व्यवस्थापयन्ति **तद् अग्नी**त्यादिना. **तद्** ‘वैश्वानर’पदवाच्यम्. **अग्निसाहचर्याद्**. ‘अग्निः’ इति प्रसिद्धपदरूपरूढिशक्तिग्राहकसान्निध्यात्. अग्निरेव इति ‘एव’कारेण ब्रह्मव्यवच्छेदः. अग्निवाचकत्वे साधकान्तरम् आहुः **तस्यैव** इत्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उपचाराद् योजना क्रियते इति अर्थः. वाक्यस्य भगवत्परत्वे विरुद्धधर्मरूपं बाधकम् आहुः **नतु** इत्यादिना. नतु इत्यस्य वाक्यस्य इत्यनेन अन्वयः. वक्तुं न शक्यते इति शेषः. अत्र प्रदीपे *‘ननु’ इति पाठं भ्रमेण धृत्वा व्याख्यातं तद् असङ्गतम्.

विरुद्धधर्मान् आह **विरुद्धे**ति. तत्र आदौ शब्दम् आहुः **अग्निः** इति. बृहदारण्ये वैश्वानरविद्यायां य पृष्टो ‘‘**अग्निर्वैश्वानरः**’’ इतिवाक्यं श्रूयते, तत्र इदं विचार्यते. ‘वैश्वानर’शब्दके इति अर्थः. अस्य भगवत्परत्वं निषेधति **केवले**ति. अग्निसाहचर्यरहितकेवल‘वैश्वानर’पदे कदाचिद् योगेन भगवत्परत्वं भवेत्. अत्रतु अग्निसाहचर्यस्य विद्यमानत्वाद्, न ब्रह्मवाचकत्वम् इति अर्थः. ननु अस्तु तथा, प्रकृते किम्? इत्यतः आहुः **तद्** इति. तत् तस्मात् कारणाद् अग्निसाहचर्याद् जठराग्निवाचकाग्निपदसामानाधिकरण्यात्. **अग्निरेव** इति. तथाच विषयवाक्ये ‘वैश्वानर’पदेन जठराग्निरेव गृह्यते इति भावः. ननु वाक्ये हृदयं गार्हपत्य इति श्रूयते, इति ब्रह्मणएव त्रेताग्निकल्पनं

त्रेताग्निकल्पनम् उपासनार्थम्. ''**प्राणो हि देवता तद् यद् भक्तं प्रथमम् आगच्छेत् तद्धोमीयम्**''(छान्दो.उप.५।१०।१) इत्यादिना. तद् एतेभ्यो हेतुभ्यो अन्तःप्रतिष्ठितत्वमपि न भगवद्धर्मः. ''**पुरुषे अन्तःप्रतिष्ठितं वेदः**''

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तस्यैव 'वैश्वानर'पदेन उक्तस्यैव. **त्रेताग्निकल्पनं** हृदयं गार्हपत्य इत्यनेन उपासनार्थं त्रेताग्निकल्पनम् इति अर्थः. **प्राणो हि देवता** अग्रे पठ्यते इति शेषः. ''**तद् यद् भक्तं प्रथमम् आगच्छेत् तद् होमीयं**'' स यां प्रथमाम् आहुतिं जुहुयात् तां जुहुयात् प्राणाय स्वाहा इति चतुर्थ्यन्तार्थत्वाद् आहुतेः प्राणो देवता इति अर्थः. अग्निः तस्य मुखं जाठरः आहुतिप्रापकत्वाद्, ''**अयम् अग्निः वैश्वानरो यो अयम् अन्तःपुरुषे येन इदम् अन्नं पच्यते यद् इदम् अद्यते**'' इति वाजसनेयिब्राह्मणोक्तलिङ्गात्. ''**तदिदं शब्दादिभ्यः**'' इतिसूत्र'स्थादि'पदस्य अर्थः. **तत्** तस्मात् कारणाद्, **एतेभ्यः** 'वैश्वानर'पदस्य अग्निपरताव्यवस्थापक**हेतुभ्यः**. **न भगवद्‌धर्मः** यतो वाजसनेयिभिः ''**स यो ह एतम एवम् अग्निं वैश्वानरं पुरुषविधं पुरुषे अन्तःप्रतिष्ठितं वेद**'' (शत.ब्राह्म.१०।६।११) इति उक्तम् अतो अन्तःप्रतिष्ठितत्वं न भगवद्‌धर्मः किन्तु जाठरधर्मएव इति अर्थः. ननु ब्रह्मभिन्नजठराग्निबोधकता 'वैश्वानर'शब्दस्य शब्दादिभ्यः इति हेतुना साध्यते ''अन्तःप्रतिष्ठानाद्'' इति हेतुनापि साध्यते. इत्थं च द्वितीयहेत्वनन्तरं प्रथमहेतुसामुच्चयकः चकारो अपेक्ष्यते सः कुतो न उक्तः? इत्यतः आहुः **पुरुषे अन्तः** इत्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

युज्यते इत्यतः आहुः **तस्यैव** इति. जठराग्नेरेव इति अर्थः. ननु कल्पनायाः उभयत्र साम्याद् जठराग्नेरेव कुतः? इत्यतः आहुः **प्राणो हि** इति. प्राणो देवता तद्यद्भक्तम् इत्यादिना ज्ञायते इति अर्थः. तथाच अग्रिमवाक्ये ''**सः यां प्रथमाम् आहुतिं जुहुयात् तां जुहुयात् प्राणाय स्वाहा**'' (छान्दो.उप.५।१९।१) इति श्रवणात् प्राणस्य चतुर्थ्या देवतात्वे तस्य जठराग्निरेव मुखं भवति इति तस्यैव त्रेताग्निकल्पनम् इति भावः. शब्दादिभ्यः इत्यस्य उपसंहारम् आहुः **तद् एतेभ्यो हेतुभ्यः** इति. तत् तस्मात् कारणाद् विरुद्धधर्मशब्दादिभ्यो हेतुभ्यो न भगवत्परत्वं वाक्यस्य इति अर्थः. इतः परम् अन्तःप्रतिष्ठानरूपं विरुद्धधर्मे हेतुम् आहुः **अन्तःप्रतिष्ठितत्वम्** इति. वाजिशाखायां श्रूयते ''**स यो ह एतम् अग्निं वैश्वानरं पुरुषविधं पुरुषे अन्तःप्रतिष्ठितं वेद**'' (शत. ब्राह्म.१०।६।१।११) इति. तत्र यद् अन्तःप्रतिष्ठितत्वम् उक्तं भगवद्धर्मो न भवति, व्यापकीभूतस्य ब्रह्मणः पुरुषे अन्तःप्रतिष्ठानाभावात्, किन्तु जाठराग्नेरेव अयं धर्मः इति

(शत.ब्राह्म. १०।६।१।११) इति भिन्नहेतुः हेतुहेतुश्च भवतीति न ‘च’कारः. तस्माद् विरुद्धधर्माणां विद्यमानत्वाद् न भगवान् वैश्वानरः **इति चेद्, न, तथादृष्ट्युपदेशात्.** सर्वभोक्तृत्वं भगवतो वक्तुं तथादृष्टिः उपदिश्यते.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

भिन्नहेतुः ‘अन्तःप्रतिष्ठानाद्’ इति भिन्नहेतुः. **हेतु**रपि ‘वैश्वानर’शब्दस्य ब्रह्मबोधकतैव सिद्ध्यति नतु जठराग्निबोधकतापि. ‘अन्तःप्रतिष्ठानाद्’ इति हेतुः उक्तौतु व्यापके ब्रह्मणि तद्धेतोः असम्भवाद् जाठरवृत्तित्वस्य च सम्भवाद् द्वितीयहेतुसाहचर्यात् प्रथमहेतोरपि जाठराग्निबोधकतैव सिध्यति नतु ब्रह्मबोधकतापि इतिरीत्या द्वितीयहेतोः प्रथमहेतुसार्थक्यसम्पादकत्वात् समत्वाभावाच्च न सूत्रे ‘च’कारो अपेक्षितः इति अर्थः. पूर्वपक्षम् उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादिना. **न वैश्वानरः** न ‘वैश्वानर’पदवाच्यः.

समाधानम् आहुः **न** इत्यादिना. शब्दादिभ्यो हेतुभ्यो ‘वैश्वानर’शब्दस्य ब्रह्माबोधकता न सम्भवति इति अर्थः. तत्र हेतुः **तथादृष्टी**त्यादि. सर्वत्र भोगाधिकरणेषु

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अर्थः. ननु पूर्वपक्षेतु वेद**शब्दादिभ्यो अन्तःप्रतिष्ठानान्नेति चेन्नेति** हेतुद्वयसूचक‘च’कारो अपेक्षितः, सच न उक्तः इत्यतः आह **पुरुषे अन्तः** इति. **भिन्नहेतुः** इति. ‘शब्दादिभ्यः’ इत्यस्माद् भिन्नः हेतुः इति अर्थः. **हेतुहेतुः** इति. हेतोः हेतुः हेतुहेतुः इति षष्ठीसमासः. हेतोः शब्दादिरूपहेतोः अन्तःप्रतिष्ठानं हेतुः इति अर्थः. एवञ्च अन्तःप्रतिष्ठानं भिन्नो हेतुः, हेतोरपि हेतुश्च भवति इति पक्षे हेतुद्वयाभावाद्, न चकारापेक्षेति भावः. ननु अन्तःप्रतिष्ठितत्वं शब्दादिभ्यः इति हेतोः कथं हेतुः? इति चेद् न, वैश्वानरविद्यास्थपुरुषो ‘‘अग्निः वैश्वानरः’’ इति शब्दे ‘अग्नि’पदसामानाधिकरण्याद् जठराग्निवाचकत्वं यद्यपि अस्ति, तथापि **‘‘अहं वैश्वानरो भूत्वा’’**(भग.गीता १५।१४) इत्यत्र ‘अहं’पदसामानाधिकरण्याद् ब्रह्मवाचकत्वमपि स्याद् इत्यतः अन्तःप्रतिष्ठितत्वन्तु जठराग्नेरेव न ब्रह्मणः इत्येवंरीत्या जठराग्निसाधकशब्दादिभ्यः इति हेतोः अन्तःप्रतिष्ठितत्वं हेतुः इति गृहाण. अत्र पुरुषे अन्तःप्रतिष्ठितं वेदेति हेतुः हेतुश्च भवति इति हेतुत्रयघटितः पाठः समीचीनः. **वेदे**ति. **हेतुः** हेतोः शब्दादिभ्यः इत्यस्य हेतुः हेतुहेतुः भवनार्थः. क्वचित् पुस्तके एकहेतुघटितः कुत्रचिद् हेतुद्वयघटितः क्वचिद् हेतुत्रयघटितोऽपि पाठो दृश्यते. सूत्रस्थसमाधानांशस्य व्याख्यानम् आहुः **न तथा** इति. तथादृष्टेः जाठरदृष्टेः उपदेशः तया दृष्ट्युपदेशः तस्मात्. किमर्थम् उपदेशः? इत्यतः आहुः **सर्वे**ति. ननु सर्वोत्कृष्टस्य भगवतः हीने वैश्वानरे दृष्टिः अनुचिता इति पूर्वमेव उक्तम् इत्यतः

विरुद्धधर्माणां तत्तद्भावापत्तिः इति ऐश्वर्यमेव भगवतो वर्णितम्.

तर्हि कार्यवाक्यमेव अस्तु स्मृत्यनुरोधाद् इति चेत्, तत्र आह **असम्भवात्.** नहि तस्य द्युमूर्धत्वादयो धर्माः सम्भवन्ति. उपचाराद् उपासनार्थं परिकल्पनं भविष्यति इति चेद्, न. **पुरुषमपि च एनम् अधीयते**, वाजसनेयिनः. **‘‘स एषो अग्निर्वैश्वानरो यत् पुरुषः. स यो हैतमेव अग्निं वैश्वानरं पुरुषविधं पुरुषे अन्तःप्रतिष्ठितं वेद’’** (तत्रैव १०।६।११) इति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

भगवतो भोक्तृत्वस्य प्रदर्शनार्थं जठराग्नौ ‘वैश्वानर’पदप्रयोगाद् इति अर्थः. ननु लौकिकफलभोक्तृत्वे भगवतः परब्रह्मत्वं व्याहन्येत इत्यतः आहुः **विरुद्धधर्माणाम्** इत्यादि. **तत्तद्भावापत्तिः** इत्यादि. लौकिकफलतत्तत्फलभोक्तृत्वादीनां भगवद्रूपत्व-सिद्धिः, लौकिकफलानां तद्भोक्तृत्वादीनां ब्रह्मवादे भगवद्व्यतिरिक्तानान्तु असम्भवाद् इति भावः. इत्थं च भगवानेव भोक्तृभोग्यादिसर्वरूपो भूत्वा क्रीडति इति महदैश्वर्यं सिद्धं भवति इति अर्थः.

सूत्रावयवान्तरं वक्तुम् आशङ्कन्ते **तर्हि** इत्यादि. ननु जाठरे ‘वैश्वानर’पद-प्रयोगस्य भगवदैश्वर्यद्योतनार्थत्वे किं विनिगमकम्? **‘‘अहं वैश्वानरो भूत्वा’’** (भग.गीता १५।१४) इति स्मृत्या ऋजुरीत्यैव कार्यरूपजाठरस्य ‘वैश्वानर’पदेन लाभसम्भवात्. अतः आहुः सूत्रस्थम् **असम्भवाद्** इति. **तस्य** जठराग्नेः. **द्युमूर्धत्वादयः** इत्यादिपदेन प्रकरणपठिताः सर्वे ब्रह्मधर्माः आत्मत्वब्रह्मत्वादयो ग्राह्याः. **उपचाराद्** आरोपात्. **परिकल्पनं** जाठरे ब्रह्मधर्माणां परिकल्पनम्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आहुः **विरुद्धे**ति. **विरुद्धधर्माणां** वैश्वानरत्वान्तःप्रतिष्ठितत्त्वादिधर्माणाम्. **तत्तद्भावापत्तिः** इति. जठराग्न्यादिभावापत्तिः. तथाच भगवतः सर्वभोक्तृत्वं वक्तुं जठराग्न्यादौ ब्रह्मवाचक‘वैश्वानर’पदेन उपवर्णनं सर्वकारणस्य सर्वकार्यस्वरूपत्वेन कथं तत्तद्भोगकृतरूपकार्यार्थम् इति महदैश्वर्यमेव वेदे वर्णितम् इति भावः. ननु उपनिषदुक्त-विरुद्धधर्माणां तत्तद्भावापत्तिः कार्यार्थम् इति सिद्धम्.

तथाच इदं कार्यवाक्यमेव भवतु इति आशयेन आहुः **नहि** इति. **स्मृत्यनुरोधात्.** **‘‘अहं वैश्वानरो भूत्वा’’**(भग.गीता१५।१४) इति गीतानुरोधात्. तथाच जठराग्निपरमेव इदं वाक्यम् इति शङ्कायां सूत्रकारः समाधानम् आह **असम्भवात्.** शेषं स्पष्टम्. **पाठान्तरे**ति. उत्तरपाठे **‘‘स य एषः’’** इति मन्त्रएव पाठद्वयम्. **‘‘स य एषो अग्निः**

तस्मात् पुरुषत्वं, पाठान्तरे पुरुषविधत्वं वा जाठरस्य न सम्भवतीति भगवानेव वैश्वानरः. भगवत्परत्वे सम्भवति अन्यकल्पना न युक्ता इति।।२६।।

अतएव न देवता भूतं च।।२७।।

‘‘वैश्वानरो न ऊत्या’’ (अथ.वेद ६।३५।१) इत्यादिमन्त्रैः देवतायाः महाभूताग्नेः वा वाक्यार्थतेति कस्यचिद् बुद्धिः स्यात्. तदपि अतिदेशेनैव परिहरति. मुख्योपपत्तिः भगवत्परत्वे सम्भवति न अन्यकल्पना युक्ता इति।।२७।।

साक्षादपि अविरोधं जैमिनिः।।२८।।

अधुना परिमाणविशेषो विचार्यते. प्रादेशमात्रत्वं भगवतः स्वाभाविकं

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि. तस्माद् वैश्वानरस्य पुरुषविधत्वं श्रुत्यन्तरे च पुरुषत्वं च उच्यते यतः इति अर्थः।।२६।।

‘‘वैश्वानरो न ऊत्या’’ इत्यादिमन्त्रैः. ‘आदि’पदेन **‘‘वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेत् पत्रे जाते**’’(तैत्ति.संहि.२।२।५) इत्यादिवाक्यैः देवतास्वरूपम् अथवा **‘‘एष वा अग्निर्वैश्वानरः**’’ इत्यादौ भूताग्निस्वरूपं प्रतिपादितं तदेव अत्रत्य‘वैश्वानर’पदस्य अर्थः स्याद् इति कस्यचिद् बुद्धिः स्याद् इति अर्थः. **अतिदेशेन** इत्यादि. तथाच पूर्वोक्तश्रुतिस्मृतिसिद्धद्युमूर्धत्वादिब्रह्मात्मपदवाच्यत्वादिहेतुभिरेव भूतदेवताग्निबोधकता ‘वैश्वानर’पदस्य सूत्रकारेण परिहृता इति अर्थः. **मुख्योपपत्तिः** इत्यादि. तथाच **‘‘सर्वे वेदा यत् पदम् आमनन्ति**’’(कठोप.१।२।१५) इत्यादिश्रुतिभिः सूत्रकारेण सर्वस्यापि वेदस्य ब्रह्मणि समन्वयः उपपादितो ‘वैश्वानर’पदस्य ब्रह्मपरत्वे सम्भवति सति मुख्योपपत्तिः भवतीति अन्यपरतोपपादनम् अयुक्तमेव इति अर्थः।।२७।।

पूर्वसूत्रैः वैश्वानराग्निशब्दानां ब्रह्मपरत्वनिर्णयाद् अग्रिमसूत्राणां प्रयोजनाभावो अतः आहुः **अधुना** इत्यादि. तथाच अस्मिन्नेव प्रकरणे अभिविमानत्वं व्यापकत्वं

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

वैश्वानरो यत्पुरुषः’’ इति पूर्वपाठः. पूर्वपाठे ‘पुरुषः’ इति पदम्. उत्तरपाठे ‘पुरुषविधम्’ इति पदम्. केचित्तु सूत्रेएव पाठद्वयं ‘पुरुषं’ ‘पुरुषविधम्’ इति वर्णयन्ति. **अन्यकल्पना** इति. उपासनार्थम् अग्नौ पुरुषत्वादिकल्पना इति अर्थः. न युक्ता इति. **‘‘सर्वे वेदा यत् पदम् आमनन्ति**’’(कठोप.२।१५) इति श्रुत्या **न युक्ता** इति अर्थः ।।२६।।

इत्यादि इति. **‘‘वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेद्**’’ (तैत्ति.सं.२।२।५) इत्यादिपदेन संग्रहः. शेषं स्पष्टम् ।।२७।।

कृत्रिमं वा? इति. अस्मिन् सिद्धएव पूर्वोक्तं सिद्धं भवेद् इति विचार्यते. तत्र अस्मिन् अर्थे चत्वारः ऋषयो वेदार्थचिन्तकाः प्रकारभेदेन. तत्र केवलं *शब्दबलविचारकाः आचार्याः. शब्दार्थयोः जैमिनिः. आश्मरथ्यस्तु शब्दोपसर्जनेन अर्थविचारकः. केवलार्थविचारको बादरिः इति. आचार्यः पुनः विचाराविचारयोः दोषं पश्यन् विचारमपि वदन् तेषाम् अल्पबुद्धिख्यापनाय

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

प्रादेशमात्रत्वं च उक्तम्. नच एकस्मिन् स्वाभाविकं विरुद्धोभयं सम्भवति, अतो ब्रह्मणि व्यापकत्वस्य बहुप्रमाणसिद्धत्वात् प्रादेशमात्रत्वएव भाष्ये सन्देहः उक्तः **स्वाभाविकम्** इत्यादिना. **अस्मिन्** प्रादेशमात्रत्वसमानाधिकरणाभिविमानत्वे. **पूर्वोक्तं** विरुद्धधर्माश्रयत्वे न ब्रह्मत्वम्. **तत्र** ब्रह्मविचारे अर्थे. ***शब्दबलेन** शब्दशक्तितात्पर्यबलेन. **शब्दार्थयोः जैमिनिः** शब्दार्थयोः समप्राधान्येन इति अर्थः. **शब्दोपसर्जनत्वेन** शब्दानाम् उपसर्जनत्वं लाक्षणिकत्वं तद्बलेन अर्थविचारकः इति अर्थः. **केवलार्थविचारकः** युक्तिप्राधान्येन अर्थविचारकः इति अर्थः. ऋषिनामग्रहणप्रयोजनम् आहुः **आचार्यः** इत्यादिना. **विचाराविचारयोः दोषम्** इति. गार्गीब्राह्मणे ‘‘**मा ते मूर्धा व्यपतद् अनतिप्रश्न्या वै देवता अतिपृच्छसि गार्गी मातिप्राक्षीः**’’(बृहदा.उप.३।६।१) इति अतिप्रश्ने दोषोक्तेः. कठवल्ल्यां च ‘‘**नैषा तर्केण मतिरापनेया**’’ (कठोप.१।२।९) इति काल्पनिकविचारेऽपि दोषोक्तेः. तैत्तिरीये च ‘‘**तत्तु एवं भयं विदुषो अमन्वानस्य**’’ (तैत्ति. उप.२।७।१) इति अविचारेऽपि दोषोक्तेः. सूत्रकारः सर्वज्ञत्वाद् उचितविचारं कुर्वन्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

‘मन्यते’ इति शेषः. एवं पञ्चस्वपि सूत्रेषु ज्ञेयम्. सूत्राणां प्रयोजनम् आहुः **अधुना** इति. **अस्मिन्** इति. यथाकथञ्चिदपि प्रादेशमात्रत्वे सिद्धेएव इति अर्थः. **पूर्वोक्तम्** इति. प्रादेशमात्रत्वे सति व्यापकत्वम् उपविरुद्धधर्माश्रयत्वम् इति. तत्र विचारे अस्मिन् अर्थे परिमाणविशेषरूपार्थे ऋषयः प्रकारभेदेन वेदार्थचिन्तकाः भवन्ति इति अन्वयः. **तत्र** चतुर्षु मध्ये. **शब्दबले**ति. शब्दनिष्ठं यद् बलं विलक्षणतात्पर्यजनकोच्चारणक्रमरूपं तेन अर्थविचारकाः इति अर्थः. **आचार्याः** बादरायणाः. उच्चारणक्रमादेव अर्थनिर्णयात् तेषाम् आचार्यत्वम्. ऋषिनामकथनस्य प्रयोजनम् आहुः **आचार्यः** इति. ‘‘**नैषा तर्केण मतिरपनेया**’’(कठोप.२।९) इति निषेधेन अतिविचारे दोषः कठवल्ल्याम्. ‘‘**तत्त्वेव भयं विदुषो अमन्वानस्य**’’(तैत्ति.उप.२।७) इति अविचारे दोषः तैत्तिरीये उक्तः इति दोषद्वयं पश्यन् ‘‘**सो अन्वेष्टव्यः**’’ (छान्दो.उप.८।७।१) इति

नामानि आह. तत्र जैमिनिः उभयबलविचारकः प्रथमं निर्दिश्यते. व्यापकस्य प्रादेशमात्रत्वे **साक्षादपि** कल्पनाव्यतिरेकेणापि स्वरूपविचारेणैव **अविरोधं** मन्यते **जैमिनिः**. आकाशवद् व्यापकं सर्वतःपाणिपादान्तं ब्रह्म. अतएव साकारत्वम् अनन्तमूर्तित्वं ब्रह्मणः स्वेच्छया परेच्छया स्वभावतश्च विभक्तमिव. त्रयोऽपि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

नामानि आह इति अर्थः. **निर्दिश्यते** सूत्रेण तन्मतम् उच्यते इति अर्थ.

अतएव सर्वतः पाणिपादान्तत्वस्य श्रुत्युक्तत्वादेव. श्रुतौ अनन्तपदार्थम् आहुः **अनन्तमूर्तित्वम्** इत्यादिना. ‘‘**यदेकम् अव्यक्तम् अनन्तरूपं विश्वं पुराणं तमसः परस्ताद्**’’ (महाना.उप.१।१) इति श्रुतिरपि प्रमाणम् अनुसन्धेया. **स्वेच्छया** पञ्चाध्यायीलीलायां स्वेच्छया. **परेच्छया** ‘‘**तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय**’’(भाग.पुरा. ३।९।११) इत्यादौ परेच्छया. **स्वभावतः** ‘‘यदेकम्’’इति श्रुत्युक्तरूपाणि स्वभावतः. **न ब्रह्मभेदापत्तिः**(?) ‘‘**यदेकम्**’’ इति श्रुतेः. ‘‘**अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

श्रुत्या विचारमपि वदन् आचार्यः व्यासः सूत्रे नामानि आह इति अर्थः. **उभयबले**ति. शब्दार्थोभयबलः इति अर्थः. सूत्रार्थोभयबलः इति अर्थः. सूत्रार्थम् आहुः **व्यापकस्य** इति. अविरोधम् उपपादयन्ति **आकाशवद्** इति. श्रुतौ प्रादेशमात्रम् अभिविमानाम् इति. शब्दक्रमाद् व्यापकत्वं पश्चात् प्रतीयते. तत्र ‘‘**अग्निहोत्रं जुहोति**’’ (तैत्ति.संहि. १।५।९।१) ‘‘**यवागूं पचति**’’ (   ) इत्यादौ यवागूपाकं विना अग्निहोत्रहोमो न सम्भवति इति शब्दक्रमाद् आर्थक्रमस्य बलीयस्त्वं स्वीकृत्य यवागूपाकस्य प्राथम्यं यथा, तथा व्यापकस्यैव प्रादेशमात्रत्वं सर्वतः पाणिपादान्तत्वं सम्भवति इति अर्थः. बलेन व्यापकत्वस्य प्राथम्यं स्वीकृत्य विरोधो निवारितः इति अर्थः. अतएव **सर्वतः** इत्यस्य श्रौतत्वादेव **ब्रह्मणः** इत्यस्य देहलीदीपन्यायेन उभयत्र सम्बन्धः. **स्वेच्छया** इति. ‘‘**बहु स्याम्**’’ (छान्दो.उप.६।२।३) इति श्रुतौ. **परेच्छया** इति. ‘‘**यद् यद् धिद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय**’’ (भाग.पुरा.३।९।११) इति श्रीभागवते स्वभावतः ‘‘**आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः**’’ (शत.ब्राह्म.१०।६।३।२१), ‘‘**सर्वतः पाणिपादं तद्**’’ (श्वेता. उप.३।१६) इति श्रुतौ. **विभक्तमिव** इति. सिद्धम् इति शेषः. **त्रयोऽपि** इति. पुरुषस्य आकाशवत् परममहत्परिमाणत्वं, पुरुषविधस्य विराड्रूपस्यापि नियतपरिणामवत्त्वं, पुरुषे अन्तःप्रतिष्ठितस्य प्रादेशमात्रपरिमाणवत्त्वम् इति त्रयोऽपि इति अर्थः. ननु किम् इदम् उच्यते ‘‘**समो मशकेन समो नागेन**’’ (बृहदा.उप.१।३।२२) इति

नियतपरिमाणाः. अनियतपरिमाणास्तु आकाशवत् परिच्छेदनिरूप्याः. तद् वृद्धि-ह्रासाभ्यां तथा भवन्ति. स्मृतावपि उक्तम्

‘‘विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यथो विदुः,
प्रथमं महतः स्रष्टृ द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम्,
तं तृतियं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते’’ इति.

भूतेषु पञ्चधा, उदरे अङ्गुष्ठमात्रः, हृदये प्रादेशो, मूर्धनि च मनसीन्द्रियेषु च अणुः, चित्ते व्यापकः. एकस्यापि उपक्रमे सर्वेषु तथात्ववादो

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

स्थितम्’’(भग.गीता १३।१६) इति गीतावाक्याद् न ब्रह्मभेदापत्तिः इति अर्थः. **त्रीणि रूपाणि** इत्यादि. पुरुषः, पुरुषविधः, पुरुषे अन्तःप्रतिष्ठितश्च इति त्रीणि रूपाणि इति अर्थः. तान्येव आहुः **प्रथमम्** इत्यादिना. एते च त्रयोऽपि नियतपरिमाणाः यदातु ‘‘**आकाशवत् सर्वगतश्च**’’(शत.ब्राह्म.१०।६।३। २१) इति श्रुत्यर्थः तथा विचार्यते तदा तएव आकाशवद् ज्ञेयाः. परिच्छेदकपरिमाणेन नानापरिमाणाः भवन्ति ‘‘**समो नागेन समो मशकेन**’’(बृहदा.उप.१।३।२२) इत्यादौ तथानिरूपणात्. **भूतेषु पञ्चधा** इत्यादि. उदरे अङ्गुष्ठमात्रः आश्रयार्थः, हृदये प्रादेशमात्रो ध्यानार्थः, सएवच मूर्धनि अवसेयः. **मनसि** इत्यादि. ‘‘**चक्षुषश्चक्षुः**’’(तत्रैव४।४।१८) ‘‘**मनसोयं मनो विदुः**’’(तत्रैव) इत्यादिश्रुतेः तत्तत्कार्यनिर्वाहाय तत्र-तत्र स्थितिः इति ध्येयम्. **चित्ते व्यापकः** चित्तस्य तथात्वात् सोऽपि व्यापकः इति अर्थः. ननु प्रक्रमे प्रादेशमात्रस्यैव प्रकृते विचार्यत्वाद् इतरविचारो

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

श्रुतौ अनियतपरिमाणवत्त्वमपि उक्तम् अतः आहुः **अनियते**ति. **आकाशवद्** इति. एकएव सर्वत्र आकाशवत् सर्वगतः कथम्? इत्यत्र विचारे क्रियमाणे ‘‘**समो मशकेन**’’ इति श्रुत्या घटाकाशः मठाकाशवत् परिच्छेदनिरूप्या भवन्ति इति अर्थः. **तद्वृद्धी**ति. तेषां परिच्छेदकानां नागमशकादीनां वृद्धीति अर्थः. **तथा भवन्ति** इति. यथा-यथा यस्य शरीरं, तथा-तथा परिमाणानि भवन्ति इति अर्थः. स्मृतिप्रमाणम् आहुः **स्मृतौ** इति. **त्रीणि** इति. पुरुषं, पुरुषविधं, पुरुषे अन्तःप्रतिष्ठितम् इति वैश्वानरस्यैव त्रीणि इति अर्थः.

तृतीयस्य परिमाणानि आहुः **भूतेषु** इति. **उदरे** इति. आश्रयार्थः. ‘‘**अधो निष्ट्या वितस्यान्ते नाभ्याम् उपरि तिष्ठति**’’(महाना.उप.११।८) इति तैत्तिरीयोपनिषदि उक्तेः. हृदये ध्यानार्थः, शिरसि सर्वार्थम्, मनसि इन्द्रियाणां विषयग्रहणार्थम्, इन्द्रियेषु स्वामित्वार्थम्. **चित्ते**ति. तत्सर्वं व्यापकं चित्तं प्रविश्य व्योम्नि धारयेद् इतिवाक्यात्

विभूतिः अभेदाय. तस्माद् वैश्वानरस्य पुरुषत्वात् सच्चिदानन्दरूपेणैव प्रादेशमात्रत्वं न विरुद्ध्यते. अतः साकारब्रह्मवादएव जैमिनेः सिद्धान्तः।।२८।।

अभिव्यक्तेः इति आश्मरथ्यः।।२९।।

निराकारमेव ब्रह्म मायाजवनिकाच्छन्नं तदपगमेन पुरुषाकारेण आधिदैविकदेवताधिष्ठितेन अभिव्यक्तः पुरुषो अन्तर्यामी. अतएव 'पुरुषविधः' इति. **अभिव्यक्तेः** हेतोः साकारत्वमपि मायापगमनकृतत्वाद् न स्वाभाविकत्वं तथापि निर्दिश्यमानं सच्चिदानन्दरूपमेव **आश्मरथ्यो** मन्यते।।२९।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

निष्प्रयोजकः इत्यतः आहुः **एकस्यापि** इत्यादि. एकस्य प्रादेशमात्रस्य उपक्रमेऽपि इति योजना. **सर्वेषु** सर्वभूतस्थनानारूपेषु. **तथात्ववादः** भगवत्वेन उक्तिः. **अभेदाय** तत्तद्विभूतिरूपाणां भगवता वैश्वानरेण अभेदबोधनाय इति अर्थः. **तस्माद्** वैश्वानरस्य सर्वरूपत्वेन नानापरिमाणत्वात्. **न विरुध्यते** अभिविमानत्वेन सह न विरुध्यते इति अर्थः. **अतः** जैमिनीयकृतचतुर्लक्षणीसमाप्तौ ''**स विष्णुराह हि**'' ( ) ''**तद् ब्रह्म इति आचक्षते तद् ब्रह्म इति आचक्षते**'' ( ) इति जैमिनिना सूत्रद्वयप्रणयनादेव।।२८।।

एतदादिसूत्रत्रये अविरोधम् इति अनुषञ्जनीयम्. तथाच अभिव्यक्तेः हेतोः प्रादेशमात्रत्वाभिविमानत्वयोः परिमाणयोः ब्रह्मणि वैश्वानरे अविरोधम् आश्मरथ्यो मन्यते इति अर्थः. **तदपगमेन** मायावरणस्य अपगमेन. **आधिदैविकदेवता इति** ब्रह्म-विष्णु-शिवरूपतया **अधिष्ठितेन** शरीरतया अङ्गीकृतेन स्वरूपेण **अभिव्यक्तः** परमात्मा पुरुषाकारेण ज्ञानविषयो जातः. **अतएव** पुरुषाकारेण प्रकटीभवनादेव. **मायापगमन-कृतत्वाद्** जलमालिन्यनिराकरणेन जले नानाकारप्रतीतिवद् इति अर्थः. **न स्वाभाविकम्** इति किन्तु अर्भकौकःसूत्रोक्तव्योमदृष्टान्तेन उपरवः इति अर्थः. तथाच आकाशस्य इव आगन्तुकः इति अर्थः।।२९।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

चित्तस्य व्यापकत्वात् तत्र व्यापकः इति अर्थः. ननु प्रादेशमात्रोपक्रमः अन्यविचारो निरर्थकः इत्यतः आहुः एकस्य इति. **तथात्ववादः**. भगवत्त्ववादः. **अभेदाय.** वैश्वानराणां भेदबोधनाय इति अर्थः ।।२८।।

त्रिषु सूत्रेषु अविरोधं मन्यते इति शेषः. **तदपगमेन** मायापगमेन. **आधिदैवके**ति. ब्रह्मविष्णुशिवात्मकेन. **अतएव.** ब्रह्माद्यधिष्ठानादेव ।।२९।।

अनुस्मृतेर्बादरिः।।३०।।

बादरिः केवलयौक्तिकश्चिन्तनवशात् प्रादुर्भूतरूपानुवादिका श्रुतिः इति. ‘‘**यद्यद् धिया त उरूगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय**’’ (भाग.पुरा.३।९।१२) इति वाक्यानुरोधात्. अन्यथा बहुकल्पनायां बुद्धिसौकर्याभावात् तार्किकादिमतेष्वपि तथात्वाद् युक्त्यनुरोधेन ब्रह्मवादोऽपि अन्यथा नेयः इति हि मन्यते. अस्मिन् पक्षेतु अतात्त्विकत्वम्. अथवा मायास्थाने अनुस्मृतिः, अभिव्यक्तिस्तु तुल्या. एवं सति बादरिमतेऽपि तात्त्विकमेव रूपम्।।३०।।

सम्पत्तेरिति जैमिनिः तथा हि दर्शयति।।३१।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

श्रुतिः द्युमूर्धत्वादिविशिष्टपुरुषत्वेन प्रतिपादिका श्रुतिः. आकारभेदेन नानाकल्पने. **बहुकल्पनायां** ब्रह्मस्वरूपनानात्वकल्पनायाम्. **बुद्धी**त्यादि. मुक्त्यर्थं कस्य रूपस्य श्रवणादि कर्तव्यम् इत्यत्र नियामकाभावाद् बुद्धिसौकर्याभावः इति अर्थः. ननु युक्त्या ब्रह्मनिर्णयः कुत्र सिद्धः ? इत्यतः आहुः **तार्किके**त्यादि. **तथात्वाद्** युक्त्या ब्रह्मनिर्णयकरणात्. **अन्यथा नेयः** वेदानुसरणं त्यक्त्वा नेयः इति अर्थः. ‘‘**यः तर्केण अनुसन्धत्ते सः धर्मं वेदः नेतर**’’ (मनुस्मृ.१२।१०६) इति वाक्याद् इति अर्थः. **अस्मिन् पक्षे** युक्त्या ब्रह्मनिर्णयपक्षे. **अतात्त्विकं** वेदविरुद्धत्वाद् निर्णयस्य अतात्त्विकत्वम्. पक्षान्तरम् आहुः **अथवा** इत्यादि. **माया** इत्यादि. तथा यथा आश्मरथ्यमते माया प्रयोजिका तथा एतन्मते परम्परागता वृद्धानां स्मृतिः आकारव्यवहारनियामिका इति अर्थः. **अभिव्यक्तिः** ब्रह्मस्वरूपाभिव्यक्तिः. **तुल्या** आस्मरथ्यमतेन तुल्या. तन्मते मायया अभिव्यक्तिः एतन्मते च ‘‘**तत्तद्वपुः प्रणयसे**’’(भाग.पुरा.३।९।११) इत्याद्यनुस्मृतिरूपचिन्तनेन अभिव्यक्तिः इति तुल्या इति अर्थः. तात्त्विकमेव वस्तु सतएव अभिव्यक्तिः नतु अलीकस्य इति तात्त्विकत्वं बोध्यम् इति भावः।।३०।।

पूर्वं जैमिनिमतप्रदर्शनेऽपि पुनः जैमिनिमतप्रदर्शनं किमर्थम् उच्यते ? अतः आहुः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

यौक्तिकः. युक्तिः प्रधानं यस्य सः. अनुस्मृतेः इत्यस्य अर्थम् आहुः **चिन्तनवशाद्** इति. **प्रादुर्भूतरूपेति**. ‘‘**भक्तस्य अनुग्रहार्थं वै ब्रह्मणो रूपकल्पना**’’ (   ) इत्यपि बोध्यम्. **तथात्वाद्** इति. युक्तिप्रधानत्वात्. अतात्त्विकत्त्वरूपम् अस्वरसं हृदि निधाय आहुः **अथवा** इति ।।३०।।

पुनः जैमिनिमतप्रदर्शने बीजम् आहुः **जैमिनिमते** इति. साकारवादः जैमिनिः

जैमिनिमते साकारवादे नियतसाकारं मन्यमानः तदेकदेशी नियतमेव प्रादेशमात्रं भगवद्रूपं मन्यते. तन्निराकरणाय सर्वत्र प्रादेशत्वं सम्पत्तिकृतम् इति आह. तत्र का सम्पत्तिः, कथम् इति स्वयमेव श्रुत्या प्रदर्शयति वाजसनेयिब्राह्मणे द्युप्रभृतीन् पृथिवीपर्यन्तान् वैश्वानरस्य अवयवान् अध्यात्म्ये च मूर्धप्रभृतिषु चिबुकपर्यन्तेषु सम्पादयन् ‘‘**प्रादेशमात्रम् इह वै देवाः सुविदिता अभिसम्पन्नाः तथा तु व एतान् वक्ष्यामि यथा प्रादेशमात्रमेव अभिसम्पादयिष्यामि इति. स होवाच मूर्धानम् उपदिशन् एष वा अतिष्ठा वैश्वानरः**’’ (वाजसनेयिब्राह्मणे) इत्यादिना सम्पत्तिनिमित्तमेव प्रादेशमात्रत्वं वैश्वानरस्य आह. नतु प्रादेशमात्रएव वैश्वानरः इति तदेकदेशिपरिहारं **जैमिनिः** मन्यते।।३१।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

जैमिनिमतेत्यादि. **आकारवादे** ब्रह्म साकारम् इति वादे. **तदेकदेशी** जैमिनिमतैकदेशी. **नियतमेव** सर्वदा सर्वत्र प्रादेशमात्रं प्रादेशातिरिक्तप्रमाणशून्यं सत् प्रादेशप्रमाणम् इति अर्थः. **इति आह** जैमिनिः आह इति व्यासः आह इति अर्थः. **स्वयमेव** जैमिनिरेव. **अध्यात्म्ये** आत्मानं वैश्वानरम् अधिकृत्य उद्दिश्य इति अर्थः. **सम्पादयन्** ब्रह्मणः स्थितिं वदन्. श्रुतिम् आहुः ‘‘**प्रादेशमात्रम्**’’ इत्यादिना. **सम्पत्तिनिमित्तमेव** ब्रह्मावच्छेदकदेशपरिमाणकृतम् इति अर्थः. **तदेकदेशी** जैमिनिमतैकदेशी इति अर्थः।।३१।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

मन्यते. नियतसाकारः प्रादेशमात्रः तदेकदेशी मन्यते. तत्र स्थानानुरोधेन तदनुगुणा स्थितिः संयतिः, तत्कृतत्वमेव प्रादेशमात्रत्वं, नतु सः प्रादेशमात्रः इति जैमिनिः आह इति अर्थः. कथम् आह? इति आकाङ्क्षायाम् आहुः **तत्र** इति. **स्वयमेव** जैमिनिरेव. **सम्पादयन्** इति. वैश्वानरः स्वावयवान् अध्यात्म्ये च चिबुकपर्यन्तेषु सम्पादयन् सन् प्रदर्शयति इति पूर्वेण अन्वयः. वाजसनेयिश्रुतिम् आहुः **प्रादेशमात्रम् इह** इति. वैश्वानरः इत्यादिपदेन बाध्या इयं श्रुतिः. तथाहि ‘‘**चक्षुषी उपदिशन्नुवाच एष वै सुतेजा वैश्वानरः इति नासिके उपदिशन् उवाच एष वै पृथक् वर्त्मा वैश्वानरः**’’ ( )इत्यारभ्य ‘‘**चिबुकम् उपदिशन् उवाच एष वै प्रतिष्ठा वैश्वानरः**’’ ( ) इत्यन्तेन स्थानानुरोधकृतमेव प्रादेशमात्रत्वं श्रुतौ उक्तम्, नतु स्वाभाविकं तस्य तद् इति अर्थः. **सम्पत्तिनिमित्तमेव** इति. मूर्द्धानम् आरभ्य चिबुकपर्यन्तं प्रादेशमात्रं स्थानं सम्पत्तिः तन्निमित्तम् इति अर्थः ।।३१।।

आमनन्ति च एनम् अस्मिन्।।३२।।

मुख्यं स्वसिद्धान्तम् आह. व्यापकएव प्रादेशः इति. न हि विरुद्धम् उभयं भगवति अनवगाह्यमाहात्म्ये. तस्मात् प्रमाणमेव अनुसर्तव्यं, न युक्तिः. शब्दबलविचारएव मुख्यः. नतु प्रातीतिकविरोधाद् अन्यथात्वकल्पनम्. वैश्वानरस्य पुरुषत्वं, पुरुषविधत्वं पुरुषे अन्तःप्रतिष्ठितत्वं च वाजसनेयिनः समामनन्ति. न हि तस्य तद्विधत्वं, तस्मिन् प्रतिष्ठितत्वं च सम्भवति युक्त्या. अतो अन्ये ऋषयो भ्रान्ताएव ये अन्यथाकल्पयन्ति इति अभिप्रेत्य स्वमतम् आह. **एनं** वैश्वानरम् **अस्मिन्** मूर्धचिबुकान्तराले जाबालाः समा**मनन्ति**. **‘‘एषो अनन्तो अव्यक्त आत्मा यो अविमुक्ते प्रतिष्ठिते इति. सो अविमुक्तः कस्मिन् प्रतिष्ठिते’’**(श्रीरामोत्तर.उप.३।१) इत्यादिना **‘‘भ्रुवोः प्राणस्य च यः सन्धिः स एष द्यौर्लोकस्य परस्य च सन्धिः भवति’’**(तत्रैव) इति. न हि अनन्तः सङ्कुचितस्थाने भवति, विशेषणवैयर्थ्यापत्तेः. युक्तिगम्यातु अब्रह्मविद्यैव.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सूत्रम् अवतारयन्ति **मुख्यम्** इत्यादिना. **मुख्यं** शब्दबलविचारेण निर्णीतम्. **स्वसिद्धान्तं** व्याससिद्धान्तम्. **अन्यथात्वकल्पनं** श्रुतिसिद्धं परित्यज्य यौक्तिकार्थकल्पनम् इति अर्थः. **नहि** इत्यादि. सादृश्यस्य भेदघटितत्वाद् अभेदे आधाराधेयभावस्य च असम्भवाद् युक्त्या न सम्भवति इति अर्थः. श्रुत्या सिद्धं स्वमतम् आह इति अर्थः. श्रुतिम् आहुः **एनम्** इत्यादिना. **सो अविमुक्तः** न मुक्तः. तथाच सर्वाणि इन्द्रियकृतानि पापानि वारयति इति वरणा सर्वान् इन्द्रियकृतान् पापान् नाशयति तेन नासी नासिका इति अर्थः. अविमुक्तः भ्रुवोः वरणायाः **प्राणस्य** नासिकायाः. सः एषः उक्तः सिद्धेरेव. तथाच

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

मुख्यम् इति. सम्पत्तिकृतं प्रादेशमात्रत्वं न, किन्तु स्वाभाविकं प्रादेशमात्रत्वं शब्दबलसिद्धम् इति अर्थः. व्यापकस्य प्रादेशमात्रत्वं, व्यापकत्वं च शब्देनैव बोध्यते, इति सएव मुख्यः इति अर्थः. **कल्पनम्** इति. एकस्यैव प्रादेशमात्रत्वं व्यापकत्वं च विरुद्धम् इति प्रातीतिकविरोधः. नतु शास्त्रसिद्धः तद्वशाद् युक्त्या प्रादेशमात्रो न भवति इति अयथात्वकल्पनं न इति अर्थः. विरोधो नास्ति इति शब्दतः सिद्धम् इति अर्थे श्रुतिं प्रमाणयन्ति **वैश्वानरस्य** इति. **स्वमतम्** आह इति. बादरायणः स्वमतं विरुद्धधर्माश्रयत्वरूपम् आह इति अर्थः. सूत्रार्थम् आहुः **एनम्** इति. जाबालश्रुतिम् आहुः **एषः** इति **भवति** इत्यन्तेन. **वैयर्थ्यापत्तेः** इति. **‘‘कालो अनन्तो अजरो अमरः’’**

अविरोधेऽपि वक्ष्यति “**श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वाद्**”(ब्रह्मसू.२।१।२७) इति. ननु तथापि काचिद् वेदानुसारिणी युक्तिः वक्तव्या, शास्त्रसाफल्याय इति चेद्, उच्यते. विरोधएव न आशङ्कनीयो वस्तुस्वभावात्. अयस्कान्तसन्निधौ लोहपरिभ्रमणे या युक्तिः गर्भस्य औदर्यादाहे, रेतसो मयुरत्वादिभावे. न हि सर्वत्र स्वभावदर्शनाभ्याम् अन्योपपत्तिः कैश्चिदपि शक्यते वक्तुम्. “**तस्यान्ते सुषिरम्**” (महाना.उप.१३।२) इत्यादिना श्रुतिः एवमेव आह. यशोदास्तनन्धयस्य च भगवतो मुखारविन्दे विश्वमेव दृष्ट्वा स्वप्नमाया अविद्यानिराकरणाय सिद्धान्तम्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अविमुक्तः सन्धौ तिष्ठति इति अर्थः. **विशेषणे**त्यादि. व्यापकत्वार्थकानन्तेति–विशेषणवैयर्थ्याद् इति भावः. **अविरोधे** प्रादेशव्यापकत्वयोः एकस्मिन् अविरोधे. ताम् उक्तिमेव आहुः **श्रुतेस्तु** इत्यादिना. **श्रुतेः** एकस्मिन् विरुद्धधर्मद्वयप्रतिपादिकायाः “**प्रादेशमात्रमभिविमानम्**”(छान्दो.उप.५।१८।२) इत्यादिश्रुतेः. **शब्दमूलत्वात्** शक्तितात्पर्यग्रहाधीनार्थप्रतिपादकत्वाद् इति अर्थः. **वस्तुस्वभावाद्** ब्रह्मणो विरुद्धधर्माश्रयत्वस्य स्वभावाविलक्षणत्वाद् इति अर्थः. ननु उक्तयुक्तेः श्रुत्यनुसारित्वे किं गमकम्? अतः आहुः **तस्यान्ते** इत्यादि. “**तस्यान्ते सुषिरं सूक्ष्मं तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्**” (महाना.उप.११।९) इत्यादि तैत्तिरीयाणां बृहन्नारायणीये तथोक्तेः सर्वम्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

(   ) इत्यत्र ‘अनन्तः’ इति विशेषणवैयर्थ्यापत्तेः इति अर्थः. “**नैषा तर्केण मतिरपनेया**”(कठोप.२।९) इत्याशयेन आहुः **युक्ती**ति. अत्र सूत्रकाराशयं प्रकटीकुर्वन्ति **अविरोधेऽपि** इति. **श्रुतेः** इति. प्रादेशमात्रम् अभिविमानम् इति श्रुतेः. **शब्दमूलत्वाद्** इति. शब्दशक्तिस्वभावाधीनत्वाद् इति अर्थः. ननु सर्वत्र गौतमादिशास्त्रे युक्त्यैव विरोधपरिहारो दृश्यते इति आशयेन शङ्कते **ननु** इति. ‘सति कुड्ये चित्रम्’ इतिन्यायेन समाधानम् आहुः **उच्यते** इति. दृष्टान्तम् आहुः **अयःकान्ते**ति. लोहचुम्बकः. **औदर्यादाहे** इति. औदर्येण जठराग्निना अदाहे इति अर्थः. **रेतसः** इति. मयूरेण स्वस्त्रीसन्निधौ नृत्यं क्रियते, तदा नेत्रान्तरे बिन्दुपतने मयूर्या भक्षणं क्रियते तत्र रेतसः पतनं न जायते, किन्तु मयूरः उत्पद्यते इति वैचित्र्यम् इति अर्थः. **स्वभावः** वस्तुस्वभावः. दर्शनं शास्त्रम् इति अर्थः. शास्त्रमेव आहुः **तस्यान्ते** इति. “**तस्य अन्ते सुषिरं सूक्ष्मं तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्**”(महाना.उप.११।९) इति तैत्तिरीयोपनिषदि एवम् आह इति अर्थः. **यशोदा** इति. आह इत्यनेन अन्वयः. किम् आह **अथ** इति.

आह. **“अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः”** (भाग.पुरा. १०।८।४०) इति. उलूखलबन्धने च अयम् अर्थो निर्णीतः. तस्माद् आनन्दांशस्यैव अयं धर्मो यत्र स्वाभिव्यक्तिः तत्र विरुद्धसर्वधर्माश्रयत्वम् इति ‘च’कारार्थः. तस्मात् प्रादेशमात्रो व्यापकः इति वैश्वानरो भगवानेव इति सिद्धम्।।३२।।

इति प्रथमाध्याये द्वितीयपादे अष्टमं वैश्वानराधिकरणम्।।८।।

इति श्रीवेदव्यासमतवर्ति-श्रीवल्लभाचार्यविरचिते ब्रह्मसूत्राणुभाष्ये

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उपपन्नम् इति अर्थः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इत्यादि।।३२।।

अणुभाष्यपदप्रदीपे प्रथमस्य अध्यायस्य द्वितीयः चरणः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

औत्पत्तिकः स्वाभावसिद्धः. **निर्णीतः** इति. द्व्यङ्गुलन्यूनतया भौतिकवैलक्षण्येन निर्णीतः. वस्तुस्वभावे तर्को नास्ति इति आशयेन उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति।।३२।।

अणुभाष्यविवरणे प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः पादः.

प्रथमो अध्यायः तृतीयः पादः

द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात् ।।१।। (१।३।१)

द्वितीयपादे आधेयरूपो भगवान् प्रतिपादितः. आधाररूपो अत्र प्रतिपाद्यते. तेन सर्वं ब्रह्म इति फलिष्यति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अथ तृतीयपादं विवरिषवो अध्यायसङ्गतिस्फोरणाय पूर्वपादार्थं वदन्तः प्रस्तुतस्य अर्थम् आहुः. **द्वितीये**त्यादि. अयम् अर्थः. पूर्वपादस्य अन्तस्तद्धर्माधिकरणप्रपञ्चरूपतया अष्टाधिकरण्याम् “**उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः, यो लोकत्रयम् आविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः**” (भग.गीता १५।१७) इति लक्षणं विचारितम्. अतः परं तल्लिङ्गाद्यधिकरणेषु यः आधाररूपो विचारितः सो अत्र विचार्यते. तेन “**पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया, यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वम् इदं ततम्**”(तत्रैव ८।२२) इतिवाक्योत्तरार्धं स्फुटं भविष्यति. तदेतद् उक्तम् **आधाररूपो अत्र प्रतिपाद्यते** इति. द्वितीयपादोक्तम् अनन्यभक्तिलभ्यत्वन्तु गुणोपसंहारपादे फलिष्यतीति अतो न उक्तम्. एवं पादद्वयोक्तस्य फलं समन्वयः, तत्स्वरूपं वदन्ति **तेन** इत्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तृतीयपादं व्याख्यातुं प्रथमतो द्युभ्वाधिकरणं रचयाञ्चक्रुः **द्युभ्वायतनं स्वशब्दात्**. अस्मिन् समन्वयाध्याये सन्दिग्धानाम् उपनिषद्वाक्यानां ब्रह्मणि समन्वयार्थं विचारारम्भः. तत्र कानिचिद् आधेयवाचकानि कानिचिद् आधारवाचकानि, तेषां समन्वयार्थं प्रथमे पादे अन्तस्तद्धर्माधिकरणे तल्लिङ्गाद्यधिकरणे च उभयरूपो भगवान् प्रतिपादितः, ततः, द्वितीयपादे अन्तस्तद्धर्माधिकरणोक्तम् आधेयरूपं ब्रह्म विस्तरेण प्रतिपादितम्. एवञ्च “एकसम्बन्धिज्ञानम् अपरसम्बन्धिस्मारकम्” इति रीत्या स्मृतस्य आधाररूपभगवत्प्रतिपादनस्य उपेक्षानर्हत्वरूपप्रसङ्गसङ्गत्या तृतीयपादं व्याख्यातुम् आहुः **द्वितीयपादे**त्यादिना. **आधाररूपः**. तल्लिङ्गाद्यधिकरणोक्तः. **अत्र**. तृतीयपादे. **प्रतीपाद्यते**. विस्तरेण इति शेषः. **तेन** इति. उभयरूपब्रह्मप्रतिपादनेन इति अर्थः. **सर्वं ब्रह्म इति फलिष्यति** इति. अयम्भावः “**नायमात्माप्रवचनेन**”(कठोप.२।२३) इति श्रुत्या वरणरूपसाधनमात्रप्राप्यत्वं ब्रह्मणि बोध्यते. एवञ्च तादृशसाधनेन भक्तिभावानन्तरं “**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**” (छान्दो.उप.३।१४।१) इति वाक्यश्रवणानन्तरं सर्वत्र आधेयाधाररूपभगवद्भावे ज्ञाते तत्र विरहभावे अतिगाढभावेन सर्वत्र तदेव स्फुरति इति

बाधकानां बलिष्ठत्वात् साधकानाम् अभावतः।
आधारधर्मा बाध्येरन् इति पादोऽभिधीयते।।१८।।

इदं श्रूयते. **''यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षम् ओतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः, तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथा अमृतस्यैषः सेतुः''** (मुण्ड.उप.२।२।५) इति.

'यस्मिन्' इत्यादिवाक्ये च वाक्यार्थः सर्वबाधितः।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

बाधकानां ब्रह्मणि प्रतिपादिताधेयधर्माणाम् आधाररूपतायां बाधकानाम्. तथाच अभेदे आधाराधेयभावानुपपत्तिरेव बाधिका इति भावः. **साधकानाम् अभावतः** विरोधपरिहारकाणाम् अप्रतिपादनतः इति अर्थः. बाधमेव प्रदर्शयन्ति **यस्मिन् इति.**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तादृशे जीवे स्वीयत्वेन वरणे भक्तिभावात् सहकारियोग्यतासम्पत्त्या ब्रह्मफलं भविष्यति इति लिङ्गभूयस्त्वाधिकरणोक्तरीत्या आत्मानन्दः **''स स्वराट् भवति सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति''**(छान्दो.उप.७।२५।२) इति. अथवा ज्ञानमार्गे उभयरूपब्रह्मप्रतिपादनेन प्रसिद्धोपदेशाधिकरणन्यायेन ''सर्वं ब्रह्म'' इति वाक्यार्थज्ञाने जाते श्रवणं सिध्यति. ततः ''क्रतुं कुर्वीत'' इति मननम्. ततः निदिध्यासनेन सर्वतो मनसि निवृत्तव्यापारे सति स्वयम् उपलब्धनिजसुखानुभवरूपं ब्रह्म फलिष्यति इति.

ननु आकाशस्तल्लिङ्गाद्यधिकरणेषु आकाशात्मत्वाकाशज्याय्यस्त्वब्रह्मक्षत्रौदनकत्वलोकशरीरत्वादिभिः धर्मैः व्यापकत्वबोधे जाते आधाररूपता अवधारणं भविष्यति इति तृतीयपादारम्भप्रयोजनं नास्ति इत्यतः आहुः **बाधकानाम्** इति. **बलिष्ठत्वाद्** इति. तेषु अधिकरणेषु प्रेत्याभिसम्भवाऽध्वपारान्तरात्मत्वादीनां साधितत्त्वेन बाधकानां बलिष्ठत्वाद् इति अर्थः. **साधकानाम्** इति. असाधितत्वेन इति शेषः. **अभावतः** इति. दुर्बलत्वात् साधकाभावाद् इति अर्थः. **आधारधर्माः**. ज्यायस्त्वादयः. **बाध्येरन्** इति. विचारकबुद्ध्या उपासनायां बाधिता भवेयुः इति अर्थः. एते धर्माः यदि उपासनायां विवक्षिताः स्युः तदा आचार्यो विचारयेदेव इति भावः. **इति** इति. इति हेतोः आधाररूपभगवत्प्रतिपादनार्थं तृतीयपादो **अभिधीयते** इति अर्थः.

विषयवाक्यम् उपन्यस्यन्ति **इदं श्रूयते** इत्यादि. **श्रूयते.** द्वितीयमुण्डकोपनिषदि श्रूयते. द्वितीये पादे सप्तमादृश्यत्वाधिकरणे सम्पूर्णं मुण्डकं विषयवाक्यम् उक्तं तत्रत्यम् अत्र बोध्यम्. **यस्मिन्** इति. यस्मिन् पुरुषे. **ओतं** समर्पितं. शेषं सुगमम्. ननु उपनिषदि

अर्थात् प्रकरणात् लिङ्गाद् इति पूर्वं विचार्यते।।१९।।

अत्र संशयः. **द्युभ्वाद्यायतनं** ब्रह्म, आहोस्वित् पदार्थान्तरम्? इति. अर्थान्तरमेव च भवितुम् अर्हति. द्युभ्वादीनां सूत्रे मणिगणाइव प्रोतानां भारवाहकत्वाद् न तद्वाहकः परमात्मा. अन्यवाग्विमोकश्च असङ्गतः, एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानस्य पृष्टत्वात् कथम् अन्यविमोकः? सेतुश्च गतिसाधनः, तस्माद् अफलत्वमपि. ‘‘**आत्मलाभाद् न परं विद्यते**’’ (आप.ध.सू.१।८।२२।२)

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

‘‘**यस्मिन् इदम् ओतं च प्रोतं च**’’ (शाण्डि.२।१।२) इत्यत्र सर्वस्य स्वस्मिन् प्रवेशः सर्वस्मिंश्च स्वस्य प्रवेशः प्रतिपादितः. एवमेव अनन्तस्थानेषु उपपादितम्. इदं च युक्त्याद्यगोचरत्वात् सर्वप्रकारैः बाधितं तदेव आहुः **अर्थाद्** इत्यादिना. **प्रकरणाद्** एकविज्ञानापेक्षया सर्वविज्ञानस्य पृथक्तया निर्द्देशात्. ‘‘**अन्या वाचो विमुञ्चथ**’’ (मुण्डकोप.२।२।५) इति द्वितीयमुण्डकश्रुतिस्थं विरुद्धम् इति भावः. **अफलत्वं**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

बहूनां वाक्यानां सत्त्वाद् एतस्यैव वाक्यस्य प्रथमतः विचारे किं बीजम्? इत्यतः आहुः **यस्मिन्** इत्यादि. **वाक्येषु** इत्यादि. बाधस्तु त्रिप्रकारकः, अर्थकृतः, प्रकरणकृतः, लिङ्गकृतश्च इति. अयं वाक्यार्थस्तु सर्वप्रकारैः बाधितः इति हेतोः पूर्वं विचार्यते इति अर्थः. पूर्वपक्षम् आहुः **अर्थान्तरमेव** इति. अर्थकृतं बाधं विवृण्वन्ति **द्युभ्वि**त्यादि. भगवतः भारवाहकत्वासम्भवाद् ब्रह्मवाक्यत्वबाधः इति अर्थः. लिङ्गप्रकरणकृतं बाधं व्याकुर्वन्ति **अन्ये**त्यादि. **पृष्टत्वाद्** इति. प्रथममुण्डकोपनिषदि शौनकेन अङ्गिरसः पृष्टत्वाद् इति अर्थः. तथाहि ‘‘**शौनको ह वै महाशालाङ्गिरसं विधिवदुपपन्नः पप्रच्छ कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति**’’(मुण्ड.उप.१।३) इति. अस्य अर्थः, शौनकस्य अपत्यं महाशालः महाग्रहस्थः, अङ्गिरसं भारद्वाजशिष्यम् आचार्यम्, विधिवद् यथाशास्त्रम् इति एतद्, उपपन्नः उपगतः सन्, पप्रच्छ पृष्टवान्, हे भगवः हे भगवान्, एकस्मिन् विज्ञाते सर्वविद् भवति इति शिष्टप्रवादं श्रुतवान् अहम्, अतः प्रश्नं करोमि. कस्मिन् विज्ञातेति. शेषं सुगमम्. **कथम् अन्यविमोकः** इति. एकातिरिक्तस्य सर्वान्तःपातित्वाद् अन्यविमोकासम्भवात् प्रथममुण्डकोक्तप्रकरणकृतबाधस्य विद्यमानत्वाद् इति भावः. लिङ्गकृतं बाधं व्याकुर्वन्ति **सेतुः** इत्यादि. आत्मज्ञानस्य फलत्वात्, सेतोश्च साधनत्वात्, साधनफलयोः च ऐक्यासम्भवात् सेतुरूपलिङ्गकृतो ब्रह्मवाक्यत्वबाधः इति भावः. ननु ब्रह्मात्मज्ञानस्य परप्राप्तिरूपफलसाधनत्वमेव उच्यते इत्यतः आह

इति विरोधश्च. अतो न ब्रह्मविद्यापरम् एतद्वाक्यम् किन्तु स्मृतिमूलं भविष्यति इत्येवं प्राप्ते. उच्यते.

द्युभ्वाद्यायतनं ब्रह्मैव. द्यौः भूश्च आदिः येषां ते द्युभ्वादयः. तेषाम् आयतनम्. ‘‘**यस्मिन् द्यौः**’’ (मुण्ड.उप.२।२।५) इतिवाक्योक्तानां साधकं वदन् प्रथमपरिहारम् आह **स्वशब्दात्.** ‘आत्म’शब्दो व्याख्यातः ‘स्व’शब्देन. अत्र न जीवस्य आत्मत्वेन उपासनार्थम् ‘आत्म’पदम् किन्तु पूर्वोक्तानाम् आत्मभूतम्. तेन न भारकृतो दोषः. कारणे हि कार्यम् ओतं भवति सेतुत्वं च युज्यते. तज्जज्ञानेन अमृतत्वप्राप्तेः. अभेदेऽपि ‘‘**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**’’ (तैत्ति.उप.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

फललिङ्गाभावाद् अफलत्वम् इति अर्थः. **विरोधः** एतच्छ्रुतिप्रतिपाद्यस्य ब्रह्मात्मत्वासम्भवाद् विरोधः इति अर्थः. **स्मृतिमूलं** सांख्यस्मृतेः मूलीभूतम् इदम् इति अर्थः. तथाच प्रधानमेव अत्र वाक्याभिप्रेतम्. ‘आत्म’पदप्रयोगानुकूलव्यापकत्वस्य प्रधानेऽपि सम्भवाद् न ‘आत्म’पदप्रयोगानुपपत्तिरपि इति अर्थः. **इतिवद् अर्थः** इति अभेदेऽपि अवस्थावैलक्षण्येन आधाराधेयभावोपपत्तिः. **लक्ष्यस्य** इति ‘‘**लक्ष्यं सर्वगतं चैव शरो मे सर्वतोमुखः**’’ (रुद्रहृ.उप.३७) इति पूर्वमन्त्रोक्तस्य ब्रह्मणो लक्ष्यस्य इति अर्थः।।१।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आत्मलाभाद् इति. **स्मृतिमूलम्** इति. श्रुतेः स्मृतिमूलत्वाद् साङ्ख्यप्रतिपाद्यप्रधानपरं पुरुषपरं वा भविष्यति इति अर्थः.सिद्धान्तं व्याकुर्वन्ति **उच्यते** इति. **साधकम्** इति. अर्थकृतबाधस्य लिङ्गकृतबाधस्य च परिहारार्थं ब्रह्मवाक्यत्वसाधकं हेतुं वदन् इति अर्थः. **प्रथमपरिहारम्** इति. प्रथमस्य अर्थकृतबाधस्य परिहारः तम्. **व्याख्यातः** इति. सूत्रस्थ‘स्व’शब्देन विषयवाक्यस्य ‘आत्म’शब्दो व्याख्यातः इति अर्थः. व्याख्यानेन ‘आत्म’शब्दस्फोरणस्य प्रयोजनम् आहुः **अत्र न** इति. **पूर्वोक्तानाम्.** द्युभ्वादीनाम्. **आत्मभूतम्** इति. अनारोपितानागन्तुकं यत् स्वरूपं तद्वाचकम् ‘आत्म’पदम् इति अर्थः. एवञ्च एतद्बोधनार्थं सूत्रे ‘स्व’शब्दप्रयोगः. अन्यथा ‘आत्म’शब्दाद् इत्येव वदेद् इति भावः. ननु भगवतः सर्वस्य आधारभूतत्वे भारवाहकत्वपरिहारः कथम्? इत्यतः आहुः **कारणे हि** इति. लिङ्गकृतबाधपरिहारम् आहुः **सेतुत्वम्** इति. सेतुवाक्ये अमृतसाधनत्वं ब्रह्मणः उच्यते, नतु तज्ज्ञानस्य ‘‘तमेवैकं जानथ’’ इति अस्मिन् वाक्ये तस्य फलत्वम्. एवञ्च कथम् उपपतिः? इत्यतः आहुः **अभेदेऽपि** इति. तथाच ब्रह्मविद् इति वाक्यवद् अत्रापि तस्यैव साधनत्वं तस्यैव फलत्वं अवस्थाभेदेन भेदाद्, उभयवाक्यसामञ्जस्यम्

२।१) इतिवद् अर्थः. तस्माद् अबाधितार्थत्वात् लक्ष्यस्य सर्वगतत्वव्युत्पादकत्वाद् द्युभ्वाद्यायतनं ब्रह्मैव।।१।।

मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात्।।२।।

ननु च उक्तं सर्वविज्ञानस्य उपक्रान्तत्वाद् अन्यवाग्-विमोको विरुद्धः इति. न एषः दोषः. **मुक्तोपसृप्यव्यपदेशाद्** मुक्तानां जीवन्मुक्तानां शरीराद्यध्यासरहितानाम् अवान्तरप्रकरण'शरधनु'र्न्यायेन ब्रह्मत्वेन ज्ञातं पृथक्त्वेन वा

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अवान्तरप्रकरणेत्यादि. अवान्तरप्रकरणे हि ''**तद्वेद्धव्यं सौम्य विद्धि**'' (मुण्डकोप.२।२।२) इति ऐकाग्र्येण तदेकतानतां प्रतिज्ञाय सा कथं स्याद् इति आकांक्षायां ''**धनुः गृहीत्वा औपनिषदं महास्त्यं शरं हि उपासानिषितं सन्धीयते आयाम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेव अक्षरं सौम्य विद्धि**'' (तत्रैव२।२।३) इति शरधनुर्न्यायेन एकाग्रतां बोधयित्वा किं धनुः? कः शरः? इति आकांक्षायां ''**प्रणवो धनुः, शरो हि आत्मा, ब्रह्म तल्लक्ष्यम् उच्यते अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेद्**'' (तत्रैव२।२।४) इत्यनेन लक्ष्ये प्रतिष्ठः शरो यथा तन्मयो भवति तथा स्वयमपि इति बोधितम्. अथवा ''**लक्ष्यं सर्वगतं चैव शरो मे सर्वतोमुखः, वेद्धा सर्वगतश्चैव विद्धं लक्ष्यं न संशयः**''(रुद्रहृद.उप.३७) इति ब्रह्मणः सकाशात् पृथक्त्वेन ज्ञातं जीवं लक्ष्ये ब्रह्मणि योजयितुम् उपासनार्थम्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति भावः. **तस्माद्** इति. अर्थकृतलिङ्गकृतदोषद्वयस्य वारणाद् इति अर्थः. **लक्ष्यस्य** इत्येतद्विषयवाक्यात् पूर्ववाक्योक्तशरधनुर्न्यायेन ब्रह्मणो लक्ष्यस्य इति अर्थः. न्यायस्तु अनुपदमेव लक्ष्यते ।।१।।

प्रकरणकृतदोषपरिहारम् आक्षिपन्ति **ननु** इति. **मुक्तोपसृप्यव्यपदेशाद्** इति. उपसृप्यत्वम् इति भावप्रधानो निर्देशः. मुक्तनिष्ठं यद् भगवतः उप समीपे सर्पणं गमनं, तत्र योग्यत्वं मुक्तोपसृप्यत्वं, तस्य उपदेशः मुक्तोपसृप्यव्यपदेशः तस्मात्. व्यपदेशेन दोषपरिहारप्रकारम् आहुः **मुक्तानाम्** इत्यादि. व्यपदिश्यते इत्यनेन अन्वयः. जीवन्मुक्तानां भगवदुपसर्पणयोग्यता भवति इत्यत्र प्रमाणम् अवान्तरप्रकरणं, तत्र शरधनुः न्यायेन बोद्धव्यम्. तथाहि द्वितीयमुण्डके

> ''**तदेतत् सत्यं तद् अमृतं तद् वेद्धव्यं सौम्य विद्धि, धनुः गृहीत्वा औपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासानिशितं सन्धीयत. आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेव अक्षरं सौम्य विद्धि. प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यम् उच्यते, अप्रमत्तेन वेद्धव्यम् शरवत् तन्मयो भवेद्**''(मुण्ड.उप. २।२।२) इति.

जीवं लक्ष्ये योजयितुं तदुपसृप्यता व्यपदिश्यते. तेन शरीराद्यध्यासविशिष्टं न ब्रह्मणि योजनीयम् इति. किञ्च, वाग्विमोकएव, न वस्तुविमोकः, वस्तुनो ब्रह्मत्वात्. वाचारम्भणमात्रत्वाद् विकारस्य. अतो न सर्वविज्ञानबाधः. अतो बाधकाभावाद् इदं ब्रह्मवाक्यमेव. ये तु श्रुतेः अन्यथार्थत्वं कल्पितमतानुसारेण नयन्ति, ते [*]पूर्वोत्तरस्पष्टश्रुतिविरुद्धार्थवादिनः उपेक्ष्याः।।२।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अन्यवाग्विमोकः उच्यते नतु सर्वविज्ञानविघाताय. वाग्विमोकोपि ऐकाग्र्यार्थएव, नतु पार्य्यन्तिकः. **येतु** मायावादिनस्तु. **अन्यार्थत्वं ''तमेव एकं जानथ''** इति सावधारणम् **''अन्या वाचो विमुञ्चथ''** विषयस्य मिथ्यात्वेन अभावाद् वाचामपि त्यागतः इति अर्थं कुर्वन्ति. **स्पष्टश्रुती**ति. **''यथा सुदीप्तात्पावकाद् विस्फुलिङ्गाः''**(मुण्डकोप.२।१।१) इति, **''एतस्माज्जायते प्राणः''**(२।१।३) इति **''अग्निर्मूर्धा चक्षुषी''**(२।१।४) इत्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अस्य अर्थः, तद् भावगतेन चेतसा इति. ब्रह्मभावप्रापकत्वेन चेतसा या उपासा तया निशितं ब्रह्मत्वेन ज्ञातं जीवं लक्ष्ये ब्रह्मणि योजयितुम् उपासानिशितत्वाधायक-तद्भावगतचेतःसिध्यर्थम् अन्यवाग्विमोको अत्र उच्यते. सच शरीराद्यध्यासराहित्यएव सिध्यति इति भगवतो मुक्तोपसृप्यता व्यपदिश्यते उक्तरीत्या जीवयोग्यताकथनद्वारा उच्यते. व्यपदिश्यते इत्यस्य उच्यते इति अर्थः. अन्यवाग्विमोके दोषद्वयम्. शरः धनुः शरीरम् इति वाचा व्यवहारपवनं(प्रवणं!) भविष्यति इति प्रकरणबाधरूपः एकः, अपरः वाग्विमोके अर्थस्यैव बाधः, तत्र आद्ये दोषम् उद्धरन्ति **न ब्रह्मणि योजनीयम्** इति. एतद्बोधनाय वाग्विमोको अत्र उच्यते नतु सर्वविज्ञानविघाताय. एवं प्रकरणेन निवारितस्य अन्यवाग्विमोकनिष्ठदोषस्य अर्थेनापि निवारयन्ति **किञ्च** इत्यादिना. **नतु वस्तुविमोके** इति. यथा कटक-कुण्डलादि-सञ्ज्ञापरित्यागे एकरूपं सुवर्णं ज्ञायते तद्वाग्विमोके ब्रह्मस्वरूपवस्तुपरिज्ञानं भवति इति अर्थः. मायावादिमतं कटाक्षयन्ति **येतु** इति. **श्रुते**ः इति. **''सर्वं खल्विदं ब्रह्म''** (छान्दो. उप.३।१४।१) इति सामानाधिकरण्यं प्रपञ्चविलापनार्थं न अनेकरसताप्रतिपादनार्थम् इत्यादि अन्यार्थत्वम्. **कल्पितमतानुसारेण** इति. प्रपञ्चो मायिकः इति कल्पित मतानुसारेण इति अर्थः. **ते** इति. **''यथा सुदिप्तात् पावकाद् विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते''** (मुण्ड.उप.२।१।१) इत्यादिपूर्वोत्तरश्रुतिविरुद्धार्थवादिनः इति अर्थः ।।२।।

---

[*] 'पूर्वोक्तं स्पष्टं श्रुति...'' इति गोस्वामी श्रीपुरुषोत्तमचरणस्वीकृतः पाठः.

न अनुमानम् अतच्छब्दात्।।३।।

ननु जडधर्माः जडदृष्टान्ताः प्रकरणे बहवः सन्ति. ‘‘**अरा इव**’’(मुण्ड. उप.२।२।६) ‘‘**ब्रह्मपुरे**’’(तत्रैव२।२।७) ‘‘**मनोमयः**’’(तत्रैव२।२।७) इत्यादि. तस्मात् प्रकृतिपुरुष-निरूपक-साङ्ख्यानुमापकमेव एतत् प्रकरणम् अस्तु. निर्णीतमपि अक्षराधिकरणे जडधर्मात् पुनः उज्जीवनम्. तस्माद् द्युभ्वाद्यायतनं

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इदमेव अधिकरणं पुनः निषेधमुखेन विचारयन् पूर्वं जडं निरस्यति इति आशयेन पूर्वपक्षं दर्शयन्ति **ननु** इत्यादिना. कुत्र सन्ति? इति अपेक्षायां तन्मन्त्रप्रतीकं प्रदर्शयन्ति **‘अरा’** इति. ‘‘**अराइव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः एषो अन्तश्चरते बहुधा जायमानः**’’ (मुण्डकोप.२।२।६) इत्यत्र नाडीसङ्घाताधिकरणत्वं शरीरधर्मत्वाद् जडधर्मः रथनाभिदृष्टान्तः. तथा ‘‘**यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य एष महिमा भुवि दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्नि आत्मा प्रतिष्ठितः**’’ इत्यत्र ‘‘**पुरमिव पुरम्**’’ इति ‘पुर’पद-बोधितो भूमिष्ठमहिमवत्त्वं शरीरधर्मः तथा मनोमयः प्राणशरीरनेता इत्यत्र मनोमयत्वं विकारधर्मः **इत्यादि** ‘इत्यादि’पदेन ‘‘**हिरण्मये परे कोशः**’’(मुण्डकोप.२।२।७) इत्यादिमन्त्रोक्तानां शुभ्रत्वप्रकाशाभावादीनां संग्रहः. ‘आत्म’-‘सर्वज्ञा’दिशब्दाः चेतनधर्मबोधकाः पुरुष-निरूपकाः. **तस्मात्** प्रकृतिपुरुषबोधकशब्दसत्त्वात्. ननु अस्य प्रकरणस्य अदृश्यत्वा-धिकरणे ब्रह्मपरतायाः व्युत्पादितत्वात् सिद्धे तथात्वे पुनः किमर्थो अयं प्रयासः इत्यतः आहुः **निर्णीतम्** इत्यादि. यद्यपि तत्र तथा निर्णीतं तथापि तत्र अन्तरात्मत्वेन आधेयतया ब्रह्म

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इदम् अधिकरणं प्रधानपरम् इति साङ्ख्यमतं दूषयितुं तन्मतानुसारेण पूर्वपक्षं दर्शयन्ति **ननु** इत्यादि. **अरा इवे**ति. ‘‘**अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः स एषो अन्तश्चरते बहुधा जायमानः**’’(तत्रैव२।२।६) इत्यत्र नाडी सङ्घातवत्त्वं शरीरनिष्ठो जडधर्मः. रथनाभिदृष्टान्तो जडदृष्टान्तः. **ब्रह्मपुरे** इति. ‘‘**य सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि, दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्नि आत्मा प्रतिष्ठितः**’’(तत्रैव१।१।९) इत्यत्र पुरमिव पुरम् इति ‘पुर’पदबोधितो दृष्टान्तो भूमिष्ठमहिमवत्त्वं शरीरधर्मः, एवं ‘‘**मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितो अन्ने हृदयं सन्निधाय. तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीराः आनन्दरूपम् अमृतं यद्विभाति**’’ (तत्रैव२।२।७) इत्यत्र मनोमयत्वं विकारधर्मः ‘आदि’पदेन ग्राह्यः. ‘आत्म’‘सर्वज्ञा’दिशब्दाः चेतनधर्मबोधकाः पुरुषप्रतिपादकाः. **तस्माद्** इति. प्रकृतिपुरुषबोधकपदानां सत्त्वात्.

प्रकृतिरेव भवितुम् अर्हति इति चेद्, **न, अनुमानं** तन्मतानुमापकं न भवति. कोऽपि शब्दो निःसन्दिग्धः तन्मतख्यापको नास्ति. ब्रह्मवादख्यापकास्तु बहवः सन्ति ‘आत्म’-‘सर्वज्ञानन्दरूपा’दिशब्दाः. अतः सन्दिग्धाः जडधर्मत्वेन प्रतीयमानापि ब्रह्मधर्माएव इति युक्तम्. न हि ब्रह्मवादः श्रुतिव्यतिरिक्ते सिद्धो अस्ति येन ब्रह्मधर्माभावो निश्चेतुं शक्येत. तस्मात् सर्वाधारत्वेन निरूप्यमाणः परमात्मैव, न प्रधानम् इति॥३॥

प्राणभृच्च॥४॥

ननु अस्ति निर्णायकं प्राणानाम् ओतत्ववचनम्. ‘‘**मनोमयः प्राणशरीरनेता**’’ (मुण्ड.उप.२।२।७) इति च. अतो जीवधर्माः केचन, जडधर्माश्च अपरे

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सिद्धं नतु आधारतयेति रथनाभ्यादिदृष्टान्तसहकृतात् नाडीसङ्घाताधारत्वादिरूपाद् जडधर्माद् आधारभूते अक्षरे प्रकृतिरूपतायाः पुनः उज्जीवनं सम्भवतीति विशिष्टाद्वैतमेव भवेद् नतु शुद्धब्रह्मवादइति तन्निराशाय प्रयासः इति अर्थः. सिद्धान्तम् आहुः **अनुमानम्** इति. तथाहि. इदं प्रकरणं सांख्यमतमूलीभूतं, तदसाधारणधर्मबोधकशब्दवत्त्वाद् इति अनुमानप्रकारः. सः न सम्भवति. तत्र हेतुः **कोऽपि** इत्यादि. ननु मास्तु सांख्यमतसिद्धिः सन्दिग्धशब्दैः मतान्तरमेव सिध्यताम् इत्यतः आह **नहि** इत्यादि. किं तन्मतान्तरं ब्रह्मबोधकम् अन्यद् वा? यदि आद्यः पक्षः तदातु श्रुत्येकसिद्धत्वाद् ब्रह्मवादस्यैव सिद्धिः. यदि अन्यः तदातु आत्मसर्वज्ञत्वानन्दरूपत्वादीनां ब्रह्मधर्मत्वाभावसाधकं हेत्वन्तरं मृग्यं येन श्रुतिसिद्धो ब्रह्मवादो न भवेद् इति अर्थः॥३॥

निर्णायकं सांख्यमतनिर्णायकम्. **मनोमयः** इत्यादि. ‘‘**मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोन्नेता. हृदयं सन्निधाय तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीराः आनन्दरूपम् अमृतं यद् विभाति**’’ (मुण्डकोप.२।२।७) इत्यनेन प्राणशरीरनेतृत्वम् उक्तम्. **जडधर्माः** प्राणादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सिद्धान्तम् आहुः **न अनुमानम्** इति. इदं प्रकरणं साङ्ख्यमतमूलभूतम्, तदसाधारणधर्मबोधकशब्दवत्त्वाद्, इति अनुमानं साङ्ख्यमतानुमापकं न भवति इति अर्थः. तत्र हेतुम् आहुः **कोऽपि** इत्यादि. अन्यत् स्पष्टम् ॥ ३ ॥

जीवनिराकरणाय पूर्वपक्षं दर्शयन्ति **ननु** इत्यादि. **निर्णायकम्.** साङ्ख्यमतनिर्णायकम्. सिद्धान्तम् आहुः **न** इत्यादि. **पृथग्योगकरणम्** इति. सूत्रपृथक्करणं न शब्दयोगकरणं च उत्तरसूत्रेषु अन्वयार्थम् इति अर्थः ॥४॥

सर्वज्ञत्वादयोऽपि योगप्रभावाद् जीवधर्मा इति. तस्माद् जडजीवविशिष्टः सांख्यवादएव युक्तः इति चेद्, न. **प्राणभृद्** जीवो न सम्भवति, अतच्छब्दादेव. न हि आनन्दामृतरूपः सः भवितुम् अर्हति तन्मते. पृथग्योगकरणम् उत्तरार्थम्।।४।।

भेदव्यपदेशात्।।५।।

विशेषहेतुम् आह **''तमेव एकं जानथ''** (मुण्ड.उप.६।२।५) इति कर्मकर्तृभावः प्रतीयते. अतो **भेदव्यपदेशाद्** न प्राणभृद् जीवः।।५।।

प्रकरणात्।।६।।

जीव-जडसाधारणनिराकरणाय विशेषहेतुम् आह. प्रकरणं हि इदं ब्रह्मणः. **''ब्रह्मा देवानाम्''** इति आरम्भे **''सः ब्रह्मविद्याम्''**(मुण्डकोप.१।१।१) इति **''तेषामेव एतां ब्रह्मविद्याम्''**(तत्रैव१।१।१) इत्यन्ते च. ब्रह्मविद्याया एव प्रकरणित्वम् अवगम्यते. **''ब्रह्मैवेदम् अमृतं पुरस्ताद्''**(तत्रैव२।२।११) इत्यादिभिः विस्पष्टं ब्रह्मवादः प्रतीयते।।६।।

स्थित्यदनाभ्यां च।।७।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

जीवधर्माः नेतृत्वादयः. **अतच्छब्दात्** सांख्यमतस्थापकासाधारणधर्मबोधकशब्दस्य श्रुतौ अभावात्. **सः** जीवः. **तन्मते** इति तन्मते आनन्दस्य प्रकृतिधर्मत्वेन जीवधर्मत्वानङ्गीकाराद् इति अर्थः. **पृथग्योगकरणम्** एतत्सूत्रस्य पूर्वसूत्राद् विभागकरणम्. **उत्तरार्थम्** उत्तरसूत्रार्थे अन्वयार्थम्।।४।।

कर्मभावो ब्रह्मणि, कर्तृभावो जीवे अतो हेतोः इति अर्थः।।५।।

जीवेत्यादि. अत्र 'साधारण'-'निराकरण'पदयोः आदौ कर्मधारयः, तदनन्तरं 'जीव'-'जड'पदाभ्यां षष्ठीतत्पुरुषो अवसेयः।।६।।

सर्वस्य श्रुतिस्थ-'सर्वब्रह्म'पदस्य. **अन्यथाभावशङ्कया** चतुर्मुखपरतया वा

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

कर्मकर्तृभावः इति. ईश्वरविषयकज्ञानवान् जीवः इति कर्मकर्तृभावः मन्त्रे प्रतीयते इति अर्थः ।।५।।

जीवजडसाधारणेति. **''तमेव एकम्''** (मुण्ड.उप.२।२।५) इत्यत्र 'एव'-कारस्यापि अर्थकत्वे ततोऽपि मुख्यम् आत्मानं जानथ इति अर्थकरणे जडजीव-साधारणत्वं तन्निराकरणाय इति अर्थः ।।६।।

अन्यथाभावशङ्क्य इति. 'ब्रह्म'पदस्य जीवसाधारण्यात् सर्वस्यापि

सर्वस्यापि अन्यथाभावशङ्कया विशेषहेतुम् आह **''द्वा सुपर्णा''** (मुण्ड.उप.३।१।१) इति वाक्ये **''अनश्नन् अन्यो अभिचाकशीति''** (तत्रैव ३।१।१) इति केवलस्थितिः परमात्मनः, कर्मफलभोगो जीवस्य. अतः **स्थित्यदनाभ्यां** जीवपरमात्मानावेव मध्ये परामृष्टौ. न हि साङ्ख्यमतम् एतादृशं भवति. अतो अस्य वैशेषिकोपपत्तेः विद्यमानत्वात् प्रातिलोम्येन सर्वा उपपत्तयो दृढा इति द्युभ्वाद्यायतनं भगवानेव इति सिद्धम्. यद्यपि पैङ्ग्युपनिषदि **''द्वा सुपर्णा''** इति अस्य अन्यथाव्याख्यानं प्रतिभाति, तद् ऋचा प्रदेशविशेषे अन्यथा व्याख्यानं न दोषाय. तस्मात् सत्त्वक्षेत्रज्ञौ जीवब्रह्माणौ व्याख्येयौ।।७।।

इति प्रथमाध्याये तृतीयपादे प्रथमं द्युभ्वाद्यधिकरणम्।।१।।

भूमा सम्प्रसादाद् अध्युपदेशात् ।।८।। (१।३।२)

इदं श्रूयते. **''यो वै भूमा तत् सुखम्''** (छान्दो.उप.७।२३।१) इति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अब्रह्मपरत्वशङ्कया. **विशेषहेतुम्** अब्रह्मव्यावृत्तिहेतुम् **''अनश्नन् अभिचाकशीति''** (मुण्डकोप.३।१।१) इतिरूपम् इति अर्थः. **प्रातिलोम्येन** इत्यादि. स्थित्यदनयोः जीव-ब्रह्मप्रकरणबलाधायकत्वं तस्य च पूर्वश्रुत्युक्तहेतुबलाधायकत्वम् एवं प्रातिलोम्येन इति अर्थः. ननु न दृढाः **''द्वा सुपर्णा''** इतिमन्त्रस्य पैङ्गिरहस्यब्राह्मणे सत्त्वक्षेत्रज्ञपरत्वेन व्याख्यानाद् इत्यतः आहुः **यद्यपि** इत्यादि. **जीवब्रह्माणौ** व्यष्टिसमष्टिजीवौ इति अर्थः।।७।।

श्रूयते इति छान्दोग्ये नवमप्रपाठके सनत्कुमारनारदसंवादे श्रूयते. संशयम्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

प्रकरणस्य जीवपरत्वशङ्कया इति अर्थः. **यद्यपि** इति. **पैङ्ग्युपनिषदि** पैङ्गिरहस्यब्राह्मणे. अन्यथाव्याख्यानम् इति. सत्त्वक्षेत्रज्ञपरत्वेन व्याख्यानम् इति अर्थः।।७।।

''**अथ तमेव एकं जानथ**''(मुण्ड.उप.२। २।५) इत्यादिना ज्ञानमार्गे शरधनुर्न्यायेन उपासनं बोधितम्, भक्तिमार्गे आनन्दस्यैव प्राधान्यात् तथोपासनं बोधयितुं भूमाधिकरणम् आरभन्ते **भूमासम्प्रसादादध्युपदेशात्.** विषयवाक्यम् उपन्यस्यन्ति **इदं श्रूयते** इति. छान्दोग्ये सप्तमप्रपाठके श्रूयते. अथ विषयवाक्यम्.

ॐ अधीहि भगव इति ह उपससाद सनत्कुमारं नारदः तं होवाच यद्वेत्थ तेन मा उपसीद ततस्त उर्ध्वं वक्ष्यामीति ।।१।। स ह उवाच ऋग्वेदं भगवो अध्येमि यजुर्वेदं सामवेदम् आथर्वणं चतुर्थम् इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां

वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यम् एकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्याम् एतद् भगवो अध्येमि ।।२।। सो अहं भगवो मन्त्रविदेव अस्मि न अत्मवित् श्रुतं ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यः तरति शोकम् आत्मविद् इति सो अहं भगवः शोचामि तं मा भगवान् शोकस्य पारं तारयतु इति तं होवाच यद्वै किञ्च एतद् अध्यगीष्ठा नामैव एतत् ।।३।। नाम वा ऋगवेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशिर्दैवो निधिर्वाकोवाक्यम् एकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्या सर्पदेवजनविद्या नामैव एतद् नाम उपास्वेति ।।४।। स यो नाम ब्रह्म इत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्र अस्य यथाकामचारो भवति यो नाम ब्रह्म इत्युपास्ते अस्ति भगवो नाम्नो भूयो इति नाम्नो वाव भूयो अस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति ।।५।। इति प्रथमः खण्डः ।।१।।

वाग्वाव नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदं सामवेदम् आथर्वणं चतुर्थम् इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यम् एकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं च आकाशं चापश्च तेजश्च देवांश्च मनुष्यांश्च पशूंश्च वयांसि च तृणवनस्पतीञ्छ्वापदानि आकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं च यद्वै वाङ्नाभविष्यन्न धर्मो नाधर्मो व्यज्ञापिष्यन्न सत्यं नानृतं न साधु नासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेव एतत् सर्वं विज्ञापयति वाचम् उपास्वेति ।।१।। स यो वाचं ब्रह्म इति उपास्ते यावद् वाचो गतं तत्र अस्य यथाकामचारो भवति यो वाचं ब्रह्म इति उपास्ते अस्ति भगवो वाचो भूय इति वाचो वाव भूयो अस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीतु इति ।।२।। इति द्वितीयः खण्डः ।।२।।

मनो वाव वाचो भूयो यथा वै द्वे वामलके द्वे वा कोले द्वौ वाक्षौ मुष्टिः अनुभवति एवं वाचं च नाम च मनो अनुभवति स यदा मनसा मनस्यति मन्त्रान् अधीयीय इति अथ अधीते कर्माणी कुर्वीत इत्यथ कुरुते पुत्रांश्च पशूंश्च इच्छेय इत्यथ इच्छत इमं च लोकम् अमुं च इच्छेय इत्यथ इच्छते मनो ह्यात्मा मनो हि लोको मनो हि ब्रह्म मन उपास्वेति।।१।। स यो मनो ब्रह्म इति उपास्ते अस्ति यावन् मनसो गतं तत्र अस्य यथाकामचारो भवति यो मनो ब्रह्म इति

उपास्ते अस्ति भगवो मनसो भूय इति मनसो वाव भूयो अस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीतु इति।।२।। इति तृतीयः खण्डः।।३।।

सङ्कल्पो वाव मनसो भूयान् यदा वै सङ्कल्पयते अथ मनस्यथ वाचम् ईरयति तामु नाम्नि ईरयति नाम्नी मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि।।१।। तानि ह वा एतानि सङ्कल्पैकायनानि सङ्कल्पात्मकानि सङ्कल्पे प्रतिष्ठितानि समक्लृपतां द्यावापृथिवी समकल्पेतां वायुश्चाकाशं च समकल्पन्ताम् आपश्च तेजश्च तेषां सङ्क्लृप्त्यै वर्षं सङ्कल्पते वर्षस्य सङ्क्लृप्त्या अन्नं सङ्कल्पते अन्नस्य सङ्क्लृप्त्यै प्राणाः सङ्कल्पन्ते प्राणानां सङ्क्लृप्त्यै मन्त्राः सङ्कल्पन्ते मन्त्राणां सङ्क्लृप्त्यै कर्माणि सङ्कल्पन्ते कर्मणां सङ्क्लृप्त्यै लोकः सङ्कल्पते लोकस्य सङ्क्लृप्त्यै सर्वं सङ्कल्पते स एष सङ्कल्पः सङ्कल्पमुपास्वेति।।२।। स यः सङ्कल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते क्लृप्तान्वै स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितो अव्यथमानान् अव्यथमानो अभिसिध्यति यावत्सङ्कल्पस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः सङ्कल्पं ब्रह्म इति उपास्ते अस्ति भगवः सङ्कल्पाद् भूय इति सङ्कल्पाद्वाव भूयो अस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीतु इति।।३।। इति चतुर्थः खण्डः।।४।।

चित्तं वाव सङ्कल्पाद् भूयो यदा वै चेतयते अथ सङ्कल्पयते अथ मनस्यति अथ वाचम् ईरयति तामु नाम्नि ईरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि।।१।। तानि ह वा एतानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि चित्ते प्रतिष्ठितानि तस्माद् यद्यपि बहुविद् अचित्तो भवति न अयम् अस्ति इत्येव एनम् आहुः यद् अयं वेद यद्वा अयं विद्वान् नेत्थम् अचित्तः स्याद् इत्यथ यदि अल्पवित् चित्तवान् भवति तस्मा एव उत शुश्रूषन्ते चितं ह्येव एषाम् एकायनं चित्तम् आत्मा चित्तं प्रतिष्ठा चित्तम् उपास्व इति।।२।। स यश्चित्तं ब्रह्म इति उपास्ते चित्तान्वै स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितो अव्यथमानान् अव्यथमानो अभिसिद्ध्यति यावच्चित्तस्य गतं तत्र अस्य यथाकामचारो भवति यश्चित्तं ब्रह्म इति उपास्ते अस्ति भगवः चित्ताद् भूय इति चित्ताद् वावभूयो अस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीतु इति।।३।। इति पञ्चमः खण्डः।।५।।

ध्यानं वाव चित्ताद् भूयो ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीव अन्तरिक्षं ध्यायतीव द्यौर्ध्यायन्तीव आपो ध्यायन्तीव पर्वता ध्यान्तीव देवमनुष्याः तस्माद् य इह मनुष्याणां महत्तां प्राप्नुवन्ति ध्यानापादांशा इवैव ते भवन्ति अथ

ये अल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनः ते अथ ये प्रभवो ध्यानापादांशा इवैव ते भवन्ति ध्यानम् उपास्व इति।।१।। स यो ध्यानं ब्रह्म इति उपास्ते यावद् ध्यानस्य गतं तत्र अस्य यथाकामचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्म इति उपास्ते अस्ति भगवो ध्यानाद् भूय इति ध्यानाद्वाव भूयो अस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीतु इति।।६।। इति षष्ठः खण्डः।।६।।

विज्ञानं वाव ध्यानाद् भूयो विज्ञानेन वा ऋगवेदं विजानाति यजुर्वेदं सामवेदम् आथर्वणं चतुर्थम् इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यम् एकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवांश्च मनुष्यांश्च पशूंश्च वयांसि च तृणवनस्पतीच्छ्वापदानि आकीट–पतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु च चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं चान्नं च रसं च इमं च लोकम् अमुं च विज्ञानेनैव विजानाति विज्ञानम् उपास्व इति।।१।। स यो विज्ञानं ब्रह्म इति उपास्ते विज्ञानवतो वै स लोकान् ज्ञानवतो अभिसिद्ध्यति यावद् विज्ञानस्य गतं तत्र अस्य यथाकामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्म इति उपास्ते अस्ति भगवो विज्ञानाद् भूय इति विज्ञानाद् वाव भूयो अस्तीति तद् मे भगवान् ब्रवीतु इति।।२।। इति सप्तमः खण्डः।।७।।

बलं वाव विज्ञानाद् भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवताम् एको बलवान् आकम्पयते स यदा बली भवति अथ उत्थाता भवति उत्तिष्ठन् परिचरिता भवति परिचरन् उपसत्ता भवति उपसीदन् द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवति बलेन वै पृथिवी तिष्ठति बलेन अन्तरिक्षं बलेन द्यौर्बलेन पर्वता बलेन देवमनुष्या बलेन पशवश्च वयांसि च तृणवनस्पतयः श्वापदानि आकीटपतङ्ग–पिपीलकं बलेन लोकः तिष्ठति बलम् उपास्व इति।।१।। स यो बलं ब्रह्म इति उपास्ते यावद् बलस्य गतं तत्र अस्य यथाकामचारो भवति यो बलं ब्रह्म इति उपास्ते अस्ति भगवो बलाद् भूय इति बलाद्वाव भूयो अस्तीति तद् मे भगवान् ब्रवीतु इति।।२।। इति अष्टमः खण्डः।।८।।

अन्नं वाव बलाद् भूयः तस्माद् यद्यपि दशरात्रीः न अश्नीयाद् यदि उह जीवेद् अथवा अद्रष्टा अश्रोता अमन्ता अबोद्धा अकर्ता अविज्ञाता भवति अथा अन्नस्य आस्ये द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति

कर्ता भवति विज्ञाता भवति अन्नम् उपास्व इति।।१।। सो यो अन्नं ब्रह्म इति उपास्ते अन्नवतो वै स लोकान् पानवतो अभिसिद्ध्यति यावद् अन्नस्य गतं तत्र अस्य यथाकामचारो भवति यो अन्नं ब्रह्म इति उपास्ते अस्ति भगवो अन्नाद् भूय इति अन्नाद् वाव भूयो अस्तीति तद् मे भगवान् ब्रवीतु इति।।२।। इति नवमः खण्डः।।९।।

आपो वाव अन्नाद् भूयः तस्माद् यदा सुवृष्टिर्न भवति व्याधीयन्ते प्राणा अन्नं कनीयो भविष्यतीत्यथ यदा सुवृष्टि भवति आनन्दिनः प्राणा भवन्ति अन्नं बहु भविष्यतीति आप एव इमा मूर्ता येयं पृथिवी यदन्तरिक्षं यद् द्यौर्यत्पर्वता यद्देवमनुष्या यत्पशवश्च वयांसि च तृणवनस्पतयः स्वापदानि आकीटपतङ्गपिपीलकम् आप एव इमा मूर्ता अप उपास्व इति।।१।। स यो अपो ब्रह्म इति उपास्त आप्नोति सर्वान् कामान् तृप्तिमान् भवति यावद् अपां गतं तत्र अस्य यथाकामचारो भवति यो अपो ब्रह्म इति उपास्ते अस्ति भगवो अद्भ्यो भूय इति अद्भ्यो वा भूयो अस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीतु इति।।२।। इति दशमः खण्डः।।१०।।

तेजो वाव अद्भ्यो भूयः तद्वा एतद् वायुम् आगृह्य आकाशम् अभितपति तद् आहुः निशोचति निपतति वर्षिष्यति वा इति तेजएव तत्पूर्वं दर्शयित्व अथ आपः सृजते तदेतद् ऊर्ध्वाभिश्च तिरश्चीभिश्च विद्युद्भिः आह्लादाः चरन्ति तस्माद् आहुः विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा इति तेजएव तत्पूर्वं दर्शयित्वा अथ आपः सृजते तेज उपास्व इति।।१।। स यः तेजो ब्रह्म इति त्रपास्ते तेजस्वी वै स तेजस्वतो लोकान् भास्वतो अपहततमस्कान् अभिसिद्ध्यति यावत् तेजसो गतं यत्र अस्य यथाकामचारो भवति यः तेजो ब्रह्म इति उपास्ते अस्ति भगवः तेजसो भूय इति तेजसो वाव भूयो अस्तीति तद् मे भगवान् ब्रवीतु इति।।२।। इति एकादशः खण्डः।।११।।

आकाशो वाव तेजसो भूयान् आकाशे वै सूर्याचन्द्रमसौ उभौ विद्युन्नक्षत्राणि अग्निराकाशेन आह्वयति आकाशेन श्रुणोति आकाशेन प्रतिश्रुणोति आकाशेन रमत आकाशेन रमत आकाशे जायत आकाशम् अभिजायत आकाशम् उपास्व इति ।।१।। स य आकाशं ब्रह्म इति उपास्त आकाशवतो वै स लोकान् प्रकाशवतो असम्बाधान् उरुगायवतो अभिसिद्ध्यति यावद् आकाशस्य गतं तत्र अस्य यथाकामचारो भवति य आकाशं ब्रह्म इति उपास्ते अस्ति भगव आकाशाद् भूय इति आकाशाद् वाव

भूयो अस्तीति तद् मे भगवान् ब्रवीतु इति।।२।। इति द्वादशः खण्डः।।१२।।

स्मरो वाव आकाशाद् भूयः तस्माद् यद्यपि बहव आसीरन् अस्मरन्तो नैव ते कञ्चन शृणुयुर्न मन्वीरन्न विजानीरन् यदा वाव ते स्मरेयुः अथ शृणुयुः अथ मन्वीरन् अथ विजानीरन् स्मरेण वै पुत्रान् विजानाति स्मरेण पशून् स्मरम् उपास्व इति।।१।। स यः स्मरं ब्रह्म इति उपास्ते यावत् स्मरस्य गतं तत्र अस्य यथाकामचारो भवति यः स्मरं ब्रह्म इति उपास्ते अस्ति भगवः स्मराद् भूय इति स्मराद् वाव भूयो अस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीतु इति।।२।। इति त्रयोदशः खण्डः।।१३।।

आशा वाव स्मराद् भूयसी आशेद्धो वै स्मरो मन्त्रान् अधीते कर्माणि कुरुते पुत्रांश्च पशूंश्चेच्छत इमं च लोकम् अमुं च इच्छत आशाम् उपास्व इति।।१।। सय आशां ब्रह्म इति उपास्त आशया अस्य सर्वे कामाः समृद्ध्यन्ति अमोघा हास्याशिषो भवन्ति यावदाशाया गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आशां ब्रह्म इति उपास्ते अस्ति भगव आशाया भूय इति आशाया वाव भूयो अस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीतु इति।।२।।इति चतुर्दशः खण्डः।।१४।।

प्राणो वा आशाया भूयान् यथा वा अरा नाभौ समर्पिता एवम् अस्मिन् प्राणे सर्वं समर्पितं प्राणः प्राणेन याति प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राणः आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः।।१।। स यदि पितरं वा मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं वा आचार्यं वा ब्राह्मणं वा किञ्चिद् भृशमिव प्रत्याह धिक्त्वा अस्तु इत्येव एनम् आहुः पितृहा वै त्वमसि मातृहा वै त्वमसि भ्रातृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमसि आचार्यहा वै त्वमसि ब्राह्मणहा वै त्वमसि इति।।२।। अथ यद्यपि एनान् उत्क्रान्तप्राणान् शूलेन समासं व्यतिषं दहेद् नैव एनं ब्रूयुः पितृहा असीति न मातृहा असीति न भ्रातृहा असीति न स्वसृहा असीति न आचार्यहा असीति न ब्राह्मणहा असीति।।३।। प्राणो ह्येव एतानि सर्वाणि भवति स वा एष एवं पश्यन् एवं मन्वान एवं विजानन् अतिवादी भवति तं चेद् ब्रूयुः अतिवादी असि इति अतिवादी अस्मीति ब्रूयाद् न अपह्नुवीत।।४।। इति पञ्चदशः खण्डः।।१५।।

एष तु वा अतिवदति यः सत्येन अतिवदति सो अहं भगवः सत्येन अतिवदानीति सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यम् इति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति।।१।। इति षोडशः खण्डः।।१६।।

यदा वै विजानाति अथ सत्यं वदति न अविजानन् सत्यं वदति विजानन्नेवं सत्यं वदति विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यम् इति विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति ।।१।। इति सप्तदशः खण्डः।।१७।।

यदा वै मनुते अथ विजानाति न अमत्वा विजानाति मत्वैव विजानाति मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति मतिं भगवो विजिज्ञास इति।।१।। इति अष्टादशः खण्डः।।१८।।

यदा वै श्रद्दधाति अथ मनुते न अश्रद्दधद् मनुते श्रद्दधदेव मनुते श्रद्धा त्वेव विजिज्ञासितव्येति श्रद्धां भगवो विजिज्ञास इति।।१।। इति एकोनविंशः खण्डः।।१९।।

यदा वै निस्तिष्ठति अथ श्रद्दधाति न अनिस्तिष्टन् श्रद्दधाति निस्तिष्ठन्नेव श्रद्दधाति निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्येति निष्ठां भगवो विजिज्ञास।।१।। इति विंशः खण्डः।।२०।।

यदा वै करोति अथ निस्तिष्ठति न अकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वैव निस्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति कृतिं भगवो विजिज्ञास इति।।१।। इति एकविंशः खण्डः।।२१।।

यदा वै सुखं लभते अथ करोति न असुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यम् इति सुखं भगवो विजिज्ञास इति ।।१।। इति द्वाविंशः खण्डः।।२२।।

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखम् अस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति।।१।। इति त्रयोविंशः खण्डः।।२३।।

यत्र नान्यत् पश्यति नान्यत् श्रुणोति नान्यद् विजानाति स भूमा अथ यत्र अन्यत् पश्यति अन्यत् श्रुणोति अन्यद् विजानाति तद् अल्पं यो वै भूमा तद् अमृतम् अथ यद् अल्पं तन् मर्त्यं स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति।।१।। गोअश्वमिह महिमा इति आचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्यं क्षेत्राणि आयतनानीति नाहम एवं ब्रवीमि ब्रवीमीति ह उवाच अन्यो हि अन्यस्मिन् प्रतिष्ठित इति।।२।। इति चतुर्विंशः खण्डः।।२४।।

सएव अधस्तात् स उपरिष्टात् स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स एव इदं सर्वम् इति अथा अतो अहङ्कारादेश एव अहमेव अधस्ताद् अहम् उपरिष्टाद् अहं पश्चाद् अहं पुरस्ताद् अहं दक्षिणतो अहम् उत्तरतो

अहमेव इदं सर्वम् इति।।१।। अथात आत्मादेश एव आत्मैव अधस्ताद् आत्मा उपरिष्टाद् आत्मा पश्चाद् आत्मा पुरस्ताद् आत्मा दक्षिणत आत्म उत्तरत आत्मैव इदं सर्वम् इति स वा एष एवं पश्यन् एवं मन्वान एवं विजानन् आत्मरतिः आत्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति. अथ ये अन्यथा अतो विदुः अन्यराजानः ते क्षय्यलोका भवन्ति तेषां सर्वेषु लोकेषु अकामचारो भवति।।२।। इति पञ्चविंशः खण्डः।।२५।।

तस्य ह वा एतस्य एवं पश्यत एवं मन्वानस्य एवं विजानत आत्मतः प्राण आत्मत आशा आत्मतः स्मर आत्मत आकाश आत्मतः तेज आत्मत आप आत्मत आविर्भावतिरोभावौ आत्मतो अन्नम् आत्मतो बलम् आत्मतो विज्ञानम् आत्मतो ध्यानम् आत्मतः चित्तम् आत्मतः सङ्कल्प आत्मतो मन आत्मतो वाग् आत्मतो नाम आत्मतो मन्त्रा आत्मतः कर्माणि आत्मत एव इदं सर्वम् इति।।। १।। तदेष श्लोको न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखतां सर्वं ह पश्यः पश्यति सर्वम् अप्नोति सर्वशः इति स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादश स्मृतः शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विंशतिः आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः तस्मै मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारः तं स्कन्द इति आचक्षते तं स्कन्द इति आचक्षते।।२६।। इति षड्विंशः खण्डः।।।इति सप्तमः प्रपाठकः।।७।।

तत्र इयम् आख्यापिका सनत्कुमार–नारद–संवादरूपा. उपनिषदे ‘सनत्कुमार’ इति छान्दसः प्रयोगः सनत्कुमारं प्रति नारदेन प्रश्नः कृतः वेदादिसर्वविद्याध्ययनं मया कृतं मन्त्रविदेव अस्मि न आत्मवित् तरति शोकम् आत्मविदिति शोकस्य पारं तारयतु भवान्. अनन्तरं सनत्कुमारेण ‘‘ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामि’’ इति प्रतिज्ञां कृत्वा वेदादीनां भूमत्वम् उक्त्वा तत्रैव ब्रह्मोपासनम् उक्तम्. तदनन्तरं ‘‘वाग्वाव नाम्नो भूयसि’’इत्यादिना तदपेक्षया वाचः भूयस्त्वम् उक्तं, वागपेक्षया मनसः, तदपेक्षया सङ्कल्पस्य, तदपेक्षया चित्तस्य, चित्ताद् ध्यानस्य भूयस्त्वं, ध्यानाद् विज्ञानस्य, विज्ञानाद् बलस्य, तस्माद् अन्नस्य, तस्माद् जलस्य, तस्मात् तेजसः, तस्माद् आकाशस्य, तस्मात् स्मरस्य, तस्माद् आशायाः, तस्याः प्राणस्य भूयस्त्वम् उक्तम्. नारदेन प्राणाद् अधिकं किञ्चिद् नास्ति इति ज्ञात्वा प्रश्नो न कृतः. पश्चात् सनत्कुमारेण प्रश्नम् अकृत्वैव सत्यस्य भूयस्त्वम्

सुखलक्षणम् उक्त्वा भूम्नो लक्षणम् आह. ‘‘**यत्र नान्यत् पश्यति नान्यत् शृणोति, नान्यद् विजानाति स भूमा**’’ (तत्रैव ७।२४।१) इति. तत्र संशयः. भूमा बाहुल्यम् आहोस्वित् ब्रह्म? इति. तत्र प्रपाठकारम्भे, ‘‘**ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामि**’’ (तत्रैव ७।१।१) इति प्रतिज्ञातत्वाद् वेदादीनां नामत्वम् उक्त्वा ततो भूयस्त्वं वागादीनां प्राणपर्यन्तानाम् उक्त्वा मुख्यप्राणविद्याया अवरब्रह्मविद्यात्वख्यापनाय अर्धप्रपाठकं समाप्य ततोऽपि विज्ञानादीनाम् अन्तरङ्गाणां सुखान्तानां भूयस्त्वम् उक्त्वा सुखस्य फलत्वात् तस्यैव भूयस्त्वं वदति. यद्यपि ‘‘**तरति शोकम् आत्मवित्**’’(तत्रैव ७।१।३) इति नारदप्रश्नाद् भूम्नो ब्रह्मत्वं प्रकरणाद् वक्तुं शक्यते, तथापि तस्यैव ‘‘**अथात आत्मादेशः**’’ (तत्रैव७।२५।२) इति अहङ्कारादेशवद् आत्मादेशोऽपि अस्ति. तेन अब्रह्मत्वेऽपि प्रश्नसिद्धिः. तस्य सुखबाहुल्यस्य स्वे महिम्नि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उपपादयन्ति **तत्र** इत्यारभ्य **वदति** इत्यन्तेन. **समाप्य** एकार्थनिर्णयार्थं समाप्य इति अर्थः. **भूयस्त्वं वदति** इत्यनेन भूयस्त्वकोटिः दृढीकृता.

पूर्वपक्षम् आहुः **यद्यपि** इत्यादिना. **तस्यैव** भूम्नएव. **तथापि** तस्यैव उपान्ते ‘‘**अथातो अहङ्कारादेशः**’’ (छान्दो.उप. ७।२५।१) इतिवद् ‘‘**अथात आत्मादेशः**’’ (तत्रैव ७।२५।२) इति आत्मादेशोऽपि अस्ति इत्यत्र अहङ्कारादेशे सर्वत्र विद्यमानत्वेन च भूयस्तया उक्तस्यापि अहङ्कारस्य तदुपहितस्य आत्मनो वा यथा न ब्रह्मत्वं तथा आत्मादेशे सर्वत्र विद्यमानत्वेन च भूयस्तया उक्तस्यापि अहङ्कारस्य तदुपहितस्य आत्मनो वा यथा न ब्रह्मत्वं तथा आत्मादेशे तथोक्तस्य केवलस्य आत्मनोऽपि न

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उक्तम्. तस्माद् विज्ञानस्य, तस्माद् मत्याः, तस्याः श्रद्धायाः निष्ठायाः, तस्याः कृतेः, तस्मात् सुखस्य, तस्माद् भूम्नः ‘‘यो वै भूमा तत् सुखम्’’ इति.

अथ भाष्यम्. संशयबीजम् आकारं च आहुः **तत्र प्रपाठके**ति **वदति** इत्यन्तम्. **वदति** इति. ‘‘यो वै भूमा तत् सुखम्’’ इत्यादिना ‘भूम’शब्दस्य सुखम् उपास्तौ पर्यवसायत्वभूयस्त्वरूपबाहुल्यं वाक्यार्थः इति प्रतीयते. ‘‘अथ यः सत्येन अतिवदति’’ इत्यादिना सत्यस्यैव ब्रह्मत्वं उक्तम् ‘‘**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**’’ (तैत्ति.उप. २।१।१) इति श्रुत्या ब्रह्मापि वाक्यार्थः इति प्रतिभाति. अत एवं संशयः इति भावः.

पूर्वपक्षम् आहुः **यद्यपि** इति. तेन अब्रह्मत्वेपि प्रश्नसिद्धिः इति. उपसंहारे ‘‘**अथात आत्मादेश एवात्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टाद्**’’ (छान्दो.उप.७।२५।२) इत्यादिना

प्रतिष्ठितत्वं सर्वतः पूर्णविषयलाभेऽपि भवति, सुषुप्तावपि इति तयोः अन्यतरद् ग्राह्यम्. तत्रापि अन्तरङ्गत्वात् सुषुप्तिरेव अत्र भूमत्वेन उच्यते, न सुखबाहुल्यम्. सुषुप्तिरूपमेव भूमा इत्येवं प्राप्ते उच्यते. **भूमा** भगवानेव. कुतः? **सम्प्रसादाद् अध्युपदेशात्.** सम्प्रसादः सुषुप्तिः. तस्माद् अधि आधिक्येन उपदेशात्. यद्यपि **''न अन्यत् पश्यति''**(तत्रैव७।२४।१) इत्यादि समानं तथापि **''स एव अधस्ताद्''** (तत्रैव७।२५।१) इत्यादिनातु ततोपि अधिकधर्माः उच्यन्ते. न हि सुषुप्तेः सर्वत्वादिधर्माः सम्भवन्ति. 'आत्म'शब्दश्च मुख्यतया परिगृहीतो भवति. 'भाव'शब्दस्यापि सर्वत्वाद् भगवति वृत्तिः अदोषः. तस्माद् भूमा भगवानेव।।८।।

धर्मोपपत्तेश्च।।९।।

''नान्यत् पश्यति''(छान्दो.उप.७।२४।१) इत्यादयोऽपि धर्माः ब्रह्मणि न विरुद्ध्यन्ते, **''स्वाप्ययसम्पत्त्योः अन्यतरापेक्षम् आविष्कृतं हि''** (ब्रह्मसू.४।४।१६) इति न्यायेन. **''यत्र हि द्वैतमिव भवति''**(बृहदा.उप.४।५।१५) इत्यादि श्रुत्या उभयत्र आम्नानाद्. अन्यादर्शनादयो भगवति न विरुद्ध्यन्ते.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ब्रह्मत्वम्. **पूर्णविषये**त्यादि. तथाच उत्कृष्टसाधनादिसम्पन्ने तादृशे जीवेऽपि स्वे महिम्नि प्रतिष्ठितं सुखं सम्भवत्येव. एवं **सुषुप्तावपि** इति न ब्रह्मत्वनिर्णयः. **भावशब्दस्य** 'भूम'शब्दार्थस्य. **सर्वत्वात्** सर्वपदार्थत्वात्. **अदोषः** दोषरूपो न भवति इति अर्थः।।८।।

स्वाप्ययः सुषुप्तिः. **सम्पत्तिः**मोक्षः. एतद् **अन्यतरापेक्षं** भगवतः आविर्भावरूपम् आविष्करणम्. **उभयत्र** सुषुप्तिमोक्षयोः. **अन्यादर्शनादयः** न्यविषय-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

जीवपरत्वे आत्मविषयकनारदप्रश्नसिद्धिः इति अर्थः. **सुषुप्तिरूपमेव भूमा** इति. उपसंहारे **''यो वै भूमा तत्सुखं नाऽल्पे सुखम् अस्ति''** (छान्दो.उप.७।२३।१) इत्यादिना सुखबाहुल्यस्य वाक्यार्थत्वात् तस्य च सुषुप्तौ प्रतीयमानत्वात् सप्रसादएव वाक्यार्थः इति पूर्वपक्षाशयः इति अर्थः. सिद्धान्तम् आहुः **उच्यते** इति. **सम्प्रसादः** इति. सम्यक् प्रसादः अस्मिन् इति योगवृत्त्या सुषुप्तिः इति अर्थः. जीवात्मव्यावृत्तौ बीजम् आहुः **आत्मशब्दश्च** इति।।८।।

ननु **''यत्र नान्यत् पश्यति''** (छान्दो.उप.७।२४।१) इत्यादयो धर्माः ये भूम्नि श्रूयन्ते ते सुषुप्तावपि सन्ति इति कथं तद्व्यावृत्तिः? इति शङ्कायाम् उच्यते. **धर्मोपपत्तेश्च. उभयत्र आम्नानाद्** इति. **''सर्वम् आत्मैव अभूद्''** (बृहदा.उप.

‘**च**’कारात् फलं तस्यैव उपपद्यते इति आह. ‘‘**स वा एष एवं पश्यन्**’’ (छान्दो. उप.७।२५।२) इत्यादिना ‘‘**सहस्राणि च विंशतिः**’’(तत्रैव७।२६।२) इत्यन्तेन. तेन भूमा ब्रह्मैव इति सिद्धम्।।९।।

इति प्रथमाध्याये तृतियपादे द्वितीयं भूमाधिकरणम्।।२।।

अक्षरम् अम्बरान्तधृतेः।।१०।। (१।३।३)

गार्गीब्राह्मणे ‘‘**कस्मिन्नु खल्वाकाश ओतश्च प्रोतश्च**’’ इति. ‘‘**स होवाच एतद्वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्ति अस्थूलम् अनणु**’’ (बृहदा.उप.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

कादर्शनविषयत्वादयः उभयत्रापि ब्रह्मणएव विषयत्वाद् इति भावः. **तस्यैव** भेदाद्रष्टुरेव. तादृशस्य फलम् आहुः **स वा** इत्यादिना।।९।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

४।५।१५) इत्यादिना अन्यादर्शनादयो धर्माः परमात्मनि आम्नाताः. एवं यत्र ‘‘**नान्यत्पश्यति**’’ इत्यादिना भूम्नि अन्यादर्शनादयो धर्माः आम्नाताः इति उभयत्र आम्नात् यथा ‘परमात्म’पदवाच्ये भगवति धर्मोपपत्तिः एवं ‘भूम’शब्दवाच्ये भगवति धर्मोपपत्तिः. सम्प्रसादेतु धर्मोपपत्तिः नास्ति अनाम्नातत्वाद् इति भावः. अन्यादर्शनादयो भगवति न विरुध्यन्ते इत्यस्य उभयत्र आम्नानाद् इति पूर्वेण अन्वयः. एवं धर्मोपपत्तिम् उक्त्वा फलोपपत्तिम् आहुः **चकाराद्** इति. **इत्यन्तेन.** प्रपाठकान्तिमग्रन्थेन इति अर्थः. इतोऽपि अधिकं तृतीयाध्याये लिङ्गभूयस्त्वाधिकरणे वक्ष्ये. अनेन भूमाधिकरणेन भक्तिमार्गीयोपासनार्थं बहिः व्याप्तस्य आनन्दमयत्वम् उक्तम्।।९।।

अक्षराधिकरणम् आरचयन्ति **अक्षरमम्बरान्तधृतेः.** बृहदारण्ये तृतीयाध्याये गार्गिब्राह्मणे विषयवाक्यम् उदाहरन्ति. अथ विषयवाक्यम्.

> **अथ हैनं गार्गी वाचक्नवी पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदं सर्वम् अप्सु ओतं च प्रोतं च कस्मिन्नु खल्वाप ओताश्च प्रोताश्च इति वायौ गार्गीति कस्मिन्नु खलु वायुः ओतश्च प्रोतश्च इति अन्तरिक्षलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु अन्तरिक्षलोका ओताश्च प्रोताश्च इति गन्धर्वलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु गन्धर्वलोका ओताश्च प्रोताश्च इति आदित्यलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु आदित्यलोका ओताश्च प्रोताश्च इति चन्द्रलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु चन्द्रलोका ओताश्च प्रोताश्च इति नक्षत्रलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु नक्षत्रलोका ओताश्च प्रोताश्च इति देवलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु देवलोका ओताश्च प्रोताश्च इति इन्द्रलोकेषु गार्गीति**

३।८।७,८) इत्यादि श्रूयते. तत्र संशयः. किम् ‘अक्षर’शब्देन पदार्थान्तरं, ब्रह्म वा? इति. तत्र अचेतनसाधारण्याद् बाणतुल्यत्वाद् आकाशवद् अस्यापि अब्रह्मत्वमेव. द्युभ्वाद्यायतनविरोधस्तु तुल्यः. अतएव अगतार्थता अदृश्यत्वाद्यधिकरणेन. न हि तत्र विरुद्धधर्माः आशङ्क्य निराक्रियन्ते. अतो अचेतनतुल्यत्वाद् ब्रह्मवादस्य असमाप्तत्वाद् आग्रहाविष्टत्वात् प्रष्टुः स्त्रीत्वाच्च ‘‘**स्मरो**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पदार्थान्तरं जडजीवयोः अन्यतरत्. **अचेतनसाधारण्याद्** ओतप्रोतत्वादीनां विकारिधर्मत्वेन वर्णतुल्यतायाम् अयं हेतुः. **तुल्यः** एवमेव अवसेयः इति अर्थः. **अतएव** एतदधिकरणस्य पूर्वापेक्षया विषयभेदादेव. **अचेतनतुल्यत्वाद्** वर्णतुल्यतायाः सम्भवात्. **ब्रह्मवादस्य असमाप्तत्वाद्** ब्रह्मवादस्य आरुणिसंवादे असमाप्तत्वात्. **स्त्रीत्वाद्**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

कस्मिन्नु खलु इन्द्रलोका ओताश्च प्रोताश्च इति प्रजापतिलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु प्रजापतिलोका ओताश्च प्रोताश्च इति ब्रह्मलोकेषु गार्गीति कस्मिन्नु खलु ब्रह्मलोका ओताश्च प्रोताश्च इति स होवाच गार्गि मा अति प्राक्षीर्मा ते मूर्धा व्यपतद् अनतिप्रश्न्यां वै देवताम् अतिपृच्छसि गार्गि मातिप्राक्षीरिति ततो ह गार्गी वाचक्नवी उपरराम।।१।। (बृहदा.उप.३।६)

अथ भाष्यम्. **कस्मिन्नु खलु** इति. **पदार्थान्तरम्** इति. जडजीवरूपपदार्थान्तरम् इति अर्थः. क्वचिद् ओतत्वं प्रोतत्वं विकारित्वापादकतया जडलिङ्गम्. अमृताक्षरम् इति श्रुत्या क्वचिद् ‘अक्षर’पदस्य जीवे प्रसिद्धिः दृश्यते क्वचिद् ‘अक्षर’पदस्य प्रशासनकर्तरि ब्रह्मणि प्रसिद्धिः. एवं त्रिष्वपि लिङ्गस्य सद्भावाद् संशयः इति भावः. पूर्वपक्षम् आहुः. **तत्र** इति. **अचेतनसाधारण्याद्** इति. ओतप्रोततया विकारित्वेन अचेतनसाधारण्याद् इति अर्थः. **तुल्यः** इति. ‘‘**मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव**’’ (भग.गीता ७।७) इति स्मार्तदृष्टान्ताद् भारवाहत्वमेव गमयिष्यति इति द्युभ्वाद्यायतने यो भारवाहकत्वविरोधः, सः इहापि समानः इति अर्थः. **अतएव** अब्रह्मपरत्वादेव. ननु विषयभेदाभावाद् कथम् अगतार्थत्वम्? इत्यतः आह **न हि** इति. अत्रतु **निराक्रियन्ते** इति विषयभेदसद्भावः इति भावः. **अतः** इति. विषयभेदाद् इति अर्थः. **अचेतनतुल्यत्वाद्** इत्यस्य **अन्यतरपरिग्रहः** इत्यनेन अन्वयः. **ब्रह्मवादस्य** इति. आरुणिसंवादे अन्तर्यामिनिरूपणेनैव समाप्तत्वाद् इति भावः. आग्रहाविष्टत्वं स्त्रीत्वं च ब्रह्मविद्याश्रवणे अनधिकारित्वाद् आह **स्त्रीत्वाच्च** इति. **स्मरो वा व** इति. छान्दोग्ये

वा व आकाशाद् भूयान्’’ (छान्दो.उप.७।१३।१) इतिवत् कयाचिद् उपपत्त्या स्मरणकालभूतसूक्ष्मप्रकृतिजीवविशेषाणाम् अन्यतरपरिग्रहः इति वक्तव्यम् उपासनार्थम्. अत्र हि प्रापञ्चिकसर्वधर्मराहित्यं ब्रह्मधर्मत्वं च प्रतीयते. तदुपासनार्थत्वोपपद्येत. ब्रह्मपरिग्रहेतु वैयर्थ्यमेव, उपदेष्टृत्वाभावात्. तस्माद् अक्षरम् अन्यदेव ब्रह्मधर्मत्वेन उपास्यम् इति एवं प्राप्ते. उच्यते. **अक्षरं** परमात्मैव. कुतः? **अम्बरान्तधृतेः**. श्रुतिं व्याख्याय सिद्धं हेतुम् आह. अत्र एकएव प्रश्नः उत्तरं च एकम्. आकाशस्य अवान्तरत्वमेव. तेन अम्बरान्तानां पृथिव्यादीनां

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ब्रह्मविद्यानधिकारात्. **इतिवद्** इति. तथाच स्मरावेशवतो भासमानमपि स्मरे आकाशाद् भूयस्त्वं स्वप्रतीतिसिद्धमेव नतु वास्तवं तथा प्रकृतेऽपि अक्षरे आकाशापेक्षया प्रतिपाद्यमानोऽपि उत्कर्षः तादृशस्मरणकालएव स्वबुद्धिकल्पितो नतु वास्तवः इति उपपत्त्या. तथासति सिद्धम् आहुः **भूते**त्यादिकम् उपास्यम्. **परिग्रहः** अक्षरपदेन परिग्रहः. **तत्र** अक्षरे. **वैयर्थ्यमेव** सम्पूर्णवाक्यवैयर्थ्यमेव. तत्र हेतुः **उपदेष्टृत्वाभावाद्** इति श्रोतुः ब्रह्मविद्यानधिकाराद् वक्तुः उपदेष्टृत्वासम्भवाद् ब्रह्मवाक्यत्वोक्तौ वैयर्थ्यमेव स्याद् इति अर्थः. **अम्बरान्तधृतेः** इति हेतुः विषयवाक्याद् असिद्धोऽपि सर्वाधारत्वात् तात्पर्यसिद्धो बोध्यः. **एकः प्रश्नः** अनेकप्रश्नानां मध्ये आकाशस्यापि एकः. **उत्तरं** तथैव उत्तरमपि इति भावः. **अवान्तरत्वमेव** अनेकप्रश्नावान्तरः एकः आकाशस्यापि प्रश्नः इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सप्तमप्रपाठके सनत्कुमारनारदसंवादइव इति अर्थः. **कथञ्चिद्** इति. अश्नुते, न क्षरति इति वा योगेन इति अर्थः. **स्मरणे**ति. स्मरणादिप्रकृत्यन्तानाम् अचेतनानां जीवविशेषाणां वा उपासनार्थे परिग्रहः इति वक्तव्यम् इति अर्थः. **अत्र हि** इति. अक्षरे हि इति अर्थः. **उपदेष्टृत्वाभावाद्** इति. स्त्रीत्वात् श्रवणाधिकाराभावस्य उपपादितत्वाद् इति भावः. सिद्धान्तं व्याकुर्वन्ति. **उच्यते** इति. यद्यपि अम्बरान्तधृतेः इत्यस्य विषयवाक्ये पाठाभावाद् असिद्धो अयं हेतुः तथापि श्रुतितात्पर्यसिद्धत्वाद् अस्य इति आहुः **श्रुतिम्** इति. तात्पर्यसिद्धत्वं विशदयन्ति **अत्र एकः** इत्यादिना. अयम् आशयः. प्रथमब्राह्मणे ‘‘**यदिदं सर्वम् ओतं च प्रोतं च**’’ (बृहदा.उप.३।१) इत्यादिना ब्रह्मलोकपर्यन्तं पूर्वपूर्वस्य उत्तरोत्तरस्मिन् ओतप्रोतत्वं निरूप्य तदन्तरम् आरुणिसंवादोत्तरं पुनरपि गार्ग्या प्रश्नः कृतः, ‘‘**यद् ऊर्ध्वं याज्ञवल्क्य दिवो यद् अर्वाक् पृथिव्या**’’ (तत्रैव३।८।३) इत्यादि ‘‘**कस्मिन् तद् ओतं च प्रोतं च**’’ (तत्रैव) इति. तदनन्तरं याज्ञवल्क्येन आकाशः इति

विधारकः परमात्मैव. द्युभ्वाद्यायतनसिद्धो धर्मो अत्र हेतुः **‘‘न तदश्नोति कश्चन’’** (बृहदा.उफ.३।८।८) इति मुख्यतया परिगृहीतो भवति. अन्यथा मूर्ध्नो विपतनं च भवेत्. न हि अन्यः सर्वाधारो भवितुम् अर्हति. परोक्षेण ब्रह्मकथनार्थम् ‘अक्षर’पदं अन्यनिराकरणार्थं तद्धर्मोपदेशश्च. तस्माद् अक्षरं परमात्मैव।।१०।।

सा च प्रशासनात्।।११।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अर्थः. ननु सर्वभोग्या प्रकृतिरेव ‘अक्षर’पदवाच्या अस्तु इत्यतः आहुः **अन्यथा** इत्यादि. **अन्यथा** अनधिकारे. तथाच अधिकारानर्हप्रश्ने मूर्धपातस्य प्रतिज्ञातत्वेऽपि, तया ब्रह्मप्रश्ने कृतेऽपि तथा न जातम् अतः तस्याः अधिकारो अस्ति इति निश्चीयते. **अक्षरपदं** न ब्रह्मपदम् उक्तम् इति अर्थः **‘‘परोक्षप्रिया वै देवाः’’** (ऐत.उप.१।३।१४) इति श्रुतेः इति अर्थः. **तद्धर्मोपदेशः ‘‘न तदश्नोति’’** (बृहदा.उप.३।८।८) इत्यनेन ब्रह्मधर्मोपदेशः।।१०।।

क्वचिद् वाक्ये ‘‘यस्मिन् द्यौः’’ (मुण्डकोप. २।२।५) इति वाक्ये. **अत्रापि**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उत्तरिते, पुनः आकाशविषयके ओतप्रोतत्त्वप्रश्ने **‘‘एतद्वैतद् अक्षरं गार्गी’’** (तत्रैव ३।८।८) इत्याद्युत्तरम्. अत्र यद्यपि प्रश्नद्वयं प्रतिभाति तथापि प्रश्नैक्यं उत्तरैक्यमेव. आकाशविषयकः ओतत्वप्रश्ने अक्षरस्यैव अन्तरितत्वाद् आकाशस्य अवान्तरत्वम् आगतं, तेन पृथिव्यादेः आकाशान्तानां विधारको भगवानेव इति सिद्धम्. **द्युभ्वायतनसिद्धो धर्मः** इति. तत्स्वरूपात्मकतया तद्धारकत्वधर्मः इति अर्थः. तथाच उक्तं श्रीभागवते **‘‘नैतत् चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे. ओतप्रोतम् इदं यस्मिन् तन्तुषु अङ्ग यथा पटः’’** (भाग.पुरा.३।५।१९) इति. अतः भारवाहकत्वदोषोऽपि न. **‘‘न तद् अश्नोति’’** (बृहदा.उप.३।८।८) इति.

अयम्भावः. द्वावपि निषेधौ व्यापकत्वं तदभावं च बोधयन्तौ विरुद्धधर्माश्रयत्वं वस्तुपरिच्छेदराहित्यं च द्योतयतः. किञ्च, ब्रह्म ज्ञात्वा अभावसम्भावनायां मूर्धविपातः प्रतिपादितः सच गार्ग्याः न जातः इति तस्याः ब्रह्मवित्त्वेन अधिकारित्वात् स्त्रीत्वदोषोऽपि न, एवञ्च अयं सर्वोऽपि ब्रह्मवादएव पारोक्ष्येण प्रतिपादितः. तथाच द्युभ्वाद्यधिकरणसिद्ध-ब्रह्मधर्मएव हेतुः मुख्यः. अनेन हेतुना अक्षरं ब्रह्म इति सिद्ध्यति इति. अत्र ‘‘अस्थूलादिवाक्योक्तम् अक्षरं परमात्मैव, विरुद्धधर्माधारत्वे सत्यम् अम्बरान्तधारकत्वाद्, यन्नैवं तन्नैवम्’’ इति अनुमानप्रयोगो बोध्यः।।१०।।

सूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **क्वचिद् वाक्ये.** द्युभ्वाद्यधिकरणोक्तः

ननु क्वचिद् वाक्ये विधारणं ब्रह्मधर्मत्वेन आश्रितम् इति अन्यत्रापि न तथाश्रयितुं शक्यते, नियामकाभावाद्, इत्यतः आह. **सा च** विधृतिः अत्रापि वाक्ये ब्रह्मधर्मएव. कुतः? **प्रशासनात्.** ‘‘**एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिवी विधृते तिष्ठतः**’’(बृहदा.उप.३।८।९) इति प्रशासनेन विधारणम् अन्यधर्मो भवितुं न अर्हति, अप्रतिहताज्ञाशक्तेः भगवद्धर्मत्वात्. तस्माद् अक्षरं ब्रह्मैव।।११।।

अन्यभावव्यावृत्तेश्च।।१२।।

ननु उक्तम् उपासनापरं भविष्यति इति. तत्र आह **अन्यभावव्यावृत्तेः.** अन्यस्य भावो अन्यभावः. अब्रह्मधर्मः इति यावत्. तस्य अत्र व्यावृत्तेः. अब्रह्मत्वे हि ब्रह्मत्वेन उपासना भवति, कार्यकारणभावभेदेन. न हि अत्र तादृशो धर्मो अस्ति. ‘च’काराद् ‘‘**यो वा एतद् अक्षरम् अविदित्वा गार्गि**’’ (बृहदा.उप.३।८।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

एतद् विषयवाक्येऽपि. **अप्रतिहते**त्यादि. तथाच स्वर्गात् पततः त्रिशङ्कोः ‘तिष्ठ’ इति विश्वामित्राज्ञया जाता स्थितिः विश्वामित्रधर्मएव नतु त्रिशङ्कोः, अन्यथा पतेदेव न तद्वत् सर्वविधृतिः अक्षरधर्मएव इति अर्थः।।११।।

उक्तम् अनुशासनम्. **उपासनापरं** विधारकत्वारोपेण उपासनापरं. तथाच

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

‘‘**यस्मिन् द्यौः**’’ इति वाक्ये. सूत्रं व्याकुर्वन्ति **साच** इति. **विधृतिः** इति. साङ्ख्यमतरीत्या ग्रहिलरूपा प्रधाननिष्ठा अम्बरान्तधृतिः इति अर्थः. एवञ्च यथा त्रिशङ्कुनिष्ठा विधृतिः विश्वामित्रधर्मः तथा अन्यनिष्ठा विधृतिः ब्रह्मधर्मएव प्रशासनस्य चेतनधर्मत्वाद् इति भावः।।११।।

सूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **भविष्यति** इति. उक्तं श्रुतिवाक्यं प्रधानपरं जीवपरं वा? अस्तु प्रशासनहेतुका विधृतिः ब्रह्मधर्मः उपासनार्थम् आरोपितो भविष्यति इति भावः.

सिद्धान्तं व्याकुर्वते **अन्यस्य** इति. **कार्यकारणभावभेदेन** इति. **अब्रह्मत्वे हि** इत्यनेन अन्वितम्. तथाच अक्षरे चेतनधर्मस्य प्रशासनकर्तृत्वस्य कथनेन प्रधानव्यावृत्तिः आकाशोतप्रोतत्वकथनेन जीवव्यावृत्तिः. तेनच अब्रह्मणि ब्रह्मत्वेन उपासनापरम् इति वक्तुं न शक्यते. अक्षरस्य अब्रह्मत्वाभावाद् इति भावः. युक्त्यन्तरमपि वदन्ति **चकाराद्** इत्यादि. ‘‘**यो वा एतद् अक्षरम् अविदित्वा गार्गि अस्मिन् लोके जुहोति ददाति तपस्यत्यपि बहूनि वर्षसहस्राण्यन्तवानेव स लोको भवति**’’ (बृहदा.उप.३।८।१०)

१०) इत्यादिना शुद्धब्रह्मप्रतिपादनमेव, न उपासनाप्रतिपादनम् इति. तस्माद् अक्षरं ब्रह्मैव इति सिद्धम्।।१२।।

इति प्रथमाध्याये तृतियपादे तृतीयम् अक्षराधिकरणम्।।३।।

ईक्षतिकर्मव्यपदेशात् सः।।१३।। (१।३।४)

पञ्चमप्रश्ने, **''एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कारः तस्माद्**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ब्रह्मान्यएव उपास्यो अनुशासनेन बोध्यते इति पूर्वपक्षाशयः. **ब्रह्मत्वेन** ब्रह्मत्वारोपेण. तत्र हेतुः **कार्यकारणभावभेदेन** इति ब्रह्मत्वारोपे विशेषणज्ञानरूपकारणकोटि-प्रविष्टतया ब्रह्मत्वं कारणं तदनाक्रान्तोपासनं कार्यम् इतिरीत्या भेदः. **अत्र** ब्रह्मणि. **तादृशः** आरोपविषयीभूतः।।१२।।

पञ्चमप्रश्ने इति आथर्वणानां प्रश्नोपनिषदः पञ्चमे प्रश्ने. अर्धचतुर्थ-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इत्यादिना शुद्धब्रह्मप्रतिपादनम् इति भावः. अक्षरज्ञानं ज्ञानमार्गीयाणां मुख्यम्. **''ये त्वक्षरम् अनिर्देश्यम्''** (भग.गीता १२।३) इति गीतावाक्यात्. भक्तिमार्गीयाणाम् अङ्गम् इति अन्यत्र विस्तरः।।१२।।

विषयवाक्यम् आहुः. **पञ्चमप्रश्ने** इति. अथर्वणानां प्रश्नोपनिषदः पञ्चमे प्रश्ने. श्रुतिस्तु

> **अद्य हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ स यो ह वै तद् भगवन् मनुष्येषु प्रयाणान्तम् ॐकारम् अभिध्यायीत कतमं वा व स तेन लोकं जयति इति तस्मै स ह उवाच एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यद् ओङ्कारः तस्माद् विद्वान् एतेनैव आयतनेन एकतरम् अन्वेति।। स यदि एकमात्रम् अभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्याम् अभिसम्पद्यते तम् ऋचो मनुष्यलोकम् उपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानम् अनुभवति अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सो अन्तरिक्षं यजुर्भिः उन्नीयते स सोमलोकं स सोमलोके विभूतिम् अनुभूय पुनरावर्तते, यः पुनः एतं त्रिमात्रेण ॐइति एतेनैव अक्षरेण परं पुरुषम् अभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः. स सामभिः उन्नीयते सूर्यलोकं स सूर्यलोके विभूतिम् अनुभूय पुनरावर्तते. यः पुनः अर्द्धचतुर्थमात्रेण ॐइत्येतेनैव अक्षरेण परं पुरुषम् अभिध्यायीत स तेजसि परे सम्पन्नो यथा पादोदः त्वचा विनिर्मुच्यते एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः सो अथर्वभिः उन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माद् जीवघनात् परात्परं पुरिशयं पुरुषम् ईक्षते इति.** (प्रश्नोप.५)

विद्वानेते नैकतरमन्वेति यद्येकमात्र'' (प्रश्नोप.५।२) इत्यादिना एकद्वित्रिमात्रोपासनया ऋग्यजु:सामभिः मनुष्यलोकसोमलोकसूर्यलोकप्राप्तिपुनरागमने निरूप्य **''अर्धचतुर्थमात्रोपासनया परं पुरुषम् अभिध्यायीत. सः तेजसि परे सम्पन्नो यथा पादोदरस्त्वच''**(तत्रैव ५।५) इत्यादिना **''परात् परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते''**(तत्रैव ५।५) इति. तत्र संशयः. परपुरुषः परमात्मा ध्यानविषयः आहोस्विद् विराट्पुरुषो ब्रह्मा वा? इति. तत्र अमुख्यप्रवाहपतितत्वाद् ब्रह्मलोकं गतस्य तदीक्षणमेव च फलं श्रूयते. न हि परमपुरुषस्य ब्रह्मत्वे तज्ज्ञानमेव फलं

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

मात्रानादरूपा **नहि** इत्यादि **''ब्रह्मविदाप्नोति परम्''**(तैत्ति.उप.२।१) इति फलान्तर–

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अस्मिन् विषयवाक्ये पाठद्वयम्. स्वमतेतु अयमेव पाठः. परमते तु **''स तेजसि सूर्ये सम्पन्नो यथा पादोदरः त्वचा विनिर्मुच्यते, एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः सः सामभिः उन्नीयते ब्रह्मलोकम्''** इत्यादिः.

अस्य प्रयोजनन्तु अनुपदमेव स्फुटीभविष्यति. श्रुत्यर्थस्तु पिप्पलादं प्रति सत्यकामप्रश्नः. यः कश्चिद् मनुष्याणां मध्ये प्रयाणान्तं यावज्जीवं ॐकाराभिध्यानेन कतमं लोकं जयति इति पृष्टवते, स होवाच पिप्पलादः. यद्, एतत् परं च अपरं च ब्रह्मास्ति तदोङ्कारः. आयतनेन साधनेन ॐकाराभिध्यानेन इति अर्थः. एकतरं परम् अपरं वा. एकमात्रम् अकारमात्रम्. अथवा. एकमात्राप्रधानम्. अप्रधानीभूतमात्राद्वयं कृत्स्नम् ॐकारम्. संवेदितः तन्मात्रासाक्षात्कारवान्. ऋचः इति. **''पृथिव्यकारः स ऋग्वेदः''** (   ) इति श्रुतेः. महिमानम् विभूतिम्. यथेष्टचेष्टो भवति इति अर्थः. मनसि सम्पद्यते इति. मनसा एकाग्रतया चिन्तनम् इति अर्थः. यथा अपरं सूर्यान्तर्गतं पुरुषं प्रतीकेन अभिध्यायीत. सूर्ये सम्पन्नः प्रविष्टः. पादोदरः सर्पः जीर्णत्वग्वियुक्तः, तथा सः पाप्मना विनिर्मुक्तः. एतस्माद् जीवघनात्. हिरण्यगर्भात् परात् परं, परमात्माख्यम्. पुरिशयम् सर्वशरीरानुप्रविष्टम्. इति विषयवाक्यार्थः.

संशयम् आहुः **तत्र** इति. परापरयोः उभयोरपि प्रकृतत्त्वं सन्देहबीजम्.

पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र अमुख्यप्रवाहपतितत्वाद्** इति. त्रिमात्रेण अर्द्धचतुर्थमात्रेण च परपुरुषध्यानस्य उक्तत्वात् तत्तुल्यत्वेन अमुख्यप्रवाहपतितत्वाद् इति अर्थः. **ब्रह्मलोकम्** इति. ब्रह्मज्ञानफलं न भवति, किन्तु परप्राप्तिः फलं **''ब्रह्मविदाप्नोति परम्''** इतिश्रुत्या प्रतिपाद्यते. अत्रतु तदीक्षणस्य फलत्वेन प्रतिपादनम्. तस्मात् 'परात्पर'शब्देन ब्रह्म न भवति इति भावः.

भवति. तस्माद् विराट् ब्रह्मा वा अभिध्यानविषयः इत्येवं प्राप्ते, उच्यते. स अभिध्यानविषयः परपुरुषः परमात्मैव. कुतः? **ईक्षतिकर्मव्यपदेशात्.** जीवघनात् केवलजीवाधारभूताद् ब्रह्मलोकात् पररूपपुरुषदर्शनम् ईक्षतिः. तस्याः कर्मत्वेन व्यपदेशात्. उभयोः कर्मणोः एकत्वम् अपरं त्रिमात्रपर्यन्तं निरूप्य परं हि अग्रे निरूपयति. तथैव च श्लोके **''तिस्रो मात्रा''** इत्यादि. अभिध्यानस्य हि साक्षात्कारः फलम्. अतः फलरूपज्ञानस्य विषयत्वात् परपुरुषः परमात्मैव. मन्दशङ्कानिवृत्त्यर्थमेव इदं सूत्रम्. अत्र सर्वसङ्करवादिनाम् अन्यथापाठो भ्रमात्. तत्रापि विचारः तुल्यः।।१३।।

इति प्रथमाध्याये तृतियपादे चतुर्थम् ईक्षतिकर्माधिकरणम्।।४।।

दहर उत्तरेभ्यः।।१४।। (१।३।५)

''अथ यदिदम् अस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोस्मिन्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

श्रवणाद् इति अर्थः. **उभयोः कर्मणोः एकत्वं** ध्यानेक्षणकर्मणोः ऐक्यम् इति अर्थः. **पाठः** इत्यादि. शङ्कराचार्यैः **''यः पुनः एतत्त्रिमात्रेण ॐइति अनेनैव अक्षरेण परं पुरुषम् अभिध्यायीत स तेजसि सूर्येसम्पन्नः सः सामभिः उन्नीयते ब्रह्मलोकम्''** (प्रश्नोप. ५।५) इति पाठो अङ्गीक्रियते सा भ्रान्तिः, इदानीन्तनपुस्तकाध्येतृषु अनुपलम्भात्।।१३।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सिद्धान्तं व्याकुर्वते **उच्यते** इति. **जीवघनात्.** जीवानां घनः पिण्डीभावो यत्र तादृशाद् अक्षरात्. **उभयोः** इति. ध्यानेक्षणकर्मणोः एकविषयत्वम् इति अर्थः. तद् विवृण्वन्ति **अपरम्** इति. ब्रह्मओङ्कारयोः अभेदोपक्रमाद् इति भावः. **तथैव च श्लोके**ति. विषयवाक्याद् अग्रे. तदा एतौ श्लौकौ भवतः. **''तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ताः अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः''**(प्रश्नोप.५।६) इत्यादि. युक्त्यन्तरम् आहुः **अभिध्यानस्य** इति. **मन्दशङ्का** इति. परं ब्रह्म न दृश्यते इति मन्दशङ्कानिवृत्यर्थम् इति अर्थः. परमतपाठे अस्वरसं सूचयन्ति **अत्र सर्वसङ्करे**ति. **श्लोके.** तिस्रो मात्रा मृत्युमत्य इत्यनेन माण्डूक्यादौ तुरीयोपासनार्थम् अर्धमात्रोक्तिदर्शनेन च अस्वरसः सूचितः. परन्तु दोषो नास्ति इति आहुः **तत्रापि** इति।।१३।।

दहराधिकरणम् आहुः **दहर उत्तरेभ्यः**. विषयवाक्यम् उपन्यस्यन्ति **अथ** इति. अथ विषयवाक्यम्.

अन्तराकाशः तस्मिन् यदन्तः तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यम्'' (छान्दो. उप.८।१।१) इत्यादि श्रूयते.

तत्र संशयः. किं जीवो अन्वेष्टव्यो ब्रह्म वा? इति जीवब्रह्मवादो निर्णीयते. श्रुत्यर्थो अत्र हि निर्णेतव्यः. तद् यद् अस्मिन् वाक्ये परमार्थतो जीवएव ब्रह्म चेत् शास्त्रं च तत्रैव समाप्तं चेद् व्यर्थम् अधिकरणारम्भः. इदमेव च वाक्यं

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

श्रूयते छान्दोग्ये दशमप्रपाठकारम्भे श्रूयते. **व्यर्थम्** इति. तथाच उपाधिभेदेऽपि जीवचैतन्यस्य ब्रह्माभिन्नत्वाद् जीवस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात् तदन्वेषणाविचारार्थम् अधिकरणस्य वैयर्थ्यं सन्दिग्धएव न्यायप्रवृत्तेः. **इदमेव** इत्यादि. ''जीवएव ब्रह्म''

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

> **विजिज्ञासितव्यं, तं चेद् ब्रूयुः यद् इदम् अस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरो अस्मिन् अन्तराकाशः किं तदत्र विद्यते यद् अन्वेष्टव्यं यद्वा व विजिज्ञासितव्यम् इति स ब्रूयाद् यावान् वा अयम् आकाशः तावान् एषो अन्तर्हृदयः आकाशः उभे अस्मिन् द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते उभौ अग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसौ उभौ विद्युन्नक्षत्राणि यच्च अस्य इह अस्ति यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन् समाहितम्**'' (छान्दो.उप.८।१।२) इत्यादि.

अथ भाष्यम्. **श्रूयते**. छान्दोग्योपनिषदि दशमप्रपाठके श्रूयते. **ब्रह्मपुरे**. शरीरे **दहरम्** अल्पं, **पुण्डरीकं** हृदयकमलम्. **वेश्म** इव वेश्म ब्रह्मणः उपलब्ध्यधिष्ठानं **दहरो अस्मिन् अन्तराकाशः**, आकाशाख्यं ब्रह्म आकाश इव अशरीरत्वाद् विचार्य ज्ञेयम्. आचार्यं ब्रूयुः. अन्तेवासिनः इति शेषः. आचार्यान्तेवासिसंवादं श्रुतिः वदति. सः ब्रूयाद् आचार्यो ब्रूयात्.

संशयम् आहुः **तत्र** इत्यादि. अल्पं हृदयकमलम्. तत्रापि आराग्रमात्रं जीवः प्रतीयते. अन्तेवासिभिः पृष्टः आचार्यो वदति, ''यावान् वा आकाशः'' इत्यादिना ब्रह्मापि. अतएव संशयः इति अर्थः. तल्लिङ्गाधिकरणे चिदाकाशस्य ब्रह्मणः सर्वाधारत्वकथनाद् किम् अनेन अधिकरणेन? इत्यतः आह **जीवे**ति. उपाधिभेदाद् भेदेऽपि, वस्तुतः चैतन्यमात्रत्वाद् जीवाभिन्नमेव ब्रह्म इति वादो जीवब्रह्मवादः, सः सम्भवति न वा इति निर्णीयते. तथाच एतन्निर्णयस्य पूर्वम् अकृतत्वात् तदर्थम् एतत्प्रणयनम् इति भावः. ननु किं तन्निर्णयेन? इत्यतः आहुः **श्रुत्यर्थः** इति. तथाच तन्निर्णयार्थम् एतन्निर्णयः इति भावः. ननु अधिकरणस्य प्रयोजनम् इदम् इत्यत्र किं गमकम्? अतः आह **तद्** इति. **समाप्तम्** इति. पर्यवसितम् इति अर्थः. **व्यर्थम्** इति

श्रुत्या वक्तव्यं च भवेत्. तस्माद् अस्मिन् अधिकरणे मुख्या सर्वसङ्करवादादिनिराकृतिः. किं तावत् प्राप्तम्? **दहर** आकाशो जीवः इति. अत्र अवान्तरप्रकरणद्वयम्. तत्र द्वीतीये प्रजापतिप्रकरणे जीवएव अमृताभयरूपः प्रतिभाति. स्पष्टार्थं च द्वितीयप्रकरणम्. तस्मात् प्रथमेऽपि जीवएव तादृशधर्मवान् भवितुम् अर्हति. अर्थानुगुण्यमपि व्याख्येयम्. अयमेव जीवो ब्रह्म, ‘‘**अयमात्मा ब्रह्म**’’ (बृहदा.उप.४।४।५) इति श्रुतेः. मैत्रेयीब्राह्मणं च अनुगुणं भविष्यति. तस्य पुरं शरीरम्. तत्र हृदयकमलं सूक्ष्मम्. तत्र आराग्रमात्रो जीवएव

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इतिवाक्यं श्रुतिः वदेद् इति अर्थः. **निराकृतिः** निराकृतिरेव प्रयोजनम् इति अर्थः. **प्रकरणद्वयम्** एकं दहरविद्यारूपं द्वितीयम् इन्द्रप्रजापतिसंवादरूपम्, उभयत्रापि अपहतपाप्मत्वादिगुणकः आत्मैव प्रतिपाद्यः. **तत्र** द्वितीये प्रजापतिप्रकरणे चतुर्भिः पर्यायैः जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-मुक्तावस्थाभेदेन जीवस्यैव प्रतिपादनात्. **जीवएव अमृताभयरूपः** श्रावितः **प्रतिभाति. स्पष्टार्थम्** इति प्रकटार्थम्. **अर्थे**त्यादि. द्वितीयप्रकरणार्थानुगुण्यमपि जीवे व्याख्यातुं शक्यम् इति अर्थः. **अनुगुणं** जीवपक्षे अनुगुणम्. इदमेव तापनीयेऽपि उक्तं ‘‘**सर्वं सर्वमयं सर्वे जीवाः सर्वमयास्तथापि अल्पा**’’

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

‘सामान्ये नपुंसकम्’. तथाच यदि तथा स्याद्, तदा घटाकाशादिवद् उपाधिभेदस्य इतरत्वाप्रयोजकत्वाद् इतरपरामर्शसूत्रव्याहत्या व्यर्थएव अधिकरणारम्भः स्याद्, एतस्यैव वाक्यश्रुतिवाच्यत्वापातेन न इति निषेधोऽपि न सम्भवेत्, तस्माद् अस्मिन् अधिकरणे जीवब्रह्मैक्यकृत-सर्वसङ्करवादस्य मायावादस्य निराकृतिरेव मुख्या. साच जीवस्य *परमुक्तितादशायामपि ब्रह्मनियम्यत्वे पर्यवस्यति इदं परामर्शसूत्रे वक्ष्यते. अतो अधिकरणसार्थक्यानुपपत्तिरेव प्रणयनप्रयोजनगमिका इति भावः.

पूर्वपक्षम् आहुः **किं तावद्** इति. **द्वयम्** इति. दहरविद्यारूपम्, इन्द्रप्रजापतिसंवादरूपं च. **प्रतिभाति** इति. तत्र चतुर्भिः पर्यायैः जाग्रदादिमुक्त्यन्तावस्था चतुष्टयेन जीवस्यैव प्रतिपादनाद् इति भावः. **अर्थानुगुण्यम्** इति. कश्चिद् अर्थः विरुद्धः चेत् प्रकरणान्तरं भिन्नं कल्पनीयम्, नो चेत् तदर्थानुगुण्यं व्याख्येयम्. दहराकाशं प्रक्रम्य एषः अपहतपाप्मा जीवः इति अङ्गुल्या निर्देशः इति आनुगुण्यम् इति भावः. अत्र श्रुतिप्रमाणम् आहुः **अयम्** इति. **मैत्रेयी**ति. ‘‘**न वा अरे**’’ (बृहदा.उप.२।४।) इत्यादिना आनुगुण्यम् इति अर्थः. अन्यदपि अर्थानुगुण्यम् आहुः **तस्य** इत्यादिना. **सूक्ष्मम्** इति. ‘‘**तस्यान्ते**

आकाशः. तात्स्थ्यात् तद्व्यपदेशः इति. अन्वेष्टव्यस्तु तस्मिन् विद्यमानः तन्महिमा. वासनारूपेण सर्वं तत्र वर्तते इति. अन्यथा उभयत्र सर्वकथनं विरुद्धम् आपद्येत. भूतानि महाभूतानि पुत्रादयो वा. **‘‘तं चेद् ब्रूयुः’’** (छान्दो.उप. ८।१।४) इत्यादिना नित्यताम् उपपाद्य **‘‘एष आत्मा’’** (तत्रैव ८।१।५) इत्यादिना तस्यैव ब्रह्मत्वम् उपदिशति, तज्ज्ञानं च प्रशंसति. स्वात्मज्ञानिनः कामसिद्धिं च आह **‘‘य इह’’** (तत्रैव ८।१।६) इत्यादिना. येऽपि च *विरुद्धाः धर्माः प्रतिभाति, अहरहः गमनादयः, तेऽपि स्वकल्पितजीवानां स्वप्नमाया-

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

(नृसिंहो.उप.९) इति. ननु ब्रह्माकाशादिरूपता जीवस्य कथं सम्भवेद्? अतः आहुः **तात्स्थ्याद्** इति. **तात्स्थ्याद्** वासनया तेषां सर्वेषां जीवे विद्यमानत्वात्. **तद्व्यपदेशः** तैस्ततैः नामभिः जीवः उच्यते इति अर्थः. **अन्यथा** वासनायाः जीवमाहात्म्यरूपत्वानङ्गीकारे. **उभयत्र** वाक्यद्वये सर्वरूपतानिरूपके **‘‘तदा यावान्’’** इत्यादिवाक्ये **‘‘तं चेद् ब्रूयुः अस्मिन् चेद् इदं ब्रह्मपुर’’**(छान्दो.उप.८।४।१) इतिवाक्ये च इति अर्थः. इदं दहरनित्यताप्रतिपादकं वाक्यम्. **भूतानि** श्रुत्युपात्त‘भूत’पदेन महाभूतानि ग्राह्याणि नतु विश्वम् इति अर्थः. सर्वेषां विश्वेषां वासनानां जीवे असम्भवाद् इति अर्थः. **तस्यैव** जीवस्यैव. **उपदिशति** उपासनार्थम् उपदिशति इति अर्थः. **य इह** इत्यादि. **‘‘य इहात्मानम् अनुविद्य व्रजन्ति’’**(तत्रैव ८।१।६) इत्यादिवाक्येन. ***विरुद्धधर्माः** जीवस्य ब्रह्मत्वे

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सुषिरं सूक्ष्मम्’’ (महाना.उप.११।९) इति श्रुतेः. महिम्नः स्वरूपम् आहुः **वासना** इति. **अन्यथा.** ईदृशमहिम्नो अनङ्गीकारे. उभयत्र सर्वं समाहितं **‘‘सर्वाणि च भूतानि’’** (छान्दो.उप.८।१।४) इत्यत्र. ननु एतस्य जीववाक्यत्वं न सम्भवति, **‘‘तं चेद् ब्रूयुः’’** (तत्रैव ८।१।४) इत्यादिना दहरान्तस्थस्य ब्रह्मत्वोपदेशाद् इत्यतः आह **तं चेद्** इति. **तस्यैव** जीवस्यैव. **उपदिशति** इति. उपासनार्थम् इति शेषः. **य इह** इत्यादिना. **‘‘य इह आत्मानम् अनुविद्य व्रजन्ति’’**(तत्रैव ८।१।६) इत्यादिना. ननु **‘‘इमाः प्रजाः अहरहः गच्छन्त्यः एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्ति’’**(तत्रैव८।३।२) इत्यादिग्रन्थासङ्गतिः, जीवान्तराणां जीवान्तरे गमनाभावात्. किञ्च, सत्यलोके अहरहः गमनासम्भवाद् ब्रह्मैव लोको ब्रह्मलोकः इति समासाश्रयणेन ब्रह्मणएव तत्र विवक्षितत्वाद्, ‘ब्रह्मलोक’-पदासङ्गतिः इत्यतः आह **येऽपि** इत्यादि. **प्रतिः** लक्षणे. स्वाज्ञानकल्पितानां जीवानां स्वप्नादिषु सिद्धत्वात् तेषामेव गमनागमने लक्षीकृत्य प्रवृत्तं वाक्यम् इति भावः. एवं कल्पनायां

मनोरथादिषु तेषामेव गमनागमने प्रति, स्वातिरिक्तस्य प्रतिस्वातिरिक्तस्य ब्रह्मणो अभावात्. एवं लोकाधारत्वमपि. ब्रह्मचर्यं च तस्य साधनम् इति. योगश्च ‘‘**तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वम् एति**’’ (कठोप.२।३।१६) इति च. तस्माज् जीवएव दहरः इत्येवं प्राप्ते, उच्यते. **दहरः** परमात्मा, न जीवः. कुतः? **उत्तरेभ्यः**. उत्तरत्र वक्ष्यमाणेभ्यो हेतुभ्यः. तेषामपि साध्यत्वाद् एवम् उक्तम्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

व्यापकतया गमनागमनादयो विरुद्धधर्माः. **अहः**इत्यादि ‘‘**प्रजा अहरहः गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्ति**’’(तत्रैव८।३।२) इत्याद्युक्ताः. **स्वकल्पितानां** स्वाज्ञानकल्पितानाम्. ते क्व प्रसिद्धाः? इति आकांक्षायाम् आहुः **स्वप्ने**त्यादि. तथाच कल्पितानामेव गमनागमनेइति न श्रुतिविरोधः. **प्रतिस्वातिरिक्तस्य** प्रत्येकत्वेन कल्पितजीवचैतन्यातिरिक्तस्य. तथाहि ‘‘**तत्त्वमसि**’’(तत्रैव६।८।७) ‘‘**अयमात्मा ब्रह्म**’’(बृहदा.उप.४।४।५) ‘‘**स यो ह वै तत्परं**’’(मुण्डकोप.३।२।९) ‘‘**ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति**’’(तत्रैव) इत्यादिश्रुत्यन्तरे तथैव सिद्धम् इति अर्थः. **लोकाधारत्वं** यः आत्मा सेतुः विधृतिः एषां लोकानाम् असम्भेदाय इति श्रुत्युक्तं लोकाधारत्वम्. **एवं** पूर्वोक्तरीत्या कल्पितम् इति अर्थः. ब्रह्मचर्येण अनुविदन्ति इत्यादिना यज्ञादीनां ब्रह्मचर्यत्वेन रूपेण ब्रह्मप्रापकत्वम् उक्तं **ब्रह्मचर्यम्**. ‘‘**तया**’’ इत्यादि **तया** योगचर्यया. **ऊर्ध्वम् आयन्** ब्रह्मस्वरूपं प्राप्नुवन्. ‘‘**एति**’’ **इति च** इति श्रुत्या उक्तश्च. इदं सर्वं तस्य अज्ञानकल्पितजीवस्य नतु ब्रह्मभूतस्य व्यापकस्यैव सम्भवतु, अतो न कोऽपि विरोधो जीवपक्षे इति फलितम्. सिद्धम् आहुः **तस्माद्** इति. **उच्यते** इत्यादिना सिद्धान्तः इति।।१४।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

बीजम् आहुः **स्वातिरिक्तस्य** इति. ‘‘**तत्त्वमसि**’’(छान्दो.उप.६।८।७) इत्यादिवाक्येषु तथैव सिद्धत्वाद् इति भावः. ‘‘**अथ य आत्मा स सेतुर्विधृतिः**’’ (तत्रैव ८।३।३) इत्यादिवाक्यस्य यथा गन्तारो अज्ञानकल्पिताः तद्वल्लोकापि इति न असङ्गतिः इति आह **एवम्** इति. **अमृतत्वम् एति** इति. अग्रे ‘‘**तद्यत एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येण अनुविन्दन्ति**’’(तत्रैव ८।५।) इत्यादि. अथच ‘‘**या एता हृदयस्य नाड्यः**’’(तत्रैव ८।६।१) इत्यादि ‘‘**अमृतत्वम् एति**’’ इत्यन्तस्य वाक्यस्य जीवभावस्य अज्ञानकल्पितत्वाङ्गीकारे सङ्गतिः. कर्मणः अविद्वदधिकारकत्वात् तादृशस्य अज्ञानवत्त्वाद् इति भावः. **तस्माद्** इति. उत्तरप्रकरणस्थाद् इति अर्थः. सिद्धान्तम् आहुः **उच्यते** इति. स्वमते अज्ञानकल्पितभिन्नभावरूपो जीवो भवति इति सूचयितुं जीवस्वरूपम् आहुः **जीवो नाम**

भगवदंशो, न भगवानेव इति अग्रे वक्ष्यते. ‘‘**अंशो नानाव्यपदेशाद्**’’ (ब्रह्मसू. २।३।४३) इति. नापि ब्रह्म तावन्मात्रम्. इदमपि अग्रे वक्ष्यते ‘‘**अधिकन्तु भेदनिर्देशाद्**’’ (ब्रह्मसू.२।१।२२) इति. तस्माद् इदं प्रकरणं न जीवब्रह्मविद्यापरं किन्तु ब्रह्मवाक्यमेव इति।।१४।।

गतिशब्दाभ्यां तथाहि दृष्टं लिङ्गं च।।१५।।

उत्तरहेतूनां मध्ये हेतुद्वयम् आह **गतिशब्दाभ्याम्. गतिः** ब्रह्मलोकगमनम्. ‘‘**एवमेव इमाः सर्वाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्ति**’’ (छान्दो.उप.८।३।२) इति. ‘‘**एष आत्मापहतपाप्मा सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः**’’ (तत्रैव८।१।५) इति केवलभगवद्वाचकाः शब्दाः ‘ब्रह्मलोक’-शब्दश्च. ननु उक्तं जीवस्यैव एते शब्दाः गतिश्च मनोरथादिकल्पितानाम् इति. तन्निराकरणाय आह **तथाहि.** तथैव गति-शब्दौ भगवत्येव युक्तौ. ‘अनृतेनापिधानं’ हि तेषां विशेषणम्. अज्ञानावेष्टितत्वम् इति अर्थः, नतु अज्ञानपरिकल्पितत्वं, दृष्टत्वात्. तथैव हि दृश्यते. सर्वोऽपि आह ‘‘**न किञ्चिद् अवेदिषम्**’’ इति. नच गन्तुः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सूत्रम् अवतारयन्ति **उत्तरे**त्यादि. व्याकुर्वन्ति **गतिः** इत्यारभ्य **युक्तौ** इत्यन्तेन. **ब्रह्मलोकशब्दाः** ब्रह्मात्मकलोकबोधकाः शब्दाः. **गतिशब्दौ** गतिब्रह्मलोकशब्दौ. **तेषाम्** अज्ञानावेष्टितजीवानाम्. **न किञ्चिद्** इत्यादि. सुष्वापाद् उत्थितः सर्वोऽपि ‘‘न किञ्चिद् अवेदिषम्’’ इति सुषुप्तौ स्वस्य अज्ञानावेष्टितत्वमेव आह इति दृश्यते. यदि हि गन्ता अज्ञानकल्पितः स्यात् तदा जागरणे अज्ञाननाशे तस्यापि नाशात् स्मरणं न घटेत इति अर्थः. ननु जीवो अज्ञानकल्पितएव ज्ञाननाशे च नश्यति इति गन्तैव नास्ति इत्येव आस्ताम्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति. एवञ्च दहरः द्विविधोऽपि जीवो न इति भावः।।१४।।

सूत्रम् अवतारयन्ति **उत्तरे**त्यादि. व्याकुर्वन्ति **गतिम्** आरभ्य **युक्तौ** इत्यन्तम्. सूत्रस्थं **तथाहि** इति वाक्यम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **तथा** गतिशब्दौ **हि** युक्तौ. गतेः अज्ञानकल्पितत्वं परिहरन्ति **अनृतेन** इत्यादि **विरोधश्च** इत्यन्तम्. ‘‘**अनृतेन प्रत्यूढाः प्रजा**’’ (छान्दो.उप.८।३।२) इत्यत्र ‘प्रत्यूढ’शब्दस्य हि तत्त्वमेव अर्थः. ‘‘**अनृतापिधाना**’’ (तत्रैव८।३।१) इति वाक्यान्तरस्वारस्यात्. तथाच कल्पितत्वम् अर्थो नास्ति इत्यतः आह **नतु** इति. **न किञ्चिद्** इति. जागरणदशायाम् अज्ञाननाशे तत्कल्पितस्य गन्तुरपि नाशात् स्मरणं न स्याद् इति भावः. **नच गन्तुः अभावः** इति. वस्तुतो

अभावएव, शास्त्रवैफल्यापत्तेः. नहि आत्मनाशः पुरुषार्थः. कर्मकर्तृविरोधश्च तथा. अपहतपाप्मत्वं च, तद्विरुद्धधर्माणाम् अनुभवात्. भगवतितु इदानीमेव

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अतः आहुः **नच** इत्यादि. **शास्त्रवैफल्यापत्तेः "अथ य इह आत्मानम् अनुविद्य व्रजन्ति"** (छान्दो.उप. ८।१।६) इत्याद्युक्तगतिबोधकशास्त्रवैफल्यापत्तेः इति अर्थः. ननु गन्तृत्वेन विवक्षितस्य चरमवृत्तिपर्यन्तं स्थितेः न गमनशास्त्रवैफल्यम् अतः आहुः **नहि** इत्यादि. तथा चरमवृत्त्युत्तरम् आत्मनाशाङ्गीकारे न कोऽपि पुरुषार्थः पर्यवस्येद् इति अर्थः. **कर्तृकर्मे**त्यादि. **"आत्मानम् अनुविद्य व्रजन्ति"** इत्यादौ कर्तृत्वं जीवगतं कर्मत्वं च आत्मगतम्. न हि इदं जीवाभावे भेदाभावे वा सम्भवति. तथाच वेदनगमनोभयकर्तृत्वकर्मत्वविरोधो दुर्वारः इति अर्थः. कायव्यूहकरणदशायाम् उपाधिभेदेन योगिभेदइव जीवब्रह्मभेदोऽपि अशक्यवचनः. तत्र व्यूहानां मध्ये एकस्यापि व्यूहस्य व्यूहान्तरभेदाज्ञानाद् जीवब्रह्मणोः स्थानेतु जीवानां बहुशो भेदानुभवः उक्तः. **तद्विरुद्धे**त्यादि. उक्तब्रह्मधर्मविरुद्धधर्माणां जीवे अनुभवसिद्धत्वाद् न हि जीवे विरुद्धधर्माः सम्भवन्ति. **तेषां** ब्रह्मगतापहतपाप्मत्वादिधर्माणाम्. **उपलब्धेः** अनुभवसिद्धत्वाद् इति अर्थः. ननु ब्रह्मवादेऽपि सर्वस्य ब्रह्मरूपत्वाद् जीवब्रह्मणोः अंशांशिकर्मकर्तृभावोऽपि भेदएव सम्भवति श्रुतौ बहुवचनैकवचनयोरपि भेदएव उपपत्तिः इति. अपहतपाप्मत्वं च इति अपहतपाप्मा इत्यनेन **"एषः अपहतपाप्मा सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः"** (छान्दो. उप.८।१।५) एते केवलब्रह्मवाचकाः शब्दाः वादिना जीवे योजिताः न सम्भवन्ति. तत्र हेतुः **तद्विरुद्धे**ति. भावनियामकम् अज्ञानमेव वाच्यं तदेव विभाजकं वाच्यं क्रियायाः विभाजकतायां घटसम्बद्धकपालानां क्रियया विभागे घटनाशवद् ब्रह्मणो विनाशापत्तिः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ब्रह्मस्वरूपस्य जीवस्य व्यापकत्वेन औपचारिकमेव गमनम् इति भावः. **शास्त्रवैफल्यापत्तेः** इति. गन्तुः अनङ्गीकारे. **"अननुविद्य व्रजन्ति"** इत्यादिना अज्ञानिनः फलाभावबोधकं **"अथ य इहात्मानम् अनुविद्य व्रजन्ति"** (छान्दो.उप.८।१।६) इत्यादि द्विविधगतिबोधकं शास्त्रं तस्य वैफल्यापत्तेः इति अर्थः. **विरोधश्च** इति. वस्तुतो जीवस्य ब्रह्माभेदे 'आत्मानम् अनुविद्य व्रजन्ति' इत्यादौ विरोधः इति अर्थः. अत्र एकवचन-बहुवचन-प्रयोगादेव अंशांशिभावेन भेदसिद्धौ तद्गतेः ब्रह्मविषयकत्वं दृष्टत्वेन हेतुना साधितम्. अतः परं शब्दस्य ब्रह्मपरत्वं दृष्टत्वेन हेतुना साधयन्ति **तथा** इत्यादि. अपहतपाप्मत्वादिविरुद्धधर्माणां जीवे दृष्टत्वाद् उभयत्रापि दृष्टस्यैव साधकत्वात् तेऽपि शब्दाः ब्रह्मपराः इति अर्थः. 'ब्रह्मलोक'शब्दस्य ब्रह्मपरत्वं पूर्वमेव उक्तम् इति सर्वम्

तेषाम् अनुभवः, ध्यानादौ उपलब्धेः. पृथिवीशराववदेव जीवब्रह्मविभागो नतु अज्ञानकृतः. तथाहि. अज्ञानं नाम चैतन्यान्तर्भूतं तच्छक्तिरूपम् अनादिः उत बहिर्भूतम् सांख्यवत्? न. बहिर्भूतं चेत् सांख्यनिराकरणेनैव निराकृतम्. अन्तःस्थितायाः शक्तिरूपायाः स्वरूपाविरोधिन्या न स्वरूपविभेदकत्वम्, आश्रयनाशप्रसङ्गात्, कल्पनायाश्च अप्रामाणिकत्वात्. बहिःस्थितस्यैव हि भेदकत्वम्. कुठारादिवत्. नापि वायुवत्, तच्छक्तित्वात्. किञ्च, को अयं

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इति घट्टकुटीप्रभात-न्यायात् किं तन्मतदूषणेन इत्यतः आहुः **पृथिवी**त्यादि. **चैतन्यान्तर्भूतं तच्छक्तिरूपं** ब्रह्मशक्तिरूपम्. **अन्तः** इत्यादि. अयम् अर्थः यदि सा स्वरूपाविरोधिनी तदा सा स्वरूपभूतान् जीवान् न तुच्छीकुर्याद् यदि स्वरूपविरोधिनी तदा ब्रह्मापि तुच्छीकुर्याद् इति अर्थः, स्व-स्वरूपतायाः तुल्यत्वात्. ब्रह्मस्वरूपनाशने तच्छक्तित्वमपि नश्येद् इति भावः. **कल्पनायाः** अन्तःस्थितस्य भेदकत्वकल्पनायाः. ननु सत्त्वादिशक्तिगुणाएव विभाजकाः न स्वयम् अतो न उक्तानुपपत्तिः अतः आहुः **अप्रामाणिकत्वाद्** लोके वेदे च क्वापि तादृशार्थबोधकप्रमाणाभावाद् इति अर्थः. ननु ‘‘**नासिके निरभिद्येतां दोधूयति नभस्वति**’’(भाग.पुरा.२।१०।२०) इत्यत्र अन्तःस्थितस्यापि वायोः भेदकत्वं दृष्टं इति चेत् तत्र आहुः **नापि** इत्यादि. तथाच वायोः अन्तःस्थत्वेऽपि न ब्रह्माण्डशक्तित्वम् एतस्यास्तु ब्रह्मशक्तित्वम् इति दृष्टान्तवैषम्यम्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अनवद्यम्. ब्रह्मवादे विभागो अविभागोऽपि ‘‘**बहु स्याम्**’’ (छान्दो.उप.६।२।३) इति इच्छाकृतः इति दृष्टान्तेन आह **पृथिवी**ति. विभागस्य अज्ञानकृतत्वं दूषयितुम् अज्ञानं विकल्पयन्ति **तथाहि** इति. सूचीकटाहन्यायेन द्वितीयं दूषयन्ति **साङ्ख्ये**ति. प्रथमं दूषयन्ति **अन्तः** इति. अन्तः शक्तिः स्वरूपाविरोधिनी स्वरूपविरोधिनी वा. आधेय-स्वरूपभूतान् जीवान् न व्याप्नुयात्, तथाच भेदएव न स्याद् इति आहुः **न स्वरूपे**ति. द्वितीये जीवानिव परमात्मानमपि व्याप्नुयात्. तथाच ब्रह्मशक्तित्वभङ्गः स्याद् इति आहुः **आश्रये**ति. ननु तस्याः शुद्धसत्त्वेन ईश्वरोपाधित्वम्, मिश्रसत्त्वेन जीवोपाधित्वं परिकल्प्य अविभेदकत्वम् उच्यते चेत् तत्र आहुः **कल्पनायाः** इति. **अप्रामाणिकत्वाद्** इति. श्रुत्याद्यनुक्तत्वेन इति शेषः. अन्तःशक्तेः विभेदकत्वं नास्ति इति दृष्टान्तेन आहुः **कुठारादी**ति. ननु अन्तःस्थितस्यापि भेदकत्वं वायौ; तत्र प्रमाणम्, ‘‘**नासिके निरभिद्येतां**’’ (ऐत.उप. १।४) ‘‘**दोधूयति नभस्वति**’’ (भाग.पुरा.२।१०।२०) इत्यतः आहुः **नापि**

ब्रह्मवादे प्रद्वेषो येन मिथ्यावादः परिकल्प्यते ? अज्ञानाद् इति चेत्, पीतशंखप्रतिभानवद्युक्तं मतकरणं ब्रह्मविद् उपासनयातु गमिष्यति. शर्कराभक्षणेनेव पीतप्रतीतिः. सर्वज्ञेन हि वेदव्यासेन भाविमिथ्यावादनिराकरणेन इदम् अधिकरणम् आरब्धम्. तस्माद् जीवानामेव अज्ञानदर्शनाद् ब्रह्मणः सर्वज्ञत्वदर्शनाद् गतिशब्दौ ब्रह्मविषयावेव न जीवविषयौ. किञ्च, **लिङ्गं** च वर्तते. **“यथैवेह कर्मजितो लोकः क्षीयते एवमेव अमुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते”** (छान्दो.उप.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

निराकरणेन इति हेतुतृतीया. **किञ्च लिङ्गम्** इत्यादि. गति-शब्दयोः ब्रह्मपरत्वलिङ्गमपि वर्तते इति अर्थः. पूर्वं गतेः लिङ्गं व्युत्पादयन्ति “**यथा...**” इत्यादि. अत्र हि वाक्यशेषे “**तद् य इह आत्मानम् अनुविद्य व्रजन्ति**” (छान्दो.उप. ८।१।६) इति आत्माज्ञानं लोकक्षयहेतुत्वेन उच्यते यदि आत्मा ब्रह्माभिन्नः स्यात् तदा अपहतपाप्मादिगुणकत्वात् स्वस्य स्वाज्ञानं न सम्भवति लोकक्षयज्ञानमेव स्वाज्ञानं स्वस्य ब्रह्मत्वे लोकप्राप्तितन्नाशयोरेव स्वस्मिन् असत्वाद् इति अर्थः. अतः इदम् अज्ञानं जीवस्य ब्रह्मभिन्नत्वं बोधयद् गतेः ब्रह्मकर्मत्वे जीवकर्तृकत्वे च लिङ्गं भवति इति अर्थः. किञ्च यदि गन्तृणां कल्पितत्वं स्यात् तदा अज्ञानिनामिव ज्ञानिनामपि मिथ्यात्वेन तेषां सर्वलोककामचारादि-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति. वायोः ब्रह्माण्डशक्तित्वाभावाद् अस्तु विभेदकत्वम्, अस्यास्तु ब्रह्मशक्तित्वाद् न तथा इति दृष्टान्तवैषम्यम् इति भावः. प्रपञ्चमिथ्यावादे दूषणान्तरम् आहुः **किञ्च** इति. **ब्रह्मवादे.** “**बहु स्याम्**”(छान्दो.उप.६।२।३) इति प्रत्यक्षश्रुतिसिद्धे. **अज्ञानाद्** इति. प्रत्यक्षादिना प्रपञ्चे ब्रह्मत्वाज्ञानाद् इति अर्थः. **ब्रह्मविद् उपासनया.** सत्सङ्गेन **गमिष्यति** इति. **पीतप्रतीतिः** इति. कामलारोगस्य पित्तजन्यत्वात् पित्तनाशकशर्कराभक्षणेन रोगनिवृत्तौ शङ्खे पीतिमप्रतीतिनिवृत्तिः यथा, तथा सत्सङ्गेन अज्ञाननिवृत्तौ मिथ्यात्वनिवृत्तेः व्यर्थं मतकरणम् इति अर्थः. ‘कटुप्रतीतिः’ इति पाठस्तु अपपाठः. ननु एतन्मतस्य आधुनिकत्वे तन्निराकरणार्थं व्यर्थम् अधिकरणप्रणयनम् इत्यतः आहुः **सर्वज्ञेन** इति. “**प्रकृत्यादिभ्यः**”(वार्ति.क्र.१३८; पाणि.सू.२।३।१८) इति वार्तिकात् स्वरूपे निराकरणेन इति तृतीया. तथाच पुराणेषु भाविकथनवद् भाविमिथ्यावादनिराकरणरूपम् अधिकरणम् इति भावः. **दर्शनाद्** इति. दर्शनद्वयं क्रमेण गतिशब्दयोः तथात्वसाधकं लिङ्गं व्याकुर्वन्ति **किञ्च** इत्यादिना. **लिङ्गम्** इति. गतिशब्दयोः ब्रह्मपरत्वे लिङ्गम् अस्ति इति अर्थः. अत्रत्यवाक्यशेषेण पूर्वं गतेः लिङ्गं व्याकुर्वन्ति **यथैव इह** इति. इह लोके कर्मजितः

८।१।६) इति. न हि स्वाज्ञानं स्वस्य सम्भवति, हिताकरणप्रसक्तिश्च. नच ज्ञानेन सामर्थ्यम् उद्‌बुद्धम् इति वाच्यम्, विरोधित्वात्. नहि ज्ञाने जाते कर्तृत्वम् अस्ति इति विप्लववादिनो अङ्गीकुर्वन्ति. विरुद्धा च कल्पना. **‘‘अहं ब्रह्मास्मि’’** इति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

हितकरणमपि न स्याद् इति अर्थः. **हिताकरणे**त्यादि. तथाच इदमपि गतेः ब्रह्मभिन्नसत्यजीवकर्तृकत्वे ब्रह्मकर्मकत्वे च लिङ्गम् इति अर्थः. ननु इदं हितकरणं न गतेः जीवभिन्नब्रह्मकर्मकत्वे लिङ्गं किन्तु ब्रह्मरूपस्यैव जीवस्य ज्ञानेन अज्ञाननाशात् कल्पिततदीयसर्वपदार्थनिवृत्तौ सत्यां सामर्थ्यस्य उद्‌बुद्‌धत्वेन अनेकलोककामचारादिना स्वहिताचरणं सम्भवदुक्तिकमेव इत्यतः आहुः **नच** इत्यादि. **विरोधित्वात्.** विरोधित्वमेव विवृण्वन्ति **न हि** इत्यादि. **कर्तृत्वं** गमनादिकर्तृत्वम्. तथाच तेषां मते उपाधिनाशे व्यापकस्यैव अवशिष्टत्वाद् न सम्भवति इति भावः. **विरुद्‌धे**त्यादि. तथाच अपहतपाप्मत्वसत्यकामत्वसत्यसङ्कल्पत्वप्रतिपादकाः शब्दा अपि ब्रह्मप्रतिपादकाः जीवे विरुद्‌धाः. इदमपि जीवभिन्नब्रह्मपरत्वे शब्दानां लिङ्गम्. **‘‘अहं ब्रह्मास्मि’’** इति

गोस्वामिश्रीमद्‌गिरधरविरचितं विवरणम्

स्वामिसेवादिना प्राप्तः धनराज्यादिः इति यावत्. **लोकः.** सुखहेतुत्वेन भोग्यः. पराधीनोपभोगः इति यावत्. **क्षीयते** अन्तवान् भवति. तथा अग्निहोत्रादिना प्राप्तः स्वर्गोऽपि क्षीयते इति श्रुत्यर्थः. एतद् अग्रे **‘‘आत्मानम् अनुविद्य व्रजन्ति’’** (छान्दो.उप. ८।१।६) इति वाक्यम्. तदग्रे **‘‘आत्मानम् अनुविद्य व्रजन्ति एतांश्च सत्यान् कामाः तेषां सर्वेषु लोकेषु अकामचारो भवति’’** (तत्रैव) इति वाक्यम्. अयम् आशयः. आत्मज्ञानम् असम्पाद्य ये व्रजन्ति तेषां सर्वेषु लोकेषु अकामचारः पुनरागमनं च इति प्रथमवाक्यार्थः. अत्र दृष्टान्तः **यथेह** इत्यादि. ये आत्मज्ञानं सम्पाद्य व्रजन्ति तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति इति द्वितीयवाक्यार्थः. तथाच प्रथमवाक्यं जीवस्य अज्ञानं बोधयन् गतेः ब्रह्मविषयत्वे लिङ्गम्. द्वितीयवाक्येन गतेः लिङ्गं व्याकुर्वन्ति **नहि स्वे**ति. यदि गन्तॄणां मनोरथादिकल्पितत्वं स्यात् तदा अज्ञानिवद् ज्ञानिनामपि गन्तॄणां मिथ्यात्वात् तेषु सर्वलोककामचाररूपहितस्यापि अकरणप्रसक्तिः. अतः हितकरणे सत्यजीवकर्तृत्वं बोधयन् गतेः जीवभिन्नब्रह्मविषयत्वे लिङ्गम् इति भावः. ननु ज्ञानेन अज्ञाननाशे कल्पितरूपनिवृत्त्या स्वसामर्थ्योद्‌बोधेन ब्रह्माभिन्ने जीवे हितस्य उपयोगाद् इत्यतः आह **नच** इति. **विरोधित्वाद्** इति. अनुविद्येति श्रुत्युक्तव्रजनविरोधित्वात्. तदेव व्युत्पादयन्ति **नहि** इति. गतेः लिङ्गं व्याख्याय शब्दस्य ब्रह्मपरत्वे लिङ्गम् आहुः **विरुद्धे**ति. अप्यर्थे ‘च’कारः. तथाच जीवाभिन्नकल्पनापि श्रुतिविरुद्धा इति अर्थः. अत्र हेतुम् आहुः **अहम्**

(बृहदा.उप.१।४।१०) अतएव सर्वभावश्रुतेः तज्ज्ञानं च तस्य सार्वज्ञे लिङ्गम्. तस्य हि सः गुणो ‘भग’शब्दवाच्यानाम् अन्यतरः. सः चेद् जीवे समायाति तत्कृपया तस्येव अस्यापि माहात्म्यं भवति. तस्मात् लिङ्गादपि गति-शब्दौ ब्रह्मविषयौ. ‘च’करात् **‘‘तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय’’** (श्वेता.उप.३।८) इति श्रुत्या ब्रह्मत्वेन ज्ञानं न आत्मनो मोक्षाय. ब्रह्मणएवतु ज्ञानम् आत्मत्वेनापि. तस्माद् दहरः परमात्मा।।१५।।

धृतेश्च महिम्नोस्यास्मिन् उपलब्धेः।।१६।।

अपरं हेतुम् आह **धृतेः. ‘‘अथ यः आत्मा सः सेतुर्विधृतिरेषां लोकानाम्**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

कल्पना भगवद्धर्माप्राप्तिदशायां विरुद्धा इति अर्थः. **अतएव** भगवद्धर्मप्राप्तेः पूर्वम् उक्तकल्पनायाः विरुद्धत्वादेव. **सर्वभावश्रुतेः** सर्वस्य ब्रह्मत्वेन ज्ञानस्य श्रुतिसिद्धत्वाद् इति अर्थः. **तज्ज्ञानञ्च** जीवस्य ‘‘सर्वं ब्रह्म’’ इति ज्ञानञ्च इति अर्थः. **तस्य** जीवस्य. **तस्य** ब्रह्मणः. **सः** सर्वज्ञतालक्षणः. **अन्यतरः** ऐश्वर्येत्यादिषण्णाम् अन्यतरः. **तस्येव** भगवतः इव. **तस्यापि** जीवस्यापि. श्रुतिस्थं ‘‘तमेव’’ इति अंशं व्याकुर्वन्ति **ब्रह्मत्वेन** इत्यादि. तथाच **आत्मनः** स्वात्मनः ब्रह्मत्वेन ज्ञानं न **मोक्षाय** किन्तु ब्रह्मणः सर्वरूपत्वेन ज्ञाने स्वात्मरूपताज्ञानस्यापि सम्भवाद् ब्रह्मणएव आत्मत्वेन ज्ञानं मोक्षाय इति अर्थः।।१५।।

हेतुं ‘दहर’पदवाच्यपरब्रह्मत्वे हेतुम्. **सेतुः** यावत्सृष्टपदार्थानां यद्यत्कार्यार्थत्वं स्वयम् उद्दिष्टं तस्य-तस्य तत्तत्कार्यकरणं तदितराकरणं च तत्र नियामकः. **विधृतिः**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति. बृहदारण्यके **‘‘य एवं वेद अहं ब्रह्मास्मि इति स इदं सर्वं भवति’’** (बृहदा.उप. १।४।१०) इति ज्ञानानन्तरमेव सर्वभावश्रुतेः. **तज्ज्ञानम्.** ‘‘अहं ब्रह्मास्मि’’ इति ज्ञानम्. **तस्य** जीवस्य, लिङ्गकरणम्. **तस्य हि** इति. भगवतः इति अर्थः. सगुणो भगवत्कृपया वामदेवादिवद् जीवे समायाति यदा, तदा तस्यापि सर्वलोक-कामचारादिरूप-माहात्म्यं भवति इति वाक्यार्थः. एवञ्च अपहतपाप्मत्वादिरूपः शब्दः जीवभिन्नब्रह्मपरः इति सिद्धम्. **ब्रह्मत्वेन ज्ञानम्** इति. आत्मनो ब्रह्मत्वेन ज्ञानम् इति अन्वयः. श्रुतौ ‘तमेव’ इति ‘एव’कारात् अयम् अर्थो गम्यते. पुरुषविधब्राह्मणोक्तं ‘‘अहं ब्रह्मास्मि’’ इति ज्ञानं ब्रह्मणः सर्वरूपत्वज्ञानानन्तरमेव इति विरोधः. एवम् अहंग्रहोपासनायां बोध्यम्. **तस्माद्** गतिशब्दरूपाद् हेतुद्वयात्।।१५।।

सूत्रम् अवतारयन्ति **अपरम्** इति. उत्तरेभ्यः इति. हेतुबाहुल्याद् इति शेषः.

असम्भेदाय’’(छान्दो.उप.८।४।१) इति. न हि सर्वलोकविधारकत्वं ब्रह्मणो अन्यस्य सम्भवति. **‘च’**कारात् सेतुत्वमपि. **‘‘तद् अन्वेष्टव्यं तद् विजिज्ञासितव्यम्’’**(तत्रैव८।१।१) इति लोकविधारणस्य माहात्म्यरूपत्वात्. तस्यैव कर्मत्वम् इति आह **महिम्नः** इति. महिमा एषः पुरुषस्य, नतु वासनारूपेण तस्मिन् विद्यमानत्वम्. संसारिधर्मत्वेन अमाहात्म्यरूपत्वात्. नच विरुद्धम् उभयत्र एकस्य दर्शनम् इति वाच्यम्. **अस्य अस्मिन् उपलब्धेः. अस्य** एतादृशविरुद्धधर्माश्रयमाहात्म्यस्य **अस्मिन्** भगवत्येव **उपलब्धेः. ‘‘ज्यायान् आकाशाद्यावान्**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

स्वयं यथा स्थापिताः पदार्थाः तथैव तिष्ठन्ति तत्र हेतुभूता. **असम्भेदाय** धारकाभावपतनेन सर्वेषां लोकानाम् एकत्रमिश्रीभाववारणाय. **तस्यैव** सर्वधारकस्यैव. **कर्मत्वम्** अन्वेषणविजिज्ञासा–कर्मत्वम्. **एषः** पूर्वोक्तः. **पुरुषस्य** पुरुषसम्बन्ध्येव वास्तवएव इति अर्थः. **वासनारूपेण** ‘‘सर्वस्य अहं सेतुः धर्ता’’ इति भ्रमात्मकज्ञानत्वेन. **तस्मिन्** ब्रह्मणि. **विद्यमानत्वम्** इति वर्तित्वम्. तत्र हेतुः **संसारी**त्यादि. तथाच आध्यासिकसेतुत्वधारणादेः ब्रह्मणि कल्पने अज्ञानित्वसिद्धौ माहात्म्यनाशः. सेतुत्वस्य श्रुतिसिद्धत्वाद् सिद्धत्वाद् धारणस्य च बहिःस्थितधर्मत्वाद् उभयं च एकस्य विरुद्धं कथं सम्भवेद् इत्यतः आहुः **नच इत्यादि. उभयत्र** अन्तः बहिः. **एकस्य** भगवतः. **दर्शनम्** अनुभवः. **अस्य** भगवतः. **अस्मिन् उपलब्धेः** अन्तः बहिश्च उपलब्धेः इति अर्थः. श्रीयशोदायाएव दर्शनरूपोपलब्धेः सर्वजनीनत्वाद् मुखस्य बहिः अन्तश्च भगवद्दर्शनात्. **विरुद्धधर्मेत्यादि ‘‘अणोरणीयान् महतोमहीयान्’’** (श्वेता.उप. ३।२०) इत्यादावपि उपलब्धिः।।१६।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

असम्भेदाय असाङ्कर्याय इति अर्थः. **विधारकत्वम्** इति. **‘‘क्तिच्क्तो सञ्ज्ञायाम्’’** (पाणि.सू.३।३।१७४) इति सूत्रविहितस्य कर्त्रर्थककिजन्तस्य ‘धृति’शब्दस्य अर्थः. **सेतुत्वम्** इति. स्वयं साधनीभूय निःसाधनपारप्रापकत्वम्. अग्रिमं व्याकुर्वन्ति **तद् अन्वेष्टव्यम्** इति. अन्वेषणकर्मत्वं तस्य विधारणस्य इति आशयेन हेत्वन्तरम् आह इति अर्थः. **महिमा** इति. **‘‘एतावानस्य’’**(ऋग्वेद ८।४।१७) इति मन्त्रे पुरुषस्य ब्रह्मणोऽपि महिम्नः ज्यायस्त्वं श्रुत्यैव उक्तम् अतो अस्मान् महिम्नोऽपि तथा इति अर्थः. तथाच हेतुद्वयम् इति भावः. **नच** इति. **उभयत्र.** अन्तर्बहिश्च. **एकस्य**. द्यावापृथिव्यादिजगतः दर्शनं विरुद्धम् इति न वाच्यम् इति योजना. **यावान् वा** इति. आकाशतुल्येति अर्थः.

वा अयमाकाशः अणुः स्थुलः''(तत्रैव८।१।३) इति. यशोदादयश्च बहिःस्थितमपि जगद् अन्तः प्रपश्यन्ति. नतु एतादृशो जीवो भवितुम् अर्हति. तस्माद् ब्रह्मैव दहरः।।१६।।

प्रसिद्धेश्च।।१७।।

'आकाश'शब्दवाच्यत्वप्रसिद्धिः, अपहतपाप्मत्वादिप्रसिद्धिः, किं बहुना प्रकरणोक्तसर्वधर्मप्रसिद्धिः भगवत्येव, न जीवे सम्भवति अतोऽपि भगवानेव दहरः. 'च'काराद् विधिमुखेन अधिकरणसमाप्तिः सूचिता।।१७।।

अन्यनिषेधमुखेन पुनः विचारयति

इतरपरामर्शात् स इति चेन्नासम्भवात्।।१८।।

ननु ब्रह्म एतादृशं, जीवो न एतादृशः, इति न क्वचित् सिद्धम् अस्ति, श्रुत्येकसमधिगम्यत्वाद् उभयस्वरूपस्य ब्रह्मवादे. अतो यथा सर्वत्र ब्रह्मणो असाधारणधर्मदर्शनात् तत्तत्प्रकरणं ब्रह्मणः इति निश्चीयते एवम् इहापि जीवस्य असाधारणधर्मदर्शनाद् जीवप्रकरणम् इति कुतो न निश्चीयते ? निश्चितेतु तस्मिन् आकाशतुल्यत्वादयो धर्मा जीवस्यैव भविष्यन्ति न अन्यस्य इति अभिप्रायेण आह **इतरपरामर्शात् सः**. इतरो जीवः तस्य परामर्शः. उपक्रमोपसंहारमध्यपरामर्शैः सन्दिग्धे निर्णयः. तत्र आत्मविदः सर्वान् कामान्(छान्दो.उप.८।१।६) उक्त्वा

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

'आकाश'पदस्य अपहतपाप्मत्वादिनिखिलप्रकरणस्थधर्माणां शब्दानां भगवत्येव प्रसिद्धेः 'दहर'पदवाच्यः परमात्मैव इति अर्थः।।१७।।

पूर्वं चतुःसूत्र्या विधिमुखेन ब्रह्मणि 'दहर'पदवाच्यत्वं स्थापितम् एतदादिचतुःसूत्र्यातु 'दहर'पदवाच्यत्वं जीवे न सम्भवतीति व्यतिरेकमुखेन 'दहर'पदवाच्यत्वं ब्रह्मणि स्थापयन्ति **ननु** इत्यादिना. **परामर्शैः** उपपादनसम्भवैः. **सन्दिग्धे** 'दहर'पद–

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

यशोदादीनाम् उभयत्र दर्शनाद् विरुद्धधर्माधारत्वं स्फुटम् इति भावः. ''**अथो अमुष्यैव मम अर्भकस्य यः कश्चन औत्पत्तिक आत्मयोगः**'' (भाग.पुरा.१०।८।४०) इत्यनेन माया–पक्षनिराकरणेन महिम्नः स्फुटत्वं बोध्यम्।।१६।।

''**प्रसिद्धेश्च**''. स्फुटम् ।।१७।।

इतः आरभ्य चतुःसूत्र्याः प्रयोजनम् आहुः **अन्यनिषेधे**ति. आशङ्काम् अवतारयन्ति **ननु** इति. परामर्शम् आहुः **तत्र आत्मविदः** इति.

मध्ये,

> **‘‘अथ य एषः सम्प्रसादो अस्माच् छरीरात् समुत्थाय परं ज्योतिरूपसम्पद्य स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यते एषः आत्मेति होवाच एतदमृतम् अभयम्’’** (छान्दो. उप.८।३।४)

इत्यादि मध्ये. अग्रे **‘‘अथ य आत्मा सः सेतुः’’**(तत्रैव ८।४।१) इति. तत्र सम्प्रसादः सुषुप्तिः जीवावस्था. तत्र परसम्बन्धनिमित्तेन स्वेनैव रूपेण अभिनिष्पत्तिवचनाद् जीवएव एतादृशः इति गम्यते. नहि अत्र परमात्मनो अयं धर्मः सम्भवति. अतः सर्वमेव प्रकरणं जीवपरं भविष्यतीति सएव जीवएव प्रकरणार्थः इति चेद्, न. जीवः तादृशो न भवति, विरुद्धधर्मत्वैनेव सर्वत्र तन्निश्चयात्. उभयोः एकरूपत्वे हि उभयत्वमेव न स्यात्. **‘‘ऋतं पिबन्तौ’’** (कठोप.३।१) इत्यादिवाक्यविरोधश्च. अतो न जीवः तादृशः इति अभिप्रायेण

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

वाच्यत्वे सन्दिग्धे. **निर्णयः** पूर्वोक्तपरामर्शैः निर्णयः. **उक्त्वा** उपक्रमे उक्त्वा. **अग्रे** उपसंहारे. **अभिनिःपत्तिवचनाद्** अनुभवनिरुक्तिकरणात्. **अयं** सुषुप्तिरूपः सम्प्रसादः. एवम् इतरपरामर्शं व्याख्याय तस्य जीवे प्रकरणित्वसाधकतां व्युदस्यन्ति **न** इत्यादिना. **तादृशः** प्रकरणी. **विरुद्धे**त्यादि. ब्रह्मविरुद्धधर्मत्वेनैव श्रुतिस्मृत्यादिषु जीवस्य निश्चयात्. **उभयोः** जीवब्रह्मणोः. **एकत्वे** एकव्यक्तिरूपत्वे. **उभयत्वमेव न स्याद्** उभयत्वस्य व्यक्तिद्वयमात्रपर्याप्तव्यासज्यवृत्तिधर्मत्वाद् इति अर्थः. ननु उभयत्वम् आध्यासिकं नतु वास्तवम् अतः आहुः **ऋतम्** इत्यादि. तथाच ‘पिबन्तौ’ इति द्विवचनम् अनुपपन्नं स्याद् इति अर्थः. नहि श्रुतिप्रणेतुः अध्यासः सम्भवति. **तादृशः** एतत्प्रकरणी **असम्भवाद्** हृदयान्तर्वर्तिनि जीवे अखिलजगदाधारत्वस्य असम्भवाद् इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अभयम् इत्यादि इति. उक्त्वा इति शेषः. जीवपरत्वं व्याकुर्वन्ति **तत्र** इति. **जीवावस्था** इति बृहदारण्ये सम्प्रसादस्य जीवावस्थाविशेषत्वं प्रतिपादितम्. **तत्र** सुषुप्तौ. ब्रह्मसम्बन्धनिमित्तेन इति अर्थः. **वचने**ति. इदमेव जीवासाधारणं लिङ्गम् इति भावः. परामर्शस्य असाधकत्वम् आहुः **न** इत्यादि. **विरुद्धे**ति. ब्रह्मविरुद्धेति अर्थः. **तन्निश्चयाद्** इति. जीवत्वनिश्चयाद् इति अर्थः. ननु जीवस्य ब्रह्माभिन्नत्वाद् विरुद्धधर्माध्यासाङ्गीकारे दोषाभावाद् इत्यतः आहुः **उभयोः** इति. असम्भवम् आहुः **न हि** इति. **जीवे**ति. हृदयान्तर्वर्तिनीति शेषः।।१८।।

आह **असम्भवात्.** नहि जीवे जगदाधारत्वादिकं सम्भवति. नहि परामर्शमात्रेण सर्ववेदान्तविरुद्धं कल्पयितुं शक्यते. परामर्शस्य अन्यार्थत्वम् उत्तरत्र वक्ष्यति. तस्माद् दहरो जीवो न भवितुम् अर्हति. वाक्यार्थो यथा उपपद्यते तथा उत्तरत्र वक्ष्यते. ब्रह्मतु एकमेव न उभयम् इति निश्चयः।।१८।।

उत्तरात् चेद् आविर्भूतस्वरूपस्तु।।१९।।

उतरात् प्रकरणात् प्राजापत्यात्. तत्रहि दिव्ये चक्षुषि मनोरूपे प्रतीयमानो जीवएव अमृताभयरूपो निरूपितः. तस्यैव उदशरावे जाग्रत्साक्षित्वं, तदनु स्वप्नसाक्षित्वं, तदनु सुषुप्तिसाक्षित्वं निरूप्य सर्वत्र तस्य अमृतरूपत्वमेव निरूप्य अवस्थानाम् अतात्त्विकत्वम् उक्त्वा समाध्यवस्थायां मनसि तमेव जीवं

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

विरुद्धं जीवत्व–ब्रह्मत्वोभयम्. **कल्पयितुं** एकस्मिन् व्यक्तिविशेषे कल्पयितुम्. **उत्तरत्र** सूत्रान्तरे।।१८।।

तस्य प्रकरणस्य जीवपरत्वं व्युत्पादयन्ति **तत्र** इत्यादिना. ''**दिव्ये चक्षुषि मनोरूपे**'' (   ) इति ''**मनोस्य दिव्यं चक्षुः**''(छान्दो.उप.८।१२।५) इति प्रजापतिना वक्ष्यमाणत्वात्. ननु अग्रे ''**यो अयं भगवो अप्सु परिख्यायते यश्चायम् आदर्शेकतमः एषः**'' (छान्दो.उप.८।७।४) इति प्रश्ने ''**एष उ एवैषु सर्वेष्वन्तरेषु परिख्यायते**''(तत्रैव) इति प्रत्युत्तरात् प्रतिबिम्बपुरुषएव अत्र प्रतीयतइति कथम् अस्य मनसि प्रतीयमानजीवस्वरूपत्वम् इत्यतः आह **तस्य** इत्यादि. यदि हि प्रतिबिम्बात्मैव अत्र उपदेश्यः स्यात् तदा ''**उदरशराव आत्मानमवेक्ष्य यदात्मनो विजानीथः तन्मे प्रब्रूतम्**''(छान्दो.उप.८।८।१) इत्यनेन यः सम्बन्धिप्रतिबिम्बे अज्ञातत्वेन उक्तः सः आत्मा इति बोधितम्. ततः ताभ्याम् उदशरावेक्षणेन शरीरस्य आत्मत्वे बोधिते ततोऽपि निवार्य जाग्रत्साक्षिणं मनसि अहंवित्त्या बोधयितुं ''**साध्वलङ्कृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वा उदशरावेवेक्षथाम्**''(छान्दो.उप.८।८।२) इत्यादिना ''**एष आत्मा**'' (तत्रैव८।५।३) इति वाक्येन दृष्टात्मा बोधितः. ततः तावता तदज्ञाने देहात्मज्ञानवतां पराभवं तेषाम् आसुरत्वं च उक्त्वा ततः इन्द्रस्य पुनः प्रत्यागमने तं प्रति जीवस्यैव स्वप्नसाक्षित्वं पुनः सुषुप्तिसाक्षित्वं प्रतिपादयति तेन अत्र जीवएव उपदेष्टव्यो न प्रतिबिम्बो देहो वा. तेन

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उत्तरात् चेद् आविर्भूतस्वरूपस्तु प्राजापत्यप्रकरणस्य जीवपरत्वम् आहुः **तत्र** इति. प्राजापत्यप्रकरणार्थस्तु तस्मिन्नेव अध्याये विषयवाक्ये बोध्यः. विस्तरभयाद्

प्रतिपादयति. अतो जीवोऽपि वस्तुतः तादृशएव इति प्रकृतेऽपि परामर्शात् सएव इति चेत्. एवम् आशङ्क्य परिहरति **‘तु’**शब्देन. न अयम् अर्थो दूष्यते, किन्तु किञ्चिद् अन्यद् अस्ति इति न ‘न’कारप्रयोगः. तद् आह **आविर्भूतस्वरूपः.** स्वाप्ययसम्पत्त्योः भगवदाविर्भावो जीवे भवति नृसिंहोपासकस्य नृसिंहाविर्भाववत्. ब्रह्मणः उपदेशसमये भगवदाविर्भावात्. सर्वत्र स्वात्मानं पश्यन् इन्द्रेऽपि तथैव उपदिष्टवान् प्रजापतिः. अन्यथा प्रतिबिम्बादौ अमृताभयवचनं मिथ्या स्यात्. इन्द्रेतु आविर्भावाभावात् प्रजापत्यसन्निधाने विपरीतं पश्यति. अतः तावन्मात्रदोषपरिहाराय अन्यथोपदेशः. स्वप्नादिषु तथा प्रकृतेऽपि. सुषुप्तावस्थायां भगवदाविर्भावात् तथावचनम्. तस्माद् उभयमपि भगवत्प्रकरणमेव.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सिद्धम् आहुः **अतः** इति. **तादृशः** इत्यादि. **तादृशः** अमृताभयरूपोपहतपाप्मा च वस्तुतो ब्रह्मात्मकएव उत्तरप्रकरणे सिद्धः इति सर्वत्रापि सएव गृह्यताम् इति अर्थः. **परिहरति** जीवे ब्रह्मरूपतया अमृतादिविशेषणानि उक्तानि तं पक्षं परिहरति इति अर्थः. **अयम् अर्थः** अमृताभयादिरूपैः जीवस्य अनुभवरूपो अर्थः. **किञ्चिद्** उक्तानुभवस्य उपपादने प्रकारविशेषः. तं प्रकारम् आह **आविर्भूतस्वरूपः** इति. आविर्भूतं प्रकटीभूतं ब्रह्मस्वरूपं यस्मिन् सः प्रजापतिः तथा इति अर्थः. आविर्भावएव कथम्? इत्यतः आहुः **स्वाप्यये**त्यादि. अनुगमाधिकरणे ‘‘**मय्येव सकलं जातम्**’’(कैव.उप.१९) इत्यादि–वाक्यानुरोधाद् उत्तमाधिकारिणाम् उपदेशकाले भावनादिनापि जीवे ब्रह्माविर्भावसम्पत्तिः भवति इति उपपादितम्. अतो अत्रापि प्रजापतिजीवे ब्रह्माविर्भावात् सर्वविशेषणानि उद्घोष्यन्ते नतु जीवो ब्रह्मैव अतः. **अन्यथा** प्रतीतिमात्रेण ब्रह्मत्वाङ्गीकारे. **प्रतिबिम्बादौ** इति **आदि**पदेन शरीरपरिग्रहः प्रजापतेः सर्वत्रैव ब्रह्मभावेन सर्वत्रैव तथोपपादनाद् इति भावः. **तावन्मात्रदोषः** असन्निधाने विपरीतदर्शनदोषः. **अन्यथोपदेशः** देहादिविलक्षणतया उपदेशः।।१९।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

विरम्यते. परिहारं व्याकुर्वते **एवम्** इत्यादि. कथं परिहारः? इत्यतः आहुः **तद् आह** इति. **आविर्भूतस्वरूपः** इति. उत्तरप्रकरणे प्रजापतिवाक्ये ‘‘**परंज्योतीरूपं सम्पद्य स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यते**’’ (छान्दो.उप.८।३।४) इति श्रूयते. तथा च आविर्भूतं प्रकटीभूतं ब्रह्मस्वरूपं यस्मिन् इति अर्थः. कथम् आविर्भावः? इत्यतः आहुः **स्वाप्यये**ति।।१९।।

एवम् अन्यत्रापि भगवदावेशकृता *भगवद्धर्माभिलापा ऊह्याः. तस्माद् दहरः परमात्मैव।।१९।।

अन्यार्थश्च परामर्शः।।२०।।

परामर्शस्य प्रयोजनम् आह. **अन्य**एव **अर्थः** प्रयोजनं यस्य. ''**तस्माद् यम् अहरहर्वा एवं वित् स्वर्गं लोकम् एति**'' (छान्दो.उप.८।३।५). स्वस्य एवं ज्ञाने हि ब्रह्मसुखं फलं ब्रह्मज्ञानापेक्षायाम् उपयुज्येत. भगवतश्च तदा आविर्भावो भवति इति '**च**'कारार्थः. सम्पतौ भगवदावेशकथनार्थं वक्ष्यति च ''**स्वाप्यय-सम्पत्त्योः अन्यतरापेक्षम आविष्कृतं हि**'' (ब्रह्मसू.४।४।१६) इति चतुर्थे. तस्माद् न परामर्शेन अन्यथा वल्गनम् ('कल्पनम्' इति पुरु.पाठः)।।२०।।

अल्पश्रुतेरिति चेत् तदुक्तम्।।२१।।

ननु न वयं जीवे उपपत्तिः अस्ति इति जीवप्रकरणं कल्पयामः किन्तु

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

यस्य परामर्शस्य प्रयोजनमेव आहुः **तस्माद्** इत्यादि. प्रथमे प्रकरणे ''**तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यम् इति तानि ह वा एतानि त्रीणि अक्षराणि सतियमिति यद्यत्सत् तद् अमृतम् अथ यतति तद् मर्त्यम् अथ यद्यं तेन उभे यच्छति यदनेन उभे यच्छति तस्माद्यमहरहर्वा एवंवित् स्वर्गं लोकमेति**'' (छान्दो.उप.८।३।४,५) इति वाक्ये स्वस्य भगवद्विषयके अमृतमर्त्ययमयितृत्वज्ञाने सति ब्रह्मसुखं फलम् उक्तम् अतः तत्साधनभूतब्रह्मज्ञानापेक्षायां मुक्त्यधिकारिजीवज्ञानम् अपेक्षितम्. नहि नियम्यज्ञानं विना नियामकज्ञानं सम्भवति अतः मर्त्यस्य प्रसिद्धत्वाद् अमृतज्ञानार्थं जीवपरामर्शः इति फलितम्. **उपयुज्येत** जीवपरामर्शः जीवज्ञानं उपयुज्येत इति अर्थः।।२०।।

''**अल्पश्रुतेरितिचेत् तदुक्तम्**''।।२१।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सूत्रम् अवतारयन्ति **परामर्शस्य** इत्यादि. अर्थम् आहुः **तस्माद्** इत्यादि. यः स्वस्यैव इति भगवान् अमृतरूपः मर्त्यतः यमयिता एवं स्वस्य जातं चेद् ब्रह्मसुखं फलं जायते इति अर्थः. **ब्रह्मज्ञाने**ति. फलसाधनीभूतेत्यादि. **उपयुज्येत** इति. **अमृतभूत–जीवज्ञानम्** इत्यादि. एतादृशसूत्रार्थे प्रमाणम् आहुः **वक्ष्यति** इति।।२०।।

तथा पुरुषशरीरं च इति विजिघत्सो अपिपासः इत्यादिधर्मैः सूचितं पुरुषशरीरं च विरुद्धम् इति न आशङ्कनीयम् इति अर्थः. भक्तिमार्गेऽपि एतादृशएव भगवान् साक्षाद्

---

*'...भिलापाद् ग्राह्याः' इति पुरु.पाठः

ब्रह्मणि न अयम् अर्थः उपपद्यते. **अल्पश्रुतेः.** अल्पे हि पुण्डरीके कथं भगवदवस्थानम्? व्यापकत्वश्रवणात्. ''**यावान् वा अयम् आकाशः**'' (छान्दो. उप.८।१।३) इति. तस्माद् विरोधपरिहाराय जीवएव आराग्रमात्रः तथा भवतु इति कल्प्यते इति चेत् तर्हि भवान् सम्यग्विचारको अस्मदीयएव. परं तत्समाधानं पूर्वमेव उक्तं ''**निचाय्यत्वाद् एवं व्योमवच्च**'' (ब्रह्मसू.१।२।७) इति अत्र. तद् न प्रस्मर्तव्यम्. विरोधस्तु सर्वभवनसमर्थे ब्रह्मणि न आशङ्कनीयः. तथा पुरुषशरीरं च. ''**पुरुषत्वे च मां धीराः सांख्य-योगविशारदाः, आविस्तरं प्रपश्यन्ति सर्वशक्त्युपबृंहितम्**'' (भाग.पुरा.११।७।२१) इति भगवद्वाक्यात्. तस्माद् भगवानेव दहरः इति सिद्धम्।।२१।।

इति प्रथमाध्याये तृतीयपादे पञ्चमं दहराधिकरणम्।।५।।

अनुकृतेस्तस्य च।।२२।। (१।३।६)

दहरविरुद्धं वाक्यम् आशङ्क्य परिहरति. ''**न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमाविद्युतो भान्ति कुतो अयम् अग्निः तमेव भान्तम् अनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वम् इदं विभाति**'' (कठो.उप.२।२।१०) इति कठवल्याम् अन्यत्र च श्रूयते. 'यत्-तच्'छब्दानाम् एकार्थत्वं प्रकरणाद् ब्रह्मपरत्वं च अवगतम्. अर्थाच्च

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उपोद्घातसङ्गतिं प्रदर्शयितुम् आहुः **दहरे**ति. मुण्डक-कठवल्ल्योः ब्रह्मप्रकरणत्वस्य अदृश्यत्वाद्यधिकरणेषु साधितत्वात् तद्वाक्यस्य ब्रह्मपरत्वेन तद्विरुद्धं दहरवाक्यं न ब्रह्मपरम् इति शङ्कानिरासाय आशङ्क्य इति अर्थः. **यत् तच्छब्दानाम्** इत्यादिना संशयबीजम् आहुः. विषयः आदावेव उक्तः. कठवल्ल्यां ''**य एष सुप्तेषु जागर्ति**''(कठोप.२।२।८) इति 'यच्छ'ब्दः मन्त्रान्तरे ''**तस्मिन् लोकाः श्रिताः सर्वे**''(तत्रैव) इति 'तच्छ'ब्दः. *अस्मिन् मन्त्रे ''**तमेव भान्तम्**'' (कठोप.२।२।१०) इति मन्त्रे 'तच्छ'ब्दः. मुण्डके ''**यत्र देवः क्रतुभिः विभाति**[४] **भावन**'' (   ) इति 'यच्छ'ब्दः. मन्त्रान्तरे ''**न तत्र सूर्योभाति**'' (कठोप. २।२।१०) इति 'तच्छ'ब्दः. **यत्तच्छब्दानाम् एकार्थत्वं प्रकरणाद् ब्रह्मपरत्वं च अवगतम्**. तथापि अर्थतः **सन्देहः**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

भवति इति सिद्धम्।।२१।।

अनुकृत्याधिकरणम् आहुः ''**अनुकृतेस्तस्य च**''. **अन्यत्र** इति. मुण्डके श्रूयते. पञ्चमवल्लीसमाप्तौ द्वितीयमुण्डकसमाप्तौ श्रूयते. संशयम् आहुः **यत्तद्** इति.

सन्देहः. **''यस्मिन् द्यौः''** (मुण्ड.उप.२।२।८) इत्यत्र सूर्यादीनां ब्रह्माधारत्वम् उक्तम्. अस्मिन् च वाक्ये पूर्वार्धे तत्र तेषां भानं निषिद्ध्यते.

यत्र यत् सर्वदा तिष्ठेत् तत्र चेत् तन्न भासते ।
क्व भासेताप्यपेक्षायां कर्मत्वे श्रुतिबाधनम्।।२०।।

यत्र इति अधिकरणसप्तमी. यत्र लोकान्तरस्थितानामपि अभानं, तत्र अग्नेः का वार्ता इति वचनात् सत्यलोकस्थितः कश्चित् तेजोविशेषएव वाक्यार्थः इत्येवं प्राप्ते, उच्यते **अनुकृतेः तस्य.** भगवदनुकारार्थमेव एतद् वचनम्. स्वतो भाननिषेधः पूर्वार्धे. सर्वोऽपि पदार्थः तमेव अनुकरोति, सूर्यं रश्मयइव, छाया पुरुषमिव. तस्माद् वाक्ये भगवदनुकारित्ववचनाद् न नानार्थकल्पनम्. किञ्च **''तस्य भासा सर्वम् इदं विभाति''** (मुण्ड.उप.२।२।१०) इति सूर्यादीनां स्वतः प्रकाशो नास्त्येव, घटवत्. भगवत्प्रकाशेनैव प्रकाशवत्त्वम् इति **'च'**कारार्थः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्यत्र 'यत्तच्'छब्दाभ्याम् उपात्तं ब्रह्म उत सत्यलोकस्थितः कश्चित् तेजो विशेषो वा इति सन्देहः इति अर्थः. सन्देहमेव उपपादयन्ति **यस्मिन्** इत्यादिना. **ब्रह्माधारत्वं** ब्रह्मवृत्तित्वम्. नच **''तमेव भान्तम्''**(यथापूर्वम्) इत्यादिना तदपेक्षया अधिकभानएव निषेधपर्यवसाने सिद्धे न तद्वृत्तित्वबाधनम् इति वाच्यम्. तथापि अकर्मक'भा'धातोः सकर्मकत्वनिर्देशेन श्रुतिबाधनं दोषः. तथाहि **''तमेव भान्तम् अनुभाति सर्वम्''** इत्यत्र तत्कर्मकं यद् भानं तादृशभानकर्मकं यद् अनुभानं तत् सर्वपदार्थे भासते इति भातेः सकर्मकत्वघटिता श्रुतिः सा बाधेत इति अर्थः. पूर्वपक्षम् आहुः **यत्र** इति वचनम् आरभ्य. **तेजोविशेषः** इति सूर्यादितेजसां पराभवसम्पादकः तेजोविशेषः इति अर्थः. तथाच यथाश्रुतएव उक्तश्रुत्यर्थः. कर्मत्वांशे श्रुतिबाधोऽपि नास्ति. अनोः कर्मप्रवचनीयत्वेन अनुयोगे द्वितीयायाः उपपदविभक्तित्वे क्रियाजन्यफलार्थत्वाभावात् पूर्वोक्तश्रुत्यर्थएव

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

''य एष सुप्तेषु जागर्ति'' (कठोप.५।८). मन्त्रान्तरेऽपि **''तस्मिन् लोकाश्रिताः सर्वे''** (तत्रैव२।२।८) इत्यादिमन्त्रेषु 'यत्'-'तच्छ'ब्दानाम् इति अर्थः. अर्थजन्यसन्देहम् आहुः **यस्मिन्** इति. पूर्वपक्षी श्रुतितात्पर्यम् उक्त्वा समाधानम् आहुः **तत्र** इति. सूर्यादीनाम् अभाने पूर्वार्द्धश्रुतेः न तात्पर्यं किन्तु ''गजाः यत्र'' इति न्यायेन अन्यत्रतात्पर्यम् इति अदोषः. **''तमेव भान्तम्''**(कठोप.२।२।१०) इति उतरार्द्धे तेजोविशेषएव वाक्यार्थः इति अर्थः. समाधानम् आहुः **भगवदि**ति. **न अन्यार्थकल्पनम्** इति. सत्यलोकस्थिततेजोविशेषः इति अर्थः।।२२।।

तस्मात् स्वतो अभाने लक्षणया कर्मत्वे वा भगवत्परत्वे सिद्धे न अन्यार्थकल्पनम्।।२२।।

अपि स्मर्यते।।२३।।

व्याख्याते अर्थे सम्मत्यर्थम् आह. **‘अपि’** इति समुच्चयः. **‘‘न तद् भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः’’**(भग.गीता१५।६) **‘‘यदादित्यगतं तेजो जगद् भासयते अखिलम्, यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्’’**(तत्रैव १५।१२) इति च. तस्माद् भगवानेव सर्वावभासकः. तमेव सर्वम् अनुकरोति इति सिद्धम्।।२३।।

इति प्रथमाध्यास्य तृतीयपादे षष्ठम् अनुकृत्यधिकरणम्।।६।।

शब्दादेव प्रमितः।।२४।। (१।३।७)

प्रसङ्गात् पुनर्बाधकान्तरम् आशङ्क्य परिहरति. **‘‘अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

साधीयान् इति फलितो अर्थः. समाधिं व्याकुर्वते **भगवदि**त्यादि. सत्यलोकाग्न्यभाने यद् वाक्यपूर्वार्धतात्पर्यम् उक्तं तद् न. उत्तरार्धे सर्वस्य अनुकारित्वकथनात् सर्वस्य तद्भासा भानकथनाच्च. तथाच सर्वस्य भगवदनुकारार्थमेव एतद् वचनम्. एतद् विवरणं **स्वतः** इत्यादि. ननु पूर्वोक्ततेजोविशेषानुकारार्थमेव उक्तवाक्यप्रवृत्तिः अस्तु इति चेत्, तत्र आहुः **तस्माद्** इत्यादि. उपनिषद्द्वयेऽपि वाक्यस्य प्रकरणसन्दष्टत्वात् प्रकरणिभूतभगवद–नुकारित्ववचनम् अनुसन्धाय अन्यार्थभूततेजोविशेषकल्पनं न युक्तम् इति अर्थः. **स्वतो अभाने** स्वतःप्रकाशकर्तृत्वाभावे. **लक्षणया** अनुभाति इत्यस्य प्रकाशकर्त्रनुकारिलक्षणया **‘‘तमेव भान्तम् अनुभाति’’** इत्यत्र च भानानुभानकर्मत्वं तत्पदार्थे प्रकाशविशिष्टे च भासमानक्रियाजन्यफलरूपं मुख्यं न सम्भवति इत्यतो भानानुरूपकर्मत्वरूपे गौणकर्मत्वे लक्षणया वा च अर्थः. तथाच उक्तरीत्या सकलश्रुत्यर्थोपपत्तौ अन्यार्थकल्पनम् अयुक्तम् इति अर्थः।।२२।।

भाष्यम् अत्र प्रकटार्थम्. दहरवाक्यानुगुण्यार्थम् इदम् उक्तम् अवसेयम्।।२३।।

बाधकान्तरं परिमाणविरोधलक्षणं बाधकान्तरम्. **लोकान्तरगन्तृदेहवतः** अङ्गुष्ठपरिमाणाद् देहवतो मुक्तजीवस्य इति अर्थः. **‘‘अथ सत्यवतः कायात् पाशबद्धं**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अपि स्मर्यते. स्पष्टम्।।२३।।

प्रमिताधिकरणम् आहुः **शब्दादेव प्रमितः**. **बाधकान्तरम्** इति. यथा

मध्य आत्मनि तिष्ठति, ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सति''(का.२।४।१३) तथा ''**अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः**''(का.२।४।।१३) इति. तत्रैव श्रूयते ''**यावान् वा अयम् आकाशः**''(छान्दो.उप.८।१।३) इति व्यापकत्वम् अन्तःस्थितस्य प्रतीतम्. अङ्गुष्ठमात्रता च अत्र प्रतीयते. अतो विरोधाद् जीवस्यैव लोकान्तरगन्तृदेहवतः उपासनार्थम् ईशानत्वादिधर्माः. ''**अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलाद्**''(महाभा.३।२९७।१७) इति तन्निवृत्त्यर्थम्. तस्माद् अङ्गुष्ठमात्रो न भगवान् एवं प्राप्तम्. अतः उतरम् आह **शब्दादेव प्रमितः**. अत्र सन्देहएव न कर्तव्यः, **शब्दादेव** प्रकर्षेण विमानात्. यथा दहरवाक्ये सूक्ष्मस्यैव व्यापकत्वं तथा अङ्गुष्ठमात्रस्यैव ईशानत्वम्. यदि भगवान् तादृशो न स्याद् अन्यस्य तादृशत्वं न उपपद्येत. तस्माद् भगवतः सर्वतःपाणिपादान्तत्वाद् यत्र यावान् अपेक्ष्यते तत्र तावन्तं श्रुतिः निरूपयतीति अङ्गुष्ठमात्रः परमात्मा इति सिद्धम्।।२४।।

हृद्यपेक्षया तु मनुष्याधिकारत्वात्।।२५।।

ननु अनेकरूपत्वं विरुद्धधर्मवत्त्वं माहात्म्यार्थं स्वरूपे निरूपयति. प्रादेशमात्रत्वं च ध्यानार्थम्. अङ्गुष्ठमात्रत्वस्य कोपयोगः? इति चेत्, तत्र आह **'तु'**शब्देन निःप्रयोजनत्वं निराक्रियते. अस्ति प्रयोजनम्. तद् आह. **हृदि** अङ्गुष्ठमात्रं निरूप्यते.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

वशं गतम्, अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष यमो बलात्'' (महाभा.३।२९७।१७). इदं च वाक्यं सावित्र्युपाख्याने वर्तते. सत्यवान् सावित्र्याः पतिः. तन्निवृत्त्यर्थं तादृशाधमजीव-निरासार्थम्. तथाच मुक्तजीवस्यैव उपासनार्थम् एते धर्माः ईशानत्वादयः उपासनार्थं बद्धजीवव्यावृत्त्यर्थं च बोध्याः।।२४।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

दहराकाशे स्वल्पपरिमाणं बाधकम् एवम् अङ्गुष्ठपरिमाणं बाधकान्तरम् इति अर्थः. **श्रूयते**. चतुर्थवल्ली समाप्तौ श्रूयते. सन्देहबीजम् आहुः **यावान्** इति. **अङ्गुष्ठेति**. तथाच संशयः इति अर्थः. पूर्वपक्षम् आहुः **अतः** इत्यादि. सावित्र्युपाख्यानस्थं वाक्यम् आहुः **अङ्गुष्ठमात्रम्** इति. सिद्धान्तं व्याकुर्वन्ति **अत्र** इति. **शब्दादेव**. पूर्वार्द्धे अङ्गुष्ठमात्र-बोधकाद् उत्तरार्द्धे तस्यैव ईशानत्वबोधकाद् शब्दादेव **प्रमितः**. विरुद्धधर्माश्रयतया बोधितः।।२४।।

केन हेतुना? **अपेक्षया** ईश्वरकार्यापेक्षया. **''ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन! तिष्ठति''** (भग.गीता १८।६१) इति स्मृतेः. रक्षार्थम् अङ्गुष्ठमात्र इति अर्थः. ननु प्रमाणान्तरत्वे किम् एतद् न सम्भवति? तत्र आह **मनुष्याधिकारत्वात्.** मनुष्यानधिकृत्य इदं मृत्यूपाख्यानं प्रवृत्तम्. अतो मनुष्याणां हृदयस्य अङ्गुष्ठमात्रत्वात्. यद्यपि हृदयं स्थूलं, तथापि धर्मरूपं तावदेव, तावन्मात्रस्यैव अवदानश्रवणात्. तस्माद् अङ्गुष्ठमात्रस्यैव सर्वधर्मरक्षकत्वाद् अङ्गुष्ठमात्रो अत्र भगवानेव इति सिद्धम्।।२५।।

प्रथमाध्याये तृतीयपादे सप्तमं शब्दादेव इति अधिकरणम्।।७।।

तदुपर्यपि च बादरायणः सम्भवात्।।२६।। (१।३।८)

अङ्गुष्ठमात्रनिरूपणार्थं मनुष्याधिकारे निरूपिते कस्यचिद् भ्रमो भवेत् सर्वत्र ब्रह्मविद्यायां मनुष्याणामेव अधिकारः इति. तन्निराकरणार्थं देवादीनाम् अधिकारम् आह. **तदुपर्यपि** मनुष्यापेक्षया अर्वाक्तनानाम् अधिकारो नास्ति. तत्रापि वैदिकधर्महेतोः त्रैवर्णिकानां धर्मयुक्तानाम् आगतम्. ततोऽपि ये साध्यादयो धर्मयुक्ताः तेषामपि अधिकारः. तत्र जैमिनिप्रभृतीनां न सम्मतिः इति

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ईश्वरकार्यापेक्षया ईश्वरस्य कार्यं सृष्टानां रक्षणं तदर्थम् अपेक्षितत्वाद् इति अर्थः. **प्रमाणान्तरत्वे** अङ्गुष्ठमात्रातिरिक्तप्रमाणाङ्गीकारे. **एतद्** रक्षणम्।।२५।।

अर्वाक्तनानां पश्वादीनाम् इति अर्थः. **तत्रापि** मनुष्येष्वपि. **हेतोः** विद्याध्ययनयज्ञोपवीतादेः इति अर्थः. **आगतम्** अधिकारत्वम् आगतम् इति अर्थः. **न सम्मतिः** देवताविग्रहानङ्गीकाराद् इति अर्थः. सम्भवं विवृण्वन्ति **धर्मे**त्यादि. **''तं**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अवदानश्रवणाद् इति. तैत्तरीये षष्ठाष्टके. **''हृदयस्य अग्रे अवद्यति अथ जिह्वाया अथ वक्षसः''** (तैत्ति.संहि. ६।३।१०।१०) इत्यत्र अङ्गुष्ठमात्रम् अवद्यति इति विधिना प्रथमं हृदयावदानप्रतिपादनाद् इति अर्थः. अन्यत् स्पष्टम्।।२५।।

बादरायणाधिकरणम् आहुः **तदुपर्यपि च बादरायणः सम्भवाद्.** प्रसङ्गसङ्गतिं सूचयितुं सूत्रम् अवतारयन्ति. **अङ्गुष्ठे**ति. **कस्यचिद्** इति. पूर्वमीमासंकस्य इति अर्थः. जैमिनिमते मन्त्रार्थवादानां विधिशेषत्वेन शरीरप्रतिपादने तात्पर्याभावात्. देवादीनां शरीराभावः, ततश्च अधिकाराभावः इति बोध्यम्. मनुष्याद् अर्वाक्तनानां योग्यताभावाद्

स्वनामग्रहणम्. विशिष्टत्रैवर्णिकान् आरभ्य प्रजापतिः पर्यन्तं शतानन्दिनाम् अधिकारं मन्यते **बादरायणः**. कुतः ? **सम्भवात्.** सम्भवति तेषां ज्ञानाधिकारः. धर्मज्ञानाभ्यां सातिशयाभ्यां हि तादृशजन्मसम्भवात्. न हि तेषां पूर्वसंस्कारो लुप्यते. अक्षरपर्यन्तं शतोत्कर्षश्रवणाद् उपर्यपेक्षा. अतो अक्षरप्राप्तेः शुद्धब्रह्मविद्याहेतुकत्वाद् उत्तरोत्तरम् उपदेष्टृणां विद्यमानत्वात् प्रजापतिः पर्यन्तं सर्वेषाम् अधिकारः सम्भवति. सम्भववचनाद् दुर्लभाधिकारः तत्र इति सूचितम्. **''यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत सएव तदभवत् तथर्षीणां तथा मनुष्याणाम्''** (बृहदा. उप.१।४।१०) इति. तदुपर्यपि अधिकारः सिद्धः।।२६।।

विरोधः कर्मणीति चेद् न अनेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात्।।२७।।

ननु एवम् उपरितनानां ज्ञानाधिकारे स्वीक्रियमाणे तत्पूर्वभाविष्वपि अधिकारो वक्तव्यः. कर्मणि वेदाध्ययने उपनयनादिषु च. ततश्च तेषां ब्राह्मण्याद्यभावाद् देशद्रव्याद्यभावाच्च पौराणिकेन मतेन देवान्तराभावाच्च

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

विद्याकर्मणी समन्वारभेते'' (बृहदा.उप.४।४।२) इति श्रुत्या विद्याकर्मणी द्वेऽपि प्रत्येकं तं देहं समन्वारभेते कुर्याताम् इति उक्तेः. **धर्म-ज्ञानाभ्यां सातिशयाभ्यां** साङ्गाभ्याम्. तत्र देवलोकादौ. तत्तल्लोकीयभोगानां तत्र-तत्र आवश्यकत्वाद् ब्रह्मविद्याधिकारो दुर्लभः इति अर्थः।।२६।।

तत्पूर्वभाविषु ज्ञानपूर्वभाविषु कर्मसु इति अर्थः. **तेषां** देवानां. **देशद्रव्याद्यभावात्** प्राचीनप्रवणभूम्यादिरूपस्य देशस्य व्रीह्यादिरूपस्य द्रव्यस्य च अभावाद् इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आह **तदुपरी**ति. **शतानन्दिनाम्** इति. **''ते ये शतं मानुषा आनन्दाः स एको मनुष्यगन्धर्वाणाम् आनन्दः''** (तैत्ति.उप.२।८) एतदारभ्य प्रजापतिपर्यन्ताः शतानन्दिनः भृगुप्रपाठके स्पष्टाः. तत्र **कर्तृत्वं** श्रोत्रियत्वम्. तच्च **''श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य''** इति लिङ्गाद् **''कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसञ्ज्ञिता, मया आदौ ब्रह्मणे प्रोक्तः''** (भाग.पुरा.११।१४।३) इति वचनाच्च प्रजापतिपर्यन्तानां सिद्धम्. सत्त्वाद् इति अनुक्तौ बीजम् आहुः **सम्भवे**ति।।२६।।

तत्पूर्वभाविषु इति. कर्मसु इति शेषः. विशेषरूपेण आहुः **वेदाध्ययने**ति. **ततश्च.** चोवधारणे. अङ्गीक्रियमाणाधिकारादेव विरोधः इति अग्रेण अन्वयः. **ब्राह्मण्याभावाद्** इति. अधिकारस्य विवादग्रस्ततया तेन ब्राह्मण्याक्षेपासम्भवाद् इति

तदभावेऽपि क्रियमाणे **कर्मणि** श्रुति**विरोधः इति चेद्, न, अनेकप्रतिपत्तेः दर्शनात्**. बहूनां प्रतिपत्तिः दृश्यते. बहवो अत्र कर्मणि प्रवर्तमाना दृश्यन्ते. ‘‘**साध्या वै देवाः सुवर्गकामाः एतत् षड्रात्रम् अपश्यत् तमाहरत् तेन अयजन्त, सो अग्निष्टोमेन वसूनयाजयत्. सः उक्थ्येन रुद्रानयाजयत्, सो अतिरात्रेण आदित्यान् अयाजयद्**’’ (तैत्ति.संहि.७।२।१) इत्यादि. ‘‘**यथैकशतं वर्षाणि प्रजापताविन्द्रो ब्रह्मचर्यम् उवास**’’ (छान्दो.उप.८।११।३) इति. भुमौ आगत्य ऋषीन् वृत्वा यज्ञकरणं च श्रूयते, ‘‘**देवा वै सत्रमासत**’’ (तैत्ति.संहि.२।३।३) इत्यादौ दर्शनवचनात् स्वस्यापि ऋत्विक्त्वं कर्मकरणं च द्योतयति.

अथवा. सर्वपदार्थानाम् अनेका प्रतिपत्तिः बहुधा उपयोगो वेदे दृश्यते. यथा चतुर्धाकरणादि, परिधिप्रहरणादि, तुषोपवापादि, तद्विद्यमाने क्रियते, न अविद्यमाने तथा यत्र ये पदार्था न सन्ति तत्र कर्म तदभावेऽपि भवति. तथाहि दृश्यते. पर्वते सोमवाहकानो अभाववत्. ‘‘**यज्ञेन यज्ञम अयजन्त देवाः**’’(ऋग्वेद

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अर्थः. **देवान्तराभावाद्** इन्द्रादिकर्तृकयागादौ इन्द्रान्तरादियजनीयदेवानाम् अभावात् स्वयं स्वस्य यजने च फलानुत्पत्तेः इति भावः. **अनोऽभावः** अनोबाधः मार्गाभावाद् इति अर्थः. एवं कृष्णलेषु अवघातबाधः तुषाभावात्. तथापि असम्भवतो बाधस्थले यज्ञादिदर्शनाद्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

भावः. श्रोत्रियत्वान्यथानुपपत्या आक्षेपसम्भवाद् आहुः **देशद्रव्ये**ति. पृथिवीव्रीह्यादि. ‘आदि’पदेन सूर्यादिगत्यभावप्रयुक्तकालाभावः. सिद्धान्तम् आहुः **बहूनाम्** इति. अत्रार्थे तैत्तरीये सप्तमाष्टके द्वितीयप्रपाठकारम्भे प्रमाणम् आहुः **साध्ये**ति. अन्यं हेतुम् आहुः **अथवा** इति. **न अविद्यमाने** इत्यन्तम्. अयम्भावः आग्नेयं पुरोडाशं चतुर्द्धा करोति इति विधिना आग्नेयस्यैव चतुर्द्धाकरणं प्राप्तम्. तथाच यत्र आग्नेयः पुरोडाशो नास्ति तत्र चतुर्द्धा करणस्य लोपः. तथा ‘अवहन्ति’ इतिविधिना अवहननं प्राप्तम्. तथा तुषोपनापोऽपि प्राप्तः. तत्र ‘‘**प्राजापत्यान् शतकृष्णलान्निर्वपेद्**’’ (   ) इत्यादियागे किञ्चित्सुवर्णभागस्य कृष्णलस्य तुषायाः अभावाद् द्वारबाधात् तदुभयस्य लोपः विद्यमानेनैव कर्मकरणाद् इति प्रकारान्तरम् आहुः **तथा** इति. सोमवाहकाऽनो अभाववद् इति. सोमवाहकं यद् अनः शकटं तदभाववत्. तथाच सोमवाहकस्य शकटस्य विहितत्वाद्, सोमग्रहणार्थं पर्वते शकटस्य मार्गाभावात्, तस्य लोपः यत्किञ्चित् पदार्थाविद्यमानेऽपि कर्मकरणसम्भवाद् इति भावः. **यज्ञेन** इति. यज्ञएव पदार्थसम्भारः

१०।९१।१६). ‘‘**इति सम्भृतसम्भारः पुरुषावयवैरहम्, तमेव पुरुषं यज्ञं तेनैवायजमीश्वरम्**’’ (भाग.पुरा.२।६।२७) इत्यादिवाक्यैः सर्वसम्भृत्युपपत्तिश्च. आधुनिकान् प्रति वेदविभागाद् जैमिनेः तथानिर्णयः. तस्मात् कर्माधिकारः कर्मकरणञ्च उपर्यपि सिद्धम्।।२७।।

शब्द इतिचेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्।।२८।।

ननु मास्तु कर्मकरणे विरोधः. शब्देतु भविष्यति. अर्थज्ञानानन्तरं हि कर्मकरणम्. वेदाच्च अर्थज्ञानम्. तत्र साध्यादीनां वेदएव कर्मकरणं श्रूयते. तत्र ज्ञाने कर्मकर्तृविरोधः. अन्यकल्पनायान्तु अनवस्था, व्यवस्थापकाभावात्. वेदो

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अन्यत्रापि तत्सम्भवो द्रष्टव्यः. **पुरुषावयवैः** इति. तथाच पुरुषावयवैः सर्वपदार्थाधिदैविकरूपैः सकलयज्ञार्थसम्भाराणां सम्भवाद् न कस्यापि अनुपपत्तिः इति भावः।।२७।।

मास्तु इत्यादि. पूर्वोक्तरीत्या विरोधस्य परिहृतत्वाद् मास्तु इति अर्थः. **वेदाच्च अर्थज्ञानम्** इत्यादि. अर्थज्ञाने सति तस्मिन् शब्दशक्तिग्रहः, शक्तिग्रहे च सति वेदात् शाब्दबोधः इति अर्थज्ञानस्य प्राथम्यम् अपेक्षितम् इति अर्थः. **तत्र** इति वेदविशेषणम्. **ज्ञाने कर्मकर्तृविरोधः** इति ‘‘**साध्या वै देवाः सुवर्गकामा**’’(तैत्ति.संहि.७।२।१)

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

यज्ञएव देवता एतेन बोधिता. ननु प्रथमं इन्द्राग्न्यादीनां देवतानाम् अभवात् कथं यागः? इति चेद्, न, प्राथमिकयागे भगवानेव तत्तद्देवतास्थानापन्नो ग्राह्यः. ‘‘**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**’’ (   ) इति श्रुतेः. ननु एवं चेद् जैमिनिस्मृतिविरोधः इत्यतः आहुः **आधुनिके**ति. **अधुनिकान्** असर्वज्ञान्. तथाच एकवेदज्ञं मनुष्यं प्रति जैमिनिस्मृतिप्रवृत्तिः इति न कोऽपि दोषः. अतएव ‘‘जैमिनीयेऽपि वैय्यासे न विरोधोऽस्तिकश्चन’’ इति कारिकार्धं प्रमाणम् उक्तम् इति दिक्।।२७।।

सूत्रस्थाशङ्काशम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **शब्देतु.** वेदेतु. वेदे विरोधं व्युत्पादयन्ति. **अर्थज्ञाने**ति. ‘‘**साध्या वै देवाःऽसुवर्गकामा**’’ (तैत्ति.संहि.७।२।१) इति तैत्तरीयसप्तमाष्टके पठितम्. तत्रच एतादृशवेदस्य अर्थज्ञानानन्तरं कर्मकरणे साध्यादीनाम् अधिकारः. तादृशार्थं ज्ञानं च साध्यदेवसाध्यकर्मविषयकम्. एवञ्च कर्तुः कर्मणि ज्ञानानन्तरं प्रवृत्तेः विहितत्वाद्, ज्ञानकाले कर्तृकर्मणोः सहानवस्थानरूपविरोधः इति अर्थः. ननु पूर्वकल्पे साध्यैः यज्ञः कृतः इति सएव वेदो वक्ति इति न विरोधः इत्यतः आहुः **अन्यकल्पनायाम्** इति. पूर्वसाध्यदेवसाध्यकर्मविषयकवेदार्थज्ञानानन्तरम्

वसूनां वृत्तान्तं वदन् वसूनाम् अधिकारं वदेत्. वदन् वा कथम् अनित्यो न भवेद् ? **इति चेद्, न, अतः प्रभवात्.** 'अतः' शब्दात् प्रभवः शब्दोक्तपदार्थानाम्. वेदोक्ताः सर्वएव पदार्थाः आधिदैविकाएव पुरुषावयवभूताः, सर्वानुकारित्वाद् भगवतः. अतो नामप्रपञ्चो वेदात्मको भिन्नएव अङ्गीकर्तव्यः. स केवलं शब्दैकसमधिगम्यः. ''**वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः**''(भग.गीता १५।१५) इति. अतः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्यादिना, ''**अयजन्त**'' इत्यनेन वेदे यज्ञानां तत्कर्तृणां च भूतत्वेन उपदेशः वेदप्रवृत्यनन्तरं च यज्ञानां तत्कर्तृणां च अन्या प्रवृत्तिः तत्र भूतानाम् अनन्तरप्रवृत्तानां च ऐक्ये भूतत्वानन्तरप्रवृत्तत्वयोः ज्ञानमेव न सम्भवति तयोः विरोधात्. **अनवस्था** प्रतिकल्पम् अन्येषाम् अन्येषां कल्पनाद् अनवस्था इति अर्थः. **कथम् अनित्यो न भवेद्** इति. तथाच वस्तुतस्तु तद्वृत्तान्तप्रवृत्त्यनन्तरं तज्ज्ञाने सति तेषु शक्तिज्ञानानन्तरं प्रवृत्तानां वेदानाम् अनित्यता कथं न भवेद् इति अर्थः. तादृशवेदस्य अनादित्वाभावाद् इति भावः. सादिभावस्य नाशावश्यम्भावात्. **अतःशब्दाद्** इति. **अतः** एतस्य व्याख्या **शब्दाद् इति.** तथाच शब्दानां नित्यत्वतएव शब्दोक्तार्थानामपि प्रभवः प्रकृष्टो भवः स्थितिः नित्यतया विद्यमानत्वम् इति यावत्. तदेव उपपादयन्ति **वेदोक्तः** इत्यादिना. **भिन्नएव** लौकिकशब्देभ्यो भिन्नएव. **सः** 'स्फोट'पदवाच्यः ब्रह्मात्मकः. **केवलं** लौकिक-प्रत्यक्षाविषयतया **शब्दैकसमधिगम्यः** प्रणवात्मकशब्दाभ्यासेन समधिगम्य इति अर्थः. रूपप्रपञ्चस्य आधिदैविकस्यापि वेदैकसमधिगम्यत्वम् आहुः ''**वेदैश्च...**'' इत्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

एतत्कल्पे साध्याः प्रवर्तन्ते इति पूर्वकर्मापेक्षया एतत्कल्पीयं कर्म अन्यद् इति कल्पनायाम् इति अर्थः. **अनवस्था** इति. पूर्वकल्पीयवसूनाम् अर्थज्ञाने तत्पूर्वकल्पीयवसुविषयकत्वं वक्तव्यम् इति अनवस्था इति अर्थः. **व्यवस्थापकाभावाद्** इति. संसारस्य अनादित्वाद् इति शेषः. ननु भाविवसुवृत्तान्तं वेदो वक्ति इति न विरोधः इत्यतः आहुः **तस्माद्** इति. **न भवेद्** इति. इदानीन्तनवसुसम्बन्धे स्वीक्रियमाणे वेदस्य पाश्चात्त्यत्वं स्यात् ततश्च कथम् अनित्यो न भवेद् इति अर्थः. समाधानांशं व्याकुर्वन्ति **अतः** इति. सौत्रातःशब्दस्य विवरणं **शब्दाद्** इति. **प्रभवः** उत्पत्तिः प्राकट्यम्. तथाच लोके उत्पत्तिः चेद् अनित्यत्वम्. वेदोक्तानां नित्यत्वमेव इति भावः. तदेव आहुः **वेदोक्ताः** इति. **सर्वानुकारित्वाद्** इति. सर्वेषाम् अनुकारित्वाद् इति अर्थः. अतः लौकिकविलक्षणत्वात्. **भिन्नएव** इति. रूपप्रपञ्चापेक्षया इति शेषः. **शब्दैकसमधिगम्यः** वेदवेद्यः, नतु

तस्य प्रपञ्चस्य भिन्नत्वाद् न विरोधः शब्दे. कथम् एवम्? अतः आह **प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्.** प्रत्यक्षं तावद् इदानीमपि यजमानो यजमानकृत्यम् ऋत्विजश्च स्वकृत्यं वेदादेव अवगच्छन्ति. नच आकृतिमात्रवाचकत्वेन

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तस्य यस्य प्रपञ्चस्य अनुकारिप्रतिकृतिरूपः सर्वोऽपि भौतिकः प्रपञ्चः तस्य इति अर्थः. **भिन्नत्वाद्** इति भौतिकापेक्षया भिन्नत्वाद् इति अर्थः. यदि तस्मिन् भेदो न स्यात् तदा आधिदैविकादित्रिविधो व्यवहारो वैदिको निर्मूलः स्याद् इति अर्थः. **न विरोधः शब्दः** इति. तथाच वेदोक्ताः यज्ञाः तेषां कर्तारः अन्ये च वेदोक्ताः पदार्थाः तद्गतभूतत्व–भविष्यत्ववर्तमानत्वादि च सर्वं नित्यम् आधिदैविकं तेषां प्रतिपादको वेदोऽपि तादृशएवेति न शब्दे वेदरूपे अनित्यतापत्तिरूपो विरोधः इति अर्थः. **वेदाद्** वेदं विचार्य सर्वं कृत्यं वृद्धव्यवहारपरम्परया प्राप्तं स्वयं साक्षाद् अवगत्य कुर्वन्ति इति अर्थः. **आकृती**त्यादि. तथाच आधिदैविकादिषु त्रिष्वपि पदार्थेषु तेषु–तेषु एकजातीयेषु आकृतिः नित्या एकैका सैव वैदिकशब्दवाच्या अतो न वैदिकशब्दानाम् अनित्यतापत्तिरूपो विरोधः इत्येवंविरोधपरिहारः कार्यः इति च न इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

लौकिकप्रमाणवेद्यः इति अर्थः. तस्य प्रपञ्चस्य पुरुषावयवरूपत्वाद् आहुः **वेदैः** इति. **न विरोधः** इति. तथाच साध्यादिभिः देवैः वेदोक्तप्रपञ्चज्ञानान्तरं कर्मकरणाद् न कर्म–कर्तृविरोधः, तादृशप्रपञ्चस्य नित्यत्वात् तत्सम्बन्धेन न वेदस्य अनित्यत्वम् इति भावः. भौतिकप्रपञ्चापेक्षया वैदिकप्रपञ्चस्य भिन्नत्वे तस्य नित्यत्वे च सूत्रोक्तं प्रमाणम् आहुः **प्रत्यक्षे**ति. आदौ प्रत्यक्षं योजयन्ति **प्रत्यक्षम्** इति. **अवगच्छन्ति** इति. वृद्धपरम्परया इति शेषः. तथाच वेदोक्ताः पदार्थाः कर्माणि च नित्यानि इति अवगन्तव्यम् इति भावः. ‘‘**जात्याकृतिव्यक्तयः पदार्थः**’’ (न्यायसू.   ) इति न्यायसूत्रम्. पूर्वतन्त्रे जैमिनिमते जातौ शक्तिः व्यक्तेः आक्षेपलभ्यत्वम्. आकृतौ शक्तिः व्यक्तेः आक्षेपलभ्यत्वम् इति ऐकदेशि मतम्. एवञ्च अतिरिक्तप्रपञ्चाङ्गीकारापेक्षया जातौ वा आकृतौ वा शक्तिस्वीकारे तयोः नित्यत्वेन विरोधो नास्ति इति आशयेन शङ्कते **नच** इति. ‘‘पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते’’ इत्यत्र पीनत्वान्यथानुपपत्त्या रात्रिभोजनम् आक्षिप्यते एवं जलाहरणान्यथानुपपत्त्या आकृत्या घटरूपा व्यक्तिः आक्षिप्यते तत्र आक्षेपो अर्थापत्तिः प्रमाणान्तरम् इति पूर्वमीमांसकाः. व्यतिरेक्यनुमानगतार्थत्वम् इति नैयायिकाः. एवञ्च प्रमाणान्तरकल्पने गौरवम्. अनुमानगतार्थत्वे शब्दस्य प्रमाणान्तरत्वभङ्गः. अतः परिशेषाद् आक्षेपस्य लक्षणायां पर्यवसानं वक्तव्यम्. तच्च न

अविरोधः, सर्वत्र लक्षणाप्रसङ्गात्, **''यः सिक्तरेताः स्यात्''**(तैत्ति.संहि. ५।५।४) इत्यादिषु विरोधश्च. नच प्रवृत्तिनिमित्तस्यैव वाच्यत्वं, प्रवृत्तिवैयर्थ्यापत्तेः, सङ्केतग्रहविरोधाच्च. सर्वस्यापि पदार्थस्य भगवत्वाद् न अनुपस्थितिदोषः सङ्केतग्रहेऽपि.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सर्वत्र व्यक्त्याद्यन्ते. आकृतौ शक्तिज्ञानस्य कारणतायां व्यभिचारं प्रदर्शयन्ति **यः सिक्ते**त्यादि. तथाहि **''यः सिक्तरेता स्यात् प्रथमायां तस्य चित्याम् उपदध्याद्''** ( ) इति 'सिक्तरेतः' पदं न आकृतिवाचकं सम्भवति यथा गोप्रभृतीनाम् आकृतयो अनुभवसिद्धाः तथा सिक्तरेतसां न आकृतिः एकानुभवसिद्धा येन तत्र शक्त्या 'सिक्तरेतः'पदं शाब्दबोधं जनयेत् किन्तु तत्र अवयवशक्त्यैव शाब्दबोधः इति व्यभिचाराद् न आकृतिशक्तिज्ञानं शाब्दबोधे कारणम्. एतेन जातिशक्तिग्रहोऽपि व्याख्यातः. **प्रवृत्तिवैयर्थ्यापत्तेः** इति. तथाच व्यक्तेः अवाच्यतया न तद्गोचरा प्रवृत्तिः स्यात् प्रवृत्तिनिमित्तस्य च गोत्वादेः आनयनाद्यसम्भवात् शब्दात् प्रवृत्तिः निःफला स्याद् इति अर्थः. ननु वैदिकसृष्टेः अतिरिक्तत्वाङ्गीकारेण तस्याः अप्रत्यक्षत्वेन तत्र सङ्केतग्रहाभावात् तत्रत्यपदार्थानां बोधो दुर्निरूपः इत्यतः आहुः **सर्वस्यापि** इत्यादि. तथाच पूर्वेषां ब्रह्मादीनां भगवद्दर्शनेन उपस्थितेः सुकरत्वात् परम्परया तन्मूलकशक्तिग्रहस्य सर्वेषां सम्भवाद् न दोषः सङ्केतग्रहेऽपि इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सम्भवति इति आशयेन उत्तरम् आहुः **सर्वत्र** इति. तथाच शक्त्युच्छेदः इति भावः. ननु वृत्तिकारैः पूर्वोत्तर-तन्त्रयोः लक्षणांशे ऐक्यस्वीकाराद् अस्तु सा इत्यत आहुः **यः** इति. अस्तु रूढिस्थले निर्वाहः यौगिकस्थले अनुपपत्तिम् आहुः **सिक्तरेताः** इति. सिक्तं रेतः येन इत्यनेन सिक्तरेतस्त्वम् उपाधिः. सा च सेकानन्तरम् उत्पद्यते इति अनित्यत्वम् इति विरोधः इति अर्थः. 'घट'पदप्रवृत्तिनिमित्तम् उपाधिरूपं वा जातिरूपं वा अस्तु उभयथापि नित्यत्वात् तदेव वाच्यम् अस्तु इति आशयेन आशङ्कते **नच** इति. उत्तरम् आहुः **प्रवृत्ती**ति. **वैय्यथ्यर्यापत्तेः** इति. प्रवृत्तिनिमित्ते घटत्वे शक्तिस्वीकारे तेन जलाहरणासम्भावात् प्रवृत्तिवैय्यर्थ्यापत्तेः इति अर्थः. दूषणान्तरम् आहुः **सङ्केते**ति. व्यवहारात् सङ्केतग्रहस्तु व्यक्तौ, शक्तिस्तु घटत्वे इति विरोधाद् इति अर्थः. ननु भवन्मतेऽपि वैदिकसृष्टेः अतिरिक्तत्वाद् अगोचरत्वाद् अनुपस्थितिः. तथाच सङ्केतग्रहो न भविष्यति इत्यतः आहुः **सर्वस्य** इति. **भगवत्त्वात्.** भगवदनुकारित्वात्. तथाच

जमदग्नीनां पञ्चावत्तम् इति अनुमानम्. न हि स्वयं जामदग्न्य इति प्रत्यक्षो अनुभवो अस्ति. परोक्षव्यवहारस्यैव अनुमानत्वम् इति ब्रह्मवादः. तस्मात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् इदानीन्तनभौतिकयज्ञपदार्थेषु भगवदवयवावेशः तथा अमुत्रापि. तस्माद् वैदिकः पदार्थः सर्वोऽपि आधिदैविको भिन्नः इति सिद्धम् ।२८।

अतएव च नित्यत्वम्।।२९।।

साधिकां विशेषोपपत्तिम् आह. **अतएव** अस्मादेव हेतोः वेदस्य नित्यत्वं

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अनुमानग्राह्यम् आहुः **जमदग्नीनाम्** इत्यादि. जमदग्नीनां पञ्चावृत्तं जामदग्न्यः इत्यत्र स्वयं भवति जामदग्न्यः तथापि स्वगतं जामदग्न्यं न प्रत्यक्षं स्वस्य किन्तु अनुमानगम्यम्. तथाहि ‘‘अहं जामदग्न्यः, जामदग्न्यत्वेन लोकव्यवहारविषयत्वाद्, यो न जामदग्न्यः सः न तथाव्यवहारविषयः’’ इति केवलव्यतिरेक्यनुमानेन जामदग्न्यग्रहः. ननु आप्तशब्दादपि जामदग्न्यग्रहसम्भवात् कथम् अनुमानमेव उक्तम्? इत्यतः आहुः **परोक्षे**त्यादि. तथाच तादृशबोधकशब्दोऽपि अनुमानमूलकइति तथा उक्तम् इति अर्थः. **देवादिलोके** इति. **आवेशे**ति. **भिन्नः** भौतिकाद् इतो भिन्नः।।२८।।

अस्माद् इति अस्यैव व्याख्यानम्. **सर्वप्रपञ्चे**त्यादि. **ब्रह्मतुल्यत्वं** वेदस्य ब्रह्मादीनां भगवद्दर्शनेन इदानीन्तनानान्तु लौकिकसादृश्यात् तदुपमानेन सङ्केतग्रहइति **न अनुपस्थितिदोषः** इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

वैदिकप्रपञ्चसत्त्वे प्रत्यक्षप्रमाणम् उक्त्वा अनुमानप्रमाणम् आहुः **जमदग्नीनां पञ्चावत्तम्** इति. येषां प्रवरत्रयं ते चतुरवतिनः, येषां प्रवरपञ्चकं ते पञ्चावतिनः, प्रधानकाले पुरोडाशाद् अवदानं चतुर्वारं चतुरवतिनाम्, पञ्चवारं पञ्चावतिनाम् इति विशेषः. जामदग्न्यवत् सगोत्रादयः केचन पञ्चप्रवरिणः यजमानाः तेषां पञ्चावत्तं विहितं दर्शपूर्णमासप्रकरणे आपस्तम्बसूत्रे. अत्र यजमानः जमदग्निवत् सगोत्रोत्पन्नः इति प्रत्यक्षं नास्ति किन्तु अनुमानम्. एतदेव आहुः **नहि स्वयम्** इति. ननु धूमरूपहेत्वंशे प्रत्यक्षं वह्न्यंशे पारोक्ष्यं तत्रैव अनुमानप्रसरः, अत्रतु सर्वांशे पारोक्ष्यात् कथम् इदम्? इत्यतः आहुः **परोक्षे**ति. ब्रह्मवादे सर्वांशे परोक्षव्यवहारस्यैव अनुमानत्वं स्वीक्रियते इति अर्थः. तथाच यजमानेन स्वस्मिन् जामदग्न्यत्वं यथा परोक्षेण गृह्यते, एवं वेदोक्तप्रपञ्चोऽपि गृह्येत इति भावः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति।।२८।।

सूत्रम् अवतारयन्ति. **साधिकाम्** इति. **उपपत्तिम् आह** इति. सूत्रकारः इति

सर्वप्रपञ्चवैलक्षण्येन. ‘**च**’कारात् ब्रह्मतुल्यत्वम्. शब्दब्रह्म वेदपुरुषः इत्यादिवाच्यत्वम्. अस्यास्तु सृष्टेः ब्रह्मोपादानस्य सर्वज्ञतया कथनं तन्माहात्म्यनिरूपणार्थम्. बन्धिका हि एषा, मोचिकातु सा. अतएव ऋषीणामपि अत्र मोहः. निःश्वसितवचनाच्च. तस्यापि अयं प्राणभूतो नित्यः इति. अर्थप्राधान्याद् ब्रह्मविद्या परा विद्या. प्रपञ्चभेदादेव लौकिकवैदिक-

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इति अर्थः. **वाच्यत्वं** ब्रह्मवाचकशब्दवाच्यत्वम्. ननु यदि वैदिकी सृष्टिः अन्यैव तदा श्रुतौ ‘‘**यतो वा इमानि**’’(तैत्ति.उप.३।१) इत्यादिषु ब्रह्मणः एतत्सृष्ट्युपादानत्वकथनं निःप्रयोजकं स्याद् इत्यतः आहुः **अस्याः** इत्यादि. **ब्रह्मोपादानस्य** इति ब्रह्मरूपोपादानस्य. **तन्माहात्म्यनिरूपणार्थं** वैदिकसृष्टेः प्रकटसच्चिदानन्दरूपत्वब्रह्मधर्मसत्त्वात् माहात्म्यप्रदर्शनार्थं तथा उक्तम् इति अर्थः. **अतएव** लौकिकसृष्टेः मोहकत्वादेव. **मोहः** इति नानामतप्रदर्शनात् स्पष्टो मोहः इति अर्थः. **तस्य** भगवतः. **अयं** वेदः. **प्राधान्यात्** सर्वस्य वेदस्य प्रामाण्ये तुल्येऽपि ऋग्वेदादिविद्यायाः कर्मप्राधान्येन निरूपणाद् न प्राधान्यं ब्रह्मविद्यायास्तु अर्थप्राधान्यम् इति प्राधान्यम् इति परापरविभागोऽपि न

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

शेषः. नित्यत्वे साधकम् आहुः **सर्वे**ति. ब्रह्मतुल्यत्वे साधकम् आहुः **शब्दे**ति. **इत्यादिवाच्यत्वम्** ‘इत्यादि’पदवाच्यत्वम्. ननु भौतिकसृष्टेः ब्रह्मोपादानकत्वं ‘‘**यतो वा इमानि**’’ (तैत्ति.उप.३।१) इत्यादिवाक्येन श्रुतिः वदति तद् निरर्थकम्. कुतः? वैदिकसृष्टेः भिन्नत्वाद् इत्यतः आहुः **अस्याः** इति. यद्वा, ‘शब्दब्रह्म’ इत्यादिपदवाच्यत्वेन यथा ब्रह्मतुल्यत्वं तथा सर्वज्ञत्वादिमाहात्म्यवत्त्वेनापि ब्रह्मतुल्यत्वम् इति आहुः **अस्यास्तु** इति. **कथनम्** इति. ‘‘**यतो वा इति**’’ वाक्येन कथनम् इति अर्थः. **तन्माहात्म्ये**ति. वेदपुरुषमाहात्म्येति अर्थः. ब्रह्मणः यथा मोक्षजनकत्वं तथा वेदपुरुषस्यापि इति आहुः **बन्धिके**ति. वैदिकी सृष्टिरेव वेदार्थः, तद्द्वारा वेदस्यापि मोचकत्वम् इति भावः. ननु अस्याः सृष्टेः कथं बन्धजनकत्वम्? इत्यतः आहुः **अतएव** इति. **मोहः** इति. केषाञ्चिद् नैयायिकानां मते परमाणोः सकाशाद् इयं सृष्टिः. केषाञ्चित् साङ्ख्यानां प्रकृतिः कारणं सृष्टेः इत्येवं मोहः इति अर्थः. मोहजनकत्वादेव बन्धकत्वम् इति भावः. वेदस्य नित्यत्वे अपरां युक्तिम् आह **निःश्वसिते**ति. ‘‘**यस्य निःश्वसितं वेदाः**’’(बृहदा.उप.२।४।१०) इत्यादिवचनाद् इति अर्थः. **तस्यापि**. ब्रह्मणोऽपि. ननु एवं चेद् वेदस्य एकत्वात् परापरविभागः कथम्? इत्यतः आहुः **अर्थप्राधान्याद्** इति. ब्रह्मरूपार्थप्राधान्याद् उपनिषद्विद्यापरेति अर्थः. ननु लोकवेदाधिकरणे पूर्वतन्त्रे लोके

शब्दव्यवहारभेदौ. तस्माद् आधिदैविकप्रतिपादकत्वाद् वेदस्य **नित्यत्वम्**।।२९।।

समाननामरूपत्वाद् आवृत्तावप्यविरोधो दर्शनात् स्मृतेश्च।।३०।।

एवं शब्दबलविचारेण वेदप्रामाण्यस्य सिद्धये भिन्नएव प्रपञ्चो हि आधिदैविकः सर्वत्र सिद्धः. इदानीम् अर्थबलविचारेण उत्तरकाण्डे किञ्चिद् आशङ्क्य परिह्रियते दार्ढ्यार्थम्. ननु अस्य प्रपञ्चस्य अनुकारित्वेन वाच्यत्वेन

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अनुपपन्नः इति अर्थः. **व्यवहारभेदौ** इति लोकवेदाधिकरणे ऐक्यव्यवस्थापनेऽपि जैमिनिना अलिखनाद् न तत्प्रमाणम् इति भावः।।२९।।

सर्वत्र वेदे. तेन ‘‘**आदित्या वा अस्माद् लोकात्**’’ (तैत्ति.संहि.१।५।), ‘‘**अथ यद् इदम् अस्मिन् ब्रह्मपुरे**’’ (छान्दो.उप.८।१।१), ‘‘**धन्वन्निव प्रपा असि**’’ (ऋग्वेद१०।४।१) इत्यादौ विधेयस्तुत्यर्थं परिचायनार्थं दृष्टान्तार्थं वा लौकिकसृष्टिकीर्तनं तत्रापि ‘‘**सदेव सौम्य**’’(छान्दो.उप.६।२।१) इति ‘‘**हन्ताहं मदेव मन्मात्रं द्वितीयम्**’’ ( ) इति ‘‘**विश्वं वै ब्रह्म तन्मात्रम्**’’(भाग.पुरा.३।१०।१२) इत्यादिभिः नित्यतासिद्धेः वेदप्रामाण्यसिद्धिः. **दार्ढ्यार्थं** लौकिकप्रपञ्चे नित्यतादार्ढ्यार्थम्. **अस्य** भौतिकप्रपञ्चस्य. **अनुकारित्वेन** अलौकिकाधिदैविक-प्रपञ्चानुकारित्वेन. **वाच्यत्वेन** ‘प्रपञ्च’पदवाच्यत्वेन. **अनित्यसंयोगः** अनित्यतासम्बन्धः. समाधिं व्याकुर्वन्ति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अवगतसामर्थ्यः शब्दो वेदेऽपि बोधकः इत्यनेन लौकिकवैदिकशब्दैक्यम् उक्तम्, एवञ्च प्रपञ्चभेदः कथम्? इत्यतः आहुः **प्रपञ्चे**ति. **व्यवहारभेदौ** इति. व्यवहारस्य प्रमाणत्वाद् जैमिनिना तथानुक्तत्त्वाच्च शब्दभेदः इति अर्थः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति ।।२९।।

यद्यपि भौतिकप्रपञ्चाद् आधिदैविकप्रपञ्चो भिन्नः इति उक्तेऽपि सन्देहाः बहवः सम्भवन्ति. ‘‘**आदित्यो वा अस्माद् लोकाद् अमुं लोकम् ऐत् सो अमुं लोकं गत्वा पुनः इमं लोकम् अभ्यध्यायद्**’’ (तैत्ति.संहि.१।५।) इत्यनेन लोकद्वयसृष्टिः भौतिकी तैत्तरीयशाखायां प्रथमाष्टके पञ्चमप्रपाठके प्रतिपाद्यते इति संशयबाहुल्यम्. तथाच भौतिकसृष्टेः उत्पत्तिप्रलयोक्तेः अनित्यत्वाद् विरोधः. तथापि निश्चयार्थम् अपरं सूत्रम् अवतारयन्ति **एवम्** इति. **उत्तरकाण्डे.** उपनिषत्काण्डे. **किञ्चिद् आशङ्क्य** आसृष्टिप्रलयोक्तौ अनित्यत्वम् आशङ्कम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **अस्य** भौतिकस्य. **अनुकारित्वेन.** वैदिकाधिदैविकानुकारित्वेन. **वाच्यत्वेन.** ‘प्रपञ्च’पदवाच्यत्वेन

स्वीक्रियमाणत्वे सृष्टिप्रलययोः विद्यमानत्वाद् अनित्यसंयोगः प्राप्नोति तत्र आह **समाननामरूपत्वाद् आवृतावपि अविरोधः.** वस्तुतस्तु भगवद्रूपत्वाद् आविर्भावतिरोभावेच्छयैव तथात्वाद् न आवृत्तिशङ्कापि. तथापि लोकबुद्ध्यनुसारेण आवृत्तावपि समाननामरूपत्वात्. समुद्रे जलप्रक्षेपवत् पुनः उपादाने तदेव इति निश्चयाभावेऽपि नामरूपयोः तुल्यत्वाद् अन्यस्य भेदकस्य अभावाद् न अनित्यसंयोगविरोधः. कुतः? **दर्शनात्.** दृश्यते हि तथा. वेदपितृमातृस्त्रीभर्तृशरीरगङ्गादिषु तदेव इदम् इति व्यवहारस्य सिद्धत्वात्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

वस्तुतस्तु इत्यादिना. **तथात्वाद्** नित्यत्वेन प्रतीयमानत्वात्. यथोक्तं विष्णुपुराणे प्रथमे अंशे “**तदेतद् अक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिलम्, आविर्भावतिरोभाव–जन्मनाश–विकल्पवद्**” (विष्णुपुरा.१।२२।६०) इति. **दर्शनाद्** इति सूत्रं व्याकुर्वन्ति **दृश्यते हि** इति. **वेद** इत्यनेन. **सिद्धत्वात्** स्वर्गादिलोकेषु गतानां तेषां सर्वेषां तएव एते इति व्यवहारसिद्धत्वात्।।३०।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सृष्टीति. वारंवारं सृष्टि–प्रलययोः सत्त्वेन अनित्यत्वात्. समाधानम् आहुः **समाननाम–रूपत्वाद् आवृत्तावप्यविरोधः**. शङ्कायां शैथिल्यम् आहुः **वस्तुतः** इति. **भगवदि**ति. भौतिकप्रपञ्चस्य इति शेषः. **तथात्वाद्** इति. तथाच अनित्यत्वेन प्रतीयमानत्वं नतु अनित्यत्वम् इति अर्थः. **न आवृत्तिशङ्कापि.** वारंवारं सृष्टिप्रलययोः सत्त्वं तस्य शङ्कापि इति अर्थः. समान इत्यस्य व्याख्याम् आहुः **समुद्रे** इति. **नामरूपयोः** इति. प्रपञ्चस्य नामरूपत्वेन व्यवह्रीयमाणत्वात् तस्य च सर्वदा सत्त्वाद् नित्यत्वं, यथा समुद्रे जलप्रक्षेपे कृते तस्य पुनः आदाने च कृते तदेवं शुक्लं जलम् इति निश्चयो नास्ति, नामरूपाभ्याम् अन्यस्य भेदकस्य अभावात्. तद् अन्यं इत्यऽपि निश्चयो नास्ति इति तस्य प्रवाहरूपेण नित्यत्वम् इति अर्थः. **दर्शनाद्** इति. वेदे ‘तथा’ इति पदं पूरयित्वा वेदे तथादर्शनात् स्मृतेश्च इति हेतुद्वयम्. ‘दर्शनाद्’ इति पदं व्याकुर्वन्ति **दृश्यते** इति. **वेदे**ति. क्वचित् पुस्तके ‘वेद’इति पदं नास्ति. तदपि समीचीनमेव. क्वचित् पुस्तके ‘वेद’इति पदं तत्समञ्जसम्. ‘वेद’इत्यारभ्य ‘गङ्गादिषु’ इति अन्तम् एकं पदं द्वन्द्वश्च. तथाच नित्यप्रलयाङ्गीकर्तृमते वर्णानाम् अनित्यत्वेऽपि शरीरस्य प्रतिदिनं भिन्नत्वेऽपि गङ्गाप्रवाहस्य तथात्वेऽपि सएव वेदः पित्रादीनां तदेव शरीरं सैव इयं गङ्गा इति व्यवहारात् तत्तत्पदानां प्रवाहे शक्तिः. तथाच प्रवाहस्य विच्छिन्नत्वाद् नित्यत्वम् इति मीमांसकानां

''सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वम् अकल्पयत्, दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो सुवः''(ऋग्वेद१०।१९०।३) इति. **स्मृतेश्च ''सर्ववेदमयेनेदम् आत्मनात्मात्मयोनिना, प्रजाः सृज यथा पूर्वं याश्च मय्यनुशेरते''**(भाग.पुरा.३।९।१४) इत्यादिस्मृतेः. सर्वस्मृतेश्च **''ऋषिणां पूर्वचरितस्मरणं स्मृतिरुच्यते''** (तत्त्वदी.नि.सर्वनि.३३) इति. अतो अर्थबलविचारेपि पदार्थानां नित्यत्वाद् न वेदस्य अनित्यसम्बन्धः।।३०।।

मध्वादिष्वसम्भवादनधिकारं जैमिनिः।।३१।।

अर्थबलविचारएव एकदेशेन पूर्वपक्षम् आह**.** ननु मध्वादिविद्यासु देवानाम् अनधिकारात् सर्वत्रैव अनधिकारः. तथाहि**. ''असौ वा आदित्यो देवमधु**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तदेकदेशेन उपासनाविशेषरूपेण तदेकदेशेन. अनधिकारं व्युत्पादयितुं विषयवाक्यस्थं प्रमेयं पूर्वम् आहुः **तथाहि** इत्यादिना **तन्मधु** इत्यन्तम्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सिद्धान्तः इति भावः. वेदोऽपि अविच्छिन्नत्वमेव वदति इति आहुः **सूर्ये**ति. सर्वस्मृतेः इति हेत्वन्तरकथन-स्वारस्यम् आहुः **ऋषीणाम्** इति. इदं च स्मृतिलक्षणम्. तथाच लक्षणेन प्रवाहाविच्छेदो बोधितः।।३०।।

''मध्वादिष्वसम्भवादनधिकारं''. जैमिनिः. सूत्रम् अवतारयन्ति **एकदेशेन.** उपासनाविशेषेण. **ननु** इत्यादिपूर्वपक्षः **इति एवं प्राप्ते** (?) इत्यन्तम्. अनधिकारमेव आहुः **तथाहि** इति. इदं विषयवाक्यं छान्दोग्ये तृतीयप्रपाठकारम्भे. अथ विषयवाक्यम्.

ॐ असौ आदित्यो देवमधु तस्य द्यौरेव तिरश्चीनवंशो अन्तरिक्षम् अपूपो मरीचयः पुत्राः।।१।। तस्य ये प्राञ्चो रश्मयस्ता एव अस्या प्राच्यो मधुनाड्य ऋच एष ऋग्वेदएव मधुकृत पुष्पं ता अमृता आपस्ता वा एता ऋचः।।२।। एतम् ऋगवेदम् अभ्यतपन् तस्य अभितप्तस्य यशः तेज इन्द्रियं वीर्यम् अन्नाद्यं रसो अजायत।।३।। तद् व्यक्षरत् तदादित्यम् अभितोऽश्रयत्तद्वा एतद् यदेतद् आदित्यस्य रोहितं रूपम्।।४।।इति प्रथमः खण्डः।।१।।

अथ ये अस्य दक्षिणा रश्मयः ता एव अस्य दक्षिणा मधुनाड्यो यजूंष्येव मधुकृतो यजुर्वेदएव पुष्पं ता अमृता आपः।।१।। तानि वा एतानि यजूंषि एतं यजुर्वेदम् अभ्यतपत् तस्य अभितप्तस्य यशः तेज इन्द्रियं वीर्यम् अन्नाद्यं रसो अजायत।।२।। तद् व्यक्षरत् तद् आदित्यम् अभितो अश्रयत्

तद्वा एतद् यदेतद् आदित्यस्य शुक्लं रूपम्।। इति द्वितीयः खण्डः।।२।।

अथ ये अस्य प्रत्यञ्चो रश्मयः ता एव अस्य प्रतीच्यो मधुनाड्यः सामान्येव मधुकृतः सामवेद एव पुष्पं ता अमृता आपः।।१।। तानि वा एतानि सामानि एतं सामवेदम् अभ्यतपं तस्य अभितप्तस्य यशः तेज इन्द्रियं वीर्यम् अन्नाद्यं रसो अजायत।।२।। तद् व्यक्षरत् तद् आदित्यम् अभितो अश्रयत् तद्वा एतद् यदेतद् आदित्यस्य परं कृष्णं रूपम्।।३।। इति तृतीयः खण्डः ।।३।।

अथ ये अस्य उदञ्चो रश्मयः ता एव अस्य उदीच्यो मधुनाड्यो अथर्वाङ्गिरसएव मधुकृतः इतिहासपुराणं पुष्पं ता अमृता आपः।।१।। ते वा एते अथर्वाङ्गिरस एतद् इतिहासपुराणम् अभ्यतपं तस्य अभितप्तस्य यशः तेज इन्द्रियं वीर्यम् अन्नाद्यं रसो अजायत।।२।। तद् व्यक्षरत् तद् आदित्यम् अभितो अश्रयत् तद्वा एतद् यदेतद् आदित्यस्य परं कृष्णं रूपम्।।३।। इति चतुर्थः खण्डः।।४।।

अथ ये अस्य ऊर्ध्वा रश्मयः ता एव अस्य ऊर्ध्वा मधुनाड्यो गुह्या एव आदेशा मधुकृतो ब्रह्मैव पुष्पं ता अमृता आपः।।१।। ते वा एते गुह्या आदेशा एतद् ब्रह्माभ्यतपन् तस्य अभितप्तस्य यशः तेज इन्द्रियं वीर्यम् अन्नाद्यं रसो अजायत।।२।। तद् व्यक्षरत् तदादित्यम् अभितो अश्रयत् तद्वा एतद् यदेतद् आदित्य मध्ये क्षोभत इव।।३।। ते वा एते रसानां रसा वेदा हि रसाः तेषाम् एते रसाः तानि वा एतानि अमृतानाम् अमृतानि वेदा ह्यमृताः तेषाम् एतानि अमृतानि।।४।। इति पञ्चमः खण्डः।।५।।

तद्यत् प्रथम् अमृतं तद्वसव उपजीवन्ति अग्निना मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्ति एतदेव अमृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति।।१।। त एतदेव रूपम् अभिसंविशन्ति एतस्माद् रूपाद् उद्यन्ति।।२।। स य एतदेवम् अमृतं वेद वसूनामेव एको भूत्वा अग्निनैव मुखेन एतदेव अमृतं दृष्ट्वा तृप्यति स य एतदेव रूपम् अभिसंविशति एतस्माद् रूपाद् उदेति।।३।। स यावद् आदित्यः पुरस्ताद् उदेता पश्चाद् अस्तमेता वसूनामेव तावद् आधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता।।४।। इति षष्ठः खण्डः।।६।।

अथ यद् द्वितीयम् अमृतं तद् रुद्रा उपजीवन्तीन्द्रेण मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्ति एतदेव अमृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति।।१।। त एतदेव रूपम् अभिसंविशन्ति एतस्माद् रूपाद् उद्यन्ति।।२।। स य एतदेवम् अमृतं वेद

रुद्राणामेव एको भूत्वा इन्द्रेणैव मुखेन एतदेव अमृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपम् अभिसंविशति एतस्माद् रूपाद् उदेति।।३।। स यावद् आदित्यः पुरस्ताद् उदेता पश्चाद् अस्तमेता द्विस्तावद् दक्षिणत उदेत्तोत्तरतो अस्तमेता रुद्राणाम् एतावद् आधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता।।४।। इति सप्तमः खण्डः।।७।।

अथ यत् तृतीयम् अमृतं तद् आदित्या उपजीवन्ति वरुणेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्ति एतदेव अमृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति।।१।। त एतदेव रूपम् अभिसंविशन्ति एतस्माद् रूपाद् उद्यन्ति।।२।। स य एतदेवम् अमृतं वेद आदित्यानामेव एको भूत्वा वरुणेनैव मुखेन एतदेव अमृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपम् अभिसंविशति एतस्माद् रूपाद् उदेति।।३।। स यावद् आदित्यो दक्षिणत उदेति उत्तरतो अस्तमेता द्विस्तावत् पश्चाद् उदेता पुरस्ताद् अस्तमेता आदित्यानामेव तावद् आधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता।।४।। इति अष्टमः खण्डः।।८।।

अथ यत् चतुर्थम् अमृतं तद् मरुत उपजीवन्ति सोमेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्ति एतदेव अमृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति।।१।। त एतदेव रूपम् अभिसंविशन्ति एतस्माद् रूपाद् उद्यन्ति।।२।। स य एतदेवम् अमृतं वेद मरुतामेव एको भूत्वा सोमेनैव मुखेन एतदेव अमृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपम् अभिसंविशति एतस्माद् रूपाद् उदेति।।३।। स यावद् आदित्यः पश्चाद् उदेता पुरस्ताद् अस्तमेता द्विस्तावद् उत्तरत उदेता दक्षिणतो अस्तमेता मरुतामेव तावद् आधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता।।४।। इति नवमः खण्डः।।९।।

अथ यत् पञ्चमम् अमृतं तत् साध्या उपजीवन्ति ब्रह्मणा मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्ति एतदेव अमृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति।।१।। त एतदेव रूपम् अभिसंविशन्ति एतस्माद् रूपाद् उद्यन्ति।।२।। स य एतदेवम् अमृतं वेद साध्यानामेव एको भूत्वा ब्रह्मणैव मुखेन एतदेव अमृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति स एतदेव रूपम् अभिसंविशति एतस्माद् रूपाद् उदेति।।३।। स यावद् आदित्य उत्तरत उदेता दक्षिणतो अस्तमेता द्विस्तावद् ऊर्ध्वम् उदेता अर्वाग् अस्तमेता साध्यानामेव तावद् आधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता।।४।। इति दशमः खण्डः।।१०।।

अथ ततः उर्ध्व उदेत्य नैव उदेता न अस्तमेता एकल एव मध्ये स्थाता तदेष श्लोकः।।१।। न वै तत्र न निम्लोच नोदियाय कदाचन।। देवास्तेनाहं सत्येन मा विराधिषि ब्रह्मणेति।।२।। न ह वा अस्मा उदेति न निम्लोचति

तस्य द्यौरेव'' (छान्दो.उप.३।१।१) इत्यादिना सूर्यस्य देवमधुत्वं प्रतिपादितम्. रश्मीनां वेदत्वञ्च. तत्र वसु-रुद्रादित्य-मरुत्-साध्याः पञ्चदेवगणाः स्वमुख्येन मुखेन अमृतं दृष्ट्वैव तृप्यन्ति. पञ्चविधाएव च देवाः. स्वतःसिद्धं च तेषां तन्मधुः. अनुपासकत्वाद् न देवान्तरकल्पना. कृतार्थत्वाच्च. ब्रह्मणोऽपि देवत्वम्. **'आदि'**शब्देन सर्वाएव देवोपासनविद्या गृहीताः. अतः तेषाम् उपास्यत्वात् कृतार्थत्वाच्च **न अधिकारः**. न हि प्रयोजनव्यतिरेकेण कस्यचित् प्रवृत्तिः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

स्वमुख्येन मुखेन इति अग्नीन्द्रवरुणसोमब्रह्मरूपेण मुखेन. **पञ्चविधाएव** इति तावतामेव तत्र उक्तत्वात् तथा. अनधिकारं स्फुटीकुर्वन्ति **अनुपासके**त्यादि. अयम् अर्थः : ब्रह्मविद्या-धिकाराभ्युपगमे विद्यात्वाविशेषाद् मधुविद्यायामपि देवानाम् अधिकारो वक्तव्यः. तत्र ''**असौ आदित्यो देवमधु**''(छान्दो.उप.३।१।१) इति मधुत्वेन वर्ण्यमानस्य आदित्यस्य विद्याविषयत्वाद् आदित्यः कम् अन्यम् आदित्यम् उपासीत इति अर्थः. **कृतार्थत्वाच्च** इति. तथाच अकृतार्थाः कञ्चिद् उपासते इति अर्थः. **न अधिकारः**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सकृद्दिवा हैवास्मै भवति य एतामेव ब्रह्मोपनिषदं वेद।।३।। तद्धैतद् ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिः मनवे मनुः प्रजाभ्यः तद्धैतद् उद्दालकाय आरुणये ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रोवाच।।४।। इदं वाव तज्ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रब्रूयात् प्रणाय्याय वा अन्तेवासिने।।५।। नान्यस्मै कस्मैचन यद्यपि अस्मा इमाम् अद्धिः परिगृहीतां धनस्य पूर्णां दद्याद् एतदेव ततो भूय इत्येतदेव ततो भूय इति।।६।। इति एकादशः खण्डः।।११।।

अथ भाष्यम्. **स्वमुख्येन मुखेन** इति. अग्नीन्द्र-वरुण-सोमब्रह्मरूपाः ये स्वगुणमुख्याः तद्रूपेण मुख्येन इति अर्थः. **पञ्चविधा** इति. वस्वादयः पञ्चएव इति अर्थः. **न देवान्तरकल्पना** इति. तथाच मधुविद्याविषयः आदित्यः, आदित्यएव उपासको वक्तव्यः. एकस्यैव उपास्योपासकाभावाद् देवान्तरकल्पना नास्ति इति भावः. कृतार्थः उपासनां न करोति इति आहुः **कृतार्थत्वाद्** इति. ननु ब्रह्मविद्याधिकारप्रस्तावे मास्तु मधुविद्याधिकारः, तावता क्षतिः नास्ति इत्यतः आहुः **ब्रह्मणोऽपि** इति. **गृहीताः** इति. मध्वादीत्यादिपदेन विषयवाक्योक्ताः अग्निः पादो वायुः पादः इत्याद्याः, वायुर्वा व संवर्गः इत्याद्याः, ''आदित्यो ब्रह्मेति आदेश''इत्याद्याः गृहीताः इति अर्थः. अनधिकारमेव प्रकटयन्ति **अतः** इति. ननु मोक्षस्तु ब्रह्मविद्याम् अन्तरेण न सम्भवति

सम्भवति. मोक्षस्यापि अधिकारनिवृत्तौ उत्तरमार्गवर्तित्वात् स्वतएव सिद्धिः. ''**यावदधिकारम्**''(ब्रह्मसू.३।३।३२) इति न्यायात्. ''**वसूनयाजयद्**'' (तैत्ति. संहि.७।१।५) इत्यत्रापि भाविन्येव सञ्ज्ञा. तस्मात् मनुष्याधिकारकमेव ज्ञानं कर्म चेति न देवानाम् अधिकारः इति **जैमिनिः** आचार्यो मन्यते. मनुष्याणामेव ज्ञानकर्मणोः तरतमभाववतां तत्तद्रूपभोगानन्तरं मोक्षप्राप्तेः इति।।३१।।

ज्योतिषि भावाच्च।।३२।।

किञ्च. तेषां सर्वेषाम् अनधिकारः प्रत्यक्षतएव दृश्यते. सर्वेहि नक्षत्रादिरूपेण महाभोगवन्तो जगदवभासकत्वेन ज्योतिःचक्रे दृश्यन्ते. ''**अग्निः पुच्छस्य प्रथमं काण्डम्**'' (तैत्ति.आर.२।१९) इत्यादिश्रुतेश्च ।।३२।।

न हि तादृशां प्राप्तैश्वर्यवतां सर्वोपास्यानां मोक्षदातॄणां ज्ञानकर्मणोः कश्चन उपयोगो अस्ति. तस्माद् अनधिकारएव देवानाम् इत्येवं प्राप्ते उच्यते.

भावन्तु बादरायणो अस्ति हि।।३३।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अन्योपासने न अधिकारः. **उत्तरे**त्यादि. मोक्षमार्गवृत्तित्वात् तेषाम् इति अर्थः. **भाविन्येव** इति. तथाच मनुष्यदशायां यजनं फलदशायां वसुत्वम् इति न वसुत्वदशायां यागाधिकारः इति अर्थः।।३१।।

''**ज्योतिषि भावाच्च**''. अर्थःस्फुटः।।३२।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इत्यतः आहुः **मोक्षस्यापि** इति. **अधिकारनिवृत्तौ** इति. वसुरुद्रादीनाम् अधिकारस्य सावधित्वात् तन्निवृत्त्यनन्तरम् इति अर्थः. **उत्तरे**ति. देवयानः पन्थाः इति गार्हपत्ये ऋक् पृथिवीत्यादिः तैत्तरीयोपनिषदि अन्तिमप्रपाठकान्तेति श्रुत्युक्तोत्तरमार्गवर्तित्वाद् इति अर्थः. **स्वतएव** इति. देवयानत्वेन स्वतएव इति अर्थः. अत्र अर्थे न्यायं प्रमाणम् आहुः **यावद्** इति. **भाविनी**ति. अग्निष्टोमयागे कृते यजमानस्य वसुत्वं स्वर्गे जायते इति भाविनीं सञ्ज्ञाम् आदाय ''**अग्निष्टोमेन वसून् अयाजयद्**'' (   ) इति श्रुतिः प्रवर्तते इति अर्थः. **तरतमभाववताम्** इति. शताश्वमेधे कृते इन्द्रत्वं तदल्पे च देवत्वम् इति तरतमभावः इति अर्थः।।३१।।

ज्योतिषि शिशुमारचक्रे. **महाभोगवन्तः** स्वर्गभोगवन्तः. प्रत्यक्षप्रमाणम् उक्त्वा श्रुतिप्रमाणम् आहुः **अग्नी**ति. तैत्तरीये आरण्यके।।३२।।

‘तु’शब्दः पक्षं व्यावर्तयति. **भावं** देवानाम् अधिकारस्य सद्भावम्. **बादरायणः** आचार्यः. गौणसिद्धान्ताभावाय स्वनामग्रहणम्. किम् आर्षेण ज्ञानेन. तथा सति तुल्यत्वम् अतः आह **अस्ति हि.** अस्ति वेदे, **‘‘प्रजापतिरकामयत प्रजायेय’’**(तैत्ति.संहि.७।१।१) इति **‘‘स एतद् अग्निहोत्रं मिथुनम् अपश्यत्’’ ‘‘तदुदिते सूर्ये अजुहोत्’’**(तैत्ति.ब्राह्म.२।१।२) इति. **‘‘देवा वै सत्रमासत’’** (तैत्ति.संहि.२।३।३) इत्यादिभिः कर्माधिकारो निश्चितः. **‘‘तद् यो यो देवानां प्रत्यबुद्ध्यत सएव तदभवत्’’**(बृहदा.उप.१।४।१०) इत्यादि. तथा इन्द्रप्रजापतिसंवादे **‘‘ब्रह्मा देवानाम्’’** (तैत्ति.संहि.३।४।११) इति च. एवम् एवंविधैः वाक्यैः देवानामपि अधिकारो अस्ति. यत्र च पुनः देवानां फलभोगएव प्रतीयते, न करणं, तत्रापि तेषाम् अधिकारो अङ्गीकर्तव्यः. **हि** युक्तो अयम् अर्थः. एते हि वसवः आधिदैविकभगवदवयवभूताः, अनशनात्. अन्यथा वसुत्वादिविरोधः. **‘‘यद् वसूनां प्रातःसवनम्’’**(तैत्ति.ब्राह्म.१।५।११) इत्यादिवत्. न हि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आर्षेण ज्ञानेन प्रसिद्धप्रमाणव्यतिरेकेण केवलकपोलकल्पितज्ञानेन. **तुल्यत्वं** जैमिनिकल्पितप्रकारेऽपि तथात्वसत्त्वात् तौल्यं भवताम् इति अर्थः. **प्रजापतिः** इत्यादि. नच इयं भाविनी सञ्ज्ञा. ‘‘**यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्**’’ (श्वेता.उप.६।१८) इति श्रुतेः सकलकल्पेषु पूर्वं निर्माणात् कल्पान्तरीयस्यापि कल्पयितुम् अशक्यत्वात्. अनशनं हि दर्शनमात्रेण तृप्तत्वं नतु अशनमपि इति अर्थः. **अन्यथा** अतिरिक्ताधिदैविक-

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

हि. अस्ति हि इत्यस्य अवतरणम् आहुः **किमार्षेण** इति. **तुल्यत्वम्** जैमिनितुल्यत्वम्. **प्रजापतिः** इति. इदं च तैत्तिरीयब्राह्मणे द्वितीयाष्टके. ‘‘**यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम्**’’ (श्वेता.उप.६।१८) इति श्रुत्या प्रजापतेः भाविसञ्ज्ञाव्यवच्छेदः सर्वकल्पादौ तस्य सत्त्वाद् इति. कर्माधिकारसम्पादिकां श्रुतिम् उक्त्वा ज्ञानाधिकारे ताम् आहुः ‘‘**तद् यो यो देवानाम्**’’ (बृहदा.उप.१।४।१०) इति. ननु देवानां कर्मजन्यफलभोक्तृत्वमेव श्रुतौ क्वचित् प्रतीयते तत्र आहुः **यत्र च** इति. सूत्रस्थ‘हि’पदस्य अर्थम् आहुः **हि** इति. ननु कथं युक्तत्वं वस्वादीनाम् अनुपासकत्वरूपबाधकस्य पूर्वम् उक्तत्वाद् अतः आहुः **एते हि** इति. वसुरुद्रादित्यादयः. अत्र हेतुम् आहुः **अनशनाद्** इति. दर्शनेन तृप्तिः नतु भक्षणादिना इति भावः. **अन्यथा.** अतिरिक्तवस्वाद्यनङ्गीकारे. **विरोधः.** पूर्वपक्षोक्तन्यायेन वसून् अयाजयद् इत्यत्रेव वसुत्वमेव न स्याद् इति अर्थः. **यद्**

जीवविशेषा दृष्ट्वा तृप्यन्ति. तस्माद् इदं ब्रह्मप्रकरणमेव. योऽपि देवोपासनवत् प्रतीयते सः भगवदंशएव आधिदैविकः. न वा पूर्वकल्पेन निर्णयः. तथा सति तेषाम् अभावाद् अनुपास्यत्वम्. अनित्यता च वेदस्य स्यात्. तस्माद् देवानामपि अधिकारः इति शब्दबलविचारएव युक्तः इति सिद्धम्।।३३।।

इति प्रथमाध्याये तृतीयपादे अष्टमं तदुपर्यपि अधिकरणम्।।८।।

शुगस्य तदनादरश्रवणात् तदाद्रवणात् सूच्यते हि।।३४।।(१।३।९)

इदानिं शूद्रस्य अधिकारो निराक्रियते. यथा कर्मणि ‘‘**एतया निषादस्थपतिं याजयेत् सा हि तस्येष्टिः**’’ (आप.श्रौ.सू.९।१४।१२) इतिश्रुतेः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

वस्वनङ्गीकारेण यथा यागादिस्थले यजमानाय वस्वादयो अधिकारिणो वासवादिसामगानेन प्रातरादिसवनानि प्रयच्छन्ति तथा अत्रापि वस्वादिदेवोपासकेभ्यो वस्वादयो अमृतं प्रयच्छन्ति इत्येव उक्तं स्याद् नतु तेषां सायुज्यं, तस्माद् हेतोः वस्वादिभावप्राप्तेः उक्तत्वाद् अवयवरूपाएव ते वाच्याः।।३३।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

वसूनाम् इति. अधिकारिणो वस्वादयः यजमानाय वासवादिसामगानेन प्रातःसवनं प्रयच्छन्ति. तथा अत्रापि अमृतदानमेव वदेद् नतु वस्वादिभावः, उपासकस्य वस्वादिभावप्राप्ताः अवयवरूपाः अतिरिक्ताः अङ्गीकार्याः. अन्यदपि साधकम् आहुः **नहि** इति. दृष्ट्वैव तृप्यति इति आधिदैविकानामेव. **योऽपि** इति. ‘देवोपासकवद्’ इति पाठः मन्मते. कुत्रचिद् ‘देवोपासनवद्’ इति पाठः. ‘देवोपासने उपास्यवद्’ इति पाठः प्रतिभाति सप्तम्यर्थे वा वतिः इति प्रकाशे गोस्वामिचरणैः उक्तम्. ननु अत्र पूर्वपक्षरीत्या कल्पभेदः कुतो न स्वीक्रियते इत्यतः आहुः. **न वा** इति. ननु एतेषामेव उपास्यत्वम् अस्तु इत्यतः आहुः **अनित्ये**ति।।३३।।

अधिकारिनिरूपणप्रस्तावे शूद्रस्य अधिकाराभावार्थं शुगाधिकरणम् आहुः ‘‘**शुगस्य तदनादरश्रवणात् तदाद्रवणात् सूच्यते हि**’’. ननु उपनयनादि तस्य नास्ती अधिकारसम्भावनैव नास्ति इति चेद्, न, केवलभगवतत्त्वविचारे उपनयनापेक्षाभावात्. तदुक्तं वैश्वानरविद्यायाम् ‘‘**तान् ह अनुपनीय एतद् उवाच**’’(छान्दो.उप.५।११।७) इति. तान् शूद्रान् ह अनुपनीय एतद् उवाच इति तदर्थः. ननु शूद्रस्य शास्त्रीयज्ञानाभावाद् न अधिकारः इत्यतः आहुः यथा इति. एवञ्च निषादस्य विद्वत्ताऽभावेऽपि ‘‘**निषादस्थपतिं याजयेद्**’’(आप.श्रौ.सू.९।१४।१२) इत्यादिना यथा कर्मण्यधिकारः, एवं शूद्रस्यापि

‘‘हविष्कृदाधाव’’ (शुक्ल.य.वेद १।१५) इति शूद्रस्य इति लिङ्गाद् दोहादौ च शूद्रस्य अधिकारः. एवम् इहापि संवर्गविद्यायां शूद्रस्य अधिकारः इति तन्निराकरणार्थम् इदम् अधिकरणम् आरभ्यते. एवं श्रूयते, **‘‘जानश्रुतिर्ह पौत्रायणः’’**(छान्दो.उप.४।२।३) इत्यत्र हंसवाक्यश्रवणानन्तरं सयुग्वनो

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

हविष्कृद् दोहनेन दुग्धसम्पादकः शूद्रः इति अर्थः. **हंसवाक्यश्रवणानन्तरम्** इत्यादि. छान्दोग्ये जानश्रुतेः अनुग्रहार्थम् ऋषयो हंसस्वरूपेण जानश्रुतेः राज्ञो गृहोपरि भूत्वा गतवन्तः. तेषां मध्ये एकेन हंसेन ‘‘होहोयि’’ इति प्रथमवाक्यम् उक्तम्. तत् श्रुत्वा द्वितीयेन उक्तं ‘‘किम् अस्य तेन किम् अयं रयिक्वसमो ब्रह्मवेत्ता अस्ति वा’’ इति. तद्वाक्यं राज्ञा श्रुतम्. तदनन्तरं ‘पुत्र’नाम्नो राज्ञः अपत्यं ‘पौत्र’नामा राजा जानश्रुतिः रोगिणः शकटेन गमनादिव्यवहारं कुर्वतः ब्रह्मविदो रयिक्वस्य अन्वेषणे समीपं गवां षट् शतानि गृहीत्वा गतः, प्रपन्नः. तदनन्तरं तदधिकारं दृष्ट्वा रयिक्वेन अनादृतः ‘‘अह हारेत्वे’’त्यादिना. पुनश्च गो-रथनिष्क-कन्यादीनि गृहीत्वा तस्मै उपदिष्टवान् इति अध्यवसेयम्. **संयुग्वतः** शकटवतः. **पौत्रायणः** ‘पुत्र’नाम्नो राज्ञः पुत्रः. तदा

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

विद्यायाम् इति अर्थः. ननु निषादे श्रुतिप्रमाणं शूद्रे किम् इत्यतः आहुः **हविष्कृदाधावि**ति. ‘हविष्कृदादाविति’ अपपाठः. दर्शपूर्णमास-प्रकरणे हविःकण्डनपेषणार्थं; ‘‘हविष्कृदेहि त्रिराह्वयति’’ इति आपस्तम्बसूत्रे हविष्कृदाह्वानं विहितम्. एवञ्च कण्डने शूद्रस्य अधिकारो अस्ति इत्यनेन लिङ्गप्रमाणं शूद्रे दर्शितम् इति भावः. साधकान्तरम् आह **दोहादौ च** इति. तथाच अनेनापि शूद्राधिकारः स्पष्टएव इति अर्थः. **श्रूयते** छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठकारम्भे श्रूयते. अथ विषयवाक्यम्.

ॐ जानश्रुतिर्ह पौत्रायणः श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस. स ह सर्वत आवसथान्मापयाञ्चक्रे. सर्वत एव मेऽस्यन्तीति।।१।। अथ ह हंसा निशायाम् अतिपेतुः तद्धैवं हंसो हंसो हंसमभ्युवाद हो होयि भल्लाक्ष भल्लाक्ष जानश्रुतेः पौत्रायणस्य समं दिवा ज्योतिराततं तन्माप्रसाङ्क्षीस्तत्त्वा मा प्रधाक्षीरिति।।२।। तमु ह परः प्रत्युवाच कम्बर एनम् एतत् सन्तं सयुग्वानमिव रैक्वम् आत्थ इति यो नु कथं सयुग्वा रैक्व इति।।३।। यथा कृतायविजितायाधरेयाः संयन्त्येवम् ऐनं सर्वं तदभिसमेति यत्किञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मया एतद् उक्त इति।।४।। यदु ह जानश्रुतिः पौत्रायण उपशुश्राव स ह सञ्जिहान एव क्षत्तारम् उवाच अङ्गारे ह

रयिक्वस्य समीपं गतः जानश्रुतिः पौत्रायण **''रयिक्व इमानि षट् शतानि गवाम्''** (छान्दो.उप.४।२।२) इत्यादिना देवतां पृष्टः प्रति उवाच. **''अह हारे त्वा शूद्र तवैव सह गोभिरस्तु''** (तत्रैव ४।२।३) इत्यादिना जानश्रुतिं 'शूद्र'शब्देन सम्बोध्य, पुनश्च, **''शूद्रानेन मुखेन''**(छान्दो.उप.४।२।५) इति उक्त्वा संवर्गविद्याम् उपदिष्टवान्. अतो अत्र विद्यायां जातिशूद्रस्यापि अधिकारः इति आशङ्क्य परिहरति. न अत्र 'शूद्र'शब्दो जातिशूद्रवाची किन्तु 'मत्सरयुक्तः त्वम् अत्र न अधिकारी'ति तथासम्बोधनम्. तद् आह **शुक्** शोकः, **अस्य** जानश्रुतेः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सयुग्वानमिव रैक्वम् आत्थ इति यो नु कथं सयुग्वा रैक्व इति।।५।। यथा कृताय विजितायाधरेयाः संयनति एवम् एनं सर्वं तदभिसमेति यत्किञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मया एतद् उक्त इति।।६।। स ह क्षत्तान्विष्य नाविदमिति प्रत्येयाय तं होवाच यत्रारे ब्राह्मणस्य अन्वेषणा तदेनम् आर्च्छेति।।७।। सो अधस्तात् शकटस्य पामानं कर्षमाणम् उपोपविवेश तं ह अभ्युवाद त्वं नु भगवः सयुग्वा रैक्व इत्यहं ह्यरा ३ इति ह प्रतिजज्ञे स ह क्षत्ता अविहमिति प्रत्येयाय।।८।। इति चतुर्थाध्याये प्रथमः खण्डः।।१।।

तदुह जानश्रुतिः पौत्रायणः षट् शतानि गवां निष्कमश्वतरीरथं तद् आदाय प्रतिचक्रमे तं हाभ्युवाद ।।१।। रैक्व इमानि षट् शतानि गवाम् अयं निष्को अयम् अश्वतरीरथो नु म एतां भगवो देवतां शाधि यां देवताम् उपास्स इति।।३।। तमु ह परः प्रत्युवाचाह हारे त्वा शूद्र तवैव सह गोभिः अस्तु इति तदुह पुनरेव जानश्रुतिः पौत्रायणः सहस्रं गवां निष्कमश्वतरीरथं दुहितरं तदादाय प्रतिचक्रमे।।३।। तं हाभ्युवाद रैक्वेदं सहस्रं गवामयं निष्कोऽयम् अश्वतरीरथ इयं जाया अयं ग्रामो यस्मिन् आस्से अन्वेव मा भगवः शाधीति।।४।। तस्या ह मुखम् उपोद्गृह्णन् उवाच आजहार इमाः शूद्र अनेनैव मुखेन आलापयिष्यथा इति ते हैते रैक्वपर्णानाम महावृषेषु यत्रास्मा उवास तस्मै होवाच।।५।। इति द्वितीयः खण्डः।।२।।

वायुर्वाव संवर्गो यदा वा अग्निरुद्वायति वायुमेव अप्येति यदा सूर्यो अस्तमेति वायुमेव अप्येति यदा चन्द्रो अस्तमेति वायुमेव अप्येति।।१।। यदाप उच्छुष्यन्ति वायुमेव अपियन्ति वायुर्ह्येव एतान् सर्वान् संवृङ्क्त इति अधिदैवतम् ।।२।। अथ अध्यात्मं प्राणो वाव संवर्गः स यदा स्वपिति प्राणमेव वागप्येति प्राणं चक्षुः प्राणं श्रोत्रं प्राणं मनः प्राणो ह्येवैतान् सर्वान्

समजनि. तत्र हेतुः **तदनादरश्रवणात्.** तस्माद् हंसाद् अनादरस्य श्रवणात्. ‘‘**कंवरः एनम् एतत् सन्तं सयुग्वानमिव रयिक्वम् आत्थ**’’ (छान्दो.उप.४।१।३) इति स्वापकर्षश्रवणात्. किम् अतो यद्येवम् अतः आह **तदाद्रवणात्.** तत्तदनन्तरम् आद्रवणात्. शुचमनु आद्रवतीति शूद्रः. परोक्षवादार्थं दीर्घः सर्वज्ञत्वख्यापनाय.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पौत्रानधिकारदर्शनकाले. **अनादरस्य श्रवणात्** ‘‘**मत्सरी नोपदेष्टव्यः**’’ ( ) इति अनादरस्य श्रवणात्. ‘‘**कं वरः एनम् एतद्**’’ इत्यादि. **कं वरे** कम् उ अरे. **एनं** राजानं एतावत्कर्मकर्तारं **सन्तम्. सः** हंसः. **युग्वानमिव** शकटवाहकमिव. **सर्वज्ञत्वख्यापनाय**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

संवृङ्क्त इति॥३॥ तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ वायुरेव देवेषु प्राणः प्राणेषु॥४॥ अथ ह शौनकं च कापेयमभिप्रतारिणं च काक्षसेनिं परिविष्यमाणौ ब्रह्मचारी विभिक्षे तस्मा उ ह न ददतुः ॥५॥ स होवाच महात्मनः चतुरो देव एकः कः स जगार भुवनस्य गोपाः तं कापेय न अभिपश्यन्ति मर्त्या अभिप्रतारिन् बहुधा वसन्तं यस्मै वा एतद् अन्नं तस्मा एतद् न दत्तमिति॥६॥ तदु ह शौनकः कापेयः प्रतिमन्वानः प्रत्येयायात्मा देवानां जनिता प्रजानां हिरण्यदंष्ट्रो बभसो अनसूरिर्महान्तम् अस्य महिमानम् आहुः अनद्यमानो यद् अन्नम् अत्तीति वै वयं ब्रह्मचारिन्नेदम् उपास्महे दत्तास्मै भिक्षामिति॥७॥ तस्मा उ ह ददुस्ते वा एते पञ्चान्येपञ्चान्ये दश सन्तः तत्कृतं तस्मात् सर्वासु दिक्षु अन्नमेव दशकृतं सैषा विराडन्नादी तयेदं सर्वं दृष्टं सर्वम् अस्य इदं दृष्टं भवति अन्नादो भवति य एवं वेद य एवं वेद॥८॥ (छान्दो.उप.४।३)

अथ भाष्यस्थविषयवाक्यस्थविषमपदव्याख्या. **स युग्वनः** इति. युज्यतेति युग्वा शकटः, तेन सह वर्तमानः सयुग्वा तस्य. तस्य पङ्गुत्वात् सर्वदाशकटेन सह वर्तते इति. ‘रैक्व’ इति तस्य नाम. जनश्रुतेः अपत्यं जानश्रुतिः. **पौत्रायणः.** पुत्रस्य पौत्रः. उपास्यां देवताम्. अरे शूद्र, त्वा त्वां अ ह ह धिक्. गोभिः सह यद् आनीतं तत्सर्वं तव समीपएव अस्तु. **मुखेन.** द्वारेण. सूत्रं व्याकुर्वन्ति **अतः** इति. कं वर एनम् एतद् इति. कम् उ अरे एनम् एतद् इति पदच्छेदः. कं वराकम् इति अर्थः. उ. अरे. **शुचमन्वि**ति. अत्र शुचं द्रवति इतिवक्तव्ये आद्रवतीति उक्तं तत्र दीर्घः पृषोदरादित्वाद् वर्णान्तरस्यापि उपलक्षकः. योगेन शुद्धेति सम्बोधनं परोक्षवादार्थं. सूत्रे ‘आ’ इति दीर्घं किमर्थम्? अतः आहुः **सर्वज्ञत्वे**ति. ननु जातिशूद्रवाचित्वे मुख्यत्वम् इति आशयेन आहुः **रूढिः** इति.

‘‘**रूढिः योगम् अपहरति**’’ इति न्यायात्. कथम् एवम्? अतः आह **सूच्यते हि.** स्वस्य सर्वज्ञत्वं सूच्यते. हंसवाक्यात् शोके जाते, त्वम् आगतः इति. अन्यथा प्रपन्नस्य धिक्कारवचनम् अनर्थकं स्यात्. युक्तश्च अयम् अर्थो ब्रह्मविदः सर्वज्ञता इति. तस्य मात्सर्यनिराकरणं वा सम्बोधनफलम्. तस्मात् शुचं प्रत्याद्रवणादेव ‘शूद्र’पदप्रयोगो न जातिशूद्रवाची।।३४।।

कुतः एवम्? अतः आह

क्षत्रियत्वावगतेश्च उत्तरत्र चैत्ररथेन लिङ्गात्।।३५।।

जानश्रुतेः पौत्रायणस्य क्षत्रियत्वम् अवगम्यते, गो-निष्क-रथ-कन्या-दानात्. न हि क्षत्तृप्रभृतयो हि एते क्षत्रियाद् अन्यस्य सम्भवन्ति, राजधर्मत्वात्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

एवं ‘शूद्र’ इति सम्बोधनेन अस्य मत्सरो गमिष्यति इति परोक्षार्थबोधकसम्बोधनोक्त्या स्वस्य सर्वज्ञत्वज्ञापनाय इति अर्थः. **रूढिः** जातिशूद्रे रूढिः. **योगं शुचं** शोच्यं मत्सरादिकम् **अनु आद्रवति** इति योगम्. **शोके** परलोकविरोधिपदार्थमात्रविषयकशोके. पूर्वं धिक्कारव्यञ्जकं सम्बोधनम् उक्तम्. इदानीं मात्सर्यं निराकर्तुम् आहुः **तस्य** इत्यादि।।३४।।

निष्केति. निष्कं सुवर्णाश्चत्वारः पञ्च वा. **क्षत्रियप्रभृतयः** इति क्षत्रियेभ्यः प्रभृतिः येषां एतादृशाः एते धर्माः पूर्वोक्ताः समुदिताः. **शक्नोति** इति पुराणादौ तादृशदानस्य क्षत्रियकृतत्वेन श्रवणात् तथा इति अर्थः. शूद्राद् आरोपसङ्ग्रहस्य

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

एवम् इति. योगादरणम् इति अर्थः. योगादरणस्य प्रयोजनम् आहुः **स्वस्य** इति. **अन्यथा.** सर्वज्ञत्वख्यापनाभावे. ननु स्वस्य सर्वज्ञत्वख्यापनेन स्वोत्कर्षत्वख्यापनं प्रपन्नस्य अधिकारवचनम् इति. दोषद्वयं मनसि निधाय पक्षान्तरम् आहुः **तस्य** इति. **तस्माद्** इति. योगादरे एतादृशगमकाद् इति अर्थः।।३४।।

क्षतृप्रभृतयः इति. **अवगम्यते** अनुमीयते. अनुमाने हेतुम् आहुः **गोनिष्के**ति. निष्कं सुवर्णचतुष्टयम्. ‘क्षत्रियप्रभृतयः’ इति अपपाठः. ‘क्षतृ’शब्दस्य क्षतृस्थापनम् अर्थः. नामैकदेशे नामग्रहणम्. बहुवाक्यत्वात् च सार्थकरणभोजनक्षत्रन्ताः राजधर्माः. ननु ‘बहुवाक्यत्वप्रभृतयः’ इति कुतो न उक्तम्? इति चेद्, न, बहुवाक्यत्वं सधनशूद्रे कदाचित् स्यादिति तद् न उक्तम्. यद्यपि क्षत्रस्थापनम् अन्ते उक्तम्, तथापि राजधर्माणां समुच्चयेन उक्तत्वात् तस्यापि आदित्वं सम्भवति. क्वचित् पुस्तके ‘क्षत्रप्रभृतयः’ इति

नहि अन्यो ब्राह्मणाय भार्यात्वेन कन्यां दातुं शक्नोति. *नच प्रथमहंसवाक्यं शूद्रे सङ्गच्छते. उपदेशाच्च इति **‘च’**कारार्थः. तथापि संवर्गविद्यायां शूद्रस्यैव अधिकारं मन्वानस्य निराकरणार्थं हेतुम् आह **उत्तरत्र चैत्ररथेन लिङ्गात्. ‘‘अथ ह शौनकं च कोपेयमभिप्रतारिणं च काक्षसेनिम्’’**(छान्दो.उप.४।३।५) इति उत्तरत्र ब्राह्मण-क्षत्रियौ तौ निर्दिष्टौ. कक्षा सेना यस्य इति. कक्षसेनस्य अपत्यं काक्षसेनिः इति. अस्य व्याख्यानं, चैत्ररथः इति. चित्रा रथा यस्य तस्य अपत्यं, तेन चैत्ररथेन. कक्षारूपा रथा इति. व्याख्यानम्. **‘‘एतेन वै चित्ररथं कापेया**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

मन्वादिभिः उक्तत्वाद् युक्त्यन्तरम् आहुः **नच** इत्यादि. **प्रथमहंसवाक्यं ‘‘हो हो अयि भल्लाक्षः भल्लाक्षः जानश्रुतेः पौत्रायणस्य समं दिवा ज्योतिराततं तन् मा प्रसांक्षीत् तत् त्वा मा प्रधाक्षीः’’** (छान्दो.उप.४।१।२) इति वाक्यम्. **होहोयि** इति भयसूचकं सम्बोधनम्. **दिवे**ति द्युलोकेन दिनेन वा. **मा प्रधाक्षीः** इति मा दहतु इति अर्थः. तथाच एतादृशमाहात्म्यस्य शूद्रे अश्रुतत्वाद् अमृतप्राप्तेश्च न शूद्रे सम्भवः इति अर्थः. **अभिप्रतारिणं** गान्धर्वविद्याकुशलम्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

पदमेव नास्ति. ‘‘नहि एते क्षत्रियाद् अन्यस्य सम्भवन्ति’’ इत्यपि पाठः. अयं पाठः समीचीनः प्रतिभाति. कुतः? ‘‘न हि एते’’ इत्यत्र एते इत्यनेन पूर्वोक्तहेतुवाक्यस्थ-गोनिष्कादिराजधर्माणामेव ग्रहणात्. किञ्च अग्रेऽपि वाक्ये कन्यां दातुं शक्नोति इति उक्त्या पूर्वोक्तानामेव ग्रहणम् नतु क्षतृप्रभृतीनाम् इति. ननु **‘‘चातुर्वर्ण्यमेके समामनन्ति’’** (   ) इत्यादिवाक्याद् ब्राह्मणस्य चातुर्वर्ण्यविवाहस्य उक्तत्वात् शूद्रात् कन्याग्रहणम् उचितम् अत आहुः ***नवा** इति. **प्रथमहंसवाक्यम्** इति. **‘‘हो हो अयि भल्लाक्ष’’** इत्यादिप्रथमवाक्यम् इति अर्थः. **सङ्गच्छते** इति. तादृशवाक्यप्रतिपादक-माहात्म्यं शूद्रे न सङ्गच्छते इति अर्थः. इदं च विषयवाक्ये स्पष्टम्. **उपदेशाद्** इति. रयिक्वकर्तृकब्रह्मविद्योपदेशाद् इति अर्थः. सूत्रशेषम् अवतारयन्ति **तथापि** इति. **उत्तरत्र.** उपसंहारवाक्ये. **तेन** चैत्ररथेन इति. क्षत्रियत्वावगतिः इति शेषः. ‘चित्ररथ’पदव्याख्यानत्वं ‘काक्षसेनि’पदस्य आहुः **कक्षारूपा** इति. ‘कक्षा’पदस्य स्पर्द्धावाचकत्वेन कोशे प्रसिद्धिः. एवञ्च रथस्य चित्रत्वेन स्पर्द्धाश्रयत्वं रथानां सम्भवति इति ‘चित्र’पदेन ‘कक्षा’पदं ‘रथ’पदेन ‘सेना’पदं च उत्पद्यते इति भावः. एवं व्याख्याने बीजम् आहुः **एतेन** इति. **अयाजयन्** इत्यन्तं भाष्ये. **अग्रेच** इति. **‘‘एतेन वै चैत्ररथं कापेया अयाजयन्**

अयाजयन्''(ताण्ड्यब्राह्म.२०।१२।५) इति. शौनकश्च कापेयो याजकः. याज्यश्च चित्ररथस्य पुत्रः काक्षसेनिः इति. ब्रह्मचारी ब्रह्मवित्. इमौतु संवर्गविद्योपासकौ. प्राणाय हि भिक्षा. तस्माद् न ददतुः. उभावपि श्लोकौ भगवतः. तेन प्रकृतेऽपि एतौ गुरु-शिष्यौ. ब्राह्मण-क्षत्रियावेव इति गम्यते. तस्माद् न जातिशूद्रः संवर्गविद्यायाम् अधिकारी।।३५।।

संस्कारपरामर्शात् तदभावाभिलापाच्च।।३६।।

इदानीं शूद्रस्य क्वचिदपि ब्रह्मविद्यायाम् अधिकारः चेद् अत्रापि कल्प्येत. तत्तु नास्ति, सर्वत्र **संस्कारपरामर्शात्**. उपनयनसंस्कारः सर्वत्र परामृश्यते ''**तं होपनिन्ये**''(शत.ब्राह्म.११।५।३।१३) ''**अधी हि भगव इति होपससाद**'' (छान्दो.उप.७।१।१). ''**तान् हानुपनीय**''(तत्रैव ५।११।७) इत्यादिप्रदेशेषु उपनमनपूर्वकमेव विद्यादानं प्रतीयते, शूद्रस्य तु **तदभावाभिलापात्**. ''**चतुर्थम् एकजातिस्तु शूद्रः**''(मनुस्मृ.१०।४) इति, ''**न शूद्रे पातकं किञ्चिद् न च संस्कारम् अर्हति**''(तत्रैव १०।१२) इति शूद्रस्य संस्कारनिषेधात्. '**च**'काराद् ''**न शूद्राय मतिं दद्यात्**''(तत्रैव ४।८०) इति निषेधः।।३६।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

संवर्गविद्या आधिदैविकविद्या. **प्राणाय** आध्यात्मिकवायवे. प्राणो हि सर्वभक्षको नतु ब्रह्मचारी इति इमम् अर्थम् अयं जानाति न वा इति परीक्षार्थं न ददतुः इति अर्थः. **उभावपि श्लोकौ** ब्रह्मचारिकापेयाभ्याम् उक्तौ श्रुतिरूपौ श्लोकौ. ''**ततो महात्मनश्च**''(छान्दो.उप.४।३।५) इति ब्रह्मचार्युक्तः श्लोकः ''**आत्मा देवानाम्**'' (तत्रैव ४।३।६) इति कापेयोक्तः।।३५।।

स्पष्टार्थम्।।३६।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तमेकाकिनम् अन्नाद्यस्याध्यक्षम् अकुर्वंस्तस्मात् चैत्ररथो नाम एकाक्षत्रपतिः जायते'' (ताण्ड्यब्राह्म.२०।१२।५) इति. इदं वाक्यं सामवेदे द्विरात्रे उक्तम्. **शौनकश्च** इति. तथाच कापेयसम्बन्धेन काक्षसेनिः चैत्ररथः इति भावः. ब्रह्मचारीत्यादिविषयवाक्ये स्पष्टम् उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति ।।३५।।

सर्वथा शूद्रस्य अधिकारो नास्ति इति सूचयितुं सूत्रम् आह **संस्कारे**ति. **सर्वत्र** इति. उपनिषत्सु. परामर्शमेव आहुः **तं ह** इति. छान्दोग्ये सनत्कुमार-नारदसंवादस्थं वाक्यम् आहुः **अधीहि** इति. वैश्वानरविद्यास्थं प्रतीकम् आहुः **तान् ह** इति।।३६।।

तदभावनिर्धारणे च प्रवृत्तेः।।३७।।

इतश्च न शूद्रस्य सर्वथा अधिकारः. **तदभावनिर्धारणे** शूद्रत्वाभावनिर्धारणएव गुरुशिष्यभावप्रवृत्तेः. “**सत्यकामो ह जाबालः**” (छान्दो.उप. ४।४।१) इत्यत्र गौतमः सत्यकामम् उपनिन्ये. “**नैतद् अब्राह्मणो विवक्तुम् अर्हति**” (छान्दो.उप.४।४।५) इति सत्यवचनेन शूद्राभावं ज्ञात्वैव. ‘**च**’कारः एवार्थे. ‘च’कारेण निर्धारणम् उभयज्ञानार्थम्. वर्णित्वं शूद्राभावं च. तस्माद् न शूद्रस्य अधिकारः।।३७।।

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात् स्मृतेश्च।।३८।।

दूरे हि अधिकारचिन्ता. वेदस्य **श्रवणम्, अध्ययनम्, अर्थज्ञानं** त्रयमपि तस्य **प्रतिषिद्धम्,** तत्सन्निधौ अन्यस्य च. “**अथास्य वेदम् उपशृण्वतः त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणम्**”(गौत्त.ध.सू.२।३।४) इति. “**यद्यु ह वा एतत् श्मशानं**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उभयज्ञानार्थम् इति अस्यैव विवरणं वर्णित्वं शूद्राभावं च इति. स्फुटम् अन्यत्।।३७।।

ज्ञानादौ इति ‘आदि’पदेन “**यज्ञस्तपस्तीर्थयात्राप्रव्रज्यामन्त्रसाधनं,**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सत्यकामस्य ब्राह्मणबीजत्वेऽपि व्यभिचारजन्यत्वेन शूद्रत्वम् इति कथं तेन गौतमोपदेशः कृतः? इति शङ्कानिवारणार्थं सूत्रम् आह **तदभावे**ति. **प्रवृत्तेः** इति. जाबालगौतमयोः इति शेषः. तदभावनिर्धारणमेव विशदयन्ति “**सत्यकामो ह**” इति. **इत्यत्र** छान्दोग्ये. **सत्यवचनेन** इति. तथाच, वामदेव्यसामोपासकस्य “**न काञ्चन परिहरेद्**” (छान्दो.उप.२।१३।२) इति वचनेन सर्वगत्वाभ्यनुज्ञानेन तस्य व्यभिचारदोषो नास्ति इति भावः. ज्ञात्वैव प्रवृत्तेः इति पूर्वेण सम्बन्धः. किं तदुभयम् इत्यतः आहुः **वर्णित्वम्** इति. क्वचिद् ‘वर्णत्वम्’ इत्यपि पाठः. अमृते जारजः कुण्डोमृते भर्तरि गोलके इति. तयोः वर्णित्वाभावशङ्कायां अत्र व्यभिचाराभावाद् वर्णित्वम् इति उक्तम्. **शूद्राभावत्वम्** इति. तथाच “**सत्यकामो ह**” इति श्रुतौ सन्देहो नास्ति इति भावः।।३७।।

तत्सन्निधौ इति. शूद्रसन्निधौ ब्राह्मणेन श्रवणं कृतं चेद् दोषः. **अथास्य** इति. वेदम् उपशृण्वतः **अस्य** शूद्रस्य इति अन्वयः. **त्रपुजतुभ्याम्** इति. **त्रपुः** सीसं **जतुः** लाक्षा एताभ्याम् अग्निवर्णाभ्यां शूद्रस्य श्रोत्रपूरणम् इति अर्थः. **यद्यवे**ति. यदिव उव इति पदच्छेदः.

यच् छूद्रः'' (व.ध.सू.१८।११,१२) तस्मात् शूद्रसामिप्ये न अध्येतव्यम् इति. ''**उदाहरणे जिह्वाच्छेदो, धारणे शरीरभेदः**'' (गौत्त.ध.सू.१२।४) इति. दोहादौ शूद्रसम्बन्धे मन्त्राणाम् अभावएव. स्मृतिप्रयुक्त्यापि वेदार्थे न शूद्राधिकारः इति आह **स्मृतेश्च**. ''**वेदाक्षर-विचारेण शूद्रः पतति तत्क्षणात्**'' (पार.स्मृ.१।७३) इति. '**च**'कारस्तु अधिकरणसम्पूर्णत्वद्योतकः. स्मार्त्तपौराणिकज्ञानादौतु कारण-विशेषेण शूद्रयोनिगतानां महताम् अधिकारः. तत्रापि न कर्मजातिशूद्राणाम्. तस्माद् नास्ति वैदिके क्वचिदपि शूद्राधिकारः इति स्थितम्।।३८।।

इति प्रथमाध्याये तृतीयपादे नवमं शुगस्य इति अधिकरणम्।।९।।

कम्पनात्।।३९।।

कठवल्लीविचारेण निश्चिता ह्यधिकारिणः।।
वाक्यान्तरं च तत्रत्यं चिन्त्यते प्रलयावधि।।२१।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षड्''(   ) इत्येषां सङ्ग्रहः. **कारणविशेषे**त्यादि. विदुरसदृशानां न निषेधइति तदतिरिक्तपरो निषेधो बोध्यः इति अर्थः।।३८।।

निश्चिता इत्यादि. तथाच ''**शब्दादेव प्रमितः**'' (ब्रह्मसू.१।३।२४) इति अधिकरणे प्रस्तुतेन कठवल्लीस्थाङ्गुष्ठमात्रविचारेण प्रसङ्गात् स्मृता अधिकारिणोऽपि मृत्यूपाख्यानं मनुष्यान् अधिकृत्य प्रवृत्तम् इति निश्चिता इति अर्थः. **तत्रत्यं** कठवल्लीस्थम्. **प्रलयावधि** इति. तद्वाक्यविचारे कृते तदर्थे लयो भवतीति 'प्रलयावधि'

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उदाहरणे उच्चारणे. **धारणे** अभ्यासेन धारणे. ननु दर्शपूर्णमासेषु इत्यादौ श्रौतकर्मणि गोदोहने शूद्रस्य अधिकारः उक्तः इत्यतः आहुः **दोहादौ** इति. सान्नाय्य-सम्बन्धिदोहादौ इति अर्थः. **अभावः** इति. प्रथमम् अध्वर्युणा समन्त्रकं यत्किञ्चिद्दोहे कृते तदनन्तरं शूद्रेण अमन्त्रकदोहएव क्रियते इति श्रौतसूत्रे स्पष्टम्. शूद्राधिकारः स्मृत्यापि निषिध्यते इति आह **स्मृती**ति. **कारणविशेषेण** इति. शापादिकारणविशेषेण इति अर्थः. अत्र क्वचित् श्रवणे शूद्रस्य अधिकारः क्वचिद् न इति प्रकाशे श्रीगोस्वामिचरणैः प्रपञ्चितम् इति विस्तरभयाद् विरम्यते।।३८।।

''**शब्दादेव प्रमितः**'' इत्यधिकरणविचारप्रसङ्गेन अधिकारिनिरूपणं प्रसङ्गतः कृतम् इदानीं पुनः सिंहावलोकनन्यायेन षष्ठवल्लीस्थवाक्यान्तरविचारं कर्तुं कम्पनाधिकरणम् आहुः **कम्पनाद्** इति. **तत्रत्यं** षष्ठवल्लीस्थम्. कीदृशं वाक्यान्तरम्? इत्यतः

‘‘यदिदं किञ्च जगत् सर्वं प्राण एजति निःसृतं महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद् विदुः अमृतास्ते भवन्ति’’(कठोप.२।६।२) इति. अत्र प्राणवज्रोद्यमनशब्दाभ्यां सन्देहः. किं प्राणोपासना, इन्द्रोपासना वा, ब्रह्मवाक्यं वा? इति. बाधकशब्दस्य श्रुतित्वाद् न प्रकरणेन निर्णयः. **‘‘अमृतं वै प्राणाः’’**(तैत्ति.संहि.२।६।८) इति श्रुतेः. प्राणोपासकस्यापि अमृतप्राप्तिः युज्यते. इन्द्रस्यापि अमरत्वात्. **‘‘वज्रम् उद्यतम्’’** इति प्राणपक्षे वियोजने मरणजनकत्वाद् भयरूपत्वम्. इन्द्रपक्षे बलाधिष्ठातृत्वात् प्राणत्वम्. तस्मात् प्राणः इन्द्रो वा वाक्यार्थः इत्येवं प्राप्ते उच्यते **कम्पनात्.** कम्पनम् अत्र प्रथमवाक्यार्थः. स च भयहेतुकः. अविशेषेण सर्वजगत्कम्पनं भगवद्धेतुकमेव

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इति उक्तम् इति अर्थः. विषयवाक्यं सन्देहबीजं सन्देहाकारञ्च आहुः **यदिदम्** इत्यादि **वा इति** इत्यन्तम्. **बाधकशब्दस्य** प्राणेन्द्रबोधकवाक्यस्य. **श्रुतित्वात्** प्रथमप्रमाणत्वात्. **न प्रकरणेन निर्णयः** न ब्रह्मप्रकरणेन ब्रह्मवाक्यत्वनिर्णयः. **इन्द्रस्य** इति अस्य पूर्वतनेन प्राप्तिः इत्यनेन अन्वयः. इन्द्रप्राप्तौ प्रमाणं लिङ्गं **वज्रम् उद्यन्तम्** इति. **प्राणपक्षे** वाक्येन प्राणोपासनाबोधनपक्षे. **भयरूपत्वम्** इति. तथाच भयनिवृत्त्यर्थं प्राणोपासना. **इन्द्रपक्षे** वाक्येन इन्द्रोपासनाबोधनपक्षे. **प्राणत्वम्** इन्द्रस्य प्राणत्वम्. इत्थं च प्राणोपासनाबोधने **‘‘महद्भयं वज्रम् उद्यतम्’’**(कठोप.२।३।२) इति वियोजनेन भयजनकत्वं प्राणानामेव बोधितम्. **उच्यते** इत्यादि. अत्र हि **‘‘यदिदं किञ्च’’**(तत्रैव) इति पादत्रयम् एकं वाक्यं **‘‘य एतद्’’**(तत्रैव) इति तुरीयपादो भिन्नं वाक्यम्. तत्र **‘‘यदिदं किञ्च’’** परिदृश्यमानम् अपरिदृश्यमानं च **सर्वं जगत्** प्राणे विद्यमाने **निःसृतं** बहिः आगतं सद् **एजति** कम्पते. तत्र हेतुः महतां भयं यस्मात् तादृशं **वज्रम्** आयुधम् **उद्यतं** जगन्नियमनाय उल्लासितम् इति पदसम्बन्धात् **कम्पनम् अत्र प्रथमवाक्यार्थः. सच भयहेतुकः**. तेन स्वतःकम्पनं वार्यते

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आहुः **प्रलयावधी**ति. तद्वाक्यप्रतिपाद्यं रूपम्. प्रलयस्य अवधिभूतम् इति अर्थः.

विषयवाक्यम् आहुः **यदिदम्** इति. ‘पादत्रयम्’ एकं वाक्यम्. ‘‘यः एतद्’’ इति द्वितीयं वाक्यम्. सन्देहबीजम् आहुः **अत्र** इति. **न प्रकरणेन** इति. श्रुत्यपेक्षया प्रकरणस्य दुर्बलत्वाद् इति भावः. पूर्वपक्षम् आहुः **अमृतम्** इति. प्राणविद्यैव इयम् इत्यपि निश्चयो वक्तुं न शक्यते इति आह **इन्द्रस्यापि** इति. अमरत्वाद् अयं हेतुः तदुपासकस्यापि अमृतप्राप्तिः युज्यते इति पूर्वान्वयी. इन्द्रस्य अत्र प्राप्तौ बीजम् आहुः **वज्रम्** इति. सिद्धान्तम् आहुः **उच्यते** इति. **प्रथमवाक्यार्थः** इति. पादत्रयवाक्यार्थः इति अर्थः. भये

भवति. नच एकान्ततो वज्र इन्द्रस्यैव आयुधं भवति, अग्निहृदयत्वात्. ‘‘**तस्य तान्तस्य हृदयमाच्छिन्दत् साशनिर् अभवद्**’’ (तैत्ति. ब्राह्म.१।१।३) इति श्रुतेः. तस्मात् मारकरूपमेव इदं भगवतः. ‘प्राण’शब्दवाच्यत्वन्तु पूर्वमेव सिद्धम्. तस्मात् सर्वजगत्कम्पनं भगवत्कृतमिति भगवानेव वाक्यार्थः।।३९।।

इति प्रथमाध्याये तृतियपादे दशमं कम्पनाधिकरणम्।।१०।।

ज्योतिर्दशनात्।।४०।। (१।३।११)

‘‘**य एष सम्प्रसादो अस्मात् शरीरात् समुत्थाय परं ज्योतिरभिसम्पद्य स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यते**’’ (छान्दो.उप.८।१२।३) इति. तत्र संशयः. परं ज्योतिः महाभूतरूपं ब्रह्म वा? इति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तथा ‘‘**यदिदं किञ्च**’’ इत्यनेन ‘सर्व’पदे सङ्कोचो वार्यते. इत्थं च ईदृशं कम्पनं भगवद्धेतुकमेव इति फलितम्. ननु तर्हि श्रुतेः साधारणत्वाद् मास्तु प्राणः किन्तु इन्द्रएव अस्तु, वाक्यापेक्षया लिङ्गस्य प्राबल्याद् इत्यतः आहुः **नच** इति. **प्राणशब्दवाच्यत्वं** भगवतः. **पूर्वमेव ‘‘प्राणस्तथा**’’(ब्रह्मसू.१।१।२८) इति सूत्रएव।।३९।।

‘‘**य एषः**’’ (छान्दो.उप.८।१२।३) इति छान्दोग्ये दशमप्रपाठके दहरविद्यायाम् इन्द्रप्रजापतिसंवादे च पठ्यते एतावान् परं विशेषः पूर्वत्र ‘निःपद्यते’ इत्यनन्तरं ‘‘स आत्मा’’ इति वाक्यशेषः. द्वितीयेतु ‘‘**सः उत्तमः पुरुषः**’’(यथापूर्वम्) इति वाक्यशेषः. अत्र उत्तरवाक्यम् असन्धिग्धं गीतायाम् ‘‘**उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः**’’(भग.गीता१५।१७) इतिवाक्येन जीवत्वासम्भवाद् अतो दहरविद्यास्थमेव अत्र विषयवाक्यम्. **महाभूतम्**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सति कम्पनं जायते इति भयजनको भगवानेव इति भावः. अत्र श्रुतिः ‘‘**भीषास्माद् वातः पवते भीषोदेति सूर्य**’’(तैत्ति.उप.२।८) इत्यादि. प्राणस्तु वाक्यार्थो न भवति. तस्य वियोगएव भयजनकत्वात्. इन्द्रस्य भयजनकत्वं वारयन्ति **नच** इति. नहि इति अर्थः. अग्निहृदयं वज्रम् इन्द्रायुधं न भवति इति अर्थे श्रुतिप्रमाणम् आहुः **तस्य** इति. इयं च श्रुतिः प्रथमाष्टके तैत्तिरीये ब्राह्मणे प्रथमाध्याये पठिता. **पूर्वमेव** इति. ‘‘**अतएव प्राणः**’’ (ब्रह्मसू.१।१।२३) इति अधिकरणे इति अर्थः।।३९।।

ज्योतिः चरणाधिकरणभिन्नजोतिर्दशनाधिकरणम् आहुः **ज्योतिर्दर्शनात्.** छान्दोग्ये दशमप्रपाठके दहरविद्यास्थम् इन्द्रप्रजापतिसंवादस्थं विषयवाक्यम् आहुः **यः एषः** इति. **महाभूतरूपम्** इति. पञ्चसु महाभूतेषु मध्ये तृतीयं तेजोरूपम् आदित्यम् इति

ब्रह्मधर्माश्च ये केचित् सिद्धायुक्त्यापि साधिताः।
निर्णायकास्ततोप्यन्ये चत्वारोऽत्र निरूपिताः।।२२।।

तत्र रूढ्या उपपत्त्या च महाभूतमेव ज्योतिः इति एवं प्राप्ते, उच्यते **ज्योतिः** ब्रह्मैव. कुतः? **दर्शनात्.** सर्वत्र दर्शनं न्याय इति यावत्. सुषुप्तौ सर्वत्र **''सता सौम्य तदा सम्पन्नो भवति. सति सम्पद्य न विदुः सति सम्पद्यामहे''** (छान्दो.उप.६।९।२) इति. **''अहरहर्ब्रह्मलोकं गच्छन्ति''** (छान्दो.उप. ८।३।२) इत्यादिप्रदेशेषु ब्रह्मसम्पत्तिरेव उक्ता. अत्रापि सम्प्रसादवचनात् परं ज्योतिः ब्रह्मैव. तस्माद् यः कश्चन शब्दो ब्रह्मस्थाने पठितः तद्वाचकएव इति।।४०।।

इति प्रथमाध्याये तृतीयपादे एकादशं ज्योतिः अधिकरणम्।।११।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आदित्यरूपम्. चत्वारः इति उपसम्पद्यत्वम् उपसम्पन्नत्वं स्वरूपाभिनिःपादकत्वं पूर्ववाक्यबोधितं हृदयत्वं 'सत्य'पदोक्तं मर्त्यामृतनियामकत्वं च उत्तरवाक्यबोधितम् इति चत्वारः इति अर्थः. **उच्यते** इत्यादि. **सर्वत्र दर्शनम्** इति ब्रह्मप्रकरणे एतादृशे स्थाने सर्वत्र ब्रह्मवाचकं पदं दृश्यते अतो अत्रापि ''परं ज्योतिः'' इति ब्रह्मवाचकं प्रयुक्तम् इति अर्थः. **अत्रापि** ब्रह्मबोधकविषयवाक्येऽपि. **सम्प्रसादवचनाद्** अभिसम्पद्यते इत्यनेन सम्प्रसादवचनात्।।४०।।११।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अर्थः. जोतिश्चरणाधिकरणापेक्षया विशेषं कारिकया आहुः **ब्रह्मधर्माः** इति. सिद्धाः साधिताश्च केचित्. अत्रतु चत्वारः निर्णायकाः निरूपिताः. ते के इति आकाङ्क्षायां पूर्ववाक्यगतम् उपसम्पत्तव्यत्वम् उपसम्पन्नस्वरूपाभिनिष्पादकत्वम्. उत्तरवाक्यगतं च हृदयत्वं 'सत्य'पदोक्तं मर्त्यामृतनियामकत्वं च. इदं च विषयवाक्ये स्पष्टम्.

पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र** इति. **रूढ्या** इति. 'ज्योतिः'पदस्य रूढिः तेजसि. उपपत्तिस्तु अस्मात् शरीरात् समुत्थाय इत्यादिना बोधितापरं ज्योतिः आदित्यः इति.

सिद्धान्तम् आहुः **उच्यते** इति. **दर्शनम्** इति. 'ब्रह्म'पदस्थाने 'ज्योतिः'पद-दर्शनम् अस्ति, तस्माद् ब्रह्मैव इति अर्थः. तदेव विशदयन्ति **सुषुप्तौ** इति. तथाच तत्र 'सच्छ'ब्देन यथा ब्रह्म बोध्यते एवम् अत्रापि सुषुप्तिबोधकेन सम्प्रसादवचनेन परं ज्योतिः ब्रह्मैव इति भावः।।४०।।

---

* प्रायेण 'परामर्श'स्थाने 'परामर्ष'इति प्रदीपकारस्य पाठः.

आकाशो अर्थान्तरत्वादिव्यपदेशात्।।४१।। (१।३।१२)

“आकाशो वै नामरूपयोः निर्वहिता ते यदन्तरा तद् ब्रह्म” (छान्दो. उप.८।१४।१) इति श्रूयते. तत्र ‘आकाश’शब्दे सन्देहः. भूताकाशः परमात्मा वा? इति. नामरूपनिर्वाहमात्रत्वम् अवकाशदानाद् भूताकाशस्यापि भवतीति न ब्रह्मपरत्वम्. अन्यस्य च नियामकस्य अभावाद् इति एवं प्राप्ते, उच्यते **आकाशः** परमात्मा, **अर्थान्तरत्वादिव्यपदेशात्.** यद् भूताकाशस्य प्रयोजनं श्रुतिसिद्धं, तस्माद् अन्यस्य व्यपदेशः कार्यान्तरादिव्यपदेशश्च. यत्रैव हि सिद्धवत्कारेण उत्कृष्टधर्मा अतदीयाः तदेव ब्रह्म इति. नापि नामरूपनिर्वाह आकाशस्य

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

श्रूयते छान्दोग्यसमाप्तौ श्रूयते. **सन्देहः** इति उभयत्र प्रयोगदर्शनात् सन्देहः इति अर्थः. **अन्यस्य** इत्यादि. उक्तधर्माणां ब्रह्मधर्मताबोधकस्य इति अर्थः. **श्रुतिसिद्धं** वायुजननरूपम्. **तस्माद् अन्यस्य “ते यदन्तरा”**(छान्दो.उप.८।१४।१) इत्यनेन उक्तरूपस्य आसमन्तात् तदन्तःस्थापनरूपस्य ब्रह्मत्वादेश्च. **व्यपदेशः “आकाशो वै नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा तद् ब्रह्म”** (यथापूर्वम्) इति श्रुतौ ते नामरूपे इति बोध्यम्. **यत्र** भूताकाशवाचकत्वेन लोकप्रसिद्धाकाशादिशब्दानाम् अर्थे **सिद्धवत्कारेण** वास्तविकतया **उत्कृष्टधर्माः** नामरूपनिर्वाहकत्वतदन्तरादिनियामकत्वरूपाः धर्माः. **अतदीयाः** लोकप्रतीतौ यः ‘आकाश’पदेन भूताकाशः तदीया न सम्भवन्ति. **तदेव ब्रह्म**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

पूर्वम् ‘आकाश’पदस्य चिदाकाशपरत्वं व्यवस्थापितम्, इदानीं छान्दोग्यसमाप्तौ “**आकाशो वै नाम**”(छान्दो.उप.८।१४।१) इति वाक्यं श्रूयते. तत्र सन्देहनिवारणार्थम् आकाशार्थान्तराधिकरणम् आहुः **“आकाशो अर्थान्तरत्वादिव्यपदेशात्”**. संशयम् आहुः **भूताकाशः** इति. पूर्वपक्षम् आहुः **नाम** इति. **निर्वाहमात्रत्वम्** इति. प्रतीयते इति शेषः. सिद्धान्तम् आहुः **उच्यते** इति. **प्रयोजनम्** इति. वायुजननरूपं प्रयोजनम् इति अर्थः. **अन्यस्य** इति. ते यदन्तरे इत्यनेन उक्तस्य समन्तात् तदन्तःस्थापनरूपस्य इति अर्थः. **व्यपदेशः** कथनम्. **कार्यान्तरे**ति. वायुजनकत्वादिरूपाकाशकार्यातिरिक्तकार्यकर्तृत्वव्यपदेशश्च इति अर्थः. **सिद्धवत्कारेण** इति. ‘वै’पदेन सिद्धवत्कारो बोध्यते. तेन पदेन अतदीयाः भूताकाशसम्बन्धिनः उत्कृष्टधर्माः यत्र बोध्यन्ते तदेव इति अर्थः. ननु माहात्म्यहेतुकं नियमनत्वं नभस्त्वम् इति नामनिर्वाहकत्वम् आकाशस्य स्याद् अतः आहुः **नापि** इति. **“अदो ददाति श्वसतां पदं यन्नियमान्नभः”**

माहात्म्यहेतुः भवति. वै निश्चयेन इति सिद्धवत्काराद् न उपासनापरत्वम्. निर्वाहस्य ब्रह्मधर्मत्वं न श्रुत्यन्तरसिद्धम् इति विचारः. अर्थापत्तिसूचकस्तु अयमेव न्यायः इति. तस्माद् यत्रैव अतद्धर्मकथनम् अन्यवाच्यस्य तत्रैव ब्रह्मपरत्वम् इति सिद्धम्।।४१।।

इति प्रथमाध्याये तृतीयपादे द्वादशम् अर्थान्तराधिकरणम्।।१२।।

सुषुप्त्युत्क्रान्त्योः भेदेन।।४२।। (१।३।१३)

बृहदारण्यके ज्योतिर्ब्राह्मणे **‘‘याज्ञवल्क्य किं ज्योतिरयं पुरुषः’’**(बृहदा. उप.४।३।२) इत्यारभ्य, **‘‘अभयं ह वै ब्रह्म भवति य एवं वेद’’** इत्यन्ते सन्देहः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

‘तत्’पदवाच्यं ब्रह्मैव इति अर्थः. तथाच प्रकृते तथात्वाद् ‘आकाश’पदवाच्यं ब्रह्मैव नतु भूताकाशः इति अर्थः. **सिद्धवत्काराद् वै** इति पदेन सिद्धवत्कारतायाः धर्मेषु प्रदर्शनात्. **अन्यवाच्यस्य** भूताकाशादिरूपवाच्यस्य।।४१।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

(   ) इत्यादिवचनाद् इदमपि भगवदधीनत्वमिति तस्यैव माहात्म्यम् इति भावः. ननु निर्वाहो ब्रह्मधर्मएव भवतु, उपासनार्थम् आकाशे प्रयुज्यते, इति आकाशवाक्यमेव इत्यतः आहुः **वै** इति. उपासनापरत्वाभावे निर्वाहः ब्रह्मधर्मः इति ब्रह्मवाक्यम् इति अर्थः. ननु एवं चेत् तर्हि तद्धर्माधिकरणेन गतार्थत्वाद् न इदं सूत्रम् आरम्भणीयम् इत्यतः आहुः **निर्वाहस्य** इति. **विचारः** इति. पृथगधिकरणविचारः इति अर्थः. **अर्थापत्ती**ति. ‘‘**आकाशो वै**’’ (छान्दो.उप. ८।१४।१) इति ब्रह्मवाक्यं न स्यात् तर्हि निर्वाहस्य ब्रह्मधर्मत्वं न स्यात्. निर्वाहस्य ब्रह्मधर्मत्वन्तु न्यायसिद्धं तदन्यथानुपपत्या ‘‘**आकाशो वै**’’ इति ब्रह्मवाक्यमेव इति. **तस्माद्** इति. ब्रह्मणः अन्यं च तद् वाच्यं च इति समासः. अथवा अन्यवाचकपदवाच्यस्य तथाच ब्रह्मान्यो भूताकाशः तस्य यः धर्मो निर्वाहरूपो न भवति इति अतद्धर्मः तस्य यत्र कथनं तत्र इति अर्थः।।४१।।

अस्मिन् समन्वयाध्याये सर्वेषाम् उपनिषद्वाक्यानां ब्रह्मणि समन्वयः प्रतिपादनीयः. तत्र बृहदारण्ये षष्ठे प्रपाठके ज्योतिर्ब्राह्मणे प्रायशः जीवान्वाख्यानपरवाक्यानि दृश्यन्ते इत्यतः सुषुप्त्युत्क्रान्त्यधिकरणम् आरचयाञ्चक्रुः **सुषुप्त्युत्क्रान्त्योः भेदेन.**

‘‘यः एवं वेदः’’ इत्यन्ते इति. ब्राह्मणद्वयस्य विषयत्वेन ज्योतिर्ब्राह्मण–शारीरब्राह्मणान्ते इति अर्थः. अथ विषयवाक्यम्.

जनकं ह वैदेहं याज्ञवल्क्यो जगाम स मेने न वदिष्य इत्यथ ह यद् जनकश्च वैदेहो याज्ञवल्क्यश्च अग्निहोत्रे समूदाते तस्मै ह याज्ञवल्क्यो वरं ददौ स ह कामप्रश्नमेव वव्रे तं हास्मै ददौ तं सम्राडेव पूर्वं पप्रच्छ।।१।। याज्ञवल्क्य किंज्योतिरयं पुरुष इति आदित्यज्योतिः सम्राड् इति होवाच आदित्येनैव अयं ज्योतिषाः ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीति एवमेव एतद् याज्ञवल्क्य।।२।। अस्तमित आदित्ये याज्ञवल्क्य किंज्योतिरेव आयं पुरुषः इति चन्द्रमा एव अस्य ज्योतिः भवतीति चन्द्रमसैव अयं ज्योतिषास्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीति एवमेव एतद् याज्ञवल्क्य।।३।। अस्तमित आदित्ये याज्ञवल्क्य चन्द्रमसि अस्तमिते किंज्योतिरेवायं पुरुष इति अग्निरेव अस्य ज्योतिः भवतीति अग्निनैव अयं ज्योतिषास्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीति एवमेव एतद् याज्ञवल्क्य।।४।। अस्तमित आदित्ये याज्ञवल्क्य चन्द्रमसि अस्तमिते शान्ते अग्नौ किंज्योतिरेव अयं पुरुष इति वागेव अस्य ज्योतिः भवतीति वाचैव अयं ज्योतिषास्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीति तस्माद्वै सम्राडपि यत्र स्वः पाणिर्न विनिर्ज्ञायते अथ यत्र वागुच्चारयति उपैव तत्र न्येतीति एवमेव एतद् याज्ञवल्क्य।।५।। अस्तमित आदित्ये याज्ञवल्क्य चन्द्रमति अस्तमिते शान्ते अग्नौ शान्तायां वाचि किंज्योतिरेवायं पुरुष इति आत्मैवास्य ज्योतिः भवतीति आत्मनैव अयं ज्योतिषास्ते पल्ययते कर्म कुरुते विपल्येतीति।।६।। कतम आत्मेति यो अयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः स समानः सन् उभौ लोकौ अनुसञ्चरति ध्यायतीव लेलायतीव स हि स्वप्नो भूत्वेमं लोकम् अतिक्रामति मृत्यो रूपाणि ।।७।। स वा अयं पुरुषो जायमानः शरीरम् अभिसम्पद्यमानः पाप्मभिः संसृज्यते स उत्क्रामन् म्रियमाणः पाप्मनो विजहाति।।८।। तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवत इदं च परलोकस्थानं च सन्ध्यं तृतीयं स्वप्नस्थानं तस्मिन् सन्ध्ये स्थाने तिष्ठन् एते उभे स्थाने पश्यति इदं च परलोकस्थानं च. अथ यथाक्रमो अयं परलोकस्थाने भवति तम् अक्रम्याक्रम्योभयान् पाप्मन आनन्दांश्च पश्यति स यत्र प्रस्वपिति अस्य लोकस्य सर्वावतो मात्राम् उपादाय स्वयं विहत्य स्वयं निर्माय स्वेन भासा स्वेन ज्योतिषा प्रस्वपिति अत्र अयं पुरुषः स्वयंज्योतिः भवति।।९।। न तत्र रथा न रथयोगा न पन्थानो भवन्ति अथ रथा रथयोगान् पथः सृजते न तत्र आनन्दा मुदः प्रमुदो भवन्ति अथ आनन्दान् मुदः

प्रमुदः सृजते न तत्र वेशान्ताः पुष्करिण्यः स्रवन्त्यो भवन्ति अथ वेशान्तान् पुष्करिणीः स्रवन्ती सृजते स हि कर्ता।।१०।। तदेते श्लोका भवन्ति. स्वप्नेन शारीरम् अभिप्रहृत्य असुप्तः सुप्तान् अभिचाकशीति। शुक्रम् आदाय पुनः एति स्थानं हिरण्मयः पुरुष एकहंसः।।११।। प्राणेन रक्षन् अवरं कुलायं बहिष्कुलायाद् अमृतश्चरित्वा. स ईयते अमृतो यत्र कामं हिरण्मयः पुरुष एकहंसः।।१२।। स्वप्नान्त उच्चावचम् ईयमानो रूपाणि देवः कुरुते बहूनि। उतेव स्त्रीभिः सह मोदमानो जक्षद् उतेवापि भयानि पश्यन्।।१३।। आरामम् अस्य पश्यन्ति न तं पश्यन्ति कश्चन इति तं न आयतनं बोधयेद् इति आहुः।। दुर्भिष्यज्यं ह अस्मै भवति यमेष न प्रतिपद्यते अथो खलु आहुः जागरितदेश एव अस्य एष इति यानि ह्येव जाग्रत्पश्यति तानि सुप्त इत्यत्र अयं पुरुषः स्वयं ज्योतिः भवति सो अहं भगवते सहस्रं ददामि अत ऊर्ध्वं विमोक्षाय ब्रूहीति।।१४।। स वा एष एतस्मिन् सम्प्रसादे रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्या द्रवति स्वप्नायैव स यद् अत्र किञ्चित् पश्यति अनन्वागतः तेन भवति असङ्गो ह्ययं पुरुष इत्येवमेव एतद् याज्ञवल्क्य सो अहं भगवते सहस्रं ददामि अत ऊर्ध्वं विमोक्षायैव ब्रूहीति।।१५।। स वा एष एतस्मिन् स्वप्ने रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्या द्रवति बुद्धान्तायैव स यत् तत्र किञ्चित् पश्यति अनन्वागतः तेन भवति असङ्गो ह्ययं पुरुष इत्येवमेव एतद् याज्ञवल्क्य सो अहं भगवते सहस्रं ददामि अत ऊर्ध्वं विमोक्षायैव ब्रूहीति।।१६।। स वा एष एतस्मिन् बुद्धान्ते रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्या द्रवति स्वप्नान्तायैव।।१७।। तद्यथा महामत्स्य उभे कूले अनुसञ्चरति पूर्वं चापरं च एवमेव अयं पुरुष एतौ उवभौ अन्तौ अनुसञ्चरति स्वप्नान्तं च बुद्धान्तं च।।१८।। तद् यथा अस्मिन् आकाशे श्येनो वा सुपर्णो वा विपरित्य श्रान्तः संहत्य पक्षौ संलयायैव ध्रियत एवमेव अयं पुरुष एतस्मा अन्ताय धावति यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चनं स्वप्नं पश्यति।।१९।। ता वा अस्यैता हिता नाम नाड्यो यथा केशः सहस्रधा भिन्नः तावताणिम्ना तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पिङ्गलस्य हरितस्य लोहितस्य पूर्णा अथ यत्रैनं घ्नन्तीव जिनन्तीव हस्तीव विच्छाययति गर्तमिव पतति यदेव जाग्रद्भयं पश्यति तद् अत्र अविद्यया मन्यते अथ यत्र देव इव राजेव अहमेव इदं सर्वो

अस्मीति मन्यते सोऽस्य परमो लोकः।।२०।। तद्वा अस्य एतद् अतिच्छन्दा अपहतपाप्मा अभयं रूपं तद्यथा प्रियया स्त्रिया सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम् एवमेव अयं पुरुषः प्राज्ञेन आत्मना सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरं तद्वा अस्य एतद् आप्तकामम् आत्मकाम् अकामं रूपं शोकान्तरम् ।।२१।। अत्र पिता अपिता भवति माता अमाता लोका अलोका देवा अदेवा वेदा अवेदा अत्र स्तेनो अस्तेनो भवति भ्रूणहा अभ्रूणहा चाण्डालो अचाण्डालः पौल्कसो अपौल्कसः श्रमणो अश्रमणः तापसो अतापसो अन्वागतं पुण्येन आन्वागतं पापेन तीर्णो हि तदा सर्वान् शोकान् हृदयस्य भवति।।२२।। यद्वै तद् न पश्यति पश्यन्नैव तद् न पश्यति न हि द्रष्टुर्दृष्टेः विपरिलोपो विद्यते अविनाशित्वाद् न तु तद्द्वितीयम् अस्ति ततो अन्यद् विभक्तं यत् पश्येत्।।२३।। यद्वै तन्न जिघ्रति जिघ्रन्वै तद् न जिघ्रति न हि घ्रातुघ्रातेः विपरिलोपो विद्यते अविनाशित्वाद् नतु तद् द्वितीयम् अस्ति ततो अन्यद् विभक्तं यद् जिघ्रेत्।।२४।। यद्वै तद् न रसयते रसयन् वै तद् न रसयते नहि रसयितू रसयतेः विपरिलोपो विद्यते अविनाशित्वाद् न तु तद् द्वितीयम् अस्ति ततो अन्यद् विभक्तं यद् रसयेत्।।२५।। यद्वै तद् न वदति वदन्वै तद् न वदति न हि वक्तुर्वक्तेः विपरिलोपो विद्यते अविनाशित्वाद् न तु तद् द्वितीयम् अस्ति ततो अन्यद् विभक्तं यद् वदेत्।।२६।। यद्वै तन्न शृणोति शृण्वन्वै तन्न शृणोति न हि श्रोतुः श्रुतेः विपरिलोपो विद्यते अविनाशित्वाद् न तु तद्द्वितीयम् अस्ति ततो अन्यद् विभक्तं यच्छृणुयात्।।२७।। यद्वै तन्न मनुते मन्वानो वै तन्न मनुते न हि मन्तुर्मतेः विपरिलोपो विद्यते अविनाशित्वाद् न तु तद्द्वितीयम् अस्ति ततो अन्यद् विभक्तं यन्मन्वीत।।२८।। यद्वै तन्न स्पृशति स्पृशन्वै तन्न स्पृशति न हि स्पष्टुः स्पृष्टुः स्पृष्टेः विपरिलोपो विद्यते अविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयम् अस्ति ततो अन्यद् विभक्तं यत् स्पृशेत्।।२९।। यद्वै तन्न विजानाति विजानन्वै तन्न विजानाति न हि विज्ञातुः विज्ञातेः विपरिलोपो विद्यते अविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयम् अस्ति ततो अन्यद् विभक्तं यद्विजानीयात्।।३०।। यत्र वा अन्यदिव स्यात् तत्र अन्यो अन्यत् पश्येद् अन्यो अन्यद् जिघ्रेद् अन्यो अन्यद् रसयेद् अन्यो अन्यद् वदेद् अन्यो अन्यत् श्रुणुयाद् अन्यो अन्यद् मन्वीत अन्यो अन्यत् स्पृशेद् अन्यो अन्यद्

विजानियात्।।३१।। सलिल एको द्रष्टा अद्वैतो भवति एष ब्रह्मलोकः सम्राड् इति हैनम् अनुशशास याज्ञवल्क्य एषा अस्य परमा गतिः एषा अस्य परमा सम्पद् एषो अस्य परमो लोक एषो अस्य परम आनन्द एतस्यैव आनन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्राम् उपजीवन्ति।।३२।। स वो मनुष्याणां राद्धः समृद्धो भवति अन्येषाम् अधिपतिः सर्वैंः मानुष्यकैः भोगैः सम्पन्नतमः स मनुष्याणां परम आनन्दो अथ ये शतं मनुष्याणाम् आनन्दाः स एकः पितृणां जितलोकानाम् अनन्दो अथ ये शतं पितृणां जितलोकानाम् आनन्दाः स एको गन्धर्वलोक आनन्दो अथ ये शतं गन्धर्वलोक आनन्दाः स एकः कर्मदेवानाम् आनन्दो ये कर्मणा देवत्वम् अभिसम्पद्यन्ते अथ ये शतं कर्मदेवानाम् आनन्दाः स एक आजानदेवानाम् आनन्दो यश्च श्रोत्रियो अवृजिनो अकामहतो अथ ये शतम् आजानदेवानाम् आनन्दाः स एकः प्रजापतिलोक आनन्दो यश्च श्रोत्रियो अवृजिनो अकामहतो अथ ये शतं प्रजापतिलोक आनन्दाः स एको ब्रह्मलोक आनन्दो यश्च श्रोत्रियो अवृजिनो अकामहतो अथैष एव परम आनन्द एष ब्रह्मलोकः सम्राडिति ह उवाच याज्ञवल्क्यः सो अहं भगवते सहस्रं ददामि अत ऊर्ध्वं विमोक्षायैव ब्रूहि इत्यत्र ह याज्ञवल्क्यो बिभयाञ्चकार मेधावी राजा सर्वेभ्यो मान्तेभ्य उदरौत्सीति।।३३।। स वा एष एतस्मिन् स्वप्नान्ते रत्वा चरित्वा दृष्ट्वैव पुण्यं च पापं च पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्याद्रवति बुद्धान्तायैव।।३४।। तद्यथा अनः सुसमाहितम् उत्सर्जद् यायाद् एवमेव अयं शारीर आत्मा प्राज्ञेन आत्मा अन्वारूढम् उत्सर्जन् याति यत्रैतद् ऊर्ध्वोच्छ्वासी भवति।।३५।। स यत्र अयम् अणिमानं न्येति जरया वा उपतपन्तौ अणिमानं निगच्छति तद् यथा आम्रं वौदुम्बरं वा पिप्पलं वा बन्धनात् प्रमुच्यत एवमेव अयं पुरुष एभ्यो अङ्गेभ्यः सम्प्रमुच्य पुनः प्रतिन्यायं प्रतियोन्या द्रवति प्राणायैव।।३६।। तद्यथा राजानम् आयान्तम् उग्राः प्रत्येनसः सूतग्रामण्यो अन्नैः पानै आवसथैः प्रतिकल्पन्ते अयम् आयाति अयम् आगच्छति इत्येवं ह एवंविदं सर्वाणि भूतानि प्रतिकल्प्यन्त इदं ब्रह्म आयात इदम् आगच्छतीति।।३०।। तद् यथा राजानं प्रयिया सन्तम् उग्राः प्रत्येनसः सूतग्रामण्यो अभिसमायन्ति एवमेवं आत्मानम् अन्तकाले सर्वे प्राणा अभिसमायन्ति यत्र एतद् ऊर्ध्वोच्छ्वासी भवति।।३८।।

इति चतुर्थे तृतीयं ब्राह्मणम्।।३।।

स यत्र अयम् आत्मा अबल्यं न्येति असम्मोहमिव न्येति अथ एनम् एते प्राणा अभिसमायन्ति स एताः तेजोमात्राः समभ्याददानो हृदयमेव अन्ववक्रामति स यत्रैष चाक्षुषः पुरुषः पराङ् पर्यावर्तते अथ अरूपज्ञो भवति।।१।। एकीभवति न पश्यतीत्याहुः एकीभवति न जिघ्रति इत्याहुः एकीभवति न रसयत इति आहुः एकीभवति न वदति इति आहुः एकीभवति न शृणोति इति आहुः एकीभवति न मनुत इति आहुः एकीभवति न स्पृशति इति आहुः एकीभवति न विजानाति इति आहुः तस्य ह एतस्य हृदयस्य अग्रं प्रद्योतते तेन प्रद्योतेन एष आत्मा निष्क्रामति चक्षुष्टो वा मूर्ध्नो वा अन्येभ्यो वा शरीरदेशेभ्य तम् उत्क्रामन्तं प्राणो अनूत्क्रामति प्राणम् अनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति स विज्ञानो भवति स विज्ञातमेव अन्ववक्रामति तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च।।२।। तद् यथा तृणजलायुका तृणस्यान्तं गत्वा अन्यम् अक्रमम् अक्रम्यम् आत्मानम् उपसंहरति एवमेव अयम् आत्मा इदं शरीरं निहत्या अविद्यां गमयित्वा अन्यम् आक्रमम अक्रम्य आत्मानम् उपसंहरति।।३।। तद्यथा पेशस्कारी पेशसो मात्राम् उपादाय अन्यद् नवतरं कल्याणतरंरूपं तनुत एवमेव अयम् आत्मा इदं शरीरं निहत्य अविद्यां गमयित्वा अन्यद् नवतरं कल्याणतरं रूपं कुरुते पित्र्यं वा गान्धर्वं वा दैवं वा प्राजापत्यं वा ब्राह्मं वा अन्येषां वा भूतानाम्।।४।। स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयः चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथिवीमय आपोमय वायुमय आकाशमयः तेजोमयो अतेजोमयः काममयो अकाममयः क्रोधमयो अक्रोधमयः धर्ममयो अधर्ममयः सर्वमयः तद्यद् एतदिदं मयो अदोमय इति यथाकारी यथाचारी तथा भवति साधुकारी साधुः भवति पापकारी पापो भवति पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन। अथो खलु आहुः काममय एव अयं पुरुष इति स यथाकामो भवति तत्क्रतुः भवति यत्क्रतुः भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तद् अभिसम्पद्यते।।५।। तदेष श्लोको भवति। तदेव सक्तः सहकर्मणा एति लिङ्गं मनो यत्र निषक्तमस्य।। प्राप्यान्तं कर्मणः तस्य यत्किञ्चेह करोति अयम्।। तस्माद् लोकात् पुनः एति अस्मै लोकाय कर्मण इति नुकामयमानो अथाकामयमानो यो अकामो निष्काम आप्तकामो आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति

ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति।।६।। तदेष श्लोको भवति। यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा ये अस्य हृदि श्रिताः।। अथ मर्त्यो अमृतो भवति अत्र ब्रह्म समश्नुत इति। यद्यथा अहिनिर्ल्वयनीं वल्मीके मृता प्रत्यस्ता शयीत एवमेव इदं शरीरं शेते अथ अयम् अशरीरो अमृतः प्राणो ब्रह्मैव तेज एव सोऽहं भगवते सहस्रं ददामीति ह उवाच जनको वैदेहः।।७।। तदेते श्लोका भवन्ति। अणुः पन्था विततः पुराणो मांस्पृष्टो अनुवित्तो मयैव। तेन धीरा अपियन्ति ब्रह्मविदः स्वर्गं लोकमित ऊर्ध्वं विमुक्तः।।८।। तस्मिन् शुक्लम् उत नीलम् आहुः पिङ्गलं हरितं लोहितं च। एष पन्था ब्रह्मणा हानुवित्तः तेन एति ब्रह्मवित्पुण्यकृत् तैजसश्च।।९।। अन्धं तमः प्रविशन्ति ये अविद्याम् उपासते। ततो भूय इव ते तमो ये उ विद्यायां रताः।।१०।। अनन्दा नाम ते लोका अन्धेन तमसा आवृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति अविद्वांसो अबुधो जनाः।।११।। आत्मानं चेद् विजानीयाद् अयमस्मीति पूरुषः, किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरम् अनुसंज्वरेत्।।१२।। यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्मा अस्मिन् संदेह्ये गहने प्रविष्टः। स विश्वकृत् स हि सर्वस्य कर्ता तस्य लोकाः स उ लोक एव।।१३।। इहैव सन्तो अथ विद्मः तद् वयं न चेद् अवेदीः महती विनष्टिः। ये तद् विदुः अमृताः ते भवन्ति अथ इतरे दुःखमेव अपियन्ति।।१४।। यदा एतम् अनुपश्यति आत्मानं देवम् अञ्जसा, ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ।।१५।। यस्माद् अर्वाक् समवत्सरो अभिः परिवर्तते। तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुः ह उपासते अमृतम्। यस्मिन् पञ्च पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः। तमेव मन्य आत्मानं विद्वान् ब्रह्मामृतो अमृतम्।।१७।। प्राणस्य प्राणम उत चक्षुषः चक्षुः उत श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो ये मनो विदुः। निचिक्युः ब्रह्म पुराणम् अग्र्यम्।।१८।। मनसैव अनुद्रष्टव्यं न इह नाना अस्ति किञ्चन। मृत्योः स मृत्युम् आप्नोति य इह नानेव पश्यति।।१९।। एकधैव अनुद्रष्टव्यम् एतद् अप्रमयं ध्रुवम्।। विरजः पर आकाशाद्अज आत्मा महान् ध्रुवः।।२०।। तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः। नानुध्यायाद् बहून् शब्दान् वाचो विग्लापनं हि तदिति ।।२१।। स वा एष महान् अज आत्मा यो अयं विज्ञानमयः प्राणेषु य एषो अन्तर्हृदय आकाशः तस्मिन् शेते सर्वस्य वशी सर्वस्य ईशानः सर्वस्य अधिपतिः स न साधुना कर्मणा भूयाद् नो एव असाधुना कनीयान् एष सर्वेश्वर एष

किं ब्रह्मवाक्यम् एतद् उत जीवस्य? इति. जीवस्य ब्रह्मत्वप्रतिपादने जीववाक्यत्वम्. स्वातन्त्र्येण ब्रह्मणएव ज्ञानकर्मत्वे ब्रह्मवाक्यत्वम् इति. यद्यपि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ज्योतिः शारीरम् उभयत्र विषयवाक्यं बोध्यम्. तत्र सन्देहः उच्यते **किम्**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

भूताधिपतिः एष भूतपाल एष सेतुर्विधरण एषां लोकानाम् असम्भेदाय तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसा अनाशकेन एतमेव विदित्वा मुनिः भवति एतमेव प्रव्राजिनो लोकम् इच्छन्तः प्रव्रजन्ति एतद्ध स्म वा एतत्पूर्वे विद्वांसः प्रजां न कामयन्ते किं प्रजया करिष्यामो येषां नो अयम् आत्मा अयं लोक इति ते ह स्म पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थाय अथ भिक्षाचर्यं चरन्ति, या ह्यैव पुत्रैषणा सा वित्तैषणा मा वित्तैषणा सा लोकैषणा उभे ह्येते एषणे एव भवतः। स एष नेति नेति आत्मा अगृह्यो नहि गृह्यते अशीर्यो नहि शीर्यते असङ्गो नहि सज्जते असितो न व्यथते न रिष्यति एतमु हैव एते न तरत इत्यतः पापमकरवम् इत्यतः कल्याणम् अकरवम् इति उभे उ हैवैष एते तरति नैनं कृताकृते तपतः।।२२।। तदेतद् ऋचा अभ्युक्तम्। एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न वर्धते कर्मणा नो कनीयान्। तस्यैव स्यात् पदवित्तं विदित्वा न लिप्यते कर्मणा पापकेनेति तस्मादेवंवित् शान्तो दान्त उपरतः तितिक्षुः समाहितो भूत्वा आत्मन्येव आत्मानं पश्यति सर्वम् आत्मानं पश्यति नैनं पाप्मा तरति सर्वं पाप्मानं तरति नैनं पाप्मा तपति सर्वं पाप्मानं तपति विपापो विरजो विचिकित्सो ब्राह्मणो भवति एष ब्रह्मलोकः सम्राडेनं प्रापितोऽसीति होवाच याज्ञवल्क्यः सो अहं भगवते विदेहान् ददामि मां चापि सह दास्यायेति।।२३।। स वा एष महानज आत्मा अन्नादो वसुदानो विन्दते वसु य एवं वेद।।२४।। स वा एष महानज आत्मा अजरो अमरो अमृतो अभयो ब्रह्म अभयं वै ब्रह्म अभयं हि वै ब्रह्म भवति य एवं वेद।।२५।। (बृहदा.उप.४।३,४)

अथ भाष्यम्. **सन्देहः** इति. तथाच सम्पूर्णविषयवाक्ये सन्देहः, नतु तदन्तर्गत-यत्किञ्चित्पदे इति अर्थः. ननु एवं चेत् किमाकारकः सन्देहः? इत्यतः आहुः **किं ब्रह्म** इति. इदं च जीववाक्यस्यापि उपलक्षकम्. तथाच एतत् किं जीववाक्यं ब्रह्मवाक्यम् इति द्विकोटिको अयं संशयः इति अर्थः. तत्र प्रथमकोटौ संशयबीजम् आहुः **उत जीवस्य** इति. **प्रतिपादने** इति सति सप्तमी. अपरकोटौ बीजम् आहुः **स्वातन्त्र्येण** इति.

अर्थज्ञाने न सन्देहः तथापि नियामकं हेतुम् आह **भेदेन** इति. तस्य अयम् अर्थः. **''किंज्योतिरयं जीवः''** (तत्रैव ४।३।२) इति प्रश्ने सूर्य-चन्द्राग्नि-वाङ्-

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्यादिना. **यद्यपि अर्थज्ञाने** तात्पर्यविषयीभूतवाक्यार्थनिर्णये सति इति अर्थः. **नियामकं** विवक्षितार्थनियामकम्. **भेदेन** इत्यत्र पूर्वसूत्रस्थं व्यपदेशाद् इति अनुवर्तनीयम्. तथाच भेदेन व्यपदेशाद् इति हेतुः सिद्धः. **अयम् अर्थः** भगवानेव इति याज्ञवल्क्यस्य आशयः. तत्र युक्तिस्तु यदि जीवः स्वज्योतिः स्याद् इत्यादि. **प्रश्ने** राज्ञः प्रश्ने. **आह** याज्ञवल्क्य

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ज्ञानकर्मत्वे इति. 'ज्ञा'धातुनिरूपितकर्मत्वे इति अर्थः. ज्ञानविषयत्वे इति यावत्. तथाच मुख्यत्वेन ब्रह्मणएव ज्ञानविषयत्वे प्रतिपाद्ये ब्रह्मप्रतिपादकब्रह्मवाक्यत्वम् इति अर्थः.

ननु एवं चेत् तर्हि वाक्यादेव उभयपरार्थप्रतीतौ सन्देहनिवृत्तिरेव न स्याद् अतो वास्तविकार्थे श्रुतेः तात्पर्यं वक्तव्यम्. तच्च अस्मिन् अर्थे श्रुतेः तात्पर्यम् अस्मिन् अर्थे नास्ति इति नियामकहेतुज्ञानं विना तज्ज्ञानं न जायते इत्यतो असौत्रं हेतुम् अवतारयन्ति **यद्यपि** इति. **अर्थज्ञाने** इति. वास्तविकार्थज्ञाने जाते सति इति अर्थः. **न सन्देहः** इति. तथाच साधारणधर्मवद् धर्मिज्ञानं संशयजनकम्. एवञ्च प्रकृते विषयवाक्ये संशयजनक-जीवब्रह्मोभयसाधारणपदानां सत्त्वेऽपि तात्पर्यज्ञानेन वास्तविकार्थज्ञाने जाते न सन्देहः इति अर्थः. ननु सन्देहनिवृत्तौ सूत्रं किमर्थम्? अतः आहुः **नियामकम्** इति. अत्रैव श्रुतेः तात्पर्यम् इति नियामकम् इति अर्थः. **हेतुम् आह** इति. सूत्रकारः इति शेषः. एतावता सन्देहनिवृत्त्यर्थं शास्त्रप्रवृत्तिः दर्शिता. सूत्रार्थस्तु सिद्धान्ते अनुपदमेव वक्ष्यन्ति. इतः परं विषयवाक्ये कानिचित् पदानि उभयसाधारणानि कानिचिद् एकतरबोधकानि इत्यतः तात्पर्यविषयीभूतार्थबोधनार्थं ब्राह्मणद्वयार्थं विशदयन्ति **एतस्य अयम् अर्थः** इति. **एतस्य** विषयवाक्यस्य. क्वचित् 'तस्य' इति पाठः. अतिसन्निकृष्टत्वाद् 'एतस्य' इति पाठः समीचीनः. तदुक्तम् **''इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्, अदसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षे विजानीयाद्''** (   ) इति. **किञ्ज्योतिः** इति. **किञ्ज्योतिः** इत्यारभ्य **वाक्यभेदप्रसङ्गाच्च** इति एतदन्तं भाष्यं **''जनकं ह वैदेहम्''** इत्यारभ्य **''यत्र एतद् ऊर्ध्वाच्छ्वासीभवति''**(बृहदा.उप.४।२।१) इत्येतदन्तस्य ज्योतिर्ब्राह्मणस्य अर्थबोधकम्. अथच स यत्र इति जीव इत्यारभ्य क्वचित् पाठभेदेऽपि अयमेव अर्थः इति एतदन्तं भाष्यं **''स यत्र अयम् आत्मा''** इत्यारभ्य **''ब्रह्म भवति य एवं वेद''** इत्यन्तस्य शारीरब्राह्मणस्य अर्थबोधकं बोध्यम्. **जीवः** (बृहदा.उप.४।३।२) **इति**

निराकरणानन्तरम् 'आत्मज्योतिः'. आत्मा भगवानेव अस्य ज्योतिः इति उत्तरानन्तरं "**कतम आत्मा**"(तत्रैव४।३।७) इति प्रश्ने "**योऽयं विज्ञानमयो ज्ञानरूप इन्द्रियेषु हृदि च प्रकाशमानः**"(तत्रैव४।३।७) इति उत्तरे, जीवोऽपि एतादृशः इति तन्निराकरणार्थं "**स समानः सन्**"(तत्रैव ४।३।७) जीवतुल्यः सन् क्रीडति इति आह. तस्य उभयधर्माअपि उच्यन्ते क्रियामात्रस्य तन्मूलत्वाय. तत्र हि चत्वारि स्थानानि. अयं लोकः परलोकः स्वप्नः इति त्रयं जीवसमानतया अनुभुवति. तत्र स्वप्नस्य मिथ्यात्वाद् द्वयमेव. सुषुप्तं च चतुर्थम्. जीवस्यतु मोक्षोऽपि.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आह. **एतादृशः** इति प्रकाशमानत्वं जीवे अभिमानितया भगवतस्तु अन्तर्यामितया. **तस्य** भगवतः. **तत्र** उभयधर्मस्थले. क्रीडा तु "**उभौ लोकौ सञ्चरति**" (बृहदा.उप.४।३।७),

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

प्रश्ने इति. राज्ञा "**किञ्ज्योतिरयं पुरुषः**"(बृहदा.उप.४।३।३) इति वाक्येन जीवविषयके प्रश्ने कृते सति इति अर्थः. **निराकरणानन्तरम्** इति. "**अस्तमित आदित्ये**" (बृहदा.उप.४।३।५) इत्यादिवाक्येन इति शेषः. **भगवान्** इति. एतेन जीवो नास्ति इति याज्ञवल्क्याशयो वर्णितः. **प्रश्ने** इति. 'आत्म'पदस्य उभयत्रापि प्रयोगात् प्रश्ने कृते इति अर्थः. **जीवोऽपि** इति. तथाच प्रकाशमानत्वम् अन्तर्यामित्वेन अभिमानित्वेन उभयसाधारणम् इति भावः. **इति आह** इति. "**स समानः सन्**" इत्यादिना "**मृत्यो रूपाणि**" इत्यन्तेन श्रुतिः आह इति अर्थः. ननु एवं चेद् जीवधर्मकथनं किमर्थम्? अतः आहुः **तस्य उभये**ति. **तस्य** ब्रह्मणः. **क्रियामात्रस्य** जीवव्यापारमात्रस्य. **तन्मूलत्वाय** ब्रह्ममूलत्वार्थम्. उच्यन्ते इति अन्वयः. तथाच न केवलम् अत्रापि उच्यन्ते, किन्तु जीवमुख्यप्राणलिङ्गसूत्रेऽपि उक्ता इति अर्थः. तथाच ब्रह्मवाचकत्वमेव अस्य वाक्यस्य इति भावः. क्रीडति इति आह इति उक्तं, सा च कुत्र का वा क्रीडा? इत्यतः आहुः **तत्र** इत्यादिना. क्रीडास्थानानि आहुः. **अयं लोकः परलोकः स्वप्नः इति** इति. त्रयाणां सत्त्वे उभौ लोकौ इति श्रुतौ कथम् उक्तम्? अतः तात्पर्यम् आहुः **तत्र स्वप्नस्य** इति. **चतुर्थम्** इति. "**स एष सम्प्रसादे रत्वा चरित्वा**" (बृहदा.उप.४।३।१५) इति श्रुतेः रत्वा मित्रादिदर्शनेन रतिम् अनुभूय, चरित्वा विहारं कृत्वा इति अर्थः. **मोक्षोऽपि** इति. 'अपि'ना जीवस्य इदं पञ्चमं स्थानम्. नच मोक्षस्य स्थानत्वं कथम्? इति वाच्यम्. "**एषो अस्य परमो लोकः**" (बृहदा.उप.४।३।२०) इति वक्ष्यमाणश्रुतेः तस्यापि

तत्र अस्मिन् लोके जीवस्य अनीशित्वं प्रत्यक्षसिद्धम्. मोक्षेतु ऐक्यम्. स्वप्नस्तु माया. अतःपरं द्वयम् अवशिष्यते. तत्र श्रुत्यैव भेदः प्रतिपादितः. तत्र भगवतो जीवसाम्ये अन्तःकरणेन्द्रियधर्माः प्राप्नुवन्तीति तत्र अनुकरणम् आह **''ध्यायतीव लेलायतीव''** (बृहदा.उप.४।३।७) इति. बुद्धिसहितः स्वयमेव स्वप्नो भूत्वा

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

''ध्यायतीव लेलायतीव''(तत्रैव) इत्याद्युक्ता. **लेलायती** इत्यस्य लोलायती इति अर्थः. 'ए'कारस्थाने 'ओ'कारः. परलोकक्रीडा वास्तवी इहलोकक्रीडा च अनुकरणरूपा इति उक्त्वा स्वप्नक्रीडाम् आहुः **बुद्धी**ति. अयं च **''सधीः स्वप्नो भूत्वा''**(तत्रैव)

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

स्थानत्वात्. इदानीं **''सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेन''** (ब्रह्मसू.१।३।४२) इति सूत्रेण भेदस्य विवक्षितार्थे नियामकत्वं वक्तुं भूमिकाम् आरचयति **तत्र अस्मिन्** इत्यादिना. ननु ''सः समानः'' इत्यत्र समानत्वं तद्भिन्नत्वे सति तद्गतधर्मवत्त्वं, तथाच पञ्चसु स्थानेषु जीवभेदस्य वेदेन अप्रतिपादनाद् भेदघटितसादृश्याभावात् कथं सः समानः सन् क्रीडति? इत्यतः आहुः **प्रत्यक्षसिद्धम्** इति. तथाच भेदस्य सिद्धत्वाद् वेदेन न उक्तः इति भावः. **मोक्षेतु** इति. **''ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति य एवं वेद''** (बृहदा.उप.४।४।६) इति श्रुत्यैव अभेदप्रतिपादनात् तत्र भेदकथने प्रयोजनाभावः इति अर्थः. **स्वप्ने**ति. मायिकत्वमेव कथनाभावे प्रयोजकम्. तेषु स्थानेषु भेदप्रतिपादने प्रयोजनाभावम् उक्त्वा अवशिष्टस्थानद्वये भेदः श्रुत्या प्रतिपाद्यते इति आहुः **अतः परम्** इति. **श्रुत्यैव** इति. **''अयं शारीर आत्मा प्राज्ञेन आत्मना सम्परिष्वक्तः''** (बृहदा.उप.४।३।३५) इत्यनेन सुषुप्तौ अयं शारीरः आत्मा प्राज्ञेन आत्मना च आरूढः इत्यनेन परलोके भेदः प्रतिपादितः इति अर्थः. तथाच स्थानद्वये भेदस्य असिद्धत्वात् तत्र भेदश्च श्रुत्या प्रतिपाद्यते इति कृत्वा इदं वाक्यं ब्रह्मपरं नतु जीवपरम् इति विवक्षितार्थे भेदस्य नियामकत्वं वक्तुं बादरायणाः **''सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेन''** (ब्रह्मसू.१।३।४२) इति सूत्रं कृतवन्तः इति भावः. एतावता ''सः समानः सन्'' इत्यस्य तात्पर्यार्थोपवर्णितः. इदानीम् **''उभौ लोकौ अनुसञ्चरति''** (बृहदा.उप.४।३।७) इत्यनेन भगवतः जाग्रत्स्वप्न-क्रीडाप्रकारं वक्तुं प्रथमतः जाग्रत्क्रीडाप्रकारम् आहुः **तत्र** इति. **ध्यायतीव** इति. ध्यानव्यापारं करोतीव. 'इव' शब्दो अनुकरणार्थः. तथाच वास्तविकध्यानं नास्ति इति भावः. **लेलायतीव** इति. लोलायतीव इति तदर्थः. 'ओ'कारस्थाने 'ए'कारः इति प्रकाशकृतः. अथवा श्रौतत्वात् तस्यैव चलतीव इति अर्थः. तथाच इह लोके

जागरणानुसन्धानं न करोति. एवं जाग्रत्स्वापौ ब्रह्मणो लोकद्वयम्.

जीवस्य स्थानत्रयम् आह **“स वा अयम्”** (तत्रैव ४।३।१५) इति कण्डिकाद्वयेन. **सः** इति पूर्वप्रक्रान्तो जीवः. जीवस्य शरीरेन्द्रियाणां दुःखदातृत्वमेव. **अथ** इति भगवच्चरित्रम्. सतु स्वस्य आनन्दं जीवस्य दुःखं च पश्यति. भेदो ‘अथ’शब्दात्. जीवस्य अनीशित्वात् येन प्रकारेण अयं जीवः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्यादेः अर्थः. तथाच तत्र मायारूपेण जागरणाननुसन्धानरूपा जीवक्रीडा इति अर्थः. **एवं** क्रीडाद्वयम् उक्त्वा **“स वा अयं पुरुषः”** इति **“तस्य वा एतस्य पुरुषस्य”** (तत्रैव ४।३।९) इति कण्डिकाद्वयस्य अर्थम् आहुः **जीवस्य** इत्यादि. पूर्वप्रक्रान्तः **“किं ज्योतिरयं पुरुषः”** इति प्रश्ने प्रक्रान्तो न तु ‘समान’इत्यत्रोक्तः. कण्डिकाद्वये फलितम् आहुः **जीवस्य** इत्यादि. दुःखदातृत्वं च ‘पाप्म’पदाद् ज्ञेयम्. एतेन अनीशत्वं जीवस्य बोधितम्. **“अथ यथाक्रम”**(बृहदा.उप.४।३।९) इत्यादेः अर्थम् आहुः **अथ इति** इत्यादि. चरित्रस्य स्वरूपम् आहुः **सतु** इत्यादि. तदुक्तम् **“अथ यथाक्रमो अयं परलोकस्थाने भवति तम् आक्रममाक्रम्योभयान् पाप्मन आनन्दांश्च पश्यति”**(तत्रैव) इत्यन्तेन. अर्थस्तु **अयं** जीवः **यथाक्रमः** कृतकर्मानुसारिफलभाक् **तमाक्रमम्** अन्यजन्मनि कृतं धर्माधर्मरूपम् **आक्रम्य** अवलम्ब्य **पाप्मनः** फलं दुःखरूपं. **भेदः** जीवप्रकरणाद्

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

जीवानुकरणेन क्रीडा अवतारदशायां पुराणप्रसिद्धा **“चेरतुः प्राकृतो यथा”** ( ) इत्यादिना इति अर्थः. स्वप्ने ताम् आहुः **बुद्धिसहितः** इति. **स्वयमेव** इति. तथाच मायिकीं जीववत् क्रीडां करोति इति अर्थः.

जीवक्रीडाप्रकारम् आहुः **जीवस्य** इति. **कण्डिकाद्वयेन** अष्टमनवम–कण्डिकाद्वयेन. **पूर्वप्रक्रान्तः** इति. **“किञ्ज्योतिः अयं पुरुषः”** (बृहदा.उप.४।३।४) इति प्रश्ने प्रक्रान्तः इति अर्थः. **जीवः** इति. ‘पुरुष’–पदवाच्यः. ‘इदं’शब्देन तस्यैव सन्निकृष्टस्य निर्देशात्. कण्डिकाद्वय–सिद्धार्थम् आहुः **जीवस्य** इति. **दुःखदातृत्वमेव** इति. श्रुतिस्थ‘पाप्म’पदाद् बोद्धव्यम्. एतेन कण्डिकाद्वयेन जीवस्य अनीशितत्वं बोधितम्. अथ यथाक्रमो अयम् इति अस्याः श्रुतेः अर्थम् आहुः **अथ** इति. चरित्रम् आहुः **सतु** इति. **“अथ यथाक्रमो अयम्”** इत्यारभ्य **“आनन्दांश्च पश्यति सः”** (बृहदा.उप.४।३।९) इत्यन्तं विषयवाक्ये स्पष्टम्. **सः** भगवान्. पश्यति इति परलोके जीववत् क्रीडा भगवतो बोध्या. अस्यां कण्डिकायां क्रीडा बोध्यते इत्यत्र गमकम् आहुः

परलोके गच्छति तम् उपायं भगवानेव करोति. **“अथो खलु”** (तत्रैव ४।३।१४) इति भगवतो न जागरित-स्वप्नभेदो अस्ति इति पक्षः. परं स्वयंज्योतिष्ट्वं तत्र स्पष्टम्. एतावद् दूरे भगवच्चरित्रम् अङ्गीकृत्य जीवविमोक्षार्थं प्रश्नः. **“स वा एष”**(तत्रैव ४।३।१६) इति जीववाक्यम्. तस्य सहजः सङ्गो नास्ति इति स्वप्नसङ्गाभावं प्रत्यक्षतः प्रदर्शयन् असङ्गत्वम् आह. तावतापि जागरणावस्थायाम् असङ्गत्वज्ञानाय पुनः प्रश्नः. तत्र मत्स्यदृष्टान्तो अवस्थाभेदज्ञानाय

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ब्रह्मप्रकरणभेदः. **‘अथ’शब्दात्** ‘अथ’शब्देन बोधनात्. **सहजः** भगवन्मायया

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

भेदः इति. अस्यां कण्डिकायां **“तम् आक्रमम् आक्रम्य”** इत्यस्य अर्थम् आहुः **जीवस्य** इति. इयम् अपरा परलोकक्रीडा. **“अत्र यत्र प्रस्वपिति”** इत्यारभ्य **“यमेष न प्रतिपद्यते”** इत्यन्तं विषयवाक्यं भगवतः स्वप्नक्रीडावर्णनपरम्. तेन स्वयं ज्योतिष्ट्वं साधितम्. अस्य व्याख्यानन्तु प्रकाशे अनुसन्धेयम्. श्रुतौ मतान्तररीत्या भगवतः स्वप्नम् अङ्गीकृत्य स्वयं ज्योतिष्ट्वं साधितं तद् व्याख्यातुम् आहुः **अथो खलु** इति. अस्मिन् पक्षे यद् जागरितं तदेव स्वप्नम् इति अभेदः. अथो खलु इति पक्षे अस्वरसम् आहुः **परम्** इति. परन्तु इति अर्थः. **तत्र स्पष्टम्** इति. **तत्र** पूर्वस्मिन् पक्षे. तथाच पूर्वं केवलस्वप्नस्यैव उक्तत्वाद् अन्यज्योतिरभावात् स्वयञ्ज्योतिष्ट्वं स्पष्टम्. अस्मिन् पक्षेतु जागरित–स्वप्नयोः ऐक्यप्रतिपादनाद् जागरिते च पूर्वम् आदित्यादीनाम् उक्तत्वात् स्वयं ज्योतिष्ट्वम् अस्पष्टम् इति अस्वरसः इति भावः. अतः ऊर्ध्वं विमोक्षाय ब्रूहि इति प्रश्नम् अवतारयन्ति **एतावद्दूरे**ति. एतावत्पर्यन्तम् इति अर्थः. **भगवच्चरित्रम्** इति. **“सः समानः सन्”** इत्यारभ्य **“स्वयं ज्योतिर्भवति”** इति एतावत्पर्यन्तं चरित्रं बाधकम् अङ्गीकृत्य इति अर्थः. जीवविमोक्षं वक्तुं **“स वा एषः”** इत्यस्य जीववाक्यत्वं बोधयन्ति **जीववाक्यम्** इति. **तस्य** जीवस्य. **प्रत्यक्षतः** इति. स्वाप्निकराज्ये अनासक्तिः अनुभवसिद्धा इति भावः. **आह** इति. वाक्यम् आह इति अर्थः. ननु पुनः प्रश्नः किमर्थम्? अतः आहुः **तावतापि** इति. स्वाप्निके पदार्थे अनासक्तिः जाग्रत्यासक्तिः दृश्यतेति अनुभवेऽपि इति अर्थः. श्रुतौ उत्तरे मत्स्यदृष्टान्तस्य तात्पर्यम् आहुः **तत्र** इति. **तत्र** उत्तरे. क्रियाज्ञानप्रधान इतिप्रथमान्तम्. क्रियायाः ज्ञानं मुख्यं यस्मिन् सः इति दृष्टान्तविशेषणम्. एवञ्च नदी–मत्स्ययोः क्रियावैलक्षण्याद् नदीभिन्नत्वज्ञानं मत्स्ये यथा जायते, एवं जीवस्य उभयत्र सञ्चारक्रियया जाग्रत्स्वप्नावस्थाद्वयभिन्नत्वज्ञानं जायते. एवं

क्रियाज्ञानप्रधानः. श्येन-सुपर्ण-दृष्टान्तस्तु सुषुप्तौ भगवत्स्वरूपप्राप्तये अवस्थान्तः. ‘यत्र’ इति च भगवान्. पञ्चवर्णनाडीकृतएव अस्य क्लेशो भगवत्कृतएव आनन्दः इति स्वप्नानन्दो भगवद्रूपः परमो लोकः. सुषुप्तिस्तु अकामरूपो भगवान्. अत्र ज्ञानाभावाद् उभयोः स्पष्टतया भेदनिर्देशः. ‘‘**शारीरः प्राज्ञः**’’ (तत्रैव ४।३।२१) इति. नाड्याच्छादनाभावो ‘‘**अतिच्छन्दः**’’ (तत्रैव ४।३।२१), तत्र भगवत्स्वरूपं गतस्य बाह्येन्द्रियधर्माभावम् आह ‘‘**विजानीयाद्**’’

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सम्पादितः. **नाड्या** पञ्चवर्णनाड्या. आच्छादनाभावोतिच्छन्दः ऐच्छिकः छन्दांसि

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उभयकुलसञ्चरणाद् तत्र-तत्र स्वाभाविकी आसक्तिः मत्स्यस्य यथा नास्ति तथा जीवस्यापि उभयत्र सञ्चाराद् अवस्थाद्वयेऽपि आसक्तिराहित्येन दृष्टान्तस्वारस्यं बोध्यम्. ‘‘**सएव सम्प्रसादः**’’ (बृहदा.उप.४।३।१५) इत्यनेन उक्ता या सुषुप्त्यवस्था तस्याः दृष्टान्तम् आह **श्येने**ति. श्येनः महाकायः मन्दवेगः, सुपर्णः स्वल्पकायः तीव्रवेगः. श्येनो यथा आकाशे अत्यन्तं भ्रमणं कृत्वा नीडे आगत्य सुखं स्थीयते एवम् अयं पुरुषः जाग्रति स्वप्ने च श्रान्तः सन् सुषुप्तौ सुखम् अनुभूयते. ननु तत्र भगवत्प्राप्तिः कथं ज्ञायते ? इत्यतः आहुः **अवस्थान्तः** इति. ‘‘**एतस्मा अन्ताय धावति**’’ (बृहदा.उप.४।३।१९) इति श्रुतौ एतस्मै अन्ताय भगवते इत्यर्थकेन अवस्थान्तपदेन भगवान्. ‘‘**अथच यत्र सुप्तो न किञ्चन कामयते**’’ (बृहदा.उप.४।३।१९) इति श्रुतौ यत्र भगवति इत्यर्थकेन ‘‘यत्र च’’ इति पदेन भगवान् ज्ञायते इति अर्थः. ननु अवस्थान्तो भगवान् इति उक्तं तत्र स्वप्नावस्थायां दुःखदर्शनात् कथम् इदम्? इत्यतः आहुः **पञ्चवर्णे**ति. एकः केशः सहस्रधा भिन्नः इति एतादृशसूक्ष्माः नाड्यः शुक्ल-नील-पीङ्गल-हरित-लोहितवर्णैः रसैः पूर्णास्ताः पञ्चवर्णाः भवन्ति इति ततएव अस्य क्लेशः इति अर्थः. तथाच उक्तं सुश्रुते ‘‘**पिङ्गाः शिरा वातवहा नीलाः पित्तवहाः स्मृताः, असृग्वहास्तु रोहिण्यो गौर्यश्लेष्मवहाः शिराः**’’ (सुश्रु.संहि.   ) इति. इतरेतरसंयोगाद् नीलाः. पद्ये ‘नील’शब्देन हरिताः बोध्याः. तथाच शुक्लवर्णनाडीमनःसम्बन्धे राज्यानुभवः नीलवर्णादिसम्बन्धे गर्तपातः इति उपाधिवशात् क्लेशः इति भावः. **भगवद्रूपः** इति. अक्षरात्मको लोकः इति अर्थः. सुषुप्तिम् आह **परमः** इति. **अत्र** सुषुप्तौ. ‘यत्र’ इति वा पाठः. **शारीरः** इति. जीवस्य ज्ञानाभावाद् शारीरः. प्राज्ञस्तु भगवानिति भेदनिर्देशः इति अर्थः. **नाड्ये**ति. तत्र नाडीकृतक्लेशो नास्ति इति अर्थः. **तत्र** इति. सुषुप्तौ.

(तत्रैव ४।३।३१) इत्यन्तेन. बाह्येन्द्रियाणां सलिलत्वम् इति पूर्वोपपत्तिः. **‘‘एषः ब्रह्मलोकः’’** (तत्रैव ४।३।३२) इत्यारभ्य, **‘‘अनुशशासैतदमृतम्’’** (तत्रैव ४।३।३३) इत्यन्तेन आन्दरूपो भगवान् प्रतिपादितः फलत्वाय. एतावता उभयासङ्गः प्रतिपादितः. तस्य अनुभवारूढत्वाय पुनः प्रश्नः. दर्शनादर्शनावापोद्वापाभ्यां सिद्धम् **‘‘असङ्गो ह्ययं पुरुषः’’** (बृहदा.उप. ४।३।१५) इति. एवं जीवं सुषुप्तौ भगवन्तं च ज्ञात्वा मोक्षोपायं पृच्छति(तत्रैव ४।३।३३). तत्र याज्ञवल्क्यस्य भयं जातं, सुबुद्धिः अयं निर्बन्धेनापि सर्वं ज्ञास्यति इति जीवब्रह्मधर्मान् एकीकृत्य जीवोपक्रमेण ब्रह्मोपसंहारेण आह(तत्रैव

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अतिक्रान्तः इति वा. **सलिलत्वं** द्रवीभावेन लयः. भगवति जीवलये सति जले जलस्येव न अन्यत्वविभक्तत्वयोः भानम् इति अर्थः. **उभयासङ्गः** अन्यत्व-विभक्तत्वयोः असङ्गः इति अर्थः. **तस्य** मोक्षार्थम् उपदिष्टस्य. दर्शनस्य आवापः अदर्शनस्य उद्वापो जनकस्य जातः इति आहुः **दर्शने**त्यादिना. तावदुक्त्यैव अस्य मोक्षे स्वरूपयोग्यता सम्पन्ना इति आहुः **एवम्** इत्यादिना. मोक्षयोग्यं **जीवं भगवन्तं च** मोक्षदातारं ज्ञात्वा पृच्छति इति अर्थः. उत्तरतात्पर्यविषयम् आहुः **तत्र** इत्यादि. **सर्वं ज्ञास्यति** इति कामप्रश्नव्याजेन मदीयं ब्रह्मज्ञानं सर्वं ग्रहीष्यति इति अर्थः. **आह** इति सकामप्रश्नेन इष्टं निष्कामप्रश्ने मोक्षप्राप्तिं च उक्त्वा सुषुप्त्यवस्थया एकीकृत्य आह इति अर्थः. प्रश्नानाम् उत्तरेण निर्णयोक्त्यवसाने

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

विजानीयाद् इति. ‘‘तद्यथा प्रियया’’ इति आरभ्य ‘‘अन्योन्यं स्पृशेद् अन्योन्यद् विजानीयाद्’’ इत्यन्तेन इति अर्थः. **सलिलत्वं** शुद्धब्रह्मणः सलिलत्वं जलतुल्यत्वं, तत्र प्राप्तस्य बाह्येन्द्रियाणामपि सलिलत्वम् इति अर्थः. **पूर्वोपपत्तिः** इति. ‘‘एषो अस्य परमो लोकः’’ इति यत् पूर्वम् उक्तं तस्य उपपत्तिः इति अर्थः. तथाच अत्रापि उक्तम् इत्यतो न पुनरुक्तिः इति भावः. **एष ब्रह्म** इति. एतदग्रिमग्रन्थेन प्रतिपादितः इति अर्थः. **एतावते**ति. सुषुप्तिमाहात्म्यकथनेन इति अर्थः. **अनुभवारूढत्वाय** इति. सुषुप्तेः ईश्वरस्य च भेदः इति अनुभवार्थम् इति अर्थः. उत्तरतात्पर्यं वदति **दर्शने**ति. मोक्षे सुखस्य सर्वदा सत्त्वाद् आवापः संग्रहः. सुषुप्तौ ‘‘सुखम् अहम् अस्वाप्सम्’’ इत्यनेन स्मरणेन उद्वापः त्यागः. **सिद्धम्** इति. तथाच सुषुप्तिसुखस्यापि साक्षित्वेन भिन्नत्वात् सिद्धम् इति अर्थः. पुनः प्रश्नतात्पर्यम् आहुः **एवम्** इति. **जीवम्** इति. मोक्षे योग्यं जीवम् इति अर्थः **भगवन्तं** मोक्षदातारम्. प्रश्नानन्तरं जीवब्रह्मधर्मान् एकीकृत्य उत्तरस्य तात्पर्यम्

४।३।३३-४।४।२३). तत्र, **''स यत्र''** (तत्रैव ४।३।३६) इति जीवस्य मूर्च्छोपतापावस्था. **''तद्यथा अन''** (तत्रैव ४।३।३५) इति मरणावस्था. तत्र भगवानेव एनं लोकान्तरे नयति. **''तद्यथा राजानम्''**(तत्रैव ४।३।३७) इति भगवत्सन्मानम्, **''एवंविदम्''** (तत्रैव ४।३।३७) इति वचनात्. जीवस्तु न

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

मुहुः अवरोधं कृतवान् अतो भयं जातम् इति भावः. उत्तरं विवृण्वन्ति **''स यत्र''** इत्यादि. प्रश्नश्रुत्यर्थस्तु 'अणिमानं' स्थूलशरीरकार्यम्. 'उपतपते'ति उपतापजनकेन ज्वरादिना. 'न्येति' प्राप्नोति. ततो अणिमानं ज्ञानकार्श्यरूपां मूर्छां नितरां गच्छति. 'बन्धनाद्' वृन्तात्. 'सम्प्रमुच्य'इति ममतात्यागेन स्वगुणं चैतन्यम् आकृष्य. 'प्रतियोनी'ति स्थूलशरीरं लक्ष्यीकृत्य. 'प्राणाय' इति पुनः जीवनाय. सा स्थूलदेहप्राप्तिः अस्य येन हेतुना प्रकारेण च भवति तं हेतुं प्रकारं च वक्तुं मरणावस्था उच्यते इति आहुः **''तद्यथा अन''** (बृहदा.उप.४।३।३५) इति. **मरणावस्था** इति. हेतुः भगवान् दार्ष्टान्तिके स्पष्टः. श्रुतौ 'सुसमाहितम्' इति भाराक्रान्तम्. 'उत्सर्जद्' इति शब्दं कुर्वन्. ''शारीरः आत्मा'' इति लिङ्गशरीरविशिष्टो जीवः. 'अन्वारूढः' इति शाकटिकेनेव अधिष्ठितः. 'उत्सर्जद्' इति वेदनया हिक्कादिशब्दान् कुर्वन्. अग्रिमकण्डिकयोः अर्थम् आहुः **''तद्यथा राजानम्''**(तत्रैव ४।३।३८) इत्यादिना. श्रुतौ 'प्रत्येनसः' पापिनां शासनार्थं नियुक्ताः. 'ग्रामण्यो' ग्रामनायकाः. 'प्रतिकल्पन्ते' उद्युज्य स्वोपभोगाय प्रतिकल्पन्ते. 'भूतानि' शरीरान्तः आरम्भणाय ईश्वरेण नियुक्तानि. ननु जीव-ब्रह्मणोः उभयोरपि तत्र गमने कथं ब्रह्मणएव सन्माननम्? इत्यतः आहुः **''एवंविदम्''**(तत्रैव ४।३।३०) इत्यादि. **नैवंविद्**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आहुः **तत्र** इति. **निर्बन्धेन** कामप्रश्नमिषेण. तथाच याज्ञवल्क्यः व्याख्यानसामर्थ्याभावाद् न भीतवान्, किन्तु व्याजेन सर्वं मदीयं ज्ञानं गृहीतुं वारंवारम् अवरोधं करोति इति. तेनच राज्ञः बुद्धिस्तवने पर्यवसानम् इति भावः. उत्तरं वक्तुं श्रुतिः वृत्तम् अनुवदति **स वा एष** इति. **स यत्रेति** इति. **''स यत्र अयम् अणिमानम्''** (बृहदा.उप.४।३।३६) इति वाक्येन मूर्छोपतापावस्था कथिता इति अर्थः. **तद्यथा** इति. **''तद्यथा नः सुसमाहितम्''** इत्यादिना मरणावस्था कथिता. इदं वाक्यं काण्वपाठे पूर्वं बोध्यम्. अग्रिमकण्डिकयोः अर्थम् आहुः **तद्यथा** इति. **सम्माननम्** इति. क्वचित्पुस्तके 'सन्मानम्' इति अपपाठः. न जीवस्य इति अर्थः. कुतः? राजपदोक्तेः. ननु राजपदं दृष्टान्ते अस्ति न तेन जीवनिराकरणम् अतः आहुः **एवंविदम्** इति. **''एवं हैवं विदं सर्वाणि भूतानि इति''**

एवंवित्. सिद्धवद्वचनाद् न ज्ञानविधिः, वाक्यभेदप्रसङ्गाच्च. ‘‘**स यत्र**’’ (तत्रैव ४।४।१) इति जीवे मोहो अधिकः. ‘‘**अथ एनम् एते प्राणाः**’’ (तत्रैव ४।४।१) इति भगवच्चरित्रं सम्पद्यते इत्यन्तेन श्लोके (तत्रैव ४।४।६) तद् ब्रह्म ‘अस्य’

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्यादि. संसारिणः उपक्रान्तत्वाद् ‘एवंवित्’पदेन परामृष्यमाणो जीवत्वेन न वक्तुं शक्यः इति अर्थः. ननु प्राज्ञान्वारोहान्तज्ञानवन्तम् अनूद्य तस्मिन् ब्रह्मायाति इति ज्ञानकथनात् पूर्वोक्तकर्मफलविदः संसारिणो जीवस्यैव इदं सन्माननं न ब्रह्मणः इति चेत्, तत्र आहुः **सिद्धवद्वचनाद्** इत्यादि. **वाक्यभेदप्रसङ्गाद्** इति. तथाच ‘‘एवंविद्’’ इत्यत्र एकत्र एकतत्त्वविशिष्टं जीवम् अनूद्य एवंविद् भवेद् इति ज्ञानं विधीयते उत ज्ञानवान् जीवो अनूद्यते? तत्र आद्ये ज्ञानवन्तम् अनूद्य इति पक्षे सिद्धवद्वचनानुवादाद् विधिः असम्भवदुक्तिकः एवंविद्भवेद् इति विधिकल्पने च वाक्यभेदः इति अर्थः. अतः परं शारीरब्राह्मणस्य अर्थम् आहुः ‘‘**स यत्र**’’ इत्यादि. ‘‘**स यत्रायं शारीर आत्मा**’’ (बृहदा. उप.४।३।३५) लिङ्गविशिष्टो जीवः. ‘अबल्यं नीत्य’ पूर्वोक्तोपतापादिना नैर्बल्यं नितरां प्राप्य. ‘सम्मोहमिव न्येति’ मरणावस्थायाम् अधिकं मोहं प्राप्नोति. तदा उत्क्रमणस्य कर्तुम् अशक्यत्वात् तदुपायं भगवानेव करोति, ‘‘**यथाक्रमो अयं परलोकस्थान**’’ (बृहदा. उप.४।३।९) इत्यादिना पूर्वं तस्य उक्तत्वात्. तद् इदानीं सविस्तरं वदामि इति ज्ञापनाय ‘‘**अथ एनम् एते प्राणाः**’’ इति ‘अथ’ शब्दः. नच प्राणाः स्वतएव आयान्ति इति शङ्क्यं, जडत्वात्. अतो जीवे सम्मुग्धे भगवत्प्रेरिताएव आयान्ति इति आशयेन आहुः ‘‘**अथैनम्**’’ इत्यादि. श्रुतौ **अथ** इति भगवत्प्रेरणोत्तरम्. एवं जीवस्य लोकान्तरप्रापकं भगवच्चरित्रं श्रुतौ विस्तरेण उक्तं तस्य चरित्रस्य भगवदीयत्वे गमकम् आहुः **श्लाके**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

(बृहदा.उप.१।५।२०) वाक्ये इति शेषः. **न एवंविद्** इति. कर्मफलविद् न भवति इति अर्थः. ननु ‘एवंविदम्’ इति श्रुत्या ज्ञानं विधीयते इत्यतः आहुः **सिद्धवद्** इति. ‘एवंविदम्’ इति सिद्धवद् प्रयोगाद् न विधिः इति अर्थः. ननु ‘‘एवंविद् भवेद्’’ इति विधिवाक्यं कल्पयित्वा योजनीयम् इत्यतः आहुः **वाक्यभेदः** इति. विधेयभेदे वाक्यभेदाद्, ‘‘**एवं हैवं विदम्**’’ इति वाक्यम् ‘‘**अथचेदं ब्रह्मायाति**’’ (बृहदा.उप.४।३।३७) इति वाक्यं भिन्नं स्याद् इति अर्थः. चतुर्थशारीरब्राह्मणस्य अर्थम् आहुः **सः यत्रेति** इति. अत्र ब्राह्मणे मरणावस्थाप्रतिपाद्यते कण्डिकापञ्चकेन. तत्र ‘‘स यत्र’’ इति वाक्येन सम्मोहः उच्यते इति आहुः **मोहः** इति. विवेकाभावः इति अर्थः. **सम्पद्यते** इति. यत् कर्म कुरुते तद् अभिसम्पद्यते इति पञ्चमकाण्डिकान्तेन चरित्रम्

जीवस्य 'अकामयमानस्य' भगवतः स्वरूपं पूर्वमेव उक्तम् अनुवदति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इत्यादि. श्लोकस्तु सार्धः. तथाहि **''तदेव तत्सह कर्मणेति लिङ्गं मनो यत्र निषक्तम् अस्य प्राप्यान्तं कर्मणः तस्य यत्किञ्च इह करोति अयं तस्मात् लोकात् पुनरेति अस्मै लोकाय कर्मणे''** (तत्रैव ४।४।६) इति. अर्थस्तु 'सः' जीवः. 'तत्सह' तेन ब्रह्मणा प्राज्ञेन सह. 'तदेव एति' प्राप्नोति. तत्किम्? अतः आहुः 'अस्य' जीवस्य. 'लिङ्गं' लिङ्गशरीरे प्रधानभूतं 'मनः'. 'कर्मणा' पूर्वकृतेन. 'यत्र' यस्मिन् अर्थे. 'निषक्तं' नितराम् आसक्तम् इति. शेषं स्फुटम्. तथाच पूर्वत्र भगवच्चरित्रं यदि प्रतिपादितं न स्यात् तदा श्लोके 'तत्सह'इति न वदेद्, भगवदन्वारूढोक्तिश्च पूर्वोक्ता मुधा स्याद् अतः तथा इति अर्थः. तत्र मोक्षावस्थायाः प्रकरणे न प्रतीयमानत्वात् सुषुप्त्यवस्थां व्याकुर्वन्ति **''अकामयमानस्य...''** इत्यादि. **पूर्वमेव उक्तम्** इति. अकामयमानस्य जीवस्य

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

उच्यते इति अर्थः. **भगवच्चरित्रम्** इति. जीवेन उत्क्रमणस्य कर्तुम् अशक्यत्वात्, प्राणानां च जडत्वाद् भगवत्प्रेरणयैव सर्वम् इति भावः. अस्य काण्डिकापञ्चकस्य भगवच्चरित्रत्वे गमकम् आहुः **श्लोकेन** इति. **''तदपि एषः श्लोको भवति''** (तैत्ति.उप.२।१।१) इत्येतदनन्तरं **''तदेव स ह''** इति सार्द्धश्लोकेन इति अर्थः. तथाच पूर्वं भगवदन्वारूढः इति उक्तम्. श्लोकेषु च 'तत्सह' इति उक्तम्. तेन कृत्वा किं जायते पूर्वं चरित्रमेव उक्तम् इति भावः. पूर्वं सकामस्य अवस्था चरित्रत्वेन उक्ता, इदानीं निष्कामस्य जीवन्मुक्तावस्थां वर्णयितुं तत्समानत्वेन सुषुप्त्यवस्थाम् आहुः श्रुतौ **''अथ अकामयमानः''** इत्यादिना. ननु सुषुप्त्यवस्था पूर्वमेव उक्ता, इदानीं किमर्थम् उच्यते? इति चेद्, न, याज्ञवल्क्येन भयेन श्लिष्टतया सुषुप्तिवर्णनं, वास्तविकन्तु जीवन्मुक्तावस्थावर्णनमेवेति न पौनरुक्त्यम्. सुषुप्त्यवस्थावर्णनं **''तद्वा अस्यै तदाप्तकामम् आत्मकामम् अकाम स्वरूपम्''** (बृहदा. उप.४।३।२१) इति वाक्येन यत् पूर्वम् उक्तम् तदेव ''अथ अकामयमानस्य'' इत्यादिना उच्यते. तदेकवाक्यत्वाय पूर्ववाक्यस्य अर्थम् आहुः **तद्ब्रह्म** इत्यादिना **पूर्वमेव उक्तम्** इत्यन्तेन. तद्वा अस्य इत्यत्र तद् ब्रह्म अस्य जीवस्य इति पदद्वयस्य अर्थः. अन्यत् पूर्वोत्तरवाक्ययोः आनुपूर्वी समानैव. **भगवतः स्वरूपम्** इति. षष्ठ्यर्थः सम्बन्धः. तथाच भगवत्सम्बन्धिस्वरूपम् इति अर्थः. **पूर्वमेव** इति. ज्योतिर्ब्राह्मणे एकविंशतिकाण्डिकान्ते इति अर्थः. **अनुवदति** इति. यत् पूर्ववाक्ये उक्तं तदपि च अनुवदति इति अर्थः. तथाच श्रुतौ न पौनरुक्त्यम् इति भावः. तथाच प्राणधारणार्थं सप्राणएव ब्रह्मीभूतः विहरति इति भावः. अतएव उक्तं

भगवन्निर्गमने हि प्राणानां निर्गमनात्. तस्य च इच्छाधीनत्वात्. तदभावे इन्द्रियाणि सुषुप्तौ तत्रैव ‘‘**समवलीयन्ते**’’.

‘‘**ब्रह्मैव सन्**’’ (तत्रैव ४।४।६) कूटस्थः सन्. ‘अपिः’ (तत्रैव ४।४।६) समुच्चये. सह स्थिते जीवे ब्रह्म आविर्भवति इति अर्थः. जीवे ब्रह्माविर्भावो न सङ्गतः इति तत्प्रतिपादनार्थं श्लोकः(तत्रैव ४।४।७). जीवोपदेशप्रकरणाभवेन

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सम्बन्धि यत् स्वरूपं ‘‘**तद् वा अस्य एतदात्मकामम् आप्तकामम् अकामस्वरूपम्**’’ (बृहदा.उप.४।३।२१) इति सुषुप्तिस्थले पूर्वम् उक्तं तत् प्राणस्थित्यर्थम् अनुवदति. तत्र हेतुः **भगवन्निर्गमः** इत्यादि. भगवतः सकाशाद् निर्गमने. **तस्य** इति निर्गमनस्य. **तदभावे** निर्गमनाभावे. **तत्रैव** सुषुप्तावेव. **समवनीयन्ते** इति श्रौतपदस्य अर्थः **समवलीयन्ते** इति. अस्मिन् पक्षे ‘‘**ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति**’’ (तत्रैव ४।४।६) इत्यस्य अर्थम् आहुः **ब्रह्म** इत्यादि. ‘ब्रह्माप्ये’त्यत्र ‘**ब्रह्म**’पदम् **एति** इति अस्य कर्तृ **एति** प्रादुर्भवति इति अर्थः. ‘‘**यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते**’’ (कठोप.२।३।१४) इति श्लोकप्रयोजनम् आहुः **समुच्चये**त्यादि. **समुच्चये** सर्वमुक्तिकाले. ननु अत्र उत्क्रमणस्यैव उपक्रान्तत्वाद् जीवन्मुक्ताद्यवस्थैव अकामयमानस्य वाच्या नतु सुषुप्त्यवस्था इति शङ्कायां सुषुप्त्यवस्थाज्ञापनाय तां दूषयन्ति **जीवे**त्यादि. यथा हि काठके ‘‘**अन्यच्छ्रेयः**’’ (तत्रैव १।२।१) इत्यादिकं जीवोपदेशः न तथा अत्र जीवस्वरूपोपदेशः येन तदनुरोधाद् जीवन्मुक्तिः अत्र उच्येत

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

श्रीभागवते ‘‘**देहोऽपि दैववशगः**’’ (भाग.पुरा.३।२८।३८) इत्यादिना.

‘‘**न तस्य प्राणाः उत्क्रामन्ति**’’ (बृहदा.उप.४।४।६) इत्यस्य अर्थम् आहुः **भगवन्निर्गमे हि** इति. भगवतः सकाशाद् जीवस्य निर्गमने इति प्रकाशे उक्तम्. भगवत्स्वरूपस्य तस्य निर्गमने इति यथाश्रुतएव अर्थो वा. **तस्य** सप्राणनिर्गमनस्य. **इच्छाधीनत्वाद्** इति. तथाच उक्तं श्रीभागवते द्वितीयस्कन्धे ‘‘**यदि प्रयास्यन् नृपपारमेष्ठ्यम्**’’ (भाग.पुरा.२।२।२४) इत्यादिना क्रममुक्तिः. **तदभावे** वैहायसविहारेच्छाभावे. ‘‘न तस्य’ इत्यस्य तात्पर्यार्थम् आहुः **इन्द्रियाणि** इति. ‘समवलीयन्ते’ इति श्रुत्यन्तरे ‘समवनीयन्ते’ इति पठितं तस्य अयम् अर्थो बोध्यः. इच्छाभावपक्षे ‘‘ब्रह्मैव सन्’’ इत्यस्य अर्थम् आहुः **ब्रह्मैव** इति. ब्रह्म एति जीवे आविर्भवति इति अर्थः. **श्लोकः** इति. ‘‘**यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते**’’ (बृहदा.उप.४।४।७) इति श्लोकः इति अर्थः. जीवन्मुक्तावस्थां कदाचिद् जानीयाद् राजा इति तां साङ्गोपयितुं सुषुप्त्यवस्थां दृढीकर्तुम्

सिद्धवद्वचनाद् न जीवन्मुक्तावस्था. नापि असम्प्रज्ञातसमाधिः, मतान्तरत्वात्. ब्रह्मप्रकरणत्वाद् न जीवस्य सद्यो मुक्तिः फलम्, उत्क्रमणएव ब्राह्मणस्यापि उक्तत्वात्. ‘‘**तद् यथा**’’ (तत्रैव ४।४।७) इति सुषुप्तशरीरम्. ‘‘**अनस्थिक...**’’ (तत्रैव ४।४।७) इत्यादि, ‘‘**सम्राड्**’’ (तत्रैव ४।४।७) इत्यन्तम् उपसंहारः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

किन्तु सिद्धवद् उच्यते अतो न सा. **मतान्तरत्वात्** तादृशसमाधिपक्षस्य मतान्तरीयत्वात्. **उत्क्रमणे**त्यादि. ‘‘**ऊर्ध्वोच्छ्वासी भवति**’’ (बृहदा.उप.४।३।३५) इति उत्क्रमणएव उपक्रान्ते शारीरब्राह्मणस्य उक्तत्वात्. तथाच तदनादृत्य अकामत्वमात्रेण रूपेण उत्क्रान्तिशून्या सद्योमुक्तिरपि न वक्तुं शक्या इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आहुः **जीवोपदेशे**ति. तथाच श्रीभागवते काठके च प्रथमम् उपदेशः तदनन्तरं जीवन्मुक्तावस्थानिरूपणं तथा अत्र नास्ति इति भावः. **मतान्तरत्वाद्** इति. योगमते इयं, नतु वेदान्तिमते इति अर्थः. ननु मास्तु समाधिः स्वस्वरूपावस्थितिरूपा सद्योमुक्तिरेव अस्तु इत्यतः आहुः **ब्रह्म** इति. **फलम्** इति. इदं च देहलीदीपन्यायेन उभयत्र योज्यम्. तथाच ब्रह्मप्रकरणत्वाद् ब्रह्मभावरूपं फलं जीवस्य नतु सद्योमुक्तिः फलं, तच्च उत्क्रमणएव भवति इति अर्थः. ननु उत्क्रमणानन्तरमेव फलं जायते इत्यत्र किं प्रमाणम्? अतः आहुः **ब्राह्मणस्यापि** इति. उर्ध्वोच्छ्वासी भवति इति उपक्रमे. शारीरब्राह्मणस्यापि उक्तत्वाद् इति अर्थः. तथा च उत्क्रान्तिरहिता सद्योमुक्तिरपि नास्ति इति अर्थः. तथाच सुषुप्तिप्रकरणाभावेऽपि सुषुप्तिलिङ्गेन सुषुप्तिज्ञानम् अस्य भवतु इति आशयेन श्रुतिः आह **तद्यथा** इति. तद्यथा अहिः निर्ल्वयनी-वल्मीकेत्यादिना यथा निर्ल्वयनी सर्पकञ्चुकी वल्मीके सर्पेण परित्यक्ता शेते एवमेव इदं शरीरं शेते इति ‘शेते’ इति उभयलिङ्गकेन पदेन सुषुप्तिज्ञानम् अस्य भवतु इति अर्थः. ‘शेते’ इति अनन्तरम् ‘‘**अथ अयम् अनस्थिको अशरीरः प्राज्ञः आत्मा ब्रह्मैव लोकएव**’’ (श्वेता.उप.४।१) इति श्रुतितात्पर्यम् आहुः **अनस्थिके**ति. अस्थियुक्तस्थूलशरीररहितः. इदं च सुषुप्तौ जीवन्मुक्तावस्थायां च अभिमानाभावात् समानं सम्राड् इत्यन्तम् इति. ‘‘**एषः ब्रह्मलोकः सम्राडिति ह उवाच याज्ञवल्क्यः**’’ (बृहदा.उप.४।४।२३) इति उपसंहारः इति अर्थः. भाष्येतु ‘‘**अथ अयम् अनस्थिके**’’ति काण्वः पाठः. माध्यन्दिनपाठेतु ‘‘**अथ अयं मे शरीरो मृतः प्राणो ब्रह्मैव तेजएव**’’ इति. तात्पर्यन्तु उभयानुरोधात् सुषुप्तिपरत्वेन व्याख्यानं कृतम्. एतदग्रे च ‘‘**सो अहं भगवते सहस्रं ददामि**’’ (बृहदा.उप.४।३।१४) इति वरदानानुरोधात् श्लिष्टतया उक्तेऽपि साधारणलिङ्गाद् व्यामोक्षप्रकरणाच्च

श्लोकाः अत्र त्रयोदश सर्वनिर्धारकाः. आद्यो(तत्रैव४।४।८) ब्रह्मविद्गतेः. 'एषः' (तत्रैव ४।४।९) इति सुषुप्तौ नाडीत्वात् पञ्चवर्णाः. ''**अन्धन्तमः**'' (तत्रैव४।४।१०,११) इति द्वाभ्याम् अनेवंविदो निन्दा. ''**तदेव सन्तः**''(तत्रैव ४।४।१४) इति बुद्धिमतां वचनम्. ''**आत्मानम्**'' (तत्रैव ४।४।१२) इति वैराग्यम्. ''**यस्यानुवित्तिः**'' (तत्रैव ४।४।१३,१५-२१) इति नवभिः ब्रह्मस्तुतिः, तद्विज्ञानं च. पुनः एतदेव स्पष्टतया उपदिशति. ''**स वा अयमात्मा**''(बृहदा.उप.२।५।१५) इत्यादि ''**अभयं वै जनकः प्राप्तोऽसि**'' (तत्रैव४।२।४) इत्यन्तम्. काण्वानां क्वचित् पाठभेदेपि अयमेव अर्थः.

*अत्र प्रकरणे जीवो वाच्यः इति प्राप्ते, अभिधीयते. ब्रह्मैव

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

मोक्षावस्थाज्ञानं भविष्यति इति बोध्यम्. सर्वज्ञानार्थं ये मन्त्ररूपाः श्लोकाः याज्ञवल्क्यः आह तान् विवृण्वन्ति **श्लोकाः** इति. **त्रयोदशः** इति. ''**तद् एते श्लोकाः**'' इत्यारभ्य ''**वाचोविग्लापनं हि तद्**'' इत्यन्तं त्रयोदशः इति अर्थः. **आद्यो ब्रह्मविद्गतेः** इति. ''अणुः पन्थाः'' इति श्लोकः ब्रह्मविदः क्रममुक्तेः बोधकः. **एषः** इति. तस्मिन् शुक्लम् इति श्लोके ''एषः पन्थाः'' इत्यनेन निष्क्रमणमार्गबोधको द्वितीयः. **पञ्च वर्णाः** इति. मार्गे पञ्चवर्णवत्त्वं सुषुम्नानाडीकृतम् इति अर्थः. **अनेवंविदः** इति. ब्रह्मज्ञानरहितस्य इति अर्थः. **बुद्धिमताम्** इति. सद्योमुक्तिभाजां ज्ञानवताम् इति अर्थः. **वैराग्यम्** इति. ''**आत्मानं चेद् विजानियाद्**'' (बृहदा.उप.४।४।१२) इति श्लोकेन वैराग्यम् इति अर्थः. **यस्यानुवित्तिः** इति. ''**यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्मा**'' (तत्रैव ४।४।१३) इत्यादि–नवभिः श्लोकैः इति अर्थः. **तद्विज्ञानं च** इति. भगवद्विज्ञानम् इति अर्थः. एतावता त्रयोदशश्लोकानां तात्पर्यम् उक्त्वा अवशिष्टश्रुतेः तात्पर्यम् आहुः **पुनः** इति. **स वा अयम्** इति. ''**स वा एष महानज आत्मा**'' (तत्रैव ४।४।२५) इत्यादिना इति अर्थः. तथाच ''यस्यानुवित्तिः'' इति नवभिः इत्युक्तं तत्र ''यस्यानुवित्तिः'' इति श्लोकस्य यद् उत्तरार्द्धं ''स विश्वकृद्'' इत्यादि तस्यैव अर्थकथनं ''स वा एषः महानजः'' इत्यादिना ''सः सेतुर्विधरण'' इत्यन्तेन. अथच ''यस्यानुवित्तिः'' इति पूर्वार्द्धे अवशिष्टश्लोकाश्च तदर्थकथनं ''**तमेतं वेदानुवचनेन**'' (तत्रैव ४।४।२२) इत्यादिना कृतम् इति भावः. **काण्वानाम्** इति. माध्यन्दिनकाण्वानाम् इति अर्थः. एतावता ''एतस्य अयम् अर्थः'' इति आरभ्य विषयवाक्यार्थो वर्णितः. इतः परं पूर्वपक्षम् आहुः ***तत्र** इति. **जीवो वाच्यः** इति. उपक्रमे प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः इत्यत्र जीववाचक'पुरुष'पदम् उक्तम्. उपसंहारे

सुषुप्तौ उत्क्रमणे च जीव-ब्रह्मणोः भेदेन व्यपदेशात्. आकाशवद् ब्रह्मनिर्धारएव युक्तः ।।४२।।

पत्यादिशब्देभ्यः ।।४३।।

किञ्च. ‘‘**सर्वस्य वशी**’’ (बृहदा.उप.४।४।२२) इत्या**दिशब्देभ्यः**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आकाशवद् इति. तथाच यथा पूर्वाधिकरणे अन्यथानुपपत्तिबलाद् आकाशवाक्यस्य ब्रह्मपरत्वनिर्धारः तथा अत्र **भेदव्यपदेशा**न्यथानुपपत्तिबलात् प्रकरणस्य ब्रह्मपरत्वनिर्धारः इति अर्थः ।।४२।।

पत्यादिशब्देभ्यः ।।४३।।

इति अणुभाष्यपदप्रदीपे प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

च ‘‘**योऽयं विज्ञानमयम्**’’ (बृहदा.उप.४।४।२२) इति उक्तम्. अथच ‘‘**स वा एष महानजः**’’ (पूर्ववत्) इत्यादिना भगवदात्मकत्वमपि उक्तं तेन कृत्वा किं ज्ञायते ब्रह्माभिन्नो जीवो वाच्यः इति अर्थः. सिद्धान्तम् आहुः **ब्रह्मैव** इति. सूत्रार्थम् आहुः **सुषुप्तौ** इति. व्यपदेशाद् इति पूर्वसूत्राद् अनुवर्तते. तथाच सुषुप्तौ ‘‘**अयं शारीर आत्मा प्राज्ञेन आत्मना सम्परिष्वक्तः**’’ अथच उत्क्रान्तौ ‘‘**अयं शारीरः आत्मा प्राज्ञेन आत्मना अन्वारूढः**’’ इति वाक्यद्वयेन स्पष्टम्. जीवे ब्रह्मभेदस्य प्रतिपादनाद् न ब्रह्माभिन्नो जीवो वाच्यः इति पूर्वपक्षावसरः इति भावः. तस्मात् ‘‘**किञ्ज्योतिरयम्?**’’ इति प्रश्ने ‘‘**ब्रह्मज्योतिषैव अयं व्यवहरति**’’ इति उत्तरम्. अथच मोक्षदशायाम् अस्य ब्रह्मभावः इति कथनेन सर्वं वाक्यं ब्रह्मपरमेव बोध्यम् इति अन्यत्र विस्तरः. **आकाशवद्** इति. आकाशस्तल्लिङ्गाधिकरणे अन्यथानुपपत्या आकाशवाक्यस्य यथा ब्रह्मपरत्वं निर्धारितम् एवम् अत्रापि इति अर्थः. एवञ्च अस्मिन् समन्वयाध्याये ज्योतिर्ब्राह्मणशारीरब्राह्मणयोः ब्रह्मणि समन्वयः प्रतिपादितो बोध्यः ।।४२।।

ननु ब्रह्माभिन्नजीवएव वाच्यः सुषुप्त्युत्क्रान्त्योः भेदबोधकं यद् वाक्यं तत् संसारदशायां भेदबोधनार्थम् इति चेद्, न, संसार्यवस्थायान्तु जीवस्य जाग्रत्स्वप्नदशयोः किञ्चिज्ज्ञत्वाद् भेदस्तु प्रत्यक्षसिद्धएव. सुषुप्तिदशायां ‘‘सुखम् अहम् अस्वाप्सम्’’ इति स्मरणेन भेदः सिद्धः, मरणानन्तरं भूतादिभावदर्शनाद् उत्क्रान्तावपि भेदानुमानम्, अतः तत्र तत्कथने प्रयोजनाभावाद् इदं ब्रह्मवाक्यमेव इति. अतएव च पूर्वहेतुना साधनं श्लिष्टम् इति ऋजूनाम् अस्य प्रकरणस्य ब्राह्मत्वसाधनार्थम्

स्पष्टमेव ब्रह्मप्रकरणम् इति।।४३।।

इति प्रथमाध्याये तृतीयपादे त्रयोदशं सुषुप्त्युत्क्रान्त्यधिकरणम्।।१३।।

इति श्रीवेदव्यासमतवर्ति-श्रीवल्लभाचार्य-विरचिते श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणुभाष्ये प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अन्यं हेतुं वदति इति आशयेन आहुः **किञ्च** इति. सूत्रार्थम् आहुः **सर्वस्य** इति. शारीर-ब्राह्मणान्तर्गतैकविंशतिकाण्डिकास्थ ''**सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः**'' (बृहदा.उप.४।४।२२) इति शब्देभ्यः इति अर्थः. बहुवचनकथनेन उपासनापरत्वम् अस्य वाक्यस्य निवारितम्. सकृद् उक्तानामेव उपासनापरत्वाद् इति दिक्.

इति अणुभाष्यविवरणे प्रथमाध्यायस्य तृतीयः पादः.

प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः

आनुमानिकमपि एकेषाम् इति चेद्, न, शरीररूपकविन्यस्तगृहीतेर् दर्शयति च।।१।। (१।४।१)

एवं सर्वेषां वेदान्तानां ब्रह्मपरत्वे निर्णीते, केचिद् वेदार्थाज्ञानात् क्वचिद् वेदभागे कापिलमतानुसारिपददर्शनेन तस्यापि वेदमूलकत्वं वदन्ति. तन्निराकरणाय चतुर्थः पादः आरभ्यते. तत्र, ‘‘**ईक्षतेर्नाशब्दम्**’’ (ब्रह्मसू.१।१।४) इति सांख्यमतम् अशब्दत्वाद् इति निवारितम्. वेदेन प्रतिपादितम् इति तत्र आशङ्कते. **आनुमानिकमपि एकेषाम्. एकेषां** शाखिनां शाखासु सांख्य-परिकल्पित-

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आनुमानिकम् इति अनुमानगम्यम्. तथाहि सांख्यशास्त्रं वेदमूलकं, शास्त्रविशेष-प्रतिपादिताखिलपदार्थ-प्रतिपादकत्वाद्, वेदान्तशास्त्रवत्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अस्मिन् समन्वयाध्याये सर्वेषां वेदान्तवाक्यानां ब्रह्मणि समन्वयो वक्तव्यः. सच पादत्रयेण साक्षात्परम्परया च उक्तः. इदानीं केषुचिद् महदव्यक्तपदघटितेषु वेदान्तवाक्येषु मतान्तरसिद्धप्रधानादिपरत्वभ्रमनिवारणेन तन्मतं श्रौतं न भवति इति विचारं कर्तुं चतुर्थं पादम् उपोद्घातसङ्गत्या आरभ्यते. तत्र साङ्ख्यमतं वेदप्रतिपाद्यम्, अव्यक्तादिपदघटितोपनिषद्वाक्यप्रतिपाद्यार्थप्रतिपादकत्वाद्, वेदान्तमतवद् इति अनुमानस्य भ्रमात्मकत्वेन, तन्मतस्य वेदमूलकत्वं निवारयितुम् आनुमानिकाधिकरणम् आरचयन्ति **आनुमानिकमप्येकेषामिति चेन्न शरीररूपकविन्यस्तगृहीतेर्दर्शयति च.**

उपोद्घातसङ्गतिं सूचयन्तः पूर्वपादत्रयार्थम् अनूद्य एतत्पदार्थम् आहुः **एवम्** इति. **वेदभागे** काठके. ननु अदृश्यत्वाधिकरणे एतादृशवाक्यविचारः कृतः परन्तु साङ्ख्यमतं सर्वथा अश्रौतमेव इति विचारो न कृतः इति एतदर्थं शङ्कांशम् अवतारयन्ति **तत्र** इति. ननु ‘‘**ईक्षतेर्नाशब्दम्**’’ (ब्रह्मसू.१।१।५) इति सूत्रे ब्रह्मणः उपनिषच्छब्द-जन्यशाब्दबोधविषयत्वमेव प्रतिपादितं नतु साङ्ख्यमतनिराकरणम् इत्यतः आहुः **अशब्दत्वाद्** इति. उपनिषच्छब्दजन्य-शाब्दबोधाविषयत्वाद् इति अर्थः. ननु ‘‘ईक्षतेर्नाशब्दम्’’ इति सूत्रं शङ्कराचार्यैः साङ्ख्यमतनिराकरणपरत्वेन व्यवस्थापितं, प्रभुचरणैस्तु ब्रह्मणः शब्दागोचरत्वेऽपि उपनिषच्छब्दजन्य-शाब्दबोध-विषयत्वम् अस्ति इति एतादृशार्थपरत्वेन व्यवस्थापितं नतु साङ्ख्यनिराकरणपरत्वेन; अपितु

प्रकृत्यादि श्रूयते.

‘‘इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः अर्थेभ्यश्च परं मनः,
मनसस्तु परा बुद्धिः बुद्धेः आत्मा महान् परः,
महतः परमव्यक्तम् अव्यक्तात् पुरुषः परः,
पुरुषात् न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः’’

(कठोप.१।३।१०,११)

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

‘‘ईक्षतेर्नाशब्दम्’’ इति साङ्ख्यमतशब्दत्वाद् इति निवारितम् इति उक्तम् इति पूर्वापरभाष्यविरोधः इति चेद्, न, अत्रत्यभाष्यस्य अयम् अर्थः. ‘‘ईक्षतेर्नाशब्दम्’’ इति सूत्रेण साङ्ख्यमतम् उपनिषच्छब्दजन्यशाब्दबोधाविषयत्वाद् निवारितम् इति. तथाच ‘‘ईक्षतेर्नाशब्दम्’’ इति सूत्रेण ब्रह्मणएव वैदिकशब्दजन्यशाब्दबोधविषयत्वे प्रतिपादिते, अर्थादेव साङ्ख्यमतस्य तादृशशाब्दबोधाविषयत्वेन निवारणम् इति. अतएव अशब्दत्वाद् इति आर्थिकहेतुप्रयोगः कृतः, नतु ‘‘ईक्षतेर्नाशब्दम्’’ इति सूत्रे साङ्ख्यमतं निवारितम् इति उक्तं प्रभुचरणैः इति न पूर्वापरभाष्यविरोधः इति सूक्ष्मदर्शिभिः अवगन्तव्यम् इति अलं पल्लवितेन. ननु एवं सति किमर्थम् इयम् आशङ्का? इत्यतः आहुः **वेदेन** इति. काठकशाखास्थवेदवाक्येन इति अर्थः. सूत्रापेक्षया वेदस्य प्राबल्यात् शङ्कावसरः इति भावः.

शङ्कासूत्रं व्याकुर्वन्ति **एकेषाम्** इति. ‘आनुमानिकम्’ इत्यस्य अर्थम् आहुः **साङ्ख्ये**ति. प्रकृत्यादीति ‘आदि’पदेन पुरुषस्यापि संग्रहः. **श्रूयते** इति. एतस्माद् हेतोः कापिलमतं वेदमूलम् इति अर्थः. कुत्र श्रूयते? इत्यत्र आहुः **इन्द्रिये**ति. अथ विषयवाक्यम्.

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः।।१।।
यः सेतुरीजानानाम् अक्षरं ब्रह्म यत् परम्।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतं शकेमहि।।२।।
आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।३।।
इन्द्रियाणि हयानाहुः विषयान् तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुः मनीषिणः।।४।।
यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।

इति काठके श्रूयते. तत्र बुद्धेः आत्माहङ्कारः. ततो महान् महत्तत्त्वम्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः।।५।।
यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः।।६।।
यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति।।७।।
यस्तु विज्ञानवान् भवति समन्सकः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते।।८।।
विज्ञानसारथिः यस्तु मनःप्रग्रहवान् नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्।।९।।
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परम मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिः बुद्धेः आत्मा महान् परः।।१०।।
महतः परम् अव्यक्तम् अव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषाद् न परं किञ्चित् सा सा काष्ठा सा परा गतिः।।११।।
एष सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वाग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।।१२।।
यच्छेद् वाङ्मनसी प्राज्ञः तद् यच्छेद् ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत् तद् यच्छेत् शान्त आत्मनि।।१३।।
उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।।१४।।
अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथा अरसं नित्यम् अगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते।।१५।।
नाचिकेतम् उपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम्।
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते।।१६।।
य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदिः।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते
तदानन्त्याय कल्पत इति ।।१७।। (कठोप.१।३।१-१७)

अथ भाष्यम्. विषयवाक्ये साङ्ख्यमतसिद्धपदार्थान् विवेचयन्ति **तत्र बुद्धेः** इति. ‘आत्म’शब्दार्थम् आहुः **अहङ्कारः** इति. परः इति अंशानुषङ्गः. अहङ्कारस्य

ततो अव्यक्तं प्रकृतिः. ततः पुरुषः इति. नहि अहङ्कारादयः पदार्थाः ब्रह्मवादे सम्भवन्ति. तस्माद् एवञ्जातीयकेषु तन्मतपदार्थानां श्रवणात् मायाप्रकृत्यविद्यावादापि श्रौता इति चेद्, न. शब्दसाम्यमात्रेण न तन्मतं सिद्ध्यति.

सन्दिग्धानां पदार्थानां पौर्वापर्येण निर्णयः।।
न तु सन्दिग्धवाक्येन सर्वव्याकुलतोचिता।।२३।।

अत्र हि पूर्वम्

''आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु,
बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च,
इन्द्रियाणि हयानाहुः विषयांस्तेषु गोचरान्,
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः''

(कठोप.१।३।३,४)

तदनु चत्वारि वाक्यानि **''यस्त्वविज्ञानवान्''** (तत्रैव १।३।७) इत्यादि. तदनु **''इन्द्रियेभ्यः परा''**(तत्रैव१।३।१०) इति. तत्र पूर्वसम्बन्धएव अर्थः उचितः. तम् आह **शरीररूपक-विन्यस्त-गृहीतेः**. शरीरेण रूप्यन्ते ये

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

गिरित्वरूपत्वाद् आत्मत्वं ''सर्वात्मनो अन्तःकरणं गिरित्रम्'' इत्यादिवचनप्रमाण्यात्. **एवञ्जातीयकेषु** इति. ''**अजामेकां लोहित**'' (महाना.उप.८।४) इत्यादिषु इति अर्थः. श्रौतमपि शब्दं विशदयन्ति **माये**ति. समाधानं वक्तुं प्रथमतः चेद् इत्यत्र नञर्थम् आहुः **शब्दे**ति. सिद्ध्यति इति. तन्मतं अहङ्कारमहत्तत्त्वप्रकृतिपुरुषाणाम् उत्तरोत्तरं परत्वबोधकत्वाद् न **सिद्ध्यति** इति अर्थः. अत्र हेतुं पद्येन आहुः **सन्दिग्धानाम्** इति. सन्देहविषयीभूतानां **पौर्वापर्येण** पूर्वापरसन्दर्भेण निर्णयः इति महावाक्यस्य उचितेति शेषः. **सन्दिग्धवाक्येन** सन्दिग्धावान्तरवाक्येन इति अर्थः. **उचिते**ति. महावाक्यस्य इति शेषः.

पद्यार्थं विशदयन्ति **अत्र हि** इति. **अत्र** अस्मिन् प्रकरणे **पूर्वं** प्रथमं **आत्मानम्** इति. **तदनु** तदनन्तरं **चत्वारि वाक्यानि**. कानि तानि? इत्यतः आहुः **यस्तु** इति. **तदनु इन्द्रियेभ्यः** इतिवाक्यानि पठितानि इति एवं सन्दर्भः इति अर्थः. अस्मिन् सन्दर्भे यो अर्थः सएव सूत्रे हेतुवाक्येन वदति इति आहुः **तत्र** इत्यादिना. ''**इन्द्रियेभ्यः परा**'' (१०) इत्यादिना वाक्ये ''**आत्मानं रथिनं विद्धि**'' (३) इत्यादिपूर्ववाक्यार्थसम्बन्धएव अत्र अर्थो वर्णनीयः इति अर्थः. **तम् आह** इति. तादृशार्थं सूत्रकारः आह इति अर्थः.

हेतुसूत्रार्थम् आहुः **शरीरे**ति. शरीररूपकविन्यस्तगृहीतेः. अस्य अर्थः. शरीरेण

शरीरेन्द्रियादयः ते विन्यस्ता यत्र रूपकभावेन रथादिषु तेषामेव अत्र गृहीतिः ग्रहणम्. अन्यथा प्रकृतहानाप्रकृतपरिग्रहापत्तिः.

जीवप्रकरणं ह्येतन् मुक्त्युपायोऽस्य रूप्यते ।।
योग्यं शरीरमारुह्य गच्छेद् इति हरेः पदम् ।।२४।।

तत्र जीवस्य ब्रह्मप्राप्तौ मुख्यं साधनं शरीरम्. सः रथः. सर्वसामग्रीसहिताऽपराधीनयानत्वात्. रथस्तु हयाधीनः. हयाश्च स्वबुद्ध्यधीनाः. साच

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अत्र गृहीतिः ग्रहणम् इति. तथाच अत्र ''**योग्यं शरीरम् आरुह्य गच्छेद् इति हरेः पदम्**'' इति विज्ञानसारथिमन्त्रेण निरूप्यते. तत्र च विज्ञानसारथ्यादीनां साधनत्वं मोक्षस्य च फलत्वम् उक्तम्. **अन्यथा** इत्यादि. **प्रकृतहानं** मुक्तिमार्गीयसाधनफलयोः हानम्. **अप्रकृतपरिग्रहापत्तिः** सांख्योक्तविवेकस्य साधनत्वं स्वरूपावस्थानप्राप्तिः फलम् इति एतत्पक्षस्य आपत्तिः इति अर्थः. **अपराधीनयानत्वात्** स्वाधीनत्वाद् इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

रूप्यन्ते ज्ञायन्ते ते शरीररूपाः इन्द्रियादयः, ते यत्र रूपकेन रथादिसादृश्यबोधकताद्रूप्य-रूपकालङ्कारेण, विन्यस्ताः स्थापिताः, शरीररूपकविन्यस्ताः, तेषां गृहीतिः ग्रहणं तस्याः शरीररूपकविन्यस्तगृहीतेः इति. अत्र ''शाकपार्थिवत्वाद्'' 'रूप'पदस्य लोपः तथाच ''**आत्मानं रथिनं विद्धि**'' इत्यादिवाक्यरूपकभावेन आत्मरूपाहङ्कारादीनां ग्रहणं, नतु साङ्ख्यमतसिद्धाहङ्कारत्वेनेति न तन्मतस्य वेदबोध्यत्वम् इति भावः. ननु इदं किमर्थम् उच्यते ? इत्यतः आहुः **अन्यथा** इति. अन्यथा एतादृशार्थाभावे. **प्रकृतहाने**ति. भगवत्प्राप्तिरूपफलसाधनमार्गसाधनशरीरस्य रथादिरूपकत्वकथनं प्रकृतं, तस्य हानं, साङ्ख्यमतसिद्धपदार्थानां विवेकरूपं साधनं, स्वरूपावस्थानरूपं फलं च अप्रकृतं तस्य परिग्रहापत्तिः. तथाच एतादृशापत्तिभिया सर्वव्याकुलता न उचिता इति भावः.

साङ्ख्यमतसिद्धपदार्थबोधकं प्रकरणमपि नास्ति इति आहुः **जीवे**ति. विज्ञानसारथिमन्त्रेण इति शेषः. **योग्यम्** इत्यादि. तेन मन्त्रेण मुक्त्युपायो अस्य जीवस्य रूप्यते इति अन्वयः. रूप्यते रूपकालङ्कारेण बोध्यते इति अर्थः. तथाच तन्मते स्वरूपावस्थानं मोक्षः, नतु भगवत्पदप्राप्तिः इति ''इन्द्रियेभ्यः'' इति वाक्ये साङ्ख्य-मतपदार्थबोधकत्वं नास्ति इति भावः.

कथम् इदं जीवप्रकरणं कथं वा रथादिरूपकम् ? इत्यतः आहुः **तत्र** इत्यादिना. **सर्वे**ति. इन्द्रियादिरूपा सामग्री. **अपराधीने**ति. शरीररूपरथे आत्मरूपरथिनएव सत्ता न

प्रग्रहाधीना. सच सारथ्यधीनः. सच स्वबुद्ध्यधीनः. साच मार्गाधीना. सच प्राप्याधीनः इति. एवं ज्ञात्वा युक्तसामग्रीकः तद्देशं प्राप्नोति. तत्र इन्द्रियाणाम् आत्मा विषयाः. ते च मनसा सम्यक्त्वेन भाविताः तथा भवन्ति, विरक्तेन्द्रियाणाम् अतथात्वात्. बुद्धेः आत्मा विज्ञानं, तद् ब्रह्मविषयकं महद्भवति. ततः परम् अव्यक्तं, न प्रकटं भगवत्कृपैव. सातु भगवदधीना, न

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अत्र इन्द्रियविषयाः न लोकरीत्या ग्राह्या किन्तु मुक्तिमार्गीयाः इति आहुः **ते च** इत्यादि. तथाच मोक्षप्रकरणे यद् इन्द्रियेभ्यः परत्वं विषयाणाम् उच्यते तद् भगवदीयतया मनसा सम्यक्त्वेन भावितानामेव यथा नवमस्कन्धे अम्बरीषचरिते **''स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः''**(भाग.पुरा.९।४।१८) इत्यादिश्लोकत्रयोक्ताः. **तथा भवन्ति** तादृशानाम् इन्द्रियगोचराः भवन्ति, रसरूपाएव इति विषयाः इति अर्थः. **विरक्तेन्द्रियाणां** शुष्कज्ञानीन्द्रियाणाम्. **अतथात्वाद्** रसरूपविषयाग्राहकत्वात्. **''बुद्धेः आत्मा''** इत्यादि. **विज्ञानं** विशिष्टं ज्ञानं बुद्धिकार्यरूपं ब्रह्मविषयकम्. एवं हेतुं व्याख्याय 'दर्शन'पदं व्याकुर्वन्ति **किञ्च** इत्यादि. **इमम्** इति पूर्वोक्तं रथम्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अन्यस्य इति अर्थः. **प्राप्याधीनः** इति. इदं सर्वं तत्तद्विषयवाक्ये रूपकस्य तात्पर्यं बोध्यम्. विषयेषु देशरूपकस्य तात्पर्यं वक्तुम् **''इन्द्रियेभ्यः परा''** इत्यादीनां तात्पर्यं वदन्ति **तत्र** इति. **आत्मा** इति. नियामका इति अर्थः. इदमेव परत्वं बोध्यम्. अत्र विषयाः अलौकिकाः इति आहुः **ते च** इति. **सम्पृक्तेन** भगवदीयत्वेन भाविताः अम्बरीषचरितोक्तः **''स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः''**(भाग.पुरा.९।४।१८) इति श्लोकत्रयोक्तरीत्या भाविताः इति अर्थः. **तथा भवन्ति** इन्द्रियाकर्षकाः भवन्ति. ननु ब्रह्मज्ञाने जाते इन्द्रियाकर्षकत्वं विषयाणां नास्त्येव इत्यतः आहुः **विरक्तेन्द्रियाणाम्** इति. भगवद्रसरहितानां शुष्कज्ञानिनाम् इन्द्रियाणाम् इति अर्थः. **अतथात्वात्** विषयानाकृष्टत्वात्. तथाच अस्मिन् मोक्षशास्त्रे लौकिकविषयाणां चर्चैव नास्ति. शुष्कज्ञानीन्द्रियविषययोः लौकिकसम्बन्धएव नास्तीति भगवदीयविषयाणामेव अत्र परत्वं बोध्यम् इति भावः. **''अर्थेभ्यश्च परं मनः''** इत्यत्रापि एवं रीतिः बोध्या. इतः परं **''बुद्धेः आत्मा''** इत्यस्य अर्थम् आहुः **बुद्धेः** इति. आत्मा परः नियामकः इति अर्थः. विज्ञानं तत् कीदृशम् इत्यतः आहुः **ब्रह्म** इति. अतएव विज्ञानस्य बुद्धिनियामकत्वं महत्त्वं च तस्यैव बुद्ध्या जायमानत्वम्. साङ्ख्यमते अव्यक्तं प्रकृतिः सा अत्र न विवक्षिता इति आहुः **भगवत्कृपैव** इति. इतः परं सौत्रस्य **''दर्शयति च''** इति पदस्य अर्थम् आहुः **किञ्च**

साधनान्तराधीना. सच भगवान् स्वाधीनः इति. एवमेव अर्थः तस्य उचितः. किञ्च, दर्शयति स्वयमेव इमम् अर्थम् ''**एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते, दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः**'' (कठोप.१।३।१२) इति. सूक्ष्मया उपनिषदनुसारिण्या बुद्ध्या. भगवज्ज्ञाने हि तत्प्राप्तिः इति. '**च**'कारात् ''**ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्**'' (भग.गीता १८।५५) इति स्मृतिः गृहीता. तस्मात्, साधनोपदेशात् न सांख्यमतम् इह विवक्षितम् इति।।१।।

सूक्ष्मं तु तदर्हत्वात्।।२।।

ननु 'अव्यक्त'शब्देन न भगवत्कृपा वक्तुं शक्या, धर्मिप्रवाहाद् इति आशङ्क्य परिहरति '**तु**'शब्दः. **सूक्ष्मं** तद् ब्रह्मैव, धर्म-धर्मिणोः अभेदात्. 'अव्यक्त'शब्देन हि सूक्ष्मम् उच्यते. तदेव हि सर्वप्रकारेण न व्यज्यते, **अर्हत्वात्.**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सूक्ष्मया इत्यादि. तथाच 'सूक्ष्म'पदेन बुद्धेः उपनिषदनुसारित्वबोधनात् स्मृतावपि 'विशते' इति पदेन तस्यैव अर्थस्य उपबृंहणाद् अत्र प्राप्तिरूपो अर्थो अभिप्रेतो दृश्यते नतु सूक्ष्मदर्शनरूपो. अतो न सांख्यमतप्रत्यभिज्ञानम् इति भावः।।१।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति. कुत्र दर्शयति? **एषु** इति. **बुद्ध्या** इति. एतेन बुद्धिकार्यत्वं विज्ञानस्य दर्शितम्. **सूक्ष्मया** इति. उपनिषदुक्तप्रकारेण इति अर्थः. तथाच अत्र श्रुति-स्मृत्योः एकवाक्यतायै स्मृत्युक्त-'दृशि'धातोः प्राप्त्यर्थकत्वमेव वक्तव्यम्. अतएव उक्तं ''**विशते तदनन्तरम्**'' (भग.गीता १८।५५) इति भगवता इति भावः।।१।।

सूक्ष्मन्तु अव्यक्तन्तु तद् ब्रह्मैव अर्हत्वाद् इति अर्थः. **धर्मिप्रवाहाद्** इति. धर्मिणः ब्रह्मणः प्रवाहात् सर्वो अत्र उपनिषदि कथनात्. क्वचिद् 'धर्मप्रवाहाद्' इति अपपाठः. **तु** शब्दः परिहरति इति अन्वयः. **सूक्ष्मम्** इति. सूक्ष्मम् अव्यक्तं तद् ब्रह्मैव इति अर्थः. ननु कथम् अभेदः? इत्यतः आहुः **धर्मधर्मिणोः** इति. तथाच घटकलश-योरिव सूक्ष्माव्यक्तयोरपि परस्परवाच्यवाचकभावेन 'सूक्ष्म'पदेन अव्यक्तं कृपारूपं ब्रह्म बोध्यते धर्मधर्मिणोः अभेदाद् इति अर्थः. तदेव आहुः **अव्यक्ते**ति. न व्यक्तं अव्यक्तम् इति यौगिकशब्देन इति अर्थः. **तदेव** इति. **तदेव हि सर्वप्रकारेण व्यज्यते** इति पाठः. **तदेव** हि इति. कृपाविशिष्टम् इति अर्थः. **सर्वप्रकारेण** आनन्दमयत्वादिसर्वप्रकारेण. व्यज्यते आनन्दमयादितत्तदधिकरणेषु सर्वत्र उपनिषत्सु व्यञ्जनया बोध्यते; शक्त्यातु ब्रह्मत्वेन इति. ''तदेव सर्वप्रकारेण न व्यज्यते'' इत्यपि पाठः. तदर्थस्तु तदेव इति ब्रह्मैव

तदेव अर्हं योग्यम्. उभयत्रापि अयं हेतुः. तस्माद् धर्म-धार्मिणोः अभेदाद् भगवानेव सूक्ष्ममिति तत्कृपैव अव्यक्तवाच्या।।२।।

तदधीनत्वाद् अर्थवत्।।३।।

ननु धर्मित्वे परत्वम् अनुपपन्नम् अन्यथा पूर्वोक्तो दोषः इत्यतः आह. अभेदेऽपि कृपायाः **तदधीनत्वात्** परत्वम्. तत्र दृष्टान्तः **अर्थवत्**. अर्थः पुरुषार्थः फलं, तद्वत्. ''**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**'' (तैत्ति.उप.२।१) इत्यत्र एकस्यैव ब्रह्मणः सच्चिद्रूपेण विषयत्वम् आनन्दरूपेण फलत्वम् इति. तथैव अक्षरपुरुषोत्तम-

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

उभयत्र 'अव्यक्त'पदस्य ब्रह्मपरत्वे कृपापरत्वे च इति अर्थः।।२।।

उक्तं समाधिम् आक्षिपन्ति **ननु** इत्यादि. यदि पूर्वोक्तयुक्त्या कृपायाः ब्रह्मत्वं तदा धर्मिणः स्वतन्त्रत्वम् उक्तं परत्वं निर्युक्तिकं कृपायाः परत्वेन तदभेदम् आदाय धर्मिणः परत्वनिरूपणात् स्वतन्त्रधर्मिपरत्वम् अनुपपन्नम् इति अर्थः. यदि कृपायाः धर्मत्वं तदा धर्मिप्रायपाठविरोधरूपो दोषः पूर्वोक्तः प्रसज्यते इत्यतः तत्रापि समाधिं व्याचक्षते **अभेदेऽपि** इत्यादि. तथाच अभेदे यथा एकरूपेण ग्रहणे युक्तिः तथा भेदे नियम्य-नियामकभावे युक्तिः इति उभयम् उपपन्नम् इति अर्थः. अभेदे नियम्य-नयामकभावएव कथम्? इत्यतः आहुः **तत्र** इत्यादि. तथाच गणितानन्दत्वागणितानन्दत्वाभ्यां यथा तत्र विभागः तथा अत्रापि रूपान्तराभ्यां विभागः इति भावः. **तथा** इत्यादि. तथाच उभयथापि

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति अर्थः. केवलं सूक्ष्मपदेन न व्यज्यते, किन्तु कृपापि इति अर्थः. ननु अत्र योग्यनिरूपणमेव अभिप्रेतम् अतः आहुः **तदेव** इति. कृपाविशिष्टं ब्रह्मैव इति अर्थः. ननु एवं चेत् तर्हि अर्हत्वस्य कृपायाम् असत्त्वात् कथम् 'अव्यक्त'पदेन तद्बोध्यते? इत्यतः आहुः **उभयत्र** इति. कृपायां ब्रह्मणि च इति अर्थः।।२।।

धर्मधर्मिणोः अभेदं स्वीकृत्य यत् समाधानम् उक्तं तत्र आशङ्कते **ननु** इति. **धर्मित्वे**ति. कृपायाः इति शेषः. **अनुपपन्नम्** इति. ''**अव्यक्तात् पुरुष परः**'' इति उक्तं परत्वस्य ब्रह्मणि असम्भवाद् इति भावः. **अन्यथा** धर्मत्वे. **पूर्वोक्तः** इति. धर्मिप्रवाहपाठविरोधरूपः इति अर्थः. धर्मस्य अयोग्यत्वाद् उपनिषदि मुख्यत्वेन अनिरूपणाद् इति भावः. **अभेदेऽपि** इति. **परत्वम्** इति. ब्रह्मणि परत्वं न अनुपपन्नम् इति अर्थः. अभेदेऽपि नियामकत्वं ब्रह्मणः सम्भवति इत्यत्र दृष्टान्तम् आहुः **तत्र** इति. अत्र फलान्तं भाष्यं स्पष्टम्. ननु कृपायाः उपनिषत्प्रतिपाद्यत्वरूपं ब्रह्मत्वं कथम्? इति

विभागोऽपि. स्वधर्मापि स्वाधीनाः. स्वयमपि स्वाधीनः इति. तथा कृपाविष्टः साधनम्, आनन्दरूपः फलम् इति. अथवा अव्यक्तं सच्चिद्रूपम् अक्षरमेव अस्तु. तस्मिन् सति विज्ञानस्य विषयाधीनत्वम् अर्थः. एतेन अन्येऽपि सर्वसम्प्लववादिनो

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अयं पुरुषोत्तमएव उक्तः. पुरुषोत्तमपक्षे ‘अव्यक्त’शब्दः स्वारस्यं न लभते इत्यतः पक्षान्तरम् आहुः **अथवा** इति. **अक्षरमेव** ‘‘**अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तः**’’(भग.गीता८।२१) इति गीतावाक्याद् अक्षरमेव इति अर्थः. नच नपुंसकलिङ्गविरोधः, ‘‘**अक्षरं ब्रह्म परमम्**’’(भग.गीता ८।३) इति ब्रह्मत्वविवक्षायां तत्रापि नपुंसकलिङ्गनिर्देशसम्भवात्. तस्य भगवता समं भेदाभेदौ गीतायाम् ‘‘**एवं सततयुक्ता ये**’’ (तत्रैव २।१) इति प्रश्नोत्तरसन्दर्भे स्फुटौ. धामत्वाद् भगवदधीनत्वमपि स्फुटम्. अस्मिन् पक्षे यो दृष्टान्तः तम् आहुः **तस्मिन्** इत्यादि. **तस्मिन्** अक्षरे स्फुरिते सति, **विज्ञानस्य** बुद्धेः यद् अक्षरात्मकविषयाधीनत्वं सो अत्र दृष्टान्तभूतो अर्थो ग्राह्यः. तथाच तद्विज्ञानं यथा अक्षरसारूप्येऽपि अक्षराद् भिन्नम् अक्षराधीनं च तथा अक्षरमपि ब्रह्मरूपं ब्रह्मणः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

चेद्, न, ‘‘**बुद्धेः आत्मा महान् परः**’’ (१०) इत्यत्र बुद्धेः नियामकं ब्रह्मविषयकं ज्ञानं तदेव महच्छब्दवाच्यम् इति पूर्वमेव उक्तं तस्यैव परत्वम्. ‘‘**अथ परा यया तदक्षरम् अधिगम्यते**’’ (मुण्ड.उप.१।५) इति श्रुतेः. परया अपरप्राप्तिः. ‘‘**ब्रह्मविद् आप्नोति परम् इति**’’ (तैत्ति.उप.२।१।१) श्रुतेः. तथाच अव्यक्तरूपा या कृपा तया वरणद्वारेण ब्रह्मज्ञानं महच्छब्दवाच्यं जायते. ‘‘**यमैवेष वृणुते**’’ (कठोप.२।२२) इति श्रुतेः वरणस्य द्वारत्वम्. एतत् सर्वं कृपाधीनमिति तस्याः परत्वं ब्रह्माभिन्नत्वं च बोध्यम् इति अवधेयम्. प्रकृतम् अनुसरामः.

श्रुत्यनुसार्यव्यक्तार्थम् उक्त्वा स्मृत्यनुसार्यर्थम् आहुः **अथवा** इति. **अस्तु** इति. ‘‘**अव्यक्तो अक्षरः**’’(भग.गीता८।२१) इति गीतावचनाद् अस्तु इति अर्थः. ननु अस्मिन् पक्षे ‘अर्थवद्’ इति दृष्टान्तसूत्रं कथं सङ्गच्छते? इत्यतः आहुः **तस्मिन् सति** इति. अव्यक्ते स्फुरिते सति. ननु यथा पूर्वं फलं दृष्टान्तः, तथा अत्र को अर्थो दृष्टान्तः? इत्यतः आहुः **विज्ञानस्य** इति. विज्ञानस्य अक्षरविषयाधीनत्वम् अक्षरब्रह्मरूपत्वं यथा, तथा अव्यक्तमपि पराधीनं तस्माद् भिन्नं पररूपम् इति अर्थः. एवञ्च अव्यक्तस्य ब्रह्मभिन्नत्वेन ब्रह्मणि परत्वानुपपत्तिः, तस्य ब्रह्मरूपत्वेन धर्मिप्रवाहविरोधोऽपि नास्ति इति अर्थः. **एतेन** इति. त्रिसूत्र्याः एतादृशार्थकव्याख्यानेन. **अन्येऽपि** व्याख्यातारः

निराकृता वेदितव्याः. असम्बद्धाभिलापाच्च.

अनेकरूढिशब्दानां वाच्यं ब्रह्मैव नापरम् ।
शाक्तास्तांश्चेत् तथा ब्रूयुः ते सन्मार्गाद् बहिष्कृताः ।।

तस्माद् इन्द्रियेभ्यः परवाक्ये न अनुमानिकं किञ्चिद् अस्ति ।।३।।

ज्ञेयत्वावचनाच्च ।।४।।

पूर्वापरसम्बन्धेन अर्थः प्रतिपादितः. केवल एतद् वाक्यविचारेऽपि न तदभीष्टं प्रकृतिरूपम् अव्यक्तं सिध्यति इति आह. अत्र हि वाक्ये अव्यक्तं ज्ञेयत्वेन न उक्तं, तेषान्तु प्रकृतिपुरुषान्तरं ज्ञातव्यम्. न हि सिद्धवन्मात्रनिर्देशे

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

परस्माद् भिन्नं तदधीनं चेति ऐक्येऽपि न परत्वानुपपत्तिप्रवाहविरोधौ इति अर्थः. **एतेन** पूर्वोक्तरीत्या त्रिसूत्रीव्याख्यानेन. **अन्येऽपि** 'अव्यक्त'पदस्य अविद्यार्थत्ववादिनोऽपि **निराकृता** इति निराकरणप्रकारो भाष्यप्रकाशे स्फुटइति न अत्र प्रपञ्च्यते. सर्वं तन्मतनिराकरणं मनसिकृत्य आहुः **अनेके**त्यादि. **तां** प्रकृतिं. **तथा** जगद्बीजरूपाम् ।।३।।

पूर्वापरेति पूर्वापरोपनिषदर्थैकवाक्यतया अर्थो निरूपितः इति अर्थः. **केवलैतद्वाक्ये**ति ''**इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था**'' (कठोप.१।३।१०) इति वाक्ये इति अर्थः. **ज्ञातव्यम्** इति ''**गुणपुरुषान्तरज्ञानात् कैवल्यम्**'' (   ) इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

मायावादिनः. तेषां मते 'अव्यक्त'पदवाच्या बीजभूता अविद्या माया इति. **निराकृताः** इति. ''**अव्यक्तोक्षर**''(तत्रैव) इति गीताव्याक्याद् निराकृताः इति अर्थः. **असम्बद्धे**ति. ''**बीजं मां सर्वभूतानाम्**''(भग.गीता७।१०) इति गीतावाक्याद् न बीजभूतेति असम्बद्धाभिलापाद् इति अर्थः. ननु बीजम् इत्यस्य नपुसंकलिङ्गत्वात् कथं 'माम्' इत्यस्य विशेषणत्वम्? इत्यतः आहुः **अनेके**ति. स्त्रीनपुंसकलिङ्गमायाव्यक्तादिरूढिशब्दानाम् इति अर्थः. ''**त्वं स्त्री त्वं पुमानसि**'' (श्वेता.उप.४।३) इत्यादिश्रुत्या. सर्वरूपत्वं तस्य इति अवगन्तव्यम् इति शाक्तमतं निराकुर्वन्ति **शाक्ताः** इति. **सन्मार्गाद्** वेदमार्गात्. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति ।।३।।

सूत्रम् अवतारयन्ति **पूर्वे**ति. **प्रतिपादितः** इति. 'अव्यक्त'पदवाच्यः, कृपा वा अक्षरो वा अर्थः प्रतिपादितः इति अर्थः. ननु मास्तु पूर्वापरवाक्यविचारः, केवल ''**इन्द्रियेभ्यः परा**'' इत्यादिवाक्यविचारएव अस्तु इत्यतः आहुः **केवले**ति. सूत्रार्थम् आहुः **अत्र हि** इति. **ज्ञातव्यम्** इति. गुणपुरुषान्तरज्ञानात् कैवल्यम् इति साङ्ख्यसूत्राद्

तेषां मते पुरुषार्थः सिध्यति. अपुरुषार्थसाधनत्वे वा असम्बद्धार्थवाक्यत्वमेव स्यात्. परत्ववचनं च असङ्गतम्. श्लिष्टत्वाद् उभयोः इति **‘च’**कारार्थः. अयं हेतुः पूर्वम् उक्तोऽपि अवसरे स्मारितः. तस्माद् अव्यक्तं न प्रकृतिः।।४।।

वदति इति चेद् न प्राज्ञो हि प्रकरणात्।।५।।

ननु ज्ञेयत्वावचनम् असिद्धम्. पूर्वं निर्देशमात्रम् उक्त्वा अग्रे ज्ञेयत्ववचनाद् ‘‘**अशब्दम् अस्पर्शम् अरूपम् अव्ययं तथा अरसं नित्यम् अगन्धवच्च यद् अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते**’’ (कठो.उप.१।३।१५) इति उत्तरवाक्ये **वदति इति चेद्, न.** प्रकरणस्य

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तदीयप्रवचनसूत्राद् विभूतिविशेषाप्तये प्रधानस्यापि ज्ञेयत्वस्मरणाच्च तथा इति अर्थः. **परत्वे**त्यादि. परापरभावो हि विश्लेषे अवगन्तुं शक्यते नतु संश्लेषे. इदानीम् अज्ञानदशायान्तु श्लेषएवेति उदासीनतया उक्तौ पुरुषस्य परत्ववचनमपि असङ्गतं स्याद् इति अर्थः. **अयं हेतुः** चकारसूचितो हेतुः. **पूर्वम्** अदृश्यत्वाधिकरणे।।४।।

प्रकरणस्य इत्यादि. अव्यक्तश्रुतेः परत्वलिङ्गस्य तद्घटितवाक्यस्य च परमतसाधारणत्वात् प्रकरणस्य निर्णायकत्वं वाच्यम् अतः तस्य नियाकमत्वेन एकवाक्यत्वे वाच्ये ‘‘**महतः परमव्यक्तम्**’’(कठोप.१।३।११) इति ‘‘**अशब्दम् अस्पर्शम्**’’ (कठोप. १।३।१५) इति द्वयोरेव एकवाक्यत्वं न अन्येषाम् इत्यत्र नियामकाभावात् सर्वेषामेव

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

विध्यर्थे ‘तव्य’प्रत्ययः इति अर्थः. ननु अज्ञानदशायां मास्तु अन्तरज्ञानं तावता ‘अव्यक्त’पदस्य प्रकृतिवाचकत्वे का क्षतिः? इत्यतः आहुः **परत्वे**ति. ब्रह्मणि इति शेषः. **उभयोः** इति. अज्ञानदशायां प्रकृति-पुरुषयोः इति अर्थः. **पूर्वम्** इति. अदृश्यत्वाधिकरणे।।४।।

सौत्रं पूर्वपक्षं विशदयन्ति **ननु** इति. **महतः परम्** इति. अनेन ‘‘**महतः परम् अव्यक्तम्**’’(कठोप.१।३।११) इति स्वरूपकीर्तनरूपनिर्देशः. **निचाय्ये**ति. अनेन ज्ञेयत्ववचनम्. **उत्तरवाक्ये**ति. ‘‘**इन्द्रियेभ्यः**’’ इत्यस्य उत्तरे ‘‘**अशब्दम्**’’ इति वाक्ये वदति इति अर्थः. समाधानं विशदयन्ति **प्रकरणस्य** इति. एकवाक्यतायां प्रकरणमेव नियामकं नतु वाक्यद्वयम्. प्रकरणं च ‘‘**ऋतं पिबन्तौ**’’(तत्रैव१।३।१) इत्यारभ्य नाचिकेतोपाख्यानान्तम्. वाक्यद्वयं च ‘‘**महतः परम् अव्यक्तं**’’(पूर्ववत्) ‘‘**अशब्दम् अस्पर्शम्**’’ (कठोप.१।३।१५) इति. तथाच द्वयोः वाक्ययोः सर्वप्रकरणैकवाक्यतायां सत्यां जीव-

नियामकत्वेन एकवाक्यत्वे द्वयोः सर्वैकवाक्यत्वेन **प्राज्ञः** परमात्मैव निचाय्यः नतु द्वयोरेव एकवाक्यत्वं वक्तुं शक्यम्. तस्मात् प्रकरणस्य नियामकत्वे अशब्दवाक्यमपि भगवत्परमेव।।५।।

ननु न वयं सर्वम् एकं प्रकरणम् इति वदामः किन्तु, **‘‘इन्द्रियेभ्यः परा’’** (कठोप.१।३।१०) इत्यारभ्य **‘‘नाचिकेतम् उपाख्यानम्’’**(तत्रैव१।३।१६) इत्यन्तं भिन्नं प्रकरणम्. तत्र प्रथमं पदार्थनिर्देशः. तदनु **‘‘एषः सर्वेषु भूतेषु’’** (तत्रैव १।३।१२) इति पुरुषज्ञानम्, अशब्दम् इतितु प्रकृतिज्ञानम्. तस्माद् एतावत्प्रकरणे साङ्ख्यमतनिरूपणाद् अशब्दत्वम् असिद्धम् इति आशङ्क्य परिहरति

त्रयाणामेव च एवम् उपन्यासः प्रश्नश्च।।६।।

अस्मदुक्तव्याख्याने त्रिप्रकरणत्वम् अन्यथा चतुःप्रकरणत्वं स्यात्. तृतीया च एषा वल्ली. **‘‘स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्योप्रब्रूहि तं श्रद्दधानाय मह्यम्’’** (तत्रैव १।१।१३) इति प्रश्नः प्रथमः. **‘‘प्रतिब्रवीमि तदु मे निबोध**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

एकवाक्यत्वं वक्तव्यम्. प्रकरणं च ‘‘**ऋतं पिबन्तौ**’’(तत्रैव १।३।१) इत्यारभ्य ‘‘**नाचिकेतम् उपाख्यानम्**’’(तत्रैव १।३।१६) इत्यन्तम् एकम्. तत्रच आत्मानावेव परामृश्य जीवात्मनो रथित्वं तदुपकरणं तत्फलं च उक्त्वा ‘‘**एष सर्वेषु भूतेषु**’’ (तत्रैव १।३।१२) इत्यारभ्य वल्लीसमाप्तिपर्यन्तं परमात्मैव ज्ञेयत्वेन परामृष्टो मृत्युमुखच्युतिरूपफलदर्शनात् प्रधानज्ञानेन सांख्यैः तत्फलानङ्गीकारात् चेतनात्मज्ञानादेव तत्फलस्वीकाराद् अतः प्रकरणस्य नियामकत्वे अशब्दवाक्यस्यापि भगवत्परत्वाद् ज्ञेयत्वावचनं न असिद्धम् इति अर्थः।।५।।

अशब्दत्वम् असिद्धम् इति ईश्वरे अशब्दत्वनिर्वचनं भवत्कृतम् असङ्गतम् इति अर्थः. **त्रयाणां** प्रकृते च अग्निजीवब्रह्मणां. **प्रश्नश्च** इति वल्लीत्रयएव प्रश्नः इति अर्थः. **त्रिप्रकरणत्वं** श्रुतिस्थं त्रिप्रकरणत्वं सङ्गतं भवति इति अर्थः. **अन्यथा** सांख्यमतोपन्यासे. **चतुः** इत्यादि. तथाच चतुर्थस्य प्रश्नोत्तरस्य वल्ल्याधिक्यस्य च

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ब्रह्मणोः रथित्वप्राप्यत्वनिरूपणं ब्रह्मणश्च ज्ञानेन मृत्युमुखप्रमोकरूपं फलमपि उच्यते. एवञ्च ‘‘महतः परं ध्रुवम्’’ इत्यत्र ‘पर’शब्देन न अव्यक्तरूपं प्रधानं, साङ्ख्यमते प्रधानज्ञानाद् मोक्षाभावाद् इति भावः. **निचाय्यः** ज्ञेयः।।५।।

सूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इति. विषयवाक्ये इदं स्पष्टम्. **त्रयाणाम्** इति,

स्वर्ग्यम् अग्निं नाचिकेत प्रजानन्’’ (तत्रैव १।१।१४) इत्याद्युतरम्. ‘‘**येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येस्ति इत्येके नायमस्तीति चैके**’’ (तत्रैव १।१।२०) इति द्वितीयः प्रश्नः. ‘‘**देवैरत्रापि**’’ (तत्रैव १।१।२२) इति अग्रे उत्तरम्. ‘‘**अन्यत्र धर्माद् अन्यत्राधर्माद्**’’ (तत्रैव १।२।१४) इति तृतीयः प्रश्नः. ‘‘**सर्वे वेदा यत् पदम् आमनन्ति**’’ (तत्रैव १।२।१५) इत्यादिना उत्तरम्. एवम् अग्नि-जीव-ब्रह्मणां प्रश्नोत्तराणि. तत्र यदि साङ्ख्यमतं निरूपणीयम्, ‘‘**इन्द्रियेभ्यः**’’ (तत्रैव १।३।१०) इत्यादि स्यात् तदा चतुर्थस्यापि उपन्यासः स्यात्. उपन्यासे हेतुः प्रश्नः. अतएव पश्चाद् वचनम्. तस्य प्रकृते अभावाद् अस्मदुक्तरीत्या त्रीण्येव प्रकरणानि इति सिद्धम्. उत्तरप्रश्नभावार्थं ‘च’कारः।।६।।

महद्वच्च।।७।।

ननु तथापि मतान्तरे अन्यत्र सङ्केतिताः कथं ब्रह्मवादे ब्रह्मपरतया योज्यन्ते ? इति आशङ्क्य परिहरति महद्वत्. यथा ‘महत्’शब्दो ‘‘**महान्तं विभुम् आत्मानं**’’(कठोप.१।२।२२) ‘‘**वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्**’’ (श्वेता.उप.३।८) इत्यादौ ‘महत्’शब्दो ब्रह्मपरो योगेन. एवम् ‘अव्यक्त’शब्दोऽपि अक्षरवाचकः इति. न हि सांख्यमतइव वेदान्तेऽपि ‘महत्’शब्दः प्रथमकार्ये वक्तुं शक्यते.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

असत्त्वात् तन्मतोपन्यासो असङ्गतएव इति अर्थः. **अतएव** सांख्यमतासम्भवतएव. **पश्चाद् वचनं** वल्लीत्रयान्ते निरूपणम् अन्यथा वल्ल्यन्तरसम्भवे तन्मतोपन्यासशङ्कापि स्याद् इति भावः. **तस्य** चतुर्थप्रकरणस्य. **उत्तरप्रश्नभावार्थम्** उत्तरप्रश्नानां त्रित्वबोधनार्थम्।।६।।

अन्यत्र सङ्केतिताः ‘अव्यक्ता’दिशब्दाः प्रकृत्यादौ सङ्केतिताः. **प्रथमकार्ये**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अग्निजीवब्रह्मणाम्. **अत्र** भाष्ये विषयवाक्यपर्यालोचनया स्पष्टम्. साङ्ख्यमताभिलापकं चतुर्थं प्रकरणं नास्ति इति आहुः **तत्र** इति. **उपन्यासः** इति. उपन्यासकारणीभूतः प्रश्नश्च स्याद् इति अर्थः. **अतएव** साङ्ख्यमताभावादेव. **पश्चाद्वचनं** वल्लीत्रयान्ते निरूपणम्. **तस्य** चतुर्थप्रकरणस्य. **उत्तरप्रश्ने**ति. उत्तरप्रश्ननिष्ठो भावो धर्मः त्रित्वं तदर्थम् इति अर्थः।।६।।

सूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **प्रथमकार्ये** प्रकृतेः प्रथमकार्ये महत्तत्त्वे. ‘‘**मूल-**

तस्माद् इन्द्रियादिवाक्ये सांख्यपरिकल्पितानां पदार्थानां नामापि नास्ति इति सिद्धम्. '**च**'कारो अधिकरणसम्पूर्णत्वद्योतकः।।७।।

इति प्रथमाध्याये चतुर्थपादे प्रथमम् सप्तसूत्रात्मकम् आनुमानिकाधिकरणम्।।१।।

चमसवद् अविशेषात्।।८।। (१।४।२)

पुनः श्रुत्यन्तरेण प्रत्यवस्थितं निराकर्तुम् अधिकरणान्तरम् आरभते. ननु प्रकरणवशात् पूर्वम् अस्मद् उक्तो अर्थो अन्यथा वर्णितः. यत्र प्रकरणापेक्षैव नास्ति मन्त्रे तद् अस्माकं मूलम्. ''**अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः, अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः**'' (श्वेता. उप.४।५) इति. यद्यपि इदं श्वेताश्वतरोपनिषदि चतुर्थाध्याये विद्यमानत्वात् पूर्वापरसम्बन्धमेव वक्तव्यम्. तत्र, ''**ब्रह्मवादिनो वदन्ति**'' (तत्रैव १।१) इति

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

प्रकृतिकार्ये महत्तत्त्वरूपे।।७।।

अधिकरणप्रयोजनम् आहुः **श्रुत्यन्तरे**त्यादि. अत्रापि साध्यम् आनुमानिकं श्रोतत्वाभावरूपमेव. अजामन्त्रस्थो 'अजा'शब्दो अत्र पूर्वपक्षे मूलम् इति संशयतद्बीजम् अनुक्त्वा पूर्वपक्षमेव आहुः **ननु** इत्यादि. ननु अस्य मन्त्रस्य श्वेताश्वतरोपनिषत्-चतुर्थाध्याये ''**य एको वर्णो बहुधाशक्तियोगाद् वर्णान् अनेकान् निहितार्थो विदधाति**'' (श्वेता.उप.४।१) इत्यादिमन्त्रैः ब्रह्म प्रकृत्यैव पठितत्वाद् उपनिषदारम्भेऽपि ''**किं कारणं ब्रह्म**'' (तत्रैव १।१) इति ब्रह्मणएव प्रकृतत्वात् कथम् अस्य प्रकरणानपेक्षत्वम् इति आकांक्षायां तदनपेक्षताम् उपपादयन्ति **यद्यपि** इत्यादि. तदेव

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

प्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त''(सांख्यका.३) इति वचनात्।।७।।

ननु प्रकरणाभावात् पूर्वस्मिन् अधिकरणे साङ्ख्यमतसिद्धपदार्थानां वैदिकशब्दप्रतिपाद्यत्वं नास्ति इति प्रतिपादितम्, इदानीम् अप्राकरणिककेवलवाक्यस्यापि तादृशार्थप्रतिपादकत्वं नास्ति इति प्रतिपादयितुं चमसाधिकरणम् आरभन्ते **चमसवद् अविशेषात्**. चमसवत् तत्सदृशो अविशेषः चमसवदविशेषः, तस्मात्. इदं समाधानसूत्रम् अवतारयितुं पूर्वपक्षम् आहुः **ननु** इति. श्वेताश्वतरोपनिषत्स्थं विषयवाक्यम् आहुः **अजाम्** इति. इदम् अप्राकरणिकं नास्ति इति आशङ्कते **यद्यपि** इति. सम्बद्धत्वमेव आहुः **तत्र** इति. तत्र चतुर्थाध्याये निरूपिता. ''**एको बहुधा शक्तियोगाद्**'' (श्वेता.उप.४।१) इत्यादिमन्त्रैः निरूपिता. समादधते **तथापि** इति.

उपक्रम्य ब्रह्मविद्यैव निरूपिता. तथापि पूर्वकाण्डे प्रणवादिमन्त्राणां न अयं नियमइति प्रकृतेऽपि मतान्तरवाचकस्यैव प्रकृतोपयोगः इति शङ्का. ‘‘**ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्**’’ (तत्रैव १।३) इति च. तथा ‘‘**ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ, अजा ह्येका भोक्तृ-भोग्यार्थयुक्ता**’’(तत्रैव १।९). अग्रे च ‘‘**यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको विश्वानि रूपाणी योनीश्च सर्वाः. ऋषिप्रसूतं कपिलं यः तम् अग्रे ज्ञानैः बिभर्ति जायमानञ्च पश्येद्**’’ (तत्रैव ५।२) इत्यादि च वाक्यानि कपिलतन्मतवाचकानि वर्तन्तइति साङ्ख्यमतमपि वैदिकमेव इत्येवं प्राप्ते, उच्यते, **चमसवद् अविशेषात्.**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आह **तथापि** इत्यादिना. तथाच प्रणवादिमन्त्राणाम् अर्थान्तरवाचकानामपि यथा अत्र उपनिबन्धः एवम् ‘‘**इमं मे वरुणे**’’ ( ) इत्यादीनां सूर्योपस्थानादि अर्थानामपि यथा अत्र उपनिबन्धः तथा कपिलमतसिद्धार्थस्य अस्यापि मन्त्रस्य उपनिबन्धइति अयं मन्त्रः प्रकरणनिरपेक्षएव कापिलोक्तार्थप्रतिपादनसमर्थइति शङ्कावकाशः इति अर्थः. बहूनाम् अनुग्रहो न्याय्यः इति दर्शयितुं तन्मतवाक्यबाहुल्यं प्रतिपाद्यते ‘‘**ते ध्याने**’’ त्यादिना. तथाच अत्र स्वगुणैः निगूढत्वम्. **अग्रे** मुक्तामुक्तसंघौ भोक्तृभिः भोग्यार्थैः मात्रादिकार्यैः **युक्ता** अनादिः प्रकृतिः तदग्रे च अधिष्ठातृत्वं तदग्रे च कपिलस्य नाम तद्धर्माश्च प्रतिपाद्यन्ते. एतावान् परं विशेषो यत् कापिलैः प्रकृतिः स्वतन्त्रा उच्यते अत्रतु ब्रह्मशक्तित्वेन इति न तावता तस्याः अजात्वहानिः, शक्तेः नित्यत्वात्. **वैदिकमेव** इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

यज्ञकाण्डे अर्थान्तरब्रह्मवाचकप्रणवादिमन्त्राणां उपयोगो यथा, तथा साङ्ख्यमतसिद्धपदार्थवाचकमन्त्रस्य ब्रह्मविद्यायाम् उपयोगः इति अर्थः. एवञ्च अस्य मन्त्रस्य स्वार्थप्रतिपादने प्रकरणापेक्षा नास्ति इति प्रधानस्य अशब्दत्वं नास्ति इति शङ्का स्याद् इति भावः. शङ्का स्याद् इति अस्वरसात् समाधानान्तरं वक्तुं बहूनाम् अनुग्रहो न्यायः इति आशयेन स्वमतस्थपदार्थबोधकमन्त्राणि दर्शयति **ते** इति. एतानि **वाक्यानि** इति. ‘‘**ते ध्यानयोगाः**’’(श्वेता.उप.१।३) इति एकः, ‘‘**ज्ञाज्ञौद्वावजौ**’’(तत्रैव१।९) इति द्वितीयः, ‘‘**यो योनिम्**’’(तत्रैव५।२) इति तृतीयो मन्त्रः. एतानि वाक्यानि इति अर्थः. तथाच कठवल्ल्याम् एकएव मन्त्रः प्रधानवाचकः अन्ये च मन्त्राः ब्रह्मप्रतिपादकाः इति बहूनाम् अनुग्रहार्थम् एकस्य मन्त्रस्य अन्यार्थकत्वम् अस्तु नाम, अत्रतु तथाभावेन वैपरीत्यात् साङ्ख्यमतं वैदिकमेव इति भावः. अस्मिन् पूर्वपक्षे सौत्रं समाधानम् आहुः **उच्यते** इति.

‘‘अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्द्धबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्, तस्यासते ऋषयः सप्त तीरे वागष्टमी ब्रह्मणा संविदाना’’ (बृहदा.उप.२।२।३) इति मन्त्रे यथा न विशेषो विधातुं शक्यते, न हि कर्मविशेषं कल्पयित्वा तत्र अर्वाग्बिलचमसं कल्पयित्वा तत्र यशोरूपं सोमं होतारो मन्त्रेण भक्षयेयुः इति कल्पयितुं शक्यते, तथा प्रकृते रोहित-शुक्ल-कृष्ण-शब्देन रजः-सत्त्व-तमांसि कल्पयित्वा न तद्वशेन सर्वमेव मतं शक्यते कल्पयितुम्. कपिलऋषिवाक्यमपि अनित्यसंयोगभयाद् *नित्यऋषेरेव अनुवादकम्. तस्माद् न मन्त्रमात्रेण प्रकरणश्रुत्यन्तरनिरपेक्षेण विशेषः कल्पयितुं शक्यः।।८।।

ज्योतिरुपक्रमात्तु तथा ह्यधीयत एके।।९।।

ननु चमसमन्त्रे **‘‘अर्वाग्बिल’’**(बृहदा.उप.२।२।३) इति मन्त्रव्याख्यानम् अस्ति. **‘‘शिरश्चमसः प्राणा वै यशः’’**(तत्रैव २।२।३) **‘‘प्राणा वा ऋषयः’’**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

‘एव’कारेण आनुमानिकत्वव्यवच्छेदः. सूत्रेण सिद्धान्तं व्याकुर्वन्ति **उच्यते** इत्यादिना. एकपदम् इदं सूत्रम्. **चमसवत्** तुल्यं चमसवत् तादृशश्च असौ अविशेषश्च चमसवद् अविशेषः तस्माद् इति. स्यात् कपिलमतम् अत्र यदि तस्याः सृष्टिप्रकरणे स्वातन्त्र्योपपादको रजःसत्त्वतमःसाम्यावस्थात्मकः स्वरूपस्य विशेषो विधातुं शक्येत. सच न शक्यते शक्तिमदधीनोदयतया तत्सापेक्षतयैव सिद्धत्वात्. नच **‘‘योनिं योनिम्’’** (श्वेता.उप. ५।२) इति तद्गमकं, वीप्सायाः बाहुल्यस्य च बाधकत्वात्. नच स्वगुणैः निगूढत्वं तद्गमकं तत्र ‘स्व’पदेन ब्रह्मणएव ग्रहणयोग्यत्वात् तद्गुणानामेव च ग्रहणाद्, उत्तरार्धे **‘‘यः कारणानि निखिलानि कालात्मयुक्तानि अधितिष्ठत्येक’’** (नारद.प.उप. ९।२) इत्यनेनापि तस्यैव परामृष्टत्वात् च. नापि भोक्तृभोग्यार्थयोगः तथा, जन्यशक्तावपि तथात्वस्य पुराणसिद्धत्वाद्, **नित्यऋषेः** भगवदवयवरूपाधिदैविकऋषेः ।।८।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

चमसवदविशेषात्. अविशेषम् आहुः **नहि** इति. शक्यते इत्यनेन अन्वयः. प्रकृते अजादिमन्त्रे कल्पयितुं न शक्यते इति अन्वयः. एवं चमसमन्त्रे यज्ञाङ्गसाधनवाचकपदानि सन्ति, परन्तु न तद्वाचकत्वं तेषां यथा, तथा अत्रापि न साङ्ख्यमतपदार्थवाचकत्वम् अजादिमन्त्रस्य इति अविशेषोऽपि बोध्यः. **नित्यानित्ये**ति. नित्यस्य वेदस्य अनित्यस्य कपिलस्य संयोगभयाद् इति अर्थः. ***नित्यर्षेः** इति. भगवदंशरूपाधिदैविकर्षेः इति अर्थः।।८।।

(तत्रैव २।२।३) इति. न अत्र तथा व्याख्यानम् अस्तीति इमां शङ्कां परिहरति **‘तु’**शब्दः. ‘अजा’शब्देन ज्योतिरेव उच्यते. यथा हि अजा अल्पदोग्ध्री तथा इयं नश्वरसुखदात्री. अग्निसूर्यसोमविद्युद्रूपा ब्रह्मणो हंसोक्तचरणरूपा, भगवत्कार्यांशरूपत्वात्*. **“तासां त्रिवृतं त्रिवृतम् एकैकां करवाणि”**(छान्दो.उप.६।३।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इमाम् इत्यादि. **इति** हेतौ. तथाच अध्यात्मप्रकरणबलाद् रूढ्यर्थम् अपहाय योगादरात् सांख्यसिद्धा प्रकृतिरेव ‘अजा’शब्दवाच्या ग्राह्या इति भावः. ननु ‘अजा’शब्दार्थानिर्धारे कथं **तु** शब्दः तन्मतं दूषयेद्? अतः आहुः **अजा** इत्यादि. तथाच निगीर्याध्यवसानेन ‘अजा’शब्दस्य ज्योतिः अर्थः इति अर्थः. ननु किं तज्ज्योतिः? इत्यतः आहुः. **अग्नी**त्यादि. **हंसोक्ते**त्यादि. छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके सत्यकामाय हंसेन **“अग्निः कला सूर्यः कला चन्द्रः कला विद्युत् कलैष वै सौम्य चतुःकलः पादो ब्रह्मणो ज्योतिष्मान्नाम”**(छान्दो.उप.४।७।३) इत्युक्तश्चरणः, **“तत्तेजोऽसृजत”**(तत्रैव ६।२।३) इति श्रुत्युक्तभगवत्कार्यांशत्वात् तस्य त्रिरूपत्वं, कार्यत्वस्त्रीरूपत्वे च **“तासां**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इति. **इमाम्** इति चमसमन्त्रे व्याख्यानं श्रुतावेव कृतमिति न अत्र तत्सादृश्यम् इति योगार्थादरेण ‘अजा’शब्देन मूलप्रकृतिरेव अत्र गृह्यते इति साङ्ख्यानां शङ्का इति अर्थः. ननु यदि भवन्मते प्रकृतिः न उच्यते चेद् अत्र ‘अजा’शब्दवाच्यं किमपि न दृश्यते इत्यतः आहुः **अजा** इति. ननु ज्योतिर्वाचकत्वम् ‘अजा’शब्दस्य कुत्रापि न दृष्टम् अतः आहुः **यथा** इति. ननु उपनिषत्प्रतिपाद्या तादृशी का वा ज्योतिः? इत्यतः आहुः **अग्नी**ति. **रूपाद्** इति. अत्र पाठद्वयम् ‘रूपाद्’ इति पञ्चम्यन्तं, ‘रूपे’ति प्रथमान्तम्. ‘रूपाद्’ इति पाठे भावप्रधाननिर्देशं कृत्वा रूपत्वाद् इति वक्तव्यम्. तथाच ज्योतिः तादृशरूपत्वाद् **हंसोक्तचरणरूपा** इति अन्वयः. प्रथमान्तपाठे ज्योतिः कीदृशम्? इति आकाङ्क्षायाम् **अग्निसूर्यसोमविद्युद्रूपा** इति तस्याएव विशेषणम्. अयं पाठस्तु श्रीहस्ताक्षरेषु सन्दिग्धत्वाद् बोध्यः इति श्रीगोस्वामिचरणैः प्रकाशे उक्तः. **चरणरूपे**ति. हंसेन सत्यकामाय ऋषये अग्न्यादीनाम् कलात्वम् उक्तं छान्दोग्ये षष्ठे प्रपाठके अग्निकलेत्यादिना चतुःष्कलोपादो ब्रह्मणो ज्योतिष्मान्नामेति अन्तेनातश्चरणरूपेति अर्थः. तस्याः ज्योतेः ‘अजा’शब्देन व्यवहारे कारणम् आहुः **भगवद्** इति. **“तत्तेजोऽसृजत”**(छान्दो.उप.६।२।३) इति श्रुतेः

---

*‘कार्यरूपांशत्वात्’ इति श्रीपुरु.पाठः.

३) इति श्रुतेश्च प्रथमोत्पन्ना देवता ‘अजा’शब्देन उच्यते. तत्र हेतुः **उपक्रमात्.** अत्रैव उपक्रमे, **‘‘तदेवाग्निः तद्वायुः तदादित्यः तदु चन्द्रमाः’’**(श्वेता.उप.४।२) इति. **‘‘द्वा सुपर्णा’’**(तत्रैव ४।६) इति च अग्रे. मध्ये च अयं मन्त्रः पूर्वोत्तर-सम्बद्धमेव वदति. सा मुख्या सृष्टिः. अजद्वयं जीव-ब्रह्मरूपम् इति. अत्र प्रकरणे न स्पष्टइति निरूपयति. तथाहि, श्रुत्यन्तरे स्पष्टमेव अधीयत एके **‘‘यदग्ने रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत् कृष्णं तद् अन्नस्य’’** (छान्दो.उप.६ ।४।१) इति. एवम् अग्रेपि कलात्रये. **‘‘अनेन जीवेन आत्मना’’** (तत्रैव ६।३।२) इति

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

त्रिवृतम्’’(तत्रैव ६।३।३) इति श्रुतेः. तथाच प्रथमोत्पन्ना या देवता सा अत्र ‘अजा’शब्देन उच्यते इति अर्थः. **उपक्रमात्** प्रथमसृष्टत्वात्. सृष्टौ चेतनाधिष्ठितत्वम् आहुः **‘‘द्वा सुपर्णा’’** (मुण्डकोप.३।१।१) इत्यनेन. **सा** इत्यादि. त्रिवृत्कृतदेवतारूप–सृष्ट्यन्तरोपयोगिनी मुख्या सृष्टिः इति अर्थः. **न स्पष्टे**ति. छान्दोग्ये तेजसः स्त्रीरूपत्वं च न स्पष्टम् इति अर्थः. **निरूपयति** तदर्थबोधकश्रुत्यन्तरं निरूपयति इति अर्थः. जीव–ब्रह्मणोः प्रवेशम् आहुः **अनेन** इत्यादि. सहार्थे तृतीया. **आत्मना** इति करणतृतीया. स्वरूपत्वकथनप्रयोजनम् आहुः **बीजे**त्यादि. **‘‘बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ!**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अंशत्वाद् इति अर्थः. हेत्वन्तरम् आहुः **तासाम्** इति. त्रिवृतं तेजोजलान्नात्मकं देवतातेजोरूपा एतावता सौत्रं ‘ज्योतिः’पदं व्याख्यातम्. ननु **‘‘अजाम् एकाम्’’** (श्वेता.उप.४।५) इति मन्त्रे भगवत्कार्यरूपायाः तस्याः कथं प्रत्यभिज्ञानम् इति आकाङ्क्षायां सौत्रं हेतुं दर्शयन्ति **तत्र** इति. ननु साङ्ख्यमते अजायाः जडत्वम् अस्याः चैतन्याधिष्ठितत्वं कथम्? इत्यतः आहुः **द्वा** इति मन्त्रः. **सा मुख्या** बहुप्रजाजननसमर्था सृष्टिः वदति इति अर्थः. ‘अजाम्’इति मन्त्रस्य उत्तरार्द्धार्थं व्याकरोति सूत्रकारः इति आहुः **अजद्वयम्** इत्यादिना. ननु ज्योतिरूपा इयम् अजा त्रिवृद्रूपा इति यद् उक्तं तद् न सम्भवति छान्दोग्ये तेजसोत्पत्तिप्रकरणे त्रिवृद्रूपतायाः प्रतिपादनाभावाद् इति. सूत्रशेषम् अवतारयन्ति **अत्र** इति. **निरूपयति** सूत्रकारः इति शेषः. तथाहि इत्यस्य अर्थम् आहुः **श्रुत्यन्तरे**ति. ननु किं तत् श्रुत्यन्तरम्? इत्यतः श्रुतिम् आहुः **यदग्नेः** इति. **एवम् अग्रेऽपि** इति. यदादित्यस्य रोहितं स्वरूपम् इत्यादिसूर्यसोमविद्युद्रूपेति अर्थः. अत्र चैतन्याधिष्ठितत्वं कुत्र उक्तम्? इत्यतः आहुः **अनेन** इति. अत्र जीवात्मनोः सहार्थे करणार्थे यथाक्रमं तृतीया बोध्या. जनयन्तीं स्वरूपाम् इति उक्तं तस्य प्रयोजनम् आहुः

जीव-ब्रह्मणोश्च अनुप्रवेशः. बीजेऽपि त्रैविध्यम् इति सरूपत्वम्. भगवतो *भोगे हेतुः जीवेन भुक्तभोगाम् इति. तस्मात् प्रकृतेऽपि चमसवत् श्रुतावेव अर्थकथनाद् न सांख्यमतप्रतिपादकत्वम्।।९।।

कल्पनोपदेशाच्च मध्वादिवदविरोधः।।१०।।

ननु द्विविधा शब्दप्रवृत्तिः. योगो रूढिः वा. तत्र 'अजा'शब्दः छागायां रूढः. न जायते इति योगः. अनुभयरूपत्वात् कथं सृष्टिवाचकत्वम्? इति आशङ्क्य परिहरति **कल्पनोपदेशाच्च.** कल्पना अत्र उपदिश्यते. आद्या सृष्टिः कल्पनया 'अजा'शब्देन उच्यते. यथाहि अजा बर्करसहिता सवत्सा स्वामिहिता तथा इयम् इति उपदेशपदात् तथा उपासनम् अभिप्रेतम्. **'च'**कारात् परोक्ष-

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सनातनम्'' (भग.गीता ७।१०) इति वाक्याद् बीजं भगवान्. सच सच्चिदानन्दरूपत्वात् त्रिविधः इति कार्यमपि तथा उक्तम्. वस्तुतः सर्वस्य ब्रह्मत्वात् सच्चिदानन्दरूपत्वमपि सारूप्येण निरूपितम् इति सूचना. **अभोगे*** भगवता अभोगे।।९।।

सृष्टिवाचकत्वम् 'अजा'शब्दस्य आद्यसृष्टिवाचकत्वम्. **बर्करो** अजः तेन सहिता, **सवत्सा** सापत्या, **स्वामिहिता** स्वामी तस्याः सेवकः, **तथा इयम्** इति प्रकृतिरपि तथा. सा पुरुषा सकार्या उपासकानां हितेति सदृशार्थलक्षणया 'अजा'पदं प्रथमोत्पन्नदेवताप्रकृतिबोधकम् इति अर्थः. **चकाराद्** अप्यर्थक'च'कारात्. **परोक्षवादः** इति. तथाच **''तत्तेषां न प्रियं यन् मनुष्या विद्युः''** (   ) इति श्रुतेः 'अजा'-पदेन चतुर्मुखाजन्यायेन भगवत्प्रियत्वं वा अर्थः. दृष्टान्तम् आहुः **यथा** इत्यादि. तथाच

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

बीजेऽपि इति. 'अपि'ना तेजोऽबन्नात्मकत्वे सच्चिदानन्दस्वरूपं त्रैविध्यमपि प्रजास्वस्ति इति सूचितम्।।९।।

पूर्वपक्षम् उक्त्वा समाधानसूत्रम् अवतारयन्ति **ननु** इति. ननु उक्तमेव द्विविधा शब्दप्रवृत्तिः इति आद्यसृष्टेः 'प्रजा'शब्दवाच्यत्वं कथम्? इत्यतः आहुः **यथा** इति. यथा अजा प्रजोत्पत्तिसम्पादनेन स्वामिहिता तथा इयं भगवद्धितेति गौण्या लक्षणया ''अग्निः माणवकः'' इतिवद् 'अजा'शब्दवाच्या आद्या सृष्टिः इति अर्थः. श्रीचरणाः स्वाभिप्रेतम् आहुः **परोक्षे**ति 'अजा'शब्देन आद्यसृष्टिकथनरूपा अन्योक्तिरेव परोक्षवादः. **''परोक्षं च मम प्रियम्''** (भाग.पुरा.११।२१।३५) इति भागवते अभिधानाद् आहुः **देवस्य** इति. स्तौत्रं मध्वादिवद् इति. दृष्टान्तं विशदयन्ति **यथा** इति. यथा अस्माकं सारघं मधु तथा

वादोऽपि देवस्य हिताय. ''**यथा आदित्यो वै देवमधु**''(छान्दो.उप.३।१।१) ''**वाचं धेनुम् उपासीत**''(बृहदा.उप.५।८।१) द्युलोकादीनां च अग्नित्वं पञ्चाग्निविद्यायां तथा प्रकृतेऽपि अविरोधः. योगरूढिव्यतिरेकेणापि एषा वेदे शब्दप्रवृत्तिः. तस्माद् अजामात्रेण न सांख्यमतसिद्धिः।।१०।।

इति प्रथमाध्याये चतुर्थपादे द्वितीयं त्रिसूत्रं चमसाधिकरणम्।।२।।

न संख्योपसंग्रहादपि नानाभावाद् अतिरेकाच्च।।११।।(१।४।३)

मन्त्रान्तरेण पुनः आशङ्क्य परिहरति. बृहदारण्यकषष्ठे श्रूयते.

''यस्मिन् पञ्च पञ्चजना आकाशश्च प्रतिष्ठितः,
तमेव मन्य आत्मानं विद्वान् ब्रह्म अमृतो अमृतम्''

(बृहदा.उप.४।४।१७) इति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सांख्यसमाससूत्राणां पञ्चशिखवृत्तौ सूर्यस्य चक्षुः अधिदैवतत्वेन उक्तत्वाद्, मधुविद्योक्तस्य मधुत्वस्य सूर्ये वक्तुम् अशक्यत्वात्, सांख्यैरपि तत्र कल्पनयैव लक्षणया मधुत्वं वाच्यं तथा इह अजात्वमपि इति अर्थः. अन्यथा तेषामपि श्रुतिविरोधो दुष्परिहरः।।१०।।

आशङ्क्य सांख्यमतस्य श्रौतत्वम् आशङ्क्य विषयम् आहुः **बृहद्** इत्यादि. **षष्ठे** इति काण्वपाठाभिप्रायेण, माध्यन्दिनानां चतुर्थे दर्शनाद्. मन्त्रार्थस्तु यस्मिन् पञ्चादयः आकाशान्ताः प्रतिष्ठिता तम् आत्मानमेव ब्रह्म अमृतं विद्वान् अन्यो जीवः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

देवानाम् आदित्यो मधुं तं दृष्ट्वैव तृप्यन्ति वाचः सर्वार्थबोधकत्वाद् धेनुत्वं पृथिव्याः सर्वसस्योत्पादकत्ववद् बोध्यं पञ्चाग्निविद्यायां छान्दोग्ये स्पष्टम्. **तथा प्रकृते** इति. यथा साङ्ख्यमते आदित्ये चक्षुषो अधिदैवतत्त्वं सिद्धमेव इति मधुत्वं वक्तुं न शक्यते इति मधुविद्याश्रुतिविरोधपरिहारार्थं विद्यायाः कल्पनोपदेशो यथा भगवद्भिः अङ्गीक्रियते तथा प्रकृतेऽपि आद्या सृष्टिः कल्पनया 'अजा'शब्देन उच्यते इति अर्थः.

मन्त्रान्तरे साङ्ख्याशङ्कापरिहारार्थं सङ्ख्योपसंग्रहाधिकरणम् आहुः **न सङ्ख्योपसंग्रहाद्** इति. **पुनः** इति उक्त्या पूर्वाधिकरणशेषो वा. अस्यैव पञ्चजनाधिकरणत्वं सञ्ज्ञान्तरं बोध्यम्. सूत्रावतरणम् आहुः **मन्त्रान्तरेण** इति. विषयवाक्यं दर्शयन्ति **यस्मिन्** इति. ''**यस्मिन् ब्रह्मणि एते प्रतिष्ठिताः तम् आत्मानम् एवं ब्रह्म अमृतं विद्वान् अन्यो जीवो अमृतो भवति**'' (   ) इति शेषः. अस्मिन् मन्त्रे 'पञ्च'-'पञ्च'शब्दश्रवणेन पञ्चविंशतितत्त्वबोधनाद् मन्मतस्य श्रौतत्वम् इति मूढग्राहरूपां

यद्यपि अत्र पञ्चजनाः पञ्च उच्यन्ते, न पञ्चानां पञ्चगुणत्वम्, समासानुपपत्तेः.

तथाहि. आद्यः ‘पञ्च’शब्दः संख्यावाची, संख्येयवाची वा? आद्ये पञ्चसंख्यायाः एकत्वाद् न षष्ठीसमासः. संख्यायां संख्याभावाच्च. संख्येयपरत्वे

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अमृतो मुक्तो भवति इति शेषः. **न षष्ठी** न भेदसमासः, सप्तमी सोऽपि न इति आहुः **संख्यायाम्** इत्यादि. **संख्येयपरत्वे** पञ्चत्वविशिष्टबोधकत्वे. **द्वितीयस्य संख्यात्वे**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

साङ्ख्यानाम् आशङ्कां विशदयन्ति **यद्यपि** इति. **अत्र** अस्मिन् मन्त्रे. **उच्यन्ते** इति. ‘‘पञ्च पञ्चजनाः’’ इति वाक्येन इति शेषः. ननु पञ्चद्वयघटितम् एकं वाक्यम् इति आह **न पञ्चानाम्** इति.

‘पञ्चपञ्च’ इत्यत्र पञ्चानां पञ्च इति षष्ठीसमासः चेत् साधुत्वं स्याद् वाक्यस्य सएवतु न सम्भवति इति विशदयन्ति **तथाहि** इत्यादिना. **एकत्वाद्** इति. सङ्ख्यावाचक‘पञ्च’शब्दस्य एकवचनान्तत्वम् अवश्यं वक्तव्यमिति न ‘पञ्चानाम्’ इति षष्ठीसमासः इति अर्थः. ननु ‘पञ्च’शब्दस्य सङ्ख्यावाचकत्वमेव असिद्धम्, ‘‘**आदशतः सङ्ख्याः सङ्ख्यया**’’ (अमरको. २।९।८३) इति वार्तिकाद् अष्टादश-पर्यन्तसङ्ख्यायाः सङ्ख्येयवाचकत्वाद् आद्येति असङ्गतम् इति चेद्, न, धर्मप्रधाननिर्देशपरत्वेन एकादिशब्दानाम् एकत्वादिसङ्ख्यावाचकत्वं तत्रैव व्यवस्थापितम्. इयान् परं विशेषो ‘‘**विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः सङ्ख्याः सङ्ख्येयसङ्ख्ययोः**’’ (तत्रैव२।९।८३) इत्यनेन वचनेन एकोनविंशत्यादिशब्दानां सङ्ख्या-सङ्ख्येयोभयपरत्वं सर्वदा एकवचनान्तत्वं च अष्टादशपर्यन्तैकादिशब्दानान्तु सङ्ख्येयघटादिपरत्वमेव सर्वदा एकवचनान्तत्वमपि न भवति इति ‘‘एको घटः’’ ‘‘द्वौ घटौ’’ ‘‘त्रयो घटाः’’ इति विशेष्यसमानवचनकत्वं बोध्यम्. एवञ्च सामान्यतः सङ्ख्यायाः एकत्वात् तद्वाचक‘पञ्च’शब्दस्य नित्यैकवचनान्तत्वात् ‘‘पञ्चपञ्च’’ इत्यत्र पञ्चानां पञ्च इति न षष्ठीसमासः इति भावः. ननु ‘दारा’ इत्यत्र बहुत्वम् अविवक्षितं यथा, तथा अत्रापि अविवक्षया ‘‘पञ्चसु पञ्च’’ इति सप्तमी समासएव अस्तु इत्यतः आहुः **सङ्ख्यायाम्** इति. ‘‘गुणे गुणानङ्गीकाराद्’’ इत्यपि बोध्यम्. द्वितीयदूषणम् आहुः **सङ्ख्येये**ति. **पञ्चत्वमेव** इति. पञ्चसु सङ्ख्येयेषु घटादिषु पञ्चसङ्ख्या इति अर्थलाभेन पञ्चत्व-सङ्ख्यायाएव लाभः, नतु

द्वीतीयस्य संख्यात्वे *पञ्चत्वमेव पूर्ववत् चेद् अनन्वयः, विधायकाभावाच्च. अतो वीप्सा. पञ्चजनसञ्ज्ञाविशिष्टानां वा पञ्चत्वम् इति यथासम्भवम् अर्थः. तथापि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पञ्चत्वबोधकत्वे, **संख्यात्वमेव*** पौनरुक्त्येन आकांक्षाभावाद् अबोधकत्वमेव. **पूर्ववच्चेद्** द्वितीय'पञ्च'शब्दस्यापि संख्यावाचकत्वं चेद्. **अनन्वयः** पौनरुक्त्येन अनन्वयः इति अर्थः. **विधायकाभावाच्च** उद्देश्यतावच्छेदकविधेययोः ऐक्ये उद्देश्य-विधेयभावासम्भवाच्च इति अर्थः. **वीप्सा** उभाभ्याम् एकार्थप्रतिपादिका.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

पञ्चविंशतिसङ्ख्यायाः साङ्ख्यमताभिप्रेतायाः इति अर्थः. ननु पूर्वकल्पे आद्यस्य सङ्ख्यापरत्वे द्वितीयस्य सङ्ख्येयपरत्वमेव उच्यते तदापि आह **पूर्ववद्** इति. **पूर्ववत्** षष्ठीसमासः सप्तमीसमासः चेद् इति अर्थः. **अनन्वयः** इति.षष्ठीसमासे पञ्चसङ्ख्यासम्बन्धी सङ्ख्येयम् इति अर्थः. सम्बन्धश्च समवायः. एवञ्च सङ्ख्येयवाचक'पञ्च'पदस्य सङ्ख्याविशिष्टे सङ्ख्येये शक्तिस्वीकारेण ततएव सङ्ख्याबोधे जाते पुनः सङ्ख्यावाचकपूर्वपदस्य प्रयोजनाभावाकाङ्क्षाभावेन अनन्वयः. सप्तमीसमासेतु सङ्ख्यायां सङ्ख्येयाभावाद् उत्तरपदस्य अनन्वयः इति अर्थः. ऋजवस्तु उभयपदस्य सङ्ख्येयपरत्वेऽपि आहुः **पूर्ववद्** इति. यथा पूर्वपदस्य सङ्ख्येयपरत्वं तथा उत्तरपदस्यापि सङ्ख्येयपरत्वं चेद् इति अर्थः. **अनन्वयः** इति. उभयपदस्य सङ्ख्येयपरत्वे ''घटो घटः'' इतिवद् आकाङ्क्षाभावाद् अनन्वयः इति आहुः. ननु अत्र ''असूर्यम्पश्या राजदाराः'' इतिवद् असमर्थसमासाश्रयणे को दोषः? इत्यतः आहुः **विधायके**ति. तत्रतु **''असूर्यललाटयोर्दर्शितपोः''** (पाणि.सू.३।२।३६) इति सूत्रमेव विधायकम्, अत्र तदभावाद् इति बोध्यम्. ननु एतावता साङ्ख्यमतावसरएव नास्ति, सूत्रे सङ्ख्योपसंग्रहाद् इति हेतुप्रयोगो व्यर्थः स्याद् इत्यतः प्रकारान्तरेण तन्मतम् आहुः **अतः** इति. **वीप्सा** इति 'पञ्च-पञ्च' इति पदद्वयेन एकार्थवाचकत्वरूपा द्विरुक्तिः इति अर्थः. वीप्सया यस्मिन् जनाः पञ्चशः पञ्च इति अर्थे जाते पञ्चविंशतिसङ्ख्यालाभो भविष्यति इति अर्थः. अस्मिन् अर्थे तत्त्वानां पञ्चविंशतित्वलाभो न जायते किन्तु जनानाम् इति अस्वरसाद् आह **पञ्चजने**ति. **पञ्चजने**ति सञ्ज्ञा निषादपञ्चमानां चतुर्णां वर्णानां वेदे प्रसिद्धा तेषु पञ्चत्वे बोधिते पञ्चविंशतिसङ्ख्यालाभो न जायते इति अस्वरसाद् आहुः **यथासम्भवम्** इति. श्रीचरणैः यथासम्भवोक्त्या इदं सूचितम्, केनापि

---

*'पञ्चत्वमेव' इति पाठस्थले 'सङ्ख्यात्वमेव' इति पाठपरिग्रहः प्रतिभाति प्रदीपे.

मूढग्राहेण संख्योपसङ्ग्रहेऽपि लक्षणार्थं केनचिद् धर्मेण पञ्चसङ्ग्राहकेण भाव्यम्. सच तेषां मते न सम्भवति. तथा सति पञ्चैव तत्त्वानि स्युः. अतः ते **नानाभावा**एव स्वीकर्तव्याः. यद्यपि भूततन्मात्राकूतिचित्त्यन्तःस्थितत्वधर्माः

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

लक्षणार्थं लक्षणाकरणार्थम्. **केनचिद्** इत्यादि. लक्ष्यतावच्छेदकेन भाव्यम् इति अर्थः. **ते** पञ्च 'पञ्चजन'शब्दबोध्याः. **नानाभावाः** प्रकृतिधर्मातिरिक्ताएव पदार्थाः इति अर्थः. नानाधर्माएव उच्यन्ते **यद्यपि** इत्यादिना. **आकूति** पदं कर्मेन्द्रियवाचकम्. **'चित्ति'**पदं ज्ञानेन्द्रियवाचकम्. **'अन्तःस्थित'**पदं महदहङ्कारप्रकृतिपुरुषमनसां बोधकम्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

प्रकारेण साङ्ख्यमतसिद्धिः न जायते, परन्तु सङ्ख्योपसंग्रहाद् इति हेतुप्रयोगः सूत्रे बादरायणैः कृतः इति तदर्थं कश्चन प्रकारो गवेषणीयः इति. सच इत्थं 'पञ्चपञ्चजनाः' इति एकं पदं, जनयति इति जनाः तत्त्वानि, तथाच पञ्च च ते जनाश्च पञ्चजनाः, पञ्च च ते पञ्चजनाश्च पञ्चपञ्चजनाः इति कर्मधारयः. अथवा पञ्चानां जनानां समाहारः पञ्चजनाः, पञ्चानां पञ्चजनानां समाहारः पञ्चपञ्चजनाः इति समाहारगर्भितः समाहारः. एवञ्च पञ्चविंशतितत्त्वानि श्रौतानि इति गूढस्य साङ्ख्यस्य आग्रहः इति भावः. तथाच न सङ्ख्योपसंग्रहाद् इति सूत्रस्य अयम् अर्थः. एवं रीत्या पञ्चविंशतिसङ्ख्यायाः संग्रहं कृत्वा, स्मार्तानां तत्त्वानां श्रौतत्वकल्पनरूपं साङ्ख्यमतं न सम्भवति. कुतः? **नानाभावात्**. अमुमेव हेतुं विशदयन्ति **तथापि** इत्यादिना. **मूढग्राहेण** मूर्खहठरूपग्राहेण दुराग्रहेण इति यावत्. सङ्ख्योपसंग्रहेऽपि पूर्वोक्तरीत्या यथाकथञ्चिद् इति शेषः. **लक्षणार्थं** लक्षणसम्पादनार्थं यथा नैयायिकमते लक्षणार्थं नवद्रव्यसाधारणः द्रव्यत्वरूपो धर्मः स्वीक्रियते, तथा तत्त्वपञ्चकनिष्ठो धर्मः स्वीकर्तव्यः. सच तन्मते अप्रसिद्धत्वाद् न सम्भवति इति अर्थः. अथवा लक्षणार्थं प्रत्यभिज्ञानार्थं यथा रूपत्वधर्मं विना रसापेक्षया पृथक्त्वप्रत्यभिज्ञानं न जायते, तथा अत्रापि तत्पञ्चकनिष्ठासाधारणधर्मं विना ''अयम् अमुकः'' इति प्रत्यभिज्ञानं न जायते इति केनचिद् धर्मेण भाव्यम् इति अर्थः. ननु मास्तु धर्माः इत्यतः आहुः **तथासति** इति. तादृशधर्मासम्भवे सति इति अर्थः. **पञ्चैव** इति. पञ्चत्वसंग्राहकतावच्छेदकतत्तद्-धर्माभाव केवलपञ्चत्वसङ्ख्यायाः तत्र सत्त्वाद् पञ्चैव तत्त्वानि स्युः इति अर्थः. **अतः** अतःकारणात्. **ते** इति. तत्त्वपञ्चकाः. **नानाभावाः** नाना अनेकाः प्रकृतित्वापेक्षया भिन्नाः भावाः धर्माः एषां एतादृशाः तत्त्वपञ्चकाः स्वीकर्तव्याः इति अर्थः. ननु अस्त्येव भूतत्वादयः इति आशङ्क्य परिहरन्ति **यद्यपि** इति. **भूते**ति. भूतत्वं पञ्चभूतनिष्ठो धर्मः,

वक्तुं शक्यन्ते तथापि न ते तथा उक्तवन्तः. “**मूलप्रकृतिरविकृतिर् महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त, षोडशकश्च विकारो न प्रकृतिर् न विकृतिः पुरुषः**” (सांख्यका.३) इति अन्यथा उपगमात्, पुरुषे वैलक्षण्याभावप्रसङ्गश्च. किञ्च न अयं श्रुत्यर्थः इति श्रुतावेव प्रतीयते. अतिरेकाद् “**आकाशश्च**” (बृहदा.उप. ४।४।१७) इति. ‘**च**’काराद् आत्मा “**यस्मिन्**”(तत्रैव४।४।१७) इति अधिकरणत्वेन उक्तः. तस्माद् न अनेनापि मन्त्रेण तन्मतसिद्धिः।।११।।

प्राणादयो वाक्यशेषात्।।१२।।

ननु अवश्यं मन्त्रस्य अर्थो वक्तव्यः. तदनुरोधेन लक्षणयापि

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

न तथा उक्तवन्तः इति न तथा पञ्चविंशतिसमुदायं ते अङ्गीकुर्वन्ति इति अर्थः. तेषां मते विभाजकधर्मचतुष्टयं प्रदर्श्यते **मूले**त्यादिना. तथाच प्रकृतित्व-पुरुषत्व-सप्तत्व-षोडशत्वेति चतुर्भिः धर्मैः पञ्चविंशतीनां विभागः तन्मते नतु पञ्चभिः इति स्पष्टः श्रुतिविरोधः. **पुरुषे**त्यादि. तथाच ‘**जन**’पदस्य उत्पन्नार्थबोधकतया तेन पदेन पुरुषबोधने अवैलक्षण्यं पुरुषे स्याद् इति अर्थः. **अतिरेकात्** तन्मतापेक्षया अधिकसंख्याबोधनात्. आधिक्यमेव आहुः **आकाशे**त्यादिना. तथाच आकाशात्माधिकरणानाम् आधिक्याद् न तन्मतसिद्धिः इति अर्थः।।११।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

एवं तन्मात्रात्वम्, आकूतित्वं, कर्मेन्द्रियधर्माचितित्वं, ज्ञानेन्द्रियधर्मः, अन्तःस्थितत्वं, प्रकृतिपुरुषमहद-हङ्कारमनसां धर्माः. एते धर्माः वक्तुं शक्यन्ते इति अर्थः. न वक्तुं शक्यन्ते इति निषेधयन्ति **तथापि** इति. तर्हि ते कथम् उक्तवन्तः? इत्यतः आहुः **मूले**ति. प्रकृतित्वं, प्रकृतिविकृतित्वं, विकारत्वं, पुरुषत्वं एते चत्वारएव तैः उपगमात्. अथच चतुर्णां मध्ये द्वौ एकनिष्ठौः, एकः सप्तनिष्ठः, एकः षोडशनिष्ठः, पञ्चनिष्ठः कोऽपि न भवति इति अन्यथैव उपगमाद् इति अर्थः. **जनयन्ती**ति. योगेन ‘जन’शब्दस्य तत्त्ववाचकत्वे पुरुषेऽपि जनकत्वे सिद्धे निर्लेपत्वं न स्याद् इति आशयेन दूषणान्तरम् आहुः **पुरुषेऽपि** इति. तन्मते प्रकृतिः कर्त्री पुरुषस्य निर्लेपत्वं प्रकृतिविकृत्यपेक्षया विलक्षणत्वम् इति तस्यापि ‘जन’शब्दे वाच्यत्वे वैलक्षण्यं न स्याद् इति अर्थः. सौत्रं हेत्वन्तरं विशदयन्ति **किञ्च** इति. कथं प्रतीयते? इत्यतः आहुः **अतिरेकाद्** इति. त्वदीयतत्त्वापेक्षया श्रुतौ आत्माकाशयोः आधिक्यं श्रूयते इति अर्थः।।११।।

सूत्रप्रयोजनम् आहुः **ननु** इति. **तदनुरोधेन** इति. अन्वयानुपपत्त्या लक्षणाश्रयणं

ज्योतिःशास्त्रवत् 'पञ्च-पञ्च'शब्दः पञ्चविंशतिवाचकतया परिकल्प्यः. स्पष्टमाहात्म्यार्थम् आत्माकाशयोः आधाराधेयभावः प्रदर्शितः तत्रत्ययोरेव. अतो मन्त्रे तन्मतसिद्धिः इति आशङ्क्य परिहरति **प्राणादयः** पञ्चजनाः, वाक्यशेषस्य मन्त्रार्थनियामकत्वात्. **''प्राणस्य प्राणम् उत चक्षुषः चक्षुः श्रोत्रस्य श्रोत्रम् अन्नस्य अन्नं मनसो मनः''** (बृहदा.उप.४।४।१८) इति. ननु कथम् अस्य वाक्यशेषत्वम् ? उच्यते. प्राणादयः सञ्ज्ञाशब्दाः करणवाचकाः. ते ज्ञानरूपं वा, क्रियारूपं वा कार्यं जनयन्ति स्वव्यापारेण. तत्र तेषां करणान्तरापेक्षाभावात् प्राणादीनां पुनः प्राणादिमत्त्वं बाधितं स्यात्. भगवतो माहात्म्यविरोधश्च. अतः स्वार्थनिर्वाहार्थम्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

ज्योतिःशास्त्रवद् इति. तथाच पञ्च-पञ्च विद्यन्ते येषु ते च ते जनाश्च इति एकस्य 'पञ्च'पदस्य पञ्चविंशतिसंख्यावति लक्षणया पञ्च-पञ्चजनवाक्येन पञ्चविंशतिसमुदायो अवश्यं वाच्यः इति अर्थः. **प्रदर्शितः** इति यस्मिन् पञ्चविंशतिसंख्याकानि तत्त्वानि आकाशश्च प्रतिष्ठितः तम् ''आत्मानमेव ब्रह्मामृतं विद्वान् अमृतो मुक्तो भवति इति मन्ये'' इति वाक्यार्थः प्रदर्शितः इति अर्थः. **तत्रत्योरेव** पञ्चविंशतितत्त्वसमुदायान्तर्गतयोरेव आत्माकाशयोः आधाराधेयभावप्रदर्शनार्थं पृथग् उपदेशः इति अर्थः. **तन्मतसिद्धिः** सांख्यमतसिद्धिः. **वाक्यशेषस्य** इत्यादि. 'यव'शब्दार्थनिर्णयार्थं **''वसन्ते सर्वसस्यानाम्''** इत्यादिवाक्यस्येव इति अर्थः. वाक्यशेषमेव आहुः **'प्राणस्य'** इत्यादिना. **उच्यते** इति. तथाच पञ्च-पञ्चजनशब्देन नानार्थाः उपस्थिताः तत्र निर्णायकः कः? इति आकांक्षायाम् इदमेव वाक्यं निर्णायकम् इति अर्थः. **अतः** वाक्यशेषस्य

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

प्रकृते मन्त्रार्थान्वयानुपपत्त्या ज्योतिःशास्त्रे यथा गणे लक्षणा तथा **''पञ्चपञ्च''** इति वाक्यस्य पञ्चविंशतिसङ्ख्यायां लक्षणया वाक्यार्थः कल्प्य इति अर्थः. ननु तथापि आत्माकाशयोः अतिरेकदूषणं तदवस्थम् अतः आह **स्पष्टे**ति. आत्मनः इति शेषः. **तत्र ते** इति. **तत्रत्ययोः** आत्माकाशयोः आधाराधेयभावः माहात्म्यार्थम् इति अर्थः. परिहारप्रकारम् आहुः **प्राणादयः** इति. निश्चिता इति शेषः. वाक्यशेषम् आहुः **प्राणस्य** इति. अस्य वाक्यशेषत्वांशे साङ्ख्यः शङ्कते **ननु** इति. **कथम्** इति. पूर्वोत्तरवाक्ययोः एकवाक्यतायाः अभावात् कथम् इति अर्थः. एकवाक्यतां सम्पाद्य आशङ्कां निराकुर्वन्ति **उच्यते** इति. **पुनः प्राणादिमत्त्वम्** इति. **''प्राणस्य प्राणम्''**(बृहदा.उप.४।४।१८) इत्यादिना इति विशेषः. **विरोधश्च** इति. भगवदपेक्षाया अभावे उत्तरार्धे

अन्यार्थो वर्तते पञ्चजनवाक्यस्य च. अतो बुद्धेः पञ्च वृत्तीः जनयन्ति इति प्राणादयः पञ्चजनाः. ‘‘**संशयोऽथ विपर्यासो निश्चयः स्मृतिरेव च, स्वाप इत्युच्यते बुद्धेर् लक्षणं वृत्तितः पृथक्**’’ (भाग.पुरा.३।२६।३०) इति. तेषां तत्तत्-प्रकारकं स्वकार्यजननं न स्वतः किन्तु भगवतः इति द्वयोः एकार्थत्वे सर्वं सङ्गतं स्यात्. खण्डत्वाच्च शेषत्वम्. सर्वप्रवर्तकत्वाद् भगवतो न माहात्म्यविरोधः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

युक्तार्थत्वप्रतिपादनाय भगवन्माहात्म्यबोधनाय च इति अर्थः. **स्वार्थनिर्वाहार्थं** वाक्यशेषोक्तपदार्थानां कार्यनिर्वाहार्थं पञ्चपञ्चजनशब्दस्य च अर्थनिर्णयार्थम्. **अन्यो अर्थः** उक्तार्थनिर्वाहकाधिदैविकरूपोऽपि वाक्यशेषस्य अर्थो **वर्तते. पञ्चजनवाक्यस्य** इत्येतद्वाक्यस्यापि सांख्यमतसिद्धाद् अन्यो अर्थो वर्तते. तमेव अन्यार्थं विवृण्वन्ति **बुद्धेः** इत्यादिना. **द्वयोः** वाक्य-वाक्यशेषयोः. **खण्डत्वात्** शेषि-शेषवाक्याभ्याम् अर्थबोधनैकदेशत्वाद् इति अर्थः. **सर्वप्रवर्तकत्वाद्** द्वितीय-‘प्राणा’दिशब्दैः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

‘‘**ते निचिक्युः**’’(तत्रैव) इत्यादिना भगवन्महात्म्यनिरूपणम् अस्ति इति विरोधः. तव मते ईश्वरानङ्गीकारात् सुतराम् इति अर्थः. तथाच विरोधपरिहारार्थं काचिद् उपायभूता एकवाक्यता अस्ति इति आहुः **अतः** इति. अतः कारणाद् इति अर्थः. **स्वार्थम्** इति. कार्यरूपार्थम् इति अर्थः. **अन्यार्थः** इति. अन्यश्च असौ अर्थश्च **अन्यार्थः**. क्वचिद् ‘‘अन्यो अर्थः’’ इति पाठः. ‘‘अन्ये अर्थे’’ इति पाठेतु वाक्यस्य इति षष्ठी प्रथमार्थे बोध्या इति अस्वरसः. **पञ्चजनवाक्यस्य च** इति. ‘च’कारात् वाक्यशेषस्यापि अन्यो अर्थो वर्तते इति अर्थः. पञ्चजनवाक्यस्य अर्थम् आहुः **अतो बुद्धेः** इति. प्राणादयः पञ्च, बुद्धेः पञ्चवृतीः जनयन्तीति पञ्चजनाः इति अर्थः. का वा बुद्धेः पञ्चवृत्तीः? इत्यतः आहुः **संशये**ति. ‘‘**प्राणस्य प्राणम्**’’ (बृहदा.उप.४।४।१८) इति वाक्यशेषस्य प्राणादिरूपाधिदैविकार्थभगवत्परत्वम् आहुः **तेषाम्** इति. एकार्थत्वे एकब्रह्मज्ञानरूप-प्रयोजनकत्वे सर्वं सङ्गतम् इति शेषप्राणादिवाक्येन कर्ता पञ्चजनवाक्येन च करणं बोध्यते इति ‘‘**अर्थैक्याद् एकं वाक्यं साकाङ्क्षं चेद् विभागे स्याद्**’’ (जैमि.सू.२।१।४६) इति जैमिनिसूत्रेण कर्तुं करणाकाङ्क्षा करणस्य च कर्त्राकाङ्क्षा इति तयोः साकाङ्क्षत्वेन बुद्धिवृत्तिजनको भगवानिति एकएव अर्थे बोधिते ब्रह्मज्ञानं भगवन्माहात्म्यज्ञानं च जायते इति सर्वं सङ्गतं स्याद् इति अर्थः. ननु कर्तृबोधकत्वेन प्राणादिवाक्यस्य मुख्यत्वात् शेषत्वं कथम्? इत्यतः आहुः **खण्डत्वाद्** इति. साकाङ्क्षत्वेन पूर्ववाक्यात् पृथक् प्रयोगाद् इति

तत्र ‘प्राण’शब्देन त्वक्घ्राणप्राणाः गृहीताः. रसना च अन्ने प्रतिष्ठितेति अन्नं गृहीतम्. वाक् वा तेजसि. अत्ता च अन्नं च एकत्र भवतः. सहभावित्वात् क्वचिद् एकग्रहणं, क्वचिद् उभयग्रहणम् इति. तेन एते सर्वे पञ्चैव भवन्ति अतिरिच्यते परमाकाशः. तस्मात् प्राणादयएव पञ्चजनाइति न तन्मतसिद्धिः।।१२।।

ज्योतिषा एकेषाम् असत्यन्ने।।१३।।

काण्वपाठे ‘‘**अन्नस्य अन्नम्**’’ (बृहदा.उप.४।४।१८) इति नास्ति, तदा कथं पञ्च? तत्र आह **ज्योतिषा** सङ्ख्यापूर्तिः तेषाम्. ‘‘**यस्माद् अर्वाक्**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आधिदैविकरूपैः भगवतएव सर्वत्र कार्यजननसामर्थ्यप्रदर्शनाद् इति अर्थः. **तेजसि** प्रतिष्ठितः इति अन्वयः. **एकत्र** वाक्ये. **भवतः** उपात्तौ भवतः इति अर्थः. **सहभावित्वाद्** भोक्तृ-भोज्ययोः सहभावौचित्यात्. **एकग्रहणं** ‘‘वाक्तेजसी’’त्यत्र एकग्रहणम्. **उभयग्रहणं** रसनान्नस्थले उभयग्रहणम् ।।१२।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अर्थः. ननु योगशास्त्रे येन प्राणायामादिसाधनं क्रियते चेत् तस्यैव सिद्धिः दृश्यतइति जीवस्यैव प्रवर्तकत्वम् इति माहात्म्यविरोधः स्याद् इत्यतः आहुः **सर्वे**ति. प्राणायामादि-साधने जीवप्रवर्तकत्वं भगवतएव बोध्यम् इति न कापि अनुपपत्तिः. अथवा क्वचित् ‘सर्वत्र’ इति पाठः. सर्वत्र ‘‘**प्राणस्य प्राणं चक्षुषश्चक्षुः**’’ इत्यादिना भगवतएव सर्वत्र प्रवर्तकत्वोक्तेः. ननु पञ्चप्रवर्तकत्वम् अस्तु सर्वप्रवर्तकत्वं कथम्? इत्यतः पञ्चसु सर्वनिवेशम् आहुः **तत्र** इति. **त्वगि**ति. प्राणस्य वायुरूपत्वेन तद्ग्राहकत्वचः तत्सहचरितप्राणस्य ‘प्राण’शब्द-वाच्यानाम् अपानादीनामपि ‘प्राण’शब्देन ग्रहणम् इति अर्थः. **गृहीतम्** इति. तेन रसनापि **गृहीता** इति अर्थः. **वाग्वे**ति. वानाम पाठान्तरे अत्र स्थाने ज्योतिः पठितं ज्योतिः शब्देन तेजः, वाक् तेजोमयीति वाक् तेजसि प्रतिष्ठिता इति तेजःपदेन वाक् संग्रहः इति अर्थः. **उभयग्रहणम्** इति त्वग् -घ्राणोभयोः ग्रहणम्. **तेन** इति. पूर्वोक्तानां प्राणवाक्यसंग्रहीतत्वेन चक्षुःश्रोत्रादीनां कण्ठतः उक्तत्वेन इति अर्थः. **आकाशः** इति. सच भूतानां तद्गुणानां च उपलक्षकः. तथाच एतेषां ब्रह्मणि प्रतिष्ठित-त्वोक्त्या प्राणवाक्ये प्रवर्तकत्वोक्त्या च जीवो न सिध्यति इति भावः. उपसंहरन्ति **तस्माद्** इति. **पञ्चजना** इति. योगेन इति शेषः।।१२।।

‘‘**ज्योतिषैकेषामसत्यन्ने**’’ एकेषां काण्वानां पाठे **असत्ये** असति **ज्योतिषा** सङ्ख्यापूर्तिः इति सूत्रार्थः. अन्यत् स्पष्टम्।।१३।।

संवत्सरः’’ (तत्रैव ४।४।१६) इति पूर्वपठितो मन्त्रः. तत्र ‘‘**तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिः**’’ (तत्रैव ४।४।१६) इति. अन्नस्थाने ज्योतिः ग्राह्यम्. व्याख्यानं पूर्वमेव. तस्मात् सिद्धं न[*] तन्मतस्य श्रुतिमूलत्वम्।।१३।।

इति प्रथमाध्यायचतुर्थपादे तृतीयं त्रिसूत्रं न सङ्ख्योपसङ्ग्रहाधिकरणम्।।३।।

कारणत्वेन च आकाशादिषु यथाव्यपदिष्टोक्तेः।।१४।। (१।४।४)

श्रुतेः विप्रतिषेधात् स्मृतिरेव ग्राह्या इति मतं दूरीकर्तुं श्रुतिविप्रतिषेधो नास्ति इति अधिकरणम् आरभते. तत्र श्रुतौ सृष्टिभेदा बहवः. क्वचिद् आकाशादिका. ‘‘**आत्मन आकाशः सम्भूतः**’’(तैत्ति.उप.२।१) इति. क्वचित् तेजःप्रभृतिका. ‘‘**तत् तेजो असृजत**’’(छान्दो.उप.६।२।३) इति. क्वचिद् अन्यथैव. ‘‘**एतस्माज् जायते प्राण**’’(मुण्डकोप.५।१।३) इति, ‘‘**इदं सर्वम् असृजत**’’(बृहदा.उप.१।२।५) इति च. एवं क्रमव्युत्क्रमानेकविधसृष्टिप्रतिपादकत्वाद् वस्तुनो द्वैरूप्यासम्भवाद्, ‘‘**ग्रहान्त्वा अनु प्रजा पशवः प्रजायन्ते**’’

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पूर्वमेव ‘ज्योतिः’पदेन तेजोवाचौ गृहीतव्ये मनसो अन्नमयत्वेन ‘मनः’पदेन अन्नात्तृरसना ग्राह्याः ‘चक्षुः’पदेन एकं चक्षुरेव इति पूर्वोक्ता रीतिः।।१३।।

श्रुतेः विप्रतिषेधात् परस्परविरोधात्. **स्मृतिरेव** सांख्यस्मृतिरेव. **मतं** सांख्यमतम्. **विप्रतिषेधो** विरोधः. संशयस्तु सर्वस्मृतिमूलभूता श्रुतिः अत्र निर्णायिका उत श्रुत्युपजीविका स्मृतिः वा इत्याकारकः. **अन्यथैव** इति युगपत् साक्षात्. पूर्वपक्षम् आहुः **एवम्** इत्यादिना पूर्वग्रन्थेन. **क्रमव्युत्क्रमे**त्यादि नानाविधक्रमैः नानाविधव्युत्क्रमैश्च इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अधिकरणप्रयोजनम् आहुः **श्रुतेः** इति. **विप्रतिषेधाद्** इति. परस्परविरोधाद् इति अर्थः. **मतं** साङ्ख्यं नास्ति इति बोधनाय इति शेषः. **अधिकरणम्** इति. यथाव्यपदिष्टाधिकरणं विप्रतिषेधबोधकम्. विषयवाक्यम् आहुः **आत्मनः** इति. **अन्यथैव.** साक्षाद् एकदैव साक्षाद् आहुः **एतस्माद्** इति. युगपद् आहुः **इदम्** इति. संशयस्तु विप्रतिषेधे जगत्कारणत्वबोधिका स्मृतिः वा स्मृतिकारणीभूता श्रुतिः वा इत्येवं बोध्यः. पूर्वपक्षम् आहुः **एवम्** इति. **ग्रहान्वे**ति. इदं च तैत्तिरीये षष्ठाष्टके प्रपाठके वाक्यं ज्ञेयम्. ‘‘**सोमग्रहाद् अनु पश्चाद् प्रजाः पशवश्च प्रजायन्ते**’’ (   ) इदम् अर्थवादवाक्यं यथा ग्रहस्वरूपबोधनार्थं, नतु प्रजादिकारणत्वबोधनार्थं तथा

---

[*] ‘न’ इति पुरु.पाठे नास्ति.

(तैत्ति.संहि.६।५।१०।१) इतिवत् सृष्टिवाक्यानाम्* अर्थवादत्वेन ब्रह्मस्वरूपज्ञानार्थत्वाद् अध्यारोपापवादन्यायेन न वेदाद् ब्रह्मणः कारणत्वं सिद्ध्यति. अतः परिदृश्यमानजगतः कारणान्वेषणे क्रियमाणे बाह्याबाह्यमतभेदेषु सत्सु कपिलस्य भगवज्ज्ञानांशावतारत्वात् तन्मतप्रकारेणैव जगद्व्यवस्था उचिता इति एवं प्राप्ते, उच्यते. न सृष्टिभेदेषु ब्रह्मणः कारणत्वे विप्रतिपत्तिः, सर्वप्रकारेषु तस्यैव कारणत्वोक्तेः. **आकाशादिषु कारणत्वेन** ब्रह्म यथा व्यपदिष्टमेव एकत्र, अन्यत्रापि तदेव कारणत्वेन उक्तम्. **''न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते''** (श्वेता. उप.६।८) इत्यादिनिराकरणन्तु लौकिककर्तृत्वनिषेधपरम्, तस्यैव प्रतीतेः. सर्ववैलक्षण्यार्थं वैदिकानाम् अबाधितार्थैकवाक्यत्वस्य अभिप्रेतत्वाद् इति 'च'कारार्थः. कार्यप्रकारे भेदस्तु माहात्म्यज्ञापको नतु बाधकः. बहुधाकृतिसामर्थ्यं लोकेऽपि माहात्म्यसूचकम् इति. तस्माद् न श्रुतिविप्रतिषेधात् स्मृतिपरिग्रहः इति सिद्धम्।।१४।।

इति प्रथमाध्याये चतुर्थपादे एकसूत्रं यथा व्यपदिष्टाधिकरणं चतुर्थम्।।४।।

समाकर्षात्।।१५।। (१।४।५)

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अर्थः. **तस्यैव प्रतीते**ः निषेधवाक्योत्तरार्धे **''स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च''** (श्वेता. उप.६।८) इति स्वाभाविकज्ञानक्रियाशक्तिप्रतिपादनाद् द्वितीयपादे समाभ्यधिकनिषेधाच्च लौकिककर्तृत्वनिषेधएव प्रतीयते इति अर्थः. **कार्यभेदप्रकारस्तु** नानाविधप्रकारैः नानाविधसृष्टिकरणन्तु इति अर्थः।।१४।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सृष्टिवाक्यान्यपि ब्रह्मस्वरूपज्ञानार्थानीति अर्थः. **अध्यारोपे**ति. कर्तृत्वबोधकानि अकर्तृत्वबोधकान्यपि वाक्यानि सन्ति. तत्र परमते कर्तृत्वम् अध्यारोपापवादः. तद्वद् विप्रतिषेधाद् न कारणत्वम् इति अर्थः. **वेदबाह्याबाह्ये**ति. वेदबाह्यं गौतमकारणाद् अमतं तेषां मते परमाणूनामेव जगत्कारणत्वेन प्रतिपादनाद्, अबाह्यं वेदमूलकं स्मार्तं साङ्ख्यम्.

समाधानम् आहुः **उच्यते** इति. **यथाव्यपदिष्टम्** इति. सच्चिदानन्दरूपवत्त्वेन सर्वेश्वरत्वेन यत्र यथाव्यपदिष्टं आकाशादिषु तदेव कारणत्वेन उक्तम् इति अर्थः. अध्यारोपापवादस्तु न सम्यग् इति आहुः **न तस्य** इत्यादि।।१४।।

पुनः श्रुतिविरोधाशङ्कानिवारणार्थं समाकर्षाधिकरणम् आहुः **समाकर्षात्**. सूत्रम्

---

* ''...वाक्यानि'' इति पुरु.पाठः.

पुनः अन्यथा आशङ्क्य परिहरति. ननु क्वचिद्

> ‘‘**असद् वा इदमग्र आसीत्**’’ (तैत्ति.उप.२।७) इति, क्वचित्
> ‘‘**सदेव सौम्येदमग्र आसीत्. तद्धैक आहुः असदेव इदम् अग्र आसीत्**’’ (छान्दो.उप.६।२।१),
> ‘‘**अव्याकृतम् आसीत्**’’ (बृहदा.उप.१।४।३),
> ‘‘**न असद् आसीद् नो सद् आसीद्**’’ (तैत्ति.ब्राह्म.२।८।९।३)
> ‘‘**तम् आसीत्**’’ (छान्दो.उप.६।२।१)

इत्यादिवाक्येषु ब्रह्मणोऽपि विगानं श्रूयते. ‘‘**तद्धैक आहुः**’’(छान्दो.उप.६।२।१) [*]इतिवत् पक्षान्तरं सम्भवति. नहि ‘असत्’-‘तमस्’शब्दैः ब्रह्म प्रतिपादयितुं शक्यते. ‘‘**असन्नेव स भवति**’’(तैत्ति.उप.२।६) इति बाधात्. ‘‘**आदित्यवर्णं तमसः परस्ताद्**’’(श्वेता.उप.३।८) इति च. तस्मात्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

सूत्रम् अवतारयन्ति **पुनः** इत्यादि. प्रकारान्तरेण श्रुतिविरोधम् आशङ्क्य परिहरति इति अर्थः. ब्रह्म श्रुतिमूलकम् उत तदुपजीवकस्मृतिमूलकम्? इति संशयः. पूर्वपक्षम् आहुः **ननु क्वचिद्** इत्यादिना. **विगानं** विरुद्धार्थप्रतिपादकाः शब्दाः इति अर्थः. **कर्मवद्** इति. यथा ‘‘**मलवद्वाससो अन्नं नाद्याद्**’’(तैत्ति.सं.२।५।१) इति निषिध्य ‘‘**अथो खल्वाहुः अभ्यञ्जनं वाव स्त्रिया अन्नम् अभ्यञ्जनमेव न प्रतिगृह्यं काममन्यद्**’’(तत्रैव ३।४।१८) इति पक्षान्तरे ‘अन्य’पदेन मलवद्वाससोऽपि अन्नस्य ग्राह्यता प्राप्यते तथा इति अर्थः. **बाधाद्** इति ‘‘**असन्नेव**’’(तत्रैव २।६।१) इत्यत्र यथा

गोस्वामिश्रीमद्‌गिरधरविरचितं विवरणम्

अवतारयन्ति **ननु** इति. पूर्ववदेव अत्र संशयो बोध्यः. पूर्वपक्षम् आहुः **ननु** इति. **क्वचिद्** इति. तैत्तिरीयके क्वचित् छान्दोग्ये ‘‘**न असद् आसीद्**’’(तैत्ति.ब्राह्म.२।८।९।३) इति तैत्तिरीयके ब्राह्मणे. **विगानम्** इति. वेदानां बन्दिजनत्वं वेदस्तुतौ प्रसिद्धत्वेन तन्मुखाद् विरुद्धं गानं श्रूयते इति अर्थः. यत्र कर्मणि पक्षान्तरं बोधव्यम् तत्र श्रुत्या ‘‘**तद्धैक आहुः**’’(छान्दो.उप.६।२।१) इति उच्यते कर्मकाण्डे यथा तथा अत्रापि ‘‘**प्रधानम् अव्याकृतम् आसीद्**’’(बृहदा.उप.१।४।३) इति श्रुत्या पक्षान्तरं बोद्धव्यम् इति आशयने आहुः **तद्धैकः** इति. किमर्थं पक्षान्तरम्? इत्यतः आहुः **न हि** इति. प्रथमे दूषणम् आहुः **असन्नेव** इति. ‘‘यः असद् वेद सः असन् भवति’’ इति अर्थः. द्वितीये दूषणम् आहुः **आदित्यः** इति.

---

[*] ‘इतिकर्मवत्’ इति पुरुपाठः.

कारणत्वेनापि श्रुतिविप्रतिषेधाद् ब्रह्म कारणं न इत्येवं प्राप्ते, उच्यते **समाकर्षात्.** आकृष्यते स्वस्थानात् च्याव्यत इति आकर्षः. सर्वेषु एतेषु वाक्येषु 'असदा'दिपदानां न निरात्मकत्वाद्यर्था उच्यन्ते किन्तु वैलक्षण्येन. सर्वशब्दवाच्यत्वं च सिद्धं ब्रह्मणः. यथा,

"**को अद्धा वेद ? क इह प्रावोचत्**" (तैत्ति.ब्राह्म.२।८।९।५),
"**सर्वे वेदा यत्पदम् आमनन्ति**" (कठोप.१।२।१५),
"**यतो वाचो निवर्तन्ते**"(तैत्ति.उप.२।९),
"**मनसैवानुद्रष्टव्यम्**"(बृहदा.उप.४।४।१९)

इत्यादिसर्वे विरुद्धधर्माः भगवति उच्यन्ते. एवम् अनेकविरुद्धशब्द-

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

वेत्तृनिन्दया बाधः एवम् अत्र तमःपरत्वकथनेन तमोरूपत्वस्यापि बाधः इति अर्थः. **ब्रह्म कारणं न** इति. तथाच 'अव्याकृत'पदेनैव प्रधानस्य कारणत्वेन ग्रहीतुं शक्यत्वाद् ब्रह्म कारणं न इति अर्थः. **वैलक्षण्येन** इत्यादि. तथाच असद्वैलक्षण्येन 'असच्छ'ब्दस्य समाकर्षः सूत्रेण बोध्यते, एवं एतादृशस्य अन्यस्यापि शब्दस्य समाकर्षोबोध्यः. तेषां पदानां लक्षणापि न कार्या इति आहुः **सर्वशब्दवाच्यत्वम्** इति. नच सर्वत्र ब्रह्मणः कारणत्वे वाच्ये विरुद्धशब्दोक्तिः किम्प्रयोजना इति शंक्यं, प्रयोजनस्य सत्वात्. तदेव आहुः "**को अद्धा**" इत्यादि. तथाच विरुद्धधर्मवत्त्वप्रदर्शनमेव तत्प्रयोजनम् इति भावः. तेन-तेन रूपेण ब्रह्मज्ञाने तादृशफलदानं प्रयोजनं बोध्यम्. **एवम् अनेके**त्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

समाधानम् आहुः **उच्यते** इति. **समाकर्षात्.** अर्थम् आहुः **आकृष्यते** इति. स्वस्थानात् स्वार्थात्. ननु अत्र 'असदा'दिपदानां स्वार्थो विवक्षितो न चेद् अन्यएव केचन अर्थाः स्युः इत्यतः आहुः **न निरात्मकत्वादी**ति. न आत्मभिन्नाः इति अर्थः. तर्हि को अर्थः? इत्यतः आहुः **किन्तु** इति. सद्विलक्षणत्वेन असद्विलक्षणत्वेन च सदसद्विलक्षणं सदादिपदैः सद्ब्रह्मैव अभिधीयते इति अर्थः. ननु एवं चेत् तत्पदानां सद्विलक्षणे ब्रह्मणि लक्षणा स्याद् इत्यतः आहुः **सर्वे**ति. शब्दाः इति शेषः. तल्लिङ्गाद्यधिकरणे सिद्धम् इति अर्थः. ननु अनेकविरुद्धशब्दवाच्यत्वं किमर्थम्? अतः आहुः **यथा** इति. **को अद्धा** इति. इदं तैत्तिरीये ब्राह्मणे द्वितीयाष्टके अष्टमप्रपाठके वाक्यं "**को अद्धा**"(ऋग्वेद ३।३।२४) साक्षाद् वेदः न कोऽपि इति अर्थः. वेदाः जानन्ति "**अप्राप्य मनसा सह**" (तैत्ति.उप.२।४,९) "**मनसैवानुद्रष्टव्यः**"(बृहदा.उप.४।४।१९) एते विरुद्धाः

वाच्यत्वं लोकप्रसिद्धतादृशार्थात् समाकर्षाद् अवगम्यते. **“तं यथा यथोपासते तथा भवति”**(मुद्ग.उप.३।१) इति फलज्ञापनार्थम् **“असन्नेव स भवति”**(तैत्ति.उप.२।६) इति यथा कंसादीनां मारकः. **“तद्धैक आहुः”** (छान्दो.उप.६।२।१) इत्यत्र सर्वप्रपञ्चवैलक्षण्यम्. प्रपञ्चरूपोऽपि स इति प्रथमः पक्षः. अव्याकृतम् (ब्रहदा. उप.१।४।७) असत्पक्षेण तुल्यम्. **“न असद् आसीत्”**(तैत्ति.ब्राह्म.२।८।९।३) इति मनः तदपि ब्रह्म, **“तम आसीद्”**(तत्रैव) इति अनभिव्यक्तं, कर्मणोऽपि भगवत्वात्. पूर्वकाण्डेऽपि(तत्रैव २।१।२) तस्मादेव सृष्टिः. नहि तमस्तः स्वेन

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तादृशशब्दार्थत्वाद् विरुद्धशब्दवाच्यत्वस्य तादृशार्थत्वाद् इति अर्थः. **समाकर्षाद्** विरुद्धशब्दवाच्यत्वस्य लौकिकार्थात् समाकर्षाद् इति अर्थः. **अनभिव्यक्तम्** अनभिव्यक्तं कर्म इति अर्थः. **तस्मादेव** कर्मणो जगन्मोक्षार्थं भगवद्रूपत्वादेव इति अर्थः. तथाच तादृशकर्मप्रकटनार्थं सृष्टिकरणम् इति अर्थः. अनभिव्यक्तकर्मणो भगवद्रूपत्वे युक्तिम् आहुः **न हि** इत्यादि. **तमस्तः** तमसः. **स्वेन** स्व-स्वरूपेण. **गूढत्वं**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति अर्थः. **लोके**ति. ‘सच्’छब्दस्य सत्त्वविशिष्टो अर्थः. तस्मात् प्रच्यावनाद् इति अर्थः. ननु इदं किमर्थम् उच्यते? इत्यतः आहुः **तम्** इति. **तं** भगवन्तं यः असन् वेद सः असन् भवति इति फलज्ञापनार्थं श्रुत्या उच्यते इति अर्थः. दृष्टान्तम् आहुः **यथा** इति. ननु एवं चेत् तर्हि श्रुत्या ‘असदा’दिशब्दैः ब्रह्मणो विगानं कृतं तस्य का वा गतिः? इत्यतः आहुः **तद्धैकः** इति. अधिकरणप्रारम्भे वाक्यषट्केन विगानम् इति उच्यते. तद्विगानं न सम्भवति इति आह **सर्वे**ति. तथाच अयम् अर्थः ‘असद्वा’ इति प्रथमवाक्येन ब्रह्मणः सर्वप्रपञ्चवैलक्षण्यं बोध्यते ‘सदेव’ इति द्वितीयवाक्येन सर्वप्रपञ्चरूपत्वं बोध्यते इति सदसत्पक्षद्वयं तद्धैकः आहुः इति तृतीयवाक्ये तत् ‘सदेवासदासीद्’ इत्यर्थके सर्वप्रपञ्चवैलक्षण्यं बोध्यम्. अथ च ‘सदेवेदम्’ इति वाक्योक्तः प्रपञ्चरूपोऽपि स भगवान् इति प्रथमः सत्पक्षो बोध्यः. **अव्याकृतम्** इति. चतुर्थवाक्ये सदसत्पक्षेण तुल्यं, वैलक्षण्येन “न असद् आसीद्” इति. इदं पञ्चमं वाक्यं तैत्तिरीयद्वितीयाष्टके ब्राह्मणे कर्मकाण्डे उक्तम्. तत्र ‘तमः’ शब्दवाच्यं कर्माभिधीयते इति अर्थः. ननु ब्रह्मकाण्डे तस्य किं प्रयोजनम्? इत्यतः आहुः **तदपि** इति. तत्रत्यषष्ठवाक्यतात्पर्यम् आहुः **तमः आसीद्** इति. पूर्वम् अप्रगटम्. अत्र हेतुम् आहुः **कर्मणोऽपि** इति. पूर्वम् अनभिव्यक्तः ‘तमः’शब्दवाच्यः अन्धकारो न भवति इति कर्मएव वक्तव्यम् इति आहुः **न हि** इति.

गूढत्वं लोके सम्भवति. अतः क्वचिद् विलक्षणात् क्वचिद् अविलक्षणाद् ब्रह्मणो जगत्. भगवत्त्वादेव स्वयं कर्तृकता च. सम्भवति च एकवाक्यत्वे अज्ञानाद् निराकरणं च अयुक्तम्. तस्मात् शब्दवैलक्षण्येन श्रुतिविप्रतिषेधो वक्तुं न शक्यः इति सिद्धम्।।१५।।

इति प्रथमाध्यायचतुर्थपादे पञ्चमं समाकर्षाधिकरणम्।।५।।

जगद्वाचित्वात्।।१६।। (१।४।६)

एवं शब्दविप्रतिषेधं परिहृत्य अर्थविप्रतिषेधं परिहरति. कौषीतकि-

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

लोकप्रत्यक्षाविषयत्वम् इति अर्थः।।१५।।

अधिकरणप्रयोजनम् आहुः **एवम्** इत्यादि. शब्दविरोधकृतो यो ब्रह्मणि कारणत्वप्रतिषेधः तं परिहृत्य अर्थविरोधकृतं कारणत्वप्रतिषेधम् अनेन अधिकरणेन परिहरति इति अर्थः. विषयम् आहुः **कौषीतकी**त्यादि. गार्ग्यनामा **बालाकिः** बलाकपुत्रो

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

लोकः इति उपलक्षणम्. ‘‘**तम आसीत् तमसा गूढमग्रे प्रकेतुम्**’’(तैत्ति.ब्राह्म. २।८।९।४) इति तत्रत्या श्रुतिरपि प्रमाणम् इति अर्थः. तथाच एतावता श्रुत्या सदसद्विलक्षणः अविलक्षणः भगवान् जगत्कर्ता इत्येवंरूपं गानमेव कृतं, नतु विगानम् इति भावः. **स्वयम्** इति. असहायः इति अर्थः. श्रुत्यैकवाक्यतावर्णनं श्लाघ्यम् इति आहुः **सम्भवति** इति।।५।।

जगद्वाचित्वाधिकरणस्य प्रयोजनम् आहुः **एवम्** इति. विषयवाक्यम् आहुः **कौषीतकिब्राह्मणे** इति. सर्वोऽपि षष्ठाध्यायो विषयः. अथ विषयवाक्यम्.

> **अथ गार्ग्यो ह वै बालाकिः अनूचानः संस्पष्ट आस सो अयम् उशीनरेषु संवसन् मत्स्येषु कुरुपञ्चालेषु काशीविदेहेषु इति स ह अजातशत्रुं काश्यम् एत्य उवाच ब्रह्म ते ब्रवाणीति तं ह उवाच अजातशत्रुः सहस्रं दद्मः त एतस्यां वाचि जनको जनक इति वा उ जना धावन्तीति।।१।। स होवाच बालाकिः य एव एष आदित्ये पुरुषः तमेव आहम् उपास इति तं ह उवाच अजातशत्रुः माम् एतस्मिन् समवादयिष्टाः बृहत्पाण्डरवासा अतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्धेति वा अहम् एतम् उपास इति स यो ह एतम् एवम् उपास्ते अतिष्ठाः सर्वेषां भूतानां मूर्धा भवति ।।२।। स एवैष बालाकिः य एव एष चन्द्रमसि पुरुषः तमेव अहं ब्रह्मोपास**

इति तं होवाच अजातशत्रुः माम् एतस्मिन् समवादयिष्ठाः सोमो राजान्नस्य आत्मेति वा अहम् एतम् उपास इति स यो ह एतम् एवम् उपास्ते अन्नस्य आत्मा भवति ।।३।। स होवाच बालाकिः य एव एष विद्युति पुरुष एतमेव अहं ब्रह्मोपास इति तं होवाच अजातशत्रुः माम एतस्मिन् समवादयिष्ठाः तेजस्य आत्मेति वा अहम् एतम एपास इति स यो ह एतम् एवम् उपास्ते तेजस्वी आत्मा भवति।।४।। स होवाच बालाकिः य एव एष स्तनयित्नौ पुरुष एतमेव अहं ब्रह्मोपास इति तं ह उवाच अजातशत्रुः माम् एतस्मिन् समवादयिष्ठाः शब्दस्य आत्मेति वा अहम् एतम् उपास इति स यो ह एतम् एवम् उपास्ते शब्दस्य आत्मा भवति।।५।। स होवाच बालाकिः य एव एष आकाशे पुरुषः तमेव अहम् उपास इति तं होवाच अजातशत्रुः मा–मा एतस्मिन् समवादयिष्ठाः पूर्णमप्रवर्ति ब्रह्मेति वा अहम् एतम् उपास इति स यो ह एतम् एवम् उपास्ते पूर्यते प्रजया पशुभिः नो एव स्वयं नास्य प्रजा पुराकालात् प्रवर्तते।।६।। स ह उवाच बालाकिः य एव एष वायौ पुरुषः तमेव अहम् उपास इति तं ह उवाच अजातशत्रुः मा–मा एतस्मिन् समवादयिष्ठा इन्द्रो वैकुण्ठो अपराजिता सेनेति वा अहम् एतम् उपास इति स यो ह एतम् एवम् उपास्ते जिष्णुर्ह वा पराजिष्णुः अन्यतरस्य ज्यायान् भवति ।।७।। स होवाच बालाकिः य एव एषो अग्नौ पुरुषः तमेव अहम् उपास इति तं होवाच अजातशत्रुः मा–मा एतस्मिन् समवादयिष्ठा विषासहिरिति वा अहम् एतम् उपास इति स यो ह एतम् एवम् उपास्ते विषासहिर्वा एष भवति।।८।। स होवाच बालाकिः य एव एषो अप्सु पुरुषः तमेव अहम् उपास इति तं ह उवाच आजातशत्रुः मा–मा एतस्मिन् समवादयिष्ठा नाम्नि अस्य आत्मेति वा अहम् एतम् उपास इति स यो ह एतम् एवम् उपास्ते नाम्नि अस्य आत्मा भवतीति अधिदैवतम् अथ अध्यात्मम् ।।९।। स होवाच बालाकिः य एव एष आदर्शे पुरुषः तमेव आहम् उपास इति तं होवाच अजातशत्रुः माम एतस्मिन् समवादयिष्ठाः प्रतिरूप इति वा अहम् एतम् उपास इति स यो ह एतम् एवम् उपास्ते प्रतिरूपो हैवास्य प्रजायाम् आजायते नाप्रतिरूपः।।१०।। स होवाच बालाकिः य एव एष प्रतिश्रुत्कायाः पुरुषः तमेव अहम् उपास इति तं होवाच अजातशत्रुः मा–मा एतस्मिन् समवादयिष्ठाः द्वितीयो अपग इति

वा अहम् एतम् उपास इति स यो ह एतम् एवम् उपास्ते विन्दते द्वितीयाद्वितीयवान् भवति।।११।। स ह उवाच बालाकिः य एव एष शब्दः पुरुषम् अन्वेति तमेव अहम् उपास इति तं होवाच अजातशत्रुः माम् एतस्मिन् समवादयिष्ठा असुरिति वा अहम् एतम् उपास इति स यो ह एतम् एवम् उपास्ते नो एव स्वयं नास्य प्रजा पुराकालात् सम्मोहमेति।।१२।। स होवाच बालाकिः य एव एष च्छायायां पुरुषः तमेव अहम् उपास इति तं होवाच अजातशत्रुः मा–मा एतस्मिन् समवादयिष्ठा मृत्युरिति वा अहम् एतम् उपास इति स यो ह एतम् एवम् उपास्ते नो एव स्वयं नास्य प्रजा पुरा कालात् प्रमीयते।।१३।। स होवाच बालाकिः य एवैष शारीरः पुरुषः तमेव अहम् उपास इति तं होवाच आजातशत्रुः मा–मा एतस्मिन् समवादयिष्ठाः प्रजापतिरिरिति वा अहम् एतम् उपास इति स यो ह एतम् एवम् उपास्ते प्रजायते प्रजया पशुभिः।।१४।। स होवाच बालाकिः य एव एष प्राज्ञ आत्मा येन एतत्सुप्तः स्वप्नम् आचरति तमेव अहम् उपास इति तं होवाच अजातशत्रुः मा–मा एतस्मिन् समवादयिष्ठा यमो राजेति वा अहम् एतम् उपास इति स यो ह एतम् एवम् उपास्ते सर्वं हास्मा इदं श्रैष्ठ्याय गम्यते।।१५।। स ह उवाच बालाकिः य एवैष दक्षिणेक्षन्पुरुषः तमेव अहम् उपास इति तं होवाच अजातशत्रुः माम् एतस्मिन् समवादयिष्ठा नाम्न आत्माग्निरात्मा ज्योतिष्ट आत्मेति वा अहम् एतम् उपास इति स यो ह एतम् एवम् उपास्त एतेषां सर्वेषाम् आत्मा भवति ।।१६।। स होवाच बालाकिः य एव एष सव्येक्षन्पुरुषः तमेव अहम् उपास इति तं ह उवाच अजातशत्रुः माम् एतस्मिन् समवादयिष्ठाः सत्यस्य आत्मा विद्युत आत्मा तेजस आत्मेति वा अहम् उतम् उपास इति स यो ह एतम् एवम् पास्त एतेषां सर्वेषाम् आत्मा भवतीति।।१७।। तत उ ह बालाकिः तूष्णीम् आस तं ह उवाच अजातशत्रुः एतावन्नु बालाकीति एतावद्धीति होवाच बालाकिः तं होवाच अजातशत्रुः मुषा वै किल मा संवदिष्ठा ब्रह्म ते ब्रवाणीति होवाच यो वै बालाक एतेषां पुरुषाणां कर्ता यस्य वा एतत्कर्म स वेदितव्य इति तत उ ह बालाकिः समित्पाणिः प्रतिचक्रामोपायानीति तं होवाच अजातशत्रुः प्रतिलोमरूपमेव स्याद् यत्क्षत्रियो ब्राह्मणम् उपनयीतैहि व्येव त्वा ज्ञपयिष्यामीति तं ह पाणौ अभिपद्य प्रवव्राज तौ ह सुप्तं पुरुषम् ईयतुः तं हा

ब्राह्मणे बालाक्यजातशत्रुसंवादे बालाकिः अजातशत्रवे ब्रह्मोपदेष्टुम् आगतः. आदित्यादिदक्षिणेक्षिपुरुषपर्यन्तं(कौषी.ब्राह्म.४।२-१६,१७) परिच्छिन्न

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

जातशत्रवे काशिराजाय **ब्रह्मोपदेष्टुं** स्वकीर्त्याद्यर्थं स्वतएव आगतः आदित्य-चन्द्र-विद्युत्स्तनयित्नु-वाय्वाकाशाग्न्यबादर्शच्छाया-शब्दस्वप्न-शरीरदक्षिणसव्याक्षिषु यः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अजातशत्रुः आमन्त्रयाञ्चक्रे बृहत्पाण्डरवासः सोमराजन्निति स उ ह तूष्णीमेव शिश्ये तत उ हैनं यष्ट्या विचिक्षेप स तत एव समुत्तस्थौ तं ह उवाच अजातशत्रुः क्वैष एतद्वा लोके पुरुषो अशयिष्ट क्व एतद् अभूत् कुत एतद् आगाद् इति तदु ह बालाकिः न विजज्ञौ।।१८।। तं ह उवाच अजातशत्रुः यत्र एष एतद् बालाके पुरुषो अशयिष्ट यत्र एतद् अभूद् यत एतद् अगाद् हिता नाम हृदयस्य नाड्यो हृदयात् पुरीततम् अभिप्रतन्वन्ति यथा सहस्रधा केशो विपाटितः तावद् अण्व्यः पिङ्गलस्य अणिम्ना तिष्ठन्ते शुक्लस्य कृष्णस्य पीतस्य लोहितस्येति तासु तदा भवति यदा सुप्तः स्वप्नं न कञ्चन पश्यति अथ अस्मिन् प्राण एकैकधा भवति तथा एनं वाक्सर्वैः नामभिः सहाप्यति चक्षुः सर्वैः रूपैः सहाप्येति श्रोत्रं सर्वैः शब्दैः सहाप्येति मनः सर्वैः ध्यातैः सहाप्येति स यदा प्रतिबुध्यते यथाग्नेः ज्वलतो विस्फुलिङ्गा विप्रतिष्ठेरन् एनेवमेव एतस्माद् आत्मनः प्राणा यथा आयतनं विप्रतिष्ठन्ते प्राणेभ्यो देवा देवेभ्यो लोकाः तद् यथा क्षुरः क्षुरधाने हितः स्याद् विश्वम्भरो वा विश्वम्भरकुलाय एवमेव एष प्राज्ञ आत्म इदं शरीरम् अनुप्रविष्ट आ लोमभ्य आ नखेभ्यः।।१९।। तमेतम् आत्मानम् एतम् आत्मनो अन्ववस्यति यथा श्रेष्ठिनं स्वास्तद् यथा श्रेष्ठैः स्वैः भुङ्क्ते यथा वा श्रेष्ठिनं स्वा भुञ्जन्त एवमेव एष प्राज्ञ आत्मा एतैः आत्मभिः भुङ्क्ते. यथा श्रेष्ठि स्वैरेवं वा एतम् आत्मानम् एत आत्मनो अन्ववस्यन्ति यथा श्रेष्ठिनं स्वाः स यावद्ध वा इन्द्र एतम् आत्मानं न विजज्ञौ तावद् एनम् असुरा अभिबभूवुः स यदा विजज्ञावथ हत्वा असुरान् विजित्य सर्वेषां भूतानां श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यम् आधिपत्यं पर्येति तथो एव एवं विद्वान् सर्वेषां भूतानां श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यम् आधिपत्यं पर्येति य एवं वेद य एवं वेद।।२०।। (कौषी.उप.४।१-२०)

अथ भाष्यम्. **बालाक्यजातशत्रुसंवादे** इत्यारभ्य **अनुप्रवेशश्च** इत्यन्तं

ब्रह्मोपासनानि उक्त्वा तथा निराकृते तमेव ज्ञानार्थम् उपससाद(तत्रैव ४।१८). ततः सुप्तपुरुषसमीपम् उभौ आगत्य ब्रह्मवाद्यं चक्रतुः. तत्र **''क्व एष एतद् बालाके पुरुषोऽशयिष्टः''**(कौषी.उप.४।१९) इत्यादौ जीवः प्रक्रान्तः. तस्मादेव सर्वोत्पत्तिः उक्ता. ब्रह्मणोऽपि अनुप्रवेशश्च. तत्र सन्देहः. जीवएव ब्रह्मसहितः कर्ता ब्रह्मैव वा? इति. तत्र जीवएव कर्ता, सर्वस्य जगतो ब्रह्मत्वादयः तस्य धर्मा राजत्ववद् यजमानत्ववद् वा. अस्मिन् प्रकरणे ब्रह्मोपक्रमेण जीवपर्यवसानोक्तेः. सर्वत्रैव ब्रह्मत्वेन उक्तो जीवएव कर्ता. तथा सति लोकेऽपि जीवकर्तृत्वं सहजं भवेत्, बन्ध-मोक्षव्यवस्था च. एवं सति अर्थात् प्रकृतेरेव फलिष्यति इत्येवं प्राप्ते, उच्यते **जगद्वाचित्वात्. ''एतेषां पुरुषाणां कर्ता यस्य चैतत् कर्म''** (कौषी. उप.४।१८) इति उपक्रमे 'एतत्'शब्देन जगद् उच्यते, 'पुरुष'शब्देन च जीवः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

पुरुषः तत्पर्यन्तं परिच्छिन्नब्रह्मोपासनानि उक्तवान्. **तथा निराकृते** राज्ञा बालाकि-निराकरणे कृते, **तं** राजानम्, **उपससाद**. बालाकिः **ब्रह्मवाद्यं** ब्रह्मप्रश्नोत्तररूपं, **तस्य धर्माः** ब्रह्मणः प्रविष्टत्वाद् जीवस्य धर्माः. **सहजम्** इति. तथाच प्रजापतिप्रभृतीनां कर्तृत्वं ब्रह्मणएव कर्तृत्वम् इत्याद्यपि न कल्पनीयम् इति अर्थः. **बन्धे**त्यादि. यथाकृत्यनुसारतो बन्धमोक्षव्यवस्था इति अर्थः. **प्रकृतेरेव** जीवसम्बद्धप्रकृतेरेव.

ननु कर्मणि प्राणात्मपदानां श्रवणाद् जीवप्राणयोरेव कर्तृत्वम् आस्ताम् अतः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

भाष्योक्तम् आख्यानकं विषयवाक्ये स्पष्टम्. सन्देहम् आहुः **तत्र** इति. पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र** इति. **जीवएव** ब्रह्मसहितः. ननु उपक्रमे ब्रह्मत्वम् उक्तम् अतः आहुः **ब्रह्मत्वादयः** इति. 'आदि'शब्देन बृहदादीनां संग्रहः. **राजत्ववद्** इति. एकस्मिन्नेव जीवे नियोजकत्वे राजत्वं कर्मकरणे यजमानत्वं तथा अत्रापि इति अर्थः. ननु उपक्रमस्य प्राबल्यम् अतः आहुः **अस्मिन्** इति. उपसंहारभेदे उपक्रमस्य प्राबल्यं नास्ति इति भावः. **सर्वत्रैव** इति. यत्र एतादृशोपक्रमोपसंहारः तत्र सर्वत्र इति अर्थः. **तथासति** इति. देहविशिष्टस्य अभिमानिनः वेदे कर्तृत्वे बोधिते सति इति अर्थः. देहविशिष्टस्य **सहजम्** इति. देहसहभावीति अर्थः. **व्यवस्था च** इति. भवेद् इत्यनेन अन्वयः. येन देहेन सहभावेन तत्तत्कर्मकरणे बन्ध-मोक्षयोः व्यवस्था इति अर्थः. **एवं सति** इति. अभिमानिनः कर्तृत्वे सिद्धे सति इति अर्थः. **अर्थाद्** जीवस्य प्रकृत्यभिमानेन कर्तृत्वम् इति अर्थादेव प्रकृतौ इति अर्थः. समाधानम् आहुः **उच्यते** इति.

तद् जडजीवात्मकं जगत् ब्रह्मकर्तृकम् इति हि पूर्वसिद्धम्. तदनुरोधेन अत्रापि ब्रह्मपरत्वमेव उचितं, नतु सर्वविप्लवो अश्रुतकल्पना च. अतः सुषुप्तावपि ब्रह्मण्येव लयः तस्मादेव सर्वम् इति ज्ञातव्यम्. 'प्राणात्म'शब्दवाच्यत्वन्तु पूर्वमेव सिद्धम्. तस्माद् न जीवाधिष्ठिता प्रकृतिः कारणम्।।१६।।

जीवमुख्यप्राणलिङ्गाद् इति चेत् तदव्याख्यातम्।।१७।।

किञ्चिद् आशङ्क्य परिहरति. ननु अत्र जीवएव प्रक्रान्तः. ''**क्वैषः एतद् बालाके पुरुषोऽशयिष्टः**'' (कौषी.उप.४।१९) इति. ब्रह्मतु अद्यापि न सिद्धम् एतादृशं, न एतादृशम् इति. अतः शयनोत्थानलक्षणजीवधर्मदर्शनात् तस्यैव ब्रह्मत्वं जगत्कर्तृत्वं च. तत् स्वतो अनुपपन्नं प्रकृतौ फलिष्यति. अथवा मुख्यप्राणलिङ्गमपि अत्र अस्ति. ''**प्राण एवैकधा भवति**'' (तत्रैव ४।१९) इति. सुषुप्तौ तस्यैव वृत्तिः उपलभ्यते. विद्यमानादेव सर्वोत्पत्ति-प्रलयौ. सच प्रकृत्यंशो अतो जडादेव प्रधानात् सृष्टावपि सर्वोत्पत्तिः. अतो अस्मात् प्रकरणाद् जीवद्वारा साक्षाद् वा प्रकृतेः कारणत्वम् इत्येवं प्राप्ते, उच्यते **तदव्याख्यातम्**. एतयोः उभयलिङ्गत्वमेव नास्ति इति ''**आश्रयत्वाद् इह तद्योगाद्**'' (ब्रह्मसू.१।१।३०)

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

आहुः **प्राणात्मे**त्यादि. **पूर्वमेव** प्रथमचरणएव।।१६।।

एतादृशं शयनोत्थानादिकर्तृ, **न एतादृशं** न ब्रह्मपदवाच्यम्. **सच** प्राणश्च. **एतयोः** जीवप्राणयोः. **उभयलिङ्गत्वं** सर्वोत्पत्तिप्रलयकर्तृत्वबोधनं श्रुतौ क्वापि नास्ति इति अर्थः. ननु श्रुतौ तयोः तदुभयकरणप्रतीतेः का गतिः ? इत्यतः आहुः **आश्रितत्वाद्** इत्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

जगद्वाचित्वात्. सूत्रार्थम् आहुः **एतेषाम्** इति. **उपक्रमे**. एवं रीत्या सिद्धान्तकथनोपक्रमे. **पूर्वसिद्धम्** इति. पूर्वस्मिन् अध्याये इन्द्रप्रतद्र्दनसंवादे सिद्धम्. **विप्लवः** श्रुतिविप्लवः. **अश्रुतकल्पना** इति. अश्रुतस्य अभिमानिनः कल्पना श्रुतस्य ब्रह्मणः त्यागः इति दोषः इति अर्थः. **अतः** ब्रह्मणः कर्तृत्वात्. **लयः** इति. प्राणादीनाम् इति शेषः. **सर्वम्** इति. ''**यथायतनं प्रतितिष्ठते**'' ( ) इति ज्ञातव्यम् इति अर्थः. ननु प्राणादीनां कथं ब्रह्मणि लयः? ''**प्राणएव प्रज्ञात्मा**'' ( ) इति वाक्यविरोधाद् इत्यतः आहुः **प्राणे**ति. वाक्यस्थप्राणशब्दवाच्यत्वं ब्रह्मणः पूर्वस्मिन् अध्याये इन्द्रप्रतद्र्दनसंवादे सिद्धम् इति अर्थः.।।१६।।

अत्र भाष्यं स्पष्टमेव।।१७।।

इत्यत्र सर्वमेव कार्यं भगवतएव न अन्यस्माद् इति. अतो अस्माद् ब्रह्मवादएव सिद्ध्यति, न प्रकृतिवादः।।१७।।

अन्यार्थं तु जैमिनिः प्रश्नव्याख्यानाभ्यामपि चैवमेके।।१८।।

स्वमतेन परिहारम् उक्त्वा नियतधर्मवादेनापि परिहारम् आह. स्वापप्रतिबोधौ जीवधर्माविव. चक्षुरादिलयाधारत्वं प्राणस्य इति. तस्मिन्नपि पक्षे अन्यार्थं तद्धर्मकीर्तनम्. भेदे हि तन्निराकरणम् अवश्यं कर्तव्यमिति '**तु**'शब्दः. ब्रह्मप्रतिपत्यर्थमेव जीवलयोद्गमौ. मृतिवैलक्षण्येन प्राणकीर्तनम् आश्रयब्रह्मबोधाय. कुतः एतद् अवगम्यते ? तत्र आह, उपक्रमोपसंहाराभ्यामेव अवगम्यते. ''**यो वै बालाक एतेषां पुरुषाणाम्**''(कौषी.ब्राह्म.४।१८) इति उपक्रमे मुख्यं ब्रह्मैव निर्दिष्टम्. तज्ज्ञानेन असुरजयः, सर्वेषां भूतानां श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यम्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तथाच घटरूपे एकत्वपृथक्त्वप्रतीतिवत् प्रतीतेः अत्र उपपादनं कर्तव्यम् इति ''**आश्रितत्वाद्**'' (ब्रह्मसू.१।१।३१) इति सूत्रे व्याख्यातमिति न अनुपपत्तिः काचित् ।।१७।।

स्वमतेन व्यासमतेन. **परिहारं** सांख्यमतपरिहारम्. **नियतधर्मे**त्यादि. स्वापप्रबोधरूप-नियतधर्मसम्बन्धवर्णनेनापि. **तस्मिन्** इत्यादि. तथाच स्वाप-प्रबोध-चक्षुरादि-लयनिरूपणपक्षेऽपि. **अन्यार्थमेव** ब्रह्मस्वरूपपरिचायनार्थमेव. तच्छेषत्वेनैव तन्निरूपणं नतु तेन सांख्यमतसिद्धिः इति भावः. **भेदे हि** इति. ब्रह्मसिद्धान्तमतात् सांख्यमतस्य भेदनिश्चये इति अर्थः. **तु**शब्दः इति. तथाच सांख्यमतनिरासार्थमेव **तु**शब्दो नतु पूर्वस्माद् अस्मिन् उत्कर्षबोधनाय इति भावः. **तज्ज्ञानेन** ब्रह्मज्ञानेन. **भूतानां** प्राणिनाम्. **एतद् द्वयम्** उपक्रमोपसंहारोक्तं द्वयम्. **अमुख्ये** जीवप्रकृतिस्वरूपे अमुख्ये

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

स्वशिष्याणाम् अन्येषां च साङ्ख्यमतं सम्मतं न भवति इति कथनार्थं सूत्रप्रयोजनम् आहुः **स्वमते** इति. **नियतधर्मे**ति. जीवधर्मः स्वापप्रबोधरूपः. परिहारं विवृण्वन्ति **तस्मिन्** इत्यादि. **पक्षे** इति. स्वाप-प्रबोधयोः जीवलिङ्गत्वपक्षे. **अन्यार्थम्** ब्रह्मणः आश्रयत्वात् तत्परिचायकत्वेन ब्रह्मबोधार्थम्. 'तु'शब्दस्य प्रयोजनम् आहुः **भेदे हि** इति. वेदान्तमतापेक्षया भेदे हि इति अर्थः. अन्यार्थत्वं विवृणवन्ति **ब्रह्म** इति. लयोद्गमौ मृतिविलक्षणौ स्वापप्रबोधौ. ब्रह्मवाचकत्वं 'प्राण'पदस्य इति सूचयितुम् आहुः **प्राणे**ति. हेतुसूत्रेऽपि च इति यदुक्तं तेन यद् हेत्वन्तरं ज्ञायते तद् आहुः **उपक्रमे**ति. उपसंहारे यत् फलं निर्दिष्टं तम् आहुः **तज्ज्ञानेन** इति. उपक्रमोपसंहारस्तु उक्तः,

आधिपत्यं च इति फलम्. नहि एतद्द्वयम् अमुख्ये सम्भवति, अपिच प्रश्नव्याख्यानाभ्याम्. **''क्वैष एतद् बालाके पुरुषोऽशयिष्ट''**(तत्रैव ४।१८) इति प्रश्नः. तत्र जीवस्य ज्ञातत्वाद् अधिकरणमेव न ज्ञातम्. **''यत्रैष एतद् बालाके पुरुषोऽशयिष्ट''**(तत्रैव ४।१९) इति व्याख्यानम्. न हि नाडीः ज्ञापयितुं व्याख्याति, किन्तु प्रतिज्ञातं ब्रह्म. कथम् एतद् अवगम्यते, नाडीव्यतिरिक्तः आत्मा ज्ञाप्यते? इति. तत्र आह **एवम् एके**. एके शाखिनो वाजसनेयिनः. तत्रापि दृप्तबालाकिब्राह्मणे **''स होवाच अजातशत्रुः यत्रैषः एतत् सुप्तो अभूत् य एष विज्ञानमयः पुरुषः तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानम् आदाय, य एषोन्तर्हृदय आकाशः तस्मिन् शेते''**(बृहदा.उप.२।१।१७) इत्यत्र 'आकाश'शब्दं ब्रह्म. **''सता सौम्य तदा सम्पन्नो भवति''**(छान्दो.उप.६।८।१) इति च. **''स्वं ह्यपीतो भवति''**(तत्रैव ६।८।१) इति च. तस्माद् आधारभूत-ब्रह्मज्ञापनार्थत्वाद् जीवमुख्यप्राणलिङ्गात् प्रकृतिवादः इति असङ्गतम्।।१८।।

इति प्रथमाध्यायः चतुर्थपादे षष्ठं त्रिसूत्रं जगद्वाचित्वाधिकरणम्।।६।।

वाक्यान्वयात्।।१९।। (१।४।७)

पुनः जीवब्रह्मवादेन प्रकृतिकारणवादम् आशङ्क्य निराकरोति. बृहदारण्यके चतुर्थे षष्ठे च याज्ञवल्क्य-मैत्रेयीसंवादे, **''येनाहं नामृता स्यां किमहं**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इति अर्थः. **जीवस्य ज्ञातत्वात् ''क्व एष''** इत्यत्र **''स एषः''** इति शब्देन जीवस्य ज्ञातत्वाद् इति अर्थः. प्रकटार्थम् अन्यत्।।**१८**।।

अत्र अधिकरणप्रयोजनम् आहुः **पुनर्जीवे**त्यादिना. संशयबीजन्तु पूर्वब्राह्मणे ब्रह्मणः प्रकृतत्वमात्रामृतरूपफलोत्कीर्तनं ब्रह्मणः प्रकरणित्वोपस्थापनाद् ब्रह्म–

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सूत्रस्थहेत्वन्तरं वक्तुम् आहुः **अपिच** इति. एके एवम् आहुः यदुक्तं तद् आहुः **तत्रापि** इति. शेषं सुगमम्।।१८।।

पुनः साङ्ख्यमतनिराकरणार्थं वाक्यन्वयाधिकरणम् आहुः **पुनः** इति. विषयवाक्यम् आहुः **येन** आहुः इति. अथ विषयवाक्यम्.

अथ याज्ञवल्क्यस्य द्वे भार्ये बभूवतुः मैत्रेयी च कात्यायनी च. तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव स्त्री प्रज्ञेव तर्हि कात्यायनी अथ ह याज्ञवल्क्यो अन्यद् व्रतम् उपाकरिष्यन्।।१।। मैत्रयीति ह उवाच याज्ञवल्क्य उद्यास्यन्वा

अरे अहमस्मात् स्थानाद् अस्मि हन्त ते अनया कात्यायन्या अन्तं करवाणीति।।२।। सा ह उवाच मैत्रेयी यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात् कथं तेनामृता स्याम् इति नेति ह उवाच याज्ञवल्क्यो यथैव उपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्याद् अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेति।।३।। सा ह उवाच मैत्रेयी येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवान् वेद तदेव मे ब्रूहीति।।४।। स हउवाच याज्ञवल्क्यः प्रिया बतारे नः सती प्रियं भाषस एहि आस्स्व व्याख्यास्यामि ते व्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्यासस्वेति।।५।। स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति. न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवति आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति. न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति आत्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति. न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति. न वा अरे ब्रह्मणः कामाय ब्रह्म प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवति. न वा अरे क्षत्रस्य कामाय क्षत्रं प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय क्षत्रं प्रियं भवति. न वा अरे लोकानां कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति आत्मनस्तु कामाय लोकाः प्रिया भवन्ति. न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्ति आत्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति. न वा अरे भूतानां कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति आत्मनस्तु कामाय भूतानि प्रियाणि भवन्ति. न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति. आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि आत्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेन इदं सर्वं विदितम्।।६।। ब्रह्म तं परादाद् यो अन्यत्र आत्मनो ब्रह्म वेद क्षत्रं तं परादाद् यो अन्यत्र आत्मनः क्षत्रं वेद लोकाः तं परादुर्यो अन्यत्र आत्मनो लोकान् वेद देवाः तं परादुः यो अन्यत्र आत्मनो देवान् वेद भूतानि तं परादुः यो अन्यत्र आत्मनो भूतानि वेद सर्वं तं परादाद् यो अन्यत्र आत्मनः सर्वं वेद इदं ब्रह्म इदं क्षत्रम् इमे लोका इमे देवा इमानि भूतानि इदं सर्वं यद् अयम् आत्मा।।७।। स यथा दुन्दुभेः हन्यमानस्य न बाह्याद् शब्दात् शक्नु याद् ग्रहणाय दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य वा शब्दो गृहीतः।।८।। स यथा शङ्खस्य ध्मायमानस्य न बाह्यान् शब्दान् शक्नुयाद् ग्रहणाय शङ्खस्य तु ग्रहणेन शङ्खध्मस्य वा शब्दो गृहीतः।।९।।

तेन कुर्याम्''(बृहदा.उप.४।५।४) इति विरक्तिम् उक्त्वा, ''**यदेव भगवान् वेद तदेव मे ब्रूहि**''(तत्रैव ४।५।४) इति पृष्टे ताम् अभिमुखीकृत्य, ''**न वा अरे पत्युः**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

> **स यथा वीणायै वाद्यमानायै न बाह्यान् शछब्दात् शक्नुयाद् ग्रहणाय ग्रहणेन वीणावादस्य वा शब्दो गृहीतः।।१०।। स यथा अर्द्रैधाग्नेः अभ्याहतात् पृथग्धूमा विनिश्चरन्ति एवं वा अरे अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितम् एतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो अथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राणि अनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि अस्यैव एतानि सर्वाणि निःश्वसितानि।।११।। स यथा सर्वासाम् अपां समुद्र एकायनमेवं सर्वेषां स्पर्शानां त्वग् एकायनमेवं सर्वेषां गन्धानां नासिके एकायनमेवं सर्वेषां रसानां जिह्वैकायनमेवं सर्वेषां रूपाणां चक्षुः एकायनमेवं सर्वेषां शब्दानां श्रोत्रम् एकायनमेवं सर्वेषां सङ्कल्पानां मन एकायनमेवं सर्वासां विद्यानां हृदयम् एकायनमेवं सर्वेषां कर्मणां हस्तौ एकायनमेवं सर्वेषाम् आनन्दानाम् उपस्थ एकायनमेवं सर्वेषां विसर्गाणां पायुः एकायनमेवं सर्वेषाम् अध्वनां पादौ एकायनमेवं सर्वेषां वेदानां वाग् एकायनम्।।१२।। स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेव अनुविलीयेत न हास्योद्ग्रहणायेव स्याद् यतो यतस्तु आददीत लवणमेव एवं वा अर इदं महद्भूतम् अनन्तम् अपारं विज्ञानघन एव एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येव अनुविनश्यति न प्रेत्य सञ्ज्ञा अस्तीति अरे ब्रवीमीति ह उवाच याज्ञवल्क्यः।।१३।। सा ह उवाच मैत्रेयी अत्रैव मा भगवान् मोहान्तम् आपीपिपन्न वा अहम् इमं विजानामीति स होवाच न वा अरे अहं मोहं ब्रवीमि अविनाशी वा अरे अयम् आत्मा अनुच्छित्तिधर्मा ।।१४।। यत्र हि द्वैतमिव भवति तद् इतर इतरं जिघ्रति तद् इतर इतरं पश्यति तद् इतर इतरं शृणोति तद् इतर इतरम् अभिवदति तद् इतर इतरं मनुते तद् इतर इतरं जानाति यत्र वा अस्य सर्वम् आत्मैव अभूत् तत् केन कं जिघ्रेत् तत् केन कं पश्येत् तत् केन कं शृणुयात् तत्केन कम् अभिवदेत् तत् केन कं मन्वीत तत् केन कं विजानीयाद् येन इदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयद् विज्ञातारम् अरे केन विजानीयाद् इति उक्तानुशासनासि मैत्रेयी एतावद् अरे खलु अमृतत्वमिति ह उक्त्वा याज्ञवल्क्यो विजहार ।।१५।।** (बृहदा.उप.४।५)

संशयबीजम् आहुः **यदेव** इति. एतेन ब्रह्मप्रश्ने ब्रह्मप्रकरणम्. ''**पत्युः कामाय**''(६) इत्यादि जीवप्रकरणं बीजं बोध्यम्. संशयम् उक्त्वा पूर्वपक्षम् आहुः **तत्र**

कामाय’’(तत्रैव ४।५।६) इत्यादिना अमृतत्वाय ज्ञानम् उपदिशति षष्ठे. पुनः उपसंहारेऽपि ‘‘**एतावद् अरे खलु अमृतत्वम् इति होक्त्वा याज्ञवल्क्यः प्रवव्राज**’’ (तत्रैव ४।५।१५) इति. तत्र जीवस्य प्रकरणित्वं ब्रह्मणो वा? इति संशयः. तत्र आत्मनः प्रियत्वं स्वप्रतीत्या पुत्राद्यपेक्षया बोधयन् जीवमेव उपक्रमे आत्मत्वेन वदति. तदनु तत्र दर्शनादिः विधत्ते. तेन सर्वं विदितम् इति फलम् आह. तत्र कथम् आत्मज्ञानेन सर्वज्ञानम्? इति आकांक्षायां, ‘‘**ब्रह्म तं परादाद्**’’ (बृहदा. उप.४।५।७) इत्यादिना, ‘‘**इदं सर्वं यद् अयम् आत्मा**’’(तत्रैव ४।५।७) इत्यन्तेन तस्यैव सर्वत्वम् आह.

तदनु कथम् अस्मिन् सङ्घाते आत्मज्ञानं भवति? इति आकाङ्क्षायां दुन्दुभ्यादिदृष्टान्तत्रयम् आह परम्परया बाह्याभ्यन्तर्भेदेन. यथा महाकोलाहले

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

कोटित्वोपस्थापकम् अत्र जीवस्य लिङ्गभूयस्त्वं च जीवस्य कोटित्वोपस्थापकं, **तदनु** एवं प्रतिज्ञोपपादनमुखेन तन्माहात्म्यश्रावणानन्तरम्. **दर्शना**दि ब्रह्मस्वरूपदर्शनादि. **तेन** ब्रह्मविज्ञानेन. **विदितं** विषयीकृतम् इति अर्थः. **तं** स्वात्मानं ब्रह्मत्वेन अजानन्तम्. **परादात्** अवहेलयेद् इति अर्थः. अवहेलनम् उपेक्षा.

तदनु ब्रह्मणः सर्वरूपत्व-निरूपणानन्तरम्. **सङ्घाते** देहघटकपदार्थसमुदाये. **परम्परया** इत्यादि. परम्परया बहिः अभ्यन्तरं च आत्मज्ञानाय दृष्टान्तत्रयम् इति अर्थः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति. **वदति** इति. अतएव जीवस्यैव प्रकरणित्वं प्रतिभाति इति आशयः. इदमेव विवृणोति **तदनु** इत्यादिना. **तदनु** आत्मत्वेन जीवबोधानन्तरम्. **दर्शनादी**ति. आत्मविषयकदर्शनादि **विधत्ते.** ‘‘**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः**’’(६) इति विध्यर्थकतव्य-प्रत्ययेन विधत्ते. **फलम् आह** आत्मज्ञानस्य फलम् आह. आत्मनः सर्वत्वं प्रतिपादयन्ति **तत्र** इति. विषयवाक्ये स्पष्टम्. **इदम्** इति. इदं सर्वं अयम् आत्मा इति विधीयते. **तस्यैव** जीवस्यैव.

ननु आत्मज्ञानं दुर्घटम् अतः आहुः **तदनु** इति. ननु एवं सर्वं तदैव सम्भवति आत्मज्ञानं चेत् तस्यैव दुर्घटत्वाद् इति आशङ्क्य दृष्टान्तमुखेन कथयति **तदनु** इति. आत्ममाहात्म्यश्रवणानन्तरम् इति अर्थः. ‘‘परम्परया’’ इत्यादिना दृष्टान्तत्रयम् आह इति अन्वयः. दुन्दुभ्यादीत्यादिना शङ्ख-वीणयोः परिग्रहः. तत्र परम्परया दुन्दुभिदृष्टान्तः. बाह्यभेदेन शङ्खदृष्टान्तः, आभ्यन्तरभेदेन वीणादृष्टान्तः. एतादृशं चतुर्थं ब्राह्मणम्.

दुन्दुभेः हन्यमानस्य शब्दो गृहीतो भवति, तत्र करणं दुन्दुभिदर्शनं दुन्दुभ्याधातदर्शनं वा. अनुमानद्वारा चित्ते तत्र निविष्टे तत्साक्षात्कारो भवति इति. तथा आत्मनो बोधककार्यानुसन्धाने* तत्साक्षात्कारो भवति इति.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

शब्दो गृहीतो भवति दुन्दुभिकार्यत्वेन शब्दो गृहीतो भवति इति अर्थः. **तत्र** इत्यादि. दुन्दुभिशब्दनिष्ठकार्यत्वज्ञाने. **दुन्दुभिदर्शनं** कारणदर्शनम् इति अर्थः. **आघातः** शब्दजनकदण्डसंयोगः. **अनुमानद्वारा** शब्दानुमानद्वारा. **तत्र** शब्दे. **साक्षात्कारः** शब्दमानस्य साक्षात्कारः. **तथा** अनुमानप्रकारेण. ***कार्यानुमाने** जगद्रूपकार्येण ईश्वरानुमाने.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

दृष्टान्तत्रयेण आत्मज्ञानं सुलभम् इति बोध्यम्. दुन्दुभिदृष्टान्तं विशदयन्ति **यथा** इति. **भवति** इति. इत्थं च 'दुन्दुभि'शब्दः कोलाहलाभिभावकः इति भावः. **तत्र** तादृशशब्दे. **करणम्** कारणम् इति अर्थः. ननु तादृशशब्दे दुन्दुभ्याघातस्य कारणत्वं नतु तद्दर्शनस्य इत्यतः आहुः अनुमानद्वारा इति. महाकोलाहले दुन्दुभिशब्द-श्रवणानन्तरं कस्य अयं शब्दः? इति जिज्ञासा जायते. तदनन्तरम् ''अयं शब्दो दुन्दुभ्याघातजन्यः, पूर्वश्रुतशब्द-सदृशशब्दत्वाद्, यन्नैवं तन्नैवं, यथा घटः'' इत्येवम् **अनुमानद्वारा** इति अर्थः. पूर्वं दुन्दुभ्याघातदर्शनकाले शब्दो दुन्दुभिशब्दः श्रुतो अस्ति इति ततः तादृशहेतुज्ञानेन साध्यानुमितिः सुलभा इति बोध्यं भवति इति, अनुमानानन्तरम् उद्योगे क्रियमाणे दुन्दुभिदर्शनं भवति इति अर्थः. एवञ्च दुन्दुभिदर्शनानन्तरं दुन्दुभिः तादृशशब्दकारणम् इति ज्ञानं जायते इतिकृत्वा दुन्दुभिनिष्ठकारणता दुन्दुभिदर्शने उपचर्यते इति औपचारिको अयं प्रयोगः, करणं, दुन्दुभिदर्शनम् इति भावः. एतेन अनुमानद्वारा परम्परया दृष्टान्तो बोध्यः. बाह्यभेदेन शङ्खशब्दश्रवणानन्तरं शङ्खस्य शङ्खध्मस्य वा दर्शने शङ्खशब्दे मन्द्रत्व-तारत्वज्ञानं जायते. तच्च बाह्यशब्दनिष्ठं भवति इति शङ्खशब्दोऽपि बाह्यः इति तद्गतमन्द्रत्वादिभेदकः इति बाह्यभेदज्ञानेन प्राणनिष्ठभेदज्ञानं जायते. प्राणेन यथा शङ्खे वायुः पूर्यते तथा शब्दो भवति इति. आन्तरभेदेन वीणादृष्टान्तो. यथा वीणाशब्दश्रवणानन्तरं वीणायाः वीणावादकस्य वा दर्शने अयं शब्दः केवलाङ्गुलिसंसर्गजन्यो न भवति, किन्तु, आन्तरमनोभेदजन्यः, मनसि यथा रागादिरचना तथैव अङ्गुलिप्रेरणा जायते इत्ययं शब्दोऽपि तथैव उत्पद्यते इति आन्तरमनोभेदज्ञानं जायते इत्येवंरीत्या दृष्टान्तम् उक्त्वा दार्ष्टान्तिके योजयन्ति **तथा** इति. **कार्यानुसन्धानेन** इति. शरीरसमवेतचेष्टानुसन्धानेन इति अर्थः. **भवति** इति. मननादिना इति शेषः.

तत्र कथं सर्वत्वम्? इति आकांक्षायां ततएव उत्पन्नं सर्वं नामरूपात्मकं तस्मिन्नेव लीयते इति **‘‘स यथा’’** (बृहदा.उप.४।५।११-१२) इतिद्वयेन आह. मध्येऽपि सएव न अतिरिक्तं विशतीति, **‘‘स यथा सैन्धवघन’’** (तत्रैव ४।५।१३) इत्यनेन आह. आधेयत्वेन तावन्मात्रतानिराकरणाय आह **‘‘न प्रेत्य सञ्ज्ञा अस्ति’’** (तत्रैव४।५।१३) इति. कार्यातिरिक्तरूपं कथयितुं न शक्यते इति तत्र विशेषाकाङ्क्षायाम् अतिरिक्ताकथने वञ्चकत्वम् आशङ्क्य तत्परिहाराय आह **‘‘स होवाच’’**(तत्रैव४।५।१४) इति. **‘‘अविनाशी’’**(तत्रैव) इत्यनेन कार्यवैलक्षण्यं सिद्धवत्कारेण उक्त्वा विषयसम्बन्धेन संसारम् आह **‘‘मात्रासंसर्गस्त्वस्य**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तत्र ब्रह्मणि. **अस्य** जीवरूपब्रह्मणः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ननु भवतु एवंरीत्या आत्मज्ञानं तथापि भगवति सर्वत्वं कथम्? इत्यतः आहुः **तत्र** इति. **लीयते** इति. यथा घटात् पूर्वम् अनन्तरमपि मध्येऽपि मृद् तथा अत्रापि बोध्यम् इति भावः. **द्वयेन** इति. **‘‘स यथा आर्द्रेन्धनाग्नेः’’** (११) इति. **‘‘स यथा सर्वासाम् अपाम्’’** (१२) इति कण्डिकाद्वयेन इति अर्थः. **विशती**ति. न अतिरिक्तम् आश्रयत्वेन विशति इति अन्वयः. अत्र दृष्टान्तम् आहुः **स यथा** इति. ‘घन’शब्देन जात्यन्तरं न भवति इति सूचितम्. यथा यो घनः. ननु एवं चेत् तर्हि **‘‘एतेभ्यो भूतेभ्यः’’** (१३) इति वाक्येन शरीरसत्तादशायां प्रतीयमानत्वाद् अनन्तरम् अदर्शनं प्राप्नोति इति उक्तं, तथाच कालपरिच्छिन्नः स्याद् इत्यतः आहुः **तावन्मात्रता** इति. कार्योत्पत्त्यनन्तरं यावद्विनाशपर्यन्तं प्रतीयमानता-निराकरणाय इति अर्थः. **प्रेत्य** इति. **प्रेत्य** भूतलयोत्तरं, **सञ्ज्ञा** भगवत्कृपया अज्ञाननाशे नामरूपात्मकं सम्यक्प्रकारेण ज्ञापकं नास्ति इति अर्थः. तथाच कार्यं शरीरादि-नामरूपात्मकमेव तस्य ज्ञापकं रूपं वक्तुं शक्यते, शरीरलयोत्तरन्तु न शक्यते इति एतावन्मात्रमेव नतु सएव नास्ति इति लयोत्तरं विद्यमानत्वात् कालापरिच्छिन्नः इति भावः. एतदेव आहुः **न शक्यते** इति. नतु सएव नास्ति इति अर्थः. **तत्र** इति. सः कः? इति विशेषाकाङ्क्षायाम् इति अर्थः. **अतिरिक्ताकथने** जगदतिरिक्ताकथने. **वञ्चकत्वम्** इति. विशेषरूपेण कथनायोग्यो वा, अथवा सएव नास्ति इति वा मोहे संवृत्ते अकथने वञ्चकत्वम् इति अर्थः. **कार्यवैलक्षण्यम्** इति. जगदपेक्षया वैलक्षण्यम् अविनाशित्वम् अनुच्छित्तिधर्मत्वम्. **सिद्धवत्कारेण.** सिद्धवद् निर्देशेन. **संसारम् आह** इति. पुनः तस्यैव संसारम् आह इति अर्थः. यदि सः नित्यो न

भवति’’(तत्रैव) इति. विशेषतस्तु अकथने हेतुम् आह ‘‘**यद्वैतम्**’’ (तत्रैव ४।५।१५) इत्यादिना यावत् समाप्ति. चक्षू रूपमेव पश्यति, न आत्मानम्.

ननु रूपमपि आत्मा इति चेत् ‘‘**तत्रापश्यन् वै तद् द्रष्टव्यत्वेन न पश्यति**’’(तत्रैव४।५।१४). न हि द्रष्टृस्वरूपं दृश्यज्ञानेन ज्ञातं भवति, अतद्रूपत्वात्. एवं द्रष्टृदृश्यव्यवहारे अज्ञानावस्थायां विशेषतः तज्ज्ञानम् अशक्यम्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

‘‘**यद्वैतम्**’’ इति ‘‘**यद्वा एतन्न पश्यति पश्यन् वै तद् द्रष्टव्यं न पश्यति, नहि द्रष्टुर्दृष्टेः विपरिलोपो विद्यते विनाशित्वान्नतु द्वितीयम् अस्ति ततो अन्यद् विभक्तं यत् पश्येद्**’’ (बृहदा.उप.४।३।२३) इति.

द्रष्टव्यत्वेन द्रष्टव्यत्वेन रूपेण इति अर्थः. **अतद्रूपत्वाद्** दृश्यस्य अंशत्वेन द्रष्टृरूपत्वाभावाद् दृश्ये द्रष्टुतद्धर्माभावाद् इति फलितम्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

स्यात् तर्हि पुनः तस्य मात्रासंसर्गो न स्याद् इति अर्थः. मात्रासंसर्गः तस्य भवति इति माध्यन्दिनपाठः. तेन प्रचरदवस्थकाण्वपाठे तादृशवाक्याभावाद् न इदं मैत्रेयीब्राह्मणवाक्यम् इति न भ्रमितव्यम्. ननु पद्यय (तद्द्वयम्?) अविनाशी चेत् तर्हि विशेषरूपेण कुतो न कथ्यते? इत्यतः आहुः **विशेषतस्तु** इति. **चक्षुः** इति. भेददृष्टौ सत्यां चक्षू रूपमेव पश्यति इति अर्थः.

ननु ‘‘**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**’’ (छान्दो.उप.३।१४।१) इतिवाक्याद् रूपदर्शनमेव ब्रह्मदर्शनम् इति आशयेन शङ्कते **ननु** इति. निराकुर्वन्ति **तत्र** इति. तद् ब्रह्म अपश्यन् **वै** इति निश्चयेन. ननु नहि ‘‘**द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यते अविनाशित्वाद्**’’ (कौषी. ब्राह्म.३।३) इति श्रुत्या द्रष्टुः आत्मनः दृष्टेः सकाशाद् विपरिलोपो अदर्शनं न विद्यते तस्य नित्यत्वाद् इत्यनेन सर्वदा दृग्विषयत्वं तस्य इति कथम् एतद् इत्यतः आहुः **तद्द्रष्टव्यत्वेन** इति. तद् ब्रह्म द्रष्टव्यत्वेन ब्रह्मत्वेन पश्यति किन्तु रूपत्वेन सर्वं ब्रह्म इति ज्ञानाभावात्. ननु तथापि रूपं ब्रह्म तद्विषयकं ज्ञानं जातमेव इत्यतः आहुः **नहि** इति. **द्रष्टृस्वरूपम्** आत्मस्वरूपम्. **दृश्यज्ञानेन** रूपज्ञानेन अतद्रूपत्वाद् इति. रूपत्वस्य ब्रह्मत्वरूपत्वाभावाद् रूपं ब्रह्मस्वरूपं भवति, परन्तु रूपत्वं ब्रह्मत्वस्वरूपं न भवति इति भेददृष्टौ सत्यां ब्रह्मत्वेन रूपज्ञानाभावाद् विशेषरूपेण ब्रह्मोपादानं कर्तुं न शक्यते इति भावः. ज्ञाने सति भेददृष्टौ विलीनायामपि विशेषरूपेण कथनम् अशक्यम् इति आहुः **एवम्** इति.

उक्त्वा ज्ञानोत्तरं कर्मकर्तृभावएव नास्ति इति आह **''यत्र वा अन्यदिव स्याद्''** (तत्रैव४।५।१५) इत्यादिना. इदमेव हि ज्ञानम् अमृतत्वम् इति. तत्र आदिमध्यवसानेषु जीवप्रकरणम् इत्येव प्रतिभाति. तस्य ब्रह्मता जगत्कर्तृत्वम् इति उत्कर्षः. नतु तस्माद् अन्यद् ब्रह्मत्वेन वक्तुं युक्तम्, अर्थविरोधाच्च. तस्माद् वेदे सृष्टिवाक्यानाम् एतन्न्यायेन अन्यार्थत्वाद् न ब्रह्म जगत्कारणमिति प्रकृतिवादएव युक्तः इत्येवं प्राप्ते उच्यते **वाक्यान्वयात्.** इदं वाक्यं भगवत्येव अन्वेति, न अत्र जीवप्राधान्यगन्धोऽपि. सर्वत्र भगवदन्वयेनैव जीवस्यापि प्रियत्वम्, तस्यैव

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

''यत्र वा'' इत्यादि. **''यत्र वा अन्यदिव स्यात् तत्र अन्यो अन्यत् पश्येद्''** (तत्रैव ४।३।३१) इत्यादि. **तस्य** जीवस्य. **ब्रह्मता** ब्रह्मत्वोक्तिः. **जगत्कर्तृत्वम्** इति जगत्कर्तृत्वहेतोः इति अर्थः. **अर्थविरोधाद्** जीवप्रतिपादकश्रुत्यर्थविरोधाद् इति अर्थः. **अन्यार्थत्वात्** प्रकृतिप्रतिपादकत्वात्. **भगवत्येव** कारणत्वेन अभिमते भगवत्येव इति अर्थः. **भगवदन्वयेनैव** भगवत्तादात्म्येनैव. ननु **''मात्रासंसर्गस्त्वस्य भवति''** इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

यत्र वा इति. विषयवाक्ये स्पष्टम्. **इदमेव हि** इति. **''सर्वम् आत्मैव अभूद्''** इत्यादिज्ञानोत्तरं निर्विषयम् आत्मस्वरूपज्ञानम् इति अर्थः. पूर्वपक्षी एतावता प्रबन्धेन विषयवाक्यार्थम् उक्त्वा स्वाभिप्रायं वदति **तत्र** इति. **आदी**ति. **''येन अहं न अमृता स्याम्''** (बृहदा.उप. २।४।३) इत्यादि अमात्रासंसर्गस्तु अस्य भवति इति मध्यम्, इदमेव हि इत्यनेन आत्मज्ञानम् अवसानम्, एतादृशस्थलत्रयेषु इति अर्थः. ननु ब्रह्मवाक्यमपि श्रूयते जगत्कर्तृत्वमपि श्रूयते इत्यतः आहुः **उत्कर्षः** इति. उत्कर्षस्तवनम्. तथाच जीवस्य उत्कर्षार्थम् इदं द्वयम् इति अर्थः. **अर्थविरोधाद्** इति. **''येन अहं न अमृता स्याम्''** इति जीवएव अर्थः, उपक्रमे तस्य विरोधाद् इति अर्थः. यद्वा, ब्रह्म हि अविकारिकार्यरूपेण कथं विकुर्याद् इति अर्थविरोधाद् इति अर्थः. **प्रकृतिवादः** इति. जीवपरत्वे सिद्धे जगत्कारणत्वस्य जीवे अभावाद् जीवाधिष्ठितप्रकृतौ सिध्यति इति प्रकृतिवादः इति अर्थः.

सिद्धान्तम् आहुः **उच्यते** इति. **वाक्यान्वयात्.** वाक्ये अन्वयः तस्मात्. **इदम्** इति. कारणत्वेन इति शेषः. **न अत्र जीवे**ति. सर्वत्र उपनिषद्वाक्ये ब्रह्मणएव प्राधान्येन अन्वयो दृश्यते इत्यत्रापि तस्यैव अन्वयः इति भावः. ननु **''आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति''** (बृहदा.उप.४।५।६) इत्यादौ जीवस्य प्रियत्वं कथम्? इत्यतः आहुः **सर्वत्र** इति.

सुखरूपत्वात्. सर्वोपनिषदनुरोधेनैव अस्यापि अर्थस्य वक्तुम् उचितत्वात्. ‘‘**तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति**’’(श्वेता.उप.३।८), ‘‘**आन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते**’’(तैत्ति.उप.३।६), ‘‘**सर्वएव आत्मानो व्युच्चरन्ति**’’(बृहदा.उप.२।१। २०) ‘‘**एष ह्येवानन्दयाति**’’ (तैत्ति. उप.२।७) इत्यादिश्रुतिसहस्रैः निःसन्दिग्धैः ब्रह्मणः स्वरूपं कार्यम् अंशाश्च प्रतिपादिताइति इदमपि वाक्यं तत्परमेव उचितम्, सर्वव्यवहारस्य तन्मूलकत्वेन पूर्वम् उक्तत्वात्. विषयस्पर्शो विज्ञातृत्वमपि तस्यैव. एवं सति सर्वमेव सङ्गतं भवेत्. अतो वाक्यान्वयाद् न जीवपरत्वं येन प्रकृतिवादः स्याद् इति।।१९।।

प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्गम् आश्मरथ्यः।।२०।।

नियतधर्मवादिनामपि मतेन प्रकृते सिद्धान्तं वक्तुं पक्षान्तराणि आह.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

विषयसंसर्गरूपेण लिङ्गेन अत्र जीवएव वक्तव्यो अन्यथा श्रुतिविरोधापत्तिः अतः आहुः **सर्वे**त्यादि. **पूर्वम्** इति जीवमुख्यप्राणलिङ्गसूत्रे. तथाच जीवस्य ब्रह्माश्रितत्वाद् जीवधर्माः ब्रह्मणि उच्यन्ते एवं विषयस्पर्शोऽपि उपपद्यते नतु एतावता जीववाक्यत्वं वक्तुं शक्यं, विज्ञातृत्वन्तु ब्रह्मधर्मएव, ‘‘**नान्यो अतो अस्ति द्रष्टा**’’(तत्रैव३।७।२३) इति श्रुतेः. तदंशत्वाद् जीवेऽपि सः धर्मोभासतां न तावता जीववाक्यत्वम् आयाति. **एवं सति** सर्वव्यवहारस्य ब्रह्ममूलकत्वे सिद्‌धे सति. **वाक्यान्वयाद्** ब्रह्मण्येव वाक्यान्वयात्।।१९।।

सूत्राणि अवतारयन्ति **नियते**त्यादि. अत्र उक्तं प्रियत्वं जीवधर्मएव इति वादिनां **मतेन** मैत्रेयीब्राह्मणे प्रकृतिवादनिरासरूपं **सिद्‌धान्तं वक्तुं** सम्मत्यर्थं **पक्षान्तराणि आह**

गोस्वामिश्रीमद्‌गिरधरविरचितं विवरणम्

ननु एतस्य वाक्यस्य जीवपरत्वे सामञ्जस्यं प्रतिभाति इत्यतः आहुः **सर्वे**ति. सर्वोपनिषदो ब्रह्मपरत्वे सिद्धे एकस्यैव अस्य वाक्यस्य जीवपरत्वम् अनुचितम् इति भावः. एतदेव आहुः **तमेव** इति. **पूर्वम्** इति. जीवमुख्यप्राणलिङ्गसूत्रे. ननु उक्तं मात्रास्पर्शस्तु अस्य भवति इतिवाक्येन जीवपरत्वमेव प्रतिभाति इत्यतः आहुः **विषये**ति. विषयस्पर्शवत्त्वं जीवधर्मः सच जीवस्य ब्रह्माश्रितत्वाद् ब्रह्मण्यपि उच्यते, एवं विज्ञातृत्वं ब्रह्मधर्मः, सच ब्रह्मांशत्वाद् जीवेऽपि भासते, उभयथापि न अस्य जीववाक्यत्वम्. एतदेव आहुः **तस्यैव** इति. ब्रह्मणएव इति अर्थः. **सर्वम्** इति. सर्वोपनिषद्वाक्यम् इति अर्थः।।१९।।

अग्रिमसूत्राणां प्रयोजनम् आहुः **नियतधर्मे**ति. मैत्रेयीब्राह्मणोक्तं प्रियत्वं जीवधर्मः इति अर्थः. **प्रकृते** मैत्रेयीब्राह्मणे. **सिद्धान्तं** साङ्ख्यनिराकरणेन स्वमत–

तत्र ब्रह्मवादैकदेशिवादाः सन्ति. तत्र जीवो नाम स्वस्य भोगनिष्पत्त्यर्थं स्वांशो भगवता कृतो विस्फुलिङ्गवद् इति **आश्मरथ्यो** मन्यते. अनादिसिद्धएव जीवः चैतन्यमात्रं शरीरादिसङ्घाते प्रविष्टः इति चिति तन्मात्रेण प्रवेशे च मोक्षः इति च औडुलोमिः आचार्यः. काशकृत्स्नस्तु आसक्त्या विषयभोक्तृरूपं भगवतएव जीवः इति. तेऽपि स्वमतानुसारेण अत्र परिहरन्ति. तत्र पुत्रादिप्रियसहवचनाद् जीवप्रकरणमेव एतद् इति आशङ्क्य जीवोपक्रमस्य अन्यत् प्रयोजनम् इति आह. **प्रतिज्ञासिद्धेः** इति षष्ठी. तस्याः **लिङ्गम्** अंशत्वाद् जीवस्य तदभेदेन उपक्रमः प्रतिज्ञासिद्धेः लिङ्गं भवति. एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं प्रतिज्ञा. तस्यैव अग्रे व्युत्पाद्यमानत्वात्. तस्याः एतत् साधकम्. यथा जीवो भगवान् एवं जड इति. एवम् आश्मरथ्यो मन्यते. श्रोतव्यादिविषयस्तु भगवानेव. तस्माद् नियतधर्म-

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

इति अर्थः. **स्वस्य** भगवतः. **चिति** तन्मात्रेण सङ्घातादिसम्बन्धराहित्येन. **परिहरन्ति** सांख्यमतं परिहरन्ति. **पुत्रादी**त्यादि. पुत्रादिरूपाः ये प्रियाः लौकिकाः तत्सहवचनाद् आत्मनोऽपि लौकिकमेव प्रियत्वं प्रतीयतइति जीवएव ‘आत्म’पदेन परामृश्यते. अतो जीवप्रकरणमेव इदम् इति आशङ्क्य इति अर्थः. **षष्ठी** प्रतिज्ञायाः सिद्धेः इति षष्ठी इति अर्थः. **तस्याः** प्रतिज्ञासिद्धेः. **तदभेदेन** ब्रह्माभेदेन. **एकविज्ञानेन** इत्यादि. ‘‘**मैत्रेयि! आत्मनि वा अरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम्**’’(बृहदा.उप.४।५।६) इतिवाक्योक्तम्. तत् प्रतिज्ञासिद्धेः कथं लिङ्गम् इत्यतः आहुः **तस्यैव** इत्यादि. **तस्यैव** सर्वत्वस्यैव. **तस्याः एतत् साधकम्** इति उपक्रमे ब्रह्मणो जीवात्मत्वकथनं एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानसंसाधकम् इति अर्थः. तथाच प्रतिज्ञैव एतन्मते ब्रह्मप्रकरणत्वनियामिका इति ज्ञेयम् ।।२०।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

स्थापनरूपं सिद्धान्तम्. के ते वादाः? इत्यतः आहुः **तत्र** इति. **जीवः** इत्यन्तेन. **तेऽपि** इति. त्रयोऽपि इति अर्थः. **तत्र** त्रयाणां मध्ये. आश्मरथ्यः आह इति अन्वयः. **पुत्रादी**ति. ‘‘**न वा अरे पुत्रस्य कामाय**’’ (बृहदा.उप.४।५।६) इत्यादिना लौकिकप्रियसहवचनाद् इति अर्थः. **उपक्रमः** इति. उपक्रमे ब्रह्माभेदेन कथनम् ‘‘अरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इदं सर्वं विदितम्’’ इति वाक्योक्तसर्वविज्ञानसाधकम् इति आखण्डलार्थ. **श्रोतव्यादी**ति. ‘‘**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः**’’(पूर्ववत्) इति वाक्योक्तः इति अर्थः. तथाच सर्वविज्ञानप्रतिज्ञयैव इदं ब्रह्मप्रकरणं सिद्ध्यति इति भावः.।।२०।।

जीववादेऽपि न जीवोपक्रमो दोषः।।२०।।

उत्क्रमिष्यत एवम्भावाद् इति औडुलोमिः।।२१।।

‘लिङ्गम्’ इति अनुवर्तते. यद् अत्र जीवोपक्रमेण भगवतः श्रवणादिकम् उक्तं तत् संसारभावाद् **उत्क्रमिष्यतो** जीवस्य लिङ्गम्. मुक्तौ जीवो भगवानेव भविष्यति इति ज्ञापकम्. अन्यथा सैव कथम् अमृता भवेद्? इति. **‘इति’**शब्दो हेतौ.

स्त्रिया विश्वासार्थं गौणप्रियवैराग्यार्थं च जीवोपक्रमः कर्तव्यएव **इति औडुलोमिः** आचार्यो मन्यते. तस्माद् भिन्नजीवपक्षेऽपि न अत्र दूषणम्।।२१।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

‘लिङ्गम्’ इति अनुवर्तते. एवं कथनस्य मुक्तिप्राप्तौ लिङ्गत्वे किं गमकम्? इत्यतः आहुः **अन्यथा** इत्यादि. चिद्रूपे ब्रह्मणि प्रवेशो हि तन्मते मुक्तिः. ब्रह्मतु चिद्रूपं व्यापकमिति इदानीमपि जीवः तत्प्रविष्टएव अस्ति तथापि यथा कुसूलस्थं धान्यं ततो बहिः क्षिप्तमेव गृहस्थं भवति तथा सङ्घातान्तःस्थो जीवोऽपि ततो बर्हिभूतएव ब्रह्मप्रविष्टो भवति मुक्तः, एतदर्थबोधनार्थमेव जीवोपक्रमः इति भावः. जीवस्वरूपाज्ञाने सैव मुक्ता न स्यात्. तथाच **‘‘येनाहं नामृता स्याम्’’** (बृहदा.उप.२।४।३) इत्यादिकं तद्वाक्यमेव मुक्तौ जीवोपक्रमस्य लिङ्गत्वे गमकम् इति अर्थः.

गौणप्रियवैराग्यार्थम् एतस्य गौणप्रियत्वस्य गौणवैराग्यस्य च प्रदर्शनार्थम् इति अर्थः. **दूषणं** सांख्यमतप्रसक्तिरूपम्।।२१।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

एवम्भावाद् संसारभावाद् **उत्क्रमिष्यतो** जीवस्य इति हेतोः. अनया विद्यया सा अमृता जाता इति हेतोः. उपक्रमोक्तजीवस्यैव श्रवणादिकथनं लिङ्गं, मोक्षे भगवद्भावज्ञापकम् औडुलोमिः मन्यते इति सूत्रार्थः. अयमेव सूत्रार्थः इति आहुः **यद् अत्र** इत्यादिना.

ननु यदि इदं ब्रह्मप्रकरणं चेद् जीवोपक्रमः किमर्थम्? अतः आहुः **स्त्रिया** इति. मैत्रेय्याः. कर्तव्यः इत्यनेन अन्वयः. अनया विद्यया अहम् अमृता भविष्यामि इति विश्वासार्थम्. पुत्रादिरूपं गौणं प्रियं तद्वैराग्यर्थम् इति अर्थः. **उपक्रमः** इति. तथाच यथा मञ्जूषास्थं वस्तु ततः निष्कास्य गृहे स्थापितं यदा, तदा तदेव गृहस्थं जातं, तथा, यदा सङ्घाताद् बहिर्भूतो जीवः व्यापकीभूते ब्रह्मणि अन्तरायं विना साक्षात् प्रविशति तदा मोक्षः इति तस्य मतम्. सङ्घाताद् भिन्नत्वज्ञापनार्थं जीवोपक्रमः इति अर्थः।।२१।।

अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः।।२२।।

लिङ्गम् इत्येव. भगवतएव अवस्था जीवः इति. अतः संसारदशायामपि जीवो ब्रह्मइति न अत्र उत्क्रमणम् उपचारो वा. अन्यथा कथम् ‘‘**आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति**’’(बृहदा.उप.४।५।६) इति. न हि अन्यस्य सर्वं प्रियं भवति. मोक्षस्तु ज्ञानमेव, उत्तरत्र कर्तव्याभावात्. अवस्थया व्यवसायात् सिद्धान्ताद् विशेषः. **इति** शब्देन ‘‘**एतावद् अरे खलु अमृतत्वम्**’’ (तत्रैव ४।५।१५) इति उपसंहारो हेतुः अस्य पक्षस्य इति **काशकृत्स्नो** मन्यते. तस्माद् जीवोपक्रमो, भगवतएव अवस्थाविशेषो जीवः इत्यस्य पक्षस्य लिङ्गम्. तस्मात् मैत्रेयीब्राह्मणेनापि जीवद्वारा प्रकृतिकारणवादासिद्धिः इति सिद्धम्।।२२।।

इति प्रथमाध्याये चतुर्थपादे सप्तमं वाक्यान्वयाधिकरणम्।।७।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

जीवस्य ब्रह्मावस्थाविशेषत्वबोधनार्थं जीवोपक्रमः इत्यत्र किं गमकम्? इति अपेक्षायाम् आहुः **अन्यथा** इत्यादि. यदि जीवस्य ब्रह्मावस्थाविशेषत्वम् अत्र बोधनीयं न स्यात् तदा ‘‘**आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति**’’ (बृहदा.उप.४।५।६) इति सर्वभोक्तृत्वम् आत्मनो न वदेत्, ब्रह्मातिरिक्तस्य सर्वभोक्तृत्वाभावेन सर्वस्मिन् प्रियत्वासम्भवात्. अतः सर्वभोक्तरि आत्मनि वक्तव्ये प्रतिनियत-तद्विषयभोक्तारं तदवस्थाविशेषम् उपक्रमे वदति. तथाच सर्वप्रियत्ववाक्यमेव तद्गमकम् इति अर्थः. **न अत्र** इत्यादि. न अत्र अब्रह्मत्वसाधकेत्यादि इति अर्थः. **उत्क्रमणम्** इत्यादि. उत्क्रमणदशायां जीवस्य ब्रह्मत्वोक्तौ संसारदशायाम् अब्रह्मत्वम् आयाति, ब्रह्मभेदेन उपचारेण प्रकरणे जीवोपक्रमेऽपि जीवस्य अब्रह्मत्वम् आयाति तद् एतन्मते न इति अर्थः फलितः. **अवस्थया** इत्यादि. तथाच एतन्मते जीवस्य ब्रह्मावस्थात्वव्यवसायः सिद्धान्तेतु अंशत्वव्यवसायः इति विशेषः इति अर्थः।।२२।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

जीवो ब्रह्म इति. तथाच इदं ब्रह्मप्रकरणमेव इति भावः. **अन्यथा** अवस्था-विशेषाभावे. **भवति** इति. उक्तम् इति शेषः. **अन्यस्य** ब्रह्मातिरिक्तस्य. **सर्वं प्रियं** सर्वभोक्तृत्वं, जीवस्तु ब्रह्मैव यावत्पर्यन्तम् अज्ञानं तावत्पर्यन्तं संसारावस्थः इति आशयेन. तन्मते मोक्षम् आहुः **मोक्षस्तु** इति.

सिद्धान्ताद् इति. अंशत्वेन व्यवसायः इति सिद्धान्ताद् इति अर्थः. हेत्वर्थकस्य सौत्रे**ति** शब्दस्य ज्ञानं मोक्षः इति पक्षे उपसंहारो हेतुः इति बोधयितुम् आहुः **इती**ति. इति

एवं प्रकृतिकारणवादनिराकरणेन ब्रह्मणएव कारणत्वे सिद्धेऽपि अर्धजरतीयतया उभयस्थानपक्षं परिहर्तुम् अधिकरणम् आरभते.

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्।।२३।। (१।४।८)

ननु ब्रह्मकारणतां न निराकुर्मः, श्रुतिसिद्धत्वात्. किन्तु समवायिकारणं प्रकृतिरेव, कार्यकारणयोः अवैलक्षण्यात्. समवायिकारणानुरोधि हि कार्यम्. अन्यत् सर्वं भगवान् अस्तु. अपेक्ष्यते च समवायि-निमित्तयोः भेदः. कर्मण्यपि श्रुतिस्मृतिसमवायो धर्मे. एवं ब्रह्मवादेऽपि स्मृत्युक्ता प्रकृतिः समवायिकारणं, ब्रह्म निमित्तकारणम् इत्येवं प्राप्ते उच्यते.

प्रकृतिश्च निमित्तकारणं, समवायिकारणञ्च ब्रह्मैव. 'प्रकृति'पद-

---

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

समवायीति. तथाच श्रौतस्मार्तपदार्थानां **कर्मणि** समवायिकारणत्वम् अस्मदादिकृत्यादीनां निमित्तकारणत्वम् अर्थः.

सिद्धान्तं वक्तुं सूत्रं व्याकुर्वन्ति **प्रकृतिश्च** इत्यादिना. ईक्षत्यादिना ब्रह्मणः

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

सिद्धम् इति. मतान्तरीयरीत्यापि इदं ब्रह्मप्रकरणमेव **इति सिद्धम्** इति अर्थः।।२२।।

दृष्टान्तानुपरोधाधिकरणप्रयोजनम् आहुः **एवम्** इति. पूर्वोक्तरीत्या अधिकरणसप्तकेन इति अर्थः. संशयस्तु समवायिकारणं प्रकृतिः, निमित्तकारणं ब्रह्म, अथवा सर्वविधकारणं ब्रह्म इत्येवंरूपो बोध्यः.

पूर्वपक्षम् आहुः **ननु** इति. **अवैलक्षण्याद्** इति. कार्ये कुत्रचित् सत्त्वरजस्तमसां प्रत्येकं मिलित्वा वा दर्शनाद् जगतः प्रकृत्यवैलक्षण्याद् इति अर्थः. **अन्यद्** इति. निमित्तम् इति अर्थः. ननु सत्त्वादीनां कार्ये अनुकृतिः दृश्यते इति प्रकृतेः यथा समवायित्वं तथा सत्तायापि अनुकृतिः दृश्यतइति ब्रह्मणोऽपि समवायित्वं स्याद् इत्यतः आहुः **अपेक्ष्यते** इति. **समवायि-निमित्तयोः** यदि **भेदो** न स्वीक्रियते चेद्, ब्रह्मगुणानाम् अपहतपाप्मत्वादीनां कार्ये अनुवृत्तिः दृश्यते इत्येतदर्थं भेदो **अपेक्ष्यते** इति अर्थः. अत्र अर्थे वैदिकीं दृष्टान्तयुक्तिम् आहुः **कर्मणि** इति. **धर्मे** यज्ञे. तथाच तत्र ब्रह्माभिन्नस्य जीवस्य ऋत्विगादेः निमित्तत्वं यथा, तथा अत्रापि इति आशयेन आहुः **एवम्** इति. समाधानम् आहुः **उच्यते** इति. 'प्रकृति'शब्दस्य समवायिकारणे शक्तिः. मृत्प्रकृतिः घटः इति प्रयोगेन व्यवहारस्य शक्तिग्राहकत्वात् प्रकृष्टा कृतिः येन इति योगम् आदृत्य निमित्तकारणेऽपि शक्तिः इति आशयेन आहुः **प्रकृतिश्च** इति. तथाच समवायिकारणं

प्रयोगात् स्मृतिसिद्धतृतीयसर्वधर्मापदेशः. **‘च’**कारद् **‘‘यत्र’’** (भाग.पुरा.१०।८५।४) इत्यादि सर्वसङ्ग्रहः. कुतः एतत् ? **प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्. प्रतिज्ञा ‘‘अपि वा तमादेशम् अप्राक्षो येन अश्रुतं श्रुतं भवति अमतं मतं भवति अविज्ञातं विज्ञातं भवति’’** (छान्दो.उप.६।१।२) इति. **दृष्टान्तो ‘‘यथा एकेन मृत्पिण्डेन**

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

कर्तृत्वसिद्धिः असन्दिग्धैव. अतःपरं लोकन्यायेन कर्तुः उपादानाद्युपकरणसापेक्षत्वात् पूर्वपक्षिणा प्रकृतिः उपस्थाप्यते. सा निमित्तकारणभूता समवायिकारणभूता च प्रकृतिः ब्रह्मैव नतु ततो अतिरिक्ता. ‘प्रकृति’शब्दश्च स्वरूपे रूढः यथा ‘‘मृत्प्रकृतिः घटः’’ ‘‘कार्पासप्रकृतिः पटः’’ इत्यादिप्रयोगदर्शनात् समवायिकारणवाचकः. प्रकृष्टा कृतिः येन इति व्युत्पत्या च निमित्तकारणत्वमपि. **तृतीयधर्मोपदेशः** नैयायिकस्मृतिसिद्धं यत् समवायिनिमित्तभिन्नं तृतीयम् असमवायिकारणम् इति अस्य उपदेशः इति अर्थः. **यत्र इत्यादि** इति **‘‘यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद् यद् यथा यदा, स्याद् इदं भगवान् साक्षात्**

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

निमित्तकारणं च ब्रह्मैव इति अर्थः. ननु एवं चेत् तर्हि ब्रह्मणि निमित्तकारणत्वं मन्मतसिद्धं तत् स्वीक्रियते चेद् मन्मतप्रवेशः इति चेत्, सत्यं, नहि त्वन्मते इदं सिद्धं, किन्तु नैय्यायिकमतसिद्धम् अस्माभिरपि स्वीक्रियते. अतएव सूत्रे ‘समवायिकारण’पदं परित्यज्य ‘प्रकृति’पदं प्रयुक्तम् इति आशयेन आहुः **प्रकृतिपदे**ति. **स्मृतिसिद्धे**ति. नैय्यायिकस्मृतिसिद्धा ये तृतीयसर्वधर्माः निमित्तकारण–धर्माः सर्वे कालाकाशत्वादयः तेषाम् अपदेशः कथनम् इति अर्थः. नैय्यायिकमते समवाय्यसमवायिभिन्नं निमित्तकारणमेव सर्वं कालादिकम्. तदपि भगवत्स्वरूपत्वाद् अस्माकम् अविरुद्धम् इति आशयेन **‘स्मृतिसिद्धे’**ति उक्तम्. एवञ्च असमवायिकारणं समवायिकारणे प्रत्यासन्नत्वाद् न पृथग् उपन्यस्तम्. एवञ्च सर्वकारणं ब्रह्म इति. अथवा, स्मृतिसिद्धाः ये तृतीयकारणात्मकाः असमवायिनः सर्वे धर्माः संयोगादयः तेषाम् अपदेशः कथनम् इति अर्थः. किम्पुनर्वक्तव्यं सर्वकारणं ब्रह्म इति सर्वकारकमपि तदेव इति आहुः **चकाराद्** इति. **यत्र इत्यादि** इति. **‘‘यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा, स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः’’** (भाग.पुरा.१०।८५।४) इति पुराणोक्तसर्व कारकस्वरूपमपि ब्रह्मैव इति अर्थः. सौत्रं हेतुं विशदयन्ति **कुतः** इति. **प्रतिज्ञा** इति. प्रतिज्ञा च दृष्टान्तश्च तयोः अनुपरोधः अबाधनं तस्मात्. प्रतिज्ञावाक्यम् आहुः **अपि वा** इति. दृष्टान्तम् आहुः **यथा एकेन** इति. अत्र छान्दोग्ये श्रुतिवाक्यम्. प्रसिद्धिम् आहुः

सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्यात्'' (छान्दो.उप. ६।१।४) इत्यादि. प्रतिज्ञा-दृष्टान्तयोः **अनुपरोधः** अबाधनं, तस्मात्. समवायि-कारणज्ञानेन हि कार्यज्ञानम्. उभयोः ग्रहणम् उपचारव्यावृत्यर्थम्, उपक्रमोपसंहारवत्. प्रतिज्ञामात्रत्वे अदृष्टद्वारापि भवेत्. दृष्टान्तमात्रत्वेतु अनुमानविधया स्यात्. तथा सति सर्वसमानधर्मवद् ब्रह्म

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

प्रधान–पुरुषेश्वरः'' (भाग.पुरा.१०।८५।४) इति आधारादीनां सर्वेषां सङ्ग्रहः. **अबाधनं** प्रतिज्ञा–दृष्टान्तयोः यथा बाधनं न स्यात् तथा इति अर्थः. ननु प्रतिज्ञा–दृष्टान्तयोः एकोपादानेनापि प्रयोजनसिद्धेः उभयोपादानवैयर्थ्यम् इत्यतः आहुः **उभयोः** इति. **उपचारव्यावृत्यर्थम्** इति उभयोः अन्यतरस्यापि गौणत्वव्यावृत्त्यर्थम् इति अर्थः. अत्र दृष्टान्तः **उपक्रमे**त्यादि. तथाच तयोः यथा न एकतरवैयर्थ्यं तथा प्रकृतेऽपि इति अर्थः. तदेव व्युत्पादयन्ति **प्रतिज्ञामात्रत्वे** इत्यादि हेतोः इति शेषः. एतयोः उभयोः अनुपादाने इति फलितम्. तथाच अदृष्टालौकिकप्रत्यक्षजनिका या योगजधर्मरूपा प्रत्यासत्तिः तयापि एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं स्याद् यथा ''**विश्वं पश्यति दूरतः**'' (   ) ''**अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियं, विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यन्ति योगिनः**'' (भाग.पुरा.१०।६१।२१) इति वाक्योक्तम्. एवं तत्तद्व्यक्तित्वेन सकलपदार्थज्ञानेऽपि न ब्रह्मणि समवायिकारणत्वविशिष्टज्ञानं, योगिनां तत्सत्त्वे प्रमाणाभावात्. दृष्टान्तोक्तौतु तत्र लौकिकविशिष्टज्ञानस्यैव दर्शनाद् दार्ष्टान्तिके तत्सम्भवाद् इष्टसिद्धिः. यदि च ब्रह्मणः समवायिकारणतां प्रति दृष्टान्तमात्रं हेतुः उच्येत तद् आहुः **दृष्टान्ते**त्यादि. **अनुमाने**ति. तथाहि ब्रह्म जगत्समवायिकारणं, ब्रह्मत्वेन जगज्ज्ञाने कारणीभूतं यद् ज्ञानं तद्विशेष्यत्वाद्, मृद्वद्, यथा मृज्ज्ञानेन सर्वं मृत्समवायिकार्यं मृत्वेन ज्ञायते एवम् अनुमानविधया समवायिकारणत्वनिर्णयः स्याद् इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

समवायीति. **हि** प्रसिद्धम्. ननु एकेन कार्यसिद्धौ किमर्थम् उभयोः ग्रहणम्? अतः आहुः **उभयोः** इति. **उपचारः** गौणत्वम्. अत्र दृष्टान्तम् आहुः **उपक्रमे**ति. उपक्रमोपसंहाराभ्याम् एकार्थसिद्धौ न तत्र उपचारशङ्का तथा अत्रापि इति अर्थः. उपचारशङ्कामेव विवृण्वन्ति **प्रतिज्ञामात्रात्वे**ति. केवलं प्रतिज्ञावाक्यस्य हेतुत्वे. अदृष्टद्वारा अलौकिक–योगज–प्रत्यासत्तिद्वारा, योगिनां तादृशज्ञानं जायते इति तेन वाक्येन ब्रह्मणः समवायित्वसिद्धिः न स्यात्. **अनुमानविधया** इति. ''सर्वं वाच्यं ज्ञेयत्वात्'', ''पटो वाच्यो ज्ञेयत्वाद्, घटवद्'' इति यथा अनुमानं तथा ''सर्वं सद्

स्याद् न समवायिकारणम्. उभयोः ग्रहणेतु प्रतिज्ञायाः दृष्टमेव द्वारम् इति समवायित्वसिद्धिः.

कार्यकारणयोः भेदाभेदमतनिराकरणाय पिण्डमणिनखनिकृन्तनग्रहणम्.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अर्थः. **तथा सति** अनुमानेन समवायिकारणत्वज्ञाने सति. **सर्वसमाने**त्यादि. अनुमितिविषयीभूतसकलपदार्थाइव ब्रह्मापि परोक्षज्ञानविषयो भवेद् नतु लौकिकप्रत्यक्षेण निर्णीतसमवायिकारणताकम् इति अर्थः. ननु **न समवायिकारणम्** एतस्य न लौकिकप्रत्यक्षेण निर्णीतकारणताकम् इति अर्थकरणे को हेतुः? इति चेद् अग्रे **दृष्टमेव** इति वाक्यमेव अवसेयम्. तादृशार्थकरणे नियामकं दृष्टमेव द्वारं मनसा सर्वविज्ञानब्रह्मत्वविशिष्टतया सकलपदार्थानां ज्ञानरूपे विज्ञाने ब्रह्मत्वविशिष्टलौकिकप्रत्यक्षरूपं विज्ञानमेव दृष्टं ज्ञानलक्षणाद्यजन्यं द्वारं विशेषणज्ञानतया कारणम् इति अर्थः.

दृष्टान्ते पिण्डादिग्रहणस्य प्रयोजनं विचारयन्ति **कार्यकारणयोः** इत्यादिना. सर्वथा अभेदे सर्वव्यवहारसङ्करापत्तिः सर्वथा भेदे च एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानानुपपत्तिः अतो भेदाभेदावेव स्वीकार्यौ इति मतं तस्य निराकरणाय इति अर्थः. **पिण्डे**त्यादि. तथाच अवस्थाविशेषविशिष्टं पिण्डाद् आविर्भूतं पिण्डस्वरूपमेव घटशरावकुसूलादि एवं चिन्तामणेः सकाशाद् उत्पन्नपदार्था अपि ज्ञेयाः. एवं निकृत्यमानाः नखादिखण्डापि इति

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ज्ञेयत्वाद्'' इति अनुमानविधया ज्ञेयत्ववद् ब्रह्म भवति नतु समवायिकारणम् इति अर्थः. **उभयोः** इति. प्रतिज्ञादृष्टान्तयोः इति अर्थः. **प्रतिज्ञायाः** एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञायाः. दृष्टमेव कार्यैकदेशप्रत्यक्षमेव द्वारम्. समवायिकारणत्वगमकम्. **समवायित्वसिद्धिः** इति. एकस्मिन् मृत्पिण्डे मृद्विकारत्वज्ञानोत्तरं सर्वत्र तादृशज्ञानेन मृत्समवायित्वज्ञानं एकदेशप्रत्यक्षादेव जायते नतु अनुमानेन यथा, तथा प्रकृतेऽपि एकत्र सन्मयत्वे निश्चिते तद्विकारेषु सर्वेषु सद्विकारत्वज्ञानाद् सन्मात्रे सर्वसमवायित्वज्ञानं प्रत्यक्षादेव जायते इति सद्रूपे भगवति समवायत्वसिद्धिः इति अर्थः.

दृष्टान्ते पिण्डादिपदग्रहणस्य प्रयोजनम् आहुः **कार्यकारणयोः** इति. **निराकरणाय** इति. कार्यं कारणाद् भिन्नम् इति न स्वीक्रियते चेद् इदं कारणविदम् अस्माद् उत्पन्नम् इति व्यवहारो न स्यात्. यदि स्वीक्रियते तदा एकेन मृन्मयज्ञानेन सर्वं मृन्मयं ज्ञातं भवति इति उपनिषद्बाधः, इत्यतो भेदाभेदमतम् आदर्तव्यं तन्निराकरणाय इति अर्थः. **पिण्डे**ति. मृत्पिण्डस्यैव अवस्थाविशेषो घटः, एवं लोहमणिकार्यमपि तदवस्थाविशेषः. **नख–निकृन्तनम्** इति. नखाः निकृत्यन्ते येन शस्त्रेण तन्नख–

तथा सति यत्र क्वचिद् भगवान् ज्ञातः सर्वत्र ज्ञातो भवति. सर्वं च ज्ञातं भवति इति सामान्यलक्षणप्रत्यासत्तिनिराकरणाय च, **''वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्''** (छान्दो.उप.६।१।४) इति. अलीकत्वनिराकरणाय च **''मृत्तिकेत्येव सत्यम्''** (तत्रैव) इति. ब्रह्मत्वेनैव जगतः सत्यत्वं, न अन्यथा इति.

सामान्यलक्षणप्रत्यासत्तिनिराकरणं च स्पष्टमेव अग्रे **''त्रीणि रूपाणि''**

भगवदीयश्रीमदिच्छाराममप्रणीतः प्रदीपः

बोद्धव्यम्. **सामान्यलक्षणा** इत्यादि. तथाच अनेकपदार्थवृत्तिधर्मः तज्ज्ञानं वा सामान्यलक्षणा. साच न सम्भवति, ब्रह्मातिरिक्तपदार्थस्यैव अभावात्. ननु प्रतीयमाना नाना पदार्थाः कथम् अपलप्यन्ते इत्यतः आहुः **''वाचारम्भणम्''** इत्यादि. तथाच विकारः ब्रह्माकारातिरिक्ताकारतया प्रतीयमानः घटादौ पृथुबुध्नोदरादि एवं मनुष्यादिषु च प्रतीयमानः सः सर्वोऽपि ब्रह्मणो अवस्थाविशेषो ब्रह्मात्मकएव, नतु ततो अतिरिक्तः, परं वाचारम्भणं भवति. तथा-तथा ज्ञातः सन् तादृश-तादृशशब्दप्रयोगे कारणं भवति, अतो नामधेयं शब्दप्रयोगे निमित्तमात्रं, नतु तत्र विकारता अस्ति इति भावः. तथा सुप्तोत्थितेऽपि पुरुषे सा-सा अवस्था तादृश-तादृशव्यावहारिकशब्दप्रयोगएव निमित्तं नतु स्वयं पुरुषाद् भिद्यते पुरुषं वा भेदयन्ति तद्वद् इति अर्थः. तथा सति सामान्यलक्षणापार्थैव इति अर्थः. **ब्रह्मत्वेनैव** इत्यादि. तथाच **जगतः ब्रह्मत्वेनैव** ब्रह्मरूपत्वेनैव सत्यता, **नतु अन्यथा** नतु ब्रह्मानात्मकतया मिथ्यात्वम्, अन्यथा एतच्छ्रुतिविरोधः स्याद् इति भावः.

ननु ब्रह्मत्वमेव सामान्यलक्षणा अस्तु इत्यतः आहुः **सामान्ये**त्यादि. **स्पष्टमेव** अग्न्यादि-विद्युदन्तेषु तेजः इत्येव सत्यम् इति अकथनात् त्रिवृत्करणस्य च बोधनात् **''त्रीणि रूपाणि इत्येव सत्यम्''** (छान्दो.उप.६।४।१) इति सावधारणं कथनात् सर्वं

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

निकृन्तनम्. तेन सर्वं कार्ष्णायसं लोहमयं शस्त्रं वेदितव्यम्. एवञ्च अवस्थाभेदादेव व्यवहारसाङ्कर्यवारणं भविष्यति इति भावः. **तथा सति** इति. कारणमेव अवस्थाविशेषरूपं कार्यम् इति ज्ञाते सति इति अर्थः. नैय्यायिकमतसिद्धसामान्य-लक्षणानादरे बीजम् आहुः **वाचारम्भणे**ति. वाचिकक्रियात्मकः कम्बुग्रीवादिमद् अभिन्नो विकारो नामैव इति अर्थः. तथाच अत्र व्यक्तिभेदाभावेन सामान्यलक्षणावसरएव नास्ति इति भावः. इदं च एकादशस्कन्धे भगवतएव उक्तं **''यथा सुवर्णं सुकृतं पुरस्ताद्''** इत्यादिना वाङ्मात्रं विकारः इति स्वीक्रियमाणे ब्रह्मणः विवर्तोपादानत्वमपि स्वीकर्तव्यम्. तथाच प्रपञ्चस्य वाग्विलसितत्त्वाद् **अलीकत्वं** स्याद् इत्यतः आहुः अलीकत्वेति.

(छान्दो.उप.६।१।४-६) इत्यत्र करिष्यति. अतो ब्रह्मरूपेण सत्यस्य जगतो ब्रह्मैव समवायिकारणम्. देहात्मबुद्धिस्तु सत्यां विकारबुद्धौ दोषः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

तद्रूपकम् एकमेव ब्रह्म इति व्यक्तिभेदाभावाद् ब्रह्मत्वमपि न सामन्यलक्षणा इति अर्थः. ननु सर्वपदार्थानां तदवस्थानां च सर्वेषां ब्रह्मस्वरूपानतिरेकाद् देहात्मबुद्धिधदोषो न स्यात् तद्दोषतत्परिहारबोधकशास्त्राणां च वैफल्यं स्याद् इत्यतः आहुः **देहात्मे**त्यादि. तथाच **विकारबुद्धौ** इत्यत्र ब्रह्माकारो यः परमानन्दः तद्रूपतया अज्ञातत्वे सति तादृशाज्ञातत्व-समानाधिकरणम् अविद्याप्रयोज्यज्ञानविषयत्वम् अथवा अविद्याप्रयोज्याज्ञानमेव विषयतासम्बन्धावच्छिन्नं विकारः, अज्ञानञ्च भावरूपं सविषयं च बोध्यम्. एतदेव अवच्छेदकताविषयतोभयसम्बन्धेन ब्रह्माकारताशून्यज्ञाने कारणं कार्यतावच्छेदकतापि उक्तोभयसम्बन्धएव अवसेया. तादृशज्ञानविषयश्च विकारः तादृशज्ञानवत् तत्पुरुषस्यैव न अन्यस्य अतएव ज्ञानिभिः सर्वएव पदार्थो ब्रह्मत्वेन प्रतिपाद्यते. ‘‘**चिद्विलासः प्रपञ्चो अयं सखे ते दुःखदः कथं, किम् इन्द्रवारुणी राम सीतया कटुकीकृता**’’(   ) इति वसिष्ठवचनं श्रीरामं प्रति इत्थमेव सङ्गच्छते न अन्यथा. ‘‘**सर्वं खलु इदं ब्रह्म**’’ (छान्दो.उप.३।१४।१) इत्यपि बोध्यम्. तथाच तादृशपुरुषस्य देहात्मबुद्धिः अविद्याकृतैवेति संसारात्मकदोषरूपतादृशबुद्धिः दूरीकरणाय प्रवृत्तशास्त्राणां न

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

ननु एकस्मिन् घटे घटत्वज्ञाने जाते घटत्वसामान्यलक्षणालौकिकसन्निकर्षेण ‘घटाः’ इत्याकारकं ज्ञानं यथा जायते, तथा ब्रह्मत्वेन ‘‘**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**’’ (छान्दो.उप.३।१४।१) इति ज्ञानं भविष्यति इत्यतः आहुः **सामान्ये**ति. **करिष्यति** इति. श्रुतिः इति शेषः. अग्न्यादिविद्युदन्तेषु ‘‘तेजः इत्येव सत्यम्’’ इति अकथनात्. ‘‘त्रीणि रूपाणि इत्येव सत्यम्’’ इति कथनात् सर्वं तत्तद्रूपम् एकमेव ब्रह्म इति व्यक्तिभेदएव नास्ति इति ब्रह्मत्वं सामान्यप्रत्यासत्तिः नास्ति इति भावः. नैय्यायिकानां मते अलौकिकप्रत्यक्षे सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्तिः स्वीक्रियते, मीमांसकानां मतेतु तस्याः अनादरएव इति निराकरणं च इत्यनेन ध्वनितम्. **ब्रह्मरूपेण** इति. तथाच यावत्पर्यन्तं जगद्भावः तावत्पर्यन्तमेव असत्यत्वभ्रमः ब्रह्मभावेतु सत्यत्वमेव इति भावः. ननु एवं चेद्, देहादेरपि जगदन्तःपातित्वाद् आत्मत्वेन सत्यतायां सत्यां देहात्मबुद्धेः दुष्टता न स्याद् अतः आहुः **देहात्मे**ति. **विकारबुद्धौ** इति. यावत्पर्यन्तम् आत्मस्वरूपज्ञानं नास्ति तावत्पर्यन्तं बहुजन्माभ्यस्तविकारबुद्धिः वर्ततएव इति तस्याः आत्माभिन्नत्वेन देहावगाहित्वं नास्ति प्रत्युक्तदेहाभिन्नत्वेन आत्मावगाहित्वम् इति दोषः इति अर्थः.

श्रुतिसामर्थ्यं प्रमाणम् इति उक्तम्. तस्माद् ब्रह्मैव समवायिकारणं, न प्रकृतिः।२३।

अभिध्योपदेशाच्च।।२४।।

लिङ्गान्तरम् आह **‘‘सो अकामयत बहु स्यां प्रजायेय’’** (तैत्ति.उप.२।६) इत्यत्र कामनं तस्य अभिध्यानम्. आप्तकामत्वाद् न कामना. तदभिध्यानं सृष्टौ उपदिश्यते **‘‘बहु स्याम्’’** इति. स्वस्यैव बहुरूपत्वाभिध्यानेन सृष्टं स्वयमेव भवति. सुवर्णस्य अनेकरूपत्वं सुर्वणप्रकृतिकत्वएव. अध्यासाभावाद्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

वैफल्यगन्धोऽपि इति भावः. **श्रुतिसामर्थ्यम्** इत्यादि. एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानश्रुतिरेव एतादृशार्थकरणे प्रमाणम् इति अर्थः।।२३।।

अभिध्यानम् ‘‘एकोऽहं बहुस्याम्’’ (छान्दो.उप.६।३२) इत्याकारकं ध्यानं, नतु इच्छा स्वयमेव इति अर्थः. इदम् उक्तं सर्वं ब्रह्मणः समवायिकारणतायामेव उपपद्यते अतः एतदुक्तौ हेतुः समवायिकारणतायामेव अवसेयः. ननु ब्रह्मणः समवायिकारणत्व-साधको न अभिध्योपदेशः. यथा मायया योगिभिः वा नानाकायव्यूहाः क्रियन्ते तेषु अहम् इति अध्यासोऽपि तेषां वर्तते अभिध्यानरूपः तथा ब्रह्मणोऽपि अध्यासरूपाभिध्यानस्य मायिकद्रष्टौ सम्भवात् समवायिकारणत्वासाधकत्वाद् अतः आहुः **अध्यासे**त्यादि.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अस्मिन् अर्थे प्रमाणम् आहुः **श्रुती**ति. एकेन मृन्मयेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं भवति इति दृष्टान्तश्रुतिसामर्थ्यम् इति अर्थः. सामर्थ्यं च बोधकत्वम्. लोके हि दृष्टान्तेन बोधनं सौकर्यार्थम्. **उक्तम्** इति. प्राग् इति शेषः।।२३।।

ननु दृष्टान्ते ‘‘मृत्तिका इत्येव सत्यम्’’ इत्यनेन कारणे सत्यत्वस्य उक्तत्वाद् अर्थाद् घटादौ कार्ये मिथ्यात्वं समायाति यथा, एवं कारणीभूते ब्रह्मणि सत्यत्वेऽपि कार्ये जगति मिथ्यात्वं वक्तव्यम्. एवञ्च दृष्टान्तश्रुत्या ब्रह्मणः विवर्तोपादानत्वं सिद्ध्यति इत्यतः आहुः **लिङ्गान्तरे**ति. **‘‘सो अकामयत’’** (तैत्ति.उप. २।६) इत्यनेन कामनारूपा इच्छा प्रतीयते, साच भगवति न सम्भवति, आप्तकामत्वाद् अतः कामनापदार्थम् आहुः **अभिध्यानम्** इति. ‘‘विलक्षणप्रपञ्चरचनाम् इत्थं करिष्यामि’’ इति अभितः ध्यानं विचारः इति अर्थः. ननु एतावता भगवति समवायिकारणत्वं कथं सिद्धम्? अतः आहुः **बहु स्याम् इति** इति. **सुवर्ण-प्रकृतिकत्वएव** इति. सम्भवति इति शेषः. तथाच सुवर्णवत् समवायिकारणत्वं ब्रह्मणोऽपि सम्भवति इति भावः. ननु योगिभिरपि मायया बहुभवनं क्रियते इति योगिषु यथा अध्यासः तथा अत्रापि इत्यतः आहुः **अध्यासाभावाद्**

गौणत्वापत्तेश्च. न हि मुख्यं बहुभवनं योगिनां सम्भवति. सर्वभवनसामर्थ्यात् मुख्ये सम्भवति गौणकल्पनायाः अन्याय्यत्वात्. 'च'कारात्, **''इदं सर्वं यद् अयम् आत्मा''**(बृहदा.उप.२।४।६) इति कार्यस्य ब्रह्मत्वश्रुतिः ब्रह्मप्रकृतित्वे सम्भवति, न अन्यथा. अथवा **''सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलान् इति शान्त उपासीत''** (छान्दो. उप.३।१४।१) इति तस्य जगद्रूपत्वेन अभिध्यानम् उपदिश्यते. तद् ब्रह्मसमवायित्वे घटत इति. **'च'**कारद् **''एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्''** (भग.गीता ९।१५) इति ।।२४।।

साक्षाच्च उभयाम्नानात् ।।२५।।

लिङ्गम् उक्त्वा श्रुतिमेव प्रमाणम् आह. साक्षात् श्रुत्यैव समवायित्वम् उच्यते. **'च'**कारात् स्मृत्यापि. कथं श्रुत्या उच्यते ? तत्र आह **उभयाम्नानात्.** ब्रह्मणः सकाशाद् ब्रह्मण्येव च सृष्टि-प्रलययोः आम्नानात्. **''सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि आकाशादेव समुत्पद्यन्त आकाशं प्रत्यस्तं यन्ति''** (छान्दो. उप.१।९।१) इति. **''अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा''** (भग.गीता ७।६) इति च. न हि एतस्मिन् निमित्तत्वे सम्भवति. सुवर्णादिषु तथा उपलब्धेः.

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अध्यासाभावाद् ब्रह्मणि अध्यासासम्भवाद् इति अर्थः. **गौणत्वापत्तेः** श्रुतौ ब्रह्मात्मकत्वेन प्रतिपादितस्य जगतो गौणता स्यात् श्रुतेश्च मुख्यार्थबाधनेन अप्रामाण्यं गौणार्थत्वं च स्याद् इति अर्थः. प्रकारान्तरेण समवायित्वसाधकं हेत्वन्तरम् आहुः **अथवा** इत्यादि. **इति** इतिप्रकारेण भवनमपि अभिध्यानविषयः इति अर्थः।।२४।।

श्रुतिस्मृत्युक्तं ब्रह्मणः समवायिकारणत्वम् आहुः **लिङ्गम्** इत्यादिना।।२५।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति. ब्रह्मणि अध्यासो न सम्भवति इति अर्थः. **गौणत्वापत्तेः** इति. मायया सृष्टिकर्तृत्वरूपं गौणत्वं च स्याद् इति अर्थः. योगिनान्तु मायासहकारित्वम् इति आहुः **न हि** इति. **न अन्यथा** इति. तथाच अभिध्योपदेशात् समवायिकारणं ब्रह्मैव इति अर्थः. ननु मास्तु, मायायोगबलेन सर्वं भगवति क्रियते, एवञ्च समवायिकारणत्वव्याघातः इत्यतः आहुः **अथवा** इति।।२४।।

साक्षाच्चोभयाम्नात्. सूत्रम् अवतारयन्ति **लिङ्गम्** इति. श्रुतिम् आहुः **सर्वाणि** इति. स्मृतिम् आहुः **अहम्** इति. **लोके**ति. सुवर्णादिषु लोकन्यायः।।२५।।

लोकवेदन्यायेन साक्षात्वम्. तस्माद् भगवानेव समवायिकारणम् ।।२५।।

आत्मकृतेः परिणामात्।।२६।।

ननु **''सएव सर्वं सृजति सएवावति हन्ति च''** (भाग.पुरा.४।११।२५) इति कर्तृत्वप्रतीतेः आकाशादिवाक्यमपि औपचारिकं भविष्यतीति तन्निराकरणाय आह **आत्मकृतेः**. **''तदात्मानं स्वयम् अकुरुत''**(तैत्ति.उप.२।७) इति स्वस्यैव कर्मकर्तृभावात्. सुकृतत्ववचनाच्च अलौकिकत्वम्. तथापि ज्ञानार्थम्

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

औपचारिकम् इति. तथाच आकाशादेः लाक्षणिक-कर्तृत्वम् आदाय **''समुत्पद्यन्ते''** इति अस्य पर्यवसानं भविष्यति नतु उपादानत्वे इति अर्थः. **स्वस्यैव** इत्यादि. तथाच आकाशादिकमपि स्वयमेवेति न तेषां समवायिकारणत्वे विरोधः इति अर्थः. **वृद्धेः** **''एको अहं बहु स्याम्''** (छान्दो.उप.६।२।३) इति बहुभवनरूपवृद्धेः.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

आत्मनः कृति आत्मकृतिः, तस्याः परिणामत्वं श्रुतौ उच्यते, तेन कृत्वा समवायिकारणत्वं ब्रह्मणएव न प्रकृतेः इति सूत्रार्थः. **कर्तृत्वप्रतीतेः** इति. कुलालवद् निमित्तकारणत्वप्रतीतेः इति अर्थः. **आकाशादिवाक्यम्** इति. **''सर्वाणि ह वा इमानि''** (छान्दो.उप.१।११।५,७,९) इति वाक्यम् इति अर्थः. तथाच आकाशवाक्ये चिदाकाशरूपब्रह्मणः सकाशाद् उत्पत्तिः बोधिता इति तस्यैव समवायिकारणत्वं श्रुतौ प्रतीयते. यथा लोके सुवर्णात् कुण्डलादीनाम् उत्पत्तेः दर्शनात् सुवर्णस्य समवायिकारणत्वं प्रतीयते इति. इदं च तदैव सम्पद्यते यदि आकाशवाक्यं मुख्यार्थवाचकं चेत्, तदेवतु न सम्भवति, कुतः? **''स एव सर्वम्''**(कैव.उप.१।९) इति वाक्याद्, ब्रह्मणः निमित्तकारणत्वप्रतीतेः सत्त्वात् तद्वाक्यम् औपचारिकं भविष्यति इति भावः. **तदात्मानम्** इति. इयं च ब्रह्मवित्प्रपाठके श्रुतिः. तथाहि **''तद् आत्मानं स्वयम् अकुरुत. तस्मात् तत्सुकृतम् उच्यते''** (तैत्ति.उप.२।७) इति. ननु स्वयमेव कार्यं करणं चेत् तादृशकार्यकारणभावः, लोके कुत्रापि न दृश्यते इति तस्याः लौकिकत्वं वक्तुं हेतुद्वयं पूरयन्ति **स्वस्यैव** इति. तथाच सुवर्णस्य समवायित्वेऽपि कुण्डलादिकर्तृत्वं नास्ति इति लोकतः विशेषस्य श्रुतौ सत्त्वाद् न तद्वाक्यम् औपचारिकम् इति भावः.

ननु अस्मन्मते परिणामवादो नास्ति इति कथम् उक्तं परिणामाद्? इत्यतः आहुः **तथापि** इति. यद्यपि नास्ति तथापि अविकृत-परिणामः सर्वं ब्रह्म इति ज्ञानार्थं व्यासः आह इति अर्थः. ननु लोके दुग्धं दध्यादिरूपेण विकृतं सदेव परिणमते इति तं विहाय

उपपत्तिम् आह **परिणामात्.** परिणमते कार्याकारेण इति. अविकृतमेव परिणमते सुवर्णम्. सर्वाणि च तैजसानि. वृद्धेश्च अलौकिकत्वाद् ब्रह्मकारणत्वएव घटते पूर्वावस्थान्यथाभावस्तु कार्यश्रुत्यनुरोधाद् अङ्गीकर्तव्यः. वक्ष्यति च, **''श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वाद्''** (ब्रह्मसू.२।१।२७) इति. अन्यानि च युक्तिदूषणानि परिहरिष्यति. तस्माद् ब्रह्मपरिणामलक्षणं कार्यम् इति जगत्समवायिकारणत्वं ब्रह्मणएव इति सिद्धम्।।२६।।

योनिश्च हि गीयते।।२७।।

चेतनेषु किञ्चिद् आशङ्क्य परिहरति. ननु अस्तु जडानां ब्रह्मैककारणत्वम्. चेतनेषुतु योनि-बीजयोः समवायित्वदर्शनात् पुरुषत्वात् भगवतो योनिरूपा प्रकृतिः समवायिकारणं भवतु. शुक्र-शोणितसमवेतत्वात् शरीरस्य इति आशङ्क्य परिहरति **योनिश्च** ब्रह्मैव. शाक्तवादनिराकरणाय 'च'कारः. तत्र

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

अन्यथाभावः तत्तत्कार्याय तत्तदवस्थारूपेण आविर्भवनम्. **वक्ष्यति** व्यासएव वक्ष्यति इति अर्थः. **शब्दमूलत्वात्** शब्दशक्त्यनुसारेण शाब्दबोधजनकत्वाद् इति अर्थः. **युक्तिदूषणानि** युक्तिरूपाणि दूषणानि इति अर्थः. **परिहरिष्यति** द्वितीयाध्याये व्यासः परिहरिष्यति इति अर्थः।।२६।।

कारणत्वं कारणकत्वम्.

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

अविकृतपरिणामे दृष्टान्तम् आहुः **सुवर्णम्** इति. **सर्वाणि च तैजसानि** इति. **''लोहकार्ष्णायसम्''**(छान्दो.उप.६।१।५,६) इति श्रुत्युक्तानि इति अर्थः. ननु बहुभवनं विकारित्वं विना न सम्भवति इत्यतः आहुः **वृद्धेः** इति. पूर्वं **''बहु स्याम्''** इति तदनन्तरं **''तत्तेजो असृजद्''**, तदनन्तरं जीवानुप्रवेशः इति श्रुतौ उक्तं तद्ब्रह्मणः कारणत्वएव घटते इति अर्थः. तथाच अलौकिकवृद्धौ विकारो नास्ति इति भावः.

ननु पूर्वावस्था अन्यथाभावो विकारः, सच ब्रह्मणोऽपि अस्ति इत्यतः आहुः **कार्यश्रुती**ति. **''बहु स्याम्''** इति कार्यश्रुत्यनुरोधात् सङ्ख्यारूपाऽन्यथाभावः स्वीक्रियते ब्रह्मणि सुवर्णे च गन्धरूपान्यथाभावरूपाविकृतिस्तु दध्यादिवद् न स्वीक्रियते इति अर्थः. इदं मया न उच्यते किन्तु सूत्रकारेण इति आहुः **वक्ष्यति च** इति. श्रीभागवते वेदस्तुतौ **''नहि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया''** (भाग.पुरा.१०।८७।२६) इत्यादौ उक्तम्।।२६।।

परिहरति इति. चैतन्यं शरीराश्रितं, शरीरं च योनिसमुद्भूतं, योनिश्च प्रकृतिः

युक्ति-श्रुती प्रमाणयति **हि गीयते** इति. युक्तिः तावत् **‘‘सदेव सौम्य इदम् अग्र आसीद् एकमेवाद्वितीयम्’’** (छान्दो.उप.६।२।१) इति पूर्वम् एकमेव प्रतिज्ञातम्. ‘आकाशादेव’, ‘आनन्दाद्ध्येव’ इत्याद्येवकारैश्च अनन्यकारणत्वं जगतो अवगम्यते. इतरापेक्षायां द्वैतापत्तेः. गीयते च

‘‘कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्’’ (मुण्ड.उप.३।१।३)

‘‘यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः’’ (मुण्ड.उप.१।१।६) इति च

‘‘मम योनिः महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्’’

(भग.गीता१।४।३) इति.

‘‘तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता’’ (भग.गीता१४।४)

इति च. अक्षरपुरुषोत्तमभावेन तथात्वम्. तस्माद् योनिरपि भगवान् पुरुषोऽपि सर्वं वीर्यं जीवश्च सर्वं भगवान् इति. **‘‘इदं सर्वं यद् अयम् आत्मा’’** (बृहदा. उप.४।२।६) इति सिद्धम्. तस्मात् केनापि अंशेन प्रकृतिप्रवेशो नास्ति इति अशब्दत्वं साङ्ख्यमतस्य सिद्धम्।।२७।।

इति प्रथमाध्यायस्य चतुर्थपादे अष्टमं पञ्चसूत्रं प्रकृत्यधिकरणम्।।८।।

एतेन सर्वे व्याख्याता व्याख्याताः।।२८।। (१।४।९)

ब्रह्मवादव्यतिरिक्ताः सर्वे वादाः अवैदिकाः वेदविरुद्धाश्च इति आह. **एतेन** ब्रह्मवादस्थापनपूर्वकसांख्यमतनिराकरणेन **सर्वे** पातञ्जलादिवादाः **व्याख्याताः**, अवैदिकाः अनुपयुक्ताश्च. वैदिकानां हि वेदः प्रमाणम्. तस्मिन् अव्याकुले भ्रान्तिप्रतिपन्नाएव सर्वे वादा इति. एतत्सौकर्यार्थं विस्तारेण अग्रे वक्ष्यते. आवृत्तिः अध्यायसमाप्तिबोधिका।।२८।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

महद्ब्रह्म अक्षरं ब्रह्म इति अर्थः।।२७।।

एतेन सर्वेव्याख्याताः व्याख्याताः।।२८।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति किञ्चिद् मूर्खाशङ्कां परिहरति इति अर्थः. अत्र **योनिः** अक्षरं ब्रह्म **पिता** पुरुषोत्तमः इत्यस्मिन् सूत्रे उक्तं सामान्यतः इति अन्यत् सर्वं सुगमम्।।२७।।

एवंरीत्या पातञ्जलादिमतनिराकरणं ज्ञेयम्. एवञ्च सामान्यतः निराकरणं कृतं, विशेषतः निराकरणार्थम् अग्रिमाध्यायप्रयोजनमिति सामान्यविशेषभावसङ्गतिः बोधिता इति सर्वम् अनवद्यम्।।२८।।

इति प्रथमाध्याय चतुर्थपादे नवमम् एकसूत्रं व्याख्यानाधिकरणम्।।९।।
इति श्रीवेदव्यासमतवर्ति-श्रीवल्लभाचार्यविरचिते ब्रह्मसूत्राणुभाष्ये
प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः।।१।।४।।

।। प्रथमो अध्यायः समाप्तः।।

भगवदीयश्रीमदिच्छारामप्रणीतः प्रदीपः

।।इति श्रीमद्गोस्वामि-श्रीवल्लभजीसुत-श्रीगोपालजीकृते श्रीमद्ब्रह्मसूत्राणुभाष्यपदप्रदीपे प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः।।

गोस्वामिश्रीमद्गिरधरविरचितं विवरणम्

इति श्रीमन्मुकुन्दराय-सहजमाधुरी-परमानिर्वचनीय-सरसवदनतामरस-रससुधा-हृदाऽवगाहि श्रीमदाचार्यपदाब्ज-कृपापारसार-श्रीमत्प्रभुचरणात्मज-महाराजयदुनाथकुलोद्भव-गोस्वामि-श्रीगोपालात्मज-गिरिधरविरचिते अणुभाष्यविवरणे प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः समाप्तिम् अफाणीत्.

श्रीमग्नलालशास्त्रीकृतः साधिकरणः प्रकाशानुसारी

मतान्तरपाठसमेतो ब्रह्मसूत्रपाठः

प्रथमो अध्यायः

।। प्रथमः चरणः ।।

प्रथमम् एकसूत्रं जिज्ञासाधिकरणम् ।।१।।

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।।१।।

द्वितीयम् एकसूत्रं जन्माद्यधिकरणम् ।।२।।

जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वात् ।।२।।

तृतीयम् एकसूत्रं समन्वयाधिकरणम् ।।३।।

तत्तु समन्वयात् ।।३।।

चतुर्थं सप्तसूत्रम् ईक्षत्यधिकरणम् ।।४।।

ईक्षतेर्नाशब्दम् ।।४।।
गौणश्चेन्नात्मशब्दात् ।।५।।
तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् ।।६।।
हेयत्वावचनाच्च ।।७।।
स्वाप्ययात् ।।८।।
गतिसामान्यात् ।।९।।
श्रुतत्वाच्च ।।१०।।

पञ्चमम् अष्टसूत्रम् आनन्दमयाधिकरणम् ।।५।।

आनन्दमयोभ्यासात् ।।११।।
विकारशब्दान्नेति चेन्न प्राचुर्यात् ।।१२।।
तद्धेतुव्यपदेशाच्च ।।१३।।
मान्त्रवर्णिकमेव च गीयते ।।१४।।

---

२. सर्वेऽपि एकदेशिनः इह योगविभागम् अङ्गीकृत्य ‘शस्त्रयोनित्वात्’ इति सूत्रभागं पृथक्सूत्रत्वेन पठन्ति.

७. ‘‘हेयत्वावचनाच्च’’ इति सूत्रस्य अग्रे ‘प्रतिज्ञाविरोधात्’ इति पृथक्सूत्रं निम्बार्क–रामानुज–शैवाः पठन्ति.

१४. श्रीमद्गोस्वामिगोकुलनाथात्मजश्रीमथुरानाथाः सर्वेपि एकदेशिनश्च ‘गीयते’ इति इह पठन्ति.

नेतरोनुपपत्तेः।।१५।।

भेदव्यपदेशाच्च।।१६।।

कामाच्च नानुमानापेक्षा।।१७।।

अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति।।१८।।

षष्ठं द्विसूत्रम् अन्तस्तद्धर्माधिकरणम् ।।६।।

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्।।१९।।

भेदव्यपदेशाच्चान्यः।।२०।।

सप्तमम् एकसूत्रं तल्लिङ्गाधिकरणम् ।।७।।

आकाशस्तल्लिङ्गात्।।२१।।

अष्टमम् एकसूत्रम् अतिदेशाधिकरणम् ।।८।।

अत एव प्राणः।।२२।।

नवमं चतुःसूत्रं ज्योतिश्चरणाधिकरणम् ।।९।।

ज्योतिश्चरणाभिधानात्।।२३।।

छन्दोभिधानान्नेति चेन्न तथाचेतोर्पणनिगदात्तथा हि दर्शनम्।।२४।।

भूतादिपादव्यपदेशोपपत्तेश्चैवम्।।२५।।

उपदेशभेदान्नेति चेन्नोभयस्मिन्नप्यविरोधात्।।२६।।

दशमं चतुःसूत्रम् अनुगमाधिकरणम् ।।१०।।

प्राणस्तथानुगमात्।।२७।।

न वक्तुरात्मोपदेशादिति चेदध्यात्मसम्बन्धभूमा ह्यस्मिन्।।२८।।

शास्त्रदृष्ट्यातूपदेशो वामदेववत्।।२९।।

जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेन्नोपासात्रैविध्यादाश्रितत्वादिह तद्योगात्।।३०।।

इति श्रीमत्कृष्णद्वैपायनविरचिततत्त्वसूत्रे समन्वयाख्ये प्रथमाध्याये
विचारशास्त्रसमर्थनपूर्वक-शाब्दसन्देहनिवारकः प्रथमः चरणः।।१।।

।। द्वितीयः चरणः।।

प्रथमं चतुःसूत्रं सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशाधिकरणम् ।।१।।

---

२४. ''चेतोर्पणनिगमात्'' इति निम्बार्क-रामानुजपाठः.

३०. अत्र भास्करपाठो(?)स्पष्टः.

सर्वत्रप्रसिद्धोपदेशात्।।१।।

विवक्षितगुणोपपत्तेश्च।।२।।

अनुपपत्तेस्तु न शारीरः।।३।।

कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च।।४।।

द्वितीयं चतुःसूत्रं शब्दविशेषाधिकरणम् ।।२।।

शब्दविशेषात्।।५।।

स्मृतेश्च।।६।।

अर्भकौकस्त्वात्तद्व्ययपदेशाच्च नेति चेन्न निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च।।७।।

सम्भोगप्राप्तिरिति चेन्न वैशेष्यात्।।८।।

तृतीयं द्विसूत्रम् अत्ताचराचरेत्यधिकरणम् ।।३।।

अत्ता चराचरग्रहणात्।।९।।

प्रकरणाच्च।।१०।।

चतुर्थं द्विसूत्रं गुहाम्प्रविष्टौ इत्यधिकरणम् ।।४।।

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्।।११।।

विशेषणाच्च।।१२।।

पञ्चमं पञ्चसूत्रम् अन्तर उपपत्तेः इत्यधिकरणम् ।।५।।

अन्तर उपपत्तेः।।१३।।

स्थानादिव्यपदेशाच्च।।१४।।

सुखविशिष्टाभिधानादेव च।।१५।।

श्रुतोपनिषत्कगत्यभिधानाच्च।।१६।।

अनवस्थितेरसम्भवाच्च नेतरः।।१७।।

षष्ठं त्रिसूत्रम् अन्तर्याम्यधिकरणम् ।।६।।

अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्।।१८।।

---

४. चकार-रहितः शैवः पाठः.

७. 'व्यपदेशान्नेति' इति भास्करपाठः.

१५. एतस्य सूत्रस्य अग्रे ''अत एव च तद्ब्रह्म'' ''अत एव च स ब्रह्म'' ''अत एव स ब्रह्म'' इति यथाक्रममं निम्बार्क-रामानुज-शैवानां पाठः.

१६. चकाररहित इह भास्करपाठः.

१८. ''अन्तर्याम्यधिदैवाधिलोकादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्'' इति भास्कर-निम्बार्क-रामानुज-शैवानां पाठः.

१९. रामानुजशैवौ 'शारीरश्च' इति इह पठित्वा अग्रिमे सूत्रे 'उभयेपि' इत्यादि पठतः.

न च स्मार्तमतद्धर्माभिलापात्।।१९।।

शारीरश्चोभयेपि हि भेदेनैनमधीयते।।२०।।

सप्तमं त्रिसूत्रम् अदृश्यत्वाधिकरणम् ।।७।।

अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः।।२१।।

विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ।।२२।।

रूपोपन्यासाच्च।।२३।।

अष्टमं नवसूत्रं वैश्वानराधिकरणम् ।।८।।

वैश्वानरः साधारणशब्दविशेषात्।।२४।।

स्मर्यमाणमनुमानं स्यादिति।।२५।।

शब्दादिभ्योन्तःप्रतिष्ठानान्नेति चेन्न, तथादृष्ट्युपदेशादसम्भवात् पुरुषमपि चैनमधीयते।।२६।।

अत एव न देवता भूतं च।।२७।।

साक्षादप्यविरोधं जैमिनिः।।२८।।

अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः।।२९।।

अनुस्मृतेर्बादरिः।।३०।।

सम्पत्तेरिति जैमिनिस्तथा हि दर्शयति।।३१।।

आमनन्ति चैनमस्मिन्।।३२।।

इति श्रीमत्कृष्णद्वैपायनविरचिततत्त्वसूत्रे समन्वयाख्ये प्रथमाध्याये
अन्तर्यामिस्वरूपविचारो नाम आधेयस्वरूपसन्देहनिवारको द्वितीयः चरणः।।२।।

---

२२. चकाररहितः पाठः शङ्कर-निम्बार्कयोः.

२६. ‘‘शब्दादिभ्योन्तः प्रतिष्ठानाच्च नेतिचेन्न’’ इति शङ्कर-रामानुज-शैवभिक्षूणां पाठः. निम्बार्कभाष्येपि एवमेव दर्शनात् तत्सम्मतोपि सएव पाठः. ‘‘पुरुषविधमपि चैनमधीयते’’ इति माध्वः पाठः. श्रीमद्वल्लभाचार्याणामपि सः पाठो विदितएव इति ‘‘पाठान्तरे पुरुषविधत्वम्’’ इति भाष्यवचनात् प्रकाशे च ‘‘सौत्रे पुरुषविधमितिपाठान्तरम्’’ इति व्याख्यानाच्च अवगम्यते. श्रीविवरणकाराणां मतेनतु तत् पाठान्तरं श्रुतौ नतु सूत्र इति. शङ्करभाष्येपि ‘‘ये तु पुरुषविधमपि चैनमधीयते’’ इति सूत्रावयवं पठन्ति इत्युल्लेखात् सोपि तादृशपाठज्ञानं नैजम् अभिव्यनक्ति.

३०. ‘‘अनुस्मृतेरितिबादरिः’’ इति प्रदीपकाराणां पाठः शैवश्च.

।। तृतीयः चरणः ।।

प्रथमं सप्तसूत्रं द्युभ्वाद्यधिकरणम् ।।१।।

द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात् ।।१।।

मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात् ।।२।।

नानुमानमतच्छब्दात् ।।३।।

प्राणभृच्च ।।४।।

भेदव्यपदेशात् ।।५।।

प्रकरणात् ।।६।।

स्थित्यदनाभ्यां च ।।७।।

द्वितीयं द्विसूत्रं भूमाधिकरणम् ।।२।।

भूमा सम्प्रसादादध्युपदेशात् ।।८।।

धर्मोपपत्तेश्च ।।९।।

तृतीयं त्रिसूत्रम् अक्षराधिकरणम् ।।३।।

अक्षरमम्बरान्तधृतेः ।।१०।।

सा च प्रशासनात् ।।११।।

अन्यभावव्यावृत्तेश्च ।।१२।।

चतुर्थम् एकसूत्रम् ईक्षतिकर्माधिकरणम् ।।४।।

ईक्षतिकर्मव्यपदेशात् सः ।।१३।।

पञ्चमम् अष्टसूत्रं दहराधिकरणम् ।।५।।

दहर उत्तरेभ्यः ।।१४।।

गतिशब्दाभ्यां तथाहि दृष्टं लिङ्गं च ।।१५।।

धृतेश्च महिम्नोस्यास्मिन्नुपलब्धेः ।।१६।।

प्रसिद्धेश्च ।।१७।।

इतरपरामर्शात् स इति चेन्न सम्भवात् ।।१८।।

---

२. ‘‘मुक्तोपसृप्यव्यपदेशाच्च’’ इति पाठो रामानुज-शैवयोः.

४. ‘‘प्राणभृच्च’’ इति सूत्रं रामानुजशैवौ तृतीये अन्तर्भावयतः.

५. ‘‘भेदव्यपदेशाच्च’’ इति निम्बार्कपाठः.

६. ‘‘प्रकरणाच्च’’ इति भास्करपाठः.

१३. ‘‘ईक्षतिकर्म व्यपदेशात् सः’’ इति रामानुजपाठः.

उत्तराच्चेदाविर्भूतस्वरूपस्तु।।१९।।

अन्यार्थश्च परामर्शः।।२०।।

अल्पश्रुतेरिति चेत्तदुक्तम्।।२१।।

षष्ठं द्विसूत्रम् अनुकृत्यधिकरणम् ।।६।।

अनुकृतेस्तस्य च।।२२।।

अपि स्मर्यते।।२३।।

सप्तमं द्विसूत्रं शब्दादेव प्रमित इत्यधिकरणम् ।।७।।

शब्दादेव प्रमितः।।२४।।

हृद्यपेक्षया तु मनुष्याधिकारत्वात्।।२५।।

अष्टमम् अष्टसूत्रं तदुपर्यत्यधिकरणम् ।।८।।

तदुपर्यपि बादरायणः सम्भवात्।।२६।।

विरोधः कर्मणीति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात्।।२७।।

शब्द इति चेन्नातःप्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्।।२८।।

अत एव च नित्यत्वम्।।२९।।

समाननामरूपत्वादावृत्तावप्यविरोधो दर्शनात् स्मृतेश्च।।३०।।

मध्वादिष्वसम्भवादनधिकारं जैमिनिः।।३१।।

ज्योतिषि भावाच्च।।३२।।

भावं तु बादरायणोस्ति हि।।३३।।

नवमं पञ्चसूत्रं शुगस्य इत्यधिकरणम् ।।९।।

शुगस्य तदनादरश्रवणात् तदाद्रवणात् सूच्यते हि।।३४।।

२०.‘‘परामर्षः’ इति भैक्षवः पाठः.

२३.‘‘अपि च स्मर्यते’’ इति पाठः क-गो-संज्ञकपुस्तकयोः शाङ्कर-भास्कर-शैव-भैक्षवश्च.

२४.‘‘शब्दादेव च प्रमितः’’ इति पाठः प्रदीपे.

२९.‘‘अत एव च नित्यत्वम्’’ इति निम्बार्कपाठः.

३०.‘‘समाननामरूपत्वाच्च’’ इति सर्वेषामपि एकदेशिनां पाठः. ‘‘समानरूपनामत्वाच्च’’ इति क्वचित्पुस्तके भास्करपाठश्च.

३२.‘‘ज्योतिषा भावाच्च’’ इति पाठः प्रदीपकारसम्मतः प्रतिभाति.

३३.‘‘भावात्तु’’ इति क्वचिद् भास्करपाठः.

क्षत्रियत्वावगतेश्चोत्तरत्र चैत्ररथेनलिङ्गात् ।।३५।।

संस्कारपरामर्शात् तदभावाभिलापाच्च ।।३६।।

तदभावनिर्द्धारणे च प्रवृत्तेः ।।३७।।

श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात् स्मृतेश्च ।।३८।।

दशमम् एकसूत्रं कम्पनाधिकरणम् ।।१०।।

कम्पनात् ।।३९।।

एकादशम् एकसूत्रं ज्योतिर्दर्शनाधिकरणम् ।।११।।

ज्योतिर्दर्शनात् ।।४०।।

द्वादशम् एकसूत्रम् अर्थान्तरव्यपदेशाधिकरणम् ।।१२।।

आकाशोर्थान्तरत्वादिव्यपदेशात् ।।४१।।

त्रयोदशं द्विसूत्रं सुषुप्त्युत्क्रान्त्योः इत्यधिकरणम् ।।१३।।

सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेन ।।४२।।

पत्यादिशब्देभ्यः ।।४३।।

इति श्रीमत्कृष्णद्वैपायनविरचिततत्त्वसूत्रे समन्वयाख्ये प्रथमाध्याये उपास्यस्वरूपविचारो नामाधारस्वरूपसन्देहनिवारकः तृतीयः चरणः ।।३।।

।। चतुर्थः चरणः ।।

प्रथमं सप्तसूत्रम् आनुमानिकाधिकरणम् ।।१।।

आनुमानिकमप्येकेषामिति चेन्नशरीररूपकविन्यस्तगृहीतेर्दर्शयति च ।।१।।

सूक्ष्मं तु तदर्हत्वात् ।।२।।

तदधीनत्वादर्थवत् ।।३।।

ज्ञेयत्वावचनाच्च ।।४।।

वदतीति चेन्न प्राज्ञो हि प्रकरणात् ।।५।।

---

३५. ''क्षत्रियत्वगतेश्च'' इति शाङ्कर-भास्कर-भैक्षव-नैम्बार्क-रामानुज-शैवानां पाठः. तत्रापि रामानुजशैवौ 'उत्तरत्र' इति सूत्रविभागं पृथक् पठतः.

३६. ''संस्कारपरामर्षात्'' इति भैक्षवः पाठः.

३८. ''स्मृतेश्च'' इति सूत्रं योगविभागेन पृथक् पठन्ति निम्बार्क-रामानुज-शैवाः.

३९. ''प्राणः कम्पनात्'' इति भैक्षवः पाठः.

४३. ''पत्यादिशब्देभ्यश्च'' इति भैक्षवः पाठः.

५. ''प्रकरणात्'' इति योगविभागेन पृथग् माध्वपाठः.

त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च।।६।।

महद्वच्च।।७।।

द्वितीयं त्रिसूत्रं चमसवदित्यधिकरणम् ।।२।।

चमसवदविशेषात्।।८।।

ज्योतिरुपक्रमात्तु तथा ह्यधीयत एके।।९।।

कल्पनोपदेशाच्च मध्वादिवदविरोधः।।१०।।

तृतीयं त्रिसूत्रं न सङ्ख्योपसङ्ग्रहाधिकरणम् ।।३।।

न सङ्ख्योपसंग्रहादपि नानाभावादतिरेकाच्च।।११।।

प्राणादयो वाक्यशेषात्।।१२।।

ज्योतिषैकेषामसत्यन्ने।।१३।।

चतुर्थम् एकसूत्रं यथाव्यपदिष्टाधिकरणम् ।।४।।

कारणत्वेन चाकाशादिषु यथाव्यपदिष्टोक्तेः।।१४।।

पञ्चमम् एकसूत्रं समाकर्षाधिकरणम् ।।५।।

समाकर्षात्।।१५।।

षष्ठं त्रिसूत्रं जगद्वाचित्वाधिकरणम् ।।६।।

जगद्वाचित्वात्।।१६।।

जीवमुख्यप्राणलिङ्गादिति चेत् तद्व्याख्यातम्।।१७।।

अन्यार्थं तु जैमिनिः प्रश्नव्याख्यानाभ्यामपि चैवमेके।।१८।।

सप्तमं चतुःसूत्रं वाक्यान्वयाधिकरणम् ।।७।।

वाक्यान्वयात्।।१९।।

प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्गमाश्मरथ्यः।।२०।।

६.''त्रयाणामपि चैवम्'' इति भैक्षवः पाठः.

७.''महत्वाच्च'' इति क्वचिद् भास्करादर्शपाठः.

८.''अविशेषाच्च'' इति क्वचिद् भास्करादर्शपाठः.

९.''ज्योतिरुपक्रमा तु'' इति पाठो गो-संज्ञकपुस्तके विवरणे प्रदीपे शाङ्कर-भास्कर-नैम्बार्क-रामानुज-शैवश्च.

१४.''करणत्वेन च'' इति भास्करपाठः.

१६.''जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेतिचेत्'' इति शाङ्कर-भास्कर-निम्बार्क-रामानुज-शैव-भैक्षवपाठः.

१८. सप्तदशसूत्र एवान्तर्भावयति एतत्सूत्रं भास्करः.

उत्क्रमिष्यत एवम्भावादित्यौडुलोमिः ।।२१।।

अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः ।।२२।।

अष्टमं पञ्चसूत्रं प्रकृतिश्च इत्यधिकरणम् ।।८।।

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् ।।२३।।

अभिध्योपदेशाच्च ।।२४।।

साक्षाच्चोभयाम्नानात् ।।२५।।

आत्मकृतेः परिणामात् ।।२६।।

योनिश्च हि गीयते ।।२७।।

एतेन सर्वे व्याख्याता व्याख्याताः ।।२८।।

इति श्रीमत्कृष्णद्वैपायनविरचिततत्त्वसूत्रेषु समन्वयाख्ये प्रथमाध्याये
मतान्तरश्रौतताभ्रमजनकप्रकीर्णवाकायार्थविचारो नाम चतुर्थः चरणः ।।४।।

द्वितीयो अध्यायः

।। प्रथमः पादः ।।

प्रथमम् एकसूत्रं स्मृत्यधिकरणम् ।।१।।

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात् ।।१।।

द्वितीयम् एकसूत्रम् इतरेषाम् इत्यधिकरणम् ।।३।।

इतरेषां चानुपबल्धेः ।।२।।

तृतीयम् एकसूत्रं योगप्रत्युक्त्यधिकरणम् ।।३।।

एतेन योगः प्रत्युक्तः ।।३।।

चतुर्थं त्रिसूत्रं न विलक्षणत्वाधिकरणम् ।।४।।

न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दात् ।।४।।

अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम् ।।५।।

---

२६. ''परिणामात्'' इति योगविभागेन पृथक् पठतो रामानुज-शैवौ.

२७. ''योनिश्च गीयते'' इति पाठः प्रदीपे प्रतिभाति.

२८. इदं सर्वव्याख्यानाधिकरणं श्रीमत्प्रकाशकारमतेन नवमं विवरणकारास्तु इहाधिकरणसङ्ख्यायाञ्जोषमासते श्रीभावप्रकाशिकाकाराणां प्रदीपकाराणां निर्भयरामभट्टानां च मतेनतु अष्टममेव.

४. एतस्य सूत्रस्य अग्रे ''दृश्यते तु'' इति नव्यं सूत्रं माध्वमते.

५. ''विशेषानुगताभ्याम्'' इति भास्करपाठः.

दृश्यते तु।।६।।

पञ्चमं पञ्चसूत्रम् असत्प्रतिषेधाधिकरणम् ।।५।।

असदिति चेन्न प्रतिषेधमात्रत्वात्।।७।।

अपीतौ तद्वत्प्रसङ्गादसमञ्जसम्।।८।।

न तु दृष्टान्तभावात्।।९।।

स्वपक्षदोषाच्च।।१०।।

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमिति चेदेवमप्यविमोक्षप्रसङ्गः।।११।।

षष्ठम् एकसूत्रं शिष्टापरिग्रहाधिकरणम् ।।६।।

एतेन शिष्टापरिग्रहा अपि व्याख्याताः।।१२।।

सप्तमम् एकसूत्रं भोक्त्रापत्तेः इत्यधिकरणम् ।।७।।

भोक्त्रापत्तेरविभागश्चेत् स्याल्लोकवत्।।१३।।

अष्टमं त्रिसूत्रं तदनन्यत्वाधिकरणम् ।।८।।

तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः।।१४।।

भावे चोपलब्धेः।।१५।।

सत्वाच्चावरस्य।।१६।।

नवमं चतुःसूत्रम् असद्व्यपदेशाधिकरणम् ।।९।।

असद्व्यपदेशान्नेति चेन्न धर्मान्तरेण वाक्यशेषात्।।१७।।

युक्तेः शब्दान्तराच्च।।१८।।

पटवच्च।।१९।।

९.''नतु दृष्टान्तभावात्'' इत्येवम्पाठः क-ब-गो-पु-संज्ञकपुस्तकेषु भावप्रकाशिकायां मरीचिकायां प्रकाशे च. प्रदीप-विवरणकारमतेतु ''दृष्टान्ताभावात्'' इति पाठः प्रतिभाति.

१०.''स्वपक्षे दोषाच्च'' इति नैम्बार्कपाठः.

११.''अन्यदानुमेयम्'' इत्यादियोगविभागम् आदृत्य पृथक् सूत्रं रामानुजशैवौ पठतः. ''अनिर्मोक्षप्रसङ्गः'' इति माध्व-नैम्बार्क-रामानुज-शैव-भैक्षवपाठः.

१२. ''एतेन शिष्टा अपरिग्रहा अपि व्याख्याताः'' इति माध्वपाठः.)

१५. ''भावाच्चोपलब्धेः'' इत्यपि शङ्करपाठः.

१६. ''सत्वाच्चापरस्य'' इति रामानुज-शैवपाठः.

१८. प्रदीपकारमतेन इह ''शब्दान्तरत्वाच्च'' इति पाठः प्रतिभाति. इदं सूत्रं नैम्बार्क-रामानुज-शैवैः असद्व्यपदेशसूत्रे अन्तर्भावितम्.

यथा च प्राणादिः ।।२०।।

दशमं त्रिसूत्रम् इतरव्यपदेशाधिकरणम् ।।१०।।

इतरव्यपदेशाद्धिताकरणादिदोषप्रसक्तिः ।।२१।।

अधिकं तु भेदनिर्देशात् ।।२२।।

अश्मादिवच्च तदनुपपत्तिः ।।२३।।

एकादशं षट्सूत्रम् उपसंहारदर्शनाधिकरणम् ।।११।।

उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि ।।२४।।

देवादिवदपि लोके ।।२५।।

कृत्स्नप्रसक्तिर्निरवयवत्वशब्दकोपो वा ।।२६।।

श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् ।।२७।।

आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि ।।२८।।

स्वपक्षदोषाच्च ।।२९।।

द्वादशम् अष्टसूत्रं सर्वोपेतेत्यधिकरणम् ।।१२।।

सर्वोपेता च तद्दर्शनात् ।।३०।।

विकरणत्वान्नेति चेत्तदुक्तम् ।।३१।।

न प्रयोजनवत्वात् ।।३२।।

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ।।३३।।

वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथा हि दर्शयति ।।३४।।

न कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वात् ।।३५।।

उपपद्यते चाप्युपलभ्यते च ।।३६।।

---

२०. ''यथा च प्राणादि'' इति शाङ्कर-भास्कर-भैक्षवः पाठो ''यथा प्राणादिः'' इति च माध्वपाठः.

२२. ''अधिकं तु भेदव्यपदेशात्'' क-संज्ञकपुस्तकपाठः.

२३. ''अश्मादिवच्च तदुपपत्तिः'' इति पाठो मुद्रितमरिचिकायाम्.

२४. पु-संज्ञकपुस्तके 'चेत्क्षीरवद्धि' इति पाठः.

२६. ''निरवयवशब्दकोपो वा'' इति भैक्षवपाठः.

२९. ''स्वपक्षे दोषाच्च'' इति नैम्बार्कपाठः.

३०. ''सर्वोपेता सा दर्शनात्'' इति नैम्बार्कपाठः.

३६. इदं सूत्रं निम्बार्क-रामानुज-शैवैः पूर्वस्मिन् सूत्रे अन्तर्भावितम्.

सर्वधर्मोपपत्तेश्च।।३७।।*

इति श्रीमत्कृष्णद्वैपायनविरचिततत्त्वसूत्रेषु अविरोधाख्ये द्वितीये अध्याये
प्रथमः स्मृतिचरणः।।१।।

।। द्वितीयः चरणः ।।

प्रथमं षट्सूत्रं रचनानुपपत्तेः इत्यधिकरणम् ।।१।।

रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम्।।१।।

प्रवृत्तेश्च।।२।।

पयोम्बुवच्चेत्तत्रापि।।३।।

व्यतिरेकानवस्थितेश्चानपेक्षत्वात्।।४।।

अन्यत्राभावाच्च न तृणादिवत्।।५।।

अभ्युपगमेप्यर्थाभावात्।।६।।

द्वितीयं चतुःसूत्रं पुरुषाश्मवदित्यधिकरणम् ।।२।।

पुरुषाश्मवदिति चेत् तथापि।।७।।

अङ्गित्वानुपपत्तेश्च।।८।।

---

* पादे अस्मिन् प्रदीपकारमतेन अधिकरणानि दश तानि च यथा.
१. प्रथमं द्विसूत्रं स्मृत्यधिकरणम्.
२. द्वितीयम् एकसूत्रं योगप्रत्युक्त्यधिकरणम्.
३. तृतीयं त्रिसूत्रं विलक्षणत्वाधिकरणम्.
४. चतुर्थं पञ्चसूत्रम् असदितिचेदित्यधिकरणम्.
५. पञ्चमम् एकसूत्रम् एतेनेत्यधिकरणम्.
६. षष्ठम् एकसूत्रं भोक्त्रापत्तेः इत्यधिकरणम्.
७. सप्तमं त्रिसूत्रं तदनन्यत्वाधिकरणम्.
८. अष्टमं त्रिसूत्रम् इतरव्यपदेशाधिकरणम्.
९. नवमं षट्सूत्रम् उपसंहारदर्शनाधिकरणम्.
१०.दशमम् अष्टसूत्रं सर्वोपेतेत्यधिकरणम्.

श्रीविवरणकारास्तु प्रथमाधिकरणं द्विसूत्रमेवादाविच्छारामनिर्भयरामभट्टमतेन अङ्गीकृत्य समाप्तौ पादे अस्मिन् द्वादशाधिकरणानि श्रीमत्प्रकाशकारमतेन स्वीकुर्वन्तीव.

२. इदं सूत्रं रामानुज-शैवाभ्यां प्रथमसूत्रे अन्तर्भावितम्.

६. इदं सूत्रं रामानुज-शैवाभ्याम् ''अन्यथानुमिति''सूत्रस्य अग्रे पठ्यते.

७.''पुरुषाश्मवच्चेत्तथापि'' इति भैक्षवः पाठः.

८. अङ्गित्वानुपपत्तेः इति माध्वः पाठः.

अन्यथानुमितौ च ज्ञशक्तिवियोगात्।।९।।

विप्रतिषेधाच्चासमञ्जसम्।।१०।।

तृतीयं सप्तसूत्रं महद्दीर्घवद्वा इत्यधिकरणम् ।।३।।

महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम्।।११।।

उभयथापि न कर्मातस्तदभावः।।१२।।

समवायाभ्युपगमाच्च साम्यादनवस्थितेः।।१३।।

नित्यमेव च भावात्।।१४।।

रूपादिमत्वाच्च विपर्ययोदर्शनात्।।१५।।

उभयथापि च दोषात्।।१६।।

अपरिग्रहाच्चात्यन्तमनपेक्षा।।१७।।

चतुर्थं दशसूत्रं समुदाय उभयहेतुकेपि इत्यधिकरणम् ।।४।।

समुदाय उभयहेतुकेपि तदप्राप्तिः।।१८।।

इतरेतरप्रत्ययत्वादिति चेन्नोत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात्।।१९।।

उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधात्।।२०।।

असति प्रतिज्ञोपरोधो यौगपद्यमन्यथा।।२१।।

प्रतिसङ्ख्याप्रतिसङ्ख्यानिरोधाप्राप्तिरविच्छेदात्।।२२।।

उभयथा च दोषात्।।२३।।

आकाशे च विशेषात्।।२४।।

अनुस्मृतेश्च।।२५।।

---

९. ‘‘अन्यथानुमितौ ज्ञशक्तिनियोगात्’’ इति भास्करपाठः.

१२. सर्वत्रैव ‘उभयथा’ इत्यस्य स्थाने ‘उभयथा’ इतिरामानुजपाठः.

१४. ‘‘नित्यमेव भावात्’’ इति भास्करपाठः.

१५. ‘‘दर्शनात्’’ इति केचन एकदेशिनः छिन्दन्ति.

१६. ‘‘उभयथा दोषात्’’ इति शाङ्कर-माध्व-नैम्बार्क-रामानुज-भैक्षवपाठः. ‘‘उभयथा च दोषात्’’ इति भास्करपाठस्तु अशुद्ध प्रतिभाति.

१८. निर्भयरामभट्टा यत् ‘‘अथ चतुर्थाधिकरणं समुदाय उभयहेतुकेपि तदप्राप्तिरित्यादिभिः एकादशभिः सूत्रैः’’ इत्याहुः तत्र मानं न जानीमः. लिपिकारप्रमादः स्यात् सूत्रगणना वा मतान्तरवत् स्यात्.

१९. ‘‘इतरेतरप्रत्ययमन्यत्वादुपपन्नमितिचेन्न सङ्घातभावानिमित्तत्वात्’’ इति भास्करपाठः.

२२. ‘‘प्रतिसङ्ख्याप्रतिसङ्ख्यानिरोधाप्राप्तिरसम्भवः’’ इति भास्करपाठः.

२३. ‘‘उभयथापि च दोषात्’’ इति प्रदीपपाठः. इदं सूत्रं नैव पठ्यते भास्करेण.

नासतोदृष्टत्वात्।।२६।।

उदासीनानामपि चैवं सिद्धिः।।२७।।

पञ्चमं पञ्चसूत्रं नाभाव उपलब्धेः इत्यधिकरणम् ।।५।।

नाभाव उपलब्धेः।।२८।।

वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्।।२९।।

न भावोनुपलब्धेः।।३०।।

क्षणिकत्वाच्च।।३१।।

सर्वथानुपपत्तेश्च।।३२।।

षष्ठं चतुःसूत्रं नैकस्मिन्नसम्भवादित्यधिकरणम् ।।६।।

नैकस्मिन्नसम्भवात्।।३३।।

एवञ्चात्माकात्स्न्र्यम्।।३४।।

नच पर्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः।।३५।।

अन्त्यावस्थिश्चोभयनित्यत्वादविशेषः।।३६।।

सप्तमं पञ्चसूत्रं पत्युरसामञ्जस्याद् इत्यधिकरणम् ।।७।।

पत्युरसामञ्जस्यात्।।३७।।

सम्बन्धानुपपत्तेश्च।।।३८।।

अधिष्ठानानुपपत्तेश्च।।३९।।

करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः।।४०।।

अन्तवत्वमसर्वज्ञता वा।।४१।।

अष्टमं चतुःसूत्रम् उत्पत्यसम्भवाद् इत्यधिकरणम् ।।८।।

उत्पत्यसम्भवात्।।४२।।

नच कर्तुः करणम्।।४३।।

विज्ञानादिभावे वा तदप्रतिषेधः।।४४।।

२६.''दृष्टत्वात्'' इतिच्छेदः केषाञ्चित्.

३१. चकाररहितः पाठो निम्बार्कस्य. ''क्षणिकत्वाच्च'' इति सूत्रमेव न पठ्यते रामानुजशैवाभ्याम्. भास्करभाष्येतु पठ्यतएव.

३२. इदमपि सूत्रं न पठ्यतएव भास्करभाष्ये.

३६. 'अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वादविशेषात्'' इति माध्वः पाठः.

३८. 'इदं सूत्रं भास्कर-रामानुज-शैवैः न पठ्यते.

४४.''विज्ञानादिभावो वा इति भास्करपाठः तद्भाष्यप्रकाशकप्रमादजन्यः.

विप्रतिषेधाच्च।।४५।।

इति श्रीमत्कृष्णद्वैपायनविरचिततत्त्वसूत्रेषु अविरोधाख्ये द्वितीये अध्याये द्वितीयः तर्कचरणः ।।२।।

।। तृतीयः चरणः ।।

प्रथमं सप्तसूत्रं न वियदित्यधिकरणम् ।।१।।

न वियदश्रुतेः।।१।।

अस्ति तु।।२।।

गौण्यसम्भवात्।।३।।

शब्दाच्च।।४।।

स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत्।।५।।

प्रतिज्ञाहानिरव्यतिरेकाच्छब्देभ्यः।।६।।

यावद्विकारं तु विभागो लोकवत्।।७।।

द्वितीयम् एकसूत्रम् एतेन मातरिश्वा इत्यधिकरणम् ।।२।।

एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः।।८।।

तृतीयम् एकसूत्रम् असम्भवाधिकरणम् ।।३।।

असम्भवस्तु सतोनुपपत्तेः।।९।।

चतुर्थम् एकसूत्रं तेजोतः इत्यधिकरणम् ।।४।।

तेजोतस्तथा ह्याह।।१०।।

पञ्चमम् एकसूत्रम् आपः इत्यधिकरणम् ।।५।।

आपः।।११।।

षष्ठम् एकसूत्रं पृथिव्यधिकार इत्यधिकरणम् ।।६।।

पृथिव्यधिकाररूपशब्दान्तरेभ्यः।।१२।।

सप्तमम् एकसूत्रं तदभिध्यानादेव इत्यधिकरणम् ।।७।।

---

४५. इदं सूत्रं पठ्यतएव भास्करेण.

४. इदं सूत्रं पूर्वस्मिन् सूत्रे अन्तर्भावितं नैम्बार्क-रामानुज-शैवैः.

६. योगविभागम् आदृत्य ''शब्देभ्यः'' इति पृथक् सूत्रं रामानुज-शैवाभ्यां पठ्यते.

११. एतस्य सूत्रस्य अग्रे ''पृथिवी'' इति पृथक् सूत्रं नैम्बार्क-रामानुज-शैवैः पठ्यते.

१२. 'पृथिव्यधिकाररूपशब्दान्तरादिभ्यः'' इति माध्वः पाठः. ''अधिकाररूपशब्दान्तरेभ्यः'' इति रामानुज-शैवपाठः.

तदभिध्यानादेव तु तल्लिङ्गात् सः।।१३।।

अष्टमम् एकसूत्रं विपर्ययेण इत्यधिकरणम् ।।८।।

विपर्ययेण तु क्रमोत उपपद्यते।।१४।।

नवमं द्विसूत्रम् अन्तरा विज्ञानमनसी इत्यधिकरणम् ।।९।।

अन्तरा विज्ञानमनसी क्रमेण तल्लिङ्गादिति चेन्नाविशेषात्।।१५।।

चराचरव्यपाश्रयस्तु स्यात्तद्व्ययपदेशो भाक्तस्तद्भावभावित्वात्।।१६।।

दशमम् एकसूत्रं नात्माश्रुतेः इत्यधिकरणम् ।।१०।।

नात्माश्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः।।१७।।

एकादशम् एकसूत्रं ज्ञोत एव इत्यधिकरणम् ।।११।।

ज्ञोत एव।।१८।।

द्वादशं दशसूत्रम् उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् इत्यधिकरणम् ।।१२।।

उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्।।१९।।

स्वात्मना चोत्तरयोः।।२०।।

नाणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्नेतराधिकारात्।।२१।।

स्वशब्दोन्मानाभ्याञ्च।।२२।।

अविरोधश्चन्दनवत्।।२३।।

अवस्थितिवैशेष्यादिति चेन्नाभ्युपगमाद्धृदि हि।।२४।।

गुणाद्वालोकवत्।।२५।।

व्यतिरेको गन्धवत्।।२६।।

तथा च दर्शयति।।२७।।

१३.''तदभिध्यानात्तु'' इति निम्बार्कपाठः.

१४.''उपपद्यते च'' इति सर्वेषामप्येकदेशिनां पाठः. ''पारम्पर्येण क्रमोत उपपद्यते च'' इति शैवः पाठः. भास्करभाष्ये अन्तर्भावितम् एतत्सूत्रं पूर्वस्मिन्.

१६.''अभाक्तः'' इतिच्छेदः शैवस्य.

१८.एतस्य सूत्रत्याग्रे ''युक्तेश्च'' इति सूत्रं माध्वमते.

१९.प्रदीपकारास्तु चतुर्दशसूत्रमेव एतदधिकरणं पठन्ति तेन तन्मते पादे अस्मिन् अधिकरणानि पंचदशैव नतु षोडश. श्रीविवरणकारास्तु इच्छाराम-निर्भयराम-मतमेव स्वीकुर्वन्ति. ''कस्मादुत्क्रान्तिगत्यागतानाम्'' इति भास्करपाठस्तु अशुद्धः.

२५.''गुणाद्वा आलोकवत्'' इतिच्छेदो भास्कर-नैम्बार्क-रामानुज-शैवानामपि.

२७.''तथा हि दर्शयति'' इति पठित्वा एतत्सूत्रम् अन्तर्भाव्यते पूर्वस्मिन् सूत्रे नैम्बार्क-शैवाभ्याम्. ''तथा च दर्शयति'' इति पठित्वा च रामानुजेन.

पृथगुपदेशात्।।२८।।

त्रयोदशं चतुःसूत्रं तद्गुणसारत्वादित्यधिकरणम् ।।१३।।

तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्ययपदेशः प्राज्ञवत्।।२९।।

यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात्।।३०।।

पुंस्त्वादिवत्वस्य सतोभिव्यक्तियोगात्।।३१।।

नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसङ्गोन्यतरनियमो वान्यथा।।३२।।

चतुर्दशम् अष्टसूत्रं कर्ता शास्त्रार्थवत्वाद् इत्यधिकरणम् ।।१४।।

कर्ताशास्त्रार्थवत्वात्।।३३।।

विहारोपदेशात्।।३४।।

उपादानात्।।३५।।

व्यपदेशाच्च क्रियायां न चेन्निर्देशविपर्ययः।।३६।।

उपलब्धिवदनियमः।।३७।।

शक्तिविपर्ययात्।।३८।।

समाध्यभावाच्च।।३९।।

यथा च तक्षोभयथा।।४०।।

पञ्चदशं द्विसूत्रं परात्तु तच्छ्रुतेः इत्यधिकरणम् ।।१५।।

परात्तु तच्छ्रुतेः।।४१।।

कृतप्रयत्नापेक्षास्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः।।४२।।

षोडशम् एकादशसूत्रम् अंशो नानाव्यपदेशादित्यधिकरणम् ।।१६।।

अंशो नानाव्यपदेशादन्यथाचापि दाशकितवादित्वमधीयत एके।।४३।।

मन्त्रवर्णात्।।४४।।

अपि स्मर्यते।।४५।।

प्रकाशादिवन्नैवं परः।।४६।।

३१.''सतो व्यक्तियोगात्'' इति पाठः पु-संज्ञकपुस्तके प्रमादजः.

३५.''उपादानाद्विहरोपदेशाच्च'' इत्येकसूत्रत्वेन पठित्वा उपेक्षितम् उत्तरसूत्रं रामानुज-शैवाभ्याम्.

४२.''विहितप्रतिषेधावैयर्थ्यादिभ्यः'' इति माध्वपाठः.

४३.''दासकितवादित्वमधीयत एके'' इति पाठो गो-संज्ञकपुस्तके विवरणे च.

४४.''मन्त्रवर्णाच्च'' इति क-संज्ञकपुस्तकपाठः शाङ्करश्च.

४५.''अपि च स्मर्यते'' इति क-संज्ञकपुस्तकपाठः शाङ्कर-नैम्बार्क-शैव-भैक्षवश्च.

४६.''प्रकाशादिवत्तु नैवं परः'' नैम्बार्क-रामानुज-शैवपाठः.

स्मरन्ति च।।४७।।

अनुज्ञापरिहारौ देहसम्बन्धाज्ज्योतिरादिवत्।।४८।।

असन्ततेश्चाव्यतिकरः।।४९।।

आभास एव च।।५०।।

अदृष्टानियमात्।।५१।।

अभिसन्ध्यादिष्वपि चैवम्।।५२।।

प्रदेशादिचेन्नान्तर्भावात्।।५३।।

इति श्रीमत्कृष्णद्वैपायनविरचिततत्त्वसूत्रेषु अविरोधाख्ये द्वितीये अध्याये
तृतीयो वियदादिचरणः।।३।।

।। चतुर्थः चरणः ।।

प्रथमं पञ्चसूत्रं तथा प्राणः इत्यधिकरणम् ।।१।।

तथा प्राणः।।१।।

गौण्यसम्भवात्।।२।।

तत्प्राक्श्रुतेश्च।।३।।

तत्पूर्वकत्वाद् वाचः।।४।।

सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च।।५।।

द्वितीयम् एकसूत्रं हस्तादयः इत्यधिकरणम् ।।२।।

हस्तादयस्तु स्थितेतो नैवम्।।६।।

तृतीयम् एकसूत्रम् अणवच्च इत्यधिकरणम् ।।३।।

अणवच्च।।७।।

चतुर्थं द्विसूत्रं श्रेष्ठश्च इत्यधिकरणम् ।।४।।

४९.‘‘असन्ततेश्चाव्यतिरेकः’’ इति शैवः पाठः.

५०.‘‘आभासा एव वा’’ इति भास्करपाठः ‘‘आभासा एव च’’ इति नैम्बार्कशैवपाठः. ‘‘आभासा एव च’’ इति विकल्पेन रामानुजपाठः.

५२.‘‘अभिसन्ध्यदिष्वप्येवम्’’ इति भैक्षवपाठः.

५३.‘‘प्रदेशभेदान्नेतिचेन्नान्तर्भावात्’’ इति रामानुजपाठः.

१.‘‘तथा प्राणाः’’ इति पाठः क-संज्ञकपुस्तके सर्वेषामपि एकदेशिनाञ्च.

२.‘‘एतस्य सूत्रस्य अग्रे ‘‘प्रतिज्ञानुपरोधाच्च’’ इति नव्यं सूत्रं माध्वमते.

३. इदं सूत्रं रामानुज-शैवाभ्यां पूर्वस्मिन् सूत्रे अन्तर्भावितम्.

श्रेष्ठश्च।।८।।

न वायुक्रिये पृथगुपदेशात्।।९।।

पञ्चमं चतु:सूत्रं चक्षुरादिवत्त्वित्यधिकरणम् ।।

चक्षुरादिवत्तु तत्सहशिष्ट्यादिभ्यः।।१०।।

अकरणत्वाच्च न दोषस्तथा हि दर्शयति।।११।।

पञ्चवृत्तिर्मनोवद्व्यपदिश्यते।।१२।।

अणुश्च।।१३।।

षष्ठम् एकसूत्रं ज्योतिराद्यधिष्ठानन्त्वित्यधिकरणम् ।।६।।

ज्योतिराद्यधिष्ठानं तु तदामननात्।।१४।।

सप्तमं द्विसूत्रं प्राणवता इत्यधिकरणम् ।।७।।

प्राणवता शब्दात्।।१५।।

तस्य च नित्यत्वात्।।१६।।

अष्टमं त्रिसूत्रम् इन्द्रियाणि तद्व्यपदेशादित्यधिकरणम् ।।८।।

तदिन्द्रियाणि तद्व्यपदेशादन्यत्र श्रेष्ठात्।।१७।।

भेदश्रुतेः।।१८।।

वैलक्षण्याच्च।।१९।।

नवमम् एकसूत्रं संज्ञामूर्तिक्लृप्तिस्त्वित्यधिकरणम् ।।९।।

संज्ञामूर्तिक्लृप्तिस्तु त्रिवृत्कुर्वत उपदेशात्।।२०।।

दशमं द्विसूत्रं मांसादिभौमम् इत्यधिकरणम् ।।१०।।

मांसादि भौमं यथाशब्दमितयोश्च।।२१।।

वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः।।२२।।

इति श्रीमत्कृष्णद्वैपायनविरचिततत्त्वसूत्रेषु अविरोधाख्ये द्वितीये अध्याये
चतुर्थः प्राणादिचरणः।।४।।

१०.‘‘तत्सह शिष्यादिभ्यः’’ इति भास्करपाठः तद्भाष्यप्रकाशकप्रमादजः.

१४.‘‘प्राणवता च शब्दात्’’ इति सूत्रम् अन्तर्भावितं रामानुज-शैवाभ्यां पूर्वसूत्रे. ‘‘तदामननाद्’’ इत्यस्य स्थाने ‘‘तदाम्नानात्’’ इति भास्करपाठः.

१६.‘‘तस्य नित्यत्वात्’’ इति निम्बार्कपाठः.

१७.‘‘त इन्द्रियाणि’’ इति सर्वेषामपि एकदेशिनां पाठः.

१८.‘‘भेदश्रुतेर्वैलक्षण्याच्च’’ इति एकमेव सूत्रं नैम्बार्क-रामानुज-शैवमते.

तृतीयोध्यायः

।।प्रथमः चरणः।।

प्रथमं सप्तसूत्रं रंहत्यधिकरणम् ।।१।।

तदन्तरप्रतिपत्तौ रंहति सम्परिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम्।।१।।

त्यात्मकत्वात्तु भूयस्त्वात् ।।२।।

प्राणगतेश्च।।३।।

अग्न्यादिगतिश्रुतेरिति चेन्न भाक्तत्वात्।।४।।

प्रथमेश्रवणादितिचेन्न ता एव ह्युपपत्तेः।।५।।

अतच्छ्रुतत्वादितिचेन्नेष्टादिकारिणां प्रतीतेः।।६।।

भाक्तं वानात्मवित्वात् तथा हि दर्शयति।।७।।

द्वितीयं चतुःसूत्रं कृतात्ययाधिकरणम् ।।२।।

कृतात्ययेनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च।।८।।

चरणादिति चेन्नोपलक्षणार्थेति कार्ष्णाजिनिः।।९।।

आनर्थक्यमिति चेन्न तदपेक्षत्वात्।।१०।।

सुकृतदुष्कृते एवेति तु बादरिः।।११।।

तृतीयं पञ्चसूत्रम् अनिष्टादिकारिणाम् इत्यधिकरणम् ।।३।।

अनिष्टादिकारिणामपि च श्रुतम्।।१२।।

संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गतिदर्शनात्।।१३।।

स्मरन्ति च।।१४।।

अपि सप्त।।१५।।

तत्रापि च तद्व्ययापारादविरोधः।।१६।।

---

४. ‘‘चेद्भाक्तत्वात्’’ इति नैम्बार्कः पाठः.

५.‘‘प्रथमे श्रवणात्’’ इति भैक्षवः पाठः.

७.‘‘भाक्तं च’’ इति भास्करपाठः.

८. चकाररहितो भास्करपाठः. ‘‘यथेतमनेवं च’’ इति सूत्रांशं माध्वा नवमसूत्रत्वेन पठन्ति.

९.‘‘तदुपलक्षणार्थेति’’ रामानुज-नैम्बार्क-माध्व-शैवाः.

११. ‘इति’रहितो भास्करपाठः.

१५.‘‘अपि च’’ इति शाङ्कर-शैव-भैक्षवपाठः.   १६. चकार-रहितो रामानुजपाठः.

चतुर्थं चतुःसूत्रं विद्याकर्मणोः इत्यधिकरणम् ।।४।।

विद्याकर्मणोरिति तु प्रकृतत्वात्।।१७।।

न तृतीये तथोपलब्धेः।।१८।।

स्मर्यतेपि च लोके।।१९।।

दर्शनाच्च।।२०।।

पञ्चमं त्रिसूत्रं तृतीयशब्दावरोधाधिकरणम् ।।५।।

तृतीयशब्दावरोधः संशोकजस्य।।२१।।

साभाव्यापत्तिरुपपत्तेः।।२२।।

नातिचिरेण विशेषात्।।२३।।

षष्ठं द्विसूत्रम् अन्याधिष्ठिते इत्यधिकरणम् ।।६।।

अन्याधिष्ठिते पूर्ववदभिलापात्।।२४।।

अशुद्धमिति चेन्न शब्दात्।।२५।।

सप्तमम् एकसूत्रं रेतःसिगधिकरणम् ।।७।।

रेतः सिग्योगोथ।।२६।।

अष्टमम् एकसूत्रं योनेः शरीरम् इत्यधिकरणम् ।।७।।

योनेः शरीरम्।।२७।।

इति श्रीमत्कृष्णद्वैपायनविरचिततत्त्वसूत्रेषु तृतीये साधनाख्ये प्रकारबोधकतानिरूपके अध्याये अधिकारिजन्मनिर्धारो नाम प्रथमः चरणः।।१।।

।। द्वितीयः चरणः ।।

प्रथमं षट्सूत्रं सन्ध्याधिकरणम् ।।१।।

सन्ध्ये सृष्टिराह हि।।१।।

निर्मातारं चैके पुत्रादयश्च।।२।।

२१.'तृतीये' इति पाठो ब-पुस्तके माध्वानां च. अस्मत्सूत्रादनन्तरं ''स्मरणाच्च'' इति माध्वाः पठन्ति.

२२.''तत्स्वभाव्यापत्तिः'' इति रामानुज-नैम्बार्क-माध्व-शैवपाठः. ''स्वाभाव्यापत्तिः'' इति भास्करपाठः

२४.''अन्याधिष्ठितेषु'' इति शाङ्करपाठः.

२६.''रेतःसिग्योगाच्च'' इति भास्करपाठः.

२७. इदमपि सूत्रं भास्करभाष्ये वर्ततएव.

मायामात्रं तु कात्स्न्र्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात्।।३।।

सूचकश्च हि श्रुतेराचक्षते च तद्विदः।।४।।

पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययौ।।५।।

देहयोगाद्वा सोऽपि।।६।।

द्वितीयम् एकसूत्रं तदभावो नाडीषु इत्यधिकरणम् ।।२।।

तदभावो नाडीषु तच्छ्रुतेरात्मनि च।।७।।

तृतीयम् त्रिसूत्रम् अतः प्रबोधः इत्यधिकरणम् ।।३।।

अतः प्रबोधोस्मात्।।८।।

स एव तु कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्यः।।९।।

मुग्धेर्धसम्पत्तिः परिशेषात्।।१०।।

चतुर्थं त्रिसूत्रम् उभयलिङ्गाधिकरणम् ।।४।।

न स्थानतोपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि।।११।।

न भेदादिति चेन्न प्रत्येकमतद्वचनात्।।१२।।

अपि चैवमेके।।१३।।

पञ्चमं पञ्चसूत्रम् अरूपवदेव हि इत्यधिकरणम् ।।१।।

अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्।।१४।।

प्रकाशवच्चावैयर्थ्यम्।।१५।।

आह च तन्मात्रम्।।१६।।

दर्शयति चाथोपि स्मर्यते।।१७।।

अत एव चोपमा सूर्यकादिवत्।।१८।।

---

४. ''पराभिध्यानदेहयोगसूत्रे पठित्वा षष्ठत्वेन इदं सूत्रं पठतो रामानुज-निम्बार्कौ. ''आचक्षते च'' इत्येव पाठो भास्करभाष्ये.

५. ''पराभिध्यानम्'' इति भास्करपाठः. ७.''आत्मनि ह'' इति माध्वः पाठः.

९. ''स एव च'' इति माध्व-भैक्षवपाठः.

१०.''अर्धसम्पत्तिः'' इत्येव पाठो भास्करभाष्ये.

१२.''भेदादितिचेन्न'' इति रामानुज-नैम्बार्क-शैवपाठः. ''न भेदात्'' इत्येव पाठो भास्करभाष्ये.

१४. अरूपसूत्रं भास्करभाष्ये वर्ततएव. ''अस्थूलम्'' इत्यादितु भाष्यमेव तस्य सूत्रत्वेन पाठो भ्रान्त्यैव.

१५.''वावैयर्थ्यात्'' इति भास्करपाठः. ''चावैयर्थ्यात्'' इति माध्वपाठः.

१८. चकाररहितो भास्करपाठः.

षष्ठं चतुःसूत्रम् अम्बुवदग्रहणादित्यधिकरणम् ।।६।।

अम्बुवदग्रहणात्तु न तथात्वम्।।१९।।

वृद्धिह्रासभाक्त्वमन्तर्भावादुभयसामञ्जस्यादेवम्।।२०।।

दर्शनाच्च।।२१।।

प्रकृतैतावत्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः।।२२।।

सप्तमं द्विसूत्रं तदव्यक्तमाह हि इत्यधिकरणम् ।।७।।

तदव्यक्तमाह हि।।२३।।

अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्।।२४।।

अष्टमं त्रिसूत्रं प्रकाशादिवच्चेत्यधिकरणम् ।।८।।

प्रकाशादिवच्चावैशेष्यं प्रकाशश्च कर्मण्यभ्यासात्।।२५।।

अतोनन्तेन तथा हि लिङ्गम्।।२६।।

उभयव्यपदेशात्वहिकुण्डलवत्।।२७।।

नवमं त्रिसूत्रं प्रकाशाश्रयवद्वा इत्यधिकरणम् ।।९।।

प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात्।।२८।।

पूर्ववद्वा।।२९।।

प्रतिषेधाच्च।।३०।।

दशमं सप्तसूत्रं परमतः सेतून्मानेत्यधिकरणम् ।।

परमतः सेतून्मानसम्बन्धभेदव्यपदेशेभ्यः।।३१।।

सामान्यात्तु।।३२।।

बुद्ध्यर्थः पादवत्।।३३।।

स्थानविशेषात् प्रकाशादिवत्।।३४।।

---

१९. तुकाररहितो भास्करपाठः.

२०‘‘एवम्’’ इत्येव भास्करपाठः.

२२.‘‘सूत्रम् इदं पूर्वस्मिन् अन्तर्भावयतो रामानुज-शैवौ.

२४.‘‘अपि च’’ इति शाङ्करः पाठः.

२५.‘प्रकाशवच्च’ इति माध्वः पाठः. ‘प्रकाशश्च’ इत्यादिसूत्रांशं पृथक् सूत्रत्वेन माध्वाः पठन्ति.

२७. तुकाररहितो भास्करपाठः.

३२.‘‘दर्शनात्’’ इति माध्वः पाठः.

उपपत्तेश्च।।३५।।

तथान्यप्रतिषेधात्।।३६।।

अनेन सर्वगतत्वमायामशब्दादिभ्यः।।३७।।

एकादशं चतुःसूत्रं फलमत उपपत्तेः इत्यधिकरणम् ।।११।।

फलमत उपपत्तेः।।३८।।

श्रुतत्वाच्च।।३९।।

धर्मं जैमिनिरत एव।।४०।।

पूर्वं तु बादरायणो हेतुव्यपदेशात्।।४१।।

इति श्रीमत्कृष्णद्वैपायनविरचिततत्त्वसूत्रे तृतीये साधनाख्ये प्रकारबोधकतानिरूपके अध्याये विषयावधृतिः नाम द्वितीयः चरणः।।२।।

।। तृतीयः चरणः ।।

प्रथमं पञ्चदशसूत्रं सर्ववेदान्तप्रत्ययत्वाधिकरणम् ।।१।।

सर्ववेदान्तप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात्।।१।।

भेदान्नेति चेदेकस्यामपि।।२।।

स्वाध्यायस्य तथात्वेन समाचारेधिकाराच्च सववच्च तन्नियमः।।३।।

दर्शयति च।।४।।

उपसंहारोर्थाभेदाद्विधिशेषवत् समाने च।।५।।

अन्यथात्वं शब्दादिति चेन्नाविशेषात्।।६।।

न वा प्रकरणभेदात् परोवरीयस्त्वादिवत्।।७।।

संज्ञातश्चेत्तदुक्तमस्ति तु तदपि।।८।।

---

३५. इदमपि सूत्रं भास्करभाष्ये वर्ततएव.

३७.''सर्वगतत्वमायामयशब्दादिभ्यः'' इति माध्वः पाठः.

२.''भेदान्नेतिचेन्न'' इति शाङ्कर-शैव-भैक्षवः पाठः. ''भेदान्नेतिचेत् स्यात्'' इति भास्करपाठः.

३.''तथात्वेन हि'' इति शाङ्कर-शैव-भैक्षवः पाठः. ''तथात्वे हि'' इति भास्कर-रामानुज-नैम्बार्कपाठः. ''सववत्'' इत्येव भास्करपाठः. ''सलिलवच्च तन्नियमः'' इति माध्वानां पृथक् सूत्रम्.

६.''अन्यथात्वं च''इति माध्वः पाठः.

७.'न च' इति भास्करपाठः.

व्याप्तेश्च समञ्जसम्।।९।।

सर्वाभेदादन्यत्रेमे।।१०।।

आनन्दादयः प्रधानस्य।।११।।

प्रियशिरस्त्वाद्यप्राप्तिरुपचयापचयौ हि भेदे।।१२।।

इतरे त्वर्थसामान्यात्।।१३।।

आध्यानाय प्रयोजनाभावात्।।१४।।

आत्मशब्दाच्च।।१५।।

द्वितीयं द्विसूत्रम् आत्मगृहीत्यधिकरणम् ।।२।।

आत्मगृहीतिरितरवदुत्तरात्।।१६।।

अन्वयादिति चेत् स्यादवधारणात्।।१७।।

तृतीयं षट्सूत्रं कार्याख्यानादित्यधिकरणम् ।।३।।

कार्याख्यानादपूर्वम्।।१८।।

(‘अपूर्वम्’ इत्येव भास्करपाठः.)

समान एवं चाभेदात्।।१९।।

सम्बन्धादेवमन्यत्रापि।।२०।।

न वाविशेषात्।।२१।।

दर्शयति च।।२२।।

सम्भृतिद्युव्याप्त्यपि चातः।।२३।।

चतुर्थम् एकसूत्रं पुरुषविद्यायाम् इत्यधिकरणम् ।।४।।

पुरुषविद्यायामिव चेतरेषामनाम्नानात्।।२४।।

पञ्चमं द्विसूत्रं वेधाद्यधिकरणम् ।।५।।

वेधाद्यर्थभेदात्।।२५।।

९.‘प्राप्तेश्च’ इति माध्वः पाठः.

१३.‘अर्थसाम्यात्’ इति माध्वः पाठः.

१६.‘आत्मगृहीतेः’ इति भास्करपाठः.

२१.‘‘विशेषात्’’ इति शाङ्कर-भास्कर-रामानुज-नैम्बार्क-माध्व-शैवपाठोपि सिद्धान्तसम्मतएव.

२३.‘‘सम्भृतिद्युव्याप्त्यपि’’ इत्येव भास्करपाठः.

२४.‘‘पुरुषविद्यायामपि’’ इति भास्कर-रामानुज-नैम्बार्क-माध्व-शैवपाठः.

हानौ तूपायनशब्दशेषत्वात् कुशाच्छन्दःस्तुत्युपगानवत् तदुक्तम्।।२६।।

षष्ठं द्विसूत्रं सम्परायाधिकरणम् ।।६।।

सम्पराये तर्तव्याभावात् तथा ह्यन्ये।।२७।।

छन्दत उभयाविरोधात्।।२८।।

सप्तमम् एकसूत्रं गतेरर्थवत्वम् इत्यधिकरणम् ।।७।।

गतेरर्थवत्वमुभयथान्यथा हि विरोधः।।२९।।

अष्टमम् एकसूत्रम् उपपन्नाधिकरणम् ।।८।।

उपपन्नस्तल्लक्षणार्थोपलब्धेर्लोकवत्।।३०।।

नवमम् एकसूत्रनियमाधिकरणम् ।।९।।

अनियमः सर्वासामविरोधः शब्दानुमानाभ्याम्।।३१।।

दशमम् एकसूत्रम् आधिकारिकाधिकरणम् ।।१०।।

यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम्।।३२।।

एकादशं द्विसूत्रम् अक्षरधियाम् इत्यधिकरणम्।।११।।

अक्षरधियां त्ववरोधः सामान्यतद्भावाभ्यामौपसदवत् तदुक्तम्।।३३।।

इयदामननात्।।३४।।

द्वादशं त्रिसूत्रम् अन्तरा भूतग्रामवद् इत्यधिकरणम् ।।१२।।

अन्तरा भूतग्रामवत् स्वात्मनः।।३५।।

अन्यथाभेदानुपपत्तिरिति चेन्नोपदेशान्तरवत्।।३६।।

व्यतिहारो विशिंषन्ति हीतरवत्।।३७।।

त्रयोदशं द्विसूत्रं सैव हि इत्यधिकरणम् ।।१३।।

सैव हि सत्यादयः।।३८।।

२६.''कुशाछन्दस्तुत्युपगानवत्'' इति शाङ्कर-नैम्बार्क-शैव-पाठः.

२७.''सम्पराय'' इति सर्वेपि एकदेशिनः.

२९.''उभयधा'' इति रामानुजपाठः.

३०.'उपपन्न'सूत्रम् आदौ पठित्वा गतिसूत्रं पश्चात् सिद्धान्तेन पठति शैवः.

३२.''यावदधिकार''सूत्रम् आदौ पठित्वा पश्चादनियमसूत्रं पठतो रामानुज-शैवौ.

३३.''अवरोधः'' इत्येव भास्करपाठः प्रतिभाति. ''अवबोधः'' इति भैक्षवः पाठः.

३४.'इयत्' इत्येव भास्करपाठः प्रतिभाति. मुद्रितस्तु 'ईयत्' इति.

३५.''भूतग्रामवदितिचेत्तदुक्तम्'' इति माध्वः पाठः.

३६.रामानुज-नैम्बार्क-शैवाः सूत्रम् इदम् अन्तर्भावयन्ति पूर्वस्मिन् सूत्रे. ''उपदेशवत्'' इति रामानुज-माध्व-शैवपाठः. ''अन्यथाभेदानुपपत्तेः'' इति पाठो भैक्षवः.

कामादीतरत्र तत्र चायतनादिभ्यः।।३९।।

चतुर्दशं द्विसूत्रम् आदरादित्यधिकरणम्।।१३।।

आदरादलोपः।।४०।।

उपस्थितेतस्तद्वचनात्।।४१।।

पञ्चदशम् एकसूत्रं तन्निर्धारणाधिकरणम् ।।१५।।

तन्निर्धारणानियमस्तद्दृष्टेः पृथग्घ्यप्रतिबन्धः फलम्।।४२।।

षोडशम् एकसूत्रं प्रदानवदित्यधिकरणम् ।।१६।।

प्रदानवदेव तदुक्तम्।।।४३।।

सप्तदशं दशसूत्रं लिङ्गभूयस्त्वाधिकरणम् ।।१७।।

लिङ्गभूयस्त्वात्तद्धि बलीयस्तदपि।।४४।।

पूर्वविकल्पः प्रकरणात् स्यात् क्रियामानसवत्।।४५।।

अतिदेशाच्च।।४६।।

विद्यैव तु निर्धारणात्।।४७।।

दर्शनाच्च।।४८।।

श्रुत्यादिबलीयस्त्वाच्च न बाधः।।४९।।

अनुबन्धादिभ्यः प्रज्ञान्तरपृथक्त्ववद् दृष्टश्च तदुक्तम्।।५०।।

न सामान्यादप्युपलब्धेर्मृत्युवन्न हि लोकापत्तिः।।५१।।

परेण च शब्दस्य ताद्विध्यं भूयस्त्वात्वनुबन्धः।।५२।।

एक आत्मनः शरीरे भावात्।।५३।।

अष्टादशं त्रिसूत्रं व्यतिरेकाधिकरणम् ।।१८।।

व्यतिरेकस्तद्भावाभावित्वान्न तूपलब्धिवत्।।५४।।

अङ्गावबद्धास्तु न शाखासु हि प्रतिवेदम्।।५५।।

३९.‘‘कामादितरत्र’’ इति माध्वः पाठः, ‘‘कामादयस्तत्र तत्र’’ इति च शैवः.

४१.‘‘उपस्थितेतस्तद्वचनात्’’ इत्येव भास्करपाठः. ‘‘उपस्थितेस्तद्वचनात्’’ इति च माध्वः.

४२.‘‘तन्निर्धारणार्थनियमः’’ इति माध्वः पाठः.

४३.‘‘एव हि’’ इति माध्वः पाठः.

४८.सूत्रम् इदम् अन्तर्भावयन्ति पूर्वस्मिन् सूत्रे रामानुज-नैम्बार्क-शैवाः.

५०.‘‘प्रज्ञान्तरपृथक्त्ववद्दृष्टिश्च’’ इति पृथक् सूत्रं पठन्ति माध्वाः.

५४.‘‘तद्भावभावित्वात्’’ इति भास्कर-रामानुज-नैम्बार्क-माध्व-शैवपाठः.

मन्त्रादिवद्वाविरोधः ।।५६।।

एकोनविंशम् एकसूत्रं भूम्नः इत्यधिकरणम् ।।१९।।

भूम्नः क्रतुवज्ज्यायस्त्वं तथा हि दर्शयति ।।५७।।

विंशम् एकसूत्रं नानाशब्दादिभेदाद् इत्यधिकरणम् ।।२०।।

नाना शब्दादिभेदात् ।।५८।।

*एकविंशम् एकसूत्रं विकल्पाधिकरणम् ।।२१।।

तेन तन्मते चरणेऽस्मिंश्चतुर्विंशतिरधिकरणानि ।।

विकल्पोविशिष्टफलत्वात् ।।५९।।

द्वाविंशम् एकसूत्रं काम्यास्त्वित्यधिकरणम् ।।२२।।

काम्यास्तु यथाकामं समुच्चीयेरन्नवा पूर्वहेत्वभावात् ।।६०।।

त्रयोविंशं द्विसूत्रम् अङ्गेषु इत्यधिकरणम् ।।२३।।

अङ्गेषु यथाश्रयभावः ।।६१।।

शिष्टेश्च ।।६२।।

चतुर्विंशं द्विसूत्रं समाहाराद् इत्यधिकरणम् ।।२४।।

समाहारात् ।।६३।।

गुणसाधारण्यश्रुतेश्च ।।६४।।

पञ्चविंशं द्विसूत्रं न वा तत्सहभावाधिकरणम् ।।२५।।

न वा तत्सहभावाश्रुतेः ।।६५।।

दर्शनाच्च ।।६६।।

इति श्रीमत्कृष्णद्वैपायनविरचिततत्त्वसूत्रेषु उपनिषदां विद्याजनकतारूपसाधनाख्ये तृतीयाध्याये गुणोपसंहारो नाम तृतीयः चरणः ।।३।।

।। चतुर्थः चरणः ।।

प्रथमं चतुर्विंशतिसूत्रात्मकं पुरुषार्थोतः शब्दादित्यधिकरणम् ।।१।।

पुरुषार्थोऽतः शब्दादिति बादरायणः ।।१।।

शेषत्वात् पुरुषार्थवादो यथान्येष्विति जैमिनिः ।।२।।

५७.''तथा च दर्शयति'' इति माध्वः पाठः.

✽.अधिकरणसङ्ग्रहकारमते द्विसूत्रमेतदधिकरणम् ।

६५.'तत्सहभावश्रुतेश्च' इति माध्वः पाठः.

२.'यथा हि' इति भैक्षवः पाठः.

आचारदर्शनात्।।३।।

तच्छ्रुतेः।।४।।

समन्वारम्भणात्।।५।।

तद्वतो विधानात्।।६।।

नियमाच्च।।७।।

अधिकोपदेशात्तु बादरायणस्यैवं तद्दर्शनात्।।८।।

तुल्यं दर्शनम्।।९।।

असार्वत्रिकी।।१०।।

विभागः शतवत्।।११।।

अध्ययनमात्रवतः।।१२।।

नाविशेषात्।।१३।।

स्तुतयेऽनुमतिर्वा।।१४।।

कामकारेण चैके।।१५।।

उपमर्दञ्च।।१६।।

ऊर्ध्वरेतस्सु च शब्दे हि।।१७।।

परामर्शञ्जैमिनिरचोदना चापवदति हि।।१८।।

अनुष्ठेयं बादरायणः साम्यश्रुतेः।।१९।।

विधिर्वा धारणवत्।।२०।।

स्तुतिमात्रमुपादानादिति चेन्नापूर्वत्वात्।।२१।।

पारिप्लवार्था इति चेन्न विशेषितत्वात्।।२२।।

४.'तच्छ्रुतेश्च' इति भैक्षवः पाठः.

७. चकार-रहितो रामानुज-शैवपाठः.

८. 'बादरायणस्यैवम्' इत्येव भास्करपाठः. 'बादरायणस्यैव' इति भैक्षवः पाठः.

९. 'तुल्यं तु' इति सर्वेपि एकदेशिनः.

१५. षोडशं सूत्रम् आदौ पठित्वा इदं सूत्रं भिक्षुः पठति.

१८.'अचोदनात्' इति भास्कर-रामानुज-नैम्बार्क-शैवपाठः.

२१. अस्मात् सूत्राद् अनन्तरं ''भावशब्दाच्च' इति सूत्रं यत् सर्वेपि एकदेशिनः पठन्ति तद् ''विधिर्वा धारणवत्'' इति पूर्वेणैव सूत्रेण गतार्थत्वाद् उपेक्षितं श्रीमदाचार्यचरणैः लेखकदोषादेव वा त्रुटितम् इति श्रीप्रकाशकाराः.

२२. भास्करभाष्यम् अत्र न दृश्यते.

तथा चैकवाक्यतोपबन्धात्।।२३।।

अत एव चाग्नीन्धनाद्यनपेक्षा।।२४।।

द्वितीयं षट्सूत्रं सर्वापेक्षेत्यधिकरणम् ।।२।।

सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववत्।।२५।।

शमदमाद्युपेतः स्यात् तथापि तु तद्विधेस्तदङ्गतया तेषाम् अवश्यानुष्ठेयत्वात् ।।२६।।

सर्वान्नानुमतिश्च प्राणात्यये तद्दर्शनात्।।२७।।

अबाधाच्च।।२८।।

अपि स्मर्यते।।२९।।

शब्दश्चातोकामकारे।।३०।।

तृतीयम् अष्टसूत्रं विहितत्वाच्चाश्रमकर्मेत्यधिकरणम् ।।३।।

विहितत्वाच्चाश्रमकर्मापि।।३१।।

सहकारित्वेन च।।३२।।

सर्वथापि त एवोभयलिङ्गात्।।३३।।

अनभिभवं च दर्शयति।।३४।।

अन्तरा चापि तु तद्दृष्टेः।।३५।।

अपि स्मर्यते।।३६।।

विशेषानुग्रहश्च।।३७।।

अतस्त्वितरज्ज्यायो लिङ्गाच्च।।३८।।

चतुर्थम् एकसूत्रं तद्भूतस्य इत्यधिकरणम् ।।४।।

तद्भूतस्य तु नातद्भावो जैमिनेरपि नियमात्तद्रूपाभावेभ्यः।।३९।।

---

२३. 'एकवाक्योपबन्धात्' इति भास्कर-रामानुज-माध्वपाठः.

२६. 'तेषामपि' इति रामानुज-शैवपाठः.

२८. 'अपि च' इति शाङ्कर-भास्कर-नैम्बार्क-शैव-भैक्षवपाठः.

३३. 'सर्वथापि तु ते' इति माध्वः पाठः.

३६. 'अपि च' इति शाङ्कर-नैम्बार्क-शैव-भैक्षवपाठः.

३७. 'विशेषानुग्रहं च' इति माध्वः पाठः.

३८. चकार-रहितो नैम्बार्कपाठः.

३९. 'जैमिनिरपि' इति भास्करपाठः. 'तद्भूतस्य तु तद्भावः' इति माध्वपाठः. तुरहितो भैक्षवश्च.

पञ्चमं द्विसूत्रं न चाधिकारिकमित्यधिकरणम् ।।५।।

न चाधिकारिकमपि पतनानुमानात्तदयोगात् ।।४०।।

उपपूर्वमपि त्वेके भावमशनवत् तदुक्तम् ।।४१।।

षष्ठं चतुःसूत्रं बहिस्तूभयथेत्यधिकरणम् ।।६।।

बहिस्तूभयथापि स्मृतेराचाराच्च ।।४२।।

स्वामिनः फलश्रुतेरित्यात्रेयः ।।४३।।

आर्त्विज्यमित्यौडुलोमिस्तस्मै हि परिक्रीयते ।।४४।।

श्रुतेश्च ।।४५।।

सप्तमम् एकसूत्रं सहकार्यन्तराधिकरणम् ।।७।।

सहकार्यन्तरविधिः पक्षे तृतीयं तद्वतो विध्यादिवत् ।।४६।।

अष्टमं चतुःसूत्रं गृहिणोपसंहाराधिकरणम् ।।८।।

कृत्स्नभावात्तु गृहिणोपसंहारः ।।४७।।

मौनवदितरेषामप्युपदेशात् ।।४८।।

अनाविष्कुर्वन्नन्वयात् ।।४९।।

ऐहिकमप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात् ।।५०।।

नवमम् एकसूत्रम् एवं मुक्तिफलानियम इत्यधिकरणम् ।।९।।

एवं मुक्तिफलानियमस्तदवस्थावधृतेस्तदवस्थावधृतेः ।।५१।।

इति श्रीमत्कृष्णद्वैपायनविरचिततत्त्वसूत्रेषु उपनिषदां विद्याजनकतारूपसाधनाख्ये
तृतीयाध्याये कर्मोपसंहारे नाम चतुर्थश्चरणः ।।४।।

---

४०. 'पतनानुमानात्' इत्येव भैक्षवपाठः.

४१. इदं सूत्रं भास्करेण न पठ्यते. 'अपीत्येके' इति रामानुज-माध्व-शैवपाठः. 'भावशमनवत्' इति माध्वपाठः.

४२. 'अपि' इति भास्करे नास्ति. 'उभयधा' इति रामानुजपाठः.

४४. 'परिक्रियते' इति रामानुज-माध्वपाठः.

४५. सूत्रम् इदं न पठ्यते भास्कर-रामानुज-नैम्बार्क-माध्व-शैवैः.

५०. 'ऐहिकमपि' इति शाङ्करपाठः. 'अप्रस्तुते' इति नैम्बार्कपाठः. ''ऐहिकमप्रस्तुतं प्रतिबन्ध तद्दर्शनात्'' इति भास्करपाठः.

चतुर्थाध्यायः

।। प्रथमः चरणः ।।

प्रथमं द्विसूत्रम् आवृत्यधिकरणम् ।।१।।

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ।।१।।

लिङ्गाच्च ।।२।।

द्वितीयं त्रिसूत्रम् आत्माधिकरणम् ।।२।।

आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च ।।३।।

न प्रतीकेन हि सः ।।४।।

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् ।।५।।

तृतीयं पञ्चसूत्रम् आदित्याद्यधिकरणम् ।।३।।

आदित्यादिमतयश्चाङ्ग उपपत्तेः ।।६।।

आसीनः सम्भवात् ।।७।।

ध्यानाच्च ।।८।।

अचलत्वं चापेक्ष्य ।।९।।

स्मरन्ति च ।।१०।।

चतुर्थम् एकसूत्रं यत्रैकाग्रताधिकरणम् ।।४।।

यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात् ।।११।।

पञ्चमम् एकसूत्रम् आप्रायणाधिकरणम् ।।५।।

आप्रायणात्तत्रापि हि दृष्टम् ।।१२।।

षष्ठं चतुःसूत्रं तदधिगमाधिकरणम् ।।६।।

तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ।।१३।।

इतरस्याप्येवमसंश्लेषः पाते तु ।।१४।।

अनारब्धकार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः ।।१५।।

अग्निहोत्रादि तु तत्कार्यायैव तद्दर्शनात् ।।१६।।

---

४. 'न प्रतीके न हि सः' इति शाङ्कर-रामानुज-माध्व-शैव-भैक्षवः पाठः. 'न प्रतीकेन हि सः' इत्येव भास्करपाठः.

११. 'तत्राविशेषात्' इत्येव भास्करपाठः.

१६. 'तत्कार्यायैव' इत्येव भैक्षवः पाठः.

सप्तमं त्रिसूत्रम् अतोन्याधिकरणम् ।।७।।

अतोन्यापि ह्येकेषामुभयोः।।१७।।

यदेव विद्ययेति हि।।१८।।

भोगेन त्वितरे क्षपयित्वाथ सम्पद्यते।।१९।।

इति श्रीमत्कृष्णद्वैपायनविरचिततत्त्वसूत्रेषु फलाख्ये चुर्थाध्याये
जीवतः फलविचारो नाम प्रथमः चरणः।।१।।

।। द्वितीयः चरणः ।।

प्रथमं चतुःसूत्रं वाङ्मनोऽधिकरणम् ।।१।।

वाङ्मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च।।१।।

अत एव सर्वाण्यनु।।२।।

तन्मनः प्राण उत्तरात्।।३।।

सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः।।४।।

द्वितीयं द्विसूत्रं भूताधिकरणम् ।।२।।

भूतेषु तच्छ्रुतेः।।५।।

नैकस्मिन् दर्शयतो हि।।६।।

तृतीयं नवसूत्रं समानाधिकरणम् ।।३।।

समाना चासृत्युपक्रमादमृतत्वं चानुपोष्य।।७।।

तदापीतेः संसारव्यपदेशात्।।८।।

सूक्ष्मं प्रमाणतश्च तथोपलब्धेः।।९।।

नोपमर्देनातः।।।१०।।

अस्यैव चोपपत्तेरूष्मा।।११।।

---

१७. 'अतोन्यदपीति' इति माध्वः पाठः.

१८. इदं सूत्रम् उपेक्षितं भास्करेणानर्थकम् इति.

१९. अथरहितः शाङ्कर-भास्कर-भैक्षवपाठः.

२. 'अत एव च' इति शाङ्कर-भास्कर-माध्व-शैवपाठः.

४.'सोध्यक्षेण' इति शैवः पाठः.

५. 'भूतेषु तच्छ्रुतेः' इत्येव भास्करपाठः. 'भूतेष्वतः' इति भैक्षवः पाठः.

८. 'तदपीतेः' इति माध्वः पाठः.

११.'एष ऊष्मा' इति शाङ्कर-भास्कर-भैक्षवपाठः.

प्रतिषेधादिति चेन्न शारीरात्।।१२।।

स्पष्टो ह्येकेषाम्।।१३।।

स्मर्यते च।।१४।।

तानि परे तथा ह्याह।।१५।।

चतुर्थम् एकसूत्रम् अविभागाधिकरणम् ।।४।।

अविभागो वचनात्।।१६।।

पञ्चमम् एकसूत्रं तदोकोऽधिकरणम् ।।५।।

तदोकोग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात्तच्छेषगत्यनु
स्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया।।१७।।

षष्ठम् एकसूत्रं रश्म्यधिकरणम् ।।६।।

रश्म्यनुसारी।।१८।।

✻सप्तमं त्रिसूत्रं निश्यधिकरणम् ।।७।।

निशि नेति चेन्न सम्बन्धस्य यावद्देहभावित्वाद्दर्शयति च।।१९।।

अतश्चायनेपि दक्षिणे।।२०।।

योगिनः प्रति स्मर्यते स्मार्ते चैते।।२१।।

इति श्रीमत्कृष्णद्वैपायनविरचिततत्त्वसूत्रेषु फलाख्ये चुर्थाध्याये म्रियमाणस्य प्राप्तफलस्य फलविचारो नाम द्वितीयः चरणः।।२।।

।। तृतीयः चरणः ।।

प्रथमं चतुःसूत्रम् अर्चिराद्यधिकरणम् ।।१।।

अर्चिरादिना तत्प्रथितेः।।१।।

वायुमब्दादविशेषविशेषाभ्याम्।।२।।

तडितोधि वरुणः सम्बन्धात्।।३।।

---

१३. इदम् अन्तर्भावयन्ति पूर्वस्मिन् भास्कर-रामानुज-नैम्बार्क-शैवाः.

✻ प्रदीपकाराधिकरणसङ्ग्रहकारमतेन इदं षष्ठमेव अधिकरणम्. भावप्रकाशिकाकार-रश्मिकारमतेन च इदं सप्तमम् अधिकरणम्.

१९. 'सम्बन्धात्' इति पठित्वा यावद्देहसूत्रांशं पृथक् सूत्रत्वेन पठन्ति माध्वाः.

२१. 'प्रति' इति शाङ्कर-भास्कर-भैक्षवपाठः.

२. 'वायुशब्दात्' माध्वः पाठः.

वरुणाच्चाधीन्द्रप्रजापती।।४।।

द्वितीयं त्रिसूत्रम् आतिवाहिकाधिकरणम् ।।२।।

आतिवाहिकास्तल्लिङ्गात्।।५।।

उभयव्यामोहात् तत्सिद्धेः।।६।।

वैद्युतेनैव ततस्तच्छ्रुतेः।।७।।

तृतीयम् अष्टसूत्रं कार्याधिकरणम् ।।३।।

कार्यं बादरिरस्य गत्युपपत्तेः।।८।।

विशेषितत्वाच्च।।९।।

सामीप्यात्तु तद्व्यपदेशः।।१०।।

कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात्।।११।।

स्मृतेश्च।।१२।।

परं जैमिनिर्मुख्यत्वात्।।१३।।

दर्शनाच्च।।१४।।

न च कार्ये प्रतिपत्त्यभिसन्धिः।।१५।।

चतुर्थम् एकसूत्रम् अप्रतीकाधिकरणम् ।।४।।

अप्रतीकालम्बनान्नयतीति बादरायण उभयथा दोषात् तत्क्रतुश्च।।१६।।

---

४. ‘नव्यमपि सूत्रं केचन निवेशयन्ति’ इत्यत्र ‘‘वरुणाच्च’’ इत्यादि नितान्तस्फुरदेव श्रीवल्लभसूत्रमेव निदर्शनम् इति ब्रह्मसूत्राणां बहुकर्तृत्वं सिसाधयिषुः यत् कश्चिद् आह तदसदेव. श्रीवल्लभैः नैव इदं सूत्रं नव्यं न्यवेशि. ‘‘वरुणादधीन्द्रप्रजापती’ इति शाङ्करभाष्ये, ‘वरुणादुपरीन्द्रादिः निवेशयितव्यः’ इति रामानुजभाष्ये ‘‘इन्द्रप्रजापती उक्तस्थानाद् वरुणाद् अधिनिवेशयितव्यौ’’ इति. निम्बार्कभाष्ये, ‘‘वरुणलोकात् प्रजापतिलोकम् इति कौण्डिन्यश्रुतिः’’ इति माध्वभाष्ये, ‘‘तदन्तरम् इन्द्रप्रजापतिलोकाः’’ इति शैवभाष्ये, ‘‘ततः इन्द्रः ततः प्रजापतिः’’ इति भैक्षवभाष्ये च एतत्सूत्राक्षराणां स्फुटतमोपलम्भात् स्पष्टार्थत्वेनैव च अस्य सूत्रस्य शङ्करादिभिः ‘‘स्थानान्तराभावात् पाठसामर्थ्याच्च’’ इत्येवं भाष्यकरणाच्च इति दिक्.

५. ‘आतिवाहिकः’ इति माध्वः पाठः.

६. इदं सूत्रं भास्कर-रामानुज-नैम्बार्क-शैवाः न पठन्ति.

१५. ‘प्रत्यभिसन्धिः’ इति रामानुज-शैवपाठः.

१६. ‘उभयथादोषात्’ इति शाङ्कर-भास्कर-भैक्षवपाठः. ‘उभयधा च दोषात्’ इति रामानुज-माध्व-शैवपाठः.

पञ्चमम् एकसूत्रं विशेषाधिकरणम् ।।५।।

विशेषं च दर्शयति।।१७।।

इति श्रीमत्कृष्णद्वैपायनविरचिततत्त्वसूत्रेषु फलाख्ये चुर्थाध्याये
गच्छतः फलविचारो नाम तृतीयः चरणः।।३।।

।। चतुर्थः चरणः ।।

प्रथमं चतुःसूत्रं सम्पद्याविर्भावाधिकरणम् ।।१।।

सम्पद्याविर्भावः स्वेन शब्दात्।।१।।

मुक्तः प्रतिज्ञानात्।।२।।

आत्मा प्रकरणात्।।३।।

अविभागेन दृष्टत्वात्।।४।।

द्वितीयम् अष्टसूत्रं ब्राह्माधिकरणम् ।।२।।

ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः।।५।।

चिति तन्मात्रेण तदात्मत्वादित्यौडुलोमिः।।६।।

एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः।।७।।

सङ्कल्पादेव च तच्छ्रुतेः।।८।।

अतएव चानन्याधिपतिः।।९।।

अभावं बादरिराह ह्येवम्।।१०।।

भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्।।११।।

द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः।।१२।।

तृतीयं द्विसूत्रं तत्त्वभावाधिकरणम् ।।३।।

तत्त्वभावे सन्ध्यवदुपपत्तेः।।१३।।

---

१. ‘अविहाय’ इति माध्वः पाठः.

६. ‘चितिमात्रेण’ इति भास्कर-माध्व-शैवपाठः. ‘तदात्मकत्वात्’ इति च रामानुज-नैम्बार्क-माध्व-शैव-भैक्षवः पाठः.

८. ‘एव तु’ इति शाङ्कर-भास्कर-शैव-भैक्षवः पाठः. ‘एव तच्छ्रुतेः’ इति रामानुज-नैम्बार्कपाठः.

९. चकार-रहितो भैक्षवः पाठः.

११. ‘अविकल्पमननात्’ इति भास्करपाठः.

१३. ‘तत्त्वभावे’ इति सर्वेऽपि एकदेशिनः.

भावे जाग्रद्वत्।।१४।।

चतुर्थं द्विसूत्रं प्रदीपाधिकरणम् ।।४।।

प्रदीपवदावेशस्तथाहि दर्शयति।।१५।।

स्वाप्ययसम्पत्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि।।१६।।

पञ्चमं षट्सूत्रं जगद्व्यापाराधिकरणम् ।।५।।

जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च।।१७।।

प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्नाधिकारिकमण्डलस्थोक्तेः।।१८।।

विकारवर्ति च तथा हि स्थितिमाह।।१९।।

दर्शयतश्चैवं प्रत्यक्षानुमाने।।२०।।

भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च।।२१।।

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्।।२२।।

इति श्रीमत्कृष्णद्वैपायनविरचिततत्त्वसूत्रेषु फलाख्ये चुर्थाध्याये
प्राप्तफलस्य फलविचारो नाम चतुर्थः चरणः।।४।।

---

१७. 'प्रकरणात्' इत्यादिसूत्रांशं पृथक् सूत्रत्वेन पठन्ति माध्वाः.

१८. 'नेति चेन्न' इति भास्कर-नैम्बार्कपाठः.

१९. 'स्थितिम्' इत्यादिसूत्रांशम् उत्तरसूत्रेण योजयन्ति माध्वाः.

२१. 'साम्यम्' इति भास्करपाठः.

ग्रन्थोद्धृतवचनानाम् आकरस्थलनिर्देशः पृष्ठाङ्कसूची च

ॐ

ॐ अधीहि भगव इति ह उपससाद (छान्दो.उप.७।१) ३७३
ॐ इत्येतद् अक्षरम् उद्गीथम् (छान्दो.उप.१।१।५) २१२
ॐ ब्रह्मविद् आप्नोति परम् (तैत्ति.उप.२।१-९) १२३
ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव ( ) ३२४
ॐकारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ( ) १९

अ

अंशो नानाव्यपदेशाद् (ब्रह्मसू.२।३।४३) ३९५
अक्ताः शर्करा उपदधाति (तैत्ति.ब्राह्म.३।१२।५) ७, १४, ३७
अक्षरं ब्रह्म परमम् (भग.गीता ८।३) ४७१
अक्षरात् परतः परः (मुण्डकोप.२।१।२) ३३०, ३३२
अगृह्यो नहि गृह्यते (बृहदा.उप.३।९।२६) २६०
अग्निः कला सूर्यः कला (छान्दो.उप.४।७।३) ४८०
अग्निः पुच्छस्य प्रथमं काण्डम् (तैत्ति.आर.२।१९) ४२६
अग्निभिरहम् उपदिष्टः (छान्दो.उप.४।१४।२) ३०४
अग्निर्मूर्द्धादिव (मुण्डकोप.२।१।४) ३३१
अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ (मुण्ड.उप.२।१।४) ३३०, ३३६, ३६९
अग्निष्टोमेन वसून् अयाजयद् ( ) ४२६
अग्निष्टोमेन वै प्रजापतिः प्रजा (आप.श्रौ.सू.१०।२।१) ११०
अग्निहोत्रं जुहोति (तैत्ति.संहि.१।५।९।१) ३५६
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निश्चकर्ष (महाभा.३।२९७।१७) ४१०
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः (का.२।४।१३) ४०९, ४१०
अजानता महिमानं तव (भग.गीता११।४१) २७९
अजामेकां लोहित (महाना.उप.८।४) ४६७
अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां (श्वेता.उप.४।५) ४७७, ४८१
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो (कठोप.१।२।१८-२५) २८६
अज्ञत्वं पारवश्यञ्च विधिभेदादिकं ( ) २०८
अणुदित्सवर्णस्य चाप्रत्ययः (पाणि.सू.१।१६९) १८
अणोरणीयान् महतो महीयान् (कठोप.१।२।२०)८,१०,२०७,३०१, ४०१
अण् परेण णकारेण पूर्वेण वा (पाणि.सू.वृत्ति१।१६९) १८
अतः परं नान्यदणीयसं हि (महाना.उप.१।५) २८३
अतएव प्राणः (ब्रह्मसू.१।१।२२) २४१, २१६, २४१, २८४, ४३८

अतिच्छन्दः (बृहदा.उप.४।३।२१) ४५४
अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति (ताण्ड्यब्राह्म.१०।८।९) ५४
अतो ज्यायांश्च पूरुषः (ऋग्वेद १०।९०।२) ३४६
अतो निर्विषयं नित्यं (त्रि.ता.उप.५।१) ३३
अथ अध्यात्मं वागेव ऋक् प्राणः (छान्दो.उप.१।७) २००
अथ अयम् अनस्थिको अशरीरः (श्वेता.उप.४।१) ४६०
अथ इति अयं शब्दो (व्याक.महाभा.ग्रन्थारम्भे) ४
अथ इदं सर्वं यदयमात्मा (बृह.उप.४।५।७) ९८
अथ एनम् एते प्राणाः (बृहदा.उप.४।४।१) ४५७
अथ खलु उद्गीथः स प्रणवः (छान्दो.उप.१।५।१) २५८
अथ खलु क्रतुमयः (छान्दो.उप.३।१४।१) २७०
अथ खलु प्राणएव प्रज्ञात्मेदं (कौषी.ब्राह्म.३।३) २४०, २५१
अथ खलु यथा प्रज्ञायाम् (कौषी.ब्राह्म.३।३) २५६
अथ तमेव एकं जानथ (मुण्ड.उप.२।२।५) ३७३?
अथ तस्य प्रियमेव शिरः (तैत्ति.उप.२।५) १९१
अथ परा यया तदक्षरम् अधिगम्यते (मुण्ड.उप.१।१।५,६) ३२९, ४७२
अथ य आत्मा स सेतुर्विधृतिः (छान्दो.उप.८।३।३) ३९४
अथ य आत्मा सः सेतुः (छान्दो.उप.८।४।१) ४००, ४०३
अथ य इह आत्मानम् अनुविद्य (छान्दो.उप.८।१।६) ३९६
अथ य एषः सम्प्रसादो अस्माच् (छान्दो.उप.८।३।४) ४०३
अथ य एषोऽन्तरक्षिणि (छान्दो.उप.१।७।५) २००
अथ य एषोऽन्तरादित्ये (छान्दो.उप.१।६।६–८) १९९, २००
अथ यथाक्रमो अयं (बृहदा.उप.४।३।९) ४५२
अथ यदतः परो ज्योतिर्दीप्यत (छान्दो.उप.३।१३।७) २२०, २२२, २२३, २२६, २२७, २३१, २३२, २३३, २३४
अथ यदिति ज्योतिः ( ) २२६
अथ यदिदम् अस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं (छान्दो.उप.८।१।१) ३९०, ४२०
अथ यद् उ वै वा अस्मिन् शव्यं (छान्दो.उप.४।१५।५) ३०८
अथ यो अयं भगवो अप्सु परिख्यायत (छान्दो.उप.८।७।४) ३०६, ३११
अथ योगानुशासनम् (योगसू.१।१) १६
अथ योस्योर्ध्वः सुषि (छान्दो.उप.३।१३।५) २२६
अथ शब्दानुशासनम् (पाणि.सू.१।१।१ महाभा.) ३, १७, १९
अथ सत्यवतः कायात् पाशबद्धं (महाभा.३।२९७।१७) ४०९
अथ ह शौनकं च (छान्दो.उप.४।३।५) ४३३

अथ हृदयस्य अग्रे अवद्यति अथ ( ) २०
अथ हैनं गार्गी वाचक्नवी पप्रच्छ (बृहदा.उप.३।६) ३८३
अथ हैनम् उद्दालकम् आरुणिः (बृहदा.उप.३।७।१–२४)
अथच यत्र सुप्तो न (बृहदा.उप.४।३।१९) ४५४
अथचेदं ब्रह्मायाति (बृहदा.उप.४।३।३७) ४५७
अथात आत्मादेशः (तत्रैव ७।२५।२) ३८१
अथात आदेशो नेति नेति (बृह.उप.२।३।६) ८, ३२
अथातः शेषलक्षणम् (जैमि.सू.३।१।१) ६७
अथातो अहङ्कारादेशः (छान्दो.उप.७।२५।१) ३८१
अथातो गाभिलोक्तानाम् (कात्या.स्मृ.१।१) २८
अथातो दर्शपूर्णमासौ व्याख्यास्यामः (आप.श्रौ.सू.१।१) १८
अथातो धर्मजिज्ञासा (जैमि.सूत्र.१।१।१) २०, ३०, ३१
अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (ब्रह्मसू.१।१।१) १७,२९,६२, २६४
अथाथो संशये स्याताम् ( ) १९
अथादावुत्तरे विभागे ह्रस्वं व्यञ्जनपरः (तैत्ति.प्राति.३।१) १४
अथास्य वेदम् उपशृण्वतः (गौत्त.ध.सू.२।३।४) ४३५
अथैष ज्योतिः अथैषः (ताण्ड्यब्रा.१६।८।१) १३३
अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य यः (भाग.पुरा.१०।८।४०) ३६३, ४०२
अथो खलु (बृहदा.उप.४।३।१४) ४५३
अदो ददाति श्वसतां पदं ( ) ४४०
अद्य हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ स (प्रश्नोप.५) ३८८
अधमे विधिः न प्रवर्तते ( ) ७
अधिकन्तु भेदनिर्देशाद् (ब्रह्मसू.२।१।२२) ३९५
अधी हि भगव इति होपससाद (छान्दो.उप.७।१।१) ४३४
अधीहि भगवो ब्रह्म (तैत्ति.उप.३।१) १५१, १५९
अधो निष्ट्या वितस्यान्ते नाभ्याम् (महाना.उप.११।८) ३५७
अनश्नन् अन्यो अभिचाकशीति (मुण्ड.उप.३।१।१) ३७३
अनावृत्तिः शब्दाद् अनावृत्तिः शब्दात् (ब्रह्मसू.४।४।२२) १०१
अनुदात्तङित आत्मनेपदम् (पाणि.सू.१।३।१२) १४४
अनुशशासैतदमृतम् (बृहदा.उप.४।३।३३) ४५५
अनृतापिधाना (छान्दो.उप.८।३।१) ३९५
अनृतेन प्रत्यूढाः प्रजा (छान्दो.उप.८।३।२) ३९५
अनेन जीवेन आत्मना अनुप्रविश्य (छान्दो.उप.१।२।९)७९,१०९, २९७, ४८१
अन्तरात्मन् पुरुषो हिरण्मयः (शत.ब्राह्म.१०।६।३।२) २७८, २८२

अन्तर्बहिश्च तत् सर्वं व्याप्य (महाना.उप.११।६) २८२
अन्तस्तद्धर्मोपदेशाद् (ब्रह्मसू.१।२।२०) ३१६
अन्नात् पुरुषः (तैत्ति.उप.२।१) १५३
अन्नात् प्राणा (महाना.उप.१७।१) १८४
अन्नाद् वै प्रजाः (तैत्ति.उप.२।२) १८८
अन्नेन प्राणाः प्राणैः बलम् (महाना.उप.१७।१३) १८५
अन्यच्छ्रेयः (कठोप.१।२।१) ४५९
अन्यत्र धर्माद् अन्यत्राधर्माद् (कठोप.१।२।१४)२९१,२९४, ३००, ४७६
अन्यथा सन्तमात्मानम् (महाभा.शान्ति.प.२२१।२७) २६२
अन्या वाचो विमुञ्चथ (मुण्डकोप.२।२।५) ३६६
अन्यो अनश्नन् अभिचाकशीति (श्वेता.उप.४।६) २८५
अन्योन्तर आत्मा (तैत्ति.उप.२।३) १५१
अन्योन्तर आत्मा आनन्दमयः (तैत्ति.उप.२।५) ५०
अपरं भवतो जन्म परं (भग.गीता४।४) २७८
अपश्यं पुरोडाशं कर्मभूत ँ सर्पन्तम् ( ) ८७
अपहतपाप्मा (छान्दो.उप.१।२।९) ९९
अपाणिपादो जवनो गृहीता (श्वेता.उप.३।१९) ९, १४, ९६
अभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च (भग.गीता १३।१६) ३५६
अभयं वै जनकः प्राप्तोऽसि (बृहदा.उप.४।२।४) ४६१
अभयं ह वै ब्रह्म भवति ( ) ४४१
अमृतं क्षेमम् अभयम् (भाग.पुरा.२।६।१८) २२७
अमृतं वै प्राणाः (तैत्ति.संहि.२।६।८) ४३७
अयं वै सोमेनेजानाद् ( ) ३९
अयं शारीर आत्मा प्राज्ञेन (बृहदा.उप.४।३।३५) ४५१, ४६२
अयं हि परमो धर्मोयद् (याज्ञ.स्मृ.१।८) ३२
अयमात्मा ब्रह्म (बृहदा.उप.२।५।१९) २४६, ३९२, ३९४
अराइव रथनाभौ संहता यत्र (मुण्डकोप.२।२।६) ३७०
अर्थवाचकपदानुरोधेन पादव्यवस्था ( ) ६९
अर्थविप्रकर्षाद् (जैमि.सू.३।३।१४) २१४
अर्थैक्याद् एकं वाक्यं साकाङ्क्षं (जैमि.सू.२।१।४६) २२६
अर्धचतुर्थमात्रोपासनया परं पुरुषम् (प्रश्नोप.५।५) ३८९
अर्भकोकः (ब्रह्मसू.१।२।७) २८३
अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्द्ध्वबुध्नस्तस्मिन् (बृहदा.उप.२।२।३) ४७९
अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तः (भग.गीता८।२१) ४७१, ४७२

अव्ययादाप् सुपः	(पाणि.सू.२।४।८२) १३९
अश भोजने	(धातुपा.क्र्यादि ५४) १४४, १४५
अशब्दम् अस्पर्शम्	(कठोप.१।३।१५) २९४, ४७४
अशूङ् व्याप्तौ	(धातुपा.स्वादि १८) १४४, १४५
अष्टवर्षं ब्राह्मणम् उपनीयत	(याज्ञ.स्मृ.१।२।२४) ६७
असङ्गो हि अयं पुरुषः	(बृह.उप.४।३।१५)५७,११२,३०४, ४५५
असत्यम् अप्रतिष्ठन्ते	(भग.गीता १६।८) ९८
असदेव इदम् अग्र आसीद्	(छान्दो.उप.६।२।१) , ५४
असद्वा इदमग्र आसीद्	(तैत्ति.उप.२।७) ११४
असन्नेव स भवति	(तैत्ति.उप.२।६) १७३, १७७, १९६, १९७
असन्नेव स भवति असद्ब्रह्मेति	(तैत्ति.उप.२।६) १९६
असौ वा आदित्यो देवमधु	(छान्दो.उप.३।१।१) ४२२, ४२५
अस्तमित आदित्ये	(बृहदा.उप.४।३।५) ४५०
अस्ति ब्रह्मेति चेद्	(तैत्ति.उप.२।६) १७३
अस्थूलमनणुः	(बृह.उप.३।८।८) ९,५४,९५,२०७, २९९
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणाम्	(भाग.पुरा.१०।१८।१९) ८०
अस्माद् लोकात् प्रेत्य	(तैत्ति.उप.२।८) १५९, १६०, १६१, १६४
अस्य लोकस्य का गतिरिति	(छान्दो.उप.१।९।१) १०३
अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश	(छान्दो.उप.१।११।७) २१२, २१५
अस्यैवानन्दस्य अन्यानि भूतानि	(बृहदा.उप.४।३।३२) १९४
अह हारे त्वा शूद्र तवैव	(छान्दो.उप.४।२।३) ४३०
अहं तु ते तव वक्ष्यामि यथा	(छान्दो.उप.४।१४।३) ३०२, ३०३
अहं ब्रह्मास्मि	(बृहदा.उप.१।४।१०) ३९९
अहं भक्तपराधीनः	(भाग.पुरा.९।४।६३) १४४
अहं मनुरभवमप्येव	(कैव.उप.१९) २४९
अहं मनुरभवम्	(बृहदा.उप.१।४।१०) २४८
अहं वैश्वानरो भूत्वा	(भग.गीता१५।१४) ३४९,३५०,३५२,३५३
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहम्	(भग.गीता.३।२७) ५४
अहरहर्ब्रह्मलोकं गच्छन्ति	(छान्दो.उप.८।३।२) ४३९
आकाश आनन्दो न स्यात्	(तैत्ति.उप.२।७) २१३
आकाशः तल्लिङ्गाद्	(ब्रह्म.सू.१।१।२१) १५
आकाशवत् सर्वगतश्च	(शत.ब्राह्म.१०।६।३।२१) ३५६, ३५७
आकाशादेव सर्वाणि भूतानि	(छान्दो.उप.१।९।१) २१४
आकाशो वै नामरूपयोर्निर्वहिता	(छान्दो.उप.८।१४।१) ४४०, ४४१

आज्यमसि सत्यमसि सत्यसाध्यक्ष्यमसि (तैत्ति.संहि.१।६।१।१) २९
आत्मनः आकाशः सम्भूतः (तैत्ति.उप.२।१) २१३
आत्मनस्तु कामाय सर्वं यिं भवति (बृह.उप.२।४।५) २४२
आत्मरतिः आत्मक्रीड (छान्दो.उप.७।२५।२) १४८
आत्मलाभाद् न परं विद्यते (आप.ध.सू.१।८।२२।२) ३६६
आत्मा इत्येव उपासीत (बृह.उप.१।४।७) ३१, ३९, ८३, ८९,
आत्मा देवानाम् (छान्दो.उप.४।३।६) ४३४
आत्मा वा अरे दृष्टव्यः श्रोतव्यो (बृहदा.उप.२।४।५) ३२, ७३, ११४, २६१
आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीद् (ऐत.उप.१।१) ११३, ११४, १२९
आत्मा वारे दृष्टव्यः श्रोतव्यः (बृह.उप.२।४।५) २३, २४, ४०, ४३, ८३
आत्मा वेदमेक एवाग्र आसीद् (ऐत.उप.१।१।१) १०६
आत्मानं चेद् विजानियाद् (बृहदा.उप.४।४।१२) ७०, ४६१
आत्मानं रथिनं विद्धि (कठोप.१।३।३) २९१,२९२,३०१, ४६७
आत्मानं श्लोकम् उपासीत (बृहदा.उप.१।४।१५) ३१
आत्मानं स्वयमकुरुत (तैत्ति.उप.२।७) २८४
आत्मानमेव इमं वैश्वानरं सम्प्रति (छान्दो.उप.५।११।६) ३४८, ३३९
आत्मानमेव लोकम् उपासीत (बृह.उप.१।४।१५) ८४
आत्मानम् अनुविद्य व्रजन्ति (छान्दो.उप.८।१।६) ३९९
आत्मान्तर्याम्यमृतः (बृह.उप.३।७।९) २११
आत्मेति उपासीत (बृहदा.उप.१।४।७) ४०, २५९
आत्मैव इदं सर्वम् (छान्दो.उप.७।२५।२) ९८, १४८
आत्मैव इदमग्र आसीत् पुरुषविधः (बृह.उप.१।४।१) १२१
आत्मैवेदं सर्वम् (छान्दो.उप.७।२५।२) ९४, १४८
आदित्या वा अस्माद् लोकात् (तैत्ति.संहि.१।५।) ४२०
आदित्यादिमतयः (ब्रह्म.सू.४।१।६) ४०
आदित्यो वा एष एतन्मण्डलम् (महाना.उप.१२।२) २०४, २८३
आदित्यो वा हिरण्मयः पुरुषः (बृहदा.उप.४।३।११) २८३
आद्यादिभ्यः उपसङ्ख्ङ्गानम् (पाणि.सू.वार्ति.५।४।४४) ४
आध्यात्मिकस्तु यः प्रोक्तः (भाग.पुरा.२।१०।८) २०३
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् (तैत्ति.उप.२।९) १६१, १६२, १६३, २६०
आनन्दमय आत्मा मे शुद्ध्यन्तां (महाना.उप.२०।२१) १५०
आनन्दमयम् आत्मानम् (तैत्ति.उप.२।८) १९२, २०२
आनन्दमयाद् अन्योऽन्तर आत्मा (तैत्ति.उप.२।८) १५६
आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादि ( ) १८१

आनन्दमानन्दमयो अवसाने (भाग.पुरा.२।२।३१) १८४, १९२
आनन्दशरीरश्चाहम् ( ) २७३
आनन्दांश्च पश्यति सः (बृहदा.उप.४।३।९) ४५२
आनन्दाद्ध्येव खलु इमानि (तैत्ति.उप.२।१) ४८,५३,६२,१२६, १२९
आनन्दो अजरो अमृतः (कौषी.उप.३।९) २४०, २४१, २४२
आने मुक् (पाणि.सू.७।२।८२) १३९
आब्रह्मभुवनाल्लोका (भग.गीता ८।१६) ११५
आम्नायस्य क्रियार्थत्वाद् (जै.सू.१।२।१) ३५, ८४, ८६
आवृत्तचक्षुः अमृतत्वम् इच्छन् (कठ.उप.२।१।१) ३३
आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति (कठोप.१।२।२१) १०, २८९

इ

इडो यजति ( ) १३२
इति सम्भृतसम्भारः पुरुषावयवैरहम् (भाग.पुरा.२।६।२७) ४१४
इत्याधिदैवतम्..अध्यात्मम् (तैत्ति.उप.) २०३
इदं सर्वं यदयमात्मा (बृहदा.उप.२।४।५/४।५।७) ९४
इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपतरवर्ति ( ) ४४९
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः (कठोप.१।३।१०,११) ४६५, ४६७, ४७३, ४७५, ४७६
इमं मे वरुणे ( ) ४७८
इमाः प्रजाः अहरहः गच्छन्त्यः (छान्दो.उप.८।३।२) ११९, ३९३
इयमेव ऋगग् अग्निः (छान्दो.उप.१।६) २००
इहैव प्राणाः समवलीयन्ते (नृसिंहोत्त.५) २४९
ईक्षतेर्नाशब्दम् (ब्रह्मसू.१।१।४) ९३, १०५
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देश (भग.गीता १८।६१)२७८,२८०,२८२,४११

उ

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः (भग.गीता १५।१७) ३६४, ४३८
उदरशराव आत्मानमवेक्ष्य (छान्दो.उप.८।८।१) ४०४
उदाहरणे जिह्वाच्छेदो (गौत्त.ध.सू.१२।४) ४३६
उदेति ह वै सर्वेभ्यः (छान्दो.उप.१।६।७) २०१, २०६
उभौ लोकौ सञ्चरति (बृहदा.उप.४।३।७) ४५०, ४५१
ऊर्ध्वोच्छ्वासी भवति (बृहदा.उप.४।३।३५) ४६०

ऋ

ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन् (श्वेता.उप.४।८) २९८
ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके (कठोप.१।३।१-१७) २९०, २९१, २९४,

३००, ४०३, ४७४, ४७५, ४६५
ऋतं सत्यं परं ब्रह्म (महाना.उप.१२।१) २९८
ऋते ज्ञानाद् न मुक्तिः ( ) १४१
ऋषिणां पूर्वचरितस्मरणं (तत्त्वदी.नि.सर्वनि.३३) ४२२

ए

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति ( ) ४१४
एकमेवाद्वितीयं (छान्दो.उप.६।२।१) ९५, २०७
एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते (भाग.पुरा.११।११।४) १०१
एकाकी न रमते (बृह.उप.१।४।३) ९६
एकादश प्रयाजान् यजति (तैत्ति.सं.६।३।७) १३२
एकोऽहं बहुस्याम् (छान्दो.उप.६।२।३) ७९, ३१२, ३३७
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः (श्वेता.उप.६।११) १७७
एको बहुधा शक्तियोगाद् (श्वेता.उप.४।१) ४७७
एतं संयद्वाम इत्याचक्षत (छान्दो.उप.४।१५।४) ३०५, ३०७
एतं ह वाव न तपति (तैत्ति.उप.२।९) १६६
एतद् अमृतम् अभयम् एतद् ब्रह्म (छान्दो.उप.४।१५।१) ३०७
एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म (प्रश्नोप.५।२) ३८८
एतद्वैतद् अक्षरं गार्गी (बृहदा.उप.३।८।८) ३८६
एतम् आनन्दमयम् आत्मानम् (तैत्ति.उप.२।८) १३०, १३१, १५८, १५९, १६२, १९५
एतम् इतः प्रेत्य अभिसम्भवितास्मीति (छान्दो.उप.३।१४।४) २७४
एतया निषादस्थपतिं याजयेत् (आप.श्रौ.सू.९।१४।१२) ४२८
एतस्मा अन्ताय धावति (बृहदा.उप.४।३।१९) ४५४
एतस्माद् जायते प्राणः (मुण्ड.उप.२।१।३) ८, ३३०, ३३६, ३३७, ३६९
एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि (बृहदा.उप.३।८।९) ३८७
एतस्यैव आनन्दस्य अन्यानि भूतानि (बृहद.उप.४।३।३२) १३७, १५८, १७९
एतावान् अस्य (ऋग्वेद ८।४।१७) १४७, २२१, २२२, २२८, २३०, २३४, ४०१
एतेन वै चित्ररथं कापेया (ताण्ड्यब्राह्म.२०।१२।५) ४३३
एवं पश्यन् एवं मन्वान (छान्दो.उप.७।२५।२) १४८, १६४
एवं विजानन् (छान्दो.उप.७।२५।२) १४८
एवं स मानसो हंसो (भाग.पुरा.४।२८।२४) १८२
एवं सततयुक्ता ये (भग.गीता २।१) ४७१

एवं हैवं विदं सर्वाणि भूतानि (बृहदा.उप.१।५।२०) ४५६
एवंविदम् (बृहदा.उप.४।३।३०) ४५६
एवमेव इमाः सर्वाः प्रजा (छान्दो.उप.८।३।२) ३९५
एष आत्मापहतपाप्मा (छान्दो.उप.८।१।५) ३९३, ३९५, ४०४
एष आत्मेति होवाच (छान्दो.उप.८।३।४) ३०५, ३०७
एष उ एव (कौषी.उप.३।८) १३६, २४५
एष उ एवैषु सर्वेष्वन्तरेषु (छान्दो.उप.८।७।४) ४०४
एष त आत्मा अन्तर्याम्यमृतम् (बृहदा.उप.३।७।३) ८६, ३२१
एष प्रज्ञात्मानन्दो अजरो अमृतः (कौषी.उप.३।८) २७२
एष मे आत्मा (छान्दो.उप.३।१४।३) २६८
एष लोकपाल एष लोकाधिपतिरेष (कौषी.उप.३।८) २३७, २४४
एष लोकाधिपतिः (कौषी.ब्रह्म.३।८) २४२
एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः (छान्दो.उप.१।६।७) २०४
एष सर्वेषु भूतेषु (कठोप.१।३।१२) ४७०, ४७५
एष ह्येव आनन्दयाति (तैत्ति.उप.२।७) १७९, १९०
एषः अपहतपाप्मा सत्यकामः (छान्दो.उप.८।१।५) ३९६
एषः ब्रह्मलोकः सम्राडिति (बृहदा.उप.४।४।२३) ४५५, ४६०
एषः सर्वेषु भूतेषु (कठोप.१।३।१२) ४७५
एषएव वा प्रथमो (ताण्ड्यब्राह्म.१६।१।२) ३९
एषएव साधु कर्म कारयति (कौषी.उप.३।९) ८६
एषा सौम्य ते अस्मद् (छान्दो.उप.४।१४।१) ३०३
एषो अनन्तो अव्यक्त आत्मा यो (श्रीरामोत्तर.उप.३।१) ३६१
एषो अस्य परमो लोकः (बृहदा.उप.४।३।२०) ४५०
ऐतदात्म्यम् इदं सर्वं (छान्दो.उप.६।८।७) ३२, ५६, ९५, ९८, ९९, १३५, ७९, ३२१

ओ

ओङ्कारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ( ) ३

क

क इत्था वेद यत्र सः (कठोप.१।२।२५) २८७, २८९
कं वरः एनम् एतत् सन्तं (छान्दो.उप.४।१।३) ४३१
कतम आत्मा (बृहदा.उप.४।३।७) ४५०
कतमा सा देवतेति प्राण इति होवाच (छान्दो.उप.१।११।५) २१८
करिष्ये वचनं तव (भग.गीता १८।७३) २८१
कर्तृकर्मणोः कृति षष्ठी (पाणि.सू.२।३।६५) ४४

कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानम् (कठोप.२।१।१) १११, १६१, ३०४
कस्मिन् तद् ओतं च प्रोतं च (बृहदा.उप.३।८।३) ३८५
कस्मिन्नु खलु आकाश ओतश्च ( ) ३८३
कस्मिन्नु खलु इन्द्रलोका ओताश्च (बृहदा.उप.३।६) ३८४
कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते (मुण्ड.उप.१।१।३) ३२४, ३३२
का साम्नो गतिः (छान्दो.उप.१।८।४) २१५
कार्मुकं तु परित्यज्य झषं सङ्क्रमते ( ) १६०
कार्यरूपेण नानात्वम् अभेदः (ब्रह्मसू.भास्क.भा.१।१।४) ८२
कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं (भाग.पुरा.११।१४।३) १०९, ४१२
कालो अनन्तो अजरो अमरः ( ) ३६१
किं कारणं ब्रह्म (श्वेता.उप.१।१) ४७७
किंज्योतिरयं जीवः (बृहदा.उप.४।३।२) ४४८, ४४९
किञ्ज्योतिरयं पुरुषः (बृहदा.उप.४।३।३) ४५०, ४५२
कृतप्रयत्नापेक्षे (ब्रह्मसू.२।३।४२) ८७
कृद्योगाच्च षष्ठी समस्यते (पाणि.सू.वा.२।२।३) ४५
केचित् स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे (भाग.पुरा.२।२।८) २६९, २६८, ३४८
को न आत्मा किं ब्रह्म (छान्दो.उप.५।११।१) ३३८
को ह्येवान्याद् (तैत्ति.उप.२।७) १३४, १७५, १७६
क्तिच्क्तौ सञ्ज्ञायाम् (पाणि.सू.३।३।१७४) ४०१
क्रतुमयः पुरुष (छान्दो.उप.३।१४।१) २७०, २७४
क्रतुरस्मिन् लोके पुरुषो भवति (छान्दो.उप.३।१४।१) २७०
क्रियान्तराकाङ्क्षोत्थापकतावच्छेदकत्वं ( ) ८९
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि (मुण्ड.उप.२।२।८) २४२

ख

खादिरो यूपो भवति (शत.ब्राह्म.३।६।२।१२) ३९

ग

गतिसामान्यात् (ब्रह्मसू.१।१।९) ११६
गायत्री वा इदं सर्वं (छान्दो.३।१२।१)२२०,२२२,२२८, २२९
गीती शीघ्री शिरःकम्पी (पाणि.शि.३२) ७
गुणपुरुषान्तरज्ञानात् कैवल्यम् ( ) ४७३
गोदोहनेन पशुकामस्य प्रणयेत् (आप.श्रौ.सू.१।१६।२) १९३

च

चक्षुषः चक्षुः (बृहदा.उप.४।४।१८) १५० २८५, ३५७
चक्षुषी उपदिशन्नुवाच एष वै सुतेजा ( ) ३६०

चतुर्थम् एकजातिस्तु शूद्रः (मनुस्मृ.१०।४) ४३४
चतुष्पात् षड्विधा गायत्री ( ) २३२
चत्वार उपरवाः प्रादेशमात्राः (आप.श्रौ.सू.११।११।१) २८३
चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषो अमानवः (छान्दो.उप.४।१५।५) ३०८
चरणेन भुवं लिखन्ति (भाग.पुरा.१०।२६।३०) १४८
चातुर्वर्ण्यमेके समामनन्ति ( ) ४३३
चिन्तां प्रकृतसिद्ध्यर्थाम् उपोद्घातं ( ) ५
चिबुकम् उपदिशन् उवाच एष वै ( ) ३६०
चेरतुः प्राकृतो यथा ( ) ४५२
चोः कुः (पाणि.सू.८।२।३०) १३९
चोदनालक्षणो अर्थो धर्मः (जैमि.सू.१।१।२) ३०, ३१

ज

जडो जीवोऽन्तरात्मेति व्यवहारः (तत्त्वदी.नि.१।३०) २२५
जनकं ह वैदेहं याज्ञवल्क्यो जगाम (बृहदा.उप.४।३,४) ४४२
जन्माद्यस्य यतः शास्त्रयोनित्वाद् (ब्रह्मसू.१।१।२) ९३, २६२
जात्याकृतिव्यक्तयः पदार्थः (न्यायसू.) १०९, ४१६
जानश्रुतिर्ह पौत्रायणः (छान्दो.उप.४।२।३) ४२९, ४३१
जायते अस्ति विपरिणमते (निरुक्त१।२) ५९
ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ (श्वेता.उप.१।९) ४७८
ज्ञानादेव हि कैवल्यम् ( ) ८३, १४१
ज्ञोविदर्थस्य करणे (पाणि.सू.२।३।५१) ४५
ज्यायान् आकाशाद्यावान् (छान्दो.उप.८।१।३) ४०१
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः (भग.गीता.१३।१७) २२१

त

तं चेद् ब्रूयुः (छान्दो.उप.८।१।४) ३९३
तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि (बृहदा.उप.३।१२।६) २६०, २७८, २८०, २९२, २९३, ३१२, ३४८
तं दुर्दर्शं गूढम् अनुप्रविष्टं (कठोप.१।२।१२) ३०१
तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते (बृहदा.उप.४।४।२) ४११
तं हैतमेके पशुबन्धएव उत्तरवेद्यां (आप.श्रौ.सू.१९।१४।४) ३७, २९६
तं होपनिन्ये (शत.ब्राह्म.११।५।३।१३) ४३४
तज्जलान् (छान्दो.उप.३।१४।१) २६६
ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामि (छान्दो.उप.७।१।१) ३८१
ततो महात्मनश्च (छान्दो.उप.४।३।५) ४३४

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा (भग.गीता १८।५५) १०१, ४७०
ततोऽसि सर्वम् (भग.गीता ११।४०) ९८
तत्तद्वपुः प्रणयसे (भाग.पुरा.३।९।११) ३५६, ३५९
तत्तु एवं भयं विदुषो अमन्वानस्य (तैत्ति.उप.२।७।१) ३५५
तत्तु समन्वयाद् (ब्र.सू.१।१।४) ८३, ९३
तत्तेजो असृजत (छान्दो.उप.६।२।३) १०६, ४८०
तत्तेषां न प्रियं यन् मनुष्या विद्युः ( ) ४८२
तत्त्वमसि (छान्दो.उप.६।८।७) २४६, ३९४
तत्प्रकृतवचने मयट् (पाणि.सू.५।४।२१) १७५
तथाक्षरात् सम्भवति इह विश्वम् (मुण्ड.उप.१।१।७) ३३२, ३३०
तथोत्तरत्र वक्ष्यते तदनन्यत्वाधिकरणे (ब्रह्मसू.२।१।१५) ६४
तदपि एषः श्लोको भवति (तैत्ति.उप.२।१।१) ४५८
तदुदिते सूर्ये अजुहोत् (तैत्ति.ब्राह्म.२।१।२) ४२७
तदेतत् सत्यं तद् अमृतं तद् वेद्धव्यं (मुण्ड.उप.२।२।२) ३६८
तदेतद् अक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिलम्(विष्णुपुरा.१।२२।६०) ४२१
तदेव तत्सह कर्मणेति लिङ्गं (बृहदा.उप.४।४।६) ४५८
तदेवाग्निः तद्वायुः तदादित्यः (श्वेता.उप.४।२) ४८१
तदेषाभ्युक्ता (तैत्ति.उप.२।१) १३९, १४६, १४७, १४९
तदैक्षत बहुस्याम् प्रजायेय (छान्दो.उप.६।२।१) १०६
तद् अन्वेष्टव्यं तद् विजिज्ञासि-तव्यम् (छान्दो.उप.८।१।१) ४०१
तद् ब्रह्म इति आचक्षते ( ) ३५८
तद् ब्रह्म इति उपासीत (तैत्ति.उप.३।१०।४) ३२
तद् य इह आत्मानम् अनुविद्य (छान्दो.उप.८।१।६) ३९८
तद् यथा रथस्यारेषु नेमिः अर्पिता (कौषी.ब्रह्म.३।८) २४५
तद् यो यो देवानां (बृहदा.उप.१।४।१०) ४२७
तद् वा अस्य एतदात्मकामम् (बृहदा.उप.४।३।२१) ४५९
तद्धैतत् पश्यन् ऋषिर्वामदेवः प्रतिपेदे (बृहदा.उप.१।४।१०) २४७
तद्यत एवैतं ब्रह्मलोकं (छान्दो.उप.८।५।) ३९४
तद्यथा अन (बृहदा.उप.४।३।३५) ४५६
तद्यथा राजानम् (बृहदा.उप.४।३।३८) ४५६
तद्यथेह कर्मचितो लोकः (छान्दो.उप.८।१।६) ३५
तद्वा अस्यै तदाप्तकामम् (बृहदा.उप.४।३।२१) ४५८
तद्विष्णोः परमं पदम् (कठोप.१।३।९) २२३
तद्वेद्धव्यं सौम्य विद्धि (मुण्डकोप.२।२।२) ३६८

तद्वैतत् (बृहदा.उप.१।४।१०) २०८
तद्वैतत् पश्यन् ऋषिर्वामदेवः प्रतिपेदे (बृह.उप.१।४।१०) २४७
तनूनपातं यजति ( ) १३२
तन्तु औपनिषदं पुरुषं पृच्छामि (बृहदा.उप.३।९।२६) १३, १६, ७३
तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् (ब्रह्मसू.१।१।६) ११७
तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व (तैत्ति.उप.३।१) ९, ११, ३४, १५२
तप्ते पयसि दध्यानयति (बौधा.श्रौ.सू.५।१) १३३
तमेतं वेदानुवचनेन (बृहदा.उप.४।४।२२) ७१, ४६१
तमेतम् आनन्दमयम् आत्मानम् (तैत्ति.उप.२।८) १७७, १७८, १९३, १९५
तमेव एकं जानथ (मुण्ड.उप.६।२।५) ३७२
तमेव एकम् (मुण्ड.उप.२।२।५) ३७२?
तमेव भान्तम् अनुभाति सर्वम् (मुण्डकोप.२।२।१०)१०४,४०७,४०८, ४०९
तमेव विदित्व अतिमृत्युमेति (श्वेता.उप.३।८) ४००, २७१
तरति शोकम् आत्मवित् (छान्दो.उप.७।१।३) ८३, ३८१
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वम् एति (कठोप.२।३।१६) ३९४
तर्काप्रतिष्ठानाद् (ब्रह्मसू.२।११) २५७
तस्मात् तत् सुकृतम् उच्यते (तैत्ति.उप.२।७) २९८
तस्मात् पूर्वं पिादस्यामृतं दिवि (छान्दो.उप.३ ।१२।६) २२७
तस्मात् साङ्गम् अधीत्यैव (पाणि.शि.४२) १३
तस्माद् अन्योऽन्तर आत्मा प्राणमयः (तैत्ति.उप.२।२) १५८
तस्माद् एकाकी न रमते (बृह.उप.१।४।३) ७९, १५२
तस्माद् यम् अहरहर्वा एवं वित् (छान्दो.उप.८।३।५) ४०६
तस्माद् वा एतस्माद् (तैत्ति.उप.२।२) ४७,४८, ५१, ५२, १५३. १२६, १२९, १८२, १९०, १९१, २६२
तस्माद् वा एतस्माद् विज्ञानमयाद् (तैत्ति.उप.२।५) १३०
तस्माद्वा एतस्माद् आत्मनः (तैत्ति.उप.२।१) ५४, ५७, ६१, ६२, ६४, ६५, ७०
तस्माद्वा एतस्माद् विज्ञानमयाद् (तैत्ति.उप.२।५) १३०
तस्मिन् लोकाः श्रिताः सर्वे (कठोप.२।२।८) ४०७, ४०८
तस्य अन्ते सुषिरं सूक्ष्मं तस्मिन् (महाना.उप.११।९) ३६२
तस्य इदमेव शिरः (तैत्ति.उप.२।१) १५४
तस्य एषएव शारीर आत्मा ( ) १३६
तस्य च कर्मचितो लोकः क्षीयते ( ) १९३
तस्य तान्तस्य हृदयमाच्छिन्दत् (तैत्ति.ब्राह्म.१।१।३) ४३८

तस्य निवासः (पाणि.सू.४।२।६९) ३४७
तस्य पुरुषविधताम् अन्वयं ( ) १८१
तस्य प्रियमेव शिरः (तैत्ति.उप.२।५) १२९, १३५, १७०, १७१
तस्य भासा सर्वम् इदं विभाति (मुण्ड.उप.२।२।१०) ४०८
तस्य यजुरेव शिरः (तैत्ति.उप.२।३) २६८
तस्य वा एतस्य पुरुषस्य (बृहदा.उप.४।३।९) ४५२
तस्य श्रद्धैव शिरः ( ) २७४
तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नाम (छान्दो.उप.८।३।४,५) ४०६
तस्य ह वा एतस्य वैश्वानरस्य (छान्दो.उप.५।१८।२) ३४३
तस्य ह वा एतस्य हृदयस्य (छान्दो.उप.३।१३।१) २२६
तस्यान्ते सुपिण्डं सूक्ष्मं (महाना.उप.११।९) २८१, ३६२, ३९२
तस्येदमेव शिरः अयं (तैत्ति.उप.२।१) १६३
तस्यैष एव शारीर आत्मा (तैत्ति.उप.२।५।१) १३६, १५५, १५६, १५७, १६६, १८१, १८३, १८९
ता आप ऐक्षन्त (छान्दो.उप.६।२।४) ८०
तान् ह अनुपनीय एतद् (छान्दो.उप.५।११।७) ४२८, ४३४
ताम् इन्द्रो मध्यतोपक्रम्य (तैत्ति.संहि.६।४।७।४) १७८
तावान् अस्य (छान्दो.उप.३।१२।६) २२८, २३०
तासां वृितं वृितम् (छान्दो.उप.६।३।३) ४८०
तिस्र आहुतीर्जुहोति द्वादश (तैत्ति.सं.२।३।९) १३२
तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ताः (प्रश्नोप.५।६) ३९०
ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् (श्वेता.उप.१।३) ४७८
ते यदन्तरा (छान्दो.उप.८।१४।१) ४४०
ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः (तैत्ति.उप.२।८) १५९, ४१२
तेजो वै घृतम् (तैत्ति.ब्राह्म.३।१२।५।१२) ३७
तेषां प्रकृतिवैचित्र्याद् (भाग.पुरा.११।१४।८) ३८
तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेद् (मुण्ड.उप.३।२।१०) ३३६, ३७२
त्रयं वा इदं नाम रूपं कर्म च (बृह.उप.१।६।१) ७८
त्रिपादस्यामृतं दिवि (छान्दो.उप.३।१२।६) २२३, २२८, २३३
त्वं स्त्री त्वं पुमानसि (श्वेता.उप.४।३) ४७३
त्वमेव मे वृणीष्व यं त्वं (कौषी.उप.३।१) २४२
त्वम् असि (छान्दो.उप.६।८।७) २३

द

दधाति तिलकः कृत ( ) २७९

दर्शपूर्णमासौतु पूर्वं व्याख्यास्यामः (आप.श्रौ.सू.१।१) १८
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः (महाना.उप.५।७) १०७
दिव्यं ददामि ते चक्षुः (भग.गीता११।८) ३०४
दिव्ये चक्षुषि मनोरूपे ( ) ४०४
दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः (मुण्ड.उप.२।१।२) ३२९, ३३६
देवताद्वन्द्वे च (पाणि.सू.७।३।२१) ३४७
देवा वै सत्रमासत (तैत्ति.संहि.२।३।३) ४१३, ४२७
देवाः श्रद्धां जुह्वति ( ) १८६
देवायते यजमानाय शर्म (तैत्ति.संहि.३।५।५।३) १४
देवाशीकासुम्नाश्वर्त्तावङ्कुना (तैत्ति.प्राति.३।२) १५
देवैरत्रापि (कठोप.१।१।२२) ४७६
देहोऽपि दैववशगः (भाग.पुरा.३।२८।३८) ४५९
देहोऽसवोऽक्षा मनवो (भाग.पुरा.६।४।२५) ३१९
दोधूयति नभस्वति (भाग.पुरा.२।१०।२०) ३९७
द्यावाभूमी जनयन् देव एकः (श्वेता.उप.३।३) १०७
द्व्यचश्छन्दसि (पाणि.सू.४।३।१५०) १७७, २०२
द्वा सुपर्णा सयुजा (मुण्ड.उप.३।१।१; ऋक्.संहि. १।१६४।२०; श्वेता.उप.४।६) १८२, २९६, ३०१, ३७३, ४८१
द्वादशशतं ददाति अनुबन्ध्याम् ( ) ६७
द्वे ब्रह्मणि वेदितव्ये मूर्तं चामूर्तं च (मैत्रा.उप.६।२२) ३३३
द्वे विद्ये वेदितव्ये (मुण्डकोप.१।१।३,४) ३२४, ३२९

ध

धनुः गृहीत्वा औपनिषदं महास्त्यं शरं (मुण्डकोप.२।२।३) ३६८
धन्वन्निव प्रपा असि (ऋग्वेद१०।४।१) ९, ४२०
धातुः प्रसादाद् (महाना.उप.१०।१) ७३
ध्यायतीव लेलायतीव (बृहदा.उप.४।३।७) ४५१
ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ति (आन.हृद.५५) २०९

न

न अन्यत् पश्यति (छान्दो.उप.७।२४।१) ३८२
न कर्मणि षष्ठी ( ) ४४
न काञ्चन परिहरेद् (छान्दो.उप.२।१३।२) ४३५
न किञ्चिद् अवेदिषम् ( ) ३९५
न गन्धं विजिज्ञासीत (कौषी.उप.३।८) २४५

न जायते म्रियते वा विपश्चित् (कठोप.१।२।१८) २८५, २८९, २९२, २९५, ३०१
न जायते म्रियते वा (भग.गीता २।२०) ३००
न तत्र सूर्योभाति न चन्द्रतारकं (कठो.उप.२।५।१५) १०४, ४०७
न तदश्नोति कञ्चन, न तदश्नोति (बृहदा.उप.३।८।८) १४६, ३८६
न तद् भासयते सूर्यो (भग.गीता१५।६) १०४, ४०९
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते (श्वेता.उप.६।८) ८
न तस्य प्राणाः उत्क्रामन्ति (बृहदा.उप.४।४।६) ४५९
न निषिद्धम् आचरेद् ( ) ८६
न प्राणेन नापानेन मर्त्योजीवति कश्चन (कठोप.२।२।५) २५४
न प्रेत्य सञ्ज्ञास्ति (बृहदा.उप.२।४।१२) १२०
न बिभेति कुतश्चन (तैत्ति.उप.२।९) १६६
न वक्तुरात्मोपदेशाद् ( ) २५३
न वा अरे (बृहदा.उप.२।४।) ३९२
न वाचं विजिज्ञासीत (कौषी.उप.३।८) २४०, २४४, २५१
न विलक्षणत्वाद् (ब्रह्मसू.२।१।४) २५७
न वै क्वचिद् मे मनसो मृषा गतिः (भाग.पुरा.२।६।३३) २७२
न शूद्राय मतिं दद्यात् (मनुस्मृ.४।८०) ४३४
न शूद्रे पातकं किञ्चिद् (मनुस्मृ.१०।१२) ४३४
न स पुनरावर्तते (निरा.उप.३३) १०१, ३०८
न साधुना कर्मणा भूयान् भवति (कौषी.उप.३।९) २४५
न हि प्रज्ञापेतोऽर्थः कश्चन (कौषी.ब्राह्म.३।३) २५६
न हिंस्यात् सर्वा भूतानि (कूर्मपुरा.१६।१) २७७
नन्वेष वज्रस्तव शक्र तेजसा (भाग.पुरा.६।११।२०) २४८
नरे च सञ्ज्ञायाम् (पाणि.सू.६।३।१२९) ३४७
नाचिकेतम् उपाख्यानम् (कठोप.१।३।१६) ४७५
नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति (ताण्ड्यब्राह्म.१६।१।८) ५५
नान्यत् पश्यति नान्यत् श्रुणोति (छान्दो.उप.७।२४।१) १७७
नामरूपे व्याकरवाणि (छान्दो.उप.६।३।२) २९७
नायमात्मा प्रवचनेन (मुण्ड.उप.३।२।३) १०१, १४१ , ३६४
नासदासीद् नोसदासीद् (ऋग्वेद १०।११।१२९।१) ५४
नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः (ऐत.उप.१।४) ३९७
नासिके निरभिद्येतां दोधूयति (भाग.पुरा.२।१०।२०) ३९७
नाहं वेदैः (भग.गीता ११।५२) १४३

निचाय्यत्वाद् एवं व्योमवच्च (ब्रह्मसू.१।२।७) ४०७
नित्यं वृद्धशरादिभ्यः (पाणि.सू.४।३।१४४) १७६
नित्यशुद्धमुक्तस्वभावम् (नृसिं.ताप.उप.९) ९, ४९, ५५, ६६ २५९
निर्विकारी निरञ्जनः ( ) ९७
निषादस्थपतिं याजयेद् (आप.श्रौ.सू.९।१४।१२) ४२८
निष्कलं ...शान्तम् अनवद्यम् (श्वेता.उप.६।१९) १२, ५३, ५७, ९५, ९७, ९९, ११२, २५२
नेतरो अनुपपत्तेः (ब्रह्मसू.१।१।१५) २११
नैतत् चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे (भाग.पुरा.३।५।१९) ३८६
नैतद् अब्राह्मणो विवक्तुम् (छान्दो.उप.४।४।५) ४३५
नैव किञ्चित् करोमीति ४२
नैषा तर्केण मतिरपनेया (कठोप.२।९) १०, ३५५, ३६२
न्यग्रोधफलमाहर (छान्दो.उप.६।२।१) ९
न्यास इत्याहुः मनीषिणो ब्रह्माणं (महाना.उप.१२।३) ३४४

प

पञ्चस्वधिकरणेषु अधिलोकम् (तैत्ति.उप.१।३।१) ३१७
परंज्योतीरूपं सम्पद्य स्वेन (छान्दो.उप.८।३।४) ४०५
परमे व्योमन् प्रतिष्ठित (तैत्ति.उप.३।६) २१३
परा यया तदक्षरम् अधिगम्यते (मुण्ड.उप.१।१।५) ३२९
पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूः (कठोप.२।१।१) २१, ३०४
परात् परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते (प्रश्नोप.५।५) ३८९
परात्तु तच्छ्रुतेः (ब्रह्मसू.२।३।४१) २५५
परिपश्यन्ति धीराः (मुण्ड.उप.१।१।६) ३२९
परोक्षं च मम प्रियम् (भाग.पुरा.११।२१।३५) २९९
परोक्षप्रिया इव हि देवाः (बृहदा.उप.४।२।२) १६८
परोक्षप्रिया वै देवाः (ऐत.उप.१।३।१४) २९९, ३८६
परोक्षवादो वेदोऽयम् (भाग.पुरा.११।३।४४) १६९, २९९.
पातालमेतस्य हि पादमूलम् (भाग.पुरा.२।१।२६) २६७
पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थिति पदो (भाग.पुरा.२।६।१८) २३२
पादोस्य विश्वा(सर्वा!) भूतानि (छान्दो.उप.३।१२।६) २२४, २२५, २३०, २३१, २३२
पिङ्गाः शिरा वातवहा नीलाः (सुश्रु.संहि.) ४५४
पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां (मुण्ड.उप.२।१।५) ३२९
पुरश्चक्रे द्विपदः (बृह.उप.२।५।१८) १५४, १६३, १७०

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं (ऋग्वेद १०।९०।२;शु.यजु.संहि.३१।२) १४७, ३४६
पुरुषः स परः पार्थ (भग.गीता ८।२२) ३६४
पुरुषएव इदं विश्वम् (मुण्डकोप.२।१।१०) ३३१
पुरुषत्वे च मां धीराः (भाग.पुरा.११।७।२१) ४०७
पुरुषविधो अन्वयोऽत्र चरमः (भाग.पुरा.१०।८४।१७) १८९
पुरुषे अन्तःप्रतिष्ठितं वेदः (शत.ब्राह्म.१०।६।१।११) ३५१
पूर्णकाम (श्वेता.उप.६।१९) ९९
पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् (बृहदा.उप.५।१।१) १२१
पूर्वरूपं म लरूपं च सृष्टं ( ) १०७
पृथिव्यकारः स ऋग्वेदः ( ) ३८९
पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम् (पाणि.सू.६।३।१०९) १४३
प्रकृतिवद् विकृतिः कर्तव्या (आपोदेवी) १८४
प्रकृत्यादिभ्यः (वार्ति.क्र.१३८; पाणि.सू.२।३।१८) ३९८
प्रजा अहरहः गच्छन्त्य एतं (छान्दो.उप.८।३।२) ३९४
प्रजापतिः अकामयत प्रजाः सृजेय (तैत्ति.संहि.३।१।१।१) ५१, ६५
प्रजापतिरकामयत प्रजायेय (तैत्ति.संहि.७।१।१) ६३, ८८, ४२७
प्रजापतिः यज्ञान् असृजत अग्निहोत्रं च (तैत्ति.संहि.) ८८
प्रजापतिः संवत्सर (महाना.उप.१२।३) ३४४
प्रणवो धनुः शरो हि आत्मा (मुण्डकोप.२।२।४) ३६८
प्रतर्दनो ह वै दैवोदासिः (कौषी.उप.३।१) २३६
प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यते (पाणि.सू.वा.२।२।१०) ४४
प्रतिब्रवीमि तदु मे (कठोप.१।१।१४) ४७५
प्रत्यगात्मानम् ऐक्षद् (कठोप.२।१।१) १८८
प्रधानक्षेत्रपतिर्गुणेशः (श्वेता.उप.६।१६) २६४
प्रलपन् विसृजन् गृह्णन् (भग.गीता५।९) ४२
प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता (छान्दो.उप.१।११।४) २१६
प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञः (छान्दो.उप.) ३३८
प्राजापत्यान् शतकृष्णलान्निर्वपेद् ( ) ४१३
प्राणं तर्हि वागप्येति, प्राणं चक्षुः (शत.ब्राह्म.१०।३।३।६) २१९
प्राणं देवा अनु प्राणन्ति (तैत्ति.उप.२।३) १८८
प्राणः तथानुगमाद् (ब्रह्मसू.१।१।२७) २५५
प्राणशरीरः (तैत्ति.उप.३।११।१) २६८
प्राणस्तथा (ब्रह्मसू.१।१।२८) २७२, ४३८

प्राणस्य प्राणम् उत चक्षुषः चक्षुः (बृहदा.उप.४।४।१८) १५१, २१८
प्राणा वा ऋषयः (बृहदा.उप.२।२।३) ४७९
प्राणेन ह्येव अमुस्मिंन् लोके (कौषी.उप.३।२) २४१
प्राणो वा अहम् अस्मि (कौषी.उप.३।२) २४१, २४३, २५६
प्राणो वै बलम् (बृह.उप.५।१४।३) २४३
प्राणो हि देवता तद् यद् भक्तं (छान्दो.उप.५।१०।१) ३५१
प्राणोहम् अस्मि प्रज्ञात्मानं (कौषी.उप.३।२) २४४
प्रादेशमात्रमभिविमानम् (छान्दो.उप.५।१८।२) ३४५, ३६२
प्रादेशमात्रम् इह वै देवाः सुविदिता (वाजसनेयिब्राह्मणे) ३६०
प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् (मुण्ड.उप.१।२।१३) ३३६

ब

बर्हिः यजति (तैत्ति.सं.२।६।१)
बहिश्चेत् प्रकटः स्वात्मा (सन्न्या.निर्ण.११) १८४
बहु स्याम् (छान्दो.उप.६।२।३) ७९, ८२, ९७, ३१२, ३५६, ३९७, ३९८
बीजं मां सर्वभूतानां (भग.गीता ७।१०) ४८१, ४७३
ब्रह्म च क्षत्रं च (साङ्ख्या.गृ.सू.३।३।६) ३००
ब्रह्म पुच्छम् (तैत्ति.उप.२।५) १७२, १७३, २२३
ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति (मुण्ड.उप.३।२।९) १००, ३९४
ब्रह्मणः सायुज्यं सलोकताम् आप्नोति (महाना.उप.१०।२) २७७
ब्रह्मणा विपश्चिता (तैत्ति.उप.२।१)७४ १२८,१६०,१८१,१९३
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि (भग.गीता १०।८-१०) ४२
ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा (तैत्ति.उप.२।५) १९६, १९७
ब्रह्मपुरे (मुण्ड.उप.२।२।७) ३७०
ब्रह्मवादिनो वदन्ति (श्वेता.उप.१।१) ४७७
ब्रह्मविद आप्नोति परम् (   ) १२८
ब्रह्मविदः पञ्चाग्नयः त्रिणाचिकेता (कठोप.१।३।१) २९९
ब्रह्मविदाप्नोति (तैत्ति.उप.२।१)५, ६,३४,४३,४६, ४९, ५०, ५२, ५७, ६२, ८४, १००, १२३, १२७, १३९, १३८, १४१, १४५, १४६, १४९, १५८, १५९, १६८, १६९, १७२, १७३, १९३, १९५, १९८, २०२, २६०, २७१, ३३२, ३६७, ३८९, ४७१, ४७२
ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति (मुण्ड.उप.३।२।९) १००, १६१

ब्रह्मसंस्थो अमृतत्वम् एति (छान्दो.उप.२।२३।१) २६१
ब्रह्मा देवानाम् (तैत्ति.संहि.३।४।११) ४२७
ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः (भग.गीता ४।२४) ९०
ब्रह्माहम् अस्मि ( ) २७३
ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति (बृह.उप.४।४।६) ८३, १९२, २५०, ४५१, ४५९
ब्रह्मैवेदम् अमृतं पुरस्ताद् (मुण्डकोप.२।२।११) ३७२
ब्रुवो वचिः (पाणि.सू.२।४।५३) १३९

भ

भक्तस्य अनुग्रहार्थं वै ब्रह्मणो ( ) ३५९
भक्तानुग्रहार्थं हि ब्रह्मणो रूपकल्पना ( ) २०४
भक्तिरस्य भजनं (भक्तिसू.१।३) २५९
भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपायः (भाग.पुरा.७।९।९) ९
भक्त्या त्वनन्यया शक्यः (भग.गीता ११।५४) १४३
भक्त्या माम् अभिजानाति (भग.गीता १८।५५) १३९
भक्त्यार्पयन्ति ये मह्यं तवापि (अगस्त्यसं.) २८७
भक्त्याहमेकया ग्राह्यः (भाग.पुरा.११।१४।२१) १४३
भजति रसति (गोपा.ताप.उप.१।१) २५९
भीषा अस्माद् वातः पवते (तैत्ति.उप.२।८) १८८, १९०, २११, ४३८
भुङ्क्ते भोजयते हरिः ( ) ५७
भृगुर्वै वारुणिः (तैत्ति.उप.३।१) ५१, १२३
भ्रुवोः प्राणस्य च यः सन्धिः (श्रीरामोत्तर.उप.३।१) ३६१

म

मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्नकार्त्स्न्येषु (अम.को.३।३।२४७) १९
मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्या सह (छान्दो.उप.१।१०।१) २१६
मत्वा धीरो न शोचति (कठोप.६।६)
मत्सरी नोपदेष्टव्यः ( ) ४३१
मनसानुद्रष्टव्यः (बृहदा.उप.४।४।१९) २४, २५, १११
मनसोयं मनो विदुः (बृहदा.उप.४।४।१८) ३५७
मनुरहं सूर्यश्च (बृह.उप.१।४।१०) ७९
मनो ब्रह्म इति उपासीत (तैत्ति.उप.३।४) २२९
मनोमयः प्राणशरीरः (छान्दो.उप.३।१४।२) २७३, २७४
मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितो (मुण्ड.उप.२।२।७) २६७, २६८, ३७०, ३७०, ३७१

मनोस्य दिव्यं चक्षुः	(छान्दो.उप.८।१२।५) ४०४
मन्तारं विद्यात्	(कौषी.ब्राह्म.३।८) २५६
मन्मना भव मद्भक्तः	(भग.गीता७।३४) २८०
ममैवांशो जीवलोके	(भग.गीता १५।७) २२५
मय्येव सकलं जातम्	(कैव.उप.१९) ४०५
मय्येव सकलं जातम्	(कौषी.उप.१।१९) २४८, २४९
मयड्वैतयोः भाषायाम्	(पाणि.सू.४।३।१४३)१७४,१७६,१७७, २०२
मयि सर्वमिदं प्रोतं	(भग.गीता.७।७) २५४, ३८४, २५३
महतः परम् अव्यक्तम्	(कठोप.१।३।११) ४७४
महद्भयं वज्रम् उद्यतम्	(कठोप.२।३।२) ४३७
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा	(कठोप.१।२।२२) २९२, २९५, ४७६
मा ते मूर्धा व्यपतद् अनतिप्रश्न्या	(बृहदा.उप.३।६।१) ३५५
मा मोहमापद्यथा, अहमेवैतत्	(प्रश्नोप.२।३) २५१
मामेव विजानीहि	(कौषी.उप.३।१) २४०, २४२, २५३
माया ह्येषा मया सृष्टा	(महा.भा.१२।३३९।४५) २०९
मासम् अग्निहोत्रं जुह्वति	( ) १३३
मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः	(भाग.पुरा.६।१४।५,६) १४३
मुखं व्याकरणम्	( ) १७८
मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः	(सांख्यका.३) ६३, ४७६
मृता वा एषा त्वगमेध्या	(कठोप.३) २०२, २०३
य	
य आत्मनि तिष्ठन् आत्मनोन्तरः	(बृहदा.उप.३।७।२३) ३१८
य आदित्ये तिष्ठन् आदित्याद् अन्तरः	(बृह.उप.३।७।९) २१०, २२२
य इमञ्च लोकं परञ्च लोकं	(बृदा.उप.३।७।१) ३१३
य इहात्मानम् अनुविद्य व्रजन्ति	(छान्दो.उप.८।१।६) ३९३
य एको वर्णो बहुधाशक्तियोगाद्	(श्वेता.उप.४।१) ४७७
य एतद्	(कठोप.२।३।२) ४३७
य एतान् एवं पञ्च पुरुषान्	(छान्दो.उप.३।१३।६) २२६
य एते शतं प्रजापतेरानन्दाः	(तैत्ति.उप.२।८) १४०
य एव अन्तर्यामी अक्षिणि पुरुषो	( ) ३१३
य एव प्रत्यबुध्यत	(बृहदा.उप.१।४।१०) २४८
य एवं वेद	(तैत्ति.उप.३।६) ९०
य एवं वेद अहं ब्रह्मास्मि	(बृहदा.उप.१।४।१०) ४००
य एवं वेद इति अधिदैवतम्	( ) २०३

य एवं वेद प्रतितिष्ठति (तैत्ति.उप.३।६) ९०
य एवास्मि स सन् यजे ( ) ९०
य एष सम्प्रसादो अस्मात् (छान्दो.उप.८।१२।३) ४३८
य एष सुप्तेषु जागर्ति (कठोप.२।२।८) ४०७, ४०८
य एषो अक्षिणि पुरुषो दृश्यते (छान्दो.४।१५।१)३०२,३०४, ३०५, ३०६
य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः (छान्दो.उप.१।६।६) २७५, २७६
य सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा (मुण्ड.उप.१।१।९) ३७०
यं पृथिवी न वेद (बृहदा.उप.३।७।३) ३१८, ३१९
यः आत्मनि तिष्ठन् (श.प.१४।५।३०?) ३२४
यः एषोऽन्तरक्षिणि (छान्दो.उप.४।१५।१) २०३
यः कारणानि निखिलानि (नारद.प.उप.९।२) ४७९
यः तर्केण अनुसन्धत्ते सः (मनुस्मृ.१२।१०६) ३५९
यः पुनः एतत्त्रिमात्रेण ॐइति (प्रश्नोप.५।५) ३९०
यः पूर्वस्य (तैत्ति.उप.२।३) १५५, १८४
यः पृथिव्यां तिष्ठन् (बृहदा.उप.३।७।३) ३१३, ३२३
यः सर्वज्ञः सर्वविद् (मुण्ड.उप.१।१।९) ७४, ३३४
यः सिक्तरेताः स्यात् (तैत्ति.संहि.५।५।४) ४१७
यजेत स्वर्गकामः (आप.श्रौ.सू.१०।२।१) ८७
यज्ञस्तपस्तीर्थयात्राप्रव्रज्यामन्त्रसाधनं ( ) ४३५
यज्ञेन यज्ञम अयजन्त देवाः (ऋग्वेद १०।९१।१६) ४१३
यज्ञो वै विष्णुः (तैत्ति.ब्राह्म.१।२।५।१) ७१,८६,९०, ११०
यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते (तैत्ति.उप.३।१) ९, ३२, ४०, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१, ५३, ६१, ६२, ६६, ७३, ७६, ८३, १०४, ११२, १२६, २१४, २६२, २८८, ४१९
यतो वाचो निर्वतन्ते (तैत्ति.उप.२।४) १०४, १०५ १६१, १६८, १७७, १८८, २५९, २५९, २६१, २६३
यत्र एतद् ऊर्ध्वाच्छ्वासीभवति (बृहदा.उप.४।२।१) ४४९
यत्र त्वस्ये (बृह.उप.४।५।१५) १४७
यत्र देवः क्रतुभिः विभाति ( ) ४०७
यत्र नान्यत् पश्यति (छान्दो.उप.७।२४।१) १४८, ३१८, ३८२
यत्र हि द्वैतमिव भवति (बृहदा.उप.२।४।१४) १२०, १४६, ३८२
यत्रतु अस्य सर्वमात्मैव अभूत् (बृहदा.उप.२।५।१५) १४६, १४७
यत्रैतत् पुरुषः स्वपिति नाम सता (छान्दो.उप.६।८।१) ११८

यथा कप्यासं पुण्डरीकम्	(छान्दो.उप.१।६।७) २०३
यथा पुष्करपलाश आपो न	(छान्दो.उप.४।१४।१३) ३०५
यथा मत्स्यादिरूपाणि धत्ते	(भाग.पुरा.१।१५।३५) २०८
यथा व्रीहिर्वा यवो वा श्यामाको वा	(शत.ब्राह्म.१०।६।३।२) २७५, २७७
यथा सुदिप्तात्पावकाद् विस्मु लिङ्गाः	(मुण्डकोप.२।१।१) ३६९
यथाक्रमो अयं परलोकस्थान	(बृहदा.उप.४।३।९) ४५७
यथैकशतं वर्षाणि प्रजापताविन्द्रो	(छान्दो.उप.८।११।३) ४१३
यथैवेह कर्मजितो लोकः क्षीयते	(छान्दो.उप.८।१।६) ३९८
यदग्ने रोहितं रूपं	(छान्दो.उप.६।४।१) ४८१
यदा वै पुरुषः स्वपिति	(शत.ब्राह्म.१०।३।३।६) २१९
यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते	(कठोप.२।३।१४; बृहदा.४।४।७) ४५९
यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्ये अनात्म्ये	(तैत्ति.उप.२।७) ११०, ११५, १३५
यदाङ्क्ते चक्षुरेव	(तैत्ति.सं.६।१।१) ४०
यदादित्यगतं तेजो जगद् भासयते	(भग.गीता१५।१२) ४०९
यदि प्रयास्यन् नृपपारमेष्ठ्यम्	(भाग.पुरा.२।२।२४) ४५९
यदिदं किञ्च जगत् सर्वं	(कठोप.२।६।२) ४३७
यदिदं सर्वम् ओतं च प्रोतं च	(बृहदा.उप.३।१) ३८५
यदेकम् अव्यक्तम् अनन्तरूपं	(महाना.उप.१।१) ३५६
यदेव विद्यया करोति	(छान्दो.उप.१।१।१०)४१,६७,६९,७१,८९
यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्	(तैत्ति.उप.२।७) २१४, २१६
यद् ऊर्ध्वं याज्ञवल्क्य दिवो यद्	(बृहदा.उप.३।८।३) ३८५
यद् गत्वा न निवर्तन्ते	(भग.गीता१५।६) १९८
यद् यद् धिया त उरुगाय	(भाग.पुरा.३।९।११) ३५६, ३५९
यद् वसूनां प्रातःसवनम्	(तैत्ति.ब्राह्म.१।५।११) ४२७
यद्धि पश्यन्ति मुनयो	(भाग.पुरा.१०।२८।१५) १४७
यद्यद् आचरति श्रेष्ठः	(भग.गीता३।२१) ८८
यद्यु ह वा एतत् श्मशानं	(व.ध.सू.१८।११,१२) ४३५
यद्येष आकाश आनन्दो न स्याद्	(तैत्ति.उप.२।७) १७५
यद्वै तद् ब्रह्म	(छान्दो.उप.३।१२।७) २२८
यमेवैष वृणुते	(मुण्ड.उप.३।२।३) १६९
यम् आदित्यो न वेद	(बृहदा.उप.३।७।९) २११
यवागूं पचति	( ) ३५६
यश्च असौ आदित्ये	(तैत्ति.उप.२।८) १९९, २८३
यश्चक्षुषि तिष्ठन् चक्षुषोन्तरः	(बृहदा.उप.३।७।१८) ३०६

यस्तु अविज्ञानवान् भवति (कठोप.१।३।७) २९२, ४६७
यस्तु एतम् एवं प्रादेशमात्रम् (छान्दो.उप.५।१।१८) ३३९, ३४०
यस्तु विज्ञानवान् भवति (कठोप.१।३।५) २९४
यस्मिन् इदं सञ्च विचैति सर्वं (महाना.उप.१।२) ६१
यस्मिन् इदम् ओतं च प्रोतं च (शाण्डि.२।१।२) ३६६
यस्मिन् द्यौः (मुण्ड.उप.२।२।५)२६७,३६५,३८६, ४०८
यस्य निःश्वसितं वेदाः (बृहदा.उप.२।४।१०) ४१९
यस्य पर्णमयिर्जुहुर्भवति (तैत्ति.सं.३।५।७।२) ६७
यस्य पृथिवी शरीरम् (बृहदा.उप.३।७।२) ३२३
यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत (कठोप.१।२।२५) २८५, २८६, २८८, २८९, २९०, २९७
यस्य भासा सर्वम् इदं विभाति (भाग.पुरा.१०।१३।५५) २०२
यस्य भूयांसो यज्ञक्रतवः (तैत्ति.संहि.३।१) २६७
यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यस्य (बृहदा.उप.३।७) १६७
यस्य स्याद् अद्धा न (छान्दो.उप.३।१४।४) २७४
यस्यानुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्मा (बृहदा.उप.४।४।१३) ४६१, ४६२
या इयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये (कठोप.१।१।२०) २९९
या एता हृदयस्य नाड्यः (छान्दो.उप.८।६।१) ३९४
या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्रपादाब्ज (भाग.पुरा.१।१९।६) १६७
याज्ञवल्क्य किं ज्योतिरयं पुरुषः (बृहदा.उप.४।३।२) ४४१
यावदधिकारम् (ब्रह्मसू.३।३।३२) ४२६
यावान् वा अयम् आकाशः (छान्दो.उप.८।१।३) ४०७, ४१०
ये अन्नं ब्रह्मोपासते (तैत्ति.उप.२।२) ५१, १३१
ये त्वक्षरम् अनिद्र्देश्यम् (भग.गीता १२।३) ३८८
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यम् (मुण्ड.उप.२।१३) ३३५
येऽयं प्रेते विचिकित्सा (कठोप.१।१।२०) २९२,२९९, ४७६
यो अन्यथा सन्तम् आत्मानम् (महाभा.२५५।४) १०
यो अयं भगवो अप्सु परिख्यायते (छान्दो.उप.८।७।४) ४०४
यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं (श्वेता.उप.६।१२) २८०, ४२७
यो यो देवानां प्रत्यबुध्यत सएव (बृहदा.उप.१।४।१०) ४१२
यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको (श्वेता.उप.५।२) ४७८, ४७९
यो वा एतद् अक्षरम् अविदित्वा गार्गि (बृहदा.उप.३।८।१०) ३८७
यो विज्ञाने तिष्ठन् (बृहदा.उप.३।७।२२) ३२४
यो वेद निहितं गुहायां (तैत्ति.उप.२।१।१) १८७

यो वै प्राणः सा प्रज्ञा (कौषी.ब्राह्म.३।३) २५२, २५५, २५६
यो वै भूमा तत् सुखम् (छान्दो.उप.७।२३।१) ३७३, ३८२
योऽयं विज्ञानमयम् (बृहदा.उप.४।४।२२) ४६२
योऽयं विज्ञानमयो ज्ञानरूप (बृहदा.उप.४।३।७) ४५०
योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात् ( ) ३२९

र

रयिक्व इमानि षट् शतानि (छान्दो.उप.४।२।२) ४३०
रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दीभवति (तैत्ति.उप.२।७) १९०
रसो वै सः (तैत्ति.उप.२।७) १५८

ल

लक्ष्यं सर्वगतं चैव शरो मे (रुद्रहृ.उप.३७) ३६७, ३६८
लघूनि सूचितार्थानि स्वल्पाक्षरपदानि ( ) ३
लिङ्गभूयस्त्वात् तद्धिबलीयस्तदपि (ब्रह्मसू.३।३।४३) १४९
लोकं वा व ते अवोचन् (छान्दो.उप.४।१४।३) ३०४

व

वक्तारं विद्याद् (कौषी.उप.३।८) २४०
वर्म वा एतद् यज्ञस्य ( ) ३९
वशे कुर्वन्ति मां भक्त्या (भाग.पुरा.९।४।६६) १४४
वषट्कारौ वै गायत्र्यै ( ) ८६
वस द्वात्रिंशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यम् (छान्दो.उप.८।७।३) ११
वसूनयाजयद् (तैत्ति.संहि.७।१।५) ४२६
वाङ्मनोगोचरातीतं धिा (भाग.पुरा.११।४।३–४) ७९
वाचं धेनुम् उपासीत (बृह.उप.५।८।१) ९, २४३
वाचारम्भणं विकारः (छान्दो.उप.६।१।४) ९५
वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता (तैति.संहि.२।१।१।१) ३९
विजानीयाद् (बृहदा.उप.४।३।३१) ४५४
विजिज्ञासितव्यं, तं चेद् ब्रूयुः (छान्दो.उप.८।१।२) ३९१
विज्ञानं ब्रह्म चेद् वेद (तैत्ति.उप.२।५) २६९, २७०
विज्ञानं यज्ञं तनुते (तैत्ति.उप.२।५।१) १८८
विज्ञानम् आनन्दं ब्रह्म (बृहदा.उप.३।९।२८) ७२, १०३, २७३
विधिनातु एकवाक्यत्वात् (जैमि.सू.१।२।७) ३१
विभावानुभावसञ्चारिभावा रसनिष्पत्तिः ( ) १४८, १७१
विशते तदनन्तरम् (भग.गीता १८।५५) ४७०
विश्वं वै ब्रह्म तन्मात्रम् (भाग.पुरा.३।१०।१२) ४२०

विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेषु (छान्दो.उप.३।१३।७) २३४
विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा (ऋग्वेद ८।४।१२) ३४३
विषयो विशयश्चैव पूर्वपक्षः ( ) ४, ५
विष्णोः क्रमोस्यभिमानिहा (तैत्ति.संहि.१।६।५) २९
विष्णोर्धाम परं साक्षाद् (भाग.पुरा.३।११।४१) १९८
वेदाक्षरविचारेण शूद्रः (पार.स्मृ.१।७३) ४३६
वेदान्तकृद् वेदविदेव च अहम् (भग.गीता.१५।१५) १११
वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्था (मुण्डकोप.३।२।६) ६, २५
वेदास्त्रिकाण्डविषया ब्रह्मात्मविषया इमे (भाग.पुरा.११।२१।३५) १६८
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् (श्वेता.उप.३।८) ४७६
वेदैश्च सर्वेरहमेव वेद्य (भग.गीता.१५।१५) १३७, २९३, ४१५
वेदो अखिलो धर्ममूलम् ( ) ३५
वेदो नारायणः साक्षात् स्वयम्भूम (भाग.पुरा.६।१।४०) २६८
वैश्वदेवि (तैत्ति.ब्राह्म.१।३।४।४) १३३
वैश्वानरं द्वादशकपालं निर्वपेद् (तैत्ति.सं.२।२।५) ३५४
वैश्वानरं ह वै सम्प्रति वेद ( ) ३४९
वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा (तैत्ति.संहि.१।५।११।८) ३४३
वैश्वानरो न ऊत्या (अथ.वेद ६।३५।१) ३५४
वैषम्यनैर्घृण्ये (ब्रह्मसू.२।१।३४) ९७
व्यक्तः स तैः विभावाद्यैः (भरतना.शा.७।८) १७१
व्यत्ययो बहुलम् (पाणि.सू.३।१।८५) १४५
व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिः (परिभाषेन्दुशे.) १८

श

शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं (मैत्रा.उप.६।२२) २२९
शब्दब्रह्मणि निष्णातो न (भाग.पुरा.११।११।१८) ४२
शब्दविशेषात् (ब्रह्मसू.१।२।५) २८३
शब्दादेव प्रमितः (ब्रह्मसू.१।३।२४) ४३६
शान्त उपासीत (छान्दो.उप.३।१४।१) २६९
शान्तो दान्त उपरतः तितिक्षुः (सुबालोप.९।१४) २९, २६७
शारीरः प्राज्ञः (बृहदा.उप.४।३।२१) ४५४
शास्त्रदृष्ट्यातूपदेशो वामदेववद् (ब्रह्म.सू.१।१।२९) ७८
शास्त्रयोनित्वाद् (ब्रह्म.सू.१।१।३) ७१, ८३
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ( ) १३
शिरश्चमसः प्राणा वै यशः (बृहदा.उप.२।२।३) ४७९

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां (भग.गीता२।७) २७८
शीकाय ते स्वाहा (तैत्ति.संहि.७।५।११) १४
शुद्धबुद्धमुक्तस्वभावम् (नृसिं.ता.उप.९) ४८
शूद्रानेन मुखेन (छान्दो.उप.४।२।५) ४३०
शेषे ब्राह्मणमशब्दः (जैमि.सूत्र२।१।३३) ६९
शौनको ह वै महाशालारिसं (मुण्ड.उप.१।३) ३२४, ३६६
श्रद्धा वा आपः श्रद्धामेव (तैत्ति.संहि.१।६।८।१ (?)) १८६
श्रुतत्वाच्च (ब्रह्मसू.१।१।१०) ११६
श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः (मनुस्मृ.२।१२) ३५
श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थान (जैमि.सू.३।३।१४) २१४
श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वाद् (ब्रह्मसू.२।१।२७) ३६२
श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्च (न्यायसार ७९) ३४८
श्रोतव्यो मन्तव्यः (बृह.उप.२।४।५) १२, २६२
श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य (तैत्ति.उप.२।८) ४१२

ष

षष्ठीस्थाने योगा (पाणि.सू.१।१।४९) ४

स

स आत्मानं स्वयम् अकुरुत (तैत्ति.उप.२।७) ९४, ९५, ९६, ८२, ९९, १०१, १०६, ११२
स इमान् लोकानसृजत (ऐत.उप.१।१।२) १०६
स ईक्षाञ्चक्रे (प्रश्नोप.६।३) १०६, २७२
स एकः, स य एवं विद् (तैत्ति.उप.२।८) १५९
स एको ब्रह्मण आनन्दः (तैत्ति.उप.२।८) १७२, १९४, १९५
स एतं कसर्णीरः काद्रवेयो मन्त्रम् (तैत्ति.संहि.२।६।८।१२) ८७
स एतद् अग्निहोत्रं मिथुनम् (तैत्ति.ब्राह्म.२।१।२) ८८, ४२७
स एतावानास (बृहदा.उप.१।४।३) ९५, २८४
स एव अधस्ताद् (छान्दो.उप.७।२५।१) ३८२
स एष जीवो विवरप्रसूतिः (भाग.पुरा.११।१२।१७) १८६, २६८
स एष प्रज्ञात्मानन्दो अजरो (कौषी.ब्राह्म.३।८) २५७
स एष सम्प्रसादे रत्वा (बृहदा.उप.४।३।१५) ४५०
स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः (छान्दो.उप.१।६।७) २०५
स एषो अग्निर्वैश्वानरो यत् पुरुषः (शत.ब्राह्म.१०।६।११) ३५३
स ऐक्षत (बृहदा.१।२।५; ऐत.उप.१।१) ११२, ११३
स ऐक्षत लोकानुसृजा (ऐत.उप.१।१।१) १०६, १०७

स क्रतुं कुर्वीत (छान्दो.उप.३।१४।१) २६७
स तपो अतप्यत (तैत्ति.उप.२।६) १९१
स तृतीयम् अतप्यत ( ) १३
स तेजसि सूर्येसम्पन्नो यथा ( ) ३८९
स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि (कठोप.१।१।१३) ४७५
स न वलयाद् इति इहैव ( ) २८९
स प्राणम् असृजत (प्रश्नोप.६।३) १०६, १०७
स ब्रह्मण एक आनन्दः (तैत्ति.उप.२।८) १४०
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याम् (मुण्ड.उप.१।१।१) ३३६
स म आत्मा (कौषी.उप.३।९) २४१
स म आत्मेति विद्यात् (कौषी.ब्रह्म.३।८) २४५
स यत्र अयम् अणिमानम् (बृहदा.उप.४।३।३६) ४५६, ४५७
स यत्र अयम् आत्मा (बृहदा.उप.४।४।१) ४४९
स यथा सर्वासामपां समुद्र (बृहदा.उप.२।४।११) १२०
स यथा सैन्धवखिल्य उदके (बृहदा.उप.२।४।१२) १२०
स यदा अस्मात् शरीराद् उत्क्रामति (कौषी.उप.३।४) २५२
स यश्चायं पुरुषे (तैत्ति.उप.२।८) १५९, २०२, २०३
स यो ह एतम एवम् अग्निं (शत.ब्राह्म.१०।६।११) ३५१
स यो ह वै तत्परं (मुण्डकोप.३।२।९) ३९४
स वा अयमात्मा (बृहदा.उप.२।५।१५) ४५२, ४६१
स वा एष (बृहदा.उप.४।३।१६) ४५३
स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान (छान्दो.उप.७।२५।२) १४८, ३८३
स वा एष पुरुषः पञ्चधा (महाना.उप.१७।१४) १८४
स वा एष पुरुषो अन्नरसमयः (तैत्ति.उप.२।१।१) १५४
स वा एष महानज आत्मा (बृहदा.उप.४।४।२५) ४६१
स वा एषः पुरुषविधएव (तैत्ति.उप.२।२) ३४६
स विष्णुराह हि ( ) ३५८
स वै नैव रेमे (बृहदा.उप.१।४।३) १३६, १३६, १३७
स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः (भाग.पुरा.९।४।१८) ४६९
स समानः सन् (बृहदा.उप.४।३।७) ४५०
स सर्वँ भवति, ब्रह्म तं परादात् (बृहदा.उप.२।४।६) ९४
स स्वराट् भवति सर्वेषु लोकेषु (छान्दो.उप.७।२५।२) ३६५
स हैतावानास (बृहदा.उप.१।४।३) ३१२, ३३७
स होवाच एतद्वै तदक्षरं (बृह.उप.३।८।८) २०६, ३८३

संवत्सरो वा अग्निर्वैश्वानरः (तैत्ति.सं.२।२ ।६) ३४३
सः ब्रह्मविद्याम् (मुण्डकोप.१।१।१) ३७२?
सः यां प्रथमाम् आहुतिं जुहुयात् (छान्दो.उप.५।१९।१) ३५१
सएव सम्प्रसादः (बृहदा.उप.४।३।१५) ४५४
सक्तूञ् जुहोति (तैत्ति.संहि.३।३।८) ७, १४९
सच्च त्यच्चाभवद् निरुक्तं च (तैत्ति.उप.३।६) २५१
सच्चिदानन्दविग्रहम् (मुण्ड.१।४) १४१
सता सौम्य तदा सम्पन्नो भवति (छान्दो.उप.६।९।२) ४३९
सत्यं च अनृतं च सत्यम् अभवद् (तैत्ति.उप.२।६) ५२
सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म (तैत्ति.उप.२।१) १२, ३४, ३९, ४५, ४७, ४९, ५५, ६९, ७८, ८४, १०३, १२६, १२८, १४०, १४२, १४९, १६९, १७७, १८०, १८९, २०७, २०८, ३८१
सत्यं विज्ञानम् (शाण्डि.उप.२।२) १४०, १४१
सत्यकामो ह जाबालः (छान्दो.उप.४।४।१) ४३५
सदंशेन जडा अपि (तत्त्वदी.नि.१।२८) ७८
सदा पश्यन्ति सूरयः (सुबा.उप.६।१) २२३
सदेव सौम्य इदमग्र आसीद् (छान्दो.उप.६।२।१)१०३,१०६,११३,४२०
सधीः स्वप्नो भूत्वा (बृहदा.उप.४।३।७) ४५१
सन्तमेनं विदुः (तैत्ति.उप.२।६) १७४
सन्निपातस्तु अहम् इति मम इति (भाग.पुरा.११।२५।६) ११०
समयाध्युषिते सूर्येषोडशिनः स्तोत्रम् (तैत्ति.संहि.६।६।११।१५) ५४
समित्पाणिः श्रोयिं ब्रह्मनिष्ठम् (मुण्डकोप.१।२।१२) ३४
समिधो यजति (तैत्ति.सं.२।६१) ३९, १३२, १९६, १९७
समो मशकेन समो नागेन (बृहदा.उप.१।३।२२) ८, ३५६, ३५७
सर्पिः वा उदकं वा (छान्दो.उप.४।१५।१) ३०४
सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छान्दो.उप.१।१४।१) ८, ७९, ९६, ९९, १०७, ११२, १२१, १३५, २०५, २०७, २०८, २६४, २६५, २६९, २८६, ३१२, ३६४, ३६९
सर्वं नान्यो अतो अस्ति द्रष्टा (बृहदा.उप.३।७।२३) ३२१
सर्वं मयि वर्तते (भग.गीता) २७३
सर्वं समाप्नोषि (भग.गीता ११।४०) ९७, ९८
सर्वं सर्वमयं सर्वेजीवाः (नृसिंहो.उप.९) ३९२

सर्वगुह्यतमम् (भग.गीता १८।६६) २८०
सर्वतः पाणिपादं तद् (श्वेता.उप.३।१६) ३५६
सर्वधर्मान् परित्यज्य (भग.गीता१८।६६) २८०, २८१
सर्वधातुभ्यो असुन् (उणादिसू.६२८) ११
सर्वभावः सर्वभवनम् ( ) ५२
सर्वम् आत्मैव अभूद् (बृहदा.उप.४।५।१५) ३८२
सर्ववेदमयेनेदम् आत्मनात्मात्मयोनिना (भाग.पुरा.३।९।१४) ४२२
सर्वस्य ईशानः (बृहदा.उप.४।४।२२) २६४
सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः (बृहदा.उप.४।४।२२) ४६२, ४६३
सर्वाणि च भूतानि (छान्दो.उप.८।१।४) ३९३
सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि (छान्दो.उप.१।११।५) २१५, २१९
सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेः (ब्रह्म.सू.३।४।२५) ९०
सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति (कठोप.१।२) १२२, १३७, २१५, २९३, ३५४, ४७६
सर्वेषु कामचारो भवति (छान्दो.उप.७।२५।२) १७२
सर्वोऽपि द्वन्द्वो विभाषैकवद् भवति (परिभाषापाठः ३४) ५९
सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा (गीतामाहा) २७८
सविशेषणे हि विधिनिषेधौ विशेषणम ( ) १६५
सह ब्रह्मणा विपश्चिता (तैत्ति.उप.२।१) १९५
साङ्गो वेदो अध्येयो ज्ञेयश्च (द्र.पात.भा.१।१।१) ४२
साङ्गोपनिषदो वेदान् अधीत्याध्याप्य ( ) ६८
साध्यत्वेन क्रिया यत्र (वैय्याक.भू.सा.का.१५) ८९
साध्या वै देवाः सुवर्गकामा (तैत्ति.संहि.७।२।१) ४१३, ४१४
साध्वलङ्कृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ (छान्दो.उप.८।८।२) ४०४
सुपां सुलुग् (पाणि.सू.७।१।३९) ५८
सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेन (ब्रह्मसू.१।३।४२) ४५१
सूत्राणि अनुव्याख्यानानि (बृहदा.उप.४।५।११) १११
सूत्रार्थोवर्ण्यते यत्र ( ) ३
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वम् (ऋग्वेद१०।१९०।३) ४२२
सेतुरीजानानाम् (कठोप.३।२) ३००
सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री (छान्दो.उप.३।१२।५) २२५, २२८, २३०, २३१, २३४
सो अकामयत बहु स्यां प्रजायेय (तैत्ति.उप.२।६) १५२, १९१
सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद (तैत्ति.ब्राह्म.८।७।१७।७; २।८।९।६) ५८,

६३, ३१८, ३१९
सो अन्वेष्टव्यः (छान्दो.उप.८।७।१) ३५५
सो अहं भगवते सहस्रं ददामि (बृहदा.उप.४।३।१४) ४६०
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः (कठोप.१।३।९) ३०१
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् (तैत्ति.उप.२।१) ५०, १०१, १८९, १२८, १४६, १६१, १७२, १८०, १८२
सोमेन यजेत (तैत्ति.सं.३।२।२।३) ३१, ३९, १७६
स्मरो वा व आकाशाद् (छान्दो.उप.७।१३।१) ३८४
स्मृतेश्च (ब्रह्मसू.१।२।६;४।३।११) २८०, २८३
स्वतन्त्रः कर्ता (पाणि.सू.१।४।५४) ५०, ५६, ९७, ११३
स्वयम्भूरेष भगवान् वेदा गीतस्त्वया ( ) ६८
स्वर्गकामो यजेत (आप.श्रौ.सू.१०।२।१; तैत्ति.सं.२।२।५) ४३, ४९, ५३, ७०
स्वर्गार्थं सोमेन यक्ष्ये ( ) ३८
स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि (भाग.पुरा.६।१७।२८) १६५
स्वल्पाक्षरम् असन्दिग्धं सारवद् ( ) ३
स्वाध्यायविधिना वेदः ( ) ३१
स्वाध्यायो अध्येतव्यः (तैत्ति.आर.२।१५) ७
स्वाप्ययसम्पत्त्योः अन्यतरापेक्षम् (ब्रह्मसू.४।४।१६)२४८,३८२,४०६,२४८
स्वाप्ययात् (ब्रह्मसू.१।१।८) ११६
स्वाहाकारं यजति ( ) १३२

ह

हन्ताहं मदेव मन्मात्रं द्विवतीयम् ( ) ४२०
हविष्कृदाधाव (शुक्ल.य.वेद १।१५) ४२९
हिरण्मयः पुरुषः ( ) २७६
हिरण्मये परे कोशः (मुण्डकोप.२।२।७) ३७०
हृदयं चाप्यधोमुखम् (महाना.उप.११।७) २८१
हृदयस्य अग्रे अवद्यति (तैत्ति.संहि.६।३।१०।१०) २०, ४११
हेयत्वावचनाच्च (ब्रह्मसू.१।१।७) ११७
हो हो अयि भल्लाक्षः भल्लाक्षः (छान्दो.उप.४।१।२) ४३३